हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास

(सोलह भागों में)

सप्तम भाग

रीतिकाल (रीतिमुक्त) : संवत १७००–१६०० वि०

संपादक

डा० भगीरथ मिश्र

नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी

सं० २०२९ वि०

हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास

(सोलह भागों में)

संपादक मंडल

माननीय श्री पं० कमलापति त्रिपाठी

प्रधान संपादक

श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' श्री डा० नगेंद्र

श्री पं० करुणापति त्रिपाठी श्री डा० विजयपाल सिंह

श्री डा० नागेंद्रनाथ उपाध्याय श्री डा० वासुदेव सिंह—संपादन सहायक

श्री पं० सुधाकर पांडेय

संयोजक

नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी

सं० २०२९ वि०

प्रकाशक : नागरीप्रचारिणी सभा, काशी

मुद्रक : नागरी मुद्रण, वाराणसी

संस्करण : प्रथम, २६०० प्रतियाँ, सं० २०२६ वि०

मूल्य १०.००

प्राक्कथन

यह जानकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई है कि काशी नागरीप्रचारिणी सभा ने हिंदी साहित्य के बृहत् इतिहास के प्रकाशन की सुचिंतित योजना बनाई है। यह इतिहास १६ खंडों में प्रकाशित होगा। हिंदी के प्रायः सभी मुख्य विद्वान् इस इतिहास के लिखने में सहयोग दे रहे है। यह हर्ष की बात है कि इस शृंखला का पहला भाग, जो लगभग ८०० पृष्ठों का है, छप गया है। प्रस्तुत योजना कितनी गंभीर है, यह इस भाग के पढ़ने से ही पता लग जाता है। निश्चय ही इस इतिहास मे व्यापक और सर्वांगीण दृष्टि से ही साहित्यिक प्रवृत्तियो, आंदोलनो तथा प्रमुख कवियो और लेखको का समावेश होगा और जीवन की सभी दृष्टियो से उनपर यथोचित विचार किया जायगा।

हिंदी भारतवर्ष के बहुत बड़े भूभाग की भाषा है। गत एक हजार वर्ष से इस भूभाग की अनेक बोलियो मे उत्तम साहित्य का निर्माण होता रहा है। इस देश के जन-जीवन के निर्माण में इस साहित्य का बहुत बड़ा हाथ रहा है। संत और भक्त कवियो के सारगर्भित उपदेशो से यह साहित्य परिपूर्ण है। देश के वर्तमान जीवन को समझने के लिये और उसे अभीष्ट लक्ष्य की ओर अग्रसर करने के लिये यह साहित्य बहुत उपयोगी है। इसीलिये, इस साहित्य के उदय और विकास का ऐतिहासिक दृष्टिकोण से विवेचन महत्वपूर्ण कार्य है।

कई प्रदेशो मे बिखरा हुआ साहित्य अभी बहुत अंशो में अप्रकाशित है। बहुत सी सामग्री हस्तलेखो के रूप मे देश के कोने कोने मे बिखरी पडी है। नागरीप्रचारिणी सभा ने पिछले पचास वर्षों मे इस सामग्री के अन्वेषण और संपादन का काम किया है। बिहार, राजस्थान, मध्यप्रदेश और उत्तर प्रदेश की अन्य महत्वपूर्ण संस्थाएँ भी इस तरह के लेखो की खोज और संपादन का कार्य करने लगी है। विश्वविद्यालयो के शोधप्रेमी अध्येताओ ने भी महत्वपूर्ण सामग्री का संकलन और विवेचन किया है। इस प्रकार अब हमारे पास नए सिरे से विचार और विश्लेषण के लिये पर्याप्त सामग्री एकत्र हो गई है। अतः यह आवश्यक हो गया है कि हिंदी साहित्य के इतिहास का नए सिरे से अवलोकन किया जाए।

इस बृहत् हिंदी साहित्य के इतिहास में लोकसाहित्य को भी स्थान दिया गया है, यह खुशी की बात है। लोकभाषाओ मे अनेक गीतो, वीरगाथाओ, प्रेमगाथाओ तथा लोकोक्तियों आदि की भी भरमार है। विद्वानों का ध्यान इस ओर भी गया है, यद्यपि यह सामग्री अभी तक अप्रकाशित ही है। लोककथा और लोककथानको का साहित्य साधारण जनता के अंतरतर की अनुभूतियो का प्रत्यक्ष निदर्शन है। अपने बृहत् इतिहास की योजना में इस साहित्य को भी स्थान देकर सभा ने एक महत्वपूर्ण कदम उठाया है।

हिंदी भाषा तथा साहित्य के विस्तृत और संपूर्ण इतिहास का प्रकाशन एक और दृष्टि से भी आवश्यक तथा वांछनीय है। हिंदी की सभी प्रवृत्तियों और साहित्यिक कृतियों के अविकल ज्ञान के बिना हम हिंदी और देश की अन्य प्रादेशिक भाषाओ के आपसी संबंध को ठीक ठीक नहीं समझ सकते। इंडोआर्यन वंश की जितनी भी आधुनिक भारतीय भाषाएँ है, किसी न किसी रूप मे और किसी न किसी समय उनकी उत्पत्ति का हिंदी के विकास से घनिष्ट संबंध रहा है और आज इन सब भाषाओं और हिंदी के बीच जो अनेक पारिवारिक संबंध है उनके यथार्थ निदर्शन के लिये यह अत्यंत आवश्यक है कि हिंदी के उत्पादन और विकास के बारे मे हमारी जानकारी अधिकाधिक हो। साहित्यिक तथा

ऐतिहासिक मेलजोल के लिये ही नही बल्कि पारस्परिक सद्भावना तथा आदान प्रदान बनाए रखने के लिये भी यह जानकारी उपयोगी होगी ।

इन सब भागों के प्रकाशित होने के बाद यह इतिहास हिंदी के बहुत बडे अभाव की पूर्ति करेगा और मै समझता हूँ, यह हमारी प्रादेशिक भाषाओ के सर्वांगीण अध्ययन मे भी सहायक होगा । काशी नागरीप्रचारिणी सभा के इस महत्वपूर्ण प्रयत्न के प्रति मै अपनी हार्दिक शुभ कामना प्रकट करता हूँ और इसकी सफलता चाहता हूँ ।

राष्ट्रपति भवन
नई दिल्ली
३ दिसबर, १९५७

राजेन्द्र प्रसाद

संपादकोय वक्तव्य

हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास, सप्तम भाग, विद्वज्जनो और साहित्य प्रेमियों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमें हर्ष है। इस बृहत् इतिहास का षष्ठ भाग रीतिकाव्य से संबंधित है तथा सप्तम भाग रीतिमुक्त काव्य से। हिंदी के अनेक विद्वान् और विद्यार्थी अध्येता रीतिकालीन (सं० १७०० से १६०० वि० के मध्यवर्ती) काव्य को एक आबद्ध दृष्टि से देखते है। प्राय उनकी यह धारणा बँधी रहती है कि रीतिकाल मे जो काव्य रचा गया वह सब का सब शृगारी काव्य है। इसी भ्रात धारणा के निराकरण के लिये सभा द्वारा आयोजित बृहत् इतिहास के अतर्गत इस कालखड के साहित्य को दो भागों मे विभक्त करके प्रस्तुत किया गया है। यह सप्तम भाग रीतिमुक्त काव्य का इतिहास प्रस्तुत करता है।

इसके अवलोकन से सहज ही यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इस युग का जो रीतिमुक्त काव्य है उसका अधिकाश शृगारी नही है। इस भाग के अतर्गत रीतिमुक्त शृगारकाव्य का अनुशीलन द्वितीय खड मे किया गया है जिसका विस्तार भी कम है और कवियो की सख्या भी अधिक नही। कुल पाँच प्रमुख कवि आलम, बोधा, घनानद, ठाकुर और द्विजदेव, इस धारा के अतर्गत आते है। किंतु इस शृगारकाव्य के अतिरिक्त इस युग मे भक्तिकाव्य, वीरकाव्य, नीतिकाव्य, हास्यविनोद काव्य तथा विविध ज्ञानविज्ञान से सबधित साहित्य प्रचुर मात्रा मे लिखा गया है। सर्वाधिक विस्तार भक्तिकाव्य का है जिसके अतर्गत सतकाव्य के विविध सप्रदायो का साहित्य, प्रेमाख्यान काव्य, कृष्णभक्ति काव्य तथा रामभक्ति काव्य का समावेश है। मेरी दृष्टि से भक्तिकाव्य का जितना विशद विस्तार रीतिकाल मे हुआ उतना स्वय भक्तिकाल मे भी नहीं।

इन विविध धाराओ के साहित्यानुशीलन और लेखन का कार्य मैने उनमे विशेष गति रखनेवाले विद्वानो को सौंपा था और यह कहने मे मुझे कोई सकोच नही कि उन्होने अपनी समय और पृष्ठसख्या की सीमा मे बँधकर भी अपने अपने प्रसगो मे नई सामग्री देने का यत्न किया है और भरसक इस इतिहास को परिपूर्ण बनाने मे योग दिया है। इसके परिणामस्वरूप अनेक अज्ञात कवि और ज्ञात कवियों की अज्ञात रचनाएँ सामने आई है। इसके साथ ही हमने इस बीच रचे गए गद्य और नाटक साहित्य का भी इसके भीतर सक्षिप्त, परिचयात्मक विवरण दे दिया है और हमारा यह प्रयत्न रहा है कि इस बीच के विविध साहित्य और उसकी परपराओ एव धाराओ का अधिक से अधिक परिपूर्ण विवरण इसके भीतर समाविष्ट हो सके।

रीतिमुक्त से हमारा तात्पर्य उस साहित्य से है जो रीति या लक्षणो से बँधा नही है और इसी अर्थ मे इस भाग मे उसका प्रयोग किया गया है। 'द्विजदेव' को हमने रीतिस्वच्छद शृंगारी कवि के रूप मे ग्रहण किया है। यद्यपि इनका परिचय षष्ठ भाग में भी आ गया है फिर भी हमें इस भाग के 'रीतिमुक्त शृगारी काव्य' के अतर्गत 'द्विजदेव' को लेना आवश्यक जान पडा। अतः उनका विवरण यहाँ भी दे दिया गया है। इस भाग मे आनेवाले शृगारी कवि, जिन्हे रीतिमुक्त शृगारी काव्य के अतर्गत द्वितीय खंड में रखा गया है, वे अन्य खंडो के शृगारी काव्य रचयिताओ से इस बात मे भिन्न है कि इनकी रचनाओ मे एक प्रकार से स्वच्छदतावादी (रोमैंटिक) काव्य की विशेषताएँ विशेष रूप से देखने को मिलती है। इनका काव्य विशुद्ध स्वच्छद शृगार है और इनका प्रेम स्वानुभूत

प्रेम है, जबकि अन्य धाराओं के कवियों का शृंगार भक्ति, अध्यात्म आदि से आविल है अथवा काव्यशास्त्रीय परपराओ और लक्षणो के सांचो मे ढला हुआ है। अतः निश्चित रूप से ऐसा साहित्य एक प्रकार का विशिष्ट साहित्य है।

साहित्य का कोई भी इतिहासकार पूर्णता का दावा नही कर सकता। हिंदी साहित्य के इतिहासकार के लिये यह बात विशेष रूप से खरी उतरती है, क्योकि विस्तृत क्षेत्र मे व्यवहृत और सुदूर कालखडो मे परिव्याप्त हिंदी के साहित्य की नई सामग्री बराबर प्रकट होती जा रही है। ऐसी दशा मे बृहत् इतिहास के इस खड की पूर्णता का दावा करने की धृष्टता मै कैसे कर सकता हूँ? इसके अतिरिक्त मै स्वय इसकी अपूर्णताओं से अनभिज्ञ नही हूँ। फिर भी बृहत् इतिहास की योजना को एक अनुष्ठान मानकर मैने शीघ्र ही इसे पूरा करना चाहा था, परन्तु सकल्प के होते हुए भी इसमे अप्रत्याशित विलब हो गया। इसका मुझे खेद है।

मै सभा के अधिकारियों के प्रति कृतज्ञ हूँ जिन्होंने इतने बड़े कार्य को सँभालने के विश्वास का पात्र मुझे समझा। साथ ही मै इस भाग के सहयोगी लेखको को भी धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने मनोयोगपूर्वक अपना कार्य सपन्न किया। वास्तव में इसका तीन चौथाई भाग बहुत पहले समाप्त हो गया था, केवल एक चौथाई के कारण इसे दो तीन वर्षों तक पूर्ण होने की प्रतीक्षा करनी पडी।

सप्तम भाग की पाडुलिपि को व्यवस्थित करने मे सहयोगी लेखकों मे से डॉ० भगवानदास तिवारी तथा डा० राजनारायण मौर्य का मै विशेष ऋणी हूँ। इन्होंने इसे व्यवस्था और पूर्णता देने मे बडी सहायता की है।

अत मे मै सभा के अधिकारियों, विशेष रूप से उसके प्रधान मत्री प० सुधाकर पाडेय के प्रति आभार प्रकट करता हूँ और 'बृहत्' अनुष्ठान के तुच्छाश रूप इस योगदान को समर्पित करता हुआ कृतकृत्यता का अनुभव करता हूँ।

सागर, भगीरथ मिश्र
विजयादशमी, स० २०२७

हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास

नागरीप्रचारिणी सभा के संक्षिप्त खोज विवरणों के प्रकाशन के साथ ही सन् १९०३ ई० से हिंदी साहित्य के इतिहासलेखन के लिये प्रचुर सामग्री उपलब्ध होनी आरंभ हुई और उसका विस्तार होता गया। इस क्षेत्र में धीरे धीरे अतुल सामग्री का भांडार उपस्थित हो गया। इन उपलब्ध सामग्रियों का उपयोग और प्रयोग समय समय पर विद्वानों ने किया और सभा के भूतपूर्व खोजनिरीक्षक स्व० मिश्रबंधुओं ने मिश्रबंधु विनोद में सन् १९१० ई० तक उपलब्ध सामग्री का व्यापक रूप से उपयोग भी किया। यद्यपि उनके पूर्व भी गार्सां द तासी (सं० १८९६ वि०), शिवसिंह सेंगर (सं० १९३४ वि०), डा० सर जार्ज ग्रियर्सन (सं० १९४६ वि०), एफ० ई० की (सं० १९७७) द्वारा क्रमशः हिंदुस्तानी साहित्य का इतिहास, शिवसिंह सरोज, माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑव हिंदुस्तान, ए हिस्ट्री ऑव द हिंदी लिटरेचर प्रकाशित हो चुके थे, तो भी वे पूर्ण हिंदी साहित्य के इतिहास नहीं माने जा सकते क्योंकि इनकी सीमा इतिवृत्तसंग्रह की परिधि के बाहर नहीं। निश्चय ही ग्रियर्सन का मान अधिक वैज्ञानिक कालविभाजन के कारण और मिश्रबंधु-विनोद की गरिमा उसके कालविभाजन तथा तथ्यसंग्रह की दृष्टि से है।

सभा ने हिंदी साहित्य के इतिहासलेखन का गंभीर आयोजन हिंदी शब्दसागर की भूमिका के रूप में आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा किया, जिसका परिवर्धित संशोधित रूप 'हिंदी साहित्य का इतिहास' के रूप में सभा से सं० १९८६ में प्रकाशित हुआ। यह इतिहास अपने गुणधर्म के कारण अनुपम मान का अधिकारी है। यद्यपि अबतक हिंदी साहित्य के प्रकाशित इतिहासों की संख्या शताधिक तक पहुँच चुकी है तो भी शुक्ल जी का इतिहास सर्वाधिक मान्य एवं प्रामाणिक है। अपने प्रकाशनकाल से आज तक उसकी स्थिति ज्यों की त्यों बनी है। शुक्ल जी ने अपने इतिहासलेखन में १९८३ वि० तक खोज में उपलब्ध प्रायः सारी सामग्री का उपयोग किया था। तब से इधर उपलब्ध होनेवाली सामग्री का बराबर विस्तार होता गया, हिंदी का भी प्रसार दिन पर दिन व्यापक होता गया और स्वतंत्राप्राप्ति तथा हिंदी के राष्ट्रभाषा होने पर इसकी परिधि का और भी विस्तार हुआ।

संवत् २०१० में अपनी हीरक जयंती के अवसर पर नागरीप्रचारिणी सभा ने हिंदी शब्दसागर और हिंदी विश्वकोश के साथ ही हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास प्रस्तुत करने की भी योजना बनाई। सभा के तत्कालीन सभापति तथा इस योजना के प्रधान संपादक स्वर्गीय डा० अमरनाथ झा की प्रेरणा से इस योजना ने मूर्त रूप ग्रहण किया। हिंदी साहित्य की व्यापक पृष्ठभूमि से लेकर उसके अद्यतन इतिहास तक का क्रमबद्ध एवं धारावाही वर्णन उपलब्ध सामग्री के आधार पर प्रस्तुत करने के लिये इस योजना का संघटन किया गया। मूलतः यह योजना ५ लाख ५९ हजार ८ सौ ५४ रुपए २८ पैसे की बनाई गई। भूतपूर्व राष्ट्रपति देशरत्न स्व० डा० राजेंद्रप्रसाद जी ने इसमें विशेष रुचि ली और प्रस्तावना लिखना स्वीकार किया। इस योजना में समय समय पर आवश्यकतानुसार परिवर्तन परिवर्धन भी होता रहा है। प्रत्येक विभाग के अलग अलग मान्य विद्वान् इसके संपादक एवं लेखक नियुक्त किए गए जिनके सहयोग से बृहत् इतिहास का पहला खंड सं० २०१४ वि० में, छठा खंड २०१५ में, सोलहवाँ खंड २०१७ में, दूसरा और तेरहवाँ खंड २०२२ में चौथा खंड २०२५ में, चौदहवाँ खंड २०२७ में तथा दसवाँ खंड २०२८ में प्रकाशित हुए। अब यह सातवाँ खंड प्रकाशित हो रहा है। आठवाँ खंड

भी तीव्र गति से मुद्रित हो रहा है और शीघ्र ही प्रकाशित हो जायगा। शेष खंडों का कार्य भी आगे बढ़ रहा है। उनके लेखन और संपादन में विद्वान् मनोयोगपूर्वक लगे हुए हैं। इस योजना पर अब तक तीन लाख से ऊपर रुपया व्यय हो चुका है जिसमें से मध्यप्रदेश, राजस्थान, अजमेर, बिहार, उत्तरप्रदेश और केंद्रीय सरकारों ने अबतक १ लाख ५२ हजार रुपए के अनुदान दिए हैं। शेष डेढ़ लाख से ऊपर सभा ने इसपर व्यय किया है और आगे व्यय करती जा रही है। यदि सरकार ने सहायता न की तो योजना का आगे सचालन कठिन होगा। देश के व्यस्त तथा निष्णात लेखकों को यह कार्य सौंपा गया था। पर इस योजना की गरिमा तथा विद्वानों की अतिव्यस्तता के कारण इसमे विलंब हुआ। एक दशक बीत जाने पर भी कुछ संपादकों और लेखकों ने रंचमात्र कार्य नही किया था। किंतु ऐसी व्यवस्था कर ली गई है कि इसमे अब और अधिक विलंब न हो। संवत् २०१७ तक इसके संयोजक डा० राजबली पाडेय थे और इसके पश्चात् सं० २०२० तक डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा रहे।

इस योजना को गति देने तथा आर्थिक बचत को ध्यान में रखकर इस योजना को फिर से सँवारा गया और इसके लिये एक सपादकमंडल गठित किया गया जिसके प्रधान महामहिम डा० संपूर्णानंद जी थे। अब इसके सदस्य निम्नलिखित हैं :

माननीय पं० कमलापति त्रिपाठी—प्रधान संपादक
श्री रामधारी सिंह 'दिनकर'
श्री डा० नगेंद्र
श्री करुणापति त्रिपाठी
श्री डा० विजयपाल सिंह
श्री डा० नागेंद्रनाथ उपाध्याय
श्री डा० वासुदेव सिंह—संपादन सहायक
श्री पं० सुधाकर पाडेय—संयोजक

इस योजना का अद्यतन प्रारूप निम्नांकित है :

विषय और काल	भाग	संपादक
हिंदी साहित्य की ऐतिहासिक पीठिका	प्रथम (प्रकाशित)	डा० राजबली पांडेय
हिंदी भाषा का विकास	द्वितीय (प्रकाशित)	डा० धीरेंद्र वर्मा
हिंदी साहित्य का उदय और विकास (१४०० वि० तक)	तृतीय	पं० करुणापति त्रिपाठी डा० शिवप्रसाद सिंह
भक्तिकाल (निर्गुण) १४००—१७०० वि०	चतुर्थ (प्रकाशित)	प० परशुराम चतुर्वेदी
भक्तिकाल (सगुण) १४००—१७०० वि०	पंचम	डा० दीनदयाल गुप्त डा० देवेंद्रनाथ शर्मा डा० विजयेंद्र स्नातक
रीतिकाल (रीतिबद्ध) १७००—१९०० वि०	षष्ठ (प्रकाशित)	डा० नगेंद्र
रीतिकाल (रीतिमुक्त)	सप्तम (प्रकाशित)	डा० भगीरथ मिश्र
हिंदी साहित्य का अभ्युत्थान (भारतेंदु काल १९००—५० वि०)	अष्टम	डा० विनयमोहन शर्मा

हिंदी साहित्य का परिष्कार (द्विवेदी काल १९५०—७५ वि०)	नवम	पं० कमलापति त्रिपाठी प० सुधाकर पांडेय
हिंदी साहित्य का उत्कर्ष (काव्य १९७५—९५ वि०)	दशम (प्रकाशित)	डा० नगेंद्र, डा० अंचल, प० शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र'
हिंदी साहित्य का उत्कर्ष (नाटक १९७५—९५ वि०)	एकादश	डा० सावित्री सिनहा डा० दशरथ ओझा डा० लक्ष्मीनारायण लाल
हिंदी साहित्य का उत्कर्ष (कथा साहित्य १९७५—९५ वि०)	द्वादश	डा० कल्याणमल लोढा श्रीअमृतलाल नागर
हिंदी साहित्य का उत्कर्ष समालोचना, निबंध, पत्रकारिता (१९७५—९५ वि०)	त्रयोदश (प्रकाशित)	डा० लक्ष्मीनारायण सुधांशु
हिंदी साहित्य का अद्यतन काल (सं० १९९५ वि० से २०१७)	चतुर्दश (प्रकाशित)	डा० हरवंशलाल शर्मा डा० कैलाशचंद्र भाटिया
हिंदी में शास्त्र तथा विज्ञान	पंचदश	श्रीरामधारी सिंह 'दिनकर' डा० गोपालनारायण शर्मा
हिंदी का लोक साहित्य	षोडश (प्रकाशित)	महापंडित राहुल सांकृत्यायन

इतिहासलेखन के लिये जो सामान्य सिद्धांत स्थिर किए गए हैं वे निम्नलिखित हैं :

१—हिंदी साहित्य के विभिन्न कालों का विभाजन युग की मुख्य सामाजिक साहित्यिक प्रवृत्तियों के आधार पर किया जायगा।

२—व्यापक सर्वांगीण दृष्टि से साहित्यिक प्रवृत्तियों, आंदोलनों तथा प्रमुख कवियों और लेखकों का समावेश इतिहास में होगा और जीवन की सभी दृष्टियों से उनपर यथोचित विचार किया जायगा।

३—साहित्य के उदय और विकास, उत्कर्ष तथा अपकर्ष का वर्णन और विवेचन करते समय ऐतिहासिक दृष्टिकोण का पूरा ध्यान रखा जायगा अर्थात् तिथिक्रम, पूर्वापर तथा कार्यकारण संबंध, पारस्परिक संपर्क, संघर्ष, समन्वय, प्रभावग्रहण, आरोप, त्याग, प्रादुर्भाव, तिरोभाव, अंतर्भाव, आदि प्रक्रियाओं पर पूरा ध्यान दिया जायगा।

४—संतुलन और समन्वय—इसका ध्यान रखना होगा कि साहित्य के सभी पक्षों का समुचित विचार हो सके। ऐसा न हो कि किसी पक्ष की उपेक्षा हो जाय और किसी का अतिरंजन। साथ ही साथ साहित्य के सभी अंगों का एक दूसरे से संबंध और सामंजस्य किस प्रकार से विकसित और स्थापित हुआ, इसे स्पष्ट किया जायगा। उनके पारस्परिक संघर्षों का उल्लेख और प्रतिपादन उसी अंश और सीमा तक किया जायगा जहाँ तक वे साहित्य के विकास में सहायक सिद्ध हुए होंगे।

५—हिंदी साहित्य के इतिहास के निर्माण में मुख्य दृष्टिकोण साहित्यशास्त्रीय होगा। इसके अंतर्गत ही विभिन्न साहित्यिक दृष्टियों की समीक्षा और समन्वय किया जायगा। विभिन्न साहित्यिक दृष्टियों में निम्नलिखित की मुख्यता होगी—

क—शुद्ध साहित्यिक दृष्टि : अलंकार, रीति, रस, ध्वनि, व्यंजना आदि।
ख—दार्शनिक।

ग—सांस्कृतिक।
घ—समाजशास्त्रीय।
ङ—मानववादी, आदि।

च—विभिन्न राजनीतिक और प्रचारात्मक प्रभावों से बचना होगा। जीवन में साहित्य के मूल स्थान का संरक्षण आवश्यक होगा।

छ—साहित्य के विभिन्न कालो मे उसके विभिन्न रूपो में परिवर्तन और विकास के आधारभूत तत्वों का संकलन और समीक्षण किया जायगा।

ज—विभिन्न मतो की समीक्षा करते समय उपलब्ध प्रमाणों पर सम्यक् विचार किया जायगा। सबसे अधिक संतुलित और बहुमान्य सिद्धांत की ओर संकेत करते हुए भी नवीन तथ्यों और सिद्धांतों का निरूपण संभव होगा।

झ—उपर्युक्त सामान्य सिद्धातो को दृष्टि मे रखते हुए प्रत्येक भाग के संपादक अपने भाग की विस्तृत रूपरेखा प्रस्तुत करेंगे। संपादक मंडल इतिहास की व्यापक एकरूपता और आंतरिक सामंजस्य बनाए रखने का प्रयास करता रहेगा।

पद्धति—

६—प्रत्येक लेखक और कवि की सभी उपलब्ध कृतियों का पूरा संकलन किया जायगा और उसके आधार पर ही उनके साहित्यक्षेत्र का निर्वाचन और निर्धारण होगा तथा उनके जीवन और कृतियों के विकास मे विभिन्न अवस्थाओ का विवेचन और निर्देशन किया जायगा।

७—तथ्यों के आधार पर सिद्धांत का निर्धारण होगा, केवल कल्पना और सम्मतियो पर ही किसी कवि अथवा लेखक की आलोचना अथवा समीक्षा नही की जायगी।

८—प्रत्येक निष्कर्ष के लिये प्रमाण तथा उद्धरण आवश्यक होंगे।

९—लेखन मे वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग किया जायगा : संकलन, वर्गीकरण, समीकरण (संतुलन), आगमन आदि।

१०—भाषा और शैली सुबोध तथा सुरुचिपूर्ण होगी।

११—प्रत्येक अध्याय के अंत मे संदर्भग्रंथो की सूची आवश्यक होगी।

१२—संपादको के यहाँ से विभिन्न भागों की संपादित पांडुलिपियाँ आने पर प्रधान संपादक को अथवा जिन्हे सभा निश्चित करे, उन्हे दिखा दी जाया करेंगी। भली भाँति देख परख लेने पर ही लेखन और संपादन के पुरस्कारों का भुगतान किया जाया करेगा। एतदर्थ प्रति भाग २५०) रु० तक का व्यय स्वीकार किया जायगा।

१३—सभा का आरंभ मे ही यह विचार रहा है कि उर्दू कोई स्वतंत्र भाषा नही है, बल्कि हिंदी की ही एक शैली है, अतः इस शैली के साहित्य की यथोचित चर्चा भी ब्रज, अवधी डिंगल की भाँति, इतिहास मे अवश्य होनी चाहिए।

१४—बृहत् इतिहास पर लेखको को प्रति मुद्रित पृष्ठ ६) रु० की दर से और संपादक को प्रति मुद्रित पृष्ठ १) रु० की दर से पुरस्कार दिया जायगा।

१५—किसी भाग के संपादक यदि अपने भाग के किसी अंश के लेखक भी होंगे तो उन्हें अपने लिखे अंश पर केवल लेखन पुरस्कार दिया जायगा, संपादन पुरस्कार (उतने अंश का) पृथक् से न दिया जायगा।

१६—बृहत् इतिहास के लेखको और सभा के बीच परस्पर अनुबंध होगा जिसमें यह भी उल्लेख रहेगा कि इतिहास की पुरस्कृत सामग्री पर सभा का स्वत्व सदा सर्वदा

और सर्वत्र के लिये होगा तथा उसका उपयोग आवश्यकतानुसार करने के लिये सभा स्वतंत्र रहेगी ।

यह योजना अत्यंत विशाल है तथा अनिवार्यतः बहुसंख्यक निष्णात विद्वानों के सहयोग पर आधारित है । यह प्रसन्नता का विषय है कि इन विद्वानों का जो सहयोग सभा को प्राप्त है ही, अन्यान्य विद्वान् भी अपने अनुभव का लाभ हमें उठाने दे रहे हैं । हम अपने भूतपूर्व संयोजकों---डा० पांडेय और डा० शर्मा---के भी अत्यंत आभारी हैं जिन्होंने इस योजना को गति प्रदान की । हम भारत सरकार तथा अन्यान्य सरकारों के भी आभारी हैं जिन्होंने वित्त से हमारी सहायता की ।

इस योजना के साथ ही सभा के संरक्षक स्व० डा० राजेंद्रप्रसाद और उसके भूतपूर्व सभापति स्व० डा० अमरनाथ झा, स्व० पं० गोविंदवल्लभ पंत तथा स्व० डा० संपूर्णानंद की स्मृति जाग उठती है । जीवनकाल में निष्ठापूर्वक इस योजना को उन्होंने चेतना और गति दी और आज उनकी स्मृति प्रेरणा दे रही है । विश्वास है, उनके आशीर्वाद से यह योजना शीघ्र ही पूरी हो सकेगी ।

अबतक प्रकाशित इतिहास के खंडों को, त्रुटियों के बावजूद भी, हिंदी जगत् का आदर मिला है । मुझे विश्वास है, आगे के खंडों में और भी परिष्कार और सुधार होगा तथा अपनी उपयोगिता और विशेष गुणगरिमा के कारण वे समादृत होंगे ।

इस खंड के संपादक श्री डा० भगीरथ जी मिश्र संस्कृत तथा हिंदी के अधिकारी विद्वान् हैं । उनका मैं विशेष रूप से अनुगृहीत हूँ क्योंकि व्यस्त होते हुए भी हिंदी के हित में इस कार्य को उन्होंने गरिमा के साथ पूरा किया । इस भाग के संपादन मूल रूप का विस्तार निश्चित सीमा से अधिक हो गया था । अपनी अनिवार्य और आवश्यक व्यस्तता के कारण डा० मिश्र इस विस्तार को समेटकर प्रस्तावित सीमा में लाने का हमारा अनुरोध स्वीकार नहीं कर सके और उन्होंने यह भार सभा को ही सौंप दिया । यह कार्य संपादक मंडल के सहसंयोजक, काशी विद्यापीठ के प्राध्यापक श्री डा० वासुदेव सिंह ने जिस तत्परता, कुशलता और निष्ठा के साथ संपन्न किया, उसके लिये हम उनके विशेष रूप से आभारी हैं । इस खंड के लेखकों के प्रति भी सभा अनुगृहीत है । अंत में इस योजना में योगदान करनेवाले ज्ञात और अज्ञात अन्य सभी मित्रों एवं हितैषियों के प्रति मैं अनुगृहीत हूँ और विश्वास करता हूँ, उन सबका सहयोग इसी प्रकार सभा को निरंतर प्राप्त होता रहेगा ।

सुधाकर पांडेय
संयोजक,
बृहत् इतिहास उपसमिति, तथा
प्रधान मंत्री
नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी

मेष संक्रांति,
२०२६ वि०

हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास

सप्तम भाग के लेखक

१—डॉ० भगीरथ मिश्र
२—डॉ० आनंदप्रकाश दीक्षित
३—डॉ० कृष्णचंद्र वर्मा
४—डॉ० श्यामसुंदर व्यास
५—डॉ० पारसनाथ तिवारी
६—डॉ० शिवबालक शुक्ल
७—डॉ० रामस्वरूप
८—डॉ० राजनारायन मौर्य
९—डॉ० प्रेमप्रकाश गौतम
१०—डॉ० भगवानदास तिवारी
११—डॉ० दशरथ राज
१२—डॉ० रामफेर त्रिपाठी

विभिन्न लेखकों द्वारा लिखित अंश

लेखक	लिखित अंश
१—डॉ० भगीरथ मिश्र, एम० ए०, पी-एच० डी० आचार्य एव अध्यक्ष हिंदी विभाग, सागर विश्वविद्यालय, सागर	द्वितीय खड—प्रथम, द्वितीय तृतीय अध्याय तृतीय खंड—३९–४२, ४३–४६, ४७–५८ नवम खंड—उपसहार । ५८७–५९२
२—डॉ० आनंदप्रकाश दीक्षित, एम० ए०, पी-एच० डी० आचार्य एव अध्यक्ष—हिंदी विभाग, पूना विश्वविद्यालय, पूना–७	तृतीय खड—द्वितीय अध्याय, सूफी प्रेमाख्यान काव्य (सपूर्ण) २०९–२२४
३—डॉ० कृष्णचंद्र वर्मा, एम०ए०, पी-एच० डी० प्रोफेसर एव अध्यक्ष हिंदी विभाग, महारानी लक्ष्मीबाई कालेज, ग्वालियर (म०प्र०)	प्रथम खड—प्रथम अध्याय (सपूर्ण) २–३५
४—डॉ० श्यामसुदर व्यास, एम० ए०, पी-एच० डी० प्राध्यापक, हिंदी विभाग, होलकर कालेज, इदौर	षष्ठ खड—विनोद काव्य (सपूर्ण) ५१३–५३०
५—डॉ० पारसनाथ तिवारी, एम० ए०, डी० फिल्० प्राध्यापक, हिंदी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद	तृतीय खड—प्रथम अध्याय—सत काव्य : विभिन्न पंथ ११३–२०७
६—डॉ० शिवबालक शुक्ल, एम०ए०, पी-एच० डी० प्राध्यापक, हिंदी विभाग, के० जी० के० कालेज, मुरादाबाद	तृतीय खंड—तृतीय अध्याय कृष्णभक्ति काव्य एवं चतुर्थ अध्याय रामभक्ति काव्य २२५–३१६
७—डॉ० रामस्वरूप, एम० ए० पी-एच० डी० दिल्ली	पाँचवाँ खड—नीति काव्य (संपूर्ण) ४७५–५१०
८—डॉ० राजनारायण मौर्य, एम० ए०, पी-एच०डी० प्राध्यापक, हिंदी विभाग, पूना विश्वविद्यालय, पूना–७	तृतीय खंड—पचम अध्याय—अन्य देवोपासक कवि और काव्य—३१७–३२८ सप्तम खंड—प्रथम, द्वितीय, तृतीय अध्याय, ५३३–५४७ अष्टम खंड—५७५–५८३ भाषा का स्वरूप
९—डॉ० प्रेमप्रकाश गौतम, एम० ए०, पी-एच० डी० प्राध्यापक, हिंदी विभाग, सनातन धर्म कालेज, आनंद पर्वत, धौला कुआँ, नई दिल्ली	सप्तम खंड—चतुर्थ अध्याय-गद्य साहित्य ५४९–५७१।

१०—डॉ० भगवानदास तिवारी, एम० ए०, पी-एच० डी० प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग, सोलापुर कालेज, सोलापुर (महाराष्ट्र)	तृतीय खंड—प्रथम अध्याय—मराठी और गुजराती संतों का हिंदी काव्य १६७–२०७ चतुर्थ खंड—वीरकाव्य (संपूर्ण) २३१–४६६
११—डॉ० दशरथ राज, एम० ए०, पी-एच० डी० पिंपरी, पूना (महाराष्ट्र)	सप्तम खंड—पंचम अध्याय, दखिनी और उर्दू साहित्य
१२—डॉ० रामफेर त्रिपाठी, एम०ए०, पी-एच० डी० प्राध्यापक, हिंदी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ	द्वितीय खंड—चतुर्थ अध्याय, रीतिमुक्त शृंगार काव्य के कवि ५९–११० ।

———

विषयसूची

प्रथम खंड

रीतिमुक्त रचना के कारण और स्वरूप

प्रथम अध्याय

रीतिमुक्त काव्यरचना के कारण

रीतिकालीन काव्य केवल वही काव्य नही है जिसे हम रीतिकाव्य कहते हैं, वरन् उसके अतिरिक्त इस युग मे ऐसा काव्य भी है जो बधन या परिपाटी से मुक्त होकर लिखा गया है। यहाँ हमे रीतिकाव्य सबधी कुछ बाते समझ लेना चाहिए, क्योकि उनसे ही हम रीतिमुक्त काव्य की प्रक्रिया और प्रतिक्रियाओ को सहज रूप से हृदयंगम कर सकते है। वास्तव में रीतिकाव्य कविता का एक शुद्ध कलामार्ग था। सस्कृत के आचार्यों ने काव्य-शिल्प और काव्यसौष्ठव के विवेचन के लिये जो सिद्धात और लक्षण निश्चित किए थे उनके आधार पर लक्षणो सहित अथवा लक्षणरहित जो काव्यरचना की जाती थी उसे रीतिकाव्य कहा गया। जो रीतिबद्ध काव्य है वह शास्त्र काव्य है और उसके लेखक प्राय आचार्य कवि है। परतु जिन्होने लक्षणो को दिए बिना प्रमुखतया अलकार, रस, ध्वनि, नायिकाभेद, रीति, वक्रोक्ति तथा नखशिख, षटऋतु बारहमासा आदि के वर्णन को लेकर अपना काव्य प्रस्तुत किया उन्हे हम रीतिपरपरा का काव्य कहते है। एक प्रकार से यह शास्त्रीय काव्य था और सस्कृत काव्यशास्त्र की दृष्टि मे सम्मानित होने के प्रयोजन से रीतिकाल के अनेक कवियो ने रीतिपरपरा का काव्य लिखा।

परंतु इसके अतिरिक्त इस युग मे अन्य प्रकार का अर्थात् रीतिमुक्त काव्य भी बहुत अधिक मात्रा मे लिखा गया। इस प्रकार के काव्य लिखने के अनेक कारण थे। पहला कारण तो यही था कि बहुत से कवि सस्कृत की शास्त्रीय परपरा मे बँधकर नही लिखना चाहते थे। उनके मन मे अपनी कविप्रतिभा को बाँधने के विरुद्ध एक विद्रोहभावना थी, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार की भावना योरप मे क्लासिकल या शास्त्रीय परपरा के विरोध में पनपी और जिसके परिणामस्वरूप योरप का स्वच्छदतावादी काव्य प्रकट हुआ। इसी प्रकार की भावना को लेकर अनेक कवि इस युग मे आए, जिन्होने स्वच्छंद रीति से काव्य की रचना की। प्रमुखतया ये प्रेम और शृंगार के कवि है। इन कवियो के मन मे जहाँ एक ओर शास्त्रीय काव्यपरपरा के प्रति विद्रोह था वहाँ उनके अतर्मन में सामाजिक मर्यादाओं और रूढियों के प्रति भी विद्रोह की भावना थी। अतएव इन्होने दोनो ही प्रकार की रूढियों को तोडकर—यहाँ तक कि धर्मगत बधनों की भी परवाह न करते हुए—स्वच्छद प्रेम का मार्ग ग्रहण किया और प्रेम और शृगार की मर्मस्पर्शिनी रचनाएँ प्रस्तुत की। एक प्रकार से रीतिमुक्त काव्य का नामकरण इन्ही की रचनाओ के आधार पर हुआ।

इसके अतिरिक्त रीतिकाव्य मे काव्य की अन्य धाराएँ थीं जो काव्यशास्त्रीय रीति से मुक्त थीं। प्रायः ये धाराएँ पूर्ववर्ती युग से ही चल रही थी और यह स्वाभाविक

है कि वे इस युग में भी प्रबलता के साथ प्रवाहित होती रहें। सगुण और निर्गुण उपासना की विभिन्न प्रवृत्तियों के काव्य रीतिपरिपाटी से मुक्त काव्य थे। वास्तव मे निर्गुणोपासक संत कवियो मे से बहुत कम ऐसे थे जो काव्यशास्त्रीय ज्ञान से परिचित थे। उन्होने जो कुछ भी लिखा, अपने अनुभव से लिखा। स्वच्छद शृगारी कवियो के समान ये संत कवि भी अपनी आध्यात्मिक विचारधारा तथा अपनी मान्यताओ मे रूढियो और परंपराओ के विरुद्ध थे। इन लोगो ने जो काव्य लिखा वह भी एक प्रकार से रीतिमुक्त काव्य है। सगुणोपासक राम और कृष्ण काव्य यद्यपि अपनी वर्णनशैली और विषयपरिपाटी से आबद्ध था, फिर भी काव्यशास्त्रीय रीतियो से मुक्त था।

इस युग मे लिखे गए वीर भावना और नीति सबधी काव्य के प्रसग मे भी यही बात कही जा सकती है। वीरो का समयानुकूल स्वतत्र वर्णन करना तथा नीति और अनुभव की बातें स्पष्ट करना इन कवियो का परिपाटी से मुक्त कार्य था और इनकी रचनाएँ रूढिस्वच्छद रचनाएँ थी। इतना ही नही, इस काल के साहित्य मे और भी अनेक प्रकार की शास्त्रीय और रचनात्मक काव्यविधाओ का निर्माण हुआ जिनकी कोई पुरानी परंपरा नही मिलती। इससे यह स्पष्ट होता है कि साहित्य के क्षेत्र मे यह युग सपन्नता का युग था। साहित्य केवल बँधी बँधाई रूढ़ियो मे न रहकर बहुमुखी प्रवाह प्राप्त कर सका था। कवियो और साहित्यकारो मे आबद्धता के प्रति आग्रह न होकर यथार्थ और सहज की प्रवृत्ति दिखाई देती थी। अत. इस युग मे जहाँ एक ओर रीतिबद्ध काव्य लिखा गया वही बहुसख्यक रचनाएँ विविध विषयो, विधाओ तथा शली को लेकर लिखी गई जो रीतिमुक्त थी। उपर्युक्त कारणो के अतिरिक्त रीतिमुक्त साहित्य की रचना का एक और कारण यह था कि समाज के प्रत्येक वर्ग और प्रत्येक स्तर के लोग साहित्यरचना के प्रति अनुराग रखते थे। कला का अनुराग जब इतना व्यापक रूप धारण करता है तो निश्चित ही वह पूर्णतया बँधकर नही चल सकता। इसलिये जहाँ एक ओर विदग्ध और आचार्य कवियो की परिपाटी थी, वही दूसरी ओर ऐसा काव्य लिखा गया जो आबद्धता से रहित था। इसलिये हम उस समग्र साहित्य को रीतिमुक्त साहित्य कहते है जो काव्यशास्त्रीय लक्षणो से बँधकर नही वरन् स्वतत्र रूप से रचा गया है।

यद्यपि रीतिमुक्त साहित्य स्वतत्र रूप से लिखा गया, फिर भी उसपर रीति और शृगारिक प्रवृत्तियो का प्रभाव है। कम अधिक ढाँचा रीतिकाव्यो का ही रहा, भले ही रीति के अनुसार रचना नही की गई। रीतिबद्ध कवियो का प्रमुख प्रतिपाद्य विषय शृगार था जिसे रीतिमुक्त कवियो ने भी कही कही अपनाया है। स्वच्छद कवियो ने तो प्रेम को ही अपना विषय बनाया। वीरकाव्य मे वस्तुपरिगणन की प्रणाली और अतिशयोक्तियाँ तथा ऊहात्मक वर्णन रीतिकाव्य से ही आए हैं। राम और कृष्ण काव्य तो नाममात्र का भक्तिकाव्य रह गया था।. अधिकतर कवियो ने राम और कृष्ण को नायक

मानकर शृंगारिक रचनाएँ की हैं। इस तरह रीतिमुक्त काव्य पर रीतिकालीन काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियो–रीति और शृंगार–का प्रभाव कुछ न कुछ अवश्य दिखाई पडता है।

रीतिमुक्त काव्य के विभिन्न रूप

शैलीगत--रीतिमुक्त काव्य प्रमुख रूप से मुक्तक काव्य है। बहुत थोड़े मे प्रबंध-काव्य लिखे गए है, अन्यथा सभी मुक्तक ही है। मुक्तक काव्य के लिये सबसे उपयुक्त छद कवित्त, सवैया, दोहा और छप्पय का प्रयोग हुआ है। वैसे इस काल मे प्रचलित सभी छदो का प्रयोग रीतिकालीन कवियों ने किया है। यदि शैली के आधार पर रीतिकालीन काव्य का वर्गीकरण हो तो उसे निम्नलिखित वर्गो मे रखा जा सकता है--

(१) कवित्त सवैया शैली, (२) दोहा शैली, (३) छप्पय शैली, (४) दोहा चौपाई शैली, (५) पद शैली, (६) कुडलिया शैली तथा (७) अन्य शैलियाँ।

१—**कवित्त सवैया शैली**--इस शैली का प्रयोग स्वच्छद काव्यधारा के कवियो (आलम, घनआनद, ठाकुर, द्विजदेव, रसखान, बोधा आदि), कृष्ण काव्यधारा के कवियो (ध्रुवदास, छत्रसाल, अलबेली अलि, हठी जी, कृष्णदास आदि), राम काव्यधारा के कवियो (गुरु गोविंद सिह, नाथूराम शकर, भगवतराय खीची, निहालसिह, नाथूराम चतुर्वेदी आदि), सत काव्यधारा के कवियो (रज्जब, सुदरदास, भगवानदास निरजनी आदि) तथा वीर काव्यधारा के कवियो (सूदन भूषण, जोधराज, श्रीधर आदि) ने किया है। कवित्त और सवैया रीतिकाल के बहुत ही प्रिय एव प्रचलित छद रहे है।

२--**दोहा शैली**—दोहा शैली मुक्तकारो के बीच प्रचलित थी। सूक्तियाँ या नीतिमुक्तक लिखनेवाले कवियो ने दोहे का प्रयोग अधिक किया है। वीरकाव्य मे भी कही कहीं दोहे का प्रयोग हुआ है। सत कवियो ने भी इस छद का प्रयोग किया है।

३—**छप्पय शैली**—इस शैली का प्रयोग सबसे अधिक वीरकाव्य मे हुआ है। रामकाव्य के रघुवशदीपक तथा बैताल के नीतिकाव्य मे भी इसका प्रयोग मिलता है। वैसे वीरकाव्य मे सबसे अधिक छदो का प्रयोग हुआ है।

४—**दोहा चौपाई शैली**--दोहा चौपाई शैली मे रामकाव्य और वीरकाव्य काफी मात्रा मे लिखे गए है। राम भक्तिकाव्य के रचयिताओं ने तुलसी के अनुकरण पर इस शैली का प्रयोग किया। वीरकाव्य के कवियो ने भी पूर्वपरपरा मे इसका प्रयोग देखकर ही इसे अपने काव्य मे स्थान दिया। कृष्णकाव्य की भी कुछ रचनाएँ इस शैली मे लिखी गई है। मचित कवि का कृष्णायन इसी छद मे है। सहजराम के रघुवशदीपक का भी प्रधान छद यही है।

(५) **पद शैली**--इस शैली का सबसे अधिक प्रयोग सतकाव्य में हुआ है।

रज्जब, तुरसीदास, मोहनदास, यारी, चरनदास आदि संतो ने इसी छंद का प्रयोग किया है। राम काव्यधारा और कृष्ण काव्यधारा के कवियो ने भी पद शैली मे लिखा है। रामप्रियशरण, मामा प्रयागदास रामसखे, कृपानिवास, महाराज विश्वनाथ जी आदि रामभक्त तथा ध्रुवदास, नागरीदास, चाचा हित वृंदावनदास, अलबेली अलि, कृष्णदास आदि कृष्णकवियों ने इसी शैली का उपयोग किया है।

(६) **कुंडलिया शैली**—इस शैली का प्रयोग मुख्य रूप से गिरधरदास और दीनदयाल गिरि ने किया है। इसके अतिरिक्त कही कही वीरकाव्य मे भी इसका प्रयोग मिलता है।

(७) **अन्य शैलियाँ**—रीतिकालीन वीरकाव्य मे लगभग सैकड़ों प्रकार के छंदों का प्रयोग हुआ है जिनमे ऊपर वर्णित छदो को छोड़कर तोमर, पद्धरी, अरिल्ल, हरिगीतिका, उल्लाला, अमृतध्वनि, तोटक, भुजंगप्रयात आदि प्रमुख है। सभी प्रकार की काव्यधाराओं मे सोरठा छद का कही न कही प्रयोग मिलता है। पद भी विभिन्न प्रकार और विभिन्न रागो के है।

समस्त रीतिमुक्त रीतिकालीन साहित्य की प्रधान शैलियाँ लगभग निश्चित सी है। कुछ अपवाद अवश्य है। रीतियुगीन प्रेमकाव्य कवित्त सवैया शैली मे, संतकाव्य प्रमुखत पद शैली मे (गौणत कवित्त सवैया), कृष्ण और रामकाव्य प्रमुखतः पद शैली मे (गौणत कवित्त सवैया), नीतिकाव्य दोहा और कुडलिया शैली मे एव वीरकाव्य प्रमुखत छप्पय शैली मे (गौणत कवित्त सवैया) लिखे गए। कवित्त सवैया शैली इस युग की प्रधान शैली है, इसमे कोई सदेह नहीं।

विधाएँ

विधा की दृष्टि से सर्वप्रथम रीतिकालीन रीतिमुक्त काव्य को तीन विभागो मे बाँट सकते है—(१)पद्य, (२)गद्य और (३)पद्य-गद्य-मिश्रित। फिर पद्यबद्ध कृतियों के चार वर्ग किए जा सकते है—(१) प्रबधात्मक कृतियाँ, (२) मुक्तक कृतियाँ, (३) नाममाला या कोश और (४) अनुवाद और टीकाएँ। प्रबध कृतियाँ पुन छह वर्गों मे विभाजित की जा सकती है—(१) पौराणिक प्रबधकाव्य, (२)ऐतिहासिक प्रबधकाव्य, (३) प्रेमाख्यानक प्रबधकाव्य, (४)बेलि सज्ञक प्रबंधकाव्य (५) संवादात्मक प्रबधकाव्य और (६) अन्य (दूतकाव्य, यात्राकाव्य आदि)।

(१) पौराणिक प्रबधकाव्यों मे ब्रजवासीदास का ब्रजविलास, मचित कवि का कृष्णायन, गुमान मिश्र की कृष्णचद्रिका, गुरु गोविंदसिंह का कृष्णावतार, सहजराम का प्रह्लादचरित्र, गुरु गोविदसिह का गोविदरामायण, नवलसिह का रामचंद्रविलास प्रियाशरण का सीतायन आदि ग्रंथ आते हैं। (२) ऐतिहासिक प्रबधकाव्यों के अंतर्गत रासो काव्य, लाल कवि का छत्रप्रकाश, सूदन का सुजानचरित, ग्वाल और चंद्रशेखर का

हम्मीरहठ, जगन्नाथकृत गुरुचरित्र, सरूपचंद भल्ला का महिमाप्रकाश आदि कृतियाँ आती हैं। (३) प्रेमाख्यानक प्रबंधकाव्य के अंतर्गत आलमकृत माधवानल कामकंदला, चतुर्भुजदासकृत मधुमालती, नूरमुहम्मदकृत इंद्रावती आदि कृतियाँ आती हैं। (४) बेलि संज्ञक प्रबंधकाव्यों में ललित सखि की कुँवरिबेलि, व्रजनिधि की दुखहरणबेलि, सुखदेव मिश्र की शृंगारलता आदि रचनाएँ रखी जा सकती है। (५) संवादात्मक प्रबंधकाव्यों मे अखैराम कवि कृत अखैसार, जसवंतसिंहकृत पूली जसवंत संवाद, रामहरिकृत संत हंसी, गोपाल कवि कृत दंपति-वाक्य-विलास आदि ग्रंथ आते हैं। (६) अन्य प्रबंधकाव्यों के अंतर्गत विनयप्रभ का विद्याविलास, गिरिधरदासकृत गयायात्रा, नागरीदासकृत तीर्थानंद, प्रियादास कृत रसिक मोहिनी, पुरुषोत्तमकृत हनुदूत, कनकविलासकृत प्रदेशी संधि आदि रचनाएँ आती हैं।

प्रबंधकाव्य

रीति या शृंगारकाल में लिखे गए प्रेम अथवा शृंगारपरक प्रबंधकाव्य मुख्यतः तीन रूपों में उपलब्ध है—१. प्रेमकथाएँ, २ रास और ३ चरित्र।

प्रेमकथाएँ

रीतिकाल में लिखी गई प्रेमकथाएँ दो प्रकार की हैं—एक तो धार्मिक अथवा आध्यात्मिक उद्देश्य से लिखी गई प्रेमकथाएँ जिन्हे सूफी प्रेमाख्यान कहा गया है, दूसरी वे जिनके पीछे किसी धार्मिक मंतव्य का अभाव है। वे शुद्ध प्रेमाख्यान है जिन्हें भारतीय प्रेमाख्यान कहा गया है। इन शुद्ध अथवा भारतीय प्रेमाख्यानों की रचना रीतिकाल के पहले भी हिंदी साहित्य मे हो रही थी। सूफी प्रेमाख्यान, जो रीतिकाल मे लिखे गए, उनकी नामावली इस प्रकार है—१ तमीम अंसारी की कथा (सं० १७०२), २ कथा कलंदर की (स० १७०२), ३ कथा निरमल की (स० १७०४) ४ कथा छविसागर (स० १७०६), ५. वियोगसागर (सं० १७१३), ६ नलदमयन्ती (स० १७१६), ७ कथा सुभटराम की (सं० १७२०), ८. पथनामा लुकमान का (स० १७२१), ९. जफरनामा नौसेरखाँ (सं० १७२१)। ये नवो रचनाएँ जान कविकृत है। १० पेमी कविकृत पेमपरकाश, ११. हुसैन अली कृत पुहुपावती, १२. कासिमशाहकृत हंसजवाहिर (स० १७९३), १३. नूर मुहम्मद कृत इद्रावती (स० १८०१), १४ अनुरागबाँसुरी (स० १८२१) तथा १५. नलदमन, १६. शेख निसार कृत यूसुफ जुलेखा (सं० १८४७)। इन सूफी प्रेमाख्यानों की परंपरा, प्रवृत्ति, विशेषताओं आदि पर एक भिन्न अध्याय मे विस्तारपूर्वक विचार किया गया है।

भारतीय प्रेमाख्यान या शुद्ध प्रेमाख्यान भी—जिनकी रचना हिंदू कवियो द्वारा हुई है—पर्याप्त मात्रा मे लिखे गए। इनकी संख्या सूफी प्रेमाख्यानों की अपेक्षा अधिक है तथा इनका सक्षिप्त विवरण इस प्रकार है —

(१) **रुक्मिणीमंगल** (स० १७००)—इसके कर्ता मिहिरचद कहे गए है। किंतु यह कृति अप्राप्य है।

सं० १७०४ में लिखे गए बुद्धिरासो (जल्ह कवि कृत) का विवरण यहाँ नहीं दे रहे हैं, रास काव्यों के संदर्भ में देंगे।

(२) **उषाहरण** (सं० १७०५)—महाराज हरीसिंह कृत।

(३) **प्रेमप्रगास** (सं० १७१३)—धरणीदास कृत।

(४) **नलदमन** (सं० १७१४)—लखनऊ निवासी कवि सूरदासकृत यह रचना महाभारत के नलोपाख्यान को लेकर लिखी गई है। इसकी कथा मे कवि ने महाभारत की कथा से यथेच्छ भिन्नता उत्पन्न कर दी है। दोहा चौपाई छंदों में लिखित इस काव्य की भाषा परिमार्जित पूरबी अवधी है। इस रचना पर पर्याप्त सूफी प्रभाव लक्षित होता है।

(५) **माधवानल नाटक** (सं० १७१७)—राजकवि केसि द्वारा माधव और कामकंदला के प्रसिद्ध आख्यान पर आधारित यह रचना कहने को तो नाटक है किंतु इसमें नाटकीय तत्वों का अभाव है। यह दोहा चौपाई छदो में लिखा गया एक वर्णनात्मक काव्य है। इसकी भाषा अवधी है तथा यह एक साधारण कोटि की रचना है।

(६) **मृगावती की कथा** (सं० १७२३)—इस ग्रंथ में दोहा चौपाई छंदों में मृगावती और इद्रजीत की प्रेमकहानी कही गई है। इसके रचनाकार मेघराज प्रधान हैं।

(७) **पुहुपावती** (स० १७३६)—दुखहरनदासकृत इस रचना में वैरागर के राजकुमार और अनूपगढ के राजा अंबरसेन की पुत्री पुहुपावती की प्रेमकथा वर्णित हुई है। यह एक काल्पनिक प्रेमाख्यान है जो २० खडो मे विभक्त है। दोहा चौपाइयों के साथ साथ इसमे बीच बीच मे कुंडलिया, अरिल्ल और कवित छदो का भी प्रयोग हुआ है। इसकी भाषा ठेठ अवधी है। इस रचना पर सूफी रहस्यभावना का प्रभाव स्पष्ट है। किंतु इस कृति मे इसके प्रणेता ने विशद एव सामजस्यपूर्ण धार्मिक दृष्टिकोण का परिचय दिया है।

(८) **माधवानल कथा** (स० १७३७)—दामोदरकृत इस कथा मे पुष्पावती नगरी के रूपवान् ब्राह्मण माधवानल तथा कामावती नगरी की कुशल नर्तकी कामकंदला की प्रेमकहानी वर्णित हुई है। माधव और कामकंदला को परंपराप्राप्त एव लोकविश्रुत कथा को आधार बनाकर इस प्रबध का प्रणयन किया गया है। कथा मे इसके रचयिता ने यत्किंचित् परिवर्तन भी कर दिया है। इसमे राजा गोविदचद्र की साम्राज्ञी रुद्र महादेवी को माधव पर आसक्त दिखाया गया है किंतु जब वह माधव को अपनी ओर आकर्षित नहीं कर पाती तो क्रुद्ध होकर छलपूर्वक राजा के आदेश से वह माधव को देशनिकाला दिला देती है। इसकी भाषा राजस्थानी है तथा दोहा छंदो मे इसका प्रणयन हुआ है। इसमे कथा का प्रवाह अच्छा है तथा बीच बीच मे नैतिक उपदेश भी विन्यस्त किए गए हैं।

(९) **चंद्रकुँवर री बात** (स० १७४०)—हंस कवि कृत इस वार्ता मे अमरापुरी के राजा अमरसेन के पुत्र चद्रकुँवर और तवापुरी की एक मदनविमोहिता सेठानी के प्रेम का वर्णन है जिसका पति बहुत दिनो के लिये परदेश चला गया है। इस रचना में उल्लेखनीय बाते ये है कि इसमें परकीयाप्रेम का चित्रण है जिसका धरातल पूर्णतः

वासनात्मक अथवा ऐंद्रिय है, दूसरे इसमे प्रणय, मिलन, भोग आदि संबधी सारे प्रयत्न स्त्री की ओर से दिखाए गए है, पुरुष की ओर से लेशमात्र प्रयत्न भी लक्षित नही होता। सेठानी अपनी कामवेदना के शमन के लिये सखी से किसी भी युवक को ले आने को कहती है और उसकी सखी चतुष्पथ से पथभ्रष्ट चद्रकुँवर को ले आती है जो एक वर्ष तक सेठानी के साथ रहता है और बाद में अपने पिता का सदेश पाकर लौट जाता है। इसके अनतर सेठानी के विरह का भी सक्षिप्त वर्णन मिलता है। एक श्रेष्ठीवधू के अनुचित प्रेमसबंध अथवा उपपति प्रेम को लेकर लिखी गई इस कहानी का उद्देश्य, हो सकता है, यह दिखाना रहा हो कि बहुत दिनो के लिये विदेश जानेवाले व्यक्ति की गृहस्थी पर इसका प्रभाव अनीप्सित ही होता है। यह ग्रथ राजस्थानी भाषा मे दोहा चौपाई छदो मे लिखा गया है, इसमे सोरठे, चोहटे, देशी और दूहा छदो का प्रयोग भी मिलता है तथा पद्य के बीच बीच मे गद्य वार्ता भी मिलती है।

(१०) **नलराजा की कथा** (सं० १७४२)—भगवानदास कृत।

(११) **उषाचरित्र** (सं० १७६४)—जनकिशोरकृत इस प्रबध की भाषा राजस्थानी मिश्रित ब्रज है तथा इसमे दोहा, चौपाई, सवैया, अरिल्ल आदि छदो का प्रयोग मिलता है।

(१२) **मोहमरद राजा की कथा** (सं० १७६६)—जगन्नाथ कवि कृत।

(१३) **ढोला मारू** (स० १७७२)—पूरन कृत।

(१४) **उषा अनिरुद्ध** (स० १७६७)—भारथशाह कृत उषा अनिरुद्ध के प्रेम की यह कथा काव्य की दृष्टि से उत्कृष्ट एव शैली की दृष्टि से सशक्त कही गई है।

(१५) **नलचरित्र** (स० १७६८)—कुँवर मुकुंद सिंह द्वारा लिखा गया है। इसकी कथा महाभारत के ही अनुसार है किंतु लौकिक और अलौकिक प्रेम के अतर को स्पष्ट करते हुए कवि ने नल दमयती की कथा को उदाहरण रूप म प्रस्तुत किया है। सीता-वियोग के समय नल और दमयती की कथा राम को नारद ने सुनाई है। इस काव्य मे एक ओर जहाँ कृष्ण की माधुर्य भाव की भक्ति का प्रभाव लक्षित होता है वहीं सूफियो का भी। इसमे दमयती के सौदर्य का वर्णन करते हुए उसे ब्रह्मस्वरूप तथा वेद, पुराण एव स्मृतियो का साकार रूप बताया गया है। शृगार के संयोग वियोग दोनो पक्षो का इसमे सुदर चित्रण है। इसकी भाषा अवधी है तथा दोहा चौपाइयो मे यह ग्रथ लिखा गया है।

(१६) **राजा चित्रमुकुट की कथा** (स० १८०७)—किसी अज्ञात कवि द्वारा लिखी इस रचना का उल्लेख मात्र मिलता है।

(१७) **विरहवारीश** (सं० १८०६–१५)—बोधा कवि द्वारा रचित इस ग्रथ मे माधवानल कामकदला की प्रसिद्ध कथा बहुत ही भावाविष्ट एव मार्मिक शैली में कही गई है। इसे रीतिकाल का उत्कृष्टतम प्रेमाख्यान कहा जा सकता है। भाव, भाषा, शैली सभी दृष्टियो से इस कृति को साहित्यिक उत्कर्ष प्राप्त है। यह कहानी विरही और

बाला के संवाद रूप में पौराणिक शैली में लिखी गई है तथा माधव, लीलावती आदि पात्रो के पूर्वजन्मो का भी विवरण देकर जन्मांतरवाद में कवि ने अपना विश्वास भी व्यक्त किया है। कथा के विस्तार मे सयोग वियोग की नाना दशाओ का मार्मिक चित्रण करते हुए ग्रंथ को यथेच्छ विस्तार दिया है। इसकी भाषा अवधी है किंतु अरबी फारसी शब्दावली का इसमे प्रचुर मेल है। छद भी इसमे दोहा चौपाई के साथ अन्य अनेक है। कवित्त, सवैया, कुडलिया छप्पय, पद्धरी, तोटक, दंडक, हरिगीतिका, भुजगप्रयात, मोतीदाम आदि लगभग ५० प्रकार के छदो का इसमे प्रयोग मिलता है।

(१८) **माधवानल कामकंदला** (स० १८१२)—हरनारायणकृत।

(१९) **नलोपाख्यान** (स० १८१४)—मुरलीधरकृत।

(२०) **उषाचरित्र** (स० १८३१)—यह प्रबध जनकुज या कुजदास नामक कवि का लिखा हुआ है। ग्रथ मे कवि का नाम कुजदास और कुजमणि भी मिलता है। मिश्र बधुओ ने इनका नाम कुजकुँवर भी लिखा है और इन्हें ओरछा का बताया है तथा शिवसिंह सेंगर और ग्रियर्सन ने इन्हे जयपुर का गौड ब्राह्मण माना है तथा इनका नाम कुंजगोपी लिखा है। इस प्रकार इनके नाम के सबध में मतभेद है। इनका असली नाम कुजदास प्रतीत होता है। उषाचरित्र मे कुजदास ने श्रीमद्भागवत मे प्राप्त कथा से थोड़ा सा परिवर्तन कर दिया है। इनकी कृति मे न केवल उषा ही अनिरुद्ध का स्वप्न देखती है वरन् अनिरुद्ध भी उषा का स्वप्न देखते है। इस परिवर्तन मे कथा मे अधिक स्वाभाविकता आ गई है। अनिरुद्ध भी स्वप्न मे उषा का दर्शन कर कामज्वर से पीडित होता है। उसके उपचार के बहाने उषा की सखी वैद्य के छद्मवेष मे उसके पास आती है, उसे उषा का समाचार सुनाती है और उसे उषा के पास ले भी जाती है। उषा अनिरुद्ध का प्रणय कृष्ण और बाणासुर के बीच विकट युद्ध का कारण होता है। कृष्ण के पक्ष की विजय होती है तथा उषा अनिरुद्ध का विवाह हो जाता है। शृगार एव वीर रसो का इस प्रबंध कृति मे अच्छा परिपाक है। ग्रंथ बारह खड़ी मे लिखा जाने से वृत्यनुप्रास के विशिष्ट सौदर्य से मडित है। रचना की भाषा अवधी है।

(२१) **मधुमालती** (सं० १८३७)—रचयिता चतुर्भुजदास कायस्थ। इस रचना मे लीलावती नगरी के राजा चद्रसेन की पुत्री मालती और उसके मत्री के पुत्र मधुकर की प्रेमकहानी वर्णित हुई है। इस ग्रंथ मे संभवत इसकी रोचकता की वृद्धि के लिये पंचतत्र की कहानियो की तरह पशुपक्षियो से सबधित पाँच अतर्कथाएँ जोड़ दी गई हैं। ये छोटी छोटी अंतर्कथाएँ मूल कथानक के साथ अविभाज्य रूप से गुफित कर दी गई हैं। मूल कथा इन्ही के सहारे आगे बढ़ती है। प्रेमाख्यान होते हुए भी उपदेशो की भरमार के कारण यह काव्य नीतिग्रंथ जैसा हो गया है। इतिवृत्ति की प्रधानता के कारण ग्रथ में चरित्रचित्रण और रसपरिपाक का सौष्ठव दुर्लभ हो गया है। रचना मे शृगार की अपेक्षा नीति और दार्शनिकता ही अधिक उभरी हुई मिलेगी। सौदर्य तथा संयोग वियोग

के हृदयग्राही वर्णनों का अभाव है। इस कृति मे प्रिय की प्राप्ति के लिये स्त्री पक्ष की ओर से प्रयत्न की प्रधानता तथा आश्चर्य तत्व का समावेश, ये दो बाते विशेष रूप से उल्लेख्य है। ग्रथ की भाषा अवधी है तथा नीतिकथन के अवसर पर सस्कृत के श्लोको का भी प्रयोग हुआ है। दोहा चौपाई के साथ सोरठा, कुडलिया, कवित्त आदि का प्रयोग भी मिलता है।

(२२) **नल-दमयंती चरित्र**--(स० १८५३ से पूर्व) सेवाराम कवि ने परपरा-प्राप्त कथानक से प्रस्तुत प्रेमकथा मे पर्याप्त परिवर्तन कर दिया है। इसमे गणेशमहिमा का विशद प्रतिपादन हुआ है तथा नीतिविषयक सूक्तियाँ, सती का तेज और पतिपरायणता आदि के उदाहरण विशेष रूप से द्रष्टव्य है। सूफियो के प्रेम का प्रभाव भी इसमे लक्षित होता है। प्रेम का चित्रण तो इस रचना मे प्रधान है ही किन्तु वीर, शात और करुण रस भी उभरकर आए हैं। इसकी भाषा अवधी है तथा दोहा, चौपाई छदो मे इसका प्रणयन हुआ है।

(२३) **कामरूप चंद्रकला की प्रेमकहानी** (स०१८५३)-प्रेमचद कृत (अप्राप्य)।

(२४) **उषा अनिरुद्ध का ब्याह** (स० १८५९)--रामचरणकृत यह कृति आल्हा छद मे लिखी गई है तथा इसका वर्ण्य ग्रथ के नाम से ही स्पष्ट हो जाता है। इसकी कथा सर्गो मे विभक्त न होकर धारावाहिक रूप मे लिखी गई है। रचनाकार माडा (जिला लखनऊ) का निवासी था।

(२५) **उषाचरित्र** (स० १८८३ से पूर्व)--मुरलीदासकृत उषाचरित्र एक छोटा सा वर्णनात्मक काव्य है जिसकी कथा भागवत के ही आधार पर है। परिवर्तन मात्र इतना है कि यौवनागम पर उषा कामज्वर से पीडित रहा करती थी। एक दिन वह उमा के मदिर मे पूजा के लिये गई, उमा ने प्रसन्न होकर वर माँगने को कहा। उषा ने कहा 'जिस प्रकार आपको सुदर पति मिला है, उसी प्रकार हमे भी प्राप्त हो।' उमा ने उसकी यह प्रार्थना स्वीकार कर ली। इस रचना का लक्ष्य भागवत की कथा को भाषा मे पद्यबद्ध मात्र करना जान पड़ता है। भाषा अवधी तथा छद दोहा चौपाई मे यह कृति लिखी गई है।

(२६) **उषाहरण** (स० १८८६)--जीवनलाल नागर कृत उषाहरण की कथा मे श्रीमद्भागवत की कथा से कई स्थानो पर भिन्नता है। सभवत रोचकता और मौलिकता आदि के विधान के लिये कवि ने नई नई घटनाओं का समावेश कर दिया है। कवि ने उषा को पार्वती की पुत्री बताया है तथा पार्वती के वरदान से ही उषा को स्वप्न मे अनिरुद्ध का दर्शन होता है। इस प्रकार ग्रथ मे कौतूहल या विस्मय सरसता, स्वाभाविकता आदि अनेक प्रबधोपयोगी उपकरण विन्यस्त हो गए है। इसकी भाषा जहाँ तहाँ ब्रज का पुट लिए हुए अवधी है तथा दोहा चौपाई के साथ साथ सवैया, मारसी, पद्धरिका आदि अनेक अन्य छदो का भी व्यवहार हुआ है।

(२७) **उषा की कथा** (सं० १८६४)—कविवर रामदास कृत उषा की प्रेम-कथा कवि की कृष्णभक्ति का प्रकाशन करती है। इसमें भगवान् कृष्ण की महत्ता का विशेष रूप से प्रतिपादन किया गया है तथा कुछ छोटे छोटे पौराणिक आख्यानों को जोड़कर इस कथा मे अलौकिकता तथा धार्मिकता का पुट देने की चेष्टा की गई है। लोक-मर्यादा का ध्यान रखकर कवि ने पार्वती के वरदान की कल्पना भी की है जिसके परिणामस्वरूप उषा अनिरुद्ध का गाधर्व विवाह सपन्न होता है। प्रणय तथा शृगार-वर्णना मे कवि की परिमार्जित रुचि का परिचय मिलता है।

(२८) **पद्मावत** (सं० १८६५)—नत्थासिंह कृत (अप्राप्य)।

कुछ प्रेमकथाएँ ऐसी भी है जिनके रचनाकाल के विषय मे कुछ नही कहा जा सकता। इनका रचनाकाल अज्ञात होने से इन्हे प्रेम प्रबधो के ऐतिहासिक क्रम मे यथा-स्थान रखना कठिन है—

१ **उषाचरित्र** (सं० १८१३ से पूर्व)—परशुरामकृत इस ग्रथ का रचनाकाल अज्ञात है। इस ग्रथ मे उषा की कथा विविध छदो मे धारावाहिक रूप से कही गई है। वह अध्यायो मे विभक्त नही है।

२. **उषाहरण** (सं० १८४७ से पूर्व)—देवीदास (सभवत देवीदास बुदेल-खडी) का विद्वानों ने सं० १७४२ मे विद्यमान होना स्वीकार किया है। इस ग्रथ मे उषा अनिरुद्ध की परपरागत प्रेमकथा विविध रागो मे वर्णित हुई है। ग्रथारभ मे स्तुति एव अत मे फलश्रुति दी हुई है।

३ **उषा-अनिरुद्ध-विवाह** (सं० १८०२ से पूर्व)—गोपाल कवि की लिखी यह कथा केवल दो अध्यायो मे विभक्त है जिसमे विविध प्रकार के छदा का प्रयोग मिलता है। व्यवहृत छदो की सख्या २०० से अधिक है। सं० १६५० के आस पास इनका विद्यमान होना कहा गया है।

४. **उषाचरित्र**—रामदासकृत इस रचना का लिपिकाल सं० १८८६ है। रचनाकार सं० १८०० के आसपास विद्यमान था। उपलब्ध ग्रथ खडित अवस्था मे है। कथा दोहा चौपाई छदो मे लिखी गई है।

५. **उषाकथा**—लालदासकृत इस रचना का लिपिकाल सं० १८९६ है।

६. **उषालीला**—सुंदरलालकृत इस ग्रंथ का लिपिकाल सं० १९४४ है। कथा विविध छदो मे लिखी गई है किंतु सर्गबद्ध नही है।

७ **उषाहरण**—प्रेमानदकृत। लिपिकाल सं० १९०३।

८. **उषाचरित्र**—पहार कवि की इस रचना का लिपिकाल सं० १९१८ है। इनकी कथा रामदास की कथा के ही आधार पर लिखी गई है। उसमे दोहा, सोरठा, चौपाई के अतिरिक्त गीतिका, पद्मावती, मरहठा और त्रिभगी छदो का प्रयोग हुआ है। कथा १७ अध्यायों मे विभक्त है।

९. **मधुमालती**—रचयिता निगम कायस्थ।

१०. **त्रियाविनोद**—मुरली कवि कृत।

११. **कामरूपकथा**—हरिसेवक मिश्र कृत यह रचना १८ सर्गों मे विभक्त है तथा केशव की रामचंद्रिका के आदर्श पर यह विविध छंदों मे लिखी गई है। छदांतर शैली होते हुए भी कथा का प्रवाह बना हुआ है तथा प्रबंध के बीच बीच मे ऋतु, वन, वृक्ष, जतुओ, वन्य शोभा आदि का सुदर प्राकृतिक दृश्य अंकित किया गया है। रचना की भाषा ब्रज है जिसपर बुंदेलखडी का प्रभाव स्पष्ट है। शैली और काव्यत्व की दृष्टि से यह एक उत्कृष्ट कृति है। इसका रचनाकाल डा० हरिकात श्रीवास्तव ने स० १९०५ दिया है।

१२. **लैला मजनूँ की कथा**—सेवाराम कवि का लिखा ६०० पक्तियों का यह एक लघुकाव्य है। इसमे उर्दू और हिंदी भाषा का मिश्रित रूप मिलता है।

१३. **बात सायणी चारणी री**—यह रचना प्राचीन राजस्थानी साहित्य की एक टूटी हुई कड़ी है जिसका अंत दुखात है। यह रचना राजस्थानी गद्य मे लिखी गई है तथा आश्चर्य के तत्वो से ओतप्रोत है। रचयिता अज्ञात।

१४. **राजा चंद्रमुकुट और रानी चंद्रकिरण की कथा**—अवधी भाषा तथा दोहा चौपाई छदो मे लिखी गई इस प्रेमकथा के रचयिता का नाम अज्ञात है। प्रेम के साथ साथ सती के प्रताप की महिमा भी इस ग्रंथ मे देखी जा सकती है।

१५. **रमणशाह छबीली भठियारी की कथा**—इसके रचयिता और लिपिकार का नाम ज्ञात नही। रचना किसी हिंदू कवि की जान पड़ती है। वर्ण्य की दृष्टि से इसकी प्रेमकथा अन्य प्रेमकथाओ से कुछ भिन्न है। यह भिन्नता दो बातों मे है। एक तो यह कि इसमें दो प्रेमकथाएँ समानांतर चलती हैं, दूसरे यह कि इसमे नायक मुसलमान है जिसका प्रेम एक हिंदू राजकुमारी से हो जाता है। दोनों का विवाह हिंदू रीति के अनुसार कराया गया है। यह रचना गद्य पद्य की मिश्रित शैली मे मिलती है। इसकी भाषा मे खड़ीबोली और ब्रजभाषा का मिश्रित रूप पाया जाता है। गद्य वार्ता मे फारसी शब्दो का प्रचुर प्रयोग हुआ है।

जिस प्रकार प्रेमकथाओ की रचना हिंदी साहित्य के रीति अथवा शृंगारकाल से पूर्व भी होती रही थी उसी प्रकार सं० १९०० के बाद भी इसी परंपरा की प्रेमकथाएँ लिखी जाती रहीं।[१]

---

१. उदाहरण के लिये कुछ का उल्लेख इस प्रकार है :—

(१) रुक्मिणीमंगल (सं० १९०६)—रचयिता रामलाल। (२) मृगावती (स० १९०६)—रचयिता मेघराज प्रधान। (३) रुक्मिणीपरिणय (स० १९०७)—

रास

कुछ विद्वानो की मान्यता है कि वीर-रस-प्रधान काव्य 'रासो' कहे जाते हैं तथा वीर रसेतर काव्य 'रास', किंतु यह सत्य नही है। ऐसे प्रमाण मिलते हैं जिनके आधार पर कहा जा सकता है कि रास, रासो और रासक शब्द एकार्थवाची हैं, इनमें कोई भेद नहीं है। रास से रासक शब्द का बनना और उससे रासअ, रासउ, रासो आदि रूपो का प्रचलन होना नितात सभव है इसलिये रास, रासो, रासक नामधारी ग्रंथो को एक मानकर रास साहित्य का विवेचन करना अनुपयुक्त न होगा। इन ग्रथो को रासु, रासउ, रासहं, रासह, रासलउ, रसायरग आदि भी कहा गया है। ऐसे प्रमाण भी अनेक मिलते है जिनसे सिद्ध होता है कि एक ही रचना को रास अथवा रासक कहने की प्रथा प्राचीन काल में थी। हिंदी साहित्य के आरभ काल मे ही हमे दो 'रासो' ग्रथ मिलते है—पृथ्वीराज रासो और बीसलदेव रासो। यद्यपि कुछ विद्वानो ने इन ग्रथो के वर्तमान रूप के कारण इन्हे १६वी, १७वीं शताब्दियों की रचना माना है, तथापि इनका मूल रूप १३वी, १४वी शताब्दी के बाद का न होना चाहिए। इन दोनों ग्रथो मे नाम की एकरूपता होते हुए भी किसी प्रकार की समानता नही है—आकार, छद, गीतात्मकता, विषय, कथावस्तु, रस आदि किसी भी दृष्टि से विचार करे तो दोनो को एक ही परपरा की रचना कहना कठिन है। इसलिये इन्ही दो ग्रथो के आधार पर रासो काव्यो की सामान्य विशेषताओं का निर्वचन सभव नही। यह रासो परपरा सयोग और सौभाग्य से हिंदी रासो प्रबधो के पूर्व अपभ्रंश और गुर्जर साहित्य मे भी मिलती है। इसलिये इस परपरा के सबंध मे किसी निश्चित धारणा की स्थापना के लिये अपभ्रश और गुर्जर के रासो अथवा रास साहित्य पर दृष्टिपात करना लाभप्रद हो सकता है।

अपभ्रश मे केवल दो साहित्यिक रासो अभी तक मिले है—मुंजरास और सदेश-रासक। मुजरास की कोई प्रति अभी तक नही मिली है, केवल उसका संक्षिप्त उल्लेख अथवा उद्धरण हेमचद्र के प्रसिद्ध व्याकरण 'सिद्धहेम' और मेरुतुग के 'प्रबधचितामणि'

रचयिता रीवाँनरेश महाराज रघुराज सिह, इस रचना मे श्री मद्भागवत से अनेकाश मे कथागत भिन्नता के साथ साथ सुदर काव्योत्कर्ष और रसात्मकता के भी दर्शन होते हैं। इसकी भाषा ब्रज है तथा इसमे दोहा चौपाई के साथ साथ सवैया, घनाक्षरी आदि छदो का भी प्रयोग मिलता है। (४) नलदमयती की कथा (स० १९११)—रचयिता अज्ञात, भाषा प्राजल अवधी तथा छद दोहा, चौपाई, सोरठा, सवैया, आदि। (५) प्रेमपयोनिधि (स० १९१२)—रचयिता मृगेंद्र, इसमे राजकुमार जगतप्रभाकर और कनकपुरी की राजकुमारी शशिप्रभा का प्रेमाख्यान आश्चर्यजनक तत्वो एवं लोकोत्तर घटनाओं के बीच वर्णित हुआ है, इसकी भाषा ब्रज है एव इसमें दोहा चौपाई तथा कवित्त सवैया छंदों का व्यवहार हुआ है। इस रचना को हिंदू प्रेमाख्यानको की शृंखला की अंतिम कड़ी कहा गया है।

में मिलता है। 'मुंजरास' का समय सं० १०५४ और ११९७ के बीच तथा 'संदेशरासक' का रचनाकाल सं० १२०७ माना गया है। दोनो में कथा, विषय, छंदयोजना आदि दृष्टियों से पर्याप्त अंतर है। अपभ्रंश मे केवल एक रासो ग्रंथ और मिलता है—जिनदत्त सूरि का 'उपदेशरसायन रास' (रचनाकाल स० १२९५ से पूर्व), किंतु यह धार्मिक परपरा की रचना है जिसमें कोई कथात्मकता नही है। एक ही छद है—चतुष्पदी जिनकी संख्या कुल ८० है। इसमे जैन धर्म का प्रतिपादन हुआ है। अपभ्रंश के इन तीन रासो ग्रथो से भी रासो परंपरा की मुख्य प्रवृत्तियाँ अनावृत नही हो पाती।

गुर्जर साहित्य में रासो ग्रंथ उसके आविर्भाव काल से ही मिलते है तथा यह परपरा सं० १७०० तक अटूट चलती रही। इस परपरा की सभी रचनाएँ जैन कवियो की है और जैन धर्म को लक्ष्य करके प्रस्तुत की गई है। आकार की दृष्टि से ये रचनाएँ प्राय छोटी हैं। 'भरतेश्वर बाहुबलि रास' तथा 'बुद्धिरास' प्राचीनतम ग्रंथ हैं जिनके रचयिता शालिभद्र सूरि (सं० १२४१ मे विद्यमान) थे। इस परपरा के प्राय. सभी रासो ग्रथो मे धार्मिक कथा और धार्मिक उपदेश ही कवियो का प्रतिपाद्य रहा है। इस प्रकार गुर्जर साहित्य की रास परंपरा भी हिंदी के रास अथवा रासो काव्यो की समस्या को सुलझाने मे सहायक नही हो पाती।

हिंदी के किसी भी प्राचीन रीतिग्रंथ मे रासो के लक्षण नही दिए गए है। अपभ्रंश के रीतिग्रथो मे अवश्य 'रासो प्रबध' के लक्षण मिलते है—

(१) विरहांककृत 'जातिसमुच्चय' मे कहा गया है कि जिसमे बहुत से अडिल्ला, दोहा, मात्रा, रड्डा और ढोसा छद पाए जाते है, वह रचना रासो कहलाती है—

> अडिलाहि दुवहएहि व मत्ता रड्डहि तहअ ढोसाहि।
> बहुएहि जो रज्जइ सो भण्णइ रासओ णाम।

(२) स्वयंभूकृत 'स्वयभूछदस्' मे कहा गया है कि अपने घत्ता छड्डणिया, पद्धडिया तथा अन्य रूपको (वृत्तो) के कारण 'रासाबध' जन-मन-अभिराम होता है—

इन लक्षणो से सिर्फ यही स्पष्ट होता है कि रासो रचना मे एक से अधिक प्रकार के छद होते हैं या होने चाहिए किंतु ये छद कौन कौन से हो, इसमे मतैक्य नही है। इस प्रकार अपभ्रंश के रीतिग्रथों मे भी रासकृतियो के स्वरूपनिरूपण मे कोई सहायता नही मिलती।

विविध प्रकार के रास रासावलय रासा और रासक छदो, रासक और नाटय रासक उपनाटको तथा रासक, रास और रासो नाम के नृत्यो और नृत्तो मे भी रासो प्रबध परंपरा का कोई निकट का सपर्क रहा है, इस सबध मे निश्चित रूप से कुछ नही कहा जा सकता। डा० माताप्रसाद गुप्त का मत है कि प्राप्त रासो ग्रथो से तो यही लगता है कि ऐसा कोई सबंध नहीं रहा है और इसीलिये इस विषय पर अधिक खोज की आवश्यकता

है। डा० गुप्त ने अपने 'रासो-साहित्य-विमर्श' में 'रास' अथवा 'रासो' काव्यों की दो भिन्न परपराओ का होना स्वीकार किया है। उनका कहना है कि 'रास' तथा 'रासो' नामो से अभिहित अपभ्रश और गुर्जर हिंदी के एक अति लोकप्रिय काव्यरूप के संबंध मे, उसके मूलभूत तत्वो और उपकरणो के सबंध मे हिंदी साहित्य के अध्येताओ के सामने एक बहुत बडी उलझन है जिसका मुख्य कारण यह है कि इन नामो से अभिहित रचनाओं का सम्यक् विश्लेषण करके कोई परिणाम निकालने के स्थान पर अधिकतर आलोचकों ने किया यह है कि अपनी किन्ही पूर्वकल्पित धारणाओ को इस काव्यरूप की दो चार कृतियों की सहायता से किसी न किसी प्रकार प्रमाणित करने का प्रयास मात्र किया है और जिन रचनाओं मे उनकी उक्त स्थापनाओ के विरुद्ध कोई तत्व मिले है, उन्हे परपरा की विकृति अथवा उसका अपवाद मान लिया है।[१] डा० गुप्त ने 'रास और रासो' ग्रथो का वस्तुगत विश्लेषण करके कुछ उपयोगी निष्कर्ष प्रस्तुत किए है। उनके मत का सार इस प्रकार है—

(१) हमारे साहित्य मे रासो की दो अलग अलग परपराएँ अपभ्रंश काल से ही मिलने लगती है—

(क) नृत्यगीतपरक रासो परपरा तथा (ख) छंदवैविध्यपरक रासो परंपरा।

(२) पहली नृत्यगीतपरक रासो परंपरा मे प्रधान रूप मे जैन धर्म संबंधी ग्रंथ ही मिलते है। उनमे जैन महात्माओ, सघाधीशो और तीर्थोद्धारकों के चरित्रो का गायन तथा जैन धर्म का उपदेश ही मुख्य रूप से मिलता है। 'बीसलदेव रास' जैसी कृतियाँ इस परपरा मे अपवाद रूप मे ही मिलती है। दूसरी परपरा छदवैविध्यपरक रासो ग्रथो की रही है जिनमें जैन धर्मेतर विषयो का समावेश हुआ है। इस दूसरी परपरा मे अपवाद रूप मे भी जैन धर्म सबधी बाते नही मिलती। इस परंपरा के काव्यकर्ताओ का ध्यान कवित्व और विविध छंदो के प्रयोग पर ही विशेष रहा है।

(३) इन दोनो परंपराओ के उद्भव के भी दो स्रोत दृष्टिगोचर होते है। रासक एक प्राचीन भारतीय नृत्य है। शारदातनय (स० १२२५–१३००) ने अपनी प्रसिद्ध कृति 'भावप्रकाशन' मे लास्य के ४ भेद बताए है—१. शृंखला, २. लता, ३. पिंडी और ४. भेद्यक। उन्होंने लता के तीन भेद किए है—(१) दड रासक, (२) मडल रासक और (३) नाट्य रासक। इसके साथ साथ शारदातनय ने नाट्यरासक (जो उपरूपक का एक भेद है) में रागो के साथ इन लता, पिंडी तथा भेद्यक नृत्यो का प्रयोग भी बताया है। इससे स्पष्ट है कि नाट्य रासक एक प्रकार का गीतिनाट्यप्रधान रूपक था। 'ऐसा प्रतीत होता है कि यही नाट्य रासक नाटकीय संकेतो और उसके कुछ अन्य तत्वो से विरहित होकर गीत-नृत्यपरक रास परपरा मे ढल गया। इस परंपरा की अनेक रचनाओ मे उनके गाए

---

१ रासो-साहित्य-विमर्श (१९६२), पृ० ७।

जाने और नृत्यसमन्वित होने का जो उल्लेख मिलता है वह इस उद्भव की ओर स्पष्ट संकेत करता है।[१] यह तो हुई गीत-नृत्य-परक रासो ग्रंथों की परंपरा के उद्भव की कहानी किन्तु दूसरी परंपरा—छंदवैविध्यपरक रासो परंपरा—का उद्भव कुछ भिन्न है, उसके मूल मे विविध छंदात्मकता जान पडती है। उसकी कल्पना छंदमूलक प्रतीत होती है। अपभ्रंश के प्रायः सभी छंदनिरूपकों ने रासा नाम के छंद के लक्षण बताए हैं और रासक तथा रासाबंध नामों से एक काव्य-रूप का भी लक्षण बताया है। इस संबंध में हम विरहांक और स्वयंभू के बताए लक्षणों की चर्चा पहले कर चुके हैं। इस प्रकार छंदवैविध्यपरक रासक परंपरा अन्य काव्योचित गुणों के साथ अपने इसी छंदवैचित्र्य को लेकर आई और गीत-नृत्यपरक रासो परंपरा से अलग विकसित हुई।

नृत्यगीतपरक रासो परंपरा

नृत्यगीतपरक रासो परंपरा में सैकडों रचनाएँ बनाई जाती हैं तथा इस परंपरा की उपलब्ध रचनाएँ भी १०० से कम नहीं है। 'बीसलदेव रास' को छोडकर इस परंपरा की शेष सभी रचनाएँ एक सी हैं। इस परंपरा की कुछ प्रमुख रचनाओं की नामावली इस प्रकार है—(१) उपदेशरसायन रास (सं० १२०० के लगभग)—जिनदत्त सूरि कृत, (२) भरतेश्वर बाहुबली रास (सं० १२३१)—शालिभद्र सूरि कृत, (३) बुद्धि रास (सं० १२४१ के आसपास)—शालिभद्र सूरि कृत, (४) जीवदया रास (सं० १२५७), आसगु कृत, (५) चंदनबाला रास (सं० १२५७ के आसपास)—आसगु कृत, (६) जंबू-स्वामी रासा (सं० १२६६)—धर्मसूरि कृत (७) रेवंत गिरि रासु (सं० १२८८ के लग-भग)—विजयसेन सूरि कृत, (८) नेमिजिणंद रासो या आबू रास (सं० १२८९)—पाल्हण कृत, (९) गयसुकुमार रास (सं० १३०० के लगभग)—देल्हणि कृत, (१०) सप्तक्षेत्रि रासु (सं० १३२७)—रचयिता अज्ञात, (११) पेथडरास (सं० १३६०)—मंडलिक कृत, (१२) कच्छूलि रास (सं० १३६३)—रचयिता अज्ञात, (१३) समरा रासु (सं० १३७१ के बाद)—अंबदेव सूरि कृत, (१४) बीसलदेव रास (सं० १४०० के आस पास)—नरपति नाल्ह, (१५) पचपाडव रास (सं० १४१०)—शालिभद्र सूरि कृत, (१६) गौतमस्वामी रास (सं० १४१२)—विजयप्रभ उपाध्याय, (१७) कुमारपाल रास (सं० १४३५ के लगभग)—देवप्रभ कृत, (१८) कलिकाल रास (सं० १४८६)—हीरानंद सूरि कृत। ये सभी रचनाएं रीतिकाल के पूर्व की हैं इसलिये यहाँ इनका उल्लेख-मात्र ही किया गया है।

छंदवैविध्यपरक रासो परंपरा की पूर्वरीतिकालीन कृतियाँ हैं—(१) मुंजरास (सं० ११५० के आसपास)—रचयिता अज्ञात, (२) संदेश रासक (रचनाकाल

१ हिंदी साहित्य : द्वितीय खंड, सं डा० धीरेंद्र वर्मा (सं० २०१५), पृ० १००।

अज्ञात)—अब्दुल रहमान कृत, (३) पृथ्वीराज रासउ (सं० १४०० के आसपास)—चदबरदाई कृत, (४) हम्मीररासो (स० १४५० के आसपास)—शाङ्र्गधर कृत, (५) बुद्धि रासो (स० १४५० के आसपास)—जल्ह कवि कृत, (६) परमाल रासो (१६वी १७वी शती विक्रमी के आसपास), (७) राउ जैतसी रो रासो—रचयिता अज्ञात (सं० १६०० के आसपास), (८) विजयपाल रासो—नल्हसिह भाट कृत (स० १६०० के बाद), (९) रामरासो—माधवदास चारण कृत (स० १६७५), (१०) राणा रासो—दयाल कवि कृत (स० १६७५), (११) रतन रासो—कुभकर्ण कृत (स० १६७५ से ८१ के बीच), (१२) कायम रासो—न्यामत खाँ 'जान' कृत (स० १६९१), (१३) शत्रसाल रासो—बूँदी के राव डोगर सी कृत (स० १७१० के आसपास), (१४) माकण रासो—कान्ह कीर्तिसुदर कृत (स० १७५७), (१५) सगतसिह रासो—गिरधर चारण कृत (स० १७२० से स० १७५५ के बीच), (१६) हम्मीर रासो—जोधराज कृत (स० १७८५), (१७) खुमाण रासो—दलपतिविजय कृत, (१८वी शती विक्रमी), (१८) रासा भगवत सिंह का रासौ—सदानद कृत (सं० १७९३), (१९) करहिया कौ रास—गुलाब कवि कृत (सं० १८३४), (२०) रासा भइया बहादुर सिह का —शिवनाथ कृत (स० १८५३), (२१) रायसा—शिवनाथ कृत (सं० १८५३ के आसपास), (२२) हम्मीर रासो—महेश कवि कृत (लिपिकाल स० १८६१), (२३) कलिजुग रासो—अलि रसिक गोविंद कृत (स० १८६५)।[१]

वीरभाव से संबधित रासो काव्यो का चतुर्थ खंड मे विस्तार से विचार किया गया है।

चरितकाव्य

प्राकृत तथा अपभ्रंश में जैन कवियो द्वारा चरितकाव्य लिखने की जो परपरा प्रवहमान हुई वह हिंदी साहित्य मे भी दीर्घ काल तक प्रवाहित होती रही। जैन कवियो द्वारा 'रास' या 'सधि' नाम से लिखे गए इन चरितकाव्यो म शलाकापुरुषो अथवा दूसरे जैनाचार्यों मे से किसी का चरित्र वर्णित होता था और साथ ही साथ धार्मिक उपदेश भी दिए जाते थे किंतु कवियो ने अपनी मोहक कल्पनाशक्ति के द्वारा इन काव्यो का सँवारने और सरस बनाने का भी काम किया जिसके कारण ये चरितकाव्य कोरे उपदेशप्रधान काव्य होकर ही नही रह गए हैं। इनकी शुष्कता का कवियो ने यथाशक्य निराकरण

---

१. नृत्यगीतपरक एव छदवैविध्यपरक उल्लिखित रासो ग्रंथो के अपेक्षाकृत विस्तृत विवरण के लिये देखिए डा० माताप्रसाद गुप्त कृत रासो-साहित्य-विमर्श नामक ग्रंथ तथा रासो-काव्य-धारा शीर्षक अध्याय (हिंदी साहित्य द्वितीय खंड, स० धीरेंद्र वर्मा)।

भी व र दिया है तथा इनमें से अनेकानेक कृतियाँ उच्च कोटि के प्रबंधकाव्यों मे परिगणित की जाती है। हिंदी साहित्य के आदिकाल मे जहाँ वीर रसात्मक काव्य और प्रेमपरक कथाकाव्य लिखे गए वही जैन कवियों द्वारा लिखे गए अनेकानेक चरितकाव्य भी मिलते हैं। भक्तिकाल प्रबधकाव्यो की रचना की दृष्टि से अत्यत महत्वपूर्ण काल है क्योकि इस काल मे इतने उत्कृष्ट कोटि के प्रबधग्रथ हिंदी मे लिखे गए कि उनकी बराबरी के काव्य अन्य युगो मे नहीं लिखे जा सके। मध्यकाल मे अर्थात् भक्ति और रीतिकाल मे जो प्रबध-काव्य लिखे गए वे अनेक प्रकार के है। जैसे चरितकाव्य, पुराणकाव्य, प्रेमाख्यान काव्य, मगलकाव्य आदि। चरितकाव्य दो प्रकार के है (१) पौराणिक या धार्मिक चरित-काव्य, (२) ऐतिहासिक चरितकाव्य। पौराणिक या धार्मिक चरितकाव्य भी दो प्रकार के है—एक तो जैन कवियो द्वारा रचित, दूसरे हिंदू कवियों द्वारा रचित। आदिकाल के ही समान भक्तिकाल मे भी जैन कवियों ने कुछ शलाकापुरुषों का चरित्र वर्णित करने-वाले या किन्ही काल्पनिक चरित्रो की अवतारणा करके उनके माध्यम मे धार्मिक शिक्षा-प्रद काव्य लिखे। भक्तिकाल में लिखे गए चरितकाव्यो की सख्या काफी बडी है। रीति-काल मे लिखे गए उपलब्ध अथवा उल्लिखित (नामशेष) चरितकाव्यो का विवरण इस प्रकार है :—

जैन कवियों द्वारा लिखे गए चरितकाव्य

(१) **पद्मिनीचरित्र** (सं० १७०७)—लब्धोदय कृत। भाषा गुजराती मिश्रित बोलचाल की राजस्थानी, प्रसगानुसार नवो रसो का समावेश।

(२) **सीताचरित** (सं० १७१३)—रामचद्र कवि कृत। इस रचना मे राम-कथा का एक बहुत ही भिन्न रूप गोचर होता है।

(३) **जंबूचरित्र** (सं० १७२०)—रामचद्र साका कृत।

(४) **प्रीतंकरचरित्र** (सं० १७२१)—कवि जोध कृत।

(५) **यशोधरचरित्र** (सं० १७२१)—लोहट कवि कृत।

(६) **यशोधरचरित्र** (सं० १७२१)—अजयराज कवि कृत।

(७) **श्रेणिकचरित्र** (सं० १७२४)—जिन हर्ष कृत।

(८) **विक्रमचरित** (सं० १७२४)—जिनचद्र कृत।

(९) **लघु सीतासतु** (सं० १७३१)—भगवतीदास कवि कृत। यह एक सुंदर खडकाव्य है जिसमे सीता के सतीत्व का चित्रण किया गया है। इसमे रावण और मदोदरी के मानसिक घातप्रतिघात का अत्यत मार्मिक वर्णन हुआ है।

(१०) **सुरसुंदरी प्रबंध** (सं० १७३६)—विजयहर्ष कृत।

(११) **जिनदत्तचरित्र** (सं० १७३८)—भट्टारक विश्वभूषण कृत।

(१२) **श्रीपाल रास** (सं० १७३८)—विनयविजय और जसविजय कृत।

(१३) **विक्रमविलास** (सं० १७३६)—गंगेश मिश्र कृत।

(१४) **श्रीपाल चरित्र** (सं० १७४०)—हरखचंद साधु कृत।
(१५) **श्रीपाल रास** (सं० १७४०)—जिनहर्ष सूरि कृत।
(१६) **चोपी मुनि चरित्र** (सं० १७४१)—धर्ममदिर गणि कृत।
(१७) **भक्तामरचरित्र** (सं० १७४६)—विनोदीलाल अग्रवाल कृत।
(१८) **कलियुगचरित्र** (सं० १७५७)—भूधरदास कृत।
(१९) **पद्मिनी चौपाई** (सं० १७६०)—हेमरत्न सूरि कृत यह काव्य बोलचाल की राजस्थानी में लिखा गया है। दोहा चौपाइयों के बीच बीच सवैया और छप्पय छंदों का भी व्यवहार हुआ है। यह एक सरस एवं मनोहर काव्य है।

(२०) **गुणमालचरित्र** (सं० १७६१)—कवि खेमचद कृत इस रचना मे गोरखपुर के राजकुमार गर्जामिह और श्रेष्ठीकन्या गुणमाल के प्रेम, विवाह तथा जीवन का वर्णन किया गया है। यह एक उत्कृष्ट ग्रंथ है जिसमे गुणमाल का आदर्श पातिव्रत, गर्जसिंह के चरित्र की दृढ़ता तथा मानवजीवन के हर्ष विषाद के मार्मिक चित्रण के साथ साथ संध्या, उषा, नदी, वन आदि के प्राकृतिक दृश्यो का पर्याप्त सुंदर वर्णन भी मिलता है। इसमें अलंकृत भाषा का प्रयोग मिलता है तथा विभिन्न रसो का सुंदर परिपाक भी हुआ है।

(२१) **मलयचरित्र** (सं० १७८१)—ज्ञानविजय जती कृत।
(२२) **भद्रबाहुचरित्र** (सं० १७८५)—किसनसिंह कृत।
(२३) **धन्यकुमारचरित्र** (सं० १७९९)—खुशालचंद कृत।
(२४) **जंबूचरित्र** (सं० १७९९)—खुशालचद कृत।
(२५) **यशोधरचरित्र** (सं० १७९९)—खुशालचद कृत।
(२६) **नागकुमारचरित** (सं० १८१०)—नथमल विलाला कृत।
(२७) **चारुदत्तचरित्र** (सं० १८१३)—भारुमल कृत।
(२८) **सप्तव्यसनचरित्र** (सं० १८१३)—भारुमल कृत।
(२९) **श्रेणिकचरित्र** (सं० १८२०)—विजयकीर्ति कृत।
(३०) **जंबूस्वामीचरित्र** (सं० १८२४) नथमल विलाला कृत।
(३१) **वरांगचरित्र** (सं० १८२७)—लालचद कृत।

(३२) **वर्द्धमानचरित्र** (सं० १८२५-२९)—नवल राय खंडेलवाल कृत इस महाकाव्य मे भगवान् महावीर का चरित्र १६ अधिकारो अथवा अध्यायों मे विस्तारपूर्वक वर्णित है। महावीर के शौर्य और तेज का तथा उनकी रानी के रूपसौंदर्य का वर्णन अत्यंत प्रभावशाली है। कवि ने यह कृति अलंकृत शैली मे प्रस्तुत की है तथा इसकी भाषा मे ब्रज, बुंदेलखंडी और खड़ीबोली का मिश्रित रूप मिलता है।

(३३) **भविष्यदत्ताचरित्र** (सं० १८३१)—सेवाराम कृत।
(३४) **हनुमच्चरित्र** (सं० १८३४)—सेवाराम कृत।

(३५) **जीवनधरचरित्र** (सं० १८३४)—नथमल बिलाला कृत।
(३६) **श्रीपाल चौपाई** (सं० १८३७)—लालचंद जैन कृत।
(३७) **प्रद्युम्नचरित** (सं० १८४३)—बूलचद कृत।

प्रद्युम्नचरित—

प्रद्युम्नचरित की बडी लबी परपरा हिंदी मे है। इसके पूर्व या साथ ही साथ सस्कृत और अपभ्रशो मे भी प्रद्युम्नचरित लिखा गया, पर हिंदी मे १५वी शताब्दी मे ही इसके उदाहरण मिलने लगते है। स० १४११ का मधारु कवि द्वारा लिखित प्रद्युम्न-चरित इस परंपरा का एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है। आगे भी कई प्रद्युम्नचरित लिखे गए। रीतिकाल में जो प्रद्युम्नचरित[1] लिखे गए उनका विवरण निम्नलिखित है—

१—प्रद्युम्नप्रबध—देवेंद्रकीर्ति—(अठारहवी शताब्दी का प्रारभ) हस्तलिखित—आमेर शास्त्र भाडार, जयपुर।
२—शाब प्रद्युम्न रास—ज्ञानसागर, स० १७२७, हस्तलिखित।
३—शाब प्रद्युम्न रास—ऋषि हेतराज, स० १७३४ हस्तलिखित, जैन विद्याशाला ज्ञान भांडार, अहमदाबाद।
४—प्रद्युम्नचरित्र—ऋषि फतेचद, स० १७८०, हस्तलिखित, वि. ल. सू स ज्ञान भाडार, खभात।
५—प्रद्युम्नरास—मयाराम भोजक, स० १८१८, हस्तलिखित, लिबडी भाडार।
६—शांब प्रद्युम्न रास—हर्षविजय, स० १८२४, हस्तलिखित, गोरजी भाडार, ईडर।
७—प्रद्युम्नप्रकाश—शिवचंद्र, सं० १८७६, हस्तलिखित, जैन ग्रथभाडार, भरतपुर।

(३८) **नेमिचंद्रिका** (स० १८५७)—कवि मनरगलाल कृत यह रचना एक सुदर खडकाव्य है जिसमे द्वारावती के राजकुमार नेमिकुमार के अपने ही विवाह के अवसर पर मारे जानेवाले पशुओ के करुण चीत्कार से विरक्त हो जाने की घटना का अत्यंत मर्मस्पर्शी वर्णन किया गया है। विवाह का उल्लास विरक्ति और विषाद मे परिणत हो जाता है। इसमे वर्णित राजुलमती का विरह भी बहुत अच्छा बन पडा है। राजुल-मती एक आदर्श भारतीय स्त्री है जिसने अपने अत करण से नेमिकुमार का ही वरण किया था और इसलिये उसके विराग ले लेने पर वह भी उसी के साथ तपस्विनी बन जाती है। शात, वात्सल्य, करुण, शृंगार आदि रसो का इसमे सुदर परिपाक हुआ है। भाषा कन्नौजी और खडी बोली का मिश्रित रूप है। शैली मे अलकरण है तथा विविध मात्रिक एवं वर्णिक छंदो मे यह प्रबध लिखा गया है।

---

१. प्रद्युम्नचरित काव्यधारा, शोध प्रबंध, मदनगोपाल शर्मा, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर।

(३९) **भक्तामरचरित्र** (सं० १८७०)—जयचंद जैन कृत।
(४०) **जिनदत्तचरित्र** (सं० १८७१)—कमलनयन कृत।
(४१) **वरांगचरित्र** (सं० १८७७)—कमलनयन कृत।
(४२) **जिनदत्तचरित्र** (सं० १८९४)—बख्तावरमल्ल कृत।

इनके अतिरिक्त भी कुछ जैन चरितकाव्य इस युग मे लिखे गए जिनके रचनाकाल का ठीक ठीक पता नही है—चेतनविजय ने तीन ग्रथ लिखे सीताचरित्र, जबूचरित्र और श्रीपाल रास (सभवत सं० १८३० से १८५२ के बीच)। इसके अतिरिक्त बनारसीदास कृत भविष्यदत्तचरित्र, बिहारीलाल कृत यशोधराचरित्र, लक्ष्मीदास कृत यशोधराचरित्र तथा हीरालाल कृत चद्रप्रभचरित्र भी इसी युग की रचनाएँ जान पड़ती है।

जैनेतर कवियों द्वारा लिखे गए चरितकाव्य

जैनेतर कविया द्वारा लिखे गए चरितकाव्य भी धार्मिक एव पौराणिक विषयों और आख्यानों को लेकर लिखे गए हैं। राम, कृष्ण तथा अन्य देवी देवताओ एव ईश्वरावतारो से सबधित ये प्रबधकाव्य प्राय. हिंदू कवियो द्वारा लिखे गए है जिनमे धर्म और भक्तिभावना का समावेश अनिवार्यतः देखा जा सकता है। इसलिये राम, कृष्ण तथा अन्य देवी देवताओ और अवतारों के चरित्रो के वर्णन से सबधित रचनाओ का विवरण तृतीय खड के सगुण काव्य के विवेचन वर्णन के सदर्भ मे देखा जा सकता है। इसी प्रकार सूफी प्रेमाख्यानो, वीरकाव्यो, नीति-व्रत-महिमा सबधी काव्यो तथा अन्यान्य विषयो मे सबधित प्रबधो का विवरण बृहत् इतिहास के इसी खंड मे यथास्थान देखा जा सकता है। यहाँ पर हम सक्षेप मे उन चरितकाव्यो का ही विवरण प्रस्तुत करेगे जिन्हे ऐतिहासिक चरितकाव्य अथवा सच्चे अर्थो मे चरितनिरूपक प्रबधकाव्य कहा जा सकता है। इनपर विस्तार से इस ग्रथ के चतुर्थ खड 'वीरकाव्य' मे विचार किया गया है।

मुक्तक कृतियो के अतर्गत अनेक प्रकार के मुक्तक आ सकते है, यथा—

(१) **संख्याश्रित मुक्तक**—सुदरदास की गुरुदया षटपदी, दयाराम भाई की मूर्खलक्षण सप्तदशी, अली मुहिब खाँ की खटमल बाईसी, नागरीदास की पावसपचीसी बाँकीदास की विदुरबत्तीसी, विश्वनाथ सिह की बसतचौतीसी, किशनदास की किशनबावनी, ध्रुवदास कृत वृंदावनसत, बैताल की विक्रमसतसई, पृथ्वीसिह रसनिधि का रतनहजारा, आदि।

(२) **रागाश्रित मुक्तक**—द्वारिकानाथ भट्ट कृत रागचंद्रिका, हित वृंदावनदास का रागरत्नाकर, किशोरीदास गोस्वामी का रागवसत, रसिक अलि की षटऋतुपदावली, नागरीदास के हिंडोरा के कवित्त, रूपसखी के होरीगीत, आदि।

(३) **स्तुतिपरक मुक्तक**—सुदरदास कृत स्तोत्र, कृष्ण भट्ट कृत दुर्गाभक्ति तरंगिणी, सतरेण कृत पचपरमेश्वर, सुकालनाथ कृत आरती, आदि।

(४) **प्रशस्तिपरक मुक्तक**—कविराय सूर्यमल्ल कृत वीरसतसई, बाँकीदास कृत सूरछतीसी आदि।

(५) **भक्ति, प्रेम और शृंगारपरक मुक्तक**—जगदीश भट्ट कृत भक्ति अरगजा, आलम, ठाकुर द्विजदेव की रचनाएँ, आलमकेलि, घनानद कवित्त, इश्कनामा, नागरीदास कृत रसिकरत्नावली, चंदन कृत शृगारसागर आदि ।

(६) **ऋतु एवं उत्सवाश्रित मुक्तक**—दौलत कवि कृत रितुसुखसार, अनन्य कवि कृत हिमरितुलीला, लालदास कृत बारहमासा, देवकर्ण कृत वाराणसीविलास, आदि ।

(७) **सूक्ति मुक्तक**—हेमराज कृत नीतिशतक, भगवतीदास कृत, दृष्टांतपचीसी, गिरधर की कुडलिया, धर्मसिह कृत धर्मबावनी, चदनकृत पथिकबोध, आदि ।

नाममाला और कोश के अतर्गत निम्नलिखित रचनाएँ आ सकती है—

क—**अनेकार्थी कोश**—जान कृत नाममाला अनेकार्थी, हमीर कृत हमीरनाममाला, हरिजू मिश्र कृत अमरकोष भाषा, हरचरणदास कृत कर्णाभरण, प्रयागदास कृत शब्दरत्नावली आदि ।

ख—**कोशकाव्य**—नागरीदास कृत बजनाममाला, कृपानिवास कृत जानकीसहस्रनाम, अनन्य अलि कृत श्रीलाल जू की नामावली, प्रियादास कृत भक्तनामावली आदि ।

ग—**लोकोक्तिकोश**—शिवसहायदास कृत लोकोक्ति-रस-कौमुदी ।

अनुवाद और टीकाओं का वर्गीकरण इस प्रकार से किया जा सकता है—

(क) रामायण—सोमनाथ कृत, बाल्मीकि रामायण, गुलाब सिह कृत अद्भुत रामायण, कपूरचंद का भाषारामायण आदि ।

(ख) महाभारत—टहकन कृत जैमिनीय अश्वमेध, अमृतराय कृत सभापर्व, भोलानाथ कृत भीष्मपर्व, खेतसी कृत भाषाभारथ आदि ।

(ग) भागवत—रानी बाँकावती कृत ब्रजदासी भागवत, वैष्णव कृत भागवत भाषा, दयाराम भाई कृत भागवत अनुक्रमणिका आदि ।

(घ) अन्य पुराण—हमीर कृत ब्रह्माण्ड पुराण, जगदीश कृत षोडश ग्रथ (सभी पुराणों का सार) आदि ।

(ङ) उपनिषद्—श्रीकृष्ण भट्ट कृत तैतरीय उपनिषद, चरणदास कृत पचोपनिषद आदि ।

(च) सस्कृत के अन्य काव्य—गुमान मिश्र कृत नैषध, जगदीश कृत शिशुपालवध, सबल सिह चौहान कृत ऋतुसहार आदि ।

(छ) राजनीति ग्रंथ—तनसुख लाहोरी कृत राजनीति ग्रथ (चाणक्यनीति)-वृंद कृत हितोपदेश संधि, धर्मसिह कृत पञ्चतत्र आदि ।

(ज) **कथा ग्रथ**—सूरति मिश्र कृत बैतालपचीसी, सोमनाथ कृत सुजानबिलास (सिंहासन बतीसी) आदि ।

(झ) नाटक—महाराज जसवंत सिंह कृत प्रबोधचंद्रोदय। अन्य अनुवादक हैं. गुलाब सिंह, धौकल मिश्र आदि।

(ञ) सिद्धात ग्रथ—वैष्णवदास की भक्तिरत्नावली और गुलाब सिंह निर्मला का मोखपथ।

रीतिकालीन गद्य रचनाओ मे निम्नलिखित कृतियाँ आती हैं—

(१) वचनिका—कवि पद्मकृत चौथी माता की वचनिका, मनोहरदास कृत ज्ञान-चूर्ण-वचनिका, आदि।

(२) वार्ता—जमराज की वीरोचन मुहात री बात, खेतसी कृत लैला मजनू की वार्ता आदि।

(३) कथा—खेतसी की विरह गुलजार, इश्क अनवर कथा, रूप सनातन की विदग्ध माधव, इंशा अल्ला की रानी केतकी की कहानी, हरि जी की गोसट मिहिर बानु जी की, आनद धन की सिध गोसट आदि।

(४) टीकाएँ—मेघराज प्रधान की अध्यात्मरामायण, नृसिंह सरस्वती की वेदातसार, भगवानदास की भगवतगीता की गद्य टीका। हिंदी ग्रंथो की टीकाएँ—कविप्रिया, बिहारीसतसई, रामचरितमानस, भक्तमाल आदि पर टीकाएँ।

(५) टिप्पणी—वैष्णवदास, लालदास की भक्तमाल पर टिप्पणी, महंत जयदेव तथा नारायणदास की टिप्पणियाँ।

गद्य-पद्य-मिश्रित रचनाओ के अतर्गत निम्नलिखित रचनाएँ है—हंस कवि कृत चदकुँवर री बात, दाम कवि कृत मदनशतक, किसना जी कृत सदैवच्छ और सावलिंगा, चत्र चूडामणि की राजा चद्र प्रेमलाल छीरी बात, नाथूराम व्यास कृत फूल जी फूलमती री वारता, शेरसिंह कृत पना बीरमदे री वात, आनद कविराय कृत राखल दे साँखला री वार्ता, नरबद चारण कृत रसालु कुँवर री बात आदि।

ग—रीतिमुक्त काव्य की विभिन्न धाराएँ

रीतिमुक्त काव्य की विभिन्न धाराओ को दो वर्गों मे रखा जा सकता है। प्रथम वर्ग शृगार काव्यधारा का है और द्वितीय शृगारेतर काव्यधाराओ का। शृंगार काव्यधारा को ही स्वच्छंद काव्यधारा कहा गया है। शृगारेतर काव्यधाराओ के अतर्गत निर्गुण काव्यधारा, सूफी काव्यधारा, कृष्णभक्ति काव्यधारा, रामभक्ति काव्यधारा, अन्यदेवोपासक काव्यधारा, वीर काव्यधारा, नीति काव्यधारा आदि की रचनाएँ आती हैं। इस वर्गीकरण को नीचे लिखे ढग से स्पष्ट किया जा सकता है —

रीतिमुक्त काव्य

स्वच्छंद काव्यधारा | निर्गुण काव्यधारा | सूफी काव्यधारा | कृष्णभक्ति काव्यधारा | रामभक्ति काव्यधारा | अन्यदेवोपासक काव्यधारा | वीर काव्यधारा | नीति काव्यधारा | विनोद काव्यधारा | विविध

स्वच्छंद काव्यधारा--

रीतिकालीन स्वच्छंद काव्यधारा तत्कालीन शास्त्रीय (क्लासिकल) या रीतिबद्ध काव्यधारा की प्रतिक्रिया है। रीतिबद्ध कवि रीतिग्रंथो का निर्माण करते हुए लक्षणानुसारी शृंगार रस की कविता करते थे। उनका मुख्य कार्य था लक्षणग्रंथो का निर्माण। कविता तो गौण वस्तु थी। कविता करते समय वे रीतिलक्षणो से जरा भी इधर उधर नही जा सकते थे। उनकी प्रत्येक अभिव्यक्ति पूर्णत रीतिशासित थी। अत इनकी सारी रचनाएँ एक परपरा की है। किंतु इसी काल मे कुछ ऐसे भी कवि हुए जो इन रीतियो से मुक्त रहे। उन्होने लक्षणो या नियमो मे बंधकर कविता नही लिखी। ऐसे कवियों मे रसखान, आलम, घनआनद, बोधा, ठाकुर, द्विजदेव आदि है। रीतिमुक्त रचना करने के कारण ये स्वच्छद कवि कहलाए। यद्यपि इन कवियो ने भी प्रेम को ही अपना काव्यविषय बनाया, तथापि रीतिबद्ध कवियो की तरह पग पग पर रीति का सहारा नही लिया। इन्होने प्रेम के स्वानुभूत और उल्लासपूर्ण रूप का ही वर्णन किया है। रीतिबद्ध काव्यपरंपरा और वर्णनशैली से भिन्न होने के कारण ही यह काव्यधारा 'स्वच्छद काव्यधारा' कहलाई।

रीतिबद्ध और स्वच्छद काव्यधारा मे मूलत अतर दृष्टिकोण का है। रीतिबद्ध कवि वस्तुनिष्ठ और बहिर्मुखी है जबकि स्वच्छद कवि व्यक्तिनिष्ठ और अतर्मुखी है। यही कारण है कि रीतिबद्ध कवियो को शास्त्रीय परपरा से मोह है और उन्होने एक निश्चित विषय और शैली मे ही काव्यरचना की है। उन्होने कवित्व या कला को ही साध्य माना है, इसीलिये उसके बहिरग को अधिकाधिक अलकृत करने का प्रयत्न किया है। रीतिबद्ध काव्य, वस्तु और शैली मे पूर्णत रीतिनिर्मित और अनुशासित है। इसके विपरीत स्वच्छद कवि परपराविरोधी, नवीनताप्रेमी, और कला को सहज अभिव्यक्ति माननेवाले है। इनके लिये स्वानुभूति और भाव की तीव्रता ही कला की कसौटी है। स्वच्छद कवि नवान्वेषी और सहजता के आग्रही है।

इस धारा मे थोडा बहुत योगदान करनेवाले कवि निम्नलिखित है---१-बेनी, २-बनवारी, ३-रसिकगोविद, ४-रसनिधि, ५--मुबारक, ६--नागरीदास, ७-बख्शी हसराज, ८-भगवतरसिक, ९--रामसहाय दास, १०-पजनेस, ११-अलीमुहिब खाँ,

१२–नेवाज, १३–सीतल, १४–रसलीन, १५–ताज, १६–मचित, १७–हठी, १८–अलबेली अलि, १९–सेवक, २०–असनी के ठाकुर द्वितीय, २१–गोविंद सिह, २२–रामचद्र, २३–विश्रम साहि, २४–ध्रुवदास, २५–ब्रजवासीदास, २६–हित वृ दावनदास, २७–सुदरकुँवर बाई, २८–सहचरिशरण, २९–रत्नकुंवरि बीबी, ३०–कृष्णदास, ३१–गुणमंजरी दास, ३२–रघुनाथ बदीजन, ३३–बनी ठनी, ३४–गुमान मिश्र, ३५–आलम, ३६–बोधा, ३७–ठाकुर, ३८–घनआनद। परतु प्रमुख कवि अतिम चार अर्थात् आलम, बोधा, ठाकुर और घनआनद ही हैं।

निर्गुण काव्यधारा--

मध्ययुग मे हिंदी संत काव्यधारा महत्वपूर्ण और प्रचलित काव्यप्रवृत्ति थी जिसका पूर्वसबध नाथपथ से जोडा जा सकता है। वस्तुत सतसाधना नाथसाधना का सहजीकृत रूप है। हिंदी मे इसका प्रारभ महाराष्ट्रीय सत नामदेव से हुआ किंतु आगे सत कबीर को इस परपरा मे सर्वप्रथम स्थान प्राप्त हुआ। ब्रह्म के निर्गुण रूप का अतस् में अनुभव करना ही उनकी साधना का मुख्य स्वर है। कबीर की सहज और निर्भय अभिव्यक्ति के कारण संतकाव्य को हिंदी साहित्य मे महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ और उसकी परंपरा आगे भी अक्षुण्ण रूप से चलती रही।

रीतियुग के पूर्व ही सतसाधना और काव्य के कुछ सप्रदाय बन चुके थे जिनका अधिक विकास इस युग मे हुआ, साथ ही कुछ नए सप्रदायो का जन्म भी हुआ। ये संप्रदाय पथ कहलाए। भक्तिकाल मे जिन पथो का विकास हो चुका था वे है-- कबीर पंथ, नानक पथ, दादू पथ, बावरी पथ और मलूक पथ। इनमे से कुछ पथों की शाखाएँ तथा उपसंप्रदाय भी बन गए थे। इन सभी पथो द्वारा वाह्याडबरो का विरोध और लोकाचार का खडन होता था और निर्गुण उपासना का प्रचार किया जाता था। विभिन्न सप्रदायो और पथो के प्रवर्तक तथा गुरु जो उपदेश देते थे, वे उनकी बानियो के रूप मे संगृहीत गद्दियों और मठो मे सुरक्षित रहते थे। मूलत. निर्गुण सतमत मूर्तिपूजा का विरोधी था पर शनै. शनै इसके भीतर समाधिस्थल की पूजा और पोथीपूजा का प्रचलन हो गया। आगे चलकर चित्रपूजा और कुछ सप्रदायो मे मूर्तिपूजा तक भी होने लगी। सतनामी सप्रदाय मे हनुमान तक की मूर्तिपूजा होती है। इसी प्रकार बावरी पथ मे भी मूर्तिपूजा का कोई कट्टर विरोध नही है। इस प्रकार का परिवर्तन इसलिये हुआ कि धीरे धीरे सतमत अधिक उदार और लोकभावना के साथ सामंजस्य स्थापित करनेवाला होता गया। इस प्रकार सतमत मे एक प्रकार का समन्वय हुआ।

रीतिकाल मे सतकाव्य के अतर्गत जो सप्रदाय और पंथ प्रचलित हुए वे इस प्रकार हैं---

१–कबीर पंथ, २–नानक पथ, ३–दादू पथ, ४–निरंजनी सप्रदाय, ५–रामसनेही सप्रदाय, ६–अन्य।

१—कबीर पंथ—कबीर पंथ की तीन प्रमुख शाखाएँ मानी जाती है—(क) कबीरचौरा काशी की शाखा, (ख) धनौती की भगताही शाखा और (ग) छत्तीसगढ़ की धर्मदासी शाखा।

कबीरचौरा काशी की शाखा के प्रवर्तक सुरतगोपाल जी है। इसमे अब तक २०–२१ आचार्य हो चुके है। इस शाखा के जिन आचार्यों की रचनाएं रीतिकाल के अन्तर्गत आती है वे है—रामरहसदास (स० १८६६, पचग्रथी), शरणदास, पूरनदास आदि। धनौती शाखा का कोई साहित्यिक योगदान नही है। छत्तीसगढी शाखा मे पूरण साहब और पाकनाम साहब की कुछ रचनाएं है। इसके अलावा कुछ स्वतत्र मठ भी हैं जहाँ के सतो ने रचनाएँ की है। ये रचनाएँ या तो बीजक की टीकाएं है या पौराणिक। अनुरागसागर, दीपकसागर, गरुडबोध, ज्ञानसागर, ज्ञानप्रकाश, भवतारणबोध आदि इस युग की प्रमुख रचनाएं है।

२—नानक पंथ—इस पथ का काफी साहित्य रीतिकाल के पूर्व का है किंतु इस काल मे भी कई अच्छी रचनाएँ प्राप्त होती है। सिक्खो के दसवे गुरु गोविंदसिंह की सारी रचनाएँ इसी काल की है। गुरु तेगबहादुर के कुछ सलोक और पद ग्रथसाहिब मे हैं। इसके अलावा हरि जी, भाई सतोष जी, सत रेण जी आदि की रचनाएं भी मिलती है। यह बडे आश्चर्य की बात है कि निरतर युद्ध मे लगे रहनेवाले गुरु गोविद जी ने साहित्य की भी बहुत बडी सेवा की है।

३—दादू पंथ—दादू पथ का साहित्य सबसे अधिक प्राप्त होता है। रज्जब, सुदरदास, बखदास आदि जिस प्रकार उच्च कोटि के साधक थे उसी प्रकार के कवि भी। रज्जब जी ने सत साहित्य का सकलन और सपादन भी किया था जो 'सबगी' के नाम से प्रसिद्ध है। इसके अलावा गरीबदास, खेमदास, जनगोपाल आदि अनेक दादूपथी सत कवि है जिनकी रचनाए प्रभूत मात्रा मे उपलब्ध है।

४—निरंजनी संप्रदाय—निरजनी सप्रदाय के प्रवर्तक हरिदास जी है जिनका कार्यकाल स० १७०० तक समाप्त होता है किन्तु उसके बाद इस सप्रदाय का बहुत प्रचार हुआ और इसके आचार्यों तथा सतो ने साहित्यरचना भी की। रीतिकाल के निरजनी सप्रदाय के प्रमुख रचनाकार और उनकी रचनाएँ इस प्रकार है—

क—तुरसीदास—पद और साखियाँ, फुटकल।

ख—जगजीवनदास—प्रेमनामा, फुटकल पद।

ग—ध्यानदास—गुण-माया-सवाद तथा गुणादिबोध।

घ—मोहनदास—फुटकल पद।

ङ—खेमदास—चितावणी, विरागलच्छी।

च—सेवादास—फुटकल पद, साखी।

छ—भगवानदास—अमृतधारा, वैराग्यवृंद, पचीकरण, मनोरथमजरी आदि।

ज—मनोहरदास—ज्ञानमजरी, वेदातपरिभाषा तथा अन्य ।

झ—अमरदास—फुटककल पद ।

इस सप्रदाय का साहित्य भी प्रभूत मात्रा मे प्राप्त होता है ।

५—**रामसनेही संप्रदाय**—यह सत पथ का वह उपसप्रदाय है जिसका प्रवर्तन मूलत राजस्थान मे हुआ । राजस्थान मे इसके चार आचार्यपीठ है—१. रेण, २—सींथल, ३—शाहपुरा और ४—खेडापा । स्वामी रामानद की शिष्यपरपरा मे आनेवाले कृष्णदास पयहारी के शिष्य अग्रदास से इस सप्रदाय का प्रारभ माना जाता है । इस सप्रदाय मे रामचरण जी की 'अनभै वाणी' का बडा महत्व है । हरिरामदास, नारायणदास की रचनाएँ भी प्रसिद्ध है ।

इन प्रमुख सप्रदायो के अतिरिक्त भी कुछ और सप्रदाय है जो लगभग रीतिकाल मे ही विकसित हुए है । इनमे से कुछ है—प्रणामी या धामी संप्रदाय, साध सत्तनामी सप्रदाय, बावरी पथ, सतनामी सप्रदाय, धरनीश्वरी सप्रदाय, दरियादासी पथ, अघोर पंथ, शिवनारायणी, चरणदासी, राधास्वामी सप्रदाय आदि । इन सप्रदायो और पथो का साहित्य भी काफी रचा गया है ।

इससे यह स्पष्ट है कि निर्गुण मत सत अनेक पथो और सप्रदायो मे विभक्त हो गया था और उसकी अनेक शाखाएँ प्रशाखाएँ हो गई थी । इन विभिन्न सप्रदायो के सतो की बानियो मे प्राय साधना और उपदेश सबधी बाते है जिनमे से अधिकाश मे समानता है, केवल कही कही अनुभूति की भिन्नता है । शब्दावली भी बहुत कुछ एक सी रही है । इन सबका सबध कबीर बानी मे प्राप्त योगसाधना, ईश्वर-जीव-माया-विवेचन, भक्ति-पद्धति तथा सहज जीवन से है । कही कही कुछ बाते, अपने अनुभव के रूप मे, सप्रदाय से सबधित है । साहित्यिक दृष्टि से इन बानियो का अधिक महत्व नही है । न तो इनमे कलात्मकता है और न विषयवैविध्य । फिर भी तत्कालीन समाज का एक अच्छा परिचय इन बानियो मे अवश्य मिलता है । धार्मिक और सामाजिक चित्र बडे ही यथार्थ और सुदर है । इसी दृष्टि से रीतिकालीन सत काव्यधारा का महत्व है । इस धारा के प्रमुख कवि है—सुदरदास रज्जबदास, यारी साहब, पलटू साहब, मलूकदास, जगजीवन-दास, चरनदास, सहजो बाई, दरिया साहेब, शिवनारायण, तुलसी साहब, शिवदयाल आदि ।

सूफी काव्यधारा—

भारतीय प्रेमाख्यान काव्य की एक बडी पुरानी परंपरा पुराणकाल से ही चली आ रही थी जिसके अतर्गत यम यमी, पुरुरवा उर्वशी, कच देवयानी, दुष्यंत शकुतला, उदयन वासवदत्ता आदि की प्रेमकथा का चित्रण मिलता है । उसके अनंतर आधुनिक भारतीय आर्यभाषा के प्रारभ मे ही सदेसरासक, नलकथा, भविस्सयत्त कहा आदि लिखे

गए। उसके बाद सूफी कवियों ने एक अलग परंपरा चलाई जिसके अन्तर्गत चंदायन, मृगावती, मधुमालती, चित्रावली, पद्मावती, माधवानल कामकंदला, रसरतन आदि लिखे गए। सूफी प्रेमाख्यान की यह परपरा रीतिकाल में भी चलती रही और कई प्रेमाख्यान लिखे गए।

इस परपरा में दो धाराएँ है। एक सूफी प्रेमाख्यान या रूपकात्मक धारा है और दूसरी शुद्ध प्रेमाख्यान काव्य की धारा। पहली धारा के अधिकाश लेखक मुसलमान हैं और दूसरी के हिंदू। पहली धारा को सूफी काव्यधारा कह सकते है। काव्यपरपरा, कथाप्रबध और वर्णन आदि की दृष्टि से दोनो धाराओं के काव्य मे कोई विशेष अतर नही है, किंतु उनके आंतरिक गठन और उद्देश्य मे काफी अतर है। सूफी काव्यधारा रूपकात्मक है जिसमे लौकिक प्रेमकथा के वर्णन के साथ साथ आध्यात्मिक साधना के सकेत दिए गए है और पूरा काव्य एक रूपकोक्ति के रूप मे प्रस्तुत किया गया है। यद्यपि इस प्रकार के कई काव्य भक्तिकाल मे लिखे गए थे तथापि आगे रीतिकाल मे भी ऐसे काव्य लिखे जाते रहे।

सूफी काव्यधारा के जो कवि रीतिकाल मे हुए वे पूर्णत. पूर्वकवियों के अनुयायी थे। कथाप्रबंध, भाषाशैली सबका सब वे पूर्वकवियों की तरह रखते रहे। उनमे कोई नवीनता नही रही। रीतिकाल की इस काव्यधारा मे कोई भी मौलिकता नही रही। सत्रहवी शताब्दी के उत्तरार्ध और अठारहवी शताब्दी के प्रारभ मे सूफी आख्यानलेखक जान कवि ही ऐसे एक कवि थे जिनमे मौलिक प्रतिभा थी किंतु उनकी रचनाएँ अशत ही इस काल के अतर्गत आती है। अन्य लेखक है—कासिमशाह, सूरदास, दुखहरन दास, मुकुंद सिंह, नूर मुहम्मद, शेख निसार, हुसेन अली खाँ, शाह नजफ अली आदि। इस कालखड के अतर्गत दक्षिण मे अनेक रचनाएँ लिखी गई। शेख अहमद जुनैदी ने सं० १७१० मे 'माह पैकर' दक्खिनी हिंदी मे लिखी थी जिसमे मनहर मधुमालती की कथा है। मुल्ला नुसरती (स० १७१४) ने गुलशने इश्क, इब्न निशाती (स० १७१३) ने 'फूलबन', तबई (स० १७३७) ने बहराम व गुलंदाम, गलाम अली (स० १७३३) ने पद्मावत, सैयद सिराज (स० १८७२) ने बुस्ताने ख्याल आदि दक्खिनी हिंदी की प्रेमगाथाएँ लिखी जो सूफी काव्यधारा के अतर्गत आती है।

कृष्णभक्ति काव्यधारा—

कृष्णकाव्य की परपरा बहुत पुरानी है। महाभारत, भागवत, ब्रह्मवैवर्त, ब्रह्माड, स्कद, पद्म आदि पुराणों मे कृष्ण को ब्रह्म रूप मे चित्रित किया गया है। सस्कृत के काव्यग्रथो मे सबसे अधिक प्रभावित करनेवाला जयदेव का गीतगोविंद है जिसकी ललित शब्दावली और मनोहारिणी भावावली ने कवियों की कल्पना को प्रेरित किया और हिंदी के कवियों ने उसी प्रकार की रचना की। मैथिलकोकिल विद्यापति ने तो जयदेव जैसा ही सरस काव्य लिखा। आगे सूरदास, नंददास, परमानंददास, मीराबाई,

रसखान आदि कवियो ने भी उस परंपरा को विकसित किया। भक्तिकाल का कृष्ण-काव्य हिंदी साहित्य का सर्वश्रेष्ठ रत्न है। इसी के बल पर भक्तिकाल हिंदी साहित्य का स्वर्णकाल कहलाता है। ये सभी कवि मूलत. भक्त थे। कृष्णकाव्य की यह परंपरा रीतिकाल मे भी उसी तरह चलती रही।

रीतिकाल के कृष्णकाव्य का विकास एक भिन्न प्रकार से हुआ। कृष्ण और राधा न केवल भक्ति के आलंबन रहे बल्कि इस युग की प्रधान प्रवृत्ति शृंगार के भी आलंबन के रूप मे प्रतिष्ठित हुए। अत इस युग के भक्तिकाव्य मे शृगारभावना की प्रधानता है। शृगारी काव्य में भक्तिभावना का स्वरूप बड़ा उथला है। वस्तुत. वह शृंगार का ही उद्दीपक है, भक्ति का नही। अधिकतर रचनाएँ शृगार की दृष्टि से राधा और कृष्ण को आलबन मानकर लिखी गई है, भक्ति का आलबन नही। रीतिकालीन कवियो का उद्देश्य भी यही था--"मानिहै सुकवि तो नीकी कविताई नतु राधिका कन्हाई सुमिरन को बहानो है"। किंतु कुछ ऐसे भी कवि हुए है जिन्होंने कृष्ण राधा को भक्ति का आलबन माना है और उन्हीं की रचना वस्तुत कृष्णकाव्य के अतर्गत आती है, यद्यपि इनकी रचनाओ मे भी शृगारी भाव की कमी नही है।

रीतिकालीन कृष्णकाव्य मे शृगारभावना का समावेश हो जाने से शुद्ध भक्तिभावना अपने प्रखर रूप मे कम हो गई। कृष्णभक्ति के विभिन्न सप्रदाय बन गए। इन सप्रदायो के अतर्गत भी कृष्ण के लीलाविलास और शृगारसज्जा के क्रियाकलाप अधिक प्रचलित हुए। सखी और दापत्य भाव के उपासक कुछ सप्रदायो मे तो पुरुष अपने को राधा या सखियाँ समझते हुए नारी के समान ही आचरण करने लगे; यहाँ तक कि उन्होंने अपने नाम भी इसी प्रकार के रखे, जैसे अलबेली अलि, ललितकिशोरी, बनी ठनी आदि। ये स्त्रियों के नहीं, पुरुषों के नाम है। एक प्रकार से मधुर भाव की उपासना प्रारभ हुई जिसका रामभक्ति पर भी प्रभाव पडा। इस तरह रीतिकालीन शृगारिकता ने समस्त क्षेत्रो को प्रभावित किया।

कृष्ण-काव्य-धारा के कवियो ने राधाकृष्ण की केलि और विलास का ही अधिक वर्णन किया है। इस धारा के प्रमुख कवि निम्नलिखित है--

ध्रुवदास, छत्रसाल, नागरीदास, चाचा हित वृंदावनदास, सुंदरिकुँवरि बाई, अलिबेलि अलि, भगवतरसिक, ब्रजवासीदास, सचित, हरी जी, सहचरिशरण, कृष्णदास गुणमजरीदास आदि।

रामभक्ति काव्यधारा --

रामकाव्य की साहित्यिक परपरा वाल्मीकीय रामायण से प्रारंभ होती है। आगे रघुवश तथा रामायणमजरी मे उसी का विकास पाया जाता है। प्राकृत और अपभ्रंश काव्यों मे भी रामकथा मिलती है। रामकथा की समृद्ध परंपरा के आधार पर

तुलसीदास ने अपने प्रसिद्ध 'रामचरितमानस' की रचना की और उसे एक अन्यतम ग्रंथ के रूप में प्रस्थापित किया। गोस्वामी तुलसीदास के बाद रामकाव्य के अंतर्गत कोई अत्यधिक प्रसिद्ध कवि नहीं हुआ। उनके रामचरितमानस की पूर्णता और प्रभाव को देखकर किसी ने विशेष रूप से इसको लेकर लिखने का साहस नहीं किया, जिसके कारण राम-भक्ति-काव्य में वह विकास देखने को नहीं मिलता जो कृष्णकाव्य में। कृष्णकाव्य में अवश्य मानस के समान कृष्णचरित लिखने के प्रयत्न हुए जिसके परिणामस्वरूप कृष्णायन (मंचित), ब्रजविलास (ब्रजवासी) आदि ग्रंथ लिखे गए। फिर भी रामकाव्य में अनेक लेखकों के ग्रंथ हैं। भक्तियुग में ही 'मानस' के बाद, केशवदास, अग्रदास, नाभादास, प्राणचंद चौहान, कवि हृदयराम ने क्रमश: रामचंद्रिका, रामध्यानमंजरी, अष्टयाम, रामायण महानाटक, हनुमन्नाटक भाषा, ग्रंथ रचे, जिनमें रामभक्ति की स्थापना है। इनमें कुछ दोहा चौपाई में है और कुछ कवित्त सवैया तथा अन्य छंदों में। इस प्रकार रामकाव्य की परंपरा भक्तिकाल के बाद भी चलती रही।

रीतिकालीन राम-भक्ति-काव्य में भक्ति की वह तन्मयता नहीं है जो भक्तिकालीन राम-भक्ति-काव्य में है। इसका कारण यह है कि जिस प्रकार 'रामचरितमानस' के अनुकरण पर कृष्णचरित्र लिखने का प्रयास कृष्ण-काव्य-परंपरा के अंतर्गत देखा जाता है उसी प्रकार रामकाव्य के अंतर्गत भी कृष्णकाव्य की शृंगार और माधुर्यभावना का समावेश हुआ। तुलसीदास द्वारा प्रतिपादित मर्यादावाद और दास्य भक्ति संभवत: उतनी सरस और मधुर नहीं लगी जितनी कृष्णकाव्य की शृंगार और माधुर्यभावना। अतएव रामकाव्य में भी शृंगारी भावनाओं का समावेश हुआ। इस भावना से संबंधित विभिन्न रामोपासक संप्रदाय बने, जैसे स्वसुखी और तत्सुखी संप्रदाय। इनमें सपत्नी या सखी भाव से राम की उपासना का गुणगान हुआ और राम तथा सीता की विलासक्रीडाओं एवं रतिचेष्टाओं का उसी प्रकार वर्णन हुआ जिस प्रकार राधा कृष्ण की क्रीडाओं और चेष्टाओं का कृष्णकाव्य में। रामभक्ति में एक रसिक संप्रदाय का विकास हुआ जिसमें (सीताराम) जुगल सरकार की उपासना चल पड़ी। रसिक-भक्ति-काव्य में सखा भाव, सखा-सखी-भाव, मधुर-दास्य-भाव, मधुर-वात्सल्य भाव, वात्सल्य-सख्य-भाव आदि से उपासना की जाने लगी। रीतियुगीन रामकाव्य पर इस रसिक प्रवृत्ति का प्रभाव स्पष्टतया परिलक्षित होता है। फिर भी उसपर से मतभावना और मर्यादावाद का प्रभाव एकदम से लुप्त नहीं हुआ, बल्कि अनेक ग्रंथों में वह अपने सामाजिक लोकमंगल के रूप में है जो जीवन के सत्य स्वरूप को स्पष्ट करता है।

इस काल की राम-भक्ति-धारा का झुकाव कृष्ण-भक्ति-काव्य की तुलना में प्रबंध-काव्य-प्रणयन की ओर अधिक रहा। लेकिन रसिक भाव और शृंगार होने के कारण मुक्तक की भी रचना कम नहीं हुई।

अन्यदेवोपासक काव्यधारा—

बहुदेववाद भारतीय उपासना की बहुत बड़ी विशेषता है। प्रत्येक प्रमुख उपास्य देव के साथ कुछ गौण देवों की उपासना यहाँ सर्वदा से होती रही है। वस्तुतः बहुदेववाद एक ही परमदेव की उपासना का विस्तार है। ब्रह्म की विराटता इतनी अनंतहीन है कि वह इंद्रियगम्य नही हो पाती। वही विभिन्न देवी देवताओ के माध्यम से खंड रूप मे व्यक्त होती है।

राम और कृष्ण तो ब्रह्म के प्रत्यक्ष अवतार ही हैं किंतु इनके अलावा शिव, शक्ति और गणेश की उपासना प्रधान रही है। आगे चलकर रामोपासना के साथ हनुमान की उपासना भी प्रचलित हुई। गंगा, यमुना, सरस्वती आदि नदियो के प्रति तो हमेशा से श्रद्धाभाव प्रकट किया जाता रहा। भक्तिकालीन साहित्य मे राम और कृष्ण के अतिरिक्त इन गौण देवो की उपासना भी मिलती है जिसकी परंपरा रीतिकाल में भी चलती रही।

रीतिकाल के रामकृष्णेतर काव्य के रचयिता तीन प्रकार के है—प्रथम वे जिन्होने संस्कृत पुराणों का हिंदी मे रूपांतर किया, द्वितीय वे जिन्होने संस्कृत साहित्य के परंपरानुसार किसी देवता की उपासना के आधार पर लक्षणग्रंथो की रचना की और तीसरे वे जिन्होंने अपने आराध्य के प्रति सहज रूप से अपने भक्तिविषयक उद्‌गारो को व्यक्त किया। अन्यदेवोपासक कवि और उनकी रचनाएँ निम्नलिखित है—

१—गुरु गोविंदसिंह—चंडीचरित्र, चंडीचरित्र उक्तिविलास, चौबीस अवतार, ब्रह्मा अवतार, रुद्र अवतार, पारसनाथ अवतार।

२—अनन्य कवि—दुर्गापाठ भाषा।

३—मान कवि—हनुमान पचीसी, हनुमान नाटक।

४—श्रीकृष्ण भट्ट (कलानिधि)—दुर्गाभक्ति तरंगिणी।

५—दीवान रणछोड—सदाशिव विवाह, शिव माहात्म्य रत्नाकर।

६—श्रीनिजाम—हनुमान पचीसी।

७—अखैराम—गंगामाहात्म्य।

८—पद्माकर—गंगालहरी।

९—रामचंद्र—चरणचंद्रिका।

१०—हरि आनंद—देवीविलास।

११—ग्वाल—यमुनालहरी।

१२—मनियार सिंह—हनुमान छब्बीसी, महिम्न कवित्त।

वीर काव्यधारा—

संस्कृत वीरकाव्य की परंपरा का प्रतिफलन हिंदी के आदिकाल मे हुआ। उसका विकास मध्ययुग मे विशेष रूप से हुआ। इसके कई कारण थे। प्रथम तो यह कि इस

युग में छोटे मोटे युद्ध बराबर होते रहते थे और जो वीर एवं बलवान होता था, उसी का वैभव और प्रभाव था। इन वीरो में वीरता के साथ साथ उदारता और दानशीलता भी दिखलाई देती है। अपने आश्रयदाता राजाओ या अन्य यशस्वी सामंत की वीरता का वर्णन करना उस युग की एक प्रवृत्ति बन गई थी। यह प्रवृत्ति रीतिकाल मे भी बराबर बनी रही और इस काल मे पर्याप्त मात्रा मे वीरकाव्य की रचना हुई।

वस्तुत अठारहवी और उन्नीसवी शताब्दी युद्ध और विलासिता दोना प्रवृत्तियो को उत्तेजित करनेवाली शताब्दियाँ थी। दैनिक जीवन मे जहाँ विलासिता का साम्राज्य था, लोग अधिकाधिक विलाससामग्री एकत्र करने मे जुटे थे, वही बात बात मे युद्ध भी छिड़ जाते थे। युद्ध, कही तो अत्याचार का विरोध करने के लिये, कही द्वेषवश, कही बदला लेने के लिये, कही धर्मरक्षा के लिये और कही आन बान की रक्षा के लिये हुआ करते थे। कुछ युद्ध रूपलिप्सा और विलासवासना को तृप्त करने के लिये भी हुए हैं। रीति-काल के काव्यो मे इस युग मे हुए लगभग सभी युद्धो का वर्णन मिल जाता है। इन युद्ध-वर्णनो मे वीरभावना का स्फुरण है।

इसके अलावा वीर और उदार व्यक्तियो के चरितगान मे भी वीर रस का सुंदर निरूपण हुआ है। इस दृष्टि से इस युग के वीरकाव्य के नायक हम्मीर देव और शिवाजी है। छत्रसाल, हिम्मतबहादुर आदि के युद्धो के वर्णन के बीच बीच मे इनकी दानवीरता और धर्मवीरता के वर्णन भी मिलते हैं। दानवीरो और धर्मवीरो की अन्य विशेष-ताओ का चित्रण इस काव्य मे कम ही है। लेकिन प्रधान प्रवाह युद्धवीरत्व का वर्णन करनेवाले काव्य से ही सबध रखता है। समग्र रीतिकालीन वीरकाव्य वैविध्य से भरा हुआ है। उसमे इतिहास और काव्य दोनो मिला हुआ है। इनमे आए हुए वर्णन इतिहास के वास्तविक तथ्यो का विवरणपूर्ण रूप है।

वीर-काव्य-धारा के लगभग सभी कवि राजदरबारो से अधिकाधिक धन, पद, यश पाने के अभिलाषी थे, इसीलिये वे अपनी पूरी प्रतिभा के साथ अपने आश्रयदाताओ को अधिक से अधिक प्रभावित करना चाहते थे। इसलिये इस काव्य मे ऊहात्मकता और वर्णनात्मकता अधिक आ गई है। कुछ कवि कलम के साथ तलवार भी हाथ मे रखते थे। उनकी रचनाएँ अवश्य ही सशक्त हैं। वीरकाव्य के कुछ प्रमुख कवि निम्नलिखित है—

भूषण, मान कवि, गोरेलाल, श्रीधर, सूदन, हरिकेश, जोधराज, चंद्रशेखर वाज-पेयी आदि।

नीति काव्यधारा—

नीतिपरक रचनाएँ वैसे तो सभी प्रकार की काव्यधाराओ मे मिलती हैं और सभी महत्वपूर्ण कवियो की रचनाओ मे सूक्तियाँ भी मिलती है किंतु कुछ कवियो की प्रवृत्ति ही

नीतिमुक्तक लिखने की होती है। वे अपने अनुभवो को बड़े सरस ढंग से संक्षिप्त शब्दावली मे व्यक्त करके सुलभ और स्मरणीय बना देते है। इस प्रकार के काव्य प्राय शतकों, सतसइयो आदि मे मिलते है। सस्कृत काव्य नीतिमुक्तक और सूक्ति के भंडार से बहुत समृद्ध है। प्राकृत और अपभ्रंश मे भी नीतिकाव्य की परपरा बहुत जीवत रूप मे रही। हिंदी के प्रारभिक साहित्य मे नीतिमुक्तको को बहुत महत्वपूर्ण स्थान मिला है। भक्तिकाल मे नीति को और प्रधानता मिली तथा जीवन को व्यावहारिक बनाने की दृष्टि से काव्य मे नीति को अनिवार्य माना जाने लगा। लगभग यही परपरा रीतिकाल मे भी बनी रही। चमत्कारप्रदर्शन के लिये बल्कि नीतियो का अधिक प्रयोग किया जाने लगा।

रीतिकाल मे जहाँ भक्ति, वीर, शृगार मुक्तक लिखे गए वहीं नीतिमुक्तको की रचना भी कम नही हुई। नीतिमुक्तको की अपनी विशेषताएँ है। नीतिमुक्तक काव्य मे जीवन के विविध अनुभवो का तटस्थ रूप से स्मरणीय शब्दो मे प्रकाशन होता है। जीवन और प्रकृति के व्यापारो को देखकर कवि की सारग्राहिणी बुद्धि कुछ निष्कर्ष निकालती है जो मनोरजक होते हुए ज्ञानवर्धन एव पथनिर्देशन का कार्य करते है। नीतिमुक्तक या सूक्तियो के लिये छोटे छद ही अधिक उपयोगी होते है इसलिये दोहा, सोरठा, सवैया, कवित्त, कुंडलिया आदि छंदों का प्रयोग किया जाता है।

नीतिमुक्तककारो ने अपनी रचना को सख्या के अनुसार पच्चीसी, बत्तीसी, छत्तीसी आदि नाम दिए है। ये रचनाएँ मुक्तक काव्य है जो विषय के आधार पर नीतिमुक्तक कहे जा सकते है। यह काव्य विभिन्न शैलियो मे लिखा गया है। इसका साहित्यिक मूल्य किसी भी प्रकार के अन्य काव्य से कम नही है। कुछ प्रमुख नीतिमुक्तककार निम्नलिखित है—

गोपालचद्र मिश्र, वृद, वैताल, घाघ, गिरिधर कविराय, अली मुहिब खाँ, प्रीतम, सम्मन, दीनदयाल गिरि, बाँकीदास, भूधरदास, कृपाराम, आदि।

विनोद काव्यधारा

हास्य विनोद मनुष्य के स्वभाव का एक अंग है, अत यह उसके प्रारभिक साहित्य वेद से ही चलता आ रहा है। सस्कृत मे तो विनोदकाव्य के उदाहरण पर्याप्त मात्रा मे मिलते है। हिंदी के आदिकाल मे यह सस्कृत परपरा से आया और हिंदी मे भी विनोदकाव्य लिखे जाने लगे। भक्तिकाव्य मे भी जगह जगह विनोद के पुट है पर रीतिकाव्य मे विनोद को बहुत बडा स्थान प्राप्त हुआ। शैली की दृष्टि से विनोदकाव्य के चार भेद है—शुद्ध हास्य, व्यग, भँड़ौआ, अन्योक्ति। रीतिकालीन विनोदकाव्य बड़ा ही मार्मिक और चुभनेवाला है। सभी कवियो की रचनाओ मे कुछ न कुछ व्यग विनोद मिलता ही है किंतु निम्नलिखित कवि इसके लिये विशेष प्रसिद्ध है—

सेनापति, सुदरदास, बिहारी, हरिनाथ, गोपालचद्र मिश्र, बेनी प्रीतम, श्रीपति, पद्माकर, गिरिधर कविराय, घाघ, ठाकुर, बोधा ग्वाल आदि। घाघ ने ग्रामीण जीवन और खेती सबधी कार्य व्यापारो को लेकर बडी ही मार्मिक चुटकियाँ ली है।

विविध

इन प्रमुख काव्यधाराओं के अतिरिक्त कुछ और भी प्रकार के काव्य रीतिकाल मे लिखे गए, जैसे परिचई साहित्य, वार्ता साहित्य आदि। टीका तथा अनुवाद साहित्य की भी एक परपरा थी और रीतिकाल मे कई सस्कृत ग्रथो की टीकाएँ लिखी गई। इसी काल मे दक्षिण मे दक्खिनी हिंदी की परपरा भी चल रही थी जिसमे काफी बड़े परिमाण में साहित्यनिर्माण हो रहा था। गद्यलेखन का भी प्रारभ हो चुका था और गद्य मे रचनाएँ लिखी जा रही थीं। इस प्रकार रीतिकाल मे रीतिकाल के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के काव्यों और रचनाओं की परपराएँ एक साथ चलती रही।

द्वितीय खंड

रीतिमुक्त शृंगारकाव्य

प्रथम अध्याय

रीति-शृंगार-काव्य के विभिन्न रूप

क—रीतिमुक्त साहित्यसर्जन—प्रेरणा और वर्गीकरण रीतिमुक्त साहित्य का सर्जन मूलत. इस कारण से हुआ कि तत्कालीन साहित्य मे अत्यधिक मात्रा मे रूढ़िबद्धता का समावेश हो गया था। चाहे वह शृंगारकाव्य हो, चाहे भक्तिसाहित्य, सभी प्रकार के साहित्य के अंतर्गत एक ऐसी परिपाटीबद्धता चल गई थी कि उसके आधार पर कविता करना ही महत्वपूर्ण समझा जाता था और स्वतंत्र रीति मे काव्य का कोई श्रेय नही था। रस, छंद, अलंकार आदि के लक्षणों के आधार पर कविता करना कवियों का मुख्य विषय बन गया था। जनता तथा राजदरबारो मे इसी रीतिबद्ध काव्य का सम्मान था। समकालीन परिस्थिति से स्पष्ट है कि उस समय शृंगार रस को विशेष महत्व दिया जाता था। ऐसी दशा मे शृंगार भी एक बँधी बँधाई परिपाटी मे ही वर्णित होता था।

साहित्य के अंतर्गत कोई नई प्रतिभा बँधकर कार्य नही कर सकती। अत प्रतिभासंपन्न कवियों के लिये यह बड़ा स्वाभाविक था कि वे परिपाटी को तोड़कर स्वतंत्र रीति से रचना करे। इसी स्वच्छंदतावादी चेतना ने रीतिस्वच्छंद शृंगारिक काव्यरचना को प्रेरणा दी। वास्तव मे यह रीतिमुक्त होने की छटपटाहट रीतिकाल के प्रारंभ मे नहीं मिलती, वरन् वह इस युग के उत्तरार्ध मे विकसित हुई है। बात यह हुई कि प्रारंभ मे तो प्रतिभासंपन्न कवियो ने रीतिलक्षणो के आधार पर उत्तम रचनाएँ प्रस्तुत की। परंतु आगे चलकर यह लक्षण की परिपाटी एक लकीर बन गई और उसी का अनुगमन अधिकांश कवि करने लगे। जिन कवियों मे विशेष काव्यप्रतिभा नही थी, उन्होंने भी रीतिलक्षणो को सामने रखकर रचना करना प्रारंभ कर दिया और एक ही प्रकार की रचनाएँ इतनी संख्या मे हुई कि उनमे एकरूपता आ गई। इसी को लक्ष्य करके ठाकुर कवि ने कहा —

> सीख लीन्हो मीन मृग खंजन कमल नैन
>
> सीख लीन्हो जस औ प्रताप को कहानो है।
>
> सीख लीन्हो कल्पवृक्ष, कामधेनु, चिंतामणि,
>
> सीख लीन्हो मेरु औ कुबेर गिरि आनो है।
>
> ठाकुर कहत याकी बड़ी है कठिन बात,
>
> याको नहीं भलि कहूँ बाँधियत बानो है।
>
> ढेल सो बनाय जाय मेलत सभा के बीच,
>
> लोगन कबित्त कीबो खेल करि जानो है॥

इससे स्पष्ट है कि वे रीतिबद्धता को काव्य के लिये आवश्यक नहीं मानते थे, वरन् अनुभूति का स्वच्छंद रूप मे प्रकाशन उनकी दृष्टि से अधिक महत्व का था जिसमे किसी का अनुगमन न होते हुए भी कवि की मौलिकता प्रकट हो सकती थी।

इसी प्रेरणा को लेकर उत्तर रीतिकाल मे कुछ कवियों ने स्वच्छद या रीतिमुक्त काव्यरचना की प्रवृत्ति विकसित की जिसका विस्तृत विवेचन भूमिका भाग मे प्रथम खंड के अतर्गत किया गया है। परिस्थितिजन्य इस वातावरण के अतिरिक्त रीतिमुक्त शृगारी कवि एक प्रकार से प्रेमी कवि थे और जहाँ एक ओर इनकी रचना की प्रेरणा अनुभूति की नवीनता और कल्पना के स्वच्छद विलास से प्राप्त हुई थी, वहो दूसरी ओर ये लौकिक मर्यादाओ से भी बँधकर चलना पसद नही करते थे। ये प्रेम के क्षेत्र मे स्वच्छदता के समर्थक थे। जो प्रमुख चार पॉच कवि अर्थात् आलम, ठाकुर, बोधा, घनानद, द्विजदेव इस धारा मे परिगणित होते है, उनमे द्विजदेव को छोडकर शेष सभी कवि स्वच्छद प्रेम के पथिक भी थे। इस स्वच्छंद मार्ग मे इन्हे बड़ी कठिनाइयाँ भी उठानी पड़ी थी। फिर भी ये उनसे बाधित होनेवाले कवि नही थे वरन् बाधाओं से जूझते हुए और उनकी उपेक्षा करते हुए भी अपने इच्छानुसार काव्यरचना करनेवाले जीव थे। यह बात आगे उल्लिखित इनके जीवनचरित मे पूर्णतया स्पष्ट हो जाती है। इसलिये सौदर्य और प्रेम का उत्कट आकर्षण भी इनकी रचना का मूल स्रोत था। सौदर्य पर रीझकर अथवा गुणो से प्रभावित होकर इन्होने किसी को अपने प्रेम का आलंबन बनाया था और उस आलंबन के प्रति इतने ईमानदार रहे कि सामाजिक सुख, सुविधा और साधनो का भी त्याग करके इन्होने अपने प्रेम का निर्वाह किया। इसलिये इन रीतिमुक्त शृगारी कवियों का मूल प्रेरणा-स्रोत सौदर्य और प्रेम कहा जा सकता है। ये सौदर्य के उन्मत्त प्रेमी कवि थे। इनकी यह विशेषता थोडी मात्रा मे सूफी प्रेमाख्यानकार कवियो की रचनाओं से साम्य रखती है जो अपने प्रेमाख्यानो मे प्रेम को ही मूल जीवनतत्व स्वीकार करके उसकी पुष्टि और प्रचार किसी प्रेमाख्यान के माध्यम से करते है। मै समझता हूँ कि ये रीतिमुक्त शृंगारी कवि उनसे भी एक कदम आगे थे, क्योंकि इन्होने काल्पनिक आख्यानरचना करके किसी अन्य के प्रेमप्रसगो का चित्रण न करके स्वत उस उत्कट प्रेमभावना के आश्रय बने, जिसका उल्लेख और काल्पनिक वर्णन पूर्ववर्ती और समवर्ती प्रेमाख्यान काव्य मे हो रहा था। इन्होने इस प्रेमभाव का स्वत आस्वाद प्राप्त किया और उसी का परिणाम इनका सहज किंतु उत्कृष्ट काव्य है।

महाराज द्विजदेव की स्थिति थोड़ी भिन्न मानी जा सकती है, क्योंकि इन्होंने अपनी अनुभूति का आलबन किसी लौकिक या अलौकिक पात्र को न बनाकर प्रकृति को बनाया है। द्विजदेव का प्रकृतिवर्णन अत्यत स्वच्छद है। इसमे उन्होने रीतिकालीन परपरागत प्रकृति के रूप को न लेकर स्वच्छद शैली म उसका वर्णन किया है। वे प्रकृति के सहज और प्रफुल्ल सौदर्य पर मुग्ध होनेवाले कवि थे। अतः उन्हे प्रकृति का स्वच्छद प्रेमी कवि कहा जा सकता है।

रीतिमुक्त शृंगार काव्य के विभिन्न रूप

वर्गीकरण—रीतिमुक्त शृंगारी कवियों की रचनाएँ उनकी प्रकृति के अनुसार मुक्तक ही होनी चाहिए। और इस दृष्टि से इनकी रचनाओं में मुक्तक काव्य की विशेषता प्रचुर मात्रा में विद्यमान है। परन्तु मुक्तक और स्वच्छंद प्रेमाभक्ति के लिये कुछ कवियों ने थोड़ा बहुत कथानक का भी सहारा लिया है। यों तो इन रीतिमुक्त शृंगारी कवियों के काव्य में विविध विषयों का समावेश हो जाता है, जैसे—भक्ति, वैराग्य, नीति, कृष्णलीला आदि। परन्तु मूलत इनका विषय शृंगार ही है। अत मोटे तौर से हम इन कवियों के ग्रंथों को दो भागों में विभाजित कर सकते हैं—एक प्रबंधकाव्य और द्वितीय मुक्तक रचनाएँ।

प्रबंधकाव्य वास्तव मे दो ही कवियों ने लिखे, एक आलम और दूसरे बोधा। आलम के माधवानल कामकंदला तथा श्याममनेही ये दो प्रबंधकाव्य है। बोधाकृत विरहवारीस या माधवानल कामकंदला नामक प्रबंधकाव्य है। आलम और बोधा दोनों ने माधवानल कामकंदला की कथा का वर्णन किया है। आलमकृत कथा अधिक विस्तृत और जटिल है, जबकि बोधाकृत कामकंदला अधिक सीधी और सरल है। आलमकृत कामकंदला प्रबंध तेरह खडों मे और बोधाकृत प्रबंध नौ खडों और इकतीस तरंगों में विभाजित है। दोनों प्रबंधों के अतर्गत स्वच्छंद प्रेम का चित्रण है। आलम की अपेक्षा बोधा की संवेदना अधिक तीव्र जान पडती है। ऐसा मालूम पडता है कि बोधा ने तीव्र भावावेश मे कथाप्रबंध की रचना की जबकि आलम की कथा सस्कृत कथा के आधार पर है। वर्णन की दृष्टि से भी आलम की अपेक्षा बोधा का वर्णन अधिक विस्तृत और सूक्ष्म है। अनेक घटनाएँ और प्रसग बोधा की कथा मे अधिक मिलते है। इस प्रकार दोनों की प्रेम-कथा का कथानक एक होता हुआ भी दोनों की रचना अलग अलग और मौलिक है।

आलम का दूसरा ग्रंथ श्याममनेही है। इसमें कृष्ण और रुक्मिणी का आख्यान है। कृष्ण और रुक्मिणी की कथा सुप्रसिद्ध है जिसके अतर्गत कुंदनपुर के भीष्मसेन की रूपवती कन्या रुक्मिणी के विवाह का प्रसग है। रुक्मिणी का भाई रुक्म उसका विवाह चदेरी के राजा शिशुपाल से करना चाहता था परन्तु रुक्मिणी ने सदेश भेजकर श्रीकृष्ण से निवेदन किया और उन्होंने समय पर आकर रुक्मिणी का हरण किया। इसके अतर्गत रुक्मिणी के उत्कट प्रेमभाव और कृष्ण द्वारा उसके उद्धार का वर्णन है। ये ही तीन प्रबंधकाव्य स्वच्छंद कवियों के प्राप्त होते है।

मुक्तक रचनाएँ—जैसा पहले ही कहा जा चुका है, रीतिमुक्त धारा के कवियों की मूल प्रकृति मुक्तकरचना की है। इसलिये अधिकाश रचनाएं इन कवियों की मुक्तक रूप मे ही प्राप्त होती है। ये मुक्तक रचनाएं निम्नलिखित है —

आलमकृत—आलमकेलि,

घनानंदकृत--घनानंद कवित्त, घनानंद पदावली, सुजानहित, वियोगबेलि और इश्कलता (रसकेलिवल्ली),

बोधाकृत--इश्कनामा, बिरहवारीश,

ठाकुरकृत--ठाकुर ठसक, ठाकुर सतक।

वास्तव मे ये दोनो रचनाएँ एक ही है। ठाकुर ठसक मे सतक की अपेक्षा कुछ छंद अधिक है।

द्विजदेवकृत--शृंगारबतीसी, और शृंगारलतिका।

इन कवियों की मुक्तक रचनाओं को छोडकर अन्य अनेक रीतिस्वच्छंद मुक्तक रचनाएँ है, जिनकी इसी प्रकार की विशेषताएँ मिलती है। ये रचनाएँ पचीसी, बतीसी, बावनी, आदि के रूप मे है। मानकृत सयोगपचीसी और वृंदकृत पवनपचीसी, नंदराय-कृत नंदबतीसी तथा कृष्ण कवि कृत कृष्णबावनी आदि।

द्वितीय अध्याय

रीतिमुक्त शृंगारकाव्य की विशिष्ट प्रवृत्तियाँ

रीतिमुक्त शृंगारी कवियों में प्रधानतया आलम, घनानंद, ठाकुर और बोधा उल्लेखनीय हैं जिनका समय प्रस्तुत कालखंड के अंतर्गत आता है। इन कवियों ने जो शृंगारकाव्य लिखा वह रीतिबद्ध शृंगारकाव्य से भिन्न, स्वच्छंद और उदात्त भावना का पोषक है। इन कवियों के काव्य में प्रेम का आनुभूतिक पक्ष प्रधान है जिसके वर्णन में वे किसी प्रकार शास्त्रीय अथवा लोकमर्यादाओं का अनुसरण नहीं करते। इन कवियों की मूल प्रवृत्ति रूपसौंदर्य पर रीझना, सौंदर्य का मार्मिक संवेदनात्मक वर्णन करना तथा प्रेम के विरहपक्ष को विशेष विवृति देना है। तथ्यात्मक भूमिका पर ये कवि ऐसा इसलिये कर सके क्योंकि इन सभी को प्रेम की अनुभूति जीवन में प्राप्त हुई और इनकी कविता निजी प्रेमानुभूति पर आधारित है। अतः तीव्र स्वानुभूति और वैयक्तिकता का स्वर इनके काव्य में प्रधानतया व्यंजित हुआ है।

यद्यपि इन कवियों में बहुत सी विशेषताएँ रीतिकाव्यकारों की सी पाई जाती है, जैसे सौंदर्यचित्रण, क्रीडाविलास, प्रकृति का उद्दीपन रूप में चित्रण, मार्मिक भावव्यंजना आदि, परंतु इस धारा के कवियों की विशिष्ट प्रवृत्तियों को हम निम्नलिखित रूपों में देख सकते हैं---

१---रीतिस्वच्छंदता, २---काव्यगत विशिष्ट दृष्टिकोण, ३---भावप्रवणता, ४---वैयक्तिकता, ५---प्रेमभावना का प्राधान्य और ६---विरहानुभूति।

(१) रीतिस्वच्छंदता---

रीतिमुक्त धारा का काव्य किसी काव्यशास्त्रीय संप्रदाय से आबद्ध नहीं है। यद्यपि इस धारा के कवि काव्यशास्त्रीय ज्ञान से संपन्न थे फिर भी इन्होंने अलंकार, रस, रीति, वक्रोक्ति आदि किसी परिपाटी का अनुसरण नहीं किया। उसका कारण इनकी अनुभूतिगत विशेषता, प्रतिभा की मौलिकता और स्वच्छंद प्रकृति है; इन्होंने अपनी काव्यप्रतिभा को स्वच्छंद अभिव्यक्ति प्रदान कर रीतिपरिपाटी से अपने को मुक्त रखा। इसका मूल कारण इनका काव्यगत मौलिक दृष्टिकोण था जिसपर हम आगे विचार करेंगे। रीतिस्वच्छंदता का तात्पर्य केवल यही नहीं है कि लक्षणरहित काव्यरचना की जाय। बहुत से इस युग के कवि हैं जिन्होंने मुक्तक रचना की, परंतु उनके समुख कोई न कोई काव्यशास्त्रीय परिपाटी विद्यमान थी और उनके काव्य में उसकी प्रवृत्ति भी देखी जा सकती है। बिहारीसतसई तथा मतिराम, रामसहाय, रसनिधि, रसलीन आदि के मुक्तक दोहे भी रस, अलंकार, नायिकाभेद आदि को दृष्टिपथ में रखकर लिखे गए हैं, इसलिये लक्षण

न रहने पर भी हम उनके काव्य को रीतिस्वच्छद नही कह सकते । रीतिस्वच्छद धारा के कवियों ने किसी भी प्रकार की प्रतिबद्धता को स्वीकार नही किया । उन्होने अपनी भावना का स्वच्छद प्रकाशन किया है । स्वच्छद प्रेम और उसकी स्वच्छद अभिव्यजना, दोनो की ही साधना करनेवाले ये कवि रीतिपरपरा के दरबारी कवियो से नितात भिन्न है । इसीलिये रीतिस्वच्छदता इनके काव्य की विशिष्ट प्रवृत्ति मानी जा सकती है ।

(२) काव्यगत दृष्टिकोण --

रीतिमुक्त शृगारकाव्य के रचयिता कवियो का दृष्टिकोण भी विशिष्ट प्रकार का था । वे काव्यप्रवाह को किसी प्रकार की लीक या परपरा मे बाँधकर नही चलना चाहते थे । एक प्रकार से इन कवियो का अनुभव बहुत कुछ आधुनिक स्वच्छदतावादी कवियो के समान ही था । कविता को ये आयाससभूत न मानकर स्वत स्फूत या स्वानुभूतिप्रेरित मानने के पक्ष मे थे । इन लोगो के विचार से पिटी पिटाई लकीर पर और आचार्यों से सीखकर छदरचना करना कोई महत्व नही रखता था । परपरा से प्राप्त अप्रस्तुतो को जोडकर छद रच देना उनकी दृष्टि से काव्य नही था । कवित्व शिक्षण से प्राप्त गुण नही वरन् वह सहज प्रतिभा का विलास है । इसी के परिणामस्वरूप इस धारा के कवियो का काव्य अधिक मार्मिक है । न वह अलकारबोभिल है और न चमत्कारमुक्त है, वरन् सवेदना को स्पर्श करनेवाला है । घनानद का दृष्टिकोण कवित्व को स्वत: स्फूर्त रचना के रूप मे स्वीकार करने का था क्योकि छद उनका साध्य नही, साधन मात्र था । उनका साध्य उत्कट प्रेमानुभूति थी । उनकी काव्य सबधी धारणा बड़ी उदात्त है जिसको निम्नलिखित छद मे देखा जा सकता है--

तीछन ईछन बान बखान सो पैनी दसाहि लै सान चढ़ावत ।
प्राननि प्यासे, भरे अति पानिप, मायल घायल चोप बढ़ावत ।
है घनआनँद छावत भावत जान-सजीवन-ओर ते आवत ।
लोग है लागि कवित्त बनावत मोहि तो मेरे कवित्त बनावत ॥

इस धारा के कवियो का दृष्टिकोण केशवदास, सेनापति जैसे रीतिकवियो से भिन्न था । इसी कारण यह कहा गया है कि इनकी कविता को समझने के लिये हृदय और आँखों मे प्रेम की पीडा होनी चाहिए । यही प्रेम की पीड़ा इन कवियो की कविता की प्रेरक है ।

(३) भावप्रवणता--

रीतिस्वच्छद शृगारकाव्य की तीसरी विशेषता उसकी भावप्रवणता मे देखी जा सकती है । क्योंकि इस धारा के कवि हृदय और आँखों में प्रेम की पीड़ा लेकर लिखते थे, इसीलिये उनकी रचना मे एक भावप्रवाह देखा जा सकता है । भावदशा मे ये इतने विभोर थे कि इनकी भाषा मे अभिव्यंजना की भगिमा स्वत उपस्थित हो जाती

थी। इनके काव्य को पढ़कर ऐसा लगता है कि अपार भावराशि को ये स्वच्छंद भाव में उँडेलते हुए कभी तृप्ति का अनुभव नहीं करते। एक विशेष प्रकार का आवेग इनके काव्य में देखने को मिलता है। कहा जा सकता है कि ये हृदय के कवि थे। अनुभूति इनकी मूल प्रेरक शक्ति थी। जीवन की यथार्थता की अपेक्षा भावुकता से युक्त इनका दृष्टिकोण था इसीलिये किसी भी वस्तु को देखने का इनका अपना निजी ढंग है। इनकी भावप्रवण काव्यधारा में एक विलक्षण माधुर्य विद्यमान है।

(४) वैयक्तिकता--

अनुभूतिप्रधान और भावुक दृष्टिकोण का आधार स्वच्छंद धारा के कवियों की वैयक्तिकता थी। इन्होंने जिस वस्तु का वर्णन किया है वह वैयक्तिक अनुभव और दृष्टि-कोण के आधार पर। वस्तु को देखने की इनकी दृष्टि तटस्थ नहीं थी। और इस कारण ये बिहारी, भूषण, मतिराम, पद्माकर आदि रीतिपरम्परा के कवियों से भिन्न पड़ते हैं। वैयक्तिकता के कारण इन कवियों में स्वाभिमान और मौलिकता देखने को मिलती है। अंधानुकरण न करके जीवन और जगत् को जैसा इन्होंने अनुभव किया वैसा ही व्यक्त किया। इनकी अनुभूति निजी थी, किसी अन्य की अनुकृति नहीं। इसीलिये इनकी अभिव्यक्ति में भी निजीपन दिखलाई पड़ता है। वैयक्तिकता के कारण इन कवियों के काव्य में विशेष मार्मिकता समाविष्ट है। साथ ही, वैयक्तिकता इनके स्वच्छंद विचारों और व्यक्तित्व को स्पष्ट करनेवाली है।

(५) प्रेम का प्राधान्य--

रीतिस्वच्छंद शृंगारकाव्य में मूल प्रतिपाद्य प्रेम है। रीतिकवियों के समान यह नायक नायिका के प्रेम का चित्रण करनेवाला शृंगार नहीं, बल्कि स्वतः अनुभूत प्रेम है। जिस प्रेम को इन कवियों ने अपने हृदय के आंतरिक स्पंदन में प्रतिक्षण अनुभव किया था तथा जिसकी तीव्रता में आकुलता और छटपटाहट की पीड़ा सही थी उसी का वर्णन इनके काव्य में प्रधानतया प्राप्त होता है। इस धारा के कवियों का प्रेम स्वानुभूति बनकर आया है। प्रेम में कभी ये आनंद और मस्ती का अनुभव करते हैं तो कभी उसकी तीव्र वेदना को भी इन्हें झेलना पड़ता है। ये कवि प्रेममार्ग के पथिक थे। प्रेम के इसी स्वरूप के कारण कुछ लोग इन्हें सूफी परंपरा में परिगणित करते हैं। सूफी साधकों की प्रेम की पीर का प्रभाव इनमें भले ही देखा जा सकता है, पर वास्तव में यह प्रेम इनकी अपनी साधना का परिणाम था। यह प्रेम सब कुछ त्यागकर भी इन्हें वाञ्छनीय था। इसीलिये इन कवियों की ऐसी उक्तियाँ मिलती हैं जो प्रेम को अत्यंत उदात्त स्वरूप प्रदान करती है। बोधा ने इसीलिये कहा--'यह प्रेम का पंथ कराल महा, तरवार की धार पर धावनो है।'

जो प्रेम इन कवियों का प्रेरक तत्व था उसे हम वासना और विलास के स्तर से

बहुत ऊँचा उठा हुआ पाते हैं। इन कवियों का प्रेम संबंधी दृष्टिकोण शरीरी और मासल न होकर सूक्ष्म और भावनात्मक था। क्रमश उसमे पवित्रता, दिव्यता और महत्ता आती गई क्योकि उसका मूल आधार समर्पण और त्याग हो गया। इनके प्रेमवर्णन मे सामान्य अभिलाषा से लेकर उपालभ और उन्मुक्तता की स्थिति तक देखने को मिलती है। पर ये वर्णन शास्त्रीय परिपाटी के न होकर स्वच्छद और स्वानुभूत रूप मे है। प्रेम का इस रूप मे वर्णन इसीलिये इस धारा के कवियो की विशिष्ट प्रवृत्ति मानी जा सकती है।

(६) विरहानुभूति--

प्रेमभावना की परिपक्वता बिना विरह के नही होती। विरह द्वारा ही प्रेम का रग स्थायित्व ग्रहण करता है। इसीलिये स्वच्छद शृगारधारा के प्रमुख कवियो म विरह की प्रधानता है। इनका यह भी अनुभव था कि जिसने विरह का अनुभव नही किया, विरह की पीडा नहीं सही, वह प्रेमपथ का सच्चा पथिक नही। विरह की तपन और तड़पन के कारण ही घनआनद आलम, बोधा जैसे कवियो की रचनाओ मे एक विशेष निखार दिखाई देता है, ठीक उसी प्रकार का, जो सोने मे उसे तपाने से आ जाता है। इनकी वियोगभावना से स्पष्ट होता है कि वास्तव मे ये सच्चे प्रेमी थे और इस नाते ऐसा लगता है कि इनकी अनुभूति की मूल स्थिति सयोग नही वियोग ही बन गई थी। वियोग की चिरतन कामना इनके काव्य मे देखने को मिलती है। इसी भावना से भरकर घनआनद ने कहा--

तेरे बाँटे आयो है अंगारनि पै लोटिबो

और बोधा ने लिखा---

जो वियोग जग माँहि एक बेर मरते परै।
तौ हिन तजिए नाहि इश्क सहित मरिबौ भलो।

रीतिस्वच्छद धारा की विरहभावना पर सूफी प्रभाव परिलक्षित होता है। घनानद के काव्य मे वेदना की गभीरता विद्यमान है जो सूफी कवियो के प्रेम की पीर से तुलनीय है। आलम और बोधा मे भी वह किसी मात्रा मे प्राप्त होती है। यद्यपि इस धारा के कवि सूफी कवियो की विरहभावना से प्रभावित थे, फिर भी यह विरहभावना इनकी स्वानुभूत है और यह रीतिपरपरा के कवियो द्वारा वर्णित विरह से भिन्न है। रीतिकवि जहाँ उसका वर्णन बँधी बंधाई परिपाटी मे करता है वहाँ इनका वर्णन स्वानुभूत और निजी है। रीति कवि जहाँ विरहव्यथा का वर्णन नायक नायिका पर डालकर करता है वहाँ रीतिस्वच्छद कवि स्वय अपनी अनुभूति के रूप मे उसे व्यक्त करते हैं। इसके अतिरिक्त रीतिमुक्त कवियो मे ऊहात्मकता न होकर सहज भावुकता है जिसके कारण थोड़ा कहने पर भी उसमे बड़ा तीव्र और व्यापक प्रभाव मिलता है। इस प्रकार विरह का स्वानुभूत वर्णन रीतिस्वच्छद शृगार काव्यधारा की एक विशिष्ट प्रवृत्ति मानी जा सकती है।

उपर्युक्त विशिष्ट प्रवृत्तियो के कारण रीतिस्वच्छद शृगारी काव्य सहज एवं मार्मिक हो गया है।

तृतीय अध्याय

अभिव्यंजनासौष्टव और काव्यशिल्प

रीतियुगीन काव्य मूलतः सौष्ठववादी और शिल्पप्रधान काव्य है। इस युग के काव्य में कवि का मूल उद्देश्य अपनी उक्ति को चमत्कारपूर्ण और प्रभावशील बनाना था। यद्यपि यह प्रवृत्ति रीतियुग के समस्त काव्य मे दिखलाई देती है तथापि प्रमुखतया इसके दर्शन हमे आलंकारिक और शृंगारिक रचनाओं मे प्राप्त होते है। इन रचनाओं के अंतर्गत भी जो कृतियां रीतिबद्ध है, उनमे सायास चमत्कार लाने का प्रयत्न परिलक्षित होता है, परंतु रीतिमुक्त शृंगारकाव्य के अंतर्गत यह अभिव्यंजनासौष्ठव और काव्यशिल्प अपने सहज और अकृत्रिम रूप मे विद्यमान है। रीतिमुक्त शृंगारकाव्य मे ऐसा लगता है कि कवि अभिव्यक्ति की उस स्वाभाविक भूमिका पर पहुंच गया है, जहां उसकी रचना अपने जन्मजात सौष्ठव और शिल्पगत वैशिष्टय को लेकर उदय होती है। इसलिये इन कवियों की अभिव्यंजना और शिल्प के लिये रचनाओं के अंतर्गत कहीं उस प्रकार के शीर्षक प्राप्त नही होते जैसे रीतिबद्ध कवियों की रचनाओं मे मिलते है। रीतिमुक्त शृंगार-काव्य के अभिव्यंजनासौष्ठव और काव्यशिल्प को हम निम्नलिखित शीर्षकों मे स्पष्ट करना चाहेंगे—

क—शब्दगत सौष्ठव (भाषालालित्य)

ख—उक्तिगत सौष्ठव (अलंकृति)

ग—बिंबयोजना,

घ—प्रतीकयोजना

ङ—प्रभावक्षमता।

क—**शब्दगत सौष्ठव**—रीतियुगीन कवि का दृष्टिकोण किसी विचार या भाव को जैसे तैसे प्रकट करना मात्र नही है वह इस मत से सहमत नहीं है कि कविता मे भाव और विचार ही प्रधान है, भाषा और अभिव्यंजना नही। रीतियुगीन कवि भाषा और शब्द के प्रति विशेष जागरूक है। उसका एक एक शब्द परखा हुआ, अत्यन्त परिमार्जित और सुष्ठु होता है। सहसा हम उस शब्द के स्थान पर दूसरे शब्द नहीं रख सकते। और रीति-मुक्त कवियो के संबध मे तो यह कहा जा सकता है कि एक ओर तो इनकी भाषा प्रचलित टकसाली ब्रजभाषा है और दूसरी ओर वह अत्यंत व्यंजक, अर्थगर्भित, मधुर और प्रांजल भी है। इन कवियों की भाषा में कहीं भी आयास नहीं दिखलाई देता। उसमे वक्रता या भंगिमा अनायास आई है। यह भाषा साभिप्राय एवं संगीत और लय के गुणों से भी युक्त है।

रीतिमुक्त शृंगारकाव्य में शब्द का अपना व्यक्तित्व उभरकर आया है और यह शब्दव्यक्तित्व इतना ललित, मधुर और मार्मिक है कि हमारा ध्यान शब्द की मोहकता में ही अटक जाता है और समस्त वाक्य या भाषा को देखने का अवसर ही नहीं मिलता। इन रचनाओं में शब्दों के अंतर्गत एक अद्भुत वक्रता, लोच, ध्वनिगत आभा और अर्थगत व्यंजना देखने को मिलती है जिसके कारण हमारी कल्पना मे न केवल बिंबावली परिचालित होने लगती है, वरन् हमारी अनुभूति भी उनके मर्मस्पर्शी प्रभाव से आंदोलित हो उठती है। इन कवियो की भाषा मे बहुत अधिक शुद्धतावादी दृष्टिकोण नही मिलता, वरन् जो भी प्रचलित शब्दावली है, उसका ये स्वच्छंद प्रयोग करते है और उस स्वच्छंद प्रयोग मे ही सहज मार्मिकता भरी रहती है। इस प्रकार से इन कवियो की रचनाओं में जो शब्दगत सौष्ठव है, वह लालित्य, लोच, आभा और व्यंजकता से युक्त है। कहा जा सकता है कि रीतिमुक्त शृंगारकाव्य मे ब्रजभाषा का एक एक शब्द मणियो के समान अलग अलग अपनी आभा बिखेरता जान पडता है।

रीतिमुक्त शृंगारकाव्य के पाँच प्रमुख कवियो मे से शब्दप्रयोग की सबसे उत्कृष्ट चमत्कृति घनानद और द्विजदेव की रचनाओ मे प्राप्त होती है। आलम और बोधा सहज बोलचाल की शब्दावली के पक्षपाती है, परंतु ठाकुर के शब्दप्रयोग अत्यत प्रभावपूर्ण है। यदि हमे शब्दसौष्ठव के प्रयोग की उत्कृष्टता देखनी है तो घनानद की रचना ही विशेष महत्वपूर्ण है। उनके शब्दगत सौष्ठव के कुछ उदाहरण दिए जाते है

पानिप पूरी खरी निखरी रस रासि निकाई की नीवहि रोपै।
लाज लडी बडी सील गसीली सुभाय हँसीली चितै चित लोपै॥

उक्त पक्तियो मे **पानिप पूरी, निकाई की नीवहिं रोपैं, लाज लड़ी, सुभाय हँसीली, चित लोपै** ये सभी शब्द अपनी विशिष्टता लिए हुए है। इनमे लालित्य, ध्वन्यात्मकता, बिंबव्यापार सब विद्यमान है, फिर भी शब्दो के प्रयोग मे इतनी कसावट है कि किसी भी शब्द को हटाया नही जा सकता। इसी प्रकार घनानद के अनेक शब्द है, जो अत्यत समर्थ और गहरी व्यजकता से युक्त है। एक और उदाहरण द्रष्टव्य है :

रति साँचे ढरी अछवाई भरी पिडुरीन गुराइयै पेखि परै।
छबि घूमि घुरै न मुरै मुरवान सों लोभी खरो रग भूमि खरै।
घनआनँद एँड़िनि आनि मिडै तरवानि तरे ते मरै न डरै।
मन मेरो महाउर चायनि च्वै तुव पायनि लागि न हाथ लगै॥

इस छद मे पदो का वर्णन और उनके विभिन्न प्रत्यगो का सौदर्य बडी चारु शब्दावली मे व्यक्त किया गया है। **साँचे ढरी, अछवाई, गुराइयै, छबि घूमि घुरै, भूम, चायनि च्वै, पायनि लागि न हाथ लगै** इन शब्दो के प्रयोग बडे सार्थक है। घनानद की मुहावरेदार भाषा और शब्दो की बारीक अभिव्यक्तिक्षमता अद्वितीय है। उनका

प्रत्येक छंद शब्दों की मणिग्राभा मे जगमगाता दिखलाई देता है। यद्यपि अन्य कवि भी शब्दप्रयोग की विशेषता अपनाए हुए है, तथापि घनानद की उच्च शब्दप्रतिभा अन्यत्र प्राप्त नहीं होती। द्विजदेव का शब्दप्रयोग घनानद जैसा व्यजक और अर्थगर्भित तो नहीं है, परंतु उनका शब्दचयन सानुप्रास होने के कारण नादसौदर्य प्रकट करनेवाला है। नादात्मकता और सगीत एवं लयात्मक विशेषता द्विजदेव के छदो मे बराबर गूँजती है। उदाहरण के लिये एक छद निम्नलिखित है :

"चूनरी सुरग साजि सोही अग अंगनि,
उमगनि अनंग अगना लौ उमहनि है।
झुकि झुकि झाँकनि झरोखन ते कारी घटा,
चौहरे अटा पै बिज्जु–छटा-सी जगनि हैं॥

'द्विजदेव' सुनि सुनि सबद पपीहन के,
पुनि पुनि आनँद पियूष मैं पगनि है।
चावन चुभी सी मनभावन के अंक निन्है,
सावन की बूँदै ए सुहावनी लगति है॥"

उक्त छद मे प्रथम चार पक्तियो मे ऐसी शब्दझंकृति है जो न केवल नादसौदर्य उत्पन्न करती है, वरन् छद को एक विशेष प्रकार की गति प्रदान करती है। द्विजदेव के अधिकांश छदो मे शब्दप्रयोग की यह विशेषता पाई जाती है। इस प्रकार रीतिमुक्त शृंगारकाव्य में शब्दसौष्ठव अपने सहज और मोहक रूप मे परिव्याप्त है।

(ख) उक्तिगत सौष्ठव—शब्दसौदर्य की भाँति ही रीतिमुक्त शृगारकाव्य में हमें उक्तिसौष्ठव भी अपने सहज किंतु प्रभावशाली रूप मे प्राप्त होता है। उक्तिचमत्कार वास्तव मे काव्य मे अलकार का संपादन करता है। विविध प्रकार की अलकृति उक्तिचमत्कार ही है। काव्य को इस युग के कवियो ने उक्तिवैशिष्ट्य के रूप मे ही ग्रहण किया था। इसीलिये इनकी रचनाओ मे उक्ति की चातुरी देखने को मिलती है। रीतिबद्ध रचनाओं मे जहाँ इस प्रकार के छद विभिन्न अलकारो के सचेत उदाहरण है, वहाँ रीतिमुक्त शृंगारी कवि सहज रूप मे उक्तिचमत्कार को समाविष्ट करके अलकृति की गरिमा प्रदान करते हैं। इन कवियो की उक्तियो मे विशिष्ट भगिमा, व्यजकता और नव्यता प्राप्त होती है। इनमें अनेक प्रकार के अलकार पाए जाते हैं, पर यह दृष्टिकोण इन कवियो के अभिव्यंजनासौष्ठव को स्पष्ट करने के लिये विशेष उपयोगी नही है। अत: उक्तिचमत्कार का मार्मिक वैविध्य जो इन कविताओं मे मिलता है, वह विशिष्ट महत्व और प्रभाव रखनेवाला है। नीचे हम विभिन्न कवियो के कुछ उक्तिचमत्कार के उदाहरण दे रहे हैं :

आलम

(क) 'आलम आन न सैन लखै पिय को चितु तीय तिया चितु पी सौ।'

(ख) 'सुखी तुम कान ह्वौ जो आन की न चिता,
हम देखेऊ दुखित अनदेखेऊ दुखित है।'

(ग) 'रूप गुन आगरी तु नागरी ते आगे ह्वै कै,
तै जु डग भरी डगमग्यौ मन हरी को।'

घनानंद

(क) 'बुरो जिनि मानौ जौ न जानो कहूँ सीखि लेहु,
रसना कै छाले परै प्यारे नेह नाँव छ्वै।'

(ख) 'नेही दुखियान की यहै गति अनदघन,
चिना मुरझति, सहै न्याय रहै दूबरै।'

(ग) 'हँसि बोलन मे छवि फूलन की बरखा उर ऊपर जाति है ह्वै।'

(घ) 'भावने के रस रूपहि सोधि लै नीके भर्‌यौ उर कै कजरौटी।'

(ङ) 'बूड़ि बूड़ि तरे औधि थाह घनआनँद यो
जीव सूख्यो जाय ज्यो ज्यो भीजत मर्वरी।'

(च) 'पौन सो जागति आगि सुनी ही पै पानी सो लागति आँखिन देखी।'

बोधा

(क) 'यह प्रेम को पथ कगार महा तरवार की धार पै धावनो है।'

(ख) 'विष खाइ मरै कै गिरै गिरि ते दगादार ने यारी कबौ न करै।'

(ग) 'बोधा सुनीति निबाह करै धर ऊपर जाके नही सिर होऊ।
लोक की भीति डेरात जो मीति तो प्रीति के पैड़े परै जनि कोउ।'

ठाकुर—

(क) 'अब रहहै न रहहै यहौ समयो बहती नदी पाँव पखार लै री।'

(ख) 'ह्वै है नही मुरगा जिहि गाँव भट्‌ तिहि गाँव का भोर न ह्वै है।'

(ग) 'धिक कान जो दूसरी बात सुनै अब एक ही रंग रहो मिलि डोरो।
ऊधो जू वे अँखियाँ जरि जायँ जो साँवरो छाड़ि तकै तन गोरो।'

(घ) "कवि ठाकुर नेह को नेजन की उर मै अनि आनि खगो सो खगी।
अब गाँवरे नाँवरे कोई धरौ हम साँवरे रग रँगी सो रँगी।"

द्विजदेव—

(क) 'लै लै कछु रूप मनमोहन सो बोर, वै अहीरिनै गँवारी दौत हीरन बटाई में।'

(ख) 'ह्वै कै सुधा धाम काम विष को बगारै मूढ़।
ह्वै कै द्विजराज काज करत कसाई के॥'

(ग) 'जग देत दया करि ईस जोई, सोई कौछ पसारि गह्योई परै ।'
(घ) 'ऊपरि ही कछु राग लपेटे अहौ उर अन्तर के अति कारे ।'

उपर्युक्त पंक्तियो से यह स्पष्ट होता है कि रीतिमुक्त शृगार कवियो ने अपने महत्वपूर्ण विचारो और भावनाओं को कैसी सटीक सूक्तियो द्वारा व्यक्त किया है। ये सूक्तियाँ बडी स्मरणीय है और कथन की भगिमा को प्रभावशील बनानेवाली है। उक्ति की वक्रता इनमे ऐसी कान्ति भर देती है जिससे सारा का सारा छद निखर उठता है। यह उक्तिगत सौष्ठव अनेक स्थलो पर शब्दो के लाक्षणिक प्रयोग, तथा मुहावरा और लोकोक्तियो से सपन्न किया गया है, साथ ही अन्य अनेक स्थलो पर उनमे किसी न किसी प्रकार का आलकारिक सौदर्य भी है। इसके कारण ये पक्तियाँ विशेष प्रकार के अभि-व्यजना से मडित हो जाती है। रीतिमुक्त शृगारकाव्य मे यह सौष्ठव प्रचुर मात्रा मे विद्यमान मिलता है।

(ग) बिबयोजना—रीति शृगारकाव्य के प्रणेता कवियो की रचनाओ मे जितनी बिबसमृद्धि है उतना प्रतीकप्रयोग नही। उसका कारण स्पष्ट है। ये कवि सौदर्य के कवि थे, अत सौदर्यानुभूति की अभिव्यक्ति बिबयोजना द्वारा इन्होने की। सहज सौदर्यानुभूति की अभिव्यजना के लिये प्रतीक उतना सहायक नही होता जितना बिबविधान। इसीलिये इन कवियो ने सरल और मनोहर बिबो को बड़े स्वच्छदता-पूर्वक जुटाया है। इन कवियो के बिब अधिकाश दृश्य और श्रव्य बिब है। इसके साथ ही प्राकृतिक और व्यापारबिबो का प्रयोग भी प्रचुरता मे मिलता है। अधिकाश कवियो की बिबयोजना जटिल और सघन नही है। इस प्रकार के सघन बिब केवल घनानद के छदो मे ही मिलते है, अन्य कवियो ने सहज और सरल बिबो की विशद योजना की है। प्राकृतिक बिबयोजना का एक बड़ा सहज रूप द्विजदेव के निम्नाकित छद मे देखने को मिलता है :

सुर ही के भार सूधे सबद सु कीरन के
मदिरन त्यागि करै अनत कहूँ न गौन।
'द्विजदेव' त्यौ ही मधुभारन अपारन सौ,
नैकु झुकि झूमि रहे मोगरे मरुअ दौन।
खोलि इन नैननि निहारौ तौ निहारौ कहा,
सुखमा अभूत छाइ रही प्रति भौन भौन।
चादनी के भारन दिखात उनयौ सौ चद,
गध ही के भारन बहत मद मद पौन।

यहाँ पर वसतकालीन प्रकृति का सुदर बिबात्मक चित्रण किया गया है। कवि यह कहना चाहता है कि जो प्रकृति मे मद गति, स्थिरता, शोभा और मादकता का सन्नी-

भूत प्रभाव है, वह शब्द, मधु सुगंधि और उज्वलता के भार के कारण है। सूक्ष्म व्यापार-बिंबों का बड़ा सुंदर संयोजन इस छंद में हुआ है।

इसी प्रकार ठाकुर द्वारा नियोजित श्रव्य बिंब के स्वरूप दर्शनीय हैं :

(क) "कारे कारे बद्दल सुहाये कहूँ सेत सेत,
कहूँ लाल लाल कहूँ आभा पीरो पीरी री।
ज्यों ज्यों होत चचल दिखात चचला की चाध,
त्यौं त्यों घन को धुकार होत धीरी धीरी री।"

(ख) "दौरि दौरि दमकि दमकि दुरि दामिनी यौं,
छंद देत दस हूँ दिसान दरसतु है।
घूमि घूमि घहरि घहरि घहरात, घन।
घेरि घेरि घोर घनो सोर सरसतु है।।"

उपर्युक्त पंक्तियों में यद्यपि जो रंग के संकेत किए गए है, वे दृश्य बिंब की सर्जना करते हैं, फिर भी जो अनेक शब्दों में वर्गों की आवृत्ति है, उससे बादलों के गर्जने और घहराने के प्रभावशाली शब्दबिंब निर्मित होते है जिनका इन पंक्तियों में विशेष प्रभाव है।

आलम के छंदों में प्राकृतिक बिंब अपने सहज रूप में विद्यमान मिलते है। ऐसा लगता है कि इन्होंने अपने छंदों में प्राकृतिक सौंदर्य को खचित कर दिया है। उदाहरण के लिये उनके छंदों की कुछ पंक्तियाँ निम्नलिखित है :

(क) 'चदन चढाए चद चाँदनी सी छाई रही,
चद्रमा सी मुख छवि हाँसी चंद्रिका सी है।'

(ख) 'काम केलि बेलि सी अकेली कुंज धाम खरी,
बदन की आभा जनु फूलत कमल है।
कहि कवि आलम जगमगत अंग वाके,
रवि के किरनि मिलि कदली को दलु है।'

(ग) 'ते सेई मुखारविंद निदै अरविंदै प्यारी,
उपमा को कहै ऐसी कौन जिय में खगै।
चपि गई चद्रिकाउ छपि गई छवि देखि,
भोर को सो चाँद भयो फिकी चाँदनी लगै।।'

इन पंक्तियों में कवि ने मानवसौंदर्य की प्रकृतिसौंदर्य से तुलना करने के लिये अनेक प्राकृतिक बिंबों की सृष्टि की है। परंतु अंत में उसे यही लगा कि प्रकृति के सौंदर्य तुलना में फीके ही पड़ जाते है।

कवि बोधा के सौंदर्यचित्रण में बिंबों का उभार अधिक नहीं है। उनका यत्र तत्र जो बिंबयोजना है, वह बहुत कुछ पारंपरिक है, जैसा निम्नांकित पंक्तियों में स्पष्ट होता है :

(क) बिहँसत परत हरत मन सबके कुवाँ कपोलन माही।
मनो कलिन्दी तीर नीर में भ्रमरी युग पर जाहीं ॥
(ख) लसत बाल के भाल मे रोरी बिंद रसाल।
मनो शरद शशि मे बसी बीरबहूटी लाल ॥

उक्त पंक्तियो मे प्रस्तुत बिब प्राकृतिक बिंब है, परन्तु ये प्रचलित साहित्यिक परंपरा के होने से अत्यधिक प्रभावशाली नही है। ठाकुर कवि की बिबयोजना भी परम्परागत प्रभाव को लिए हुए है फिर भी इनकी शब्दावली मे इतनी सजीवता और बिंबात्मक प्रभाव है कि उसमे एक नवीनता प्रकट होती है। उदाहरण के लिये निम्नलिखित छद द्रष्टव्य है :

(क) 'घन को निहारै तब वारै होत आगुन पै,
बीजुरी निहारे तब वारै होत पै री।
(ख) 'बरुनीन मे नैन उभकै मनो खजन प्रेम के जाले परे।
दिन औधि के कैसे गनौ सजनी अँगुरीन के पोरन छाले परे।
कवि ठाकुर ऐसी कहा कहिए निज प्रीति करे के कसाले परे।
जिन लालच चाह करी इतनी तिन्हैं देखिबे के अब लाले परे।'

बिंब योजना के प्रसग में सबसे समृद्ध रचनाएँ घनानद की हैं। उनके बिब अधिकांश प्राकृतिक और जीवनव्यापार के बिब है। उनका हमारे ऊपर बडा मार्मिक प्रभाव पड़ता है। चुने हुए शब्दो के बीच घनानद के बिब निश्चित रूप से उनकी गहरी अनुभूति और समृद्ध कल्पना के द्योतक है। यो तो उनकी समस्त रचना बिबवैभव से युक्त है, पर उसके कुछ उदाहरण हम यहाँ दे रहे हैं :

(क) बूँदे लगै सब अंग दगै उलटी गति आपने पापनि देखो।
पौन सो जागति आगि सुनी ही पै पानी सो लागति आँखिन देखी ॥
(ख) सोधे की बास उसासहि रोकति, चदन दाहक गाहक जी को।
नैननि बैरी सो है री गुलाल, अबीर उड़ावत धीरज ही को ॥
राग बिराग धमार त्यो धार सी. लौट परयौ ढग यो सब ही को।
रंग रवावन जान बिना घनआनँद लागत फागुन फीको ॥
(ग) अभिलाषनि लाखनि भाँति भरी बरुनीन रुमाच ह्वै काँपति हैं।
घनआनँद जान सुधाधर मूरति चाहनि अक मैं चापति है ॥
टग लाय रही पल पाँवड़े कै सु चकोर की चोपहि झाँपति है।
जब तें तुम आवनि औधि बदी तब तें आँखियाँ मग माँपति है ॥
(घ) हँसि बोलनि में छबि फूलन की, बरषा उर ऊपर जाति है ह्वै।
(ङ) बिरहा रवि सो घट व्योम तच्यौ बिजुरी सी खिवै इकली छतियाँ।
हिय सागर तें दृग मेघ भरे उघरे बरसै दिन औ रतियाँ।

घनग्रानँद जान ग्रनोखी दसा, न लखों दई कैसे लिखौं पतियाँ।
नित साँवन दीठि सु बैठक मैं टपकै बसनी तिहि ग्रोलतियाँ ॥

उपर्युक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि घनानंद की बिंबयोजना सुष्ठु, उच्च साहित्यिक स्तर पर होती हुई भी बड़ी सहज, मार्मिक ग्रौर सुगुंफित है। इनके ग्रधिकांश बिंब मार्मिक संदर्भों से जुड़े होने के कारण गहरी प्रभावक्षमता से युक्त हैं। इनके द्वारा जीवन ग्रौर प्रकृति के मार्मिक क्रियाकलाप उद्घाटित होते हैं, जो व्यजित ग्रनुभूति को सवेदना मे उतारने के लिये अत्यंत समर्थ है। घनानंद का बिबविधान इस दृष्टि से बड़ा ग्रनूठा है। सामान्यतया हम कह सकते है कि रीतिमुक्त शृंगारकाव्य मे यद्यपि बिबो की विविधता नही तथापि उनकी मार्मिकता ग्रौर ग्रौचित्यपूर्ण योजना सराहनीय है।

प्रतीकयोजना--रीतिमुक्त शृंगारी काव्य के ग्रंतर्गत प्रतीक का प्रयोग बहुत कम हुग्रा है। उसका कारण यह है कि इन कवियो ने ग्रपनी भावनाग्रों की स्वच्छंद ग्रभिव्यक्ति की है। इनके लिये प्रेमभावना गोपनीय वस्तु नही है। इसीलिये इन्होंने ग्रपने भावो ग्रौर सौदर्यानुभूति की ग्रभिव्यंजना बिबों के द्वारा प्रस्तुत की है। फिर भी कही कही प्रतीको का प्रयोग इन कवियो की रचनाग्रो मे मिल ही जाता है। ये प्रतीक भी बड़े प्रभावशाली है। कवि बोधा ने तोते ग्रौर सेमर के फूल के प्रतीक द्वारा निम्नलिखित छद मे सुदर ग्रभिव्यजना की है :--

"लखि चीकने पातन पेड़ बडो रहै फूलन सो छवि छाई सबै।
तकि ऐसो सुवास सुवा ब्रिलमो पलिबे की तहाँ सच् पाइ सबै।
कवि बोधा भुवान फँसो फल मै पछिताइ बिदा यहि माँगि ग्रबै।
सठ सेमर ने यह ज्वाब दयो हम सों तुम सों पहिचान कबै ॥"

इसी प्रकार ग्रालम कवि ने ग्रपने ग्रनेक छंदो मे रूपकातिशयोक्ति ग्रौर रूपक ग्रलंकारो के द्वारा सुदर प्रतीकरचना की है। इनके ये प्रतीक प्राकृतिक ग्रौर पौराणिक परंपरा के है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित छंद द्रष्टव्य है :--

(क) "प्रेम रंग पगे जगमगे जगे जामिनि के,
जोवन की जोति जागि जोर उमगत है।
मदन के माते मतवारे ऐसे घूमत है,
झूमत है झुकि झुकि झँपि उघरत हैं।
'ग्रालम' सो नवल निकाई इन नैनन की,
पाँखुरी पदुम पै भँवर थिरकत है।
चाहत है उड़िबे को देखत मयक मुख,
जानत है रैनि ताते ताहि में रहत हैं ॥"

(ख) "सेत सख बिबु जोति ग्रजन जहर साजि,
बक्र धनु ग्रकल सुमनि सँग लाये हैं।

पेम सुरा सूधे धेनु सुंदर समान रंभा,
'आलम' चपल हय काम के मधाये हैं।
प्रीति मधु पूतरी कलप लच्छी पूरन,
धनंतरि सुदिष्टि गज गति पलटाये है।
काहे को समुद्र मथि देवतान श्रम कीनो,
चौदह रतन तिय नैननि मे पाये है।।"

इन छंदों में मतवाले हाथी, कमल, भ्रमर, चद्रमा तथा चौदह रत्नो के प्रतीक बड़ी खूबी के साथ नियोजित किए गए हैं। आलम के ये प्रतीक परपरागत प्रतीक कहे जा सकते हैं। ठाकुर कवि के प्रतीक अधिक नव्य, सहज और प्रभावशाली है। सहज अनुभूति की मार्मिक अभिव्यक्ति इनमे प्राप्त होती है। इस बात का स्पष्टीकरण उनके निम्नलिखित दो छदो से हो जाता है :

(क) "मेवा बई धनी काबुल मे बिंदरावन आनि करील जमाए।
राधिका सी सुभ बाम बिहाय कै कूबरी सग सनेह बढाए।
मेवा तजी दुरजोधन की बिदुराइन के घर छोकल खाए।
'ठाकुर' ठाकुर की का कहौ यदा ठाकुर बावरे होत ई आए।।"

(ख) "अपने अपने निज गेहन मे, चढे दोऊ सनेह की नाव पै री।
अँगनान मे भीजत प्रेम भरे, समस्यो लखि मै बलि जाँउ पै री।
कह ठाकुर दोउन की रुचि सो रँग ह्वै उमडे दोउ ठाँव पै री।
सखी कारी घटा बरसै बरसाने पै गोरी घटा नँदगाँव पै री।।"

उपर्युक्त छदा मे ठाकुर कवि ने मेवा, करील दुर्योधन, बिदुर तथा कारी और गोरी घटाओ के प्रतीक द्वारा सुदर भावाभिव्यक्ति की है और काव्यसौष्ठव से इन्हे सपन्न किया है। ये प्रतीक भी प्राकृतिक और पौराणिक ही है। घनानंद के प्रतीक प्राय: रूपकाश्रित है। इन्होने अप्रस्तुत प्रतीकात्मकता का विशेष प्रयोग नही किया है। इस कारण से प्रतीक की सम्यक्—विशेषता उनमे स्पष्ट नही होती, फिर भी इनके कुछ प्रतीक-प्रयोग महत्वपूर्ण है। दो उदाहरण नीचे दिए जाते है

(क) "जान प्रवीन के हाथ को बीन है सो चित राग भरयो नित राजै।
सो सुर साँच कहूँ नहि छाड़त ज्यों ही बजावै लिये मन बाजै।
भावती मीड़ मरोर दिए घनआनँद सौगुने रग सो गाजै।
प्यार सो तार सु ऐंचि कै तोरत क्यो सुघराइए लावत लाजै।।"

(ख) "रूप के भारन होति है सौंहीं लजौहियै दीठि सुजान यो फूली।
लागियै जाति, न लागी कहूँ निसि पागी तहीं पलकौ मति भूली।
बैठिए जू हिय पैठत आजु कहा उपमा कहियै समतूली।
आए हौ भोर भएँ घनआनँद आँखिन माँझ तो साँझ सी फूली।।"

घनानंद के इन छंदों में बीन और साँझ के प्रतीक बड़े सुंदर बन पड़े हैं। परंतु इनकी रूपकता स्पष्ट है। इसी प्रकार की विशेषता द्विजदेव में भी मिलती है। द्विजदेव में प्रतीक का प्रयोग बहुत कम हुआ है, फिर भी कहीं कहीं प्रतीकात्मकता की झलक प्राप्त हो जाती है; जैसे, निम्नलिखित छंद में भुजग की प्रतीकता प्रकट होती है :

(क) "वे बस मंत्र सदाई रहै, इनके न हैं जंत्र, न मंत्र, न है मुनि।
वे डसि भाजति एक ही बार, इन्हें नहिं तोष बिनाहि डसे पुनि॥
भेद चवाइन सौं औ भुजंगन सौं 'द्विजदेव' रहे धौं कितौ गुनि।
आँखिन देखि डसै वे कहूँ, सखि! ए नित हीं डसैं कानन सौं सुनि॥"

इस छंद में भुजंग का प्रतीक पूर्णतः निखर नहीं पाया है, वरन् व्यतिरेकविशेषता अधिक मुखर हो उठी है। फिर भी प्रतीक का प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता।

इस प्रकार रीति-शृंगार-काव्य में प्रतीक का प्रयोग अधिक नहीं है। इस काव्य-धारा के कवियों में प्रतीक की प्रवृत्ति ही अधिक दिखाई नहीं पड़ती; जो थोड़ी बहुत प्रतीक रचनाएँ मिलती हैं, वे काव्यसौष्ठव का प्रवर्धन करनेवाली हैं।

प्रभावक्षमता—रीति-शृंगार-काव्य की रचनाएँ अपने अभिव्यंजनासौष्ठव और काव्यशिल्प के कारण अपना सहज प्रभाव डालने की क्षमता रखती हैं। ये प्रभाव इसलिये अधिक है, क्योंकि इन कवियों ने जो कुछ लिखा है वह अपनी अनुभूति मे उतार-कर लिखा है केवल लिखने के लिये नहीं। अनुभूति की तीव्रता और उसके प्रति ईमान-दारी इन कवियो की विशेषता है, और इस धारा के सभी कवियो में यह विशेषता विद्यमान है। अनुभूति को तीव्रता से व्यक्त करने की विशेषता आलम के निम्नलिखित छंदों मे द्रष्टव्य है :

(क) "ताती होति छाती छिनु जूड़ियौ ह्वै जाति कछू,
ताती सीरी रातीं पीरी बूझि न परति है।
'आलम' कहै हो कान्ह कौन बिथा जानो वाकी,
मौन भई काहू की न कानि हू करति है॥
आगि सी भँवाति है जू औरे सो बिलाति है जू,
छिन हू न देखे सुधि बुधि बिसरत है।
अँसुवन भीजै औ पसीजै त्यौं त्यौं छीजै बाल,
सोने ऐसी लोनी देह लोन ज्यो गरति है॥"

(ख) "कचन में आँच गई चूनो चिनगारी भई,
भूषन भए है सब दूषन उतारि लै।
बालम बिदेस ऐसी बैस मैन आगि लागै,
जागि जागि उठै हियो बिरह बयारि लै।

अब कन पर घर आँगन है जाति आगि,
आँगन में चाँदु चिनगारी चारि भारि लै।
साँझ भई भौन मँझवाती क्यों न देति है री,
छाती सो छुवाय दिया बाती आनि बारि लै ॥"

इन छंदों के पढने से विरह की तीव्रता का अनुभव बडी गहराई से होता है। रीतस्वच्छद कवियो मे इस प्रकार की प्रभावक्षमता बराबर प्राप्त होती है। इस प्रभाव को डालने मे शब्दावली, सूक्ति, बिंब और अलकृति सभी एक साथ काम करती है। घनानंद के निम्नलिखित छदो मे बडे प्रभावशाली ढग से भावाभिव्यक्ति हुई है, वह जितनी सहज है, उतनी ही मार्मिक भी ·

(क) "अतर हौ किधौ अत रहौ दृग फारि फिरौ कि अभागिनि भीरौ।
आगि जरौ अकि पानि परौ अब कैसी करौ हिय का विधि धीरौ ॥
जो घनआनंद ऐसी रुची तौ कहा बस है अहो प्रानन पीरौ।
पाऊँ कहाँ हरि हाय तुम्हे धरनी म धसौ की अकासहि चीरौ ॥"

(ख) "साँवन आवन हेरि सखी मनभावन आवन ओप विसेखो।
छाए कहूँ घनआनँद जान सम्हारि को ठौर लै भूलनि लेखो।
बूँदै लगै सब अंग दगै उलटी गति आपने पापनि पेखी।
पौन सो जागति आगि सुनी ही पै पानी सो लागति आँखिन देखो ॥"

रीतिस्वच्छद कवियो के प्राय सभी छद प्रभावयुक्त है, क्योकि इन्होने अनुभूति की तीव्रता मे कविता लिखी केवल छद रचने अथवा अलंकार और काव्यशास्त्र के ज्ञानप्रदर्शन के लिये नहीं। इसीलिये उनकी रचनाओ मे प्रगीत काव्य का सा प्रभाव है। इन रचनाओ म एक अजब मस्ती और अपनेपन की विशेषता विद्यमान है। ठाकुर कवि के निम्नलिखित छद इस बात को विशेष स्पष्ट करनेवाले है ·

(क) "भूलि न प्रीति करौ तुमसो कबहूँ लहि नैन सो नैन मिलाऊँ।
बात करौ न सुनौ तुम्हरी अपने चित मै कबहूँ न चिताऊँ।
मोहि कहा परी प्यारे गोपाल ज जात भरौ कुल कानि घटाऊँ।
ना विष खाऊँ न प्रान तजौ गुरु मारौ न काहू सो कान छिदाऊँ।"

(ख) "जब तै दरसे मनमोहन जू तब तं अँखियाँ ये लगी सो लगी।
कुलकानि गई भगि वाही घरी, ब्रजराज के प्रेम पगी सो पगी।
कवि ठाकुर नेह के नजन की उर मे आनि आन खगी सो खगी।
अब गाँवरे नाँवरे कोई धरौ, हम साँवरे रंग रँगी सो रँगी ॥"

उपर्युक्त विवेचन म स्पष्ट है कि रीतिमुक्त शृगारपरपरा के कवियो के काव्य में जो प्रभावक्षमता मिलती है, वह अनेक तत्वो से मिलकर बनी है। उसक सपादित करने मे

शब्द की अर्थगत और ध्वनिगत विशेषता की पहचान, उनके लाक्षणिक प्रयोग, सहज और मार्मिक बिंबयोजना, चुटीली प्रतीकपद्धति और स्वानुभूति की तीव्रता––ये सभी बातें समाविष्ट है। रीतिमुक्त शृंगारी कवि को अपने व्यक्तित्व और परिवेश के कारण ये सब बातें सहज रूप से प्राप्त है। अतएव उनकी रचनाएँ अपना विशिष्ट प्रभाव डालने मे समर्थ है। कहा जा सकता है कि कवियों के समान ही उनकी रचनाओं का भी निजी व्यक्तित्व है।

———

चतुर्थ अध्याय

प्रमुख कवि

आलम

जीवनवृत्त--प्रेमी कवि आलम के वैयक्तिक जीवन के विषय में प्रामाणिक जानकारी का अभाव है। निर्मूल जनश्रुतियों पर आधारित उनके बारे में इतना ही प्रसिद्ध है कि उनका जन्म पहले सनाढ्य ब्राह्मणवंश में हुआ था और वे जौनपुर जिले के किसी भाग के रहनेवाले थे।[1] परन्तु बाद में वे किसी 'शेख' नाम्नी यवनी रँगरेजिन के प्रेम में पड़कर ब्राह्मण से 'मियाँ आलम' नाम धारण कर मुसलमान हो गए थे। धर्मपरिवर्तन के पूर्व इनका क्या नाम था, पता नहीं। आलम और शेख की विलक्षण प्रेमकहानी इस प्रकार बताई जाती है :---

एक बार उन्होंने अपनी पगड़ी रँगने को दी, जिसमें एक कागज के टुकड़े में निम्नांकित अधूरा दोहा भूल से बँधा रह गया था---

"कनक छरी सी कामिनी, काहे तें कटि छीन।"

रँगते समय यह अधूरा दोहा 'शेख' नामक रँगरेजिन के हाथ पड़ा, जो काव्य-रचना-शक्ति से पर्याप्त संपन्न थी। वह तुरंत ताड़ गई कि मौजी कवि जी उमंग में आकर दोहे की प्रथम पंक्ति की ही रचना कर पाए, दूसरी पंक्ति की नहीं। उसने उसकी पूर्ति के हेतु दूसरी पंक्ति का निर्माण इस प्रकार किया---

"कटि को कंचन काटि विधि, कुचन मध्य धरि दीन।"

रँगी पगड़ी की खूँट में बाँधकर यह पूरा दोहा वापस कर दिया गया। पंडित जी इस दोहे की पूर्ति पर विस्मयविमुग्ध हो गए। कहते हैं, एक आना पगड़ी की रँगाई और एक सहस्र मुद्रा उक्त दोहे की पूर्ति के लिये आलम ने उसे प्रदान किया। और यही नहीं, वे उसके रचनानैपुण्य पर इतने रीझे कि उससे विवाह कर लिया।

यह भी कहा जाता है कि शेख बड़ी हाजिरजवाब स्त्री थी। आलम से उसके 'जहान' संज्ञक एक पुत्र भी था। कहते हैं, एक दिन किसी ने उससे विनोदवश यह पूछा---"क्या आलम (संसार) की औरत आप ही हैं"? उसने चट उत्तर दिया---"हाँ, जहान (संसार) की माँ मैं ही हूँ।"

---

१. आचार्य परशुराम चतुर्वेदी : मध्यकालीन शृंगारिक प्रवृत्तियाँ तथा नवनिबंध, पृष्ठ ५२, प्र. सं. १९५५ ई०, लोकसेवक प्रकाशन, वाराणसी।

आलम की रचनाओं का अनुशीलन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि वे मुसलमान होकर भी हृदय से संपूर्णत. हिंदू ही आखिर तक बने रहे। उनके द्वारा वर्णित अधिकाश कृष्णलीलाएँ और राम तथा शिव की वंदनाएँ आदि इसके प्रत्यक्ष प्रमाण है।

आलम और शेख की अभिन्न स्थिति–यो तो 'शेख' छाप के छंद पृथक् रूप मे पाए ही जाते है, किंतु 'आलम' नाम से पाए जानेवाले अनेक छदो की रचना मे भी शेख का पर्याप्त सहयोग था, ऐसा कतिपय प्राचीन काव्यमर्मज्ञो का कहना है। ऐसे मताग्रहियो का यह भी कहना है कि आलम के काव्य म जहाँ अनूठी और अछूती कल्पनाएँ, उत्प्रेक्षाएँ अथवा रमणीय काव्यचमत्कार देखे जाते है उनके पीछे शेख के कृतित्व का ही हाथ है। आलम-काव्य के सुधी विद्वान् मुशी देवीप्रसाद के अनुसार निम्नोद्धृत कवित्त के तीन चरण बनाकर जब आलम ठहर गए तब चौथे चरण की पूर्ति शेख ने की—

'प्रेमरग पगे जगमग जगे जामिनि के जोबन की जोति जागि जोर उमगत है।
मदन के मात मतवारे ऐसे घूमत है झूमत है झुकि झुकि झपि उघरत है।
आलम सो नवल निकाई इन नैननि की पाँखुरी पदुम पै भँवर थिरकत है'।

(आलमकृत)

'चाहत है उड़िबे कौ देखत मयक मुख जानत है रैनि ताते ताहि मे रहत है'॥

(शेखकृत)

इसी प्रकार रीतिकालीन काव्यमर्मज्ञ पडित नकछेदी तिवारी 'अजान' ने एक अन्य कवित्त प्रस्तुत करते हुए कहा है कि इसके तीन चरणों का प्रणयन आलम ने किया और शेष अंतिम चरण का शेख ने—

'घूँघट जमनिका है कारे कारे केश निशि खुटिला जराय जरे दीपक उजारी है।
बाजत मधुर मृदुबानी सो मृदग धुनि नैना नटनागर लकुट लट धारी है।
आलम सुकवि कहै रति विपरीत समै श्रम बिदु अंजुलि पुहुप भरि डारी है।

(आलमकृत)

'अधर सुरग भूमि नृपति अनग आगे नृत्य करै बेसर को मोती नृत्यकारी है'॥

(शेखकृत)

यह तो हुई आलम और शेख की रचनाओ की गड्डमड्ड स्थिति, मात्र किंवदंतियों पर ही आधारित होने के कारण जिसकी प्रामाणिकता और अप्रामाणिकता के विषय में निश्चयपूर्वक कुछ कह सकना कठिन है।

अब रहा प्रश्न इसका कि 'आलम' और शेख' की छाप से प्राचीन अनेक काव्य-संग्रहो मे पृथक् पृथक् रूप म पाई जानेवाली रचनाओ का कर्ता कोई एक ही व्यक्ति है अथवा तन्नामधारी दो भिन्न व्यक्ति ? प्रारभ मे जनश्रुति पर आधारित 'आलम' और 'शेख' के उक्त प्रेमप्रसग एव अलग अलग नामो से उनके कृतित्व को देखते हुए साहित्यिकों के एक वर्ग ने उन्हे कविदपति किंवा दो भिन्न व्यक्तियो के रूप में स्वीकार किया, किंतु

बाद में आलमविषयक सामग्री का सूक्ष्म पर्यवेक्षण करते हुए दूसरा वर्ग इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि 'आलम' और 'शेख' नाम से पाई जानेवाली रचनाओं के रचयिता दो भिन्न व्यक्ति नहीं, एक ही व्यक्ति है, जिसका पूरा नाम है 'शेख आलम'। दूसरे मत के अनुसार आलम ही कभी 'आलम' और कभी 'शेख' नाम से काव्यरचना किया करते थे। लाला भगवानदीन 'दीन' द्वारा संपादित 'आलमकेलि' में संगृहीत रचनाओं में से लगभग चतुर्थांश रचनाएँ 'शेख' छाप की है और शेष 'आलम' छाप की। इसके अतिरिक्त जिन प्राचीन और अर्वाचीन ग्रंथों में आलम और शेख के उल्लेख पृथक् पृथक् रूप में पाए जाते है, उनके नाम है—नवीन कवि का 'प्रबोधरससुधासागर', सूदनकृत 'सुजानचरित्र', कृष्णकवि की 'बिहारीसतसई की टीका', प्रवीण कवि का 'दोहासारसंग्रह', शिवसिंह सेंगर द्वारा प्रणीत 'शिवसिंहसरोज' और मिश्रबंधुओं का 'मिश्रबंधु विनोद' आदि। रीतिकालीन काव्यसृष्टि की यह एक प्रबल परिपाटी थी कि कवि अपनी रचनाओं में अपने पूरे अथवा अधूरे (लघु) अभिधान से बराबर उपस्थित रहा करता था, जो उसके पृथक् अस्तित्व की सूचना देने में बड़ा सहायक सिद्ध होती थी। छंदों में नाम से प्रस्तुत रहने की यह प्रवृत्ति रीतिबद्ध और रीतिमुक्त कवियों में समान रूप से देखी जाती है। इसी कारण 'आलम' और 'शेख' नाम से अंकित रचनाओं को देखकर उन्हें दो भिन्न व्यक्तियों के रूप में उक्त ग्रंथों में स्थान दिया गया जान पड़ता है। दूसरे, ऐसी मान्यता के पीछे आलम और शेख की प्रेमकथा का भी बहुत कुछ हाथ जान पड़ता है, जिसमें 'आलम' के साथ साथ 'शेख' को भी काव्य-रचना-शक्ति-संपन्न कहा ही गया है। किंतु इसके विपरीत आलम के हस्तलिखित और प्रकाशित रूप में उपलब्ध काव्य के दो विशिष्ट अध्येता श्री भवानीशंकर याज्ञिक एवं आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र का निश्चित मत है कि 'आलम' और 'शेख' की स्थिति भिन्न न होकर अभिन्न थी, जिसका समर्थन मिश्रबंधुओं ने यह कहकर किया था कि कुछ लोग शेख और आलम को एक ही समझते हैं[1]। आलम और शेख की अभिन्न स्थिति के संबंध में उक्त विद्वानों ने जिन पुष्ट आधारों को सामने रखा है, वे निम्नांकित है—

(क) 'शेख' किसी रँगरेजिन का नाम नहीं हो सकता, रँगरेज का अलबत्ता माना जा सकता है।

(ख) एक ही कवि की दो भिन्न नामों से काव्यरचना करने की स्थिति अमान्य और अविश्वसनीय नहीं कही जा सकती, क्योंकि ऐसे उदाहरण प्राचीन काव्य में पाए ही जाते हैं, जहाँ एक कवि अपने एकाधिक नामों से काव्यसर्जन करता है। इसके लिये सूर के 'सूर' और 'सूरस्याम', घनआनंद के 'आनंदघन' और 'घनआनंद', उदयनाथ के

---

१. मिश्रबंधु : 'मिश्रबंधु विनोद', भा० २, पृ० ५३३।

'कबिंद्र' और 'उदैनाथ', कालिदास[१] के 'महाकवि' और 'कालिदास', दत्त के 'गुरुदत्त' और 'दत्त' एवं आनद के 'चंद' और 'आनद' आदि द्विविध नामप्रयोगों को देखा जा सकता है।

(ग) 'शेख' मुसलमानो के एक वर्गविशेष या उपजातिविशेष का बोधक है, यथा, सैयद, मुगल और पठान आदि। आलम शेख जाति के मुसलमान थे और उनका पूरा नाम 'शेख आलम' था।

(घ) अधिकाश रचनाओ मे 'आलम' छाप के ही प्रयोग देखे जाते है। उसकी तुलना मे 'शेख' छाप के प्रयोग कम हुए है।

(ङ) 'शेख आलम' छाप का एक साथ प्रयोग संभवतः छंदविधान आदि अनेक दृष्टियो से उपयुक्त न होता, इस नाते दोनो नामो का एक साथ प्रयोग नही किया गया है।

(च) कर्तृत्व की दृष्टि से यदि 'आलम' और 'शेख' दो भिन्न व्यक्ति होते तो आलम के ग्रंथों की प्राप्त प्राचीन हस्तलिखित अनेक प्रतियों की आदि और अंत की पुष्पिकाओं मे 'अथ कवि सेष आलम कृत कबित्त' (आदि भाग की पुष्पिका) और "इति श्री कवित्त शेष आलम के समाप्त[२]" (अंत भाग की पुष्पिका) न लिखा जाकर 'शेख और आलम' जैसा पृथक् उल्लेख होता।

(छ) भाव और भाषा की दृष्टि से आलम और शेख नाम से उपलब्ध रचनाओं की तुलना करने पर जहाँ एक ओर भवानीशकर याज्ञिक को दोनो में 'अधिक साम्य' के कारण कोई विशेष अतर नहीं प्रतीत[३] होता, वहाँ दूसरी ओर आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र को 'कुछ अतर झलकता भर है।'[४]

उपर्युक्त तर्कों के आधार पर निष्कर्षरूप मे यही कहा जा सकता है कि आलम और शेख एक ही व्यक्ति के दो नाम है। इसीलिये आधुनिक काल मे लिखे जानेवाले साहित्य-इतिहास-ग्रथो मे अब केवल 'आलम' नही, वरन् 'शेख आलम' शीर्षक से उसका परिचय दिया जाने लगा है।[५]

आलम का काव्यकाल . हिंदी में आलम की महत्वपूर्ण प्रबधकृति 'माधवानल कामकंदला' का पता लगने के समय तक उनके काव्यकाल की स्थिति भ्रामक रूप मे ही

---

१. 'कालिदास हजारा' के संग्रहकर्ता हिंदी के रीतिकालीन कवि।

२. डा० भवानीशकर याज्ञिक का लेख 'आलम और रसखान', (सेठ कन्हैयालाल) 'पोद्दार अभिनदनग्रंथ, पृ० ३०२ से उद्धृत।

३. वही।

४. आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र : 'हिंदी साहित्य का अतीत (भाग २), पृष्ठ ६०६, संवत् २०१७।

५. वही, पृष्ठ ६०४।

मानी जाती रही, जिसके परिणामस्वरूप एक के स्थान पर आलम नामधारी दो कवियों तक की कल्पना करनी पड़ी थी। कवि के स्थितिकालविषयक इस भ्रमात्मकता का मूल कारण 'शिवसिंहसरोज' का यह निम्नांकित सवैया रहा है जिसमें सामान्यतः प्रयुक्त 'आलम' शब्द को गलती से कविनामवाची मान लिया गया था—

"जानत औलि किताबन को जे निसाफ के माने कहे हैं ते चीन्है।
पालन ही इत आलम को उत नीके रहीम के नाम कों लीन्हे।
मोजमसाह तुम्हें करता करिबे को दिलीपति हैं वर दीन्हे।
काबिल हैं तें रहै कितहूँ कहूँ काबिल होत हैं काबिल कीन्हे॥"

यह छंद औरंगजेब के पुत्र मुअज्जमशाह (बहादुरशाह) की प्रशस्ति में लिखा गया है, जो अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् संवत् १७६४ में सिंहासनासीन हुआ और जाजमऊ के युद्ध मे संवत् १७६९ में मार डाला गया था। इस कारण यह सरलता से कहा जा सकता है कि इस छंद का निर्माण बहादुरशाह (मुअज्जमशाह) के उक्त काल के मध्य में ही कभी किया गया होगा। इस सवैए की दूसरी पंक्ति में प्रयुक्त 'आलम' शब्द को कवि का नाम समझकर शिवसिंह सेंगर ने प्रसिद्ध कवि 'आलम' को मुअज्जमशाह का समकालीन मानते हुए उसे 'सं० १७१२ में उ०' बताया। यहाँ तक तो यह ठीक माना जा सकता है कि इस छंद का निर्माणकाल मुअज्जमशाह का काल है किंतु यह मानना कि उस (छंद) का कर्ता कोई 'आलम' संज्ञक कवि है, पूर्णतया गलत है। क्योंकि पहले तो वास्तव में यहाँ 'आलम' शब्द कवि के नाम का सूचक न होकर अपने प्रधान अर्थ 'जगत्' का ही बोध कराता है। कहना न होगा कि यदि संसार के पर्याय के रूप में प्रयुक्त 'आलम' शब्द को वैसा न मानकर कविनाम का द्योतन करनेवाला माना जाए, जैसा 'सरोजकार' ने माना है, तब तो उसी पंक्ति में प्रयुक्त 'रहीम' शब्द को भी कवि रहीम का वाचक मानना पड़ेगा, जो कितना गलत होगा, इसे बताने की आवश्यकता नहीं। दूसरे, यह छंद अब तक आलम के नाम से प्रकाशित अथवा हस्तलिखित रूप में उपलब्ध रचनाओं में कहीं भी नहीं देखा गया।

यद्यपि 'शिवसिंहसरोज' में प्रदत्त 'सं०' को हम 'विक्रमी संवत्' मानें या 'ईस्वी सन्' तथा इसी प्रकार 'उ०' को 'उपस्थित' मानें अथवा 'उत्पन्न', इस विषय में किसी निश्चित निर्देश का अभाव है, तथापि इसी ('सरोज') का पल्ला पकड़कर हिंदी के उत्तरवर्ती इतिहासग्रंथों में 'सं०' का अर्थ 'विक्रमी संवत्' और 'उ०' का अर्थ 'उत्पन्न' लेकर 'आलम' को संवत् १७१२ में उत्पन्न बताया गया[1]।

इधर जब 'मिश्रबंधुविनोद' का प्रथम संस्करण संवत् १९७० में प्रकाशित हुआ तब उसमें भी 'सरोज' के आधार पर 'आलम' का समय मुअज्जमशाह के राज्यकाल (संवत्

---

१. पं० रामनरेश त्रिपाठी : 'कविताकौमुदी' भा० १, पृष्ठ ४३१, आठवाँ संस्करण।

१७६४–१७६६) से साम्य रखता हुआ संवत् १७६० के लगभग माना गया और इसी प्रकार संवत् १९८६ में प्रकाशित होनेवाले 'हिंदी शब्दसागर' की भूमिका में भी उन्हें मुअज्जमशाह का समसामयिक ही ठहराया गया।

सर्वप्रथम सन् १९०३ की खोज रिपोर्ट से 'आलम' की स्फुट कविताओं के संग्रह 'आलमकेलि' का पता चला। महाराज बनारस के राजपुस्तकालय में सुरक्षित इस रचना की पुष्पिका से यह ज्ञात हुआ कि इसका लिपिकाल संवत् १७५३, आश्विन कृष्ण ८, शुक्रवार है।[१] बाद में लाला भगवानदीन ने संवत् १९७९ में 'आलमकेलि' को प्रकाशित करते हुए पहले से मान्य 'आलम' के काव्यकाल के साथ इसकी संगति बैठाने के लिये जो नई कल्पना की वह इस प्रकार है—"आलम और सेख का कविताकाल साधारणत. सं० १७४० से स० १७७० तक माना जाता है। यह हस्तलिखित प्रति, जिसके अनुसार यह पुस्तक छपी है, स० १७५३ का लिखी हुई है। इससे यह स्पष्ट है कि इसमें वे ही छद सगृहीत है जो उस समय तक बन चुके थे। यही कारण है कि इसमें आलम और सेख के कुछ अधिक प्रख्यात कवित्त (जो इस सग्रह के बाद रचे गए होगे) नहीं मिलते। उदाहरणवत् 'आलम' के ये मशहूर छद इसमे नहीं है। इसका कारण यही जान पड़ता है कि वे छद इस हस्त-लिपि के बाद की रचनाएँ है। यह हस्तलिपि आलम के जीवनकाल में ही उनके किसी शिष्य या भक्त द्वारा लिखी गई है। अत: हमें तो अत्यत प्रामाणिक जँचती है।"[२]

महाराज बनारस के राजपुस्तकालय से सन् १९०४ की 'खोज'[३] में आलम नाम की दूसरी प्रबंधरचना 'माधवानल कामकंदला' की जो हस्तलिखित प्रति प्राप्त हुई उसमे उसका रचनाकाल ९९१ हिजरी अर्थात् सवत् १६४० दिया गया था और साथ ही इसमे यह भी ज्ञात होता था कि इसकी रचना अकबर के समय में हुई थी, जिसके भूमिव्यवस्थापक राजा टोडरमल थे। 'नागरीप्रचारिणी सभा' के 'आर्यभाषा पुस्तकालय' में 'माधवानल कामकदला' की जो प्रति है उसमें उक्त तथ्यों का उल्लेख इस तरह किया गया है—

दिल्लीपति अकबर सुरताना। सप्तदीप में जाकी आना।
आगे नेक महापति मडन। नृप राजा टोडरमल दडन।
सन् नौ सै इक्या (व) नबै आही। कहौं कथा अब बोलौं ताही[४]।

---

१ "इति श्री आलमकृत कवित्त आलम केलि समाप्त ॥ शुभमस्तु ॥ संबत् १७५३ समये आसिन बदी अष्टमी बार सुक्र ॥" हिंदी के हस्तलिखित ग्रंथों का वार्षिक (सन् १९०३) विवरण, खो०—सख्या ३३।

२. आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र : 'हिंदी साहित्य का अतीत', भा० २, के पृ० ६११ से उधृत।

३. हस्तलिखित हिंदी ग्रंथों का वार्षिक (सन् १९०४) विवरण, खो० रि० स० ९।

४. सवत् १९३५ की एक हस्तलिखित 'माधवानल कामकंदला' की प्रति के आधार पर श्री मयाशंकर याज्ञिक ने इसका निम्नोक्त पाठ दिया है—

इस रचना की उपलब्धि का परिणाम यह हुआ कि पहले से मान्य चले आते हुए मुक्तक रचनाकार आलम और प्रबंधकार आलम के बीच पूरी एक शती की असगति दिखाई पड़ी जिसकी शुद्धि का और कोई चारा न देखकर आलम सज्ञक दो कवियो की स्थिति स्वीकार की गई--एक स्फुट कबित्त सवैयाकार मुअज्जमशाहकालीन (स० १७६४-६६) आलम और दूसरे 'माधवानल कामकदला' के रचयिता अकबर, टोडरमल (स० १६१३-१६६२) के समसामयिक आलम। सन् १६०४ की 'खोज रिपोर्ट' के सपादक बाबू श्यामसुंदरदास ने सर्वप्रथम 'आलम' नाम के एक ही कवि के दो कवि होने की कल्पना की।[1] फिर तो उसी का अनुकरण कर 'मिश्रबंधु विनोद' (द्वि० स०, सवत् १६८४) मे मिश्रबधुओं ने, 'हिंदी साहित्य का इतिहास' (संवत् १६६७) में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने, 'हस्तलिखित हिंदी ग्रंथो का पद्रहवाँ त्रैवार्षिक विवरण' (सन् १६३२-३४) मे सपादक की हैसियत से 'स्यामसनेही' पर विचार करते हुए डा० पीताबरदत्त बडथ्वाल ने, 'हिंदी के कवि और काव्य' (सन् १६४१ मे प्रकाशित) के भाग ३ मे पंडित गणेशप्रसाद द्विवेदी ने और 'हिंदी साहित्य' में डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने स्पष्ट रूप मे आलम नामधारी दो कवियो को मानकर उन्हें दो मान लेने की एक परिपाटी ही बाँध दी।

परंतु आलम नाम के दो कवि नही, एक ही कवि थे। अन्वेषणादृष्टि के अभाव के कारण ही हम अब तक दो आलम को मानते रहने के भ्रम मे पडे रहे। अपने आलम-विषयक खोजपूर्ण लेखों द्वारा जिन विद्वानो ने इस भ्रम का निवारण किया है, उनमें

अदली कहौ बखांन, सुजस अघट चहुँ खंड में।
विद्या अरथ निधान, साह अकब्बर जगत गुरु।
जगपति राज कोटि जुग जीजै। साहि जलाल छत्रपति कीजे॥
दिल्लीपति अकबर सुलताना। सप्तदीप म जाको आना॥
धरमराज, सब देस चलावा। हिंदू, तुरक पथ दुई लावा॥
आगे नैंव महाबल मंत्री। राजा टीप टोडरमल खत्री॥
उतपति बिरह बियोग, कहौ कथा आलम' सुमति।
पुनि सिगार सँजोग, नल कंदल कारन कहत॥
सन् नव से इक्यावन जबहीं। कथा अरंभ कीन्ह यह तबही॥

--'मर्यादा' पत्रिका, भाग १०, अक ३, सितंबर १६१५।

१ "इट्, देयरफर सीम्स् मरटेन् दैट् दिस् पोयट् फ्लरिश्ड् इन् द टाइम् आफ अकबर, द ग्रेट्, ऐड कांसीक्वेंट्ली इज् डिफरेंट फाम् ऐनअदर पोयट् आफ द सेम नेम् हू वाज् इन् द सर्विस आफ् मुअज्जमशाह, सन् आफ औरंगजेब।"--हस्तलिखित हिंदी ग्रंथों का वार्षिक विवरण (सन् १६०४, खोज रिपोर्ट संख्या ६)।

श्री मयाशंकर याज्ञिक[1], श्री भवानीशंकर याज्ञिक[2] और आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र[3] के नाम अग्रगण्य है। आलम की अद्वय स्थिति की प्रामाणिकता के लिये जो आधार प्रस्तुत किए गए है उनका सारांश इस प्रकार है :--

(१) (अ) 'सरोज' मे उद्धृत सवैया आलम द्वारा रचित न होकर मुअज्जमशाह के आश्रित कवि जैतसिंह महापात्र की रचना है। जैतसिंह ने मुअज्जमशाह के नाम पर 'माजमप्रभाव' नामक अलकारग्रथ की रचना की थी। यह सवैया उसी ग्रथ का अंश है, जिसकी हस्तलिखित प्रति स्वयं कवि के स्वाक्षरों मे 'नागरीप्रचारिणी सभा' के 'आर्यभाषा पुस्तकालय' मे सुरक्षित है। इस ग्रथ से यह भी स्पष्टत ही विदित हो जाता है कि 'माजमप्रभाव' का रचनाकाल संवत् १७२७ और कवि का जन्मकाल सवत् १७०३ श्रावण मास है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि उक्त सवैया आलमकृत न होकर जैतसिंह महापात्र संज्ञक कवि की रचना है।

(ब) यही नही, 'सरोज' मे 'शेख' के दो कवित्त उद्धृत किए गए हैं और साथ ही यह भी कहा गया है कि इनकी रचनाएँ 'कालिदास हजारा' मे मिलती है। किंचित् पाठांतरो के साथ उक्त दो कवित्त 'आलमकेलि' मे पाए जाते है, जिससे यह बड़ी सरलता से प्रमाणित हो जाता है कि 'सरोज' मे उल्लिखित 'शेख' का संबध आलम से सबद्ध शेख से ही है। 'सरोज' में शेख का समय सं० १६८० दिया गया है। इस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप से यह भी सिद्ध हो जाता है कि शेख से सबद्ध आलम का समय भी सं० १६८० माना जा सकता है।[4]

(स) और आलम की अद्वैत स्थिति की परिपुष्टि तब और हो जाती है जब

---

१. मर्यादा : प्रयाग से प्रकाशित, भा० १०, अंक ३, सितंबर १६१५।

२. "आलम और रसखान" शीर्षक लेख, 'पोद्दार अभिनदन ग्रथ', पृ० २६१–३०२।

३ (अ) 'आलम' और उनका समय : 'नागरीप्रचारिणी पत्रिका', स० २००२।
(ब) 'आलम की कृतियाँ' : नागरीप्रचारिणी पत्रिका', स० २००४।
(स) 'हिंदी साहित्य का अतीत', भा० २, 'शेख आलम', पृ० ६०४–६३० तक, प्र स०, सवत् २०१७।

४. लगता है शिवसिंह सेंगर को तो यह ज्ञात था कि आलम का प्रेम किसी रँगरेजिन से था किंतु उसका नाम शेख था, यह नही मालूम था। यदि उसका थोड़ा भी आभास उन्हें होता तो इसका उल्लेख वे करते अवश्य। इस कारण यह भी कहा जा सकता है कि उन्हें 'आलमकेलि' का भी पता नहीं था, जिसमें आलम और शेख दोनों नामछापों की रचनाएँ मिलती हैं।

'सरोज' मे उक्त सवैए के पूर्व उधृत निम्नोक्त दोहा 'माधवानल कामकंदला' की लघु दीर्घ दोनो प्रकार की सभी प्रतियों मे थोडे बहुत अन्तर के साथ समान रूप मे मिल जाता है।[1]

"आलम ऐसी प्रीति पर, सरबस दीजैं वारि।
गुप्त, प्रकट कैसी रहैं, दीजै कपट पिटारि॥"[2]

(२) 'गुरु ग्रथसाहब' (आदिग्रथ) के अतिम भाग मे 'रागमाला' नाम मे उपलब्ध रचनाएँ आलमकृत 'माधवानल कामकदला' का ही अश है। स० १६६१ मे सगृहीत 'गुरु ग्रंथसाहब' अब तक अपने अपरिवर्तित रूप मे ही पाया जाता है। इस कारण भी तथाकथित मुअज्जमशाहकालीन आलम की भ्रामक स्थिति का निराकरण हो जाता है।

इसके अतिरिक्त 'दोहासारसग्रह' या 'अनेक-सत्कविराजोक्तिसार-सग्रह' (छोटे बड़े स० १७१० और स० १७२० के दो सस्करण) दलपतिराय वशीधर कृत 'अलकार रत्नाकर' (सं० १७९८), कृष्ण कवि कृत 'बिहारीसतसई की टीका' (स० १७८२), कालिदास हजारा (स० १७५५), सूदनकृत 'सुजानचरित्र' (स० १८०२-१०) और नवीन कवि के 'प्रबोधरससुधासागर' (स० १८८१ और १८९५ के दो सस्करण) मे आलम और शेख छाप की रचनाएँ बराबर मिलती है। स० १७०३ की कुलपति मिश्र की 'युक्तितरगिणी' मे तो स्पष्टत. ही सूरदास के पश्चात् आलम की विशिष्टताओ का उल्लेख करते हुए कहा गया है :

"नवरससय मूरति सदा जिन बरने नंदलाल।
आलम आलम बस कियो दै निज कविता जाल॥[3]"

(३) कॉकरोली के 'द्वारकेश पुस्तकालय' से आलम के ४०० स्फुट छदो का एक संग्रह 'चतु शती' के कल्पित नाम से पाया गया है जिसकी पुष्पिका मे उसका लिपिकाल

---

१. (अ) आलम ऐसी प्रीति पर तन मन दीजे धाइ।
गुप्त प्रगट अँखियाँ मिलै दियो कपट पट जाइ॥
—ना० प्र० स० मे सरक्षित 'माधवानल कामकंदला' की हस्तलिखित प्रति के आधार पर, हिंदी साहित्य का अतीत, भा० २ के पृ० ६१६ से उद्धृत।

(ब) आलम ऐसी प्रीति पर सरबस दीजै वारि।
गुप्त प्रगट अँखियन मिलैं दियैं कपट पट डारि॥
—बाबू बालकृष्णदास की 'माधवानल कामकदला' की हस्तलिखित प्रति के आधार पर, हिंदी साहित्य का अतीत, भा० २ के पृ० ६१७ से उद्धृत।

२. 'शिवसिह सरोज', पृ० ६, १९२६ ई० का सस्करण।

३. कुलपति मिश्र : 'युक्तितरगिणी' की हस्तलिखित प्रति, 'हिंदी-साहित्य-सम्मेलन' के पुस्तकालय में सुरक्षित, दोहा संख्या २६, प्रति संख्या १४९०।२७०१।

सं० १७१२ दिया हुआ है। अब तक उपलब्ध आलम की रचनाओं मे यह सबसे पुरानी प्रति कही जा सकती है।

(४) 'आलमकेलि' में संगृहीत शेख छाप के एक कवित्त मे 'कामकंदला' का प्रयोग उपमानरूप मे किया गया है,[1] जिससे यह स्पष्ट आभासित होता है कि मुक्तक काव्यकार आलम 'माधवानल कामकंदला' जैसी प्रबंधरचना से अवगत थे।

इस प्रकार उपर्युक्त बातों के आधार पर 'माधवानल कामकंदला' का कवि की प्रथम कृति घोषित करते हुए आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने आलम का काव्यकाल संवत् १६४० से सवत् १६८० तक निश्चित माना है, जो अनेक दृष्टियों से सगत भी प्रतीत होता है।[2]

आलम की रचनाएँ 'नागरीप्रचारिणी सभा' के 'खोजविवरणों' से अब तक आलम को जिन कृतियों का पता चला है, उनके नाम इस प्रकार है—

(१) 'अकार के कवित्त' (सन् १६०१, सख्या १८ ग), (२) 'आलम कवि की कविता' (१६०६, स० ३), (३) 'आलम के कवित्त' (१६२३ स० २६ बी, सी), (४) 'आलमकेलि' (१६०३, स० ३३), (५) 'कवित्तसग्रह' (१६४१, स० १२), (६) 'कवित्त' (१६०४, स० १५ ख), (७) 'कवित्त चतु शती' (१६०१, सं० १८ क), (८) 'कवित्त शेखमाई' (१६०४, स० १५ घ), (६) 'छप्पय' (१६२३, स० ६ ए), (१०) 'रसकवित्त' (१६०४, स० १५ ग), (११) 'सग्रह' (१६२३, स० ६ डी), (१२) 'स्याम-सनेही' (१६०४, स० १५ छ और १६३२, स० ६), (१३) 'सुदामाचरित्र' (१६३५, स० ४) और (१४) 'माधवानल कामकदला' (१६०४, स० ६, १६२३, स० ८, १६२६, सं० ८, १६४१ स० ४७५)।

उपर्युक्त 'खोजविवरणों' का अवलोकन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि संख्या १ से लेकर ११ तक की रचनाएँ आलम की मुक्तक अथवा स्फुट कविताओं की सग्रह मात्र है। रचनाओं के उक्त नामवैभिन्य से यह भी सूचित होता है कि कवि द्वारा किसी एक सर्वमान्य नाम से इनका संग्रह न किया जाकर अन्य व्यक्तियों द्वारा ही यह संग्रहकार्य सपन्न किया गया है। ऐसा ज्ञात होता है कि अलग अलग समय मे अलग अलग काव्यरसिकों द्वारा आलम की स्फुट कविताओं के जो सग्रह तैयार किए गए उनके. किसी एक निश्चित और सर्वमान्य सग्रहनाम के अभाव मे, पृथक् पृथक् नाम भी दिए गए है। किसी ने बारह

---

१. "मैनका को स्वामी कामकदला को कामी मोरि मैनहू की मानिनी को मन मोहि लाऊँ री।"
—'आलमकेलि', छदसख्या १६५।

२. विश्वनाथप्रसाद मिश्र : 'हिंदी साहित्य का अतीत, भा० २, पृ० ६२१।

खड़ी के अनुक्रम में कवि की कविताओं को रखकर उन्हें 'अकार के कवित्त' या 'अक्षरमालिका'[1] नाम दिया तो किसी ने किसी स्पष्ट नाम के अभाव में 'आलम कवि की कविता' अथवा 'आलम के कवित्त', 'कवित्तसंग्रह', 'कवित्त', 'कवित शेखमाई' (यहाँ केवल शेख' नाम 'आलम' की संज्ञा का सूचक, जिससे यह भ्राति दूर हो जाती है कि शेख और आलम दो भिन्न व्यक्ति थे), 'रसकवित्त' और 'संग्रह' की संज्ञाओं से उन्हे अभिहित किया। इसी प्रकार किसी विशिष्ट नाम के अभाव के कारण 'कांकरौली' के पुस्तकालयाध्यक्ष ने आलम के ४०० छंदों के हस्तलिखित संग्रह को 'कवित्त चतु शती' जैसा काल्पनिक नाम दिया और विद्वानों का तो यहाँ तक कहना है कि 'आलमकेलि' नाम भी प्रतिलिपिकार की भ्राति से ही चल पड़ा है[2]। 'छप्पय' नाम की कोई पृथक् रचना न होते हुए भी सात पृष्ठों मे कवि के केवल शृंगार और नीति के 'छप्पय' छंद संगृहीत होने के नाते उसे यह नाम दे दिया गया है।

जो भी हो, इतना निश्चित है कि ये नाम आलम की मुक्तक कविताओं के एक ही संग्रह के नाना नाम है। जैसा पहले कहा जा चुका है, 'आलमकेलि' नाम भी कवि द्वारा प्रदत्त मौलिक नाम नही जान पड़ता, क्योंकि प्राय सर्वत्र इसका नाम 'आलम के कवित्त' के रूप मे प्राप्त होता है। प्राय पूर्वोक्त सभी संग्रहों मे आलम और शेख दोनों नामछापों की रचनाएँ पाई जाती है। 'आलमकेलि' नाम मे प्रकाशित संग्रह मे कुल ३९७ छंद पाए जाते हैं, जबकि इसके अतर्गत संगृहीत कुल छंद ४०० कहे जाते हैं। कांकरौलीवाले संग्रह को इसीलिये 'चतु शती' कहा गया, क्योंकि उसमे ४०० छंद है। एक अन्य प्रति के अंत में छंदसंख्या ४०२ दी गई है परन्तु उसमें दो छंदों की पुनरावृत्ति की गई है, जो समान रूप से इस प्रकार की अन्य प्रतियों मे भी पाई जाती है। इस प्रकार 'आलमकेलि' के अतर्गत ही हम उक्त विभिन्न नामवाली कृतियों का समाहार मानकर इसका परिचय देंगे।

इस प्रकार आलम की निम्नोक्त कुल चार रचनाएँ निश्चित होती है जिनमे से तीन प्रबंध और एक मुक्तक काव्य की कोटि मे आती है—

(१) 'माधवानल कामकंदला'
(२) 'सुदामाचरित्र'
(३) 'स्यामसनेही'
(४) 'आलमकेलि'

(१) **'माधवानल कामकंदला'**—'खोज' में अब तक इसकी १२ हस्तलिखित

---

१. व्रजभारती, १, ८, पृ० २०।

२. श्री मयाशंकर याज्ञिक के अनुसार 'आलम के कवित्त लिख्यते' में से किसी प्रतिलिपिकार से 'कवित्त' शब्द छूट गया और 'लिख्यते' का 'लि' 'के' के साथ आ जुड़ा। इस प्रकार नाम बना 'आलम केलि'।

प्रतियाँ देखी गई हैं।[१] ये प्रतियाँ दो प्रकार की हैं—एक छोटी और दूसरी बड़ी। दोनों प्रकार की प्रतियो में कौन मौलिक है, अभी इसका निर्णय नहीं हो सका है। वर्णन अथवा कथाभाग की दृष्टि से दोनों में थोडा अतर पाया जाता है। आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र 'सन् नौ सै इक्या (व) नबे', का अर्थ ९९१ हिजरी लेकर जहाँ इसका रचनाकाल सं० १६४० मानते[२] है वहाँ श्री भवानीशकर याज्ञिक इसकी पाँच प्रतियों से प्राप्त पाठ "सन नौ से इक्यावन जबही" के आधार पर ग्रथारंभ का समय ९५१ हिजरी (सवत् १६०१) और उसका समाप्तिकाल स० १६३९ से १६४६ के मध्य स्वीकार करते हैं।[३] अभी हाल मे ही प्रकाशित 'हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का सक्षिप्त विवरण' मे उसका रचनाकाल ९५१ हिजरी (सं० १६०२-३) स्वीकार किया गया है।[४] 'माधवानल कामकंदला' की अनेक प्रतियो मे 'नवसै इक्यावन' पाठ होने के कारण इसका यही रचनाकाल ठीक जान पड़ता है। इसकी सबसे प्राचीन प्रतिलिपि 'काँकरौली' से प्राप्त हुई है, जिसका लिपिकाल स० १७१२ है।

'माधवानल कामकदला' की बड़ी प्रति में[५] मूल कथा के साथ कतिपय अन्य प्रसग भी जुड़े पाए गए है। उदाहरण के लिये आरभ मे ही मगलाचरण के पश्चात् इद्रसभा का वर्णन, शापवश जयती नामक अप्सरा का जगल मे शिला के रूप में पड़ी होना, माधव द्वारा उसका उद्धार होना, उस (अप्सरा) का उसपर मोहित होना और बाद मे जयंती का पुहपावती (पुष्पावती) नगरी मे कामकंदला के रूप में अवतरित होना आदि बातें देखी जा सकती है। इसी प्रकार एकाध अन्य प्रतियो मे भी कुछ अंतर पाए जाते है[६]।

प्रबधात्मक प्रेमकथा की दृष्टि से आलम की यह रचना उनके कृतित्व मे सर्वाधिक महत्व की अधिकारिणी है। हिंदी मे प्रेमकथा की इस पूर्वपरंपरा को तीन रूपों में रखकर देखा जा सकता है। प्रथम वे पुरानी प्रेमगाथाएँ जो 'ढोला मारू रा दोहा' के रूप म सामने आती है, दूसरी वे प्रेमकहानियाँ जिनके रचयिता अधिकाशतः सूफी मुसलमान होते थे और जिनका उद्देश्य ऐसी कहानियों के माध्यम से धर्मप्रचार करना व उपदेश आदि देना होता था तथा तीसरी कोटि मे ऐसी प्रेमकहानियों की गणना की जा सकती है जिनके स्वरूप मे बहुत कुछ 'उषा अनिरुद्ध' एव 'नल दमयती' जैसी प्राचीन पौराणिक कथाओं का

---

१. 'हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का सक्षिप्त विवरण', द्वितीय खंड, पृ० १५८–५९।
२. 'हिंदी साहित्य का अतीत', भा० २, पृष्ठ ६१२, प्र० स०।
३. आलम और रसखान: (लेख) पोद्दार-अभिनदन-ग्रथ, पृ० २९१-३०२।
४. हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का सक्षिप्त विवरण, द्वि० खंड, पृ० १५८।
५. खोज विवरण, सन् १९२३, विवरण संख्या २९।
६. श्री बालकृष्णदास के पास 'माधवानल कामकंदला' की सुरक्षित प्रति मे माधव के पिता शंकरदास का प्रसंग और दिया गया है।

समावेश होता था। वस्तुतत्व, वर्णनशैली और चरित्रचित्रण आदि की दृष्टि से इनमें से प्रथम और तीसरे प्रकार की प्रेमकथाओ मे भारतीय रीतिनीतियो की ही प्रमुखता होती है, जबकि दूसरे प्रकार के प्रेमाख्यानो में भारतीय और अभारतीय दोनो ही तत्वों का मेल होता है और साथ ही कथायोजना मे मसनवी पद्धति के समावेश के प्रति पूर्ण आग्रह भी दिखाई पड़ता है। इनमे से किसी एक परपरा का तद्वत् अनुसरण आलम ने अपनी उक्त रचना में नही किया है। उसके वस्तुसगठन का रूप बहुत कुछ पौराणिक ढग का और उसका विकास लोकगीतोवाली पद्धति पर किया गया जान पड़ता है। उक्त कहानी का अवसान सुदृढ़ प्रेमविजय और भारतीय सस्कृति के सरक्षक महाराज विक्रमादित्य के परहितनिरतता मे दिखाया गया है। ग्रथारंभ मे अपने समसामयिक सम्राट् अकबर का उल्लेख, रचनाकाल का निर्देश तथा रचना को सस्कृत की कथा पर आधारित बताना[1] आदि बातो को देखते हुए यह भी मानना पड़ता है कि उन्होने इसके प्रणयन मे सूफियो की प्रेमाख्यानशैलो के आदर्शो पर भी दृष्टि रखी है। माधव और कामकदला के इस प्रसिद्ध आख्यान को लेकर आलम से पूर्व गणपतिकृत 'माधवानल कामकदला' प्रबध (रच० का० स० १५८४) और कुशललाभकृत 'माधवानल कामकदला चउपई' (रच० का० स० १६१३) की रचना न्यूनाधिक अंतर के साथ की जा चुकी थी।[2] और आलम के बाद इस प्रकार की रचनाओ मे बोधा के 'विरहवारीश या माधवानल कामकदला' (र० का० सं० १८०६-१५ के बीच),[3] राजकवि केस के 'माधवानल नाटक' (र०का० स० १७१७),[4] भीष्मकृत 'माधवविलास (अन्य नाम 'माधवानल कामकदला', रच० का० स० १८१०)[5] और हरिनारायण के 'माधवानल की कथा' (रच० का० स० १८१२)[6] की गणना की जा सकती है।

कवित्व की दृष्टि से इसमे शृगार रस का प्राधान्य है। इसकी भाषा परिष्कृत अवधी है। प्रबधकौशल भी सराहनीय है। कुछ विद्वान इसे आलम की प्रथम कृति होने का सकेत देते है।

---

१. 'कथा संस्कृत सुनि कछु थोरी। भाषा बाँधि चापही जोरी।'
—'माधवानल कामकंदला', हिंदी के कवि और काव्य' भा० ३ के पृ० १५ मे उद्धृत।

२. डा० हरिकांत श्रीवास्तव : भारतीय प्रेमाख्यान काव्य, पृ० २५२, ४२६, सन् १९५५ हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी।

३. वही, पृ० २६८।

४. वही, पृ० २७७।

५. हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का सक्षिप्त विवरण, द्वि० ख०, पृ० १५८, (ना०प्र०स०, वाराणसी, सं० २०२१)।

६. वही, पृ० १५६।

७. विश्वनाथप्रसाद मिश्र : हिंदी साहित्य का अतीत, भा० २, पृ० ३१५।

सुदामाचरित—'खोज' में इसकी दो हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं, जिनमें से एक गढ़ी परसोती (मथुरा) के निवासी पं० रेवतीप्रसाद के यहाँ से उपलब्ध प्रति का लिपिकाल सं० १८७६ है।[1] सरस्वती भंडार, विद्याविभाग, काँकरौली से प्राप्त दूसरी प्रति में लिपिकाल नहीं दिया गया है।[2] श्री भवानीशंकर याज्ञिक के देखने में इसकी कई प्रतियाँ आई है। किसी में ५२ छंद हैं, किसी में ५१ और किसी मे ६०। याज्ञिक जी ने इसे अकबरकालीन आलम की रचना न मानते हुए लिखा है "हमारे देखने मे कोई भी ऐसी प्राचीन प्रति नहीं आई जिससे रचयिता का समय अकबरकालीन आलम के समय तक पहुँचाया जा सके। भाषा, छद, भाव सभी दृष्टियों से इस ग्रथ का अध्ययन करने पर इसे अकबरकालीन आलम रचित मानने का कोई कारण नही प्रतीत होता।"[3] परंतु याज्ञिक जी मे अपनी इस मान्यता के प्रति निश्चयात्मकता का अभाव है, क्योंकि उसी लेख में उन्होंने लिखा है कि "इस ग्रथ को हम अकबरकालीन आलम रचित मानने या न मानने के संबंध में कोई निश्चित मत नहीं दे सकते।"[4] मान्यता की इस द्विविध स्थिति और किसी ठोस प्रमाण के अभाव में उनका मत किसी भी प्रकार से स्वीकार्य नहीं हो सकता। जहाँ तक छंद, भाव और भाषा आदि के अंतर की बात है वहाँ तक इस संबंध में यही कहा जा सकता है कि हिंदी मे थोड़ा ध्यान देने पर ऐसे अनेक कवि निकल आएँगे जिनकी रचनाओं के मध्य आलम जैसा वैभिन्य और वैविध्य मिल जाएगा। रह गया ऐसी प्रतियों के उपलब्ध होने का प्रश्न जो कवि के स्थितिकाल की सूचक हों, इसे भी किसी बहुत उचित कारण के रूप मे नहीं प्रस्तुत किया जा सकता, क्योंकि हमारी खोज तो अभी जारी ही है। इसके विपरीत आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र[5] और आचार्य परशुराम चतुर्वेदी[6] ने इसे कविकृत होने का पूर्ण समर्थन किया है। इसके संबध मे जो सबसे ठोस प्रमाण प्रस्तुत किया जा सकता है वह यह कि 'आलमकेलि' में भी 'रेखता' के तीन कवित्त दिए हुए है जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि आलम को इस भाषा में भी रचना करने की रुचि थी।

जैसा इसके नाम से ही स्पष्ट है, इसमें श्रीकृष्ण और सुदामा की उसी कथा का वर्णन है जिसे आलम से पूर्व नरोत्तमदास अपने 'सुदामाचरित' (सं० १६०२) मे वर्णित कर चुके थे। सभव है, आलम के समक्ष नरोत्तमदास की यह पुस्तक रही हो। यद्यपि वस्तुतत्व की दृष्टि से दोनो रचनाएँ प्रायः समान है, तथापि रचनाशैली दोनो की पृथक्

---

१. हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, द्वि० खं०, सन् १९३५, खो० सं० ४।
२. वही, सन् १९०१, खो०सं०, १८ घ।
३. 'आलम और रसखान' लेख, 'पोद्दार अभिनंदनग्रंथ', पृ० ३००।
४. वही, पृ० २९९।
५. 'हिंदी साहित्य का अतीत', भा० २, पृ० ६२७–२८।
६. 'मध्यकालीन शृंगारिक प्रवृत्तियाँ तथा नवनिबंध', पृ० ५४–५५, सन् १९५५।

है। जहाँ नरोत्तमदास ने कृष्णजीवन के इस प्रेमभावपूर्ण खंडवृत्त को लेकर अपनी रचना ब्रजभाषा के कवित्त सवैयों में की है वहाँ आलम ने इसे 'रेखताबद' मे बाँधकर पूर्वी प्रयोग से संयुक्त ब्रजी और अवधी के मिश्रण के रूप मे प्रस्तुत किया है। इनके इस प्रकार के भाषाप्रयोग के आधार पर यह भी संभावना व्यक्त की गई है कि ये पहले पूर्वी (जौनपुर) प्रदेश के रहनेवाले थे और बाद मे पश्चिम की ओर गए होंगे।[1] अपनी सुंदर संवाद-योजना और सरस भावचित्रण के कारण नरोत्तमदास की रचना को जितनी प्रसिद्धि हुई उतनी आलम की रचना की नहीं। 'स्याममनेही' की भाँति आलम ने इसमे भी अपनी प्रेमलक्षणा भक्ति को ही अभिव्यक्त किया है। मुसलमान हो जाने पर भी आलम का हृदय कृष्णभक्ति मे निमग्न रहा यह इस रचना मे भी भली भाँति व्यक्त हो जाता है। इस खंडकाव्य मे कवि ने न्यूनाधिक मात्रा मे उर्दू शब्दो का प्रयोग भी किया है।

स्याममनेही—यह भी एक वर्णनप्रधान खंडकाव्य है, जिसमे रुक्मिणीविवाह को वर्णित किया गया है। इसकी कथा यद्यपि बहुत छोटी है तथापि वर्णना का विस्तार कर उसका विकास किया गया है। 'खोज' (१९०६–१९६) मे इसकी एक प्रति श्री भवानीशंकर याज्ञिक, लखनऊ, के यहाँ से उपलब्ध हुई है जिसका लिपिकाल स० १७७५ है और दूसरी एक खंडित प्रति (१९३२–६) प० सियाराम शर्मा (मैनपुरी) से प्राप्त हुई है जिससे लिपिकाल का पता नहीं चलता।

आलम ने फलश्रुति के रूप में यह स्पष्ट स्वीकार किया है कि इसके विषय प्रेम और भक्ति दोनों ही हैं—

प्रेमरु भक्ति ताहि मन भावै। करै कठ जग सोभा पावै।

इस अस्थिर संसार मे मन को प्रेमभक्ति से ओतप्रोत करने के लिये ही 'स्याम-सनेही' की रचना की गई थी :

आलम जीवहु जो पलक इहि चचल ससारु।
दै अहार पोषहु मनहि प्रेमभक्ति आधारु॥

इसकी भाषा मिश्रित व्रजभाषा है। 'माधवानल कामकंदला' की भाँति ही इसमें भी सोरठा, दोहा और चौपाई आदि छंदों का प्रयोग किया गया है।

आलमकेलि—इसका परिचय पहले दिया जा चुका है। यहाँ इसके वर्ण्यविषय मात्र की चर्चा की जा रही है। 'आलमकेलि' मे कवि की स्फुट रचनाएँ जिन शीर्षकों के अंतर्गत रखी गई है, उनके नाम इस प्रकार हैं—श्रीकृष्ण की बाललीला, नवोढ़ा, प्रौढ़ा, अभिसार, मानिनी, संकेतस्थल, नायक की दूती, विरहवर्णन, सखी की उक्ति सखी के

---

१ आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र हिंदी साहित्य का अतीत, भा० २ पृ० ६२८।

प्रति, खंडिता, प्रेमकथन, वंशी, प्रवत्स्यत्पतिका, भँवरगीत, उद्धव का लौटना, यशोदा-विरह, गोपीविरह, पवनवर्णन, यमुनाकुंज, गगावर्णन, दीनता, शिव के कवित्त, देवी के कवित्त, रामलीला, रेखता, सवैया, विपरीतरति, यशोदा की उक्ति, नवयौवना, मानवर्णन, चंद्रकलंक, कुचछवि, युगलमूर्ति, अभिसार, आगतपतिका और शातरस।[१] ये शीर्षक स्पष्ट रूप से रचनाओं की रीतिबद्धता के सूचक लगते है। ऐसी स्थिति मे यह प्रश्न सहज ही उठ खडा होता है कि विषय का यह विभाजन स्वयं कवि ने किया है अथवा किसी और ने ? इसका समाधान प्रस्तुत करते हुए कहा गया है कि "संग्रह दूसरो के द्वारा ही हुआ है, क्योंकि आलम की रचना पर चाहे जिस प्रकार से विचार किया जाय ये, स्वच्छंद वृत्ति के प्रेमी कवि प्रतीत होते है। इनकी रचना मे रीतिबद्ध कृतियाँ अवश्य है, पर सारी रचनाएँ रीति के साँचे मे ढली नही है। अत ऐसा प्रतीत होता है कि बाद में किसी रीतिप्रेमी व्यक्ति ने, चाहे वह इनका अनुगामी ही रहा हो, इन्हे विभाजित किया। शृंगार की कविता का विभाजन करने के लिये नायकनायिका के अवांतर भेद विशेष अनुकूल और सुखसाध्य थे। इसी से इनकी रचना इस प्रकार विभाजित की गई।"[२]

काव्यालोचन--वैसे तो आलम ने मुक्तक और प्रबंध दोनों प्रकार की रचनाएँ की है किंतु उनके रीतिमुक्त कवित्व और उनकी प्रख्याति का प्रधान आधार उनकी पहले प्रकार की रचनाएँ ही रही है। भावावेग की जो सघनता, अनुभूतियो को तरल बना देनेवाली जो लीनता और वाग्योग का जो विशिष्ट विनियोग मुक्तकों मे देखा जाता है, प्रबधो मे वह कहाँ ! स्वच्छंदवृत्ति का स्वच्छद भावप्रवाह कवि को मुक्तक रचनाओं मे ही देखा जाता है। इतना होते हुए भी इस सबध मे यह ध्यातव्य है कि आलम की 'आलम के कवित्त' अथवा 'आलमकेलि' नाम के अतर्गत सगृहीत ४०० रचनाएँ तथा अन्य अनेक प्राचीन काव्यसग्रहों मे पाई जानेवाली नाना स्फुट रचनाएँ दो प्रकार की है--एक तो वे जो रीतिबद्ध काव्यपरिधि को बिल्कुल छू लेती है और दूसरी वे जिनके नाते ही आलम रीतिमुक्त कवि माने जाते है। विषय और शिल्प, दोनो ही दृष्टियो से आलम की कुछ कविताएँ निश्चय ही रीतिपरिपाटी का पालन करती है, जिसके प्रमाण मे नवोढा, वय:सधि, खंडिता, अभिसार, विपरीतरति और मान आदि के कई एक प्रसगों को आगे किया जा सकता है। विशुद्ध रीतिमयता का चरम निदर्शन वहाँ दिखाई पड़ता है जहाँ 'छाती सों छुवाय दियाबाती आनि बारि लै,' जैसी ऊहात्मक उक्तियाँ देखी जाती है। ब्रज-भाषा के प्राचीन रीति-दृष्टि-प्रधान काव्यसग्रहों मे आलम की ऐसी ही कविताएँ सगृहीत पाई जाती है, क्योंकि शायद प्राचीन कलाग्रही काव्यसग्रहकारो को चमत्कारविशिष्ट रीतिवृत्ति जितनी रुचती थी उतनी सहज भावानुगामिनी स्वच्छदवृत्ति नही। आलम की

---

१. वही, पृ० ६२८।

२. वही, पृ० ६२८-२६।

ऐसी रचनाएँ रीतिमार्गी काव्यप्रभाव का परिणाम ही समझी जानी चाहिए, किसी संगत और सटीक प्रमाण के अभाव मे इन्हें कवि की प्रारंभिक रचना मानना ठीक नहीं ।[1] इसके अतिरिक्त कवि की 'सुदामाचरित्र' नामक प्रबंधरचना भी एक प्रकार से रीत्यनुसारी ही कही जाएगी क्योंकि उसमे सुदामा और कृष्ण के सौहार्दभाव का स्वरूप बहुत कुछ रूढ और आदर्शवादी रूप मे ही दिखाया गया है ।

इसके विपरीत दूसरी ओर विरहवर्णन, प्रेमकथन और वर्णावर्णन आदि प्रसंगों के रूप मे प्रेमवियोग की सूक्ष्म, एकनिष्ठ और आत्मानुभूतिसवलित भावदृष्टि की ऐसी अंतर्मुखता देखी जाती है जिसमे रीतिमुक्त शृंगारकाव्य की प्रायः वे समस्त मान्यताएँ प्रतिफलित हुई है जिनके कारण वह एक प्रतिष्ठित और विशुद्ध रीतिमुक्त कवि सिद्ध होता है । इस प्रकार की रचनाओं का अवलोकन करने पर यह स्पष्टतः ही प्रतीत हो जाता है कि इस भावधारा के सभी रीतिस्वच्छंद शृंगारी कवियों की भाँति इनकी भी कविताओं का मूलस्वर प्रेमोन्माद और प्रेमतन्मयता ही है । इसीलिये आचार्य रामचंद्र शुक्ल के इस अभिमत—'प्रेम की तन्मयता की दृष्टि से आलम की गणना रसखान और घनानंद की कोटि मे होनी चाहिए'[2]—को कवि की रीतिमुक्तपरक रचनाओं के संदर्भ मे ही अधिक घटित मानना चाहिए । सच्चे प्रेम के कायल आलम ने प्रेमस्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहा था कि 'उसी प्रेमभाव पर अपना सर्वस्व निछावर कर देना चाहिए जिसपर कपट का पर्दा बिल्कुल नहीं होता । रह गई उस (प्रेम) के 'गुप्त प्रकट' (अंतर और बाह्य) भावों के जानने पहचानने की बात, उसका पता सच्ची प्रेमदृष्टि स्वयं ही लेती है—

आलम ऐसी प्रीति पर, सरबस दीजै वारि ।
गुपत प्रगट अँखियन मिलें, जिनै कपट पट डारि ॥[3]

प्रीति की इस निष्कपटता का समर्थन घनआनंद ने भी 'यहाँ साँचे चलैं तजि आपुनपौ झिझकैं कपटी ज्यों निसाँक नहीं' कहकर किया है ।

आलम की प्रेमाश्रयक ऐसी कविताएँ अपनी अनुभूति मे पर्याप्त स्वच्छंद और भावसंपन्न है । कवि का कहना है कि "रीझि की बूझ की दुनिया ही कुछ इतनी निराली होती है कि एक बार मन जब प्रेम मे उलझ जाता है तब रूप स्वरूप आदि से संबधित विचार जाते रहते है । प्रेमी चकोर रात अथवा दिन की ओर ध्यान न देकर सतत अपने एकमात्र प्रिय चंद्र को ही निरखना चाहता है और यही नहीं, उसे तो अपने प्रिय (चद्र) के अभाव मे

---

1 डा० मनोहरलाल गौड़ : घनानंद और स्वच्छंद काव्यधारा, पृ० २२३ (ना० प्र० स०, वाराणसी, स० २०१५ वि०) ।

2. हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० ३२९ पाँचवाँ संस्करण ।

3. परशुराम चतुर्वेदी : 'मध्यकालीन शृंगारिक प्रवृत्तियाँ तथा नखशिख', के पृ० ६० से उद्धृत ।

दिन की प्रकाशित छवि भी अंधकारमयी जान पड़ती है। पुष्पप्रेमी भ्रमर प्रेमोन्मत्त हो काँटो की कटुता की परवाह किए बिना कँटीली सुमनवेलि के पास जाता ही है। वास्तव में, प्रीति भी तो काँटे की कँटीली सुमनवेलि की भाँति ही होती है, जिसे पाने के लिये उसके काँटो (दुःखो और विघ्नबाधाओं) की तनिक भी परवाह नही की जाती। इस कारण हे सखी, जो कृष्ण को काला कहती है वे मुझे गँवार सी जान पड़ती है क्योंकि मुझे तो उनकी श्यामता भी उज्वल लगती है।"[१]

रीतिमुक्त काव्यधारा के परवर्ती प्रतिनिधि कवि घनआनंद ने भी व्यक्तिअंतर से आलम की उक्त 'रीझ' (प्रेम) के 'पैंड़े' (मार्ग) की बूझ (बुद्धि) की 'न्यारी' (विलक्षण) स्थिति का यह कहकर समर्थन किया है--"जान घनआनँद अनोखो यह प्रेमपंथ भूले ते चलत रहैं सुधि के थकित ह्वै।' अन्य रीतिमुक्त शृंगारी कवियों की भाँति ही आलम का भी प्रेमनिरूपण अभिलाषप्रधान और दुःखपर्यवसायी है।

हम सक्षेप मे कह सकते है कि आलम की ऊपर उदाहृत और इसी तरह की उपलब्ध अन्य कविताओं मे रीतिमुक्त शृंगारकाव्य की प्रायः वे समस्त विशेषताएँ न्यूनाधिक रूप मे पाई जाती है जिनके अतर्गत स्वच्छद प्रेम के विप्रलंभपक्ष की प्रधानता, वेदना की अतर्मुखी, एकनिष्ठ, वैयक्तिक, सूक्ष्म और उच्छ्वसित विविध स्थिति, प्रेम की दुःखपर्यवसायी अनुभवनिष्टता, उस पथ की दुरूहता तथा दुस्तरता, फारसी की भावापन्नता और भावपरिष्कारक अभिव्यजनाकौशल जैसे तत्वों का समावेश होता है।

यमुनानिकुंज, कृष्ण की बाललीला उद्धव-गोपी-सवाद और चद्रकलक आदि विषयों पर लिखी गई कविताएँ भी काव्यसौष्ठव के विचार से बडी उत्तम बन पडी है क्योंकि इनमे भी भाव और भाषा की परिष्कृत और समन्वित स्थिति देखी जाती है।

शेष रही आलम की प्रबधरचनाओं की स्थिति, उनमें भी 'सुदामाचरित' को छोड़कर 'माधवानल कामकदला' और 'स्यामसनेही' का वर्ण्य विषय उन्मुक्त प्रेम ही है।

---

१ चंद को चकोर देखै निसि दिन को न लेखै,
चद बिन दिन छवि लागति अँध्यारी है।
आलम कहै हो आली अलि फूल हेत चलै,
काँटे की कँटोली बेलि ऐसी प्रीति प्यारी है।
कारो कान्ह कहत गँवारी ऐसी लागति है,
मोहि वाकी स्यामताई लागति उज्यारी है।
मन की अटक तहाँ रूप को विचारु कहाँ,
रीझिबो को पैड़ो तहाँ बूझि कछू न्यारी है॥
—आलमकेलि, छं० स० १४८।

यद्यपि इनकी परिसमाप्ति प्रेमियो के विवाहबंधन के रूप में की गई है तथापि उसमें पूर्व की वर्णित सारी स्थितियाँ स्वच्छंद प्रेम से ही संबंध रखती है और उनका संगठित प्रतिपादन भी कवि ने अपेक्षाकृत स्वतंत्र शैली मे ही किया है। इतना होने पर भी विदग्ध प्रेम की जितनी भावसंपन्न व्यंजना मुक्तकों मे पाई जाती है उतनी प्रबंधों मे नहीं।

आलम की मुक्तक रचनाओं की भाषा व्रजभाषा है जिसका रूप काफी परिष्कृत और सुव्यवस्थित है। यत्रतत्र उसमें 'जाहिनै', 'काहिनै' सरीखे पंजाबी और 'कीन', 'दीन' जैसे पूर्वी प्रयोग दिख जाते है। छंदों मे रसखान, घनआनंद और ठाकुर के समान ही कवित्त सवैया का प्रयोग किया गया है। कुछ कवित्त 'रेखता' या 'उर्दू' मे भी लिखे गए है। इनकी अभिव्यंजनाशक्ति के विषय मे कहा गया है कि "भाषा का प्रवाह ऐसा पिच्छल और वाग्धारा ऐसी स्फीत है कि पढनेवाला भाव मे मग्न होने के साथ ही रसना से प्रकृत स्वाद एवं तृप्तिदायिनी मिठास का भी अनुभव करता है।"[१]

घनानंद

घनानंद रीतिमुक्त स्वच्छंद धारा के सर्वश्रेष्ठ कवि थे। इनका जीवनवृत्त किंवदंतियो एवं प्रमाणों के आधार पर इस प्रकार है--

प्रथम गार्सां द तासी के 'इस्त्वार दे ला लितरेत्यूर ऐंदुई ऐ ऐंदुस्तानी' में, जिसका हिंदी-साहित्य-संबंधित अंश डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय द्वारा 'हिंदुई साहित्य का इतिहास' नाम से अनूदित हुआ है, आनंद नाम के एक कवि का उल्लेख मिलता है। इसके विषय मे इतिहासकार का मत है कि वह लोकप्रिय गीतों का रचयिता था और उसके कुछ पद्य डबल्यू० प्राइस द्वारा 'हिंदी ऐंड हिंदुस्तानी सेलेक्शंस' नामक ग्रंथ मे संगृहीत हुए थे। इस उल्लेख से निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि आनंद नाम का व्यक्ति आनंदघन ही है या अन्य कोई। लोकप्रिय गीतों की रचना आनंदघन की पदावली हो सकती है। पर यह कल्पना मात्र है।

इसके पश्चात् महादेवप्रसाद ने अपने साहित्यभूषण मे आनंदघन का संतोषजनक मात्रा मे विवरण दिया था, पर वह ग्रंथ प्राप्य नहीं है। उसको आधार मानकर सर जार्ज ग्रियर्सन ने अपने 'माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर आफ हिंदुस्तान' मे इनका विवरण दिया है। उन्होंने अपने पूर्ववर्ती ठा० शिवसिंह सेंगर कृत 'शिवसिंह सरोज' का भी उपयोग किया था। दोनों के प्रमाण के आधार पर आनंदघन का विवरण देते हुए ग्रियर्सन ने इन्हें जाति का कायस्थ तथा बादशाह बहादुरशाह का मुंशी बताया है। मृत्यु से पूर्व ये कार्यमुक्त होकर वृंदावन चले गए थे और वहीं नादिरशाही आक्रमण मे मथुरा में मारे

१. आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र : 'हिंदी साहित्य का अतीत', भा० २, पृ० ६०७-८।

गए। ग्रियर्सन ने, 'कोकसार' के लेखक आनंदघन को, जिसका समय सरोज के अनुसार सन् १६५८ है, इनसे अभिन्न माना है। साथ ही यह भी उल्लेख किया है कि ये ही कभी-कभी अपना नाम घनआनद लिखते थे।

रीवाँ महाराजा श्री रघुराजसिंह जू देव ने अपने 'भक्तमाल' में (सं० १९००-१९३६) घनानद के जीवनवृत्त पर अपेक्षाकृत विस्तृत चर्चा की है और अपने कथ्य का आधार मथुरा की जनश्रुति बताई है—

घनानद की कथा अनेका।
ब्रज मे विदित अहै सविवेका॥
घनआनँद के विपुल कवित्ता।
अवलौ हरत कविन के चित्ता॥

बात इस प्रकार है। दिल्ली का कोई शाहजादा मथुरा मे आया था। पर मथुरावासियों ने जूतो की माला पहनाकर उसके नगरागमन का सत्कार किया। इसपर वह बहुत क्रुद्ध हुआ और दिल्ली से अपनी सेना बुलाकर मथुरावासियों की मार काट करवाई। जब यह घटना घट रही थी तब घनानद वशीवट मे बैठे भगवान् की भावना सखी भाव से कर रहे थे। उनके हाथ मे पान का बीड़ा था। खाने ही वाले थे कि भगवान् के रास-विलास का ध्यान आ गया और उसी मे लीन हो गए। बीड़ा हाथ में ही लगा रहा। भावना के बीच मे ही स्वय आकर अपना हाथ फैलाकर वह बीड़ा घनानद के मुख मे लगा दिया। इस बीडा से जो मुखराग हुआ था वह सब ने देखा था—

सोइ बीरी मुख मेलिगो लगे मुरावन सोइ।
सोइ बीरी की रागमुख प्रगट लख्यौ सब कोइ॥

ऐसे सही साधक को भी यवनो ने तलवार से काट डाला पर घनानद जी के प्राण नही निकले। इस समय उन्होंने स्वय भगवान् से प्रार्थना की कि हे नंदकुमार और किसलिये मुझे इस असार संसार मे जीवित रखते हो--

'कौन हेतु राखै संसारा। क्यो न बुलावै नंदकुमारा।"

इस प्रार्थना के पश्चात् यवनो से कहा अब मारो, इस बार मेरा सिर अवश्य कट जाएगा, यवनो ने वार किया। घनानंद का सिर धड से पृथक् हो गया, परंतु रक्त नही निकला—

'घनआनँद तन कढ़यौ न लोहू,
सो चरित्र लखि परचौ न कोऊ।'

इस जनश्रुति से दो बातों का परिज्ञान होता है। एक तो घनानंद सखीभावना के भक्त थे, दूसरे इनकी मृत्यु यवनों के हाथ से हुई।

घनानद की जीवनी के संबंध मे इससे अधिक विस्तृत रूप में आनंदघन जी के विषय में गोस्वामी श्री राधाचरण जी ने अपने एक 'छप्पय' में लिखा है—

"दिल्लीश्वर नृप निमित एक धुरपद नहिं गायौ।
पै निज प्यारी कहे सभा को रीझि रिझायौ॥
कुपित होय नृप दिए निकास वृंदावन आए।
परम सुजान सुजान छाप पद कवित बनाए।
नादिरशाही ब्रज रज मिले किय न नेकु उच्चार मन॥
हरि भक्ति बोलि मिश्रन करी घनआनंद आनंदघन॥"

घनानंद के साथ सुजान का संबंध था। उसके अनुराग के कारण दिल्ली से उनके निर्वासन की बात स्पष्ट रूप से गोस्वामी राधाचरण जी ने ही प्रथम लिखी है। राधाचरण जी के अनुसार जिस दिल्लीश्वर नृपति के लिये ध्रुपद नहीं गाया वह नृपति कौन था, यह स्पष्ट नहीं होता। दूसरे सुजान छाप में पद और कवित्त दोनों बनाने की बात इसमें कही गई है। सही में जो पदावली इनकी उपलब्ध हुई है उसमें सुजान छाप नहीं है। वह केवल कवित्तों में है। तीसरी महत्वपूर्ण बात यह स्पष्ट होती है कि कवित्त और पदों के रचयिता एक ही है, दो नहीं।

श्री वियोगी हरि ने अपने 'कविकीर्तन' (सं० १९८०) में इसी विषय में एक पद्य लिखा था जिसका आधार गोस्वामी राधाचरण का ही छप्पय था। इस प्रकार आनंदघन जी के जीवन के विषय में निश्चित वृत्तांतों का स्रोत रघुराजसिंह जू की 'भक्तमाल' और राधाचरण गोस्वामी का छप्पय है। दोनों सूत्र जनश्रुति पर आधारित है, परन्तु 'नामूलातु जनश्रुतिः' के आधार पर सही है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इनके जीवनवृत्त के विषय में 'मिश्रबंधुविनोद' तथा 'राधाचरण गोस्वामी का छप्पय' प्रमाण माना है। शुक्ल जी ने इनकी मृत्यु नादिरशाही मारकाट में ही लिखी है। जब नादिरशाह की सेना के सिपाही मथुरा तक पहुँचे तब कुछ लोगों ने उनसे कहा कि वृंदावन में बादशाह का मीर मुंशी रहता है। उसके पास बहुत कुछ माल होगा। सिपाहियों ने इन्हे आ घेरा और 'जर-जर-जर' अर्थात् 'धन लाओ' कहने लगे। घनानंद जी ने शब्द को उलटकर 'रज-रज रज' कहकर तीन मुट्ठी वृंदावन की धूलि उनपर फेंक दी। उनके पास सिवा इसके और था ही क्या। कहते है, सैनिकों ने क्रोध में आकर इनका हाथ काट डाला। मरते समय उन्होंने अपने रक्त से यह कवित लिखा था—

बहुत दिनान की अवधि आस पास परे,
खरे अरबरनि भरे है उठि जान को।
कहि कहि आवन छबीले मनभावन को,
गहि गहि राखति ही दै दै सनमान को।
झूठी बतियान के पतियान ते उदास ह्वै कै,
अब न फिरत घनआनँद निदान को।

अधर लगे हैं प्रान, करि कै पयान जान,
चाहत चलन ये सँदेसो लै सुजान को।
—हि० सा० इतिहास, पृ० ३३५-३६।

एक प्रमाण 'भड़ौवा छंद' है, और अधिक विश्वस्त है। घनानंद की यह बात कि उन्होने निंबार्क संप्रदाय में दीक्षा ली, और इस संप्रदाय के अंतर्गत वे सखी भाव के उपासक थे और सुजान नाम की कोई वेश्या थी तथा उससे इनका प्रेम हुआ, इसका साक्ष्य 'जस कवित्त' नामक ग्रंथ से प्राप्त घनानंद संबंधी चार 'भड़ौवा छंद' करते है। 'जस कवित्त' ग्रंथ सं० १८१२ वि० का लिखा हुआ है। इसलिये उसके छंदो को कवि के समकालीन होने से प्रामाणिक मानना चाहिए। भड़ौवा छंदो के पूर्व में लिखा है—'कायथ आनंदघन महा हरामजादो हो। सु ब्रज की कटा मे आयौ। परतु अपजस वाको थिर है। ताको वर्णन।'

इनके जन्मस्थान आदि का कुछ सही पता नही चलता। जगन्नाथदास रत्नाकर ने इन्हें बुलंदशहर जिले का बताया है। उपर्युक्त प्रमाणों के आधार पर इनके जीवनवृत्त का यह स्वरूप है—

घनानंद का जन्म बुलंदशहर जिले के किसी ब्रजभाषा क्षेत्र से मिले हुए कस्बे की धरती में सं० १७४६ के लगभग हुआ। बचपन बिताकर, बाद में दिल्ली गए। ये जाति के कायस्थ थे, कलम के पक्के थे; इसलिये दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह रँगीले के 'खास कलम' या दरबार के मीर मुंशी हो गए थे। गायनविद् होने के साथ ही ये प्रेमी जीव थे। घनानंद अद्भुत कलापारखी भी थे। इसीलिये बादशाह के दरबार की वेश्या सुजान पर अनुरक्त थे, क्योंकि वह गायन, वीणावादन एवं नृत्य में निपुण थी। इनकी यह अनुरक्ति गहरी थी और आजीवन रही और इनके काव्यसर्जन की यह मूल प्रेरणा ही बन गई।

काव्य : घनानंद के काव्य की कतिपय रचनाओं का सर्वप्रथम प्रकाशन भारतेंदु हरिश्चंद्र ने 'सुंदरीतिलक' में कराया था। इसके बाद सन् १८७० मे उन्होंने ही 'सुजान सतक' नाम से इनके ११९ कवित्त प्रकाशित किए। सन् १८९७ मे श्री जगन्नाथदास रत्नाकर ने 'सुजानसागर' का प्रथम संस्करण काशी के हरिप्रकाश यंत्रालय द्वारा प्रकाशित किया। उन्होंने आनंदघन के शब्दों की एक अनुक्रमणिका भी तैयार की थी। वह काशी नागरीप्रचारिणी सभा के 'रत्नाकर संग्रह' में अद्यावधि सुरक्षित है। सन् १९०७ मे काशीप्रसाद जायसवाल ने 'वियोगबेलि', 'विरहलीला' नाम से नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित कराई थी। 'सुजानसागर' में ही कुछ और पद मिलाकर रसखान की कविताओं के साथ श्री अमीरसिंह के संपादन में 'रसखान और घनानंद' पुस्तक नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा सन् १९२९ मे प्रकाशित हुई। इसी का संक्षिप्त संस्करण 'घनानंद रत्नावली' नाम से भारतवासी प्रेस, प्रयाग ने भी प्रकाशित किया था।

सन् १९४३ मे लखनऊ के श्री शंभुप्रसाद बहुगुणा ने 'घनआनंद' नामक पुस्तक

प्रकाशित की जिसमें २०५ कवित्त, सवैए, दोहे आदि और ५८ गेय पद हैं। पद्यों का विषय-क्रम से विभाजन किया है। उनके अपनी ओर से शीर्षक भी दिए हैं। इसके अतिरिक्त 'वियोगबेलि' के ८१ पद्य और 'प्रेमपत्रिका' के २६ पद्य भी इसमें प्रकाशित हैं।

वैज्ञानिक संपादन करने का एकमात्र श्रेय पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र को है। इनके परिश्रम से पूर्व कवि की रचनाओं का दशांश भी प्रकाशित नहीं था। आपने तीन पुस्तकें इनकी रचनाओं के संग्रह की प्रकाशित की है। विश्वनाथ जी ने अपने संपादन का आधार श्री नवनीत जी चतुर्वेदी की प्रति को माना है। संपादक का विश्वास है कि प्रति अपेक्षाकृत अधिक प्राचीन है, शुद्ध, स्पष्ट तथा व्याकरणसम्मत तो है ही, जैसा पुस्तक के नाम से भी स्पष्ट होता है।

भाषा घनानंद का भाषा पर जैसा अचूक अधिकार था वैसा किसी अन्य कवि का नहीं। भाषा मानो इनके हृदय के साथ जुड़कर वशवर्तिनी हो गई थी; ये उसे अपनी अनूठी भावभंगी के साथ साथ जिस रूप में चाहते थे उस रूप में कहते थे। इनके हृदय का योग पाकर भाषा को नूतन गतिविधि का अभ्यास हुआ और वह पहले से कहीं अधिक बलवती दिखाई पड़ी। जब आवश्यकता होती थी तब ये उसे बँधी प्रणाली पर से हटाकर अपनी नई प्रणाली पर ले जाते थे। भाषा की पूर्वअर्जित शक्ति से काम न चलाकर इन्होंने उसे अपनी ओर से शक्ति प्रदान की है। आचार्य शुक्ल ने लिखा है—घनानंद जी उन बिरले कवियों में हैं जो भाषा की व्यंजकता बढ़ाते हैं। अपनी भावनाओं के अनूठे रूपरंग की व्यंजना के लिये भाषा का ऐसा बेधड़क प्रयोग करनेवाला हिंदी के पुराने कवियों में दूसरा नहीं हुआ। भाषा के लक्षक और व्यंजक बल की सीमा कहाँ तक है, इसकी पूरी परख इन्हीं को थी।

प्रेमव्यंजना : रीतिबद्ध कवियों की भाँति इनका प्रेम न तो काम की क्रीडा है और न तो एक तरह की परिपाटीनिहित प्रेम का कलात्मक चित्रण। इनके जीवन की प्रत्येक श्वास और हृदय की प्रत्येक धड़कन में प्रेम की मधुर टीस और असह्य वेदना है। प्रेम की ऐकांतिक उपासना इनके जीवन का साध्य और साधन दोनों है। सहज भाव से प्रिय को आत्मसमर्पण कर देने के अतिरिक्त इनके लिये और कोई उपाय नहीं है। यहाँ किसी तरह छल और चातुर्य को स्थान नहीं है। प्रेम के सीधे और ऋजुमार्ग की एक झाँकी प्रस्तुत है—

> "अति सूधो सनेह को मारग है जहँ नेकु सयानप बाँक नहीं।
> तहँ साँचे चलें तजि आपनपौ झिझकैं कपटी जे निसाँक नहीं॥"

प्रेमोन्माद में डूबे हुए घनानंद को इसकी परवाह नहीं थी कि इनका प्रिय इन्हें प्रेम करे ही। प्रेम में—सच्चे प्रेम में—तो केवल प्रदान किया जाता है, आदान के लिये यहाँ कोई स्थान

नहीं है। लोक तथा शास्त्र दोनों दृष्टियों से इनके प्रेम का औचित्य नहीं सिद्ध हो पाता, लेकिन इन बंधनो का अतिक्रमण कर इन्होने अपने आदर्श स्थापित किए हैं—

'चाहौ अनचाहौ जान प्यारे पै अनंदघन,
प्रीति रीति विषम सु रोम रोम रमी है।'

घनानंद का प्रेम न तो रीतिबद्ध कवियों की भाँति शरीरी है और न प्लेटोनिक प्रेम की तरह अशरीरी और वायवी। इनकी स्थिति बहुत कुछ दोनो की मध्यवर्तिनी है। घनानद में जितनी बेचैनी, जितनी तड़प और विह्वलता दिखाई पड़ती है वह इस काल के और किसी कवि मे नही पाई जाती।

घनानंद प्रेम की कसक सहते रहे। जिसको हृदय दिया था जब उसने भी साथ नही दिया तो विरह में उनकी हृत्तन्त्री का एक एक तार झंकृत हो गया। उनके हृदय के प्रेमविषयक सपूर्ण भाव उनकी कविता में निसृत होने लगे। कवितासर्जन के लिये उन्हें किसी प्रकार का प्रयत्न नहीं करना पड़ा—

"लोग है लागि कवित्त बनावत,
मोहि तौ मेरे कवित्त बनावत।"

और—उनके प्रेम को वही सहृदय समझ सकता है जिसमे अपनेपन को विसर्जित करने की भावना है। उनके प्रेम मे वासना का योग नहीं, आत्मा की विभोरता और निष्ठा है। हृदय की आँख से ही उसे देखा जा सकता है—

'समुझै कविता घनआनँद की,
हिय आँखिन नेह की पीर तकी।'

घनानंद विशुद्ध प्रेमी थे। रीतिकाल के कवियो मे प्रेम को जो अश्लीलता और बेहयाई मिलती है, घनानद की अभिव्यजना ने उसे स्पर्श तक नही किया है। उनका भौतिक प्रेम आध्यात्मिक प्रेम बनकर ही उन्मुख हुआ है। सयोग वियाग मे उनके लिये 'सुजान' ही काम्य रही। घनानंद ने सुजान को ईश्वर तथा स्वय की आत्मा को प्रिय से वियुक्त विरहिणी ही माना। अत स्पष्ट है कि उनके प्रेम के दो पहलू है—सुजान (प्रिया) और ईश्वर। सुजान की मीठी बातें एवं मुस्कान तो उनके मन से उतरती ही नही—

"वहै मुस्कानि, वहै मृदु बतरानि, वहै
लड़कीली बानि, आनि उर मे अरति है।"

परंतु प्रिय के निर्मोहीपन में वे बिसूर उठते है—

'तुम कौन धौ पाटी पढे हो लला,
मन लेहु पै देहु छटाँक नही॥'

मन (चालीस सेर का) तो ले लेते हो पर बदले मे कटाक्ष (सेर का सोलहवाँ भाग छटाँक)

तक नहीं देते ? प्रेम की अनुकूलता में कवि की आत्मा जड और चेतन का भेद स्वीकार ही नही करती। यह स्थिति कितनी करुण है। वे बादलों को देखकर कह उठते हैं—

घनआनद जीवनदायक हो,
कछु मेरोयौ पीर हियँ परसौ।
कबहूँ वा बिसासी सुजान के आँगन,
मो अँसुवान को लै बरसौ।

उपर्युक्त तथ्यो से स्पष्ट होता है कि एक सहृदय सुजान की बेवफाई का शिकार हो गया। घनानद का समस्त काव्य उसी शिकार होने और बलि चढ जाने की कहानी है। और ऐसी कहानी है जो आँसुओ से लिखी गई है तथा भावो की भाषा मे गाई गई है। हिंदी कवियो के इतिहास मे प्रेम की वेदी पर इतनी बडी बलि कभी नही चढी।

संयोग शृंगार स्वच्छंद काव्य धारा मे घनानद के सौदर्यचित्र सर्वाधिक भगिमापूर्ण, रगमय और रससिक्त है। घनानद की कविताओं के अतःसाक्ष्य के आधार पर उनका सुजान नाम की वेश्या पर अनुरक्त होना सिद्ध किया जा सकता है। इसीलिये उनका सौदर्याकन अपना वैशिष्ट्य रखता है। उनकी सौदर्यचेतना को ठीक ढग से समझने के लिये उनके इस व्यक्तिगत पहलू पर ध्यान देना अत्यत आवश्यक है।

अपने प्रिय का रूपचित्र खीचने मे घनानद ने रीतिबद्ध कवियो की भाँति स्थूल अप्रधान यौन अगो के आकार और व्यापार का वर्णन नही प्रस्तुत किया है। वे मुख्यत प्रिय के स्निग्ध सौदर्य पर ही रीझे हुए है। प्रिय की पावनता प्राय दो वस्तुओ मे निहित दिखाई देती है—रूप और गुण मे। घनानद का प्रिय इन दोनो से सयुक्त है।

शृगार की भावराशि इनके काव्य की अमर निधि है। घनानद ने अपनेकाव्य मे शृगार के दोनो ही पक्ष—सयोग, वियोग—को अपनाये है, किन्तु उनका सयोग, वियोग की अपेक्षा मौन रहा, और वियोग मुखरित रहा। वियोग को स्वर मिले और वह गूँज उठा। घनानद के प्रेम मे स्वच्छन्दता का योग है तो किंतु मांसलता का उतना विस्तृत वर्णन नही है।

घनानद सुजान के नृत्य और अभिनय पर मुग्ध होकर उसके हाथ अपनी बुद्धि बेच देते है और सुधि बुधि खो देते है—

"रूप मतवारी घनआनँद सुजान प्यारी
घूमरै कटाछि धूम करै पौन पै घिरै।
नाच की चटक लसै अगनि मरोरि रग,
लाड़िली अटक संग लोचन लगे फिरै।
अभिनै निकाई निरखत ही बिकाई मति,
गति भूली डोलै सुधि सो धौ न लिहौ फिरै।"

इसी प्रकार कवि सुजान के वीणावादन पर मुग्ध होकर किस प्रकार अनुराग की सरिता में तैरने लगता है—

"जान प्रबीन के हाथ को बीन है,
    मो चित राग भर्‌यौ नित राजै।
सो सुर साँच कहूँ नहि छाड़त,
    ज्यौ ही बजावै निएँ मन बाजै।"

सयोग शृगार मे वाणी, वेश, और चेष्टा के द्वारा संभोगेच्छा के प्रगट करने से लेकर आलिगन, चुबन, और सुरति के व्यापार तक सनिविष्ट है। रीतिबद्ध कवियों ने सयोग शृगार मे इन समस्त व्यापारों का बहुत ही क्रमिक और प्रचुर विवरण प्रस्तुत किया है। परतु रीतिमुक्त कवियो का मन इन प्रसगो मे नही रम सका है, यहाँ तो प्रिय के साक्षात् मात्र से ही हृदय उमड़ आता है। अथवा फिर उसके रूप के सौदर्य की आभा से दिशाएँ इस तरह दीप्त हो उठती है कि और कुछ दिखाई ही नही पड़ता—

चेटक रूप रसीले सुजान !
    दई बहुतै दिन नेकु दिखाई।
कौध मे चौध भरे चख हाय !
    कहा कहौ हेरनि ऐसी हिराई।

एक तो घनानद को सयोग का अवसर ही कम मिला है, दूसरे जब कभी इस प्रकार का अवसर प्राप्त भी होता है तब आँसुओ की झड़ी के कारण न तो वे प्रिय को भर आँख देख पाते है और न अपना सदेश ही कह पाते है—'नैन यो रैन दिना भर लावत'। सुरति और सुरतांत के चित्रो की इनके काव्य मे अल्पता है। जहाँ कही इस प्रकार के चित्र खीचे गए है वहाँ पर भी मन का उल्लास ही प्रमुख रूप से व्यक्त हुआ है। घनानंद की सुजान का एक ऐंद्रिय चित्र देखिए—

"पौढ़े घनआनँद सुजान प्यारी परजंक,
    धरे धन अक तऊ मन रक गति है।
भूपन उतारि अंग अगहि सम्हारि, नाना
    रुचि के विचार सो समोय सीझी मति है।
ठौर ठौर लै लै राखै और और अभिलाखै,
    बनन न भाखै तेई जानै दसा अति है।
मोद मद छाके घूमै रीझि भीजि रस झूमै
    गहै चाहि रहै चूमै अहा कहा रति है।

यहाँ पर शारीरिक और मानसिक आकर्षण का कैसा अपूर्व संयोग है। न तो इसमें पायल और बिछिया बजने की ध्वनि है और न सिसकियों की आवाज की अस्वस्थता। फिर भी ऐंद्रिय प्रभावोत्पादकता उन चित्रो की अपेक्षा इसमे कही अधिक है।

प्रेमक्रीड़ा की मनोमुग्धकारी और उल्लासपूर्ण झाँकी है—

"दाँव तकै, रस रूप छकै, विथकै मति पै अनि चोपन धावै।
चौकि चलै, उठि छैल छलै, सु छबीली छटाय लौ छाँह न छ्वावै।
घूँघट ओट चितै घनआनँद चोट बिनै अँगुठाहि दिखावै।
भावती गौ बस ह्वै रमिया हिय हौंसनि सोंसनि आँखि अँजावै।"

विरह विश्लेषण—घनानंद (प्रेमी) को विश्वास है कि उनकी आहें एक न एक दिन प्रिय को प्रभावित करेंगी। कभी तो उनका रंग आएगा ही। उसे अपनी अनन्यता पर दृढ़ विश्वास है। प्रेमी को वेदना है कि आरंभ में तो प्रिय ने प्रीति की डोर जोड़ी और विश्वासघात करके मुझे छोड़ गया है।

"पहिले अपनाय सुजान सनेह सौं क्यौं फिर नेह को तोरिए जू।
रस प्याय कै ज्याय, बढाय कै आस बिसास में क्यों बिस घोरिए जू।।"

घनानंद की विरहिणी अपने आँसुओं को बादलों से अपने प्रियतम सुजान के आँगन में बरसाने को कहती है। करुणा में, वियोग में आत्मा का विस्तार होता है, दृष्टि में सार होता है। जड़ाजड़ की सीमाएँ टूट जाती है। विरहिणी बादलों को भी परोपकारी कहती है। हर वियोगी अपना संदेशा अपने प्रिय तक पहुँचाने के लिये अधीर रहता है। प्रेमी यह चाहता है कि उसका प्रिय उसकी आँखों के आँसू देखे, उसके उच्छ्‌वासों को अनुभव करे, उसकी कराह को सुने। वह अपने प्रेम का, अपने विरहोद्‌गारों को अपने प्रिय पर प्रकट करना चाहती है। घनानंद की विरहिणी भी अपने विरहोद्‌गारों को पवन के समुख रखकर कहती है। वह प्रिय के चरणों की धूरि चाहती है, इसीलिये 'पौन' से कहती है—

"विरह व्यथा की मूरि, आँखिन में राखौं पूरि।
धूरि तिन पायन की हा हा नेकु आनि दै।"

विरहिणी आत्मा बाहर से भले ही मौन है किंतु उसके हृदय में तो अथाह सागर मथन कर रहा है। वह प्रिय से मिलना चाहती है—पर कैसे मिले, क्या उपाय करे, यही समस्या है—

'पाऊँ कहाँ हरि हाय तुम्हें,
धरनी में धसौं कै अकासहि चीरों।"

प्रिय की निष्ठुरता और विश्वासघात पर विरहिणी का मर्मस्पर्शी उपालंभ है—

हाय दई ! न बिसासी सुनै कछु,
है जग बाजति नेह की डोंडी।'

प्रिय के वियुक्त हो जाने पर प्रेमी का संसार ही उजड़ जाता है, उसका संपूर्ण रसस्रोत सूख जाता है। कजरारी आँखों की लुनाई और मुख की गुराई समाप्त हो जाती है—

'उजरनि बसी है, हमारी अँखियान देखो'।

निराशा की चरम सीमा पर पहुँचकर प्रेमी अपने दैन्य निवेदन से प्रिय के मन में करुणा उत्पन्न करना चाहता है। कभी तो यह दैन्य केवल दैन्य मात्र होता है, अर्थात् प्रेमी अपनी व्यथा का, दुःख दर्द का, ऐसा वर्णन करता है जिससे प्रिय का मन दयार्द्र हो सके और कभी वह अपने आत्मविश्वास, साधना और टेक के बल पर प्रिय के मन मे दया उत्पन्न करने की प्रतिज्ञा करता है। वस्तुतः यह प्रतिज्ञा उसकी निराशा का ही एक रूप है जिसे काल्पनिक इच्छापूर्ति कहा जा सकता है। यथा—

कठिन कुदाँय आय घिरी हौ अनंदघन,
रावरी बसाय तौ बसाय न उजारियै।

या

'ऐई दिए रहौगे कहाँ लौ बहराइबे की'।

घनानंद प्रेम की व्यथा से घबराते नही। वह तो उसे सहकर भी अपनी परीक्षा में खरा उतरने का सकल्प करते है—

'आसा गुन बाँधि के भरोसो सील छाति धरि,
पूरे पन सिंधु मे न बूड़त सकाय है।'

उनके शाश्वत विरह मे भी अखंड आशावाद झलकता है। घनानंद की कविता में जिस प्रेमभावना का निरूपण हुआ है, उसका प्रारंभ ही तो भौतिक धरातल पर होता है किंतु उसकी परिणति आध्यात्मिक प्रेम मे होती है। घनानद के संयोगवर्णन मे इतनी मार्मिकता नही जितनी उनके विरहवर्णन मे है। वास्तव मे ये विरह के कवि हैं। इनके काव्य मे प्रेयसी (आत्मा) अपनी प्रेमभावना को स्वयं ही व्यक्त करती है। उसे रीतिकालीन परंपरा की भाँति किसी दूती या सखी की आवश्यकता नही पड़ती। घनानद के काव्य मे रति और संयोग के कितने ही चित्र है। उनमे आध्यात्मिक तत्व भी मिला है। उनका संपूर्ण काव्य उनके हृदय की गाथा है। इनकी कविता मे शृंगार की वंशी की ध्वनि ही नही, भक्ति की खँजरी भी सुनाई पड़ती है। रीतिकाल की देन होकर भी इस काल के इतर कवियों की भाँति कविता को मादक वासना के जल से इन्होंने गँदला नही किया और 'सुदरतानि के भेद' को जाननेवाले घनानद ने 'चाह के रंग' में आशिर डूबकर 'हिय आँखिन' से 'नेह की पीर' को 'तक' कर अक्षुण्ण प्रेम की काव्यसाधना की है।

निष्कर्ष : (क) स्वच्छंद कवि घनानंद ने शृंगार के उदात्त रूप को ही अपनाया।

(ख) घनानद के काव्य मे भावोद्रेक ही प्रधान है। स्यात् इसका कारण यह है कि इनकी कविता संरक्षकों के बौद्धिक विलास के लिये न होकर उनके अपने लिये थी। काव्य के रूप में उन्हें तो अपने भावप्रसून अपनी सुजान के मादक चरणों मे समर्पित करने थे।

रीतिकाल के कवियो में भक्ति की विभोरता न थी, घनानंद में यह वृत्ति प्राप्य है।

इसमें संदेह नहीं कि घनानंद के काव्य का लक्ष्य रीतिकालीन कवियों की ही भाँति शृंगार-रस-सृष्टि ही है, लेकिन दोनों की दिशा अपनी अपनी, दशा अपनी अपनी।

ठाकुर

हिंदी साहित्य के विभिन्न इतिहासग्रंथों में अब तक ठाकुर नाम के तीन कवियों को मानने की परंपरा चली आ रही है--(१) असनीवाले प्राचीन ठाकुर, (२) असनी-वाले दूसरे ठाकुर और (३) बुंदेलखंडी ठाकुर। शिवसिंह सेंगर ने इनमें से किसी ठाकुर की कविताओं को 'कालिदास हजारा' में संगृहीत देखकर उन्हें सं० १७०० में उपस्थित[१] बताया था जिनका उल्लेख लाला भगवानदीन,[२] मिश्रबंधु,[३] रामचंद्र शुक्ल[४] प्रभृति साहित्य के इतिहासकारों ने 'प्राचीन ठाकुर' नाम से किया और उनका समय भी सं० १७०० ही माना है। 'सरोजकार' ने 'हजारा' के रचनाकाल सं० १७४५ को दृष्टि में रखकर ही ठाकुर के कालनिर्णय का अनुमान से प्रयास किया था किंतु 'सरोज' के विशिष्ट अध्येता डा० किशोरीलाल गुप्त के नवीन अनुसंधान के अनुसार 'हजारा' का संकलन सं० १८७५ के आसपास किया गया है।[५] इस कारण, ऐसी दशा में, असनीवाले प्राचीन ठाकुर का अस्तित्व समाप्त हो जाता है। इन प्राचीन ठाकुर का न तो जीवनवृत्त ही कुछ ज्ञात है और न आज तक उनकी किसी कृति का ही पता चल पाया है। 'असनी के हिंदी कवि' के अनुसंधाता डा० विपिनबिहारी त्रिवेदी के मतानुसार भी "इनका न तो कोई ग्रंथ ही देखने में आया और न इनके पूर्वजों अथवा वंशजों का ही पता असनी में लग सका।"[६] हमारी दृष्टि में कविविषयक ये अज्ञात बातें भी अंततोगत्वा उसकी अस्तित्वहीनता को ही सूचित करती है। इस प्रकार अब परंपरित तीन में से दो ही ठाकुर शेष रह जाते हैं— (१) बुंदेलखंडी ठाकुर कायस्थ और (२) असनीवाले ठाकुर बंदीजन। यहाँ इन्हीं दो पर सम्यक्‌रूपेण विचार किया जा रहा है।

---

१. 'शिवसिंह सरोज', पृ० ४२६, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, सन् १९२६ ई०।

२. सपा० लाला भगवानदीन : 'ठाकुरठसक' (साहित्य सेवक कार्यालय, काशी, सं० १९८३ वि०) भूमिका भाग।

३. 'मिश्रबंधु विनोद', भाग २, कवि संख्या ३३१।

४. 'हिंदी साहित्य का इतिहास', पृ० ३७९–३८५, पाँचवाँ संस्क०।

५. डा० किशोरीलाल गुप्त : 'सरोजसर्वेक्षण', पृ० ३२८, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, सन् १९६७ और नागरीप्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ६६, सं० २०१८, अंक २–४ (मालवीय शती विशेषांक) में प्रकाशित 'कालिदास हजारा' शीर्षक लेख।

६. डा० विपिनबिहारी त्रिवेदी : असनी के हिंदी कवि, पृ० ११९, भवानी प्रकाशन, जदु चटर्जी लेन, लखनऊ, मार्च, सन् १९६४ ई०।

बुंदेली ठाकुर कायस्थ

जीवनवृत्त : रीतिकालीन रीतिमुक्त शृंगारी भावधारा के विशिष्ट कवि ठाकुर का पूरा नाम ठाकुरदास था। जाति के ये श्रीवास्तव खरे कायस्थ थे। इनके पूर्वज लखनऊ के समीपस्थ काकोरी नामक स्थान के निवासी थे। इनके पितामह लाला खंगराय जी बहुत बडे मंसबदार थे जिनके पुत्र गुलाबराय जी का विवाह ओरछा निवासी रावराजा, जो उस समय महाराजा ओरछा के मुसाहिब थे, की कन्या के साथ हुआ था। कवि ठाकुर इन्ही गुलाबराय के पुत्र थे। खंगराय की मृत्यु के पश्चात् किसी कारणवश ठाकुर के पिता गुलाबराय अपनी पैतृक भूमि को छोडकर अपनी ससुराल ओरछा चले गए और वही रहने लगे। ठाकुर का जन्म वहीं उनके ननिहाल ओरछा में सं० १८२३ के किसी मास में हुआ था और वही पर उन्हें प्रारंभिक शिक्षा भी मिली थी। ठाकुर के ऊपर उनकी जन्मभूमि (बुदेलखंड) का प्रभाव पड़ा ज्ञात होता है। काव्यरचना वे बचपन से ही करते थे। वयस्क होने पर वे जैतपुर राजा के दरबार मे पहुँचे। वहाँ के तत्कालीन नरेश केसरीसिंह ने इनकी काव्य-रचना-शक्ति पर रीझकर इन्हें आश्रय प्रदान किया और तभी से वे उनके दरबार मे रहने लगे। राजा ने इन्हें पुरस्कार रूप मे एक गाँव भी प्रदान किया। चूँकि बिजावर मे इनके कुलवाले पहले से रहते आ रहे थे, इसलिये ठाकुर वहाँ भी कभी कभी जाया करते थे। अब भी उनके वंशज वहाँ रहते है। तत्कालीन बिजावरनरेश का भी नाम केसरीसिंह ही था। वे भी इन्हे जैतपुरी महाराज की भाँति ही मानते थे। उनके समान ही इनको एक गांव देकर संमानित किया था। जैतपुर के राजा केसरीसिंह के निधन के पश्चात् ये कुछ समय तक बिजावर मे ही रहे। परंतु फिर जब दिवगत नरेश के पुत्र पारीक्षत वयस्क हुए तो उन्होने ठाकुर को अपने दरबार मे बुला लिया। इन्ही के शासनकाल मे ठाकुर को सर्वाधिक प्रतिष्ठा और प्रसिद्धि प्राप्त हुई। इसके बाद तो ठाकुर बुंदेलखड के अनेक राजदरबारो मे आने जाने लगे। बाँदा के हिम्मतबहादुर गोसाई के यहाँ, जो पद्माकर के प्रमुख आश्रयदाताओं मे थे, ठाकुर का बराबर आना जाना लगा ही रहता था। पहुँचने पर ठाकुर और पद्माकर के मध्य कभी कभी काव्य-स्पर्धा-प्रेरित टक्कर भी हो जाया करती थी। एक बार पद्माकर ने कहा—'ठाकुर कविता तो अच्छी करते है पर पद कुछ हल्के पडते है।' छूटते ही प्रत्युत्पन्नमति ठाकुर बोले—'तभी तो मेरी कविता उडी उड़ी फिरती है।' लब्धप्रतिष्ठ कवि होने के नाते अपने समय मे ठाकुर की ख्याति अन्यान्य प्रदेशो तक भी फैल गई थी। इनके पुत्र दरियाव सिंह 'चातुर' और पौत्र शंकरप्रसाद भी कवि थे। ठाकुर का देहावसान सं० १८८० के लगभग हुआ था।

श्रुतियाँ लाला भगवानदीन ने 'ठाकुरठसक' की भूमिका में बुंदेलखंडी ठाकुर कवि की जो जीवनी दी है, उक्त वृत्त उसी पर आधारित है। इस कवि और उसकी जीवनी को सम्यक्रूपेण प्रकाश मे लाने का सर्वप्रथम श्रेय लाला जी को ही है। उन्होंने इस कवि के वृत्तसंग्रह के लिये उसके जन्मस्थान ओरछा और बिजावर तक की यात्राएँ कर उसकी

प्रकृति, उसके रहन सहन, वेशभूषा, वंशवृक्ष आदि से संबद्ध बातों की खोज की तथा यथाशक्य एतद्विषयक सामग्री का निरीक्षण परीक्षण कर उसे 'ठाकुरठसक' की भूमिका के रूप में प्रस्तुत किया। उन्होंने इस संदर्भ में कतिपय ऐसी जनश्रुतियों का भी उल्लेख किया है जिनसे कवि की आभ्यंतरिक सूझ बूझ तथा निर्भीक प्रकृति और उसके सौंदर्यबोध का परिचय मिलता है। एक बार बाँदे के हिम्मतबहादुर गोसाईं ने महाराज पारीक्षत को धोखे से बुलाकर उन्हें मारना या कैद करना चाहा (अंग्रेजों के पिट्ठू गोसाईं ने अंग्रेजों से ऐसा करने के लिये वादा किया था)। जब महाराज पारीक्षत वहाँ जाने के लिये तैयार होकर कुछ दूर निकल गए तो ठाकुर को, जो कहीं पास ही गए हुए थे, इसकी खबर लगी। वे तुरंत घोड़े पर सवार हो मार्ग में राजा से जा मिले और निम्नांकित सवैया पढ़ा---

कैसे सुचित भए निकसौ बिहँसौ बिलसौ हरि दै गलबाँही।
ये छल छिद्रन की बतियाँ छलती छिन एक घरी पल माँही।
ठाकुर वे जुरि एक भई रचिहैं परपंच कछू ब्रज माँही।
हाल चवाइन की दुहचाल सो लाल तुम्हें या दिखात कि नाँही॥

पारीक्षत इस संकेत को समझकर वापस चले गए। जब हिम्मतबहादुर को इसकी खबर लगी तो वे ठाकुर पर जल भुन उठे और उन्हें बाँदे अपने दरबार में बुलाया। उनकी नाराजगी को जानते हुए भी जब ठाकुर निःशंक भाव से दरबार में हाजिर हो गए तो वे उनपर और बिगड़े। तब ठाकुर ने उसके प्रत्युत्तर में यह छंद कहा---

वेई नर निर्णय निदान में सराहे जात,
सुखन अघात प्याला प्रेम को पिए रहे।
हरिरस चंदन चढ़ाय अंग अंगन में,
नीति को तिलक, बेंदी जस की दिए रहै।
ठाकुर कहत मंजु कंजु ते मृदुल मन,
मोहनी सरूप धारे हिम्मत हिए रहै।
भेंट भए समए असमए, अचाहे चाहे,
और लौं निबाहैं आँखैं एक सी किए रहै॥

कवि द्वारा अपनी इस नीति को स्पष्ट करने के पश्चात् भी जब हिम्मतबहादुर का क्रोध शांत होने के बजाय और बढ़कर कवि के प्रति 'बदजबानी' के रूप में सामने आया तो स्वाभिमानी और निर्भीक कवि ठाकुर ने भरी सभा में तलवार खींचकर सशक्त स्वर में यह कवित्त पढ़कर उनकी कटूक्ति का यथोचित उत्तर दिया---

सेवक सिपाही हम उन रजपूतन के,
दान जुद्ध जुरिबे में नेकु जे न मुरके।
नीति देनवारे है मही के महिपालन को,
हिए के बिसुद्ध है सनेही साँचे उर के।

ठाकुर कहत हम बैरी बेवकूफन के,
जालिम दमाद है अदानियाँ ससुर के।
चोजिन के चोजी महाभोजिन के महाराज,
हम कबिराज है पै चाकर चतुर के॥

तब हिम्मतबहादुर ने इसे सुनकर कहा--'बस, कवि जी बस ! मैं तो केवल इतना ही देखना चाहता था कि आप विशुद्ध कवि ही है अथवा पूर्वजो की हिम्मत भी आप मे है।' ठाकुर अपने वाक्कौशल का परिचय देते हुए बोले--'राजा साहब ! हिम्मत तो हमारे ऊपर सदैव से अनूप रूप से बलिहार होती आ रही है, आज हमारी हिम्मत कैसे गिर जायगी (गोसाईं हिम्मतगिरि का वास्तविक नाम अनूपगिरि था, 'हिम्मतबहादुर' तो उनकी शाही उपाधि थी)।

ठाकुर के सौंदर्योपासक व्यक्तित्व के संबंध मे भी एक बड़ी सरस कथा कही जाती है। वे जब बिजावर में रहा करते थे तो वहाँ की एक परम सुंदरी सुनारिन के सौदर्य पर मुग्ध थे। उसे जहाँ कही और जब कभी वे देखते तो तुरत करबद्ध प्रणाम करते और एक न एक छद उसे सुनाते हुए अवश्य पढ़ते। कवि जी को अपनी ओर आकृष्ट देख वह भी उनको ओर आकृष्ट हो उठी। अब तो वह नित्यप्रति किसी न किसी बहाने कवि जी को अपना दर्शन देती और उनके द्वारा पढ़ी कविता का रस लेती। इसका पता चलने पर उसके घरवालो ने बिजावर नरेश से शिकायत की। राजा के पूछने पर कवि जी ने कहा--'महाराज ! मैं तो उस सौंदर्य का मात्र तटस्थ द्रष्टा ही हूँ, इसके अतिरिक्त उससे मेरा और कोई लगाव नही है।' राजा को इन बातो पर विश्वास न हुआ। परिणामस्वरूप उन्हें महाराज ने सात दिनो के लिये नजरबंद कर दिया। कहा जाता है कि कवि के कष्टो के कारण उस कुएँ का जल एकदम सूख गया जहाँ सुनारिन पानी भरने के बहाने आकर ठाकुर को दर्शन दिया करती थी। इसी प्रकार और कुएँ भी सूखने लगे जिसके नाते विवश हो राजा ने कवि जी को मुक्त कर दिया। फिर सभी कुएँ पहले की तरह पानी से भर गए। इससे ठाकुर ने बिजावर को सर्वदा के लिये छोड़ दिया और उस सुनारिन ने, सधवा होते हुए भी, मरते दम तक कभी भी शृंगार नही किया। सुना जाता है, उक्त घटना के पूर्व एक बार वह सुनारिन दो चार दिनो के लिये बीमार पड गई। उसके दर्शनो से वंचित कविहृदय बहुत बेचैन हो उठा। जब कवि जी से न रहा गया तो वे उसके मकान की गली मे गए जहाँ घूम घूमकर समय काटते हुए निम्नांकित सवैए की सृष्टि की--

गति मेरी यही निसिबासर है चित तेरी गलीन के गाहने है।
मन कीन्हो कठोर कहा इतनो अब तोहि नही यह चाहने है।
कवि ठाकुर नेकु नही दरसी कपटीन को काह सराहने है।
मनभावै सुजान सोई करियौ हमें नेह को नातो निबाहने हैं॥

कवि की काव्यभूमिका के मूल में प्रेम की यही अनुभवनिष्ठ और अभिलाषिकी वृत्ति प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में प्रायः सर्वत्र काम करती जान पड़ती है।

व्यक्तित्व : निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि प्रकृति से ठाकुर स्वच्छंद, मनमौजी, निर्भीक, स्पष्टवादी, स्वाभिमानी, सौंदर्यप्रेमी, भावुक, विरोधियों के प्रति उग्र एवं सहयोगियों के प्रति सहृदय, उदार और बुद्धि से दूरदर्शी, कुशल, मर्म तक पहुँचनेवाले तथा देशकाल की गति को अच्छी तरह पहचाननेवाले व्यक्ति थे। दरबारी होते हुए भी उन्होंने किसी आश्रयदाता की अतिरंजित प्रशंसा कभी नहीं की। काव्य में सच्चे सरस और उमंगभरे अनुभूत भावचित्रण के कायल होने के कारण ठाकुर रीतिबद्ध कवियों की परंपरामुक्त काव्यसर्जन को रूढ़ परिपाटी से उतने ही चिढ़ते थे जितने गोरखपंथियों और कबीरपंथियों से तुलसीदास। निम्नोद्धृत कवित्त इस कथन का प्रत्यक्ष प्रमाण और कवि की खीझ, फटकार तथा तत्कालीन रीतिग्राश्रयी ह्रासोन्मुखी कविता पर करारी चोट का सूचक है--

सीखि लीनो मीन मृग खंजन कमल नैन,
 सीखि लीनो जस औ प्रताप को कहानो है।
सीखि लीनो कल्पवृक्ष कामधेनु चिंतामनि,
 सीखि लीनो मेरु औ कुबेर गिरि आनो है।
ठाकुर कहत याकी बड़ी है कठिन बात,
 याको नहीं भूलि कहूँ बाँधियत बानो है।
डेल सो बनाय आय मेलत सभा के बीच,
 लोगन कवित्त कीबो खेल करि जानो है॥

अपनी कविता में अपने व्यक्तित्व की ऐसी सार्थकता के कारण, सुना जाता है, ठाकुर स्वयं ही कहा करते थे कि 'देखन चाहौ मोहि तो, मम कविता लखि लेहु।'

रचनाएँ : बहुत दिनों तक ब्रजभाषा के अनेक छोटे बड़े प्राचीन काव्यसंग्रहों में ठाकुर नामछाप की रचनाएँ देखी जाती रहीं। बाद में, कवि की रचनाओं का 'ठाकुर शतक' नामक एक संग्रह सं० १९६१ में भारतजीवन प्रेस, काशी, से प्रकाशित हुआ। इसके संग्रहकार थे चरखारी निवासी बाबू काशीप्रसाद और इसमें कुल १०७ छंद थे। इसके २२ वर्षों के पश्चात् लाला भगवानदीन ने 'ठाकुरठसक' संज्ञक एक संग्रह काशी के 'साहित्यसेवक कार्यालय' से सं० १९८३ में निकाला।

'ठाकुरठसक' में कुल छंदों की संख्या १९२ है जिसमें 'शतक' के तीन छंदों (५, ६५, ८७) को छोड़कर १०४ छंद तो उसी से ले लिए गए हैं तथा ८८ छंद और नए ढूँढ निकाले गए हैं। प्रथम संग्रह (ठाकुरशतक) को 'बहुत अशुद्ध' करार देते हुए लाला जी ने अपने प्रयास को नवीनता और शुद्धता से पूर्ण माना और अनेक ठाकुरों की पृथक् स्थिति को दिखाते हुए लिखा कि "दोनों असनी निवासी ठाकुरों की कविता बहुत मिलती जुलती,

पुराने ढंग की है। एक-स्थान-निवासी होने के कारण भाषा में भी बहुत कम अंतर है। साहित्य के बंधनों से जकड़ी हुई, नायिकाभेद, अलकार, नखशिख और षड्ऋतु के व्यास के भीतर ही घूमकर रह जानेवाली है। उनकी भाषा में अंतर्वेदीय शब्द और बोलचाल के प्रचलित मुहावरे पाए जाते है जिनको अन्यदेशीय कवि सहज रीति से प्रयोग मे नही ला सकते। जैंतपुरी ठाकुर की कविता मे बहुधा कोई न कोई लोकोक्ति अवश्य पाई जाती है और उनकी भाषा मे ऐसे ऐसे बुंदेलखडी शब्द और मुहावरे पाए जाते हे कि अन्य देशीय कवि बिना कठिनता के उनका प्रयोग नही कर सकते।'[१]

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि लाला जी ने प्रमुख रूप से भाषाशैली के आधार पर अनेक ठाकुरों के बीच अलगाव दिखाने का प्रयास किया है। किंतु 'याज्ञिक त्रय' का मत है कि 'प्रत्येक ठाकुर कवि की भाषा का मिलान करने से भी इन सब ठाकुर कवियो की कविता को निश्चित रूप से अलग करना कठिन ही है।'[२] लालाजी के उक्त कथन से यह भी जान पड़ता है कि असनीवासी दोनो ठाकुर रीतिबद्ध कवि थे। परतु, जैसा पीछे कहा जा चुका है, अब हाल की खोज से असनी के रहनेवाले 'प्राचीन ठाकुर' का अस्तित्व समाप्त हो गया है। शेष रहे असनीवासी ठाकुर बदीजन, उनके सबध मे यह कहा जा सकता है कि जब तक उनकी कोई रीतिबद्ध कृति नही प्राप्त होती तब तक ठाकुर नामछापवाले कुछ स्फुट छदो के वर्णनपरिवेश को देखकर उन्हे रीतिरचनाकार कवि ठहराना अनुमान मात्र ही कहा जाएगा। इसी प्रकार के अनुमान का आश्रय लेकर ब्रजभाषा के प्रसिद्ध प्राचीन रीतिपरक काव्यसग्रहो मे घनआनद जैसे विशुद्ध स्वच्छदमार्गी कवि की रचनाओ को समाविष्ट कर लिया गया है किंतु क्या इस नाते हम उन्हें रीतिकवि मान लेंगे ?

इसके अतिरिक्त विभिन्न ठाकुरो के मध्य सीमारेखा खींचते समय लाला जी ने सावधानी से काम नही लिया है। 'ठाकुरठसक' की भूमिका मे जिन छदो को असनी के 'प्राचीन ठाकुर' और 'असनीवाले दूसरे ठाकुर' द्वारा रचित माना, उन्ही को पुनः जैंत-पुरी ठाकुर की रचना मानकर उक्त सकलन के मूल भाग मे सगृहीत कर लिया, यथा, भूमिका भाग के पृष्ठ ३ पर जो ३ और ५ की संख्यावाले छद 'प्राचीन ठाकुर' के नाम मे चढे हैं, उन्ही को पुन. क्रम से मूल भाग के पृष्ठ २७ और २१ पर जैंतपुरी ठाकुर की रचना के रूप मे रख दिया गया है। इसी प्रकार भूमिका के पृष्ठ ४ पर जो ४ व ५ संख्या के सवैए दूसरे असनीवाले ठाकुर के नाम से दिए गए है, उनको पुनः मूल भाग के क्रमशः पृष्ठ २४ व २६ पर छदसख्या १०१ और १०८ के नाम से सकलित कर लिया

---

१. संपा० लाला भगवानदीन : 'ठाकुरठसक', भूमिका भाग, पृ० १–२।

२. याज्ञिक त्रय : 'साहित्य समालोचक', पृ० ४७ (श्रावण सं० १९८४, भाग ३, संख्या १)।

गया है। यही नही, 'उन्होंने अपने संपादित संस्करण के पद्यो की प्रामाणिकता का भी कोई युक्तिसंगत आधार नही ठहराया है जिस कारण उसमे सगृहीत अनेक पद्यो के जैतपुरी प्रेमी ठाकुर कवि कृत होने मे सदेह बना रह जाता है।'[1] इन बातो को दृष्टि मे रखते हुए लाला जी के इस दावे का कोई विशेष मूल्य नही रह जाता कि "अब तक ठाकुर (जैतपुरी) की जितनी कविता प्राप्त हुई है सब इसमे दी हुई है। अन्य ठाकुरो की कविता इसमे नही है।[2] इसीलिये याज्ञिक त्रय ने भी लिखा था कि "लाला जी अपनी जाँच मे सफल नही हुए है।"[3] अन्य निश्चित साक्ष्य के अभाव मे यहाँ इतना ही कहना ठीक होगा कि बुंदेलखडी ठाकुर का वैशिष्ट्य उनकी भाषा एव शैली से कही अधिक उनके काव्य में अभिव्यजित सरल और मुक्त मनोवृत्ति की उस सहज अनुभूति में है जिसके कारण वे अपने ढेर सारे समकालीन रीतिकवियो से नितान्त पृथक् जा पड़ते है। उनकी यह खूबी उन्हे दूसरे ठाकुर से भी अलग कर सकने के प्रमुख आधारो मे मानी जा सकती है। 'खोज'[4] मे बुंदेलखडी ठाकुर की निम्नाकित हस्तलिखित कृतियाँ उपलब्ध बताई गई है.—

(१) 'कवित्त फुटकर' (सन १९३२-२१६)
(२) 'कूट कवित्त' (१९२३-४२६)
(३) 'ठाकुरशतक' अन्य नाम 'ठाकुर के कवित्तो का सग्रह' (१९०५-९८, १९२०-१९३)

इनमे से प्रथम कृति, जैसा नाम से ही स्पष्ट है, कवि के फुटकर 'कवित्तो' का संग्रह है जिसकी हस्तलिखित प्रति गोकुलनाथ जी (मथुरा) के मंदिर के अधिकारी श्री मयाशंकर याज्ञिक के यहा देखी गई है। उस प्रति से रचना या लिपिकाल आदि से संबंधित कोई सूचना नही मिलती। 'ठाकुरशतक' की जो प्रति 'खोज' मे ठाकुर जगदेव सिह, रामघाट (बुलदशहर) के यहाँ उपलब्ध हुई है, उसे 'खोजरिपोर्ट' के सपादक ने असनीवासी ठाकुर कवि की कृति मानी है। परतु ऐसी स्थिति मे इतना ही कहा जा सकता है कि इस प्रति का परिचय पाने के लिये 'खोजकर्ता' ने उसके 'आरभ' और 'अत' के जो दो दो छंद उद्धृत किए है वे लाला जी द्वारा सपादित 'ठाकुरठसक' मे तदवत मिल जाते है। अब तक किसी ने भी 'कूटकवित्त' जैसी चीज की चर्चा किसी भी ठाकुर के संदर्भ में नही की है। 'खोज' में ठाकुर नौनिहाल सिह, काना (पो० काना, जि० उन्नाव) के यहाँ

---

१. पं० परशुराम चतुर्वेदी : मध्यकालीन शृगारिक प्रवृत्तियाँ तथा नवनिबध, पृ० १९८।

२. संपा० लाला भगवानदीन : 'ठाकुरठसक', भूमिका भाग।

३. याज्ञिक त्रय : 'साहित्य समालोचक' (स० १९८४ भाग ३, संख्या १), पृ० ५२।

४. हस्तलिखित हिंदी पुस्तको का संक्षिप्त विवरण, प्रथम खंड, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, स० २०२१ वि०।

'कूट कवित्त' की जो प्रति देखी गई है उसका लिपिकाल सं० १८४२ है। यदि इसके लिपिकाल को थोड़ी देर के लिये उसका रचनाकाल मान लिया जाय और बुंदेलखंडी ठाकुर को उसका रचयिता, तो उन (कवि) के जन्म संवत् १८२३ को दृष्टि में रखते हुए यही कहना पड़ेगा कि वे उस समय १९ वर्ष के रहे होंगे जब उन्होंने कूट कवित्तों की रचना की होगी। किंतु रचनाकाल और लिपिकाल में सामान्यतया अंतर मानना ही पड़ेगा। इस कारण इनमें थोड़े वर्षों का अंतर मान लेने पर भी 'कूट कवित्त' के प्रणेता बुंदेलखंडी ठाकुर थे, इसकी संभावना बहुत कुछ घट जाती है। दूसरे ठाकुर का व्यक्तित्व इतना उन्मुक्त है कि उसमें कूटकाव्य जैसी अस्पष्ट और गँठीली वस्तु के लिये कहीं से कोई अवकाश नहीं दिखाई पड़ता, वैसे संभावना की पहुँच बड़ी लंबी होती है। प्रथम दोनों संग्रहों के विषय शृंगार, भक्ति और नीति है, जिनमें शृंगारविषयक छंदों की संख्या ही सर्वाधिक है। संभव है 'कूट कवित्त' दूसरे ठाकुर असनीवाले की रचना हो, किंतु किसी निश्चित प्रमाण के बिना कुछ कह पाना कठिन है।

कवित्त . ठाकुर सहज और स्वाभाविक अनुभूति के कवि थे। उनकी कविताओं में सर्वत्र यह सरल और निश्छल भावानुभूति तरंगित है। 'सीखि लीनो मीन मृग' शब्दों से शुरू होनेवाले छंद से ऐसा जान पड़ता है कि कविता को ऐसी मानवीय संवेदनाओं के मेल में होना चाहिए, स्वानुभूति जिसके मूल में होती है। इसीलिये काव्य के प्रति मात्र वस्तुपरक (शास्त्रीय) दृष्टिकोण विगर्हणीय है। कवि ने सर्वत्र इस बात पर ध्यान दिया है जिसके कारण उसकी नितांत निजी भावनाएँ भी सबकी मालूम पड़ती है। कला का आग्रह पूरी तरह से स्वीकार करते हुए भी भावक्षेत्र में वे स्वतंत्रता के पक्षपाती थे। यद्यपि ठाकुर के काव्य का वर्ण्यविषय भी रीतिमार्गी कवियों की भाँति शृंगार, भक्ति और नीति है तथापि उनपर उनके व्यक्तित्व की छाप का रंग इतना चटक है कि प्रयोग की दृष्टि से वे ऐसी ढेरों रचनाओं से एकदम अलग दिखाई पड़ती है। 'प्रेम को पंथ' को अपनाकर भी कवि नायिकाभेद के चक्कर में नहीं पड़ा।

कवि के पास सरस और अनूठे भाव ही नहीं, अनूठी भाषा भी थी। सामान्य व्यवहार की चलती हुई ब्रजभाषा का प्रयोग ही उसने किया है। लाला जी ने लिखा है कि उन्होंने 'न तो केशव और तुलसीदास की तरह की किताबी भाषा अपनाई, न पजनेश की भाँति उसे गढ़ा ही, वरन् अपने लिये एक विलक्षण ही भाषा अंगीकार की जैसी किसी दूसरे बुंदेलखंडी कवि को नहीं मिली।'[1] अकृत्रिम भाषाशैली सुकुमार भावव्यंजना के लिये पर्याप्त सक्षम है। लोकोक्तियों, मुहावरों और जनप्रचलित तद्भव शब्दों का जैसा सगत और सटीक प्रयोग इस कवि ने किया है वैसा अन्य किसी ने भी नहीं। निश्चय ही ऐसे प्रयोग उसकी प्रमुख विशेषता बन गए है। इससे अभिव्यक्ति स्वाभाविक, रमणीय,

---

१. लाला भगवानदीन : 'ठाकुरठसक', भूमिका, पृ० ३।

सजीव और व्यंजनापूर्ण हो उठी है। सवैया छंद में कवि की सहज गति थी जिसका स्पष्ट प्रभाव भारतेंदु जैसे कवि पर भी पड़ा था। उर्दू शब्दों के प्रचलित प्रयोग भी उसकी भाषा में पाए जाते है। कवि की काव्यगत इन्हीं विशेषताओं के कारण पं० विश्वनाथ-प्रसाद मिश्र ने लिखा है कि 'भाषा, भाव, व्यंजना, प्रवाह, माधुरी किसी भी विचार से ठाकुर का कोई भी कवित्त या सवैया उठाइए, पढ़ते ही हृदय नाच उठेगा।'[1] भक्ति का पक्ष तत्कालीन अन्य कवियों की तरह निर्बल है और नीति को प्रेम का पुट देकर प्रस्तुत किया गया है। होली, दशहरा आदि अनेक त्योहारों के वर्णन कवि के लोकदर्शी दृष्टिकोण के सूचक है।

असनीवाले ठाकुर बंदीजन

ये असनी (फतेहपुर) के निवासी कविवर ऋषिनाथ के दत्तौते[2] पुत्र थे। 'सतसैया बरनार्थ' संज्ञक अपनी कृति के अंत मे कवि ने अपना तथा अपने पिता के नामो और वासस्थान का स्पष्ट उल्लेख किया है

पुत्र सुकवि रिषिनाथ को ही है ठाकुर नाम।
असनीवासी मै कह्यो या लखि नृप गुन धाम ॥[3]

इसके अतिरिक्त ठाकुर के पौत्र सेवक कवि के भतीजे श्रीकृष्ण के अनुसार ऋषिनाथ के पूर्वज कवि देवकीनंदन मिश्र गोरखपुर जिले के रहनेवाले सरवरिया ब्राह्मण पयासी मिश्र थे, जिन्हें मझौलीनरेश के यहाँ विवाहोत्सव मे भाटों की भाँति 'कवित्त' पढ़ने के नाते जातिबहिष्कृत होना पड़ा था। तत्पश्चात् वे असनी के प्रख्यात ब्रह्मभट्ट कविवर नरहरि की पुत्री से विवाह कर भाट कहलाए और वहीं बस भी गए। इस वंश मे कवि होते ही आए थे। सेवक ने अपना जो पद्यबद्ध परिचय दिया है उसमे ऋषिनाथ से लेकर उन (सेवक) के पौत्र तक का उल्लेख हुआ है। उसके अनुसार भी ऋषिनाथ के पुत्र ठाकुर धनीराम कवि के पिता, गौरीशंकर तथा सेवक कवियों के पितामह थे। मिश्रबंधुओ ने अपने 'विनोद' मे अनुमान से ठाकुर का जन्मकाल सं० १७९२ मानने का एक संकेत

---

१ हिंदी साहित्य का अतीत, भाग २, पृ० ६९८।

२. डा० विपिनविहारी त्रिवेदी : 'असनी के हिंदी कवि' पृ० १११।

३ 'हिंदी के हस्तलिखित ग्रंथो की वार्षिक खोज रिपोर्ट', सन् १९०४, संख्या १८।

४ श्री ऋषिनाथ को हौं मैं पनाती औ नाती हौं श्री कवि ठाकुर केरो।
श्रीधनीराम को पूत मैं सेवक शंकर को लघु बंधु ज्यों चेरो।
मान को आप बबा कसिया को चचा मुरलीधर कृष्ण हूँ हेरो।
असिनी मैं घर काशिका मैं हरिशंकर भूपति रच्छक मेरो॥
—मिश्रबंधुविनोद, भाग ३ पृ० १०४०, द्वि० सं० से उद्धृत।

भर दिया था जिसे पं० रामनरेश त्रिपाठी ने तद्वत ग्रहण कर लिया है।[१] पं० अंबिकादत्त व्यास ने अपने ग्रंथ 'बिहारीविहार' मे इन ठाकुर की विशेष रूप से चर्चा की है।

काशी के नामी रईस और काशिराज के संबंधी बाबू देवकीनंदन सिंह कवि ठाकुर के आश्रयदाता थे, जिनके प्रीत्यर्थ उन्होंने 'बिहारीसतसई' की 'सतसैया बरनार्थ' (अन्य नाम 'देवकीनंदनतिलक') नामक टीका की रचना की है। 'खोज' (सन् १९०४, संख्या १८, १९२६–४७८) मे इस टीका की दो हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध हुई हैं— एक महाराज बनारस के पुस्तकालय से और दूसरी महाराज श्रीप्रकाश सिंह, मल्लापुर, (सीतापुर) के यहाँ से। प्रथम प्रति का लिपिकाल सं० १९१० वि० और द्वितीय का सं० १९६३ वि० है। 'तिलक' के आरंभ मे उसका रचनाकाल इस प्रकार दिया गया है :

ससि (१) रस (६) सिधि (८) ससि(१) साल गुरु तेरसि बदी अषाढ़।
रचो जथामति मैं तिलक आसय सहित अगाढ़॥[२]

इससे स्पष्ट हो जाता है कि उसकी रचना आषाढ़, कृष्णपक्ष त्रयोदशी, गुरुवार संवत् १८६१ वि० में हुई, किंतु 'खोजविवरणकार' ने उक्त 'रस' शब्द को ९ का वाचक मानकर उसका रचनाकाल सं० १८९१ माना है, जो गलत है। संख्याबोध के लिये प्रयुक्त 'रस' शब्द प्राय: सर्वत्र ही ६ का वाचक बनकर आता है। यह टीका काफी बड़ी है। उसमे कुल ३४७ पन्ने हैं। उसे देखने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि टीकाकार ने 'सतसई' के गूढ़ार्थों को स्पष्ट करने के लिये बडे प्रयास और परिश्रम से काम लिया है। इससे ठाकुर केवल कवि ही नहीं, काव्यपंडित भी जान पड़ते है। बिहारी के वृत्त का उल्लेख करते हुए उन्होंने इस टीका में बताया है कि 'सतसई' के दोहों की रचना बिहारी ने नही बरन् उनकी पत्नी ने की थी, जिनकी संख्या १४०० थी। इसके अतिरिक्त यह लगभग निश्चित सा ही है कि इस कवि का कृतित्व उक्त 'तिलक' तक ही सीमित नही रहा होगा, उसने कुछ स्फुट रचनाएँ भी की होगी जिनकी स्थिति ठाकुर नाम से पाई जानेवाली गड्डमड्ड रचनाओं में होगी।

मिश्रबंधु बुंदेलखंडी ठाकुर की स्थिति से अवगत नही जान पड़ते, क्योंकि उन्होंने अपने 'विनोद' मे कही उनका नाम तक नही लिया है! इस कारण ठाकुर के नाम पर जो प्रसिद्धि और प्रशंसा बुंदेलखंडी ठाकुर को मिलनी चाहिए थी वह उन्होंने असनी के ठाकुर को दे डाली है। 'विनोद' का अनुगमन कर पं० रामनरेश त्रिपाठी ने उसी की पुनरावृत्ति की है।[३] पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र[४] और पं० परशुराम चतुर्वेदी[५] के अनुसार ये ठाकुर

---

१. मिश्रबंधुविनोद, कवि संख्या ७२३ तथा कविता कौमुदी, पहला भाग, पृ० ५११, सन् १९५४ ई० का आठवाँ सस्क०।

२ हिंदी के हस्तलिखित ग्रंथों की वार्षिक खोज रिपोर्ट, सन् १९०४, संख्या १८।

३. 'कविताकौमुदी', भाग १, पृ० ५११, आठवाँ संस्क० १९५४ ई०।

२. 'हिंदी साहित्य का अतीत', २, शृंगारकाल, पृ० ६६४, प्र० सं०, सं० २०१७।

३. 'मध्यकालीन शृंगारिक प्रवृत्तियाँ तथा नवनिबंध, पृ० १५८ प्र० सं० १९५५ ई०।

रीतिबद्ध थे, जबकि 'हिंदी साहित्य कोश' में 'रीतिमुक्त कवियों में आपका विशिष्ट स्थान है'[१] कहकर उन्हें विशुद्ध रीतिस्वच्छंद कवि माना गया है। किसी ठोस प्रमाण के अभाव में इस संबंध मे सरलता से निर्णय देना कठिन होगा। काव्य की दृष्टि से इनमे भाव और भाषागत लालित्य, चमत्कार और सरसता देखने योग्य होती है। सुकुमार भावव्यंजना, विमुग्धकारी उक्तिचमत्कार और निर्बाध दृश्यनिर्वाह दूसरे ठाकुर के काव्य के प्रमुख गुण कहे गए है।

बोधा (बुद्धिसेन)

जीवनवृत्त : रीतिस्वच्छंद शृंगारी भावधारा के विशिष्ट कवि बोधा का वास्तविक नाम बुद्धिसेन था। डुमरावँ (शाहाबाद) के निवासी पंडित नकछेदी तिवारी 'अजान' ने 'भारतजीवन यत्रालय', काशी से बोधाकृत 'इश्कनामा' प्रकाशित करवाया, जिसमे सर्वप्रथम बोधा का जीवनवृत्त दिया गया। तिवारी जी को इस कवि के विषय मे बुंदेलखंडी कवियो से सुन गुनाकर जो जानकारी प्राप्त हुई उसको उन्होने उक्त पुस्तक की भूमिका में रख दिया है। इस वृत्तसग्रह के अनुसार बोधा (अथवा बुद्धिसेन) सरवरिया ब्राह्मण और राजापुर (जिला बाँदा)[२] के निवासी थे। किसी घनिष्ठ संबंध के नाते बोधा बचपन मे ही अपनी निवासभूमि छोड़कर बुंदेलखंड की राजधानी पन्ना चले गए। उन्होंने वहाँ संस्कृत के साथ फारसी का भी अच्छा ज्ञान प्राप्त किया। काव्यरचना तो वे हिंदी में करते ही थे। अपने संबंधियो के जिनको दरबार में बड़ी प्रतिष्ठा थी, आश्रय से बोधा पन्ना की राजसभा में आने जाने लगे। कवि को कवित्वप्रतिभा के हेतु उर्वर वातावरण मिला। पन्नानरेश उनके गुणों पर रीझकर स्नेहवश बुद्धिसेन को 'बोधा' कहने लगे। बाद मे कवि इसी नाम से प्रख्यात हुआ।

इसके उपरांत तिवारी जी ने जो कविवृत्त दिया है, उसकी पुष्टि अंतःसाक्ष्य से भी हो जाती है। पन्ना राजदरबार की 'सुभान' नामक नर्तकी पर जिसे तिवारी जी ने 'यमनी वेश्या' कहा है, रसिक कवि बोधा आसक्त हो गए। महाराज को जब इसका पता चला तो बहुत क्रुद्ध हुए। राजा ने कवि जी को छह महीने के लिये देशनिकाले का दंड दिया। चलते समय बोधा ने 'सुभान' से साथ चलने का प्रस्ताव किया, किंतु उसने उसे ठुकरा दिया। निरुपाय हो बोधा अकेले चल पड़े। अपनी प्रियतमा से वियुक्त होकर

---

१. 'हिंदी साहित्य कोश', भाग २, पृ० २१? प्र० सं० सं० २०२०।

२. 'इश्कनामा' की भूमिका मे पं० नकछेदी तिवारी ने बोधा का जन्मस्थान राजापुर, प्रयाग लिखा है, जो गलत है। बाद मे प० रामचंद्र शुक्ल ने अपने इतिहास मे राजापुर, जिला बाँदा लिखकर उसे ठीक कर दिया है।

कवि को अपार कष्टों और संकटों का सामना करना पड़ा, विरहसिंधु में अनंत गोते खाने पड़े—

इत राजी नरनाह की, बिछुरि गयो महबूब।
बिरहसिंधु बिरही सुकबि, गोता खायो खूब ॥[1]

बोधा ने यह स्वयं स्वीकार किया है कि "मुझसे कुछ 'खोटी' अर्थात् भूल हो जाने से मुझे भयवश वह देश छोड़कर अन्यत्र जाना पड़ा। मै लगातार एक वर्ष की अवधि तक महाराज के प्रसन्न होने की प्रतीक्षा मे रहा। इस प्रवासकाल मे मै अन्य अनेक बड़े बड़े नरेशों के यहाँ गया और उनसे पर्याप्त दान समान भी पाया किंतु मुझे पन्नानरेश के यहाँ जैसा सुख कही भी न मिल सका"—

कछु मोते खोटी भई, छोटी यही विचार।
डर मान्यो, मान्यो मने, तज्यो देश निरधार ॥

० ० ०

वर्ष एक परखत फिरो, हर्षवत महराज।
लह्यो दान सनमान पै, चित न चह्यो सुखसाज ॥

० ० ०

बढि दाता बड़ कुल सबै, देखे नृपति अनेक।
त्याग पाय त्यागे तिन्है, चित मे चुभे न एक ॥[2]

जहाँ कवि की प्रियतमा 'सुभान' हो वही उसके मन का रमना स्वाभाविक था। यही नहीं, कवि ने एक कवित्त में यह बडी स्पष्ट रीति से बताया है कि उसे देशनिष्कासन की अवधि में कहाँ कहाँ की खाक छाननी पड़ी और किस किस घाट का पानी पीना पड़ा, और इतना होने पर भी उसे खेतसिह जैसा प्रवीण ठाकुर (आश्रयदाता) नही दिखाई दिया—

देवगढ चाँदा गढा मडला उजैन रीवाँ,
साम्हर सिरोज अजमेर लौ निहारो जोइ।
पटना कुमाऊ पैंधि कुर्रा औ जहानाबाद,
साँकरी गली लौ बागे भूप देखि आगो सोइ।
बोधा कवि प्राग औ बनारस सुहागपुर,
खुरदा निहारि फिरि मुरक्यो उदास होइ।
बड़े बड़े दाता ते अड़े न चित्त माँहि कहूँ,
ठाकुर प्रबीन खेतसिंह सो लखो न कोइ ॥[3]

---

१ 'विरहवारीश', नवलकिशोर प्रेस, सन् १८६४ ई०, पृ० २।
२. वही, पृ० २।
३. वही, पृ० ३।

इस पर्यटन ने कवि के अनुभव को व्यापक बनाया है क्योंकि उसकी अच्छी झाँकी 'माधवानल कामकदला' में देखने को मिलती है। इस अंतराल मे मान समान के पाते हुए भी कवि में जो बेचैनी दिखाई पड़ती है, उसका एक ही कारण था कि उसे सतत महबूब की चिंता और महाराज खेतसिंह का कोप सताता रहता था :

जिकिर लगी महबूब सों, फिर गुस्सा महराज।
बिन प्यारी होवै सो क्यों, मो मन को सुखसाज ॥[1]

सहृदया सुभान ने बोधा की विरहव्यथा से अवगत होकर उन्हे एक पत्र लिखा और उसमें यह राय प्रकट की कि अपनी टेक छोड़कर राजा खेतसिंह की शरण ग्रहण कीजिए :

यों सुनि गुनि निज चित्त मे लिख दिय बाला एक।
रहिये खेत नरेश के चरण शरण तज टेक ॥[2]

अपनी प्रियतमा की सलाह उनकी समझ मे आ गई। ऐसी स्थिति मे बोधा ने सोचा कि मेरे पास कौन सी ऐसी वस्तु है जिसे लेकर मै राजा के पास जाऊँ और उसे उन्हे उपहार रूप मे प्रदान करूँ। पुन उस 'बनिता' (सुभान) ने बोधा को यह परामर्श दिया कि माधवानल की कथा को भाषाबद्ध कर राजा से मिलिए। बोधा ने वैसा ही किया। माधव की उस रसीली कथा को कुछ इस ढग से सुनाया कि महाराज रीझ गए और उनके क्रोध का शमन हो गया :

तब हौं अपने चित्त मे, सकुचो सोच बनाय।
मेरे ऐसी वस्तु कह, काहि मिलों लै जाय ॥
बनत यहै बनिता कही, वे राजा तुम दीन।
भाषाकर माधोकथा, सो लै मिलौ प्रवीन ॥
यों सुन थिर ह्वै हों कथी, बिरही कथा रसाल।
सुन रीझे खीजै तजे, खेत सिंह क्षितिपाल ॥[3]

कवि द्वारा सकेतित इस वस्तु तथ्य को तिवारी जी ने अधिक स्पष्ट और पल्लवित कर यों प्रस्तुत किया है—"नियमित समय व्यतीत होने पर आप दरबार पन्ना में हाजिर हुए। उस समय 'सुभान' भी उपस्थित थी, महाराज ने कुशलता पूछी, उन्होंने छूटते ही 'विरहवारीश' को तरंगित किया, फिर क्या पूछना था, सब के सब गोता खाने लगे। निदान कुछ देर बाद महाराज ने कहा कि 'बोधा जी, बस कीजिए, बहुत हुआ; अब

---

१. 'विरहवारीश', पृ० ३।
२. वही, पृ० ३।
३. वही, पृ० ३।

कुछ माँगिए', जब ऐसी बात कई बार महाराज ने कही और बोधा जी ने इस बात पर महाराज को दृढ देखा तो कहा कि 'सुभान अल्लाह'...महाराज साहब बहादुर ने यह स्वीकार कर 'सुभान' को इनके साथ रहने की आज्ञा दे दी। तब से स्वदेशीय राजधानियों में ये सुभान के साथ घूमते और अपना जीवन व्यतीत करते रहे। अंत में पन्ना आकर स्वर्गवासी हुए"।[१]

कवि ने भी अपनी प्रेयसी का नाम 'सुभान' बतलाया है और उसके गुणों के विषय में लिखा है—

नवयौवन बनिता निपुन, सुभ गुन सदन सुभान।
बूझत रस चसके बहुत, प्रिय पै प्रीति बिधान॥
अनन कथन के कथन यों, केलि कथन परबीन।
बिरहगिरह प्रेरित तहाँ, बिरही परि रसलीन।[२]

'इश्कनामा' संज्ञक अपनी अन्य कृति में भी कवि ने 'सुभान' की जी खोलकर प्रशंसा की है।

तिवारी जी को 'विरहवारीश' की कोई प्रति नहीं मिल पाई थी। इसी कारण संभवतः उन्होंने देशनिकाले की अवधि केवल छह मास ही लिखी है, जबकि उक्त ग्रंथ के अनुसार, एक अन्य प्रकार से वह एक वर्ष की ठहरती है। कवि का देहावसान पन्ना में हुआ, इसके लिये उन्होंने कोई प्रमाण नहीं दिया। इसके अतिरिक्त न तो 'सुभान' को फिर से पा जाने के बाद कवि की जीवनी विषयक बातों का ही कुछ पता चलता है और न ही यह ज्ञात होता है कि जैसे आलम ने 'शेख' से प्रेम कर अपने को धर्मांतरित कर लिया था वैसे बोधा ने भी किया था अथवा नहीं।

वास्तविकता तो यह है कि कवि ने 'विरहवारीश' अथवा 'माधवानल कामकंदला चरित्र' के व्याज से आत्मचरित् को अभिव्यंजित किया है।

आश्रयदाता और कालनिर्णय : कवि ने 'इश्कनामा' और 'विरहवारीश' नामक अपनी दोनों ही कृतियों में अपने आश्रयदाता खेतसिंह का उल्लेख निर्भ्रांत रूप में किया है। नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित सन् १९१७ के त्रैवार्षिक खोजविवरण संख्या ३० के अनुसार 'इश्कनामा' की जो हस्तलिखित प्रति उपलब्ध हुई है, उसके सर्वप्रथम दोहे से उक्त बात की पुष्टि हो जाती है—

षेतसिंह नरनाह को, हुकुम चित्त हित पाइ।
ग्रंथ इश्कनामा कियो, बोधा सुकबि बनाइ॥

---

१. 'इश्कनामा' (भारतजीवन प्रेस, काशी, सन् १८९३ ई०) की भूमिका से उद्धृत।
२. 'बिरहवारीश', पृ० ३।

इस दृष्टि से 'विरहवारीश' के ये दोहे भी द्रष्टव्य हैं—

पंती छत्र बुंदेल को, छेत्रसिंह भुवमान।
दिल माहिर जाहिर जगत, दान जुद्ध सनमान॥
सिंह अमान समर्थ के, भैया लहुरे आहि।
बुद्धिसेन चित चैनजुत, सेवौं तिन्है सदाहि॥[1]

इससे स्पष्ट हो जाता है कि क्षेत्रसिंह, जिनकी सेवा कवि सदा किया करता था, पन्ना के महाराजा छत्रसाल के प्रपौत्र थे और उनके ज्येष्ठ भ्राता का नाम अमान सिंह था। और कवि की जबानी यह भी मालूम हो जाता है कि बोधा के अलावा उसका एक 'बुद्धिसेन' नाम और था।

अपने आश्रयदाता खेतसिंह का किंचित् विस्तार से परिचय देते हुए कवि ने अन्यत्र लिखा है—

बुंदेला बुंदेलखंड कासी-कुलमंडन।
गहिरवार पंचम नरेस अरिदल-बल-खंडन।
तासु बंस छत्ता समर्थ परतापत बुझिये।
तासु सुत्रत हिरदेस कुल्ल आलम जस सुझिये।
पुनि सभासिंह नरनाह लखि, बीर धीर हिरदेस सुव।
तिहि पुत्र प्रबल कवि कल्पतरु खेतसिंह चिरजीव हुव॥[2]

स्पष्ट है कि खेतसिंह के पिता का नाम सभासिंह था, हृदयसिंह उनके पितामह और छत्रसाल प्रपितामह थे। महाराज छत्रसाल का काल संवत् १७०५ से सं० १७८८ वि० तक था। हृदयशाह अथवा हृदयसिंह का निधन सं० १७९६ वि० में हुआ था और उनके पुत्र सभासिंह सं० १८०९ वि० तक ही जीवित रहे। अमानसिंह की हत्या सं० १८१५ वि० में हुई थी।[3] इस आधार पर पं० परशुराम चतुर्वेदी का कहना है कि 'खेतसिंह का विक्रम की १८वीं शताब्दी के अंतिम चरण से लेकर उसकी १९वीं के प्रथम चरण तक वर्तमान रहना सिद्ध होता है।"[4] ऐसी स्थिति में खेतसिंह के समय को कवि का जीवन-काल मानना चाहिए।

इतना होने पर भी हम कवि के जीवनकाल के विषय में निश्चयपूर्वक कुछ नहीं

१. 'विरहवारीश', नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, सन् १८९४ ई०, पृ० २।
२. वही, पृ० ३।
३. 'नागरीप्रचारिणी पत्रिका', काशी, भाग १३, पृ० १३५-३८।
४. पं० परशुराम चतुर्वेदी मध्यकालीन श्रृंगारिक प्रवृत्तियाँ तथा नवनिबंध, पृ० १४२, प्र० सं० १९५५ ई०।

कह सकते, क्योंकि उसकी उपलब्ध रचनाओं से कालविषयक कोई सूचना नहीं मिलती। हिंदी के जिन विद्वानों अथवा साहित्येतिहासकारों ने बोधा के समय के विषय में निश्चयात्मक रूप से कुछ कहा है, वह प्राय: अनुमानाश्रित ही है। सर्वप्रथम शिवसिंह सेंगर ने अपने 'सरोज' मे बोधा को 'सं० १८०४ मे उ०' लिखा है।[१] मिश्रबंधु[२] और रामनरेश त्रिपाठी[३] ने 'सरोज' के 'उ०' का अर्थ उत्पन्न लिया और अनुमान से उसे ठीक माना है। इसी का उल्लेख आचार्य रामचंद्र शुक्ल[४] ने अपने इतिहास में भी किया है, किंतु 'इश्कनामा' के संपादक पं० नकछेदी तिवारी ने लिखा है कि--"ठाकुर शिवसिंह सेंगर इंसपेक्टर पुलिस ने अपने ग्रंथ मे अदाजी सं० १८०४ लिखा और इनकी जीवनी तथा ग्रंथों के विषय मे कुछ भी नही लिखा है, इससे इनके संवत् मे मुझे बिलकुल शक है।"[५] मिश्रबंधु तथा आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने बोधा का काव्यकाल सं० १८३० से सं० १८६० वि० तक माना है। यदि 'सरोज' के 'उ०' को 'उत्पन्न' नही, 'उपस्थित' का संक्षिप्त रूप माना जाय तो विवाद के लिये गुंजाइश बहुत कम रह जाती है। अत: कहा गया है कि "ठाकुर शिवसिंह ने अपने 'उ०' का प्रयोग, इसीलिये, संभवत: किसी कवि के 'उपस्थित' वा वर्तमान रहने के ही अर्थ मे सर्वत्र किया होगा और इसके लिये प्रत्येक दशा में उन्हें कुछ न कुछ संकेत भी मिला होगा।"[६] पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने लिखा कि "सरोज" में जो सं० १८०४ बोधा कवि का काव्यकाल दिया गया है वह ठीक बैठ जाता है, जन्मकाल वह नहीं है।"[७] इसपर आपत्ति करते हुए कहा गया कि "यह भी अक्षरश: ठीक नही कहा जा सकता। काव्यकाल किसी ग्रंथविशेष का रचनाकाल मात्र नहीं जो किसी एक संवत् के भी द्वारा निर्दिष्ट किया जा सके। उसके लिये कोई अवधि भी अपेक्षित है जो दो भिन्न भिन्न संवतों वा तिथियों की सहायता से ही संभव मानी जा सकती है।"[८] किंतु मिश्र जी जहाँ एक ओर एक स्थान पर उसे काव्यकाल का बोधक मानते हैं, वहाँ दूसरी ओर अन्यत्र यह भी स्वीकार करते है कि "शिवसिंहसरोज' के 'सन् संवत्' उत्पत्ति के नही, उपस्थिति के समय

---

१. शिवसिंह सरोज, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, पृ० ४५७, संस्क० १९२६ ई०।
२. मिश्रबंधु विनोद, भाग २, संख्या ८८७।
३. कविता कौमुदी, पृ० ५१४, नवनीत प्रकाशन. बंबई, आठवाँ संस्क०, १९५४ ई०।
४. हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० ३७१, ना० प्र० स०, काशी, पाँचवाँ संस्क०, सं० २००६ वि०।
५. 'इश्कनामा' की भूमिका से उद्धृत, भारतजीवन प्रेस, काशी, सन् १८९३ ई०।
६. पं० परशुराम चतुर्वेदी : मध्यकालीन शृंगारिक प्रवृत्तियाँ तथा नवनिबंध, पृ० १४२।
७. विश्वनाथप्रसाद मिश्र : हिंदी साहित्य का अतीत, २, शृंगारकाल, पृ० ६७८, प्र० संस्क०, सं० २०१७।
८. परशुराम चतुर्वेदी : मध्यकालीन शृंगारिक प्रवृत्तियाँ तथा नवनिबंध, पृ० १४२।

के हैं।"[1] ऐसी स्थिति में उक्त आपत्ति का बहुत मूल्य नहीं रह जाता। दूसरे, मिश्र जी 'काव्यकाल' का प्रयोग उतने रूढ़ अर्थ में करते नहीं जान पड़ते। मिश्रबंधुओं ने बोधा के कालनिर्णय का प्रयास करते हुए लिखा है कि—"सूदन कवि ने सं० १८१५ के लगभग 'सुजानचरित्र' बनाया, जिसमें उन्होंने १७५ कवियों के नाम लिखे हैं। इस नामावली से प्रायः कोई भी तत्कालीन वर्तमान अथवा पुराना आदरणीय कवि छूटा नहीं है, परंतु इसमें भी बोधा का नाम नहीं है। इससे विदित होता है कि सं० १८१५ तक ये महाशय प्रसिद्ध नहीं हुए थे।"[2] उनके इस अनुमान से सहमति की काफी गुंजाइश है, क्योंकि बोधा ने 'विरहवारीश' के आरंभ में ही यह साफ लिख दिया है कि "बिछुरन के पश्चात् ही मैंने इस ग्रंथ की रचना कर महाराज को उसे एकाएक नहीं, स्थिर हो होकर सुनाया जिससे वे प्रसन्न हो उठे थे।"[3] चतुर्वेदी जी का मत है कि "बोधा कवि का जीवनकाल विक्रम की १८वीं शताब्दी के अंतिम चरण से लेकर उसकी १९वीं शताब्दी के प्रथम चरण तक रहा होगा और कविताकाल उसके अंतिम २०–२५ वर्षों में रहा होगा।"[4] यदि इससे आगे बढ़कर हम कवि के काल को किंचित् निश्चयात्मक स्वर में बाँधना चाहें तो अंतःसाक्ष्य को दृष्टि में रखते हुए यही कह सकते हैं कि उसका रचनाकाल सं० १८०९ से सं० १८१५ के मध्य का अथवा उसके आसपास का समय रहा होगा। पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र,[5] डा० भगीरथ मिश्र[6] और 'शिवसिंहसरोज' के विशिष्ट अध्येता डा० किशोरीलाल गुप्त[7] प्रभृति विद्वान् उक्त मत के ही समर्थक हैं।

कृतियाँ : रीतिस्वच्छंद अथवा बुंदेलखंडी बोधा कवि की दो ही रचनाएँ उपलब्ध हैं और दोनों के ही दुहरे नाम हैं—(१) 'विरहवारीश' या 'माधवानल-कामकंदला-चरित्र' और (२) 'इश्कनामा' या 'विरही सुभान दंपतिविलास'। 'खोज' में 'इश्कनामा' की दो हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं, एक तो अयोध्या के सद्गुरसदन निवासी स्वामी रामवल्लभशरण[8] के पास और दूसरी वहीं के कामदकुंजवासी ठाकुर जगदंबासिंह[9] के पास।

---

१. विश्वनाथप्रसाद मिश्र : हिंदी साहित्य का अतीत २, शृंगारकाल, पृ० ६७० ।

२. मिश्रबंधु विनोद, भाग २, संख्या ८८७।

३. यों सुन थिर ह्वै ह्वै कथी, बिरहीकथा रसाल।
सुन रीझे खीझै तजे, खेतसिंह क्षितिपाल ॥—विरहवारीश, पृ० ३।

४. परशुराम चतुर्वेदी : मध्यकालीन शृंगारिक प्रवृत्तियाँ तथा नवनिबंध, पृ० १८५।

५. हिंदी साहित्य का अतीत, २, शृंगारकाल, पृ० ६७८।

६. हिंदी साहित्य का उद्भव और विकास, खंड २, पृ० ३१, प्र० संस्क०, सन् १९५६ ई०।

७. सरोज सर्वेक्षण, कविसंख्या ५४३, पृ० ४८८, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, मार्च, सन् १९६७ का प्र० संस्क०।

८.९. क्रमशः हिंदी के हस्तलिखित ग्रंथों का खोज विवरण सन्, १९१७-१९ ई० की संख्या ३० और सन् १९२०–२१ ई० की संख्या २१।

कवि की उक्त दोनों ही कृतियाँ प्रकाशित तो हैं किंतु उन्हें मुद्रित हुए इतने दिन बीत चुके हैं कि वे अब प्राय: दुष्प्राप्य सी हो गई है। 'इश्कनामा' तो सन् १८९३ ई० में भारत-जीवन प्रेस से बाबू चंद्रशेखरप्रसाद सिंह रईस चैतपुर के प्रीत्यर्थ डुमराँव (जिला शाहाबाद) निवासी प० नकछेदी तिवारी द्वारा संपादित कर प्रकाशित किया गया था और 'विरह-वारीश' या 'माधवानल कामकंदला चरित्रभाषा' बोधा कवि कृत,, जिसे मुंशी नवल-किशोर के छापेखाने से जून, सन् १८९४ ई० में वैश्यकुलोत्पन्न कन्हैयालाल कुरेले के ज्येष्ठ पुत्र गणेशप्रसाद (जिला जबलपुर, मध्यप्रदेश) ने शुद्ध (संपादित) कर प्रकाशित किया था। श्री नकछेदी तिवारी ने जिस प्रति के आधार पर 'इश्कनामा' को प्रकाशित करवाया, वह उन्हे अरुनीनिवासी श्री श्यामसुंदर मिश्र वैद्य से मिली थी। यह प्रति कुछ अंशों में अपूर्ण थी, क्योंकि इससे कदाचित् यह नहीं ज्ञात हो पाता कि 'इश्कनामा' का अपर नाम 'विरहीसुभान दंपतिविलास' भी है। इस ग्रंथ के दोनों नाम एक साथ तो सन् १९१७–१९ के त्रैवार्षिक 'खोज विवरण' संख्या ३० और सन् १९२० की त्रिवर्षी 'खोजसंख्या' २१ से मालूम होते है। इनके अतिरिक्त भी ब्रजभाषा के प्राचीन और अर्वाचीन प्रसिद्ध काव्यसंग्रहों मे कवि की रचनाएँ पाई जाती है।[1] जैसा कि इससे पूर्व कहा जा चुका है, बोधा ने अपनी दोनों ही कृतियो मे कालविषयक कोई संकेत नही दिया है।

'विरहीसुभान दंपतिविलास' या 'इश्कनामा' कवि की स्फुट रचनाओ का संग्रह है। कवित्त, सवैया, दोहा, बरवै आदि छंदो मे संगृहीत इस कृति में अधिकांशत: प्रेम का ही वर्णन किया गया है। 'इश्कनामा' के अपर नाम 'दंपतिविलास' से सूचित होता है कि विरही (बोधा) ने जब 'सुभान' को देशनिकाले के उपरांत पा लिया होगा तभी उसकी रचना की होगी। 'विरहवारीश' तो विशुद्ध विरह की व्यथा को झेलकर अर्थात् देश-निष्कासन की दशा में रचा गया था जिसके लिये अंत:साक्ष्य[2] से प्रमाण भी प्राप्त है। उक्त नाम के आधार पर अनुमान है कि 'इश्कनामा' 'विरहवारीश' के पश्चात् की रचना होगी और उसमें कुछ रचनाएँ तो 'विरहवारीश' से पूर्व की होंगी जो सुभान के सौंदर्य और पूर्वराग से संबंध रखती है और कुछ प्रेममार्ग की कठिनाई का निरूपण करनेवाली बाद की कृतियाँ।[3] मिश्रबंधुओं ने लिखा है कि "बोधाकृत केवल 'इश्कनामा' हमारे पास है, जिसमें ३५ पृ० और १०९ स्फुट छंद है।.....इस समस्त ग्रंथ में प्रेम के चोज और तत्व भरे पड़े हैं।"[4] यह ग्रंथ कुल पाँच खंडों मे विभक्त है, जिनमें क्रमानुसार २५, ४१, १०, २८

१. प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने 'बोधा ग्रंथावली' का संपादन कर लिया है जो प्रकाशन की प्रतीक्षा में है।

२. 'बिछुरन परी महाजन कावा। तब बिरही यह ग्रंथ बनावा॥' —विरहवारीश, पृ० २।

३. विश्वनाथप्रसाद मिश्र : हिंदी साहित्य का अतीत, २, शृंगारकाल, पृ० ६७९।

४. मिश्रबंधु विनोद, भाग २, कविसंख्या ८८७।

एवं ५ छंद पाए जाते हैं। प्रेम के अतिरिक्त छिटपुट रूप में जिन अन्य विषयों का समावेश इस ग्रंथ में हुआ है उनमें नीति, भक्ति और उद्धव-गोपी-संवाद के छंद आते हैं।

'विरहवारीश' या 'माधवानल-कामकंदला-चरित्र' विप्रलंभ-शृंगार-प्रधान प्रेमाख्यानपरक एक विशद प्रबंधकाव्य है। यह पूरा ग्रंथ विरही अर्थात् बोधा और सुभान के संवाद रूप में ही लिखा गया है, जिसमें 'माधवानल कामकंदला' की चिरप्रख्यात कथा को प्रधान वर्ण्य विषय के रूप में अधिगृहीत किया गया है—

सुन सुभान अब कथा सुहाई। कालिदास बहु सांचि मह गाई॥
सिंहासन बत्तीसी माँही। पुतरिन कही भोज नृप पाँही॥
पिंगल कहें बैताल सुनाई। बोधा खेलसिंह मह गाई॥[१]

कवि ने यहाँ 'माधवानल-कामकंदला-कथा' की परंपरा भी बता दी है। बोधा ने 'आलम' की भाँति अपनी उक्त रचना मे केवल दोहा चौपाई का ही प्रयोग नहीं किया है वरन् उनके अतिरिक्त त्रोटक. कवित्त, सवैया, भुजंगप्रयात, सुमुखी, कुंडलिया, छप्पय मोतीदाम, तोमर, बरवै, भुजंगी, झूलना, हरिगीतिका, चौपइया, रेखता, पद्धरिया आदि नाना छंदों का व्यवहार किया है। इस ग्रंथ में कुल नौ खंड हैं और प्रत्येक खंड मे तीन या उनसे अधिक तरंगें है। प्रत्येक खंड का नाम उनके अतर्गत वर्णित प्रधान कथा के आधार पर रखा गया है, यथा—

प्रथम साप पुनि बाल द्वितिय आरन्य खंड गुनि।
पुनि कामावति देस बेस उज्जैन गवन मनि।
जुद्ध खंड पुनि गाह रुचिर सिंगार बखानो।
पुनि बहुधा बन देस नवम बर ज्ञान बखानो।
कहि प्रीति रीति गुन की सिपत नृप बिक्रम को सरस जस।
नौ खंड माधवा कथा मे नौ रस बिद्या चतुरदस॥

इस प्रकार क्रम से 'विरहवारीश' नामक कृति के नौ खंडो के नाम हैं—(१) शाप, (२) बाल, (३) आरण्य, (४) कामावती (५) उज्जैन, (६) युद्ध, (७) शृंगार, (८) बनदेश और (९) ज्ञान। संपूर्ण ग्रंथ अभी तक कहीं से भी प्रकाशित नहीं हो पाया है। नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से जून, सन् १८९४ ई० में प्रकाशित 'विरहवारीश' में उस (ग्रंथ) का केवल 'पूर्वार्ध' भाग ही उपलब्ध है जिसमें कुल सात खंड और इकतीस तरंग है। अतिम 'बनदेश' और 'ज्ञान' खंड उसमे नही है। दो अप्रकाशित

१. 'विरहवारीश', पृ० ६।
२. वही, पृ० २।

खंडों की उत्तरार्ध कथा का क्या स्वरूप होगा और उनके अंतर्गत कितनी तरंगें होंगी, इस संबंध में केवल अनुमान से कुछ तय कर पाना कठिन है। प्रकाशित ग्रंथ के पहले से लेकर पाँचवें खंड तक प्रत्येक में ४, छठे मे ३ और सातवें में ८ तरंगे पाई जाती हैं। इस प्रकार इस ग्रथ का 'पूर्वार्ध' सात खडो और इकतीस तरंगो मे समाप्त हुआ है---"इतिश्री माधवानल कामकंदला चरित्रभाषा बिरहीसुभान सबादे शृंगारखडे इकतीसवाँ तरंग समाप्त:।"

संक्षेप में ग्रंथ का कथानक इस प्रकार है--श्रीकृष्ण के गोकुल से द्वारका चले जाने पर गोपियाँ जब कामदेव के कारण विरहव्याकुल हुई तो उन्होंने उसे शाप दिया कि कलियुग में तुम्हें भी हमारी ही तरह विरहव्यथित होना पडेगा। तदनुसार कामदेव को माधवानल और उसकी पत्नी रति को राजकन्या के रूप मे जन्म लेना पड़ा। पुन: उस राजकन्या को अभिशप्त होकर पुहुपावती नगरी के रघुदत्त नामक ब्राह्मण के यहाँ उत्पन्न होना पड़ा जो वहाँ के राजा का एक कर्मचारी था। उसी नगरी के विद्याप्रकाश नामक ब्राह्मण के यहाँ माधवानल का भी जन्म हुआ। माधवानल अत्यंत रूपवान् और संगीत मे पारंगत था। इस कारण रघुदत्त की कन्या लीलावती उसपर आसक्त हो गई। इसके अतिरिक्त भी उस नगर की स्त्रियाँ उसके वीणावादन को सुनकर सुध बुध खो बैठती थी जिसे अनुचित समझ राजा के यहाँ लोगो ने उसकी शिकायत कर दी। इसपर राजा गोविंदचद्र ने माधवानल को देशनिष्कासन का दड किया। विरही माधवानल ने उस नगरी को छोड़कर एक पंडित सुआ की राय में आकर कामावती नगरी की शरण ली। वहाँ वह किसी तमोली के यहाँ रहा। उसे एक दिन ऐसा समाचार मिला कि वहाँ के राजा की सभा मे आज नाच गान का आयोजन है। वह वहाँ पहुँचा तो दौवारिक ने उसे राजप्रासाद के अंदर न जाने दिया। अंदर बजते हुए मृदग और नाचती हुई नर्तकी के ताल को सुनकर माधवानल ने कहा मृदगी का अँगूठा मोमनिर्मित होने के कारण बारबार स्वरभग की स्थिति उत्पन्न कर रहा है जिसके नाते नर्तकी ठीक से नाच नही पा रही है। दौवारिक ने जब राजा से यह बात कही तो उसे सही पाकर राजा कामसेन ने उसे राजसभा में बुलाकर उसका बड़ा समान किया। तत्पश्चात् माधवानल और उस दरबार की नर्तकी कामकदला ने अपनी अपनी कला का प्रदर्शन भी किया।

राजा ने माधवानल के गुणों पर रीझकर जो वस्तुएँ उसे पुरस्कार रूप में प्रदान की थी उन्हे उसने कामकंदला को उसकी कलाकुशलता के कारण दे दी। अपमानित अनुभव कर राजा ने दरबार से निकल जाने के लिये कहा। फिर भी माधवानल लुक छिपकर तेरह दिनो तक उसी नगरवासिनी नर्तकी कामकंदला के घर मे ठहरा रहा। तत्पश्चात् राजभय से भयभीत होकर वह वहाँ से चल पडा। कामकंदला के विरह में डूबा माधवानल सुआ से निर्देश ग्रहण कर उसे पाने की इच्छा से उज्जैन पहुँचा। उज्जैन के राजा विक्रमादित्य थे। माधवानल ने अपनी स्थिति से राजा को अवगत कराने के लिये महाकाल के मंदिर की दीवार पर अपना वृत्त अंकित कर दिया। सूचित होने पर राजा विक्रमादित्य

ने माधवानल को बुलाकर उसकी सारी वस्तुस्थिति का पता लगाया और उसकी सहायता के हेतु कामावती नगरी की ओर अपनी विशाल वाहिनी के सहित प्रस्थान कर दिया। गुप्त रीति से विक्रमादित्य ने कामकंदला और माधवानल के प्रेम की परीक्षा ली। दोनों को एक दूसरे का अनन्य प्रेमी जान उन्होंने राजा कामसेन के यहाँ कामकंदला को भिजवा देने के लिये संदेशा दे दिया। दोनों राजाओं के बीच कुछ दिनों तक युद्ध हुआ। तदुपरांत कामसेन ने उनका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। माधवानल और कामकंदला दोनों मिल गए। कामकंदला के साथ रहते हुए भी एक दिन स्वप्न में माधवानल को लीलावती की याद आई। स्थिति से अवगत हो राजा विक्रमादित्य और कामसेन ने पुहुपावती के राजा गोविंदचंद्र से मिलकर माधवानल और लीलावती का विवाह करवा दिया। सब कुछ ठीक हो जाने के पश्चात् दोनों राजे विक्रमादित्य और कामसेन स्वदेश लौट गए। इसके बाद की कथा ग्रंथ के 'उत्तरार्ध' भाग में होगी जिसमें 'बनदेश' और 'ज्ञान' नामक खंड होंगे। इन दो खंडनामों से यही अनुमान लगाया जा सकता है कि किसी कारणवश माधवानल को अंत में वन जाना पड़ा होगा जहाँ उसे ज्ञानोपलब्धि हुई होगी।

कवित्व : बोधा के काव्य में 'प्रेम की पीर' की बड़ी निश्छल और मनोरम अभिव्यंजना हुई है। मनोवेगों के निश्छल प्रवाह, प्रेमोन्माद की अतिरिक्त उत्कट अनुभूति, वैयक्तिक भावचिंतन की मस्ती और भावदशाओं की निर्बंध, अकुंठित और अकृत्रिम अभिव्यक्ति ने बोधा को रीतिमुक्त शृंगारी भावधारा के कवियों में विशिष्ट स्थान प्रदान किया है। प्रकृति से रसज्ञ और भावुक होने के कारण प्रेमरस इस कवि की रचनाओं में निचुड़ा सा पड़ता है। सूफी भावधारा और सूफी शैली का, इस अन्य रीतिमुक्त शृंगारी कवियों की अपेक्षा इसमें अधिक पुट मिलता है। 'सुभान' सर्वत्र कवि के काव्य की मूल प्रेरणा के रूप में दिखाई पड़ती है जिसकी तुल्यता व्यक्तिगत रूप में उसी धरातल पर खड़ी घनआनंद की 'सुजान' से की जा सकती है। परंतु भाव और भाषा में परिष्कार की कमी खटकती है। यद्यपि बोधा के काव्य का कलेवर रीतिकालीन लगता है तथापि उसने भावविधान और उपमानविधान में बिलकुल स्वच्छंद रीति से काम लिया है। स्वाभाविकता और सरसता उसकी भाषा के सर्वोपरि गुण हैं। लोकप्रचलित शब्दों और मुहावरों से अधिक काम लिया गया है। कतिपय स्थलों को छोड़कर प्रायः भाषा में प्रवाह, प्रांजलता और परिष्कार पाया जाता है। शैली सर्वत्र निरलंकृत है। प्रयुक्त सभी छंदों में सवैयों की संख्या ही अधिक है और उन्हीं के माध्यम से सर्वाधिक रमणीय व्यंजनाएँ भी की गई हैं।

'द्विजदेव' महाराजा मानसिंह

महाराजा मानसिंह अयोध्या के महाराजा थे। इनका काव्य में उपनाम 'द्विजदेव' था। ये शाकद्वीपी ब्राह्मणवंश की परंपरा में थे। इनके पितामह पुरंदरराम और उनके सबसे बड़े पुत्र बख्तावर सिंह थे। लखनऊ के नवाब सआदत अली इनके व्यक्तित्व से आकर्षित हुए और इन्हें रेजिडेंट से पत्रव्यवहार के कार्य के लिये अपनी सेवा में ले लिया।

एक समय नवाब की प्राणरक्षा इन्होंने की जिसके परिणामस्वरूप इन्हें पलिया की जागीर और सौ सवारों की अफसरी प्राप्त हुई। नवाब गाजीउद्दीन हैदर ने इन्हें महाराजा की उपाधि दी। ये महदौना मे अपना निवासस्थान बनाकर रहने लगे। आगे चलकर अपनी प्रबंधकुशलता के कारण बहराइच के प्रांताध्यक्ष नियुक्त हुए, साथ ही राजा की उपाधि भी मिली। सं० १६१२ मे इनका देहावसान हुआ। पर इनकी कोई संतान न होने के कारण इन्होने अपने भतीजे मानसिह को गोद लिया और दत्तकपुत्र के नाते अपनी जायदाद इन्हें दे गए। यही महाराजा मानसिह 'द्विजदेव' हुए। इनके पिता महाराजा बख्तावर सिह के छोटे भ्राता दर्शनसिह थे। महाराजा मानसिह का जन्म मार्गशीर्ष शुक्ल ५, स० १८७७ (१० दिसंबर, १८२० ई०) को हुआ था। इन्होंने संस्कृत, हिंदी, फारसी और अंग्रेजी भाषाओं का अध्ययन किया। अनेक बार राज्य मे अशाति होने पर इन्होंने व्यवस्था कायम की। इनको अपनी वीरता और कौशल के कारण राजाबहादुर की उपाधि मिली थी। तदनंतर तीन आतकवादी डाकुओं को बदी बनाने के उपलक्ष्य में इनका बड़ा समान हुआ। इन्हे ११ तोपो की सलामी, ईरान के बादशाह की तलवार, झालरदार शमला, ताज के आकार की टोपी तथा हवादार पालकी उपहार मे दी गई थी।

इन्होंने भिनगा के राजा पर चढ़ाई की। भिनगा राजा ने अपने को निर्बल समझकर तथा 'द्विजदेव' के साहित्यिक हृदय को पहचानकर एक छद लिख भेजा था जो इस इस प्रकार है :—

बिनु मकरद वृंद कुसुम समूहन के,
कौलौं दिन बीतिहैं मलिंद के कलीन तें।
बिनु चारु चेटक चिलक चोखी चद्रिका की,
कौ लौं हौस राखिहै चकोर चिनगीन तैं।
युवराज कौ लौं बिनु ब्रजराज प्रानप्यारे।
कौन जिय राखिहै या मदन मलीन तै।
मुकुत कलित 'मानसर' बिनु आली! अब,
कौ लौ काल काटिहै मराल पोखरीन तैं॥

(शृंगारलतिका सौरभ, भूमिका)

इसके उत्तर में 'द्विजदेव' महाराजा मानसिह ने निम्नलिखित छंद लिखकर भेजा :—

आजु तैं कोटि हजार बरीस लौं, रीति यहै नित ही चलि आई।
लाहु लह्यो तिनही जग मे जिन्ह, कीन्ही कछू न कछू सिवकाई॥
ए नृपहम! विचार विचारु, रहौ किन आपने लाज लजाई।
आपही दूरि बसे तो कहा कहौ 'मानसरोवर' की कृपनाई॥

इस प्रकार साहित्यिक माध्यम से दोनों राजाओं के बीच संधि स्थापित हो गई।

आगे चलकर हनुमानगढ़ी को लेकर उठनेवाले हिंदू मुस्लिम वैमनस्य को भी इन्होंने शांत किया जिसके कारण इनको 'राजए राजगान' की उपाधि प्राप्त हुई। सं० १९१३ में बादशाहत का अंत हो गया और ये अंग्रेजों के कोपभाजन हुए। परंतु बाद में अंग्रेजों को इनकी सहायता की आवश्यकता हुई। सं० १९१६ वि० (१८५९ ई०) में लखनऊ दरबार में अंग्रेजी शासन की ओर से इनको महाराज की तथा सं० १९२६ वि० में के० सी० एस० आई० की उपाधियाँ मिलीं। कार्तिक कृष्णा द्वितीया, सं० १९२७ वि० (१० अक्टूबर, १८७०) को इनका स्वर्गवास हुआ। तदनंतर इनके दौहित्र (नाती) महाराज प्रतापनारायण सिंह 'ददुआ साहेब' अयोध्या के राजा हुए। 'द्विजदेव' की दो रचनाएँ प्राप्त होती हैं—१ शृंगारलतिका, २. शृंगार बत्तीसी।

'द्विजदेव' के काव्यगुरु बलदेवसिंह थे। महाराज मानसिंह कवियों के कल्पतरु थे। लछिराम, जगन्नाथ, चंडीदत्त, बलदेव, ठाकुरप्रसाद, रामदीन इनके दरबारी कवियों में थे। 'द्विजदेव' को शृंगारपरंपरा का अंतिम महत्वपूर्ण कवि कहा जा सकता है। उनके द्वारा ब्रजभाषा काव्य को नया जीवन और प्रेरणा प्राप्त हुई।

'द्विजदेव' जी ने यद्यपि साहित्यप्रेमी दरबारी सामंतपरंपरा का सम्यक् निर्वाह किया और अनेक कवियों को प्रोत्साहन दिया, तथापि ये स्वयं सहृदय, भावुक तथा रीतिमुक्त शृंगारी काव्यपरंपरा के अंतिम सर्वश्रेष्ठ कवि थे।

द्विजदेव के काव्य की विशेषता रीतिमुक्त अन्य शृंगारी कवियों से भिन्न है। जहाँ आलम, बोधा, घनानंद को अपनी काव्यरचना की प्रेरणा निजी प्रेमानुभूति एवं सौंदर्य की गहरी चेतना के कारण मिली है, वहाँ 'द्विजदेव' की रचना में प्रकृति की शोभा और छटा की वे बारीक सूक्ष्म तरंगें हैं जो इनके हृदय में गहराई से उतर गई थीं। कहा जा सकता है, द्विजदेव मूलतया प्रकृति की संवेदना के कवि हैं। उसके सुकुमार क्रियाकलाप का जितना विशद सूक्ष्म अंकन 'द्विजदेव' ने किया है, उतना केवल आगे चलकर छायावादी कवि ही कर सके। उनका एक सुप्रसिद्ध छंद है :—

सुर ही के भार सूधे सबद सु कीरन के
मंदिरन त्यागि करैं अनत कहूँ न गौन।
'द्विजदेव' त्यों ही मधुभारन अपारन सों
नेकु झुकि झूमि रहे मोगरे मरुग्र दौन॥
खोलि इन नैननि निहारौं तौ निहारौं कहा,
सुखमा अभूत छाय रही प्रति भौन भौन।
चाँदनी के भारन देखात उनयो सो चंद
गंध ही के भारन बहत मंद मंद पौन॥

कवि ने स्वर, मधु, चंद्रिका और सुगंध के भार का कितना अनुभूतिपूर्ण वर्णन किया है कि एक साथ अनेक बिंबों की सृष्टि हो जाती है। इसी प्रकार प्रकृति का चेतनासंपन्न, मानवीय संवेदना एवं क्रियाकलाप से युक्त उनका एक छंद निम्नांकित है :—

डोलि रहे बिकसे तरु एकै सु एकै रहे हैं नवाइ कै सीसहिं।
त्यों 'द्विजदेव' मरंद के ब्याज सो एकै अनंद के आँसु बरीसहिं।
कौन कहै उपमा तिनकी जे लहेई सबै बिधि संपति दीसहिं।
तैसेइ ह्वै अनुराग भरे कर पल्लव जोरि कै एकै असीसहिं॥

प्रकृति की यही संवेदना है जो, 'द्विजदेव' को अन्य रीतिशृंगारी कवियों से भिन्न करती है।

निजी प्रेमानुभूति के स्थान पर 'द्विजदेव' के काव्य में कृष्णलीला की भाँकियों का, गोपियों की विरहव्यथा का बड़ा स्वच्छद किंतु मार्मिक वर्णन मिलता है। यह उनकी आध्यात्मिक संवेदना की भावुकता है। यहाँ भी वे रीतिपरंपरा के कवियों से भिन्न और कुछ कुछ घनानंद की परिपाटी में आते है,; परंतु इनके छद बड़े सहज, स्वच्छ और मार्मिक हैं। निम्नलिखित छद में बाँसुरी के प्रभाव का चित्रण है :—

बाँसुरिया यक ओर कढ़ी त्यों कढ़ी यक ओर चवाइने जूहन।
जाई बड़े बड़े बंसन की पै कमाइन कौ दुवौ ठानि रही प्रन।
ये दुखहाई दोऊ ब्रज में इन पै नहीं ब्यापै कछूक तियापन।
कानन लागि हरै सुख बे, हरि आनन लागि हरै यह प्रानन॥

यहाँ पर बाँसुरी और चवाइनों की कार्यसमता पर कैसा सटीक प्रहार है। कवि की शब्दावली इसे बड़ी सामर्थ्य के साथ अभिव्यक्त करती है।

इसी प्रकार उद्धव-गोपी-प्रसग मे उद्धव के द्वारा लाई कृष्ण की पत्री पर किसी भी गोपी का विश्वास नही है और वे उद्धव से जबानी संदेश कहने का अनुरोध करती है, क्योंकि कृष्ण की भूठी आश्वासन भरी पातियो पर से अब राधा और गोपियों का विश्वास ही उठ गया है। इस भाव का प्रकाशन 'द्विजदेव' के निम्नांकित छंद में बड़ा सुंदर हुआ है :

बाँचति न कोऊ अब वैसिए रहति खाम,
जुवती सकल जानि गईं गति याकी है।
भूठ लिखिबे की उन्है उपजै न लाज कहूँ
जाइ कुबजा कैं बसे निलज तिया की है।
दूसरी अवधि 'द्विजदेव' राधिका के आगै,
बाँचै कौन नारि जौन पोढ छतिया की है।
ऐसे ही मुखागर कहौ-सो-कहौ ऊधौ! इहाँ
उठि गई ब्रज ते प्रतीति पतिया की है।

इस प्रकार प्रकृति, सौदर्य, प्रेम और विरह के स्वच्छंद कवि के रूप में द्विजदेव का अपना स्थान और महत्व है।

तृतीय खंड

भक्तिकाव्य

प्रथम अध्याय

सामान्य परिचय : भक्तिकाव्य की परंपरा

अनुसंधानकर्ताओं ने भक्तिभावना का विकास वेदो तक मे दिखलाया है, किंतु वैदिक देवभक्ति और परवर्ती भगवद्‌भक्ति मे तत्वत कुछ मौलिक अतर है। वैदिक भक्ति वस्तुत. कर्मकाड से ऊपर नही उठ पाई थी। वहाँ वह साधनरूपा है, साध्यरूपा नही। उसके लिये भक्ति के आचार्यो द्वारा उपस्थापित सर्वाधिक प्रधान तत्व परम प्रेम आवश्यक नही था। दूसरी बात लक्ष्य करने की यह है कि उसका द्वार नारी, शूद्र आदि के लिये समान रूप से उन्मुक्त नही था।

भक्तिमार्ग का प्रमुख सप्रदाय भागवत धर्म है जिसके सबसे बड़े उपस्थापक श्रीकृष्ण जो माने जा सकते है। श्रीकृष्ण का आविर्भाव अनुमानत. १५०० ई० पू० के लगभग माना जाता है। सर्वप्रथम महाभारत के शातिपर्व मे ऐकातिक अथवा भागवतधर्म की उत्पत्ति की कथा मिलती है। उसके अनुसार नर और नारायण नामक दो ऋषियों ने इसका सूत्रपात किया, इसलिये इसे नारायणी धर्म भी कहा जाता है। विद्वानो का अनुमान है कि उत्तरभारत मे पल्लवित होती हुई इस विचारधारा मे बौद्धों तथा उनसे विकसित वज्रयान, सहजयान आदि के द्वारा जब गत्यवरोध उत्पन्न हुआ तब भागवत धर्म के प्रचारक दक्षिण भारत के राजाओ के आश्रय में चले गए। वहाँ के आलवार भक्तो के गीतो मे इसी भावना की साहित्यिक अभिव्यक्ति है। उनके तीव्रानुभूतिपूर्ण गीत 'प्रबंधम्' मे सगृहीत है जिसे पचम वेद माना जाता है। नवी दसवीं शताब्दी मे ही तमिल प्रदेश मे भक्ति का शास्त्रीय प्रतिपादन करनेवाले आचार्यो का भी उदय होने लगा। कारण यह था कि आचार्य शकर ने अद्वैतवाद की स्थापना ऐसे तर्कों के आधार पर की जिनमें भक्ति की अपेक्षा ज्ञान को अधिक महत्व दिया गया। आचार्यों की इसी परपरा मे यामुनाचार्य (आलवंदार) हुए जिन्होने शंकर के मायावाद का खडन कर विशिष्टाद्वैत सिद्धात और विष्णु की श्रेष्ठता का समर्थन किया और भागवत धर्म की प्रामाणिकता की दृढ प्रस्थापना की। किंतु इस दिशा मे सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रयास श्री रामानुजाचार्य (ग्यारहवी शताब्दी) का है जिन्होने ब्रह्मसूत्र पर श्रीभाष्य की रचना कर भक्ति तथा प्रपत्ति भावना का दृढ शास्त्रीय प्रतिपादन किया। इस प्रकार हम देखते है कि भक्तिभावना का विकास मूलत चाहे उत्तरी भारत मे ही हुआ हो किंतु उसे प्रौढता प्रदान करने मे दक्षिणभारत का महत्वपूर्ण योगदान है और यह भक्तियोग का ऐसा अद्भुत आविष्कार है कि समस्त भारत को एकता के सूत्र मे बाँधने मे वह अद्यावधि समर्थ है।

७–१५

भक्ति के मूल प्रेरक तत्वों के संबंध में कुछ अन्य विद्वानों के मत भी उल्लेखनीय है। डा० ग्रियर्सन आदि कुछ पाश्चात्य विद्वानो का मत है कि भारतीय भक्तिभावना पर मूलतः ईसाई धर्म का प्रभाव है। डा० ताराचंद (इन्फ्लुएंस आफ इस्लाम आन इंडियन कल्चर) तथा डा० कु० सी० एच० वौदवील (भागवत धर्म का प्रेमप्रतीकवाद, हिंदी अनुशीलन, धीरेंद्र वर्मा विशेषांक) आदि विद्वान् मानते है कि भक्ति का प्रेमतत्व सातवी आठवी शताब्दी मे दक्षिण मे आए हुए अरब व्यापारियो के माध्यम से इस्लाम की देन है, किंतु अब इन विचारों की कोई भी मान्यता नही रह गई है। कारण यह है कि भागवत धर्म मे प्रेमतत्व का प्रादुर्भाव ईसाइयों तथा मुसलमानो से उसके संपर्क के बहुत पूर्व ही हो चुका था। बल्कि इसी बात की संभावना अधिक है कि ईसाई तथा इस्लाम धर्म ही कदाचित् भागवत धर्म से प्रभावित है।

जो भी हो, बारहवी तेरहवी शताब्दी तक भक्ति आंदोलन दक्षिण मे पूर्ण प्रौढ़ता प्राप्त कर पुन उत्तर की ओर अग्रसर हुआ। महाराष्ट्र में आकर ज्ञानेश्वर, नामदेव आदि के माध्यम से इसका संघटन गोरखनाथी योगधारा से हुआ जिसको इसने आत्मसात् कर लिया, किंतु योग इसकी अंत प्रवृत्ति के रूप में बहुत आगे तक चलता रहा। डा० बडथ्वाल के शब्दो में 'भक्तिधारा का जल पहले योग के ही घाट पर बहा था' (योग-प्रवाह, पृ० ७५)। उत्तर भारत मे आकर स्वामी रामानंद के प्रभाव से बड़े प्रबल वेग से यह आंदोलन पंजाब, गुजरात से लेकर बंगाल, आसाम तक छा गया। इस समय तक साहित्य की भी गतिविधि परिवर्तित हो रही थी और अपभ्रंशों से पृथक् होकर हिंदी तथा अन्य आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएँ अपना स्वतंत्र अस्तित्व बना चुकी थी।

संतकाव्य

परिचय हिंदी मे भक्तिभावना की अभिव्यक्ति पहले निर्गुण रूप मे हुई और तत्पश्चात् सगुण रूप मे। हिंदी क्षेत्र के संत कवियो में कबीर ही वस्तुत. सर्वप्रथम सिद्ध होते है किंतु उनसे लगभग सौ वर्ष पूर्व होनेवाले महाराष्ट्र के संत नामदेव (स० १३५०-. १४०७) की भी कुछ हिंदी रचनाएँ मिलती है जिनमें निर्गुण भक्तिपरक अनेक उक्तियों का संनिवेश है। अत. हिंदी में निर्गुण भक्ति का प्रवर्तक वस्तुतः नामदेव को ही मानना चाहिए। डा० विनयमोहन शर्मा (हिंदी को मराठो संतो की देन, पृ० १२७) तथा डा० राजनारायण मौर्य (जर्नल आफ दि युनिवर्सिटी आफ पूना, पृष्ठ १२७-४०) आदि की नामदेव संबधी मान्यताएँ तर्कसंमत प्रतीत होती है। इतना अवश्य है कि मतमत को स्पष्ट रूपरेखा प्रदान करने तथा उसे निखारने में कबीर का विशिष्ट योगदान है। इस प्रकार हिंदी भक्ति साहित्य का कालक्रमानुसार अवलोकन करने पर हमें स्वीकार करना पड़ेगा कि सत्रहवी शताब्दी मे तुलसी ने रामभक्ति का और सूर ने कृष्णभक्ति का जो विराट् और आकर्षक वितान तांना उसके लिये सूत कपास इकट्ठा करनेवाले और उसको सीने पिरोनेवाले उनसे दो तीन सौ वर्ष पूर्व के नामदेव छीपी और कबीर जुलाहा ही थे।

यद्यपि ऊपर से देखने पर दोनों पक्षों की निर्गुण और सगुण भक्ति मे पर्याप्त अतर दीख पड़ता है तथापि तुलसी ने जोग जगाकर भक्ति भगा देनेवाले गोरखनाथ के प्रभाव मे भक्ति के पुनरुद्धार का जो भगीरथ प्रयत्न किया उसकी बहुत कुछ पृष्ठभूमि सतो ने पहले ही निर्मित कर दी थी। आगे चलकर हिंदी की ये दोनों धाराये पारस्परिक आदान प्रदान मे एक दूसरे को प्रभावित करती रही और पृथक् पृथक् रूप में अनेक बाह्य तत्वो से स्वत प्रभावित होती रही जिसका आकलन यहाँ अपेक्षित नहीं है। प्रस्तुत अध्याय मे सवत् १७०० से १६०० तक के सत सप्रदायो के स्वरूपविकास तथा उनके साहित्यिक योगदान पर विचार किया गया है।

कबीर पंथ

अभी तक ऐसे प्रमाण नही उपलब्ध हो सके है जिनके आधार पर यह कहा जा सके कि कबीर ने स्वत. अपना कोई सप्रदाय चलाया था। कबीरपथ का आविर्भाव अनु-मानत: उनके देहावसान (स० १५०५) के कई वर्ष पश्चात हुआ होगा। स्थूल रूप से यह समय सत्रहवी शताब्दी वि० के मध्यकाल के आसपास माना जा सकता है।

कबीरपंथ की तीन प्रमुख शाखाएं मानी जाती है १ कबीरचौरा, काशी की शाखा, २. धनौती की भगताही शाखा तथा ३ छत्तीसगढ की धर्मदासी शाखा।

कबीरपथ का अधिकाश साहित्य उसकी छत्तीसगढी शाखा मे ही मिलता है -- अन्य शाखाओं मे वह बहुत कम परिमाण मे है।

काशी कबीरचौरा शाखा मे आलोच्य काल की दो सौ वर्षो की अवधि मे केवल रामरहस साहब (कबीरबाग, गया) की 'पचग्रथी' मिलती है। 'पचग्रथी' वस्तुत बीजक का भाष्य है, किंतु इसमे गूढ दार्शनिक विवेचन रहने के कारण इस टीका की भी दो टीकाएँ सं० १६०० के पश्चात् लिखी गई। इसमे पाँच प्रकरण है। प्रथम प्रकरण मे अन्नमय, प्राणमय आदि पचकोशो का विवरण देते हुए यह बताया गया है कि इन्ही मे उलझकर मनुष्य 'पारखपद' (= वास्तविक मोक्ष) से वचित रह जाता है। दूसरे प्रकरण मे व्यष्टि-समष्टि, जगत् ब्रह्म तथा बधन मुक्ति आदि का विवेचन है। 'मानुषविचार' शीर्षक तीसरे प्रकरण मे मनुष्य तथा पशु के लक्षण तथा उनके कर्तव्याकर्तव्य पर विचार किया गया है। 'टकसार' वाले चौथे प्रकरण के पूर्वार्ध मे नाना मत मतातरो का खडन कर उत्तरार्ध मे गभीर आध्यात्मिक विवेचन है। चौथे 'गुरुबोध' प्रकरण मे गुरु शिष्य के प्रश्नोत्तर रूप मे शिष्य का प्रबोधन है। सपूर्ण ग्रथ से रामरहस साहब की पांडित्य-पूर्ण विवेचनशैली का परिचय मिलता है। इनकी एक अन्य रचना 'सत्ताईस रमैनी' भी बतलाई जाती है (निर्णयसार, स्वसवेद कार्यालय, सीयाबाग, बड़ौदा की भूमिका, पृ० ६), किंतु प्रकाशित रूप मे वह कही देखने को नही मिली।

'सुखविधान' नामक ग्रंथ को कबीरचौरा गद्दी के आचार्य सुरतगोपाल की कृति

माना जाता था, किंतु उसके कबीर-धर्मदास-संवाद तथा वर्ण्य विषय आदि पर विचार करते हुए स्पष्ट रूप से उसे छत्तीसगढ़ी शाखा से संबद्ध मानना पड़ता है।

धनौती शाखा मे इस लंबी अवधि में एक भी रचना नही प्राप्त होती। लगता है, उधर की उर्वरा भूमि मे कबीरपंथी सत महत धान पान के उत्पादन मे ही अपनी सारी शक्ति लगाते रहे।

बुरहानपुर शाखा मे मुख्यतया उसके संस्थापक पूरणसाहब के ही ग्रथ मिलते है। उनमे भी सर्वाधिक महत्वपूर्ण बीजक की 'त्रिज्या' टीका है जिसे उन्होने स० १८९४ मे समाप्त किया था। यह जीववादी टीका है और बीजक की अन्य टीकाओ से पर्याप्त रूप से भिन्न है, इसीलिये यह कबीरपथ मे बहुचर्चित है और कई स्थानो से प्रकाशित भी हुई है। 'त्रिज्या' के अनुसार जीव अविनाशी और चैतन्य है। आत्मा न तो ज्ञान का विषय है और न अज्ञान का। वह अविद्या तथा पाप पुण्य से परे है। जीव को भ्रमित करनेवाली माया भी अनादि है। जीव को कर्म, ज्ञान, योग, भक्ति मे से किसी से भी मुक्ति नही मिल सकती है—मुक्ति मिलती है केवल 'पारख पद' के परिचय अथवा सम्यक् ज्ञान से। पूरणदास की अन्य दो रचनाएँ 'निर्णयसार' तथा 'वैराग्यशतक' है जिनमे मे पहली के अत मे उसका रचनाकाल स० १८९२ दिया हुआ है। 'वैराग्यशतक' मे समय समय पर लिखे हुए १२७ दोहों का सग्रह है। 'निर्णयसार' मे जीव, ब्रह्म, जगत्, ज्ञान, अज्ञान, तत्वमसि आदि पर 'त्रिज्या' से मिलते जुलते विचार प्रकट किए गए है। इस शाखा मे सबद्ध 'पारख-विचार' नामक एक अन्य रचना मे यद्यपि रचयिता तथा रचनाकाल का निर्देश नहीं है, तथापि संभवत. वह पूरणसाहब के किसी शिष्य की ही रचना है। उपर्युक्त सभी रचनाएँ प्रकाशित है।

फतुहा शाखा (जि० पटना) के गुरुदयाल साहब (उन्नीसवी शताब्दी का अंतिम चरण) द्वारा रचित दो ग्रंथ 'कबीर परिचय की साखी' तथा 'एकादश शब्द' प्राप्त होते हैं जिनमे पूरण साहब के समान जीववादी विचारधारा का प्रतिपादन किया गया है। सं० १९०० के पश्चात् इन दोनो ग्रथों की भी टीकाएँ लिखी गई।

बड़ैया शाखा (जि० जौनपुर) के प्रवर्तक मदनसाहब कृत 'शब्दविलास' तथा 'नामप्रकाश' मे यद्यपि रचनाकाल का कही निर्देश नहीं है, तथापि वहाँ के वर्तमान आचार्य प्रकाशपति साहब के अनुसार ये रचनाएं अनुमानत. सं० १९०० के आसपास की मानी जा सकती है। आलोच्य काल के समस्त कबीरपथी ग्रंथो मे 'शब्दविलास' ही ऐसा है जिसमें कबीर की ऊर्ध्वमुखी अनुभूति के दर्शन होते है, अन्यत्र केवल दार्शनिक ऊहा-पोह ही मिलता है अतः उन रचनाओ को काव्य के अंतर्गत रखने में भी सकोच होता है। आगे कबीरपंथी काव्य के मूल्यांकन मे प्रसगानुसार इसकी चर्चा पुन: मिलेगी। 'नाम-प्रकाश' अपेक्षाकृत लघुतर रचना है जिसमे चौदह पिड तथा चार प्रकार के जीवों (पौ, त्रिगुण, ज्ञान तथा विज्ञान प्रधान) का परिचय देते हुए बावन अक्षरों मे आदि अक्षर का मर्म 'सुरतिशब्दयोग' की पृष्ठभूमि मे बताया गया है।

बड़ैया से एक अन्य रचना 'सुरतिशब्दसंवाद' भी प्रकाशित हुई है जिसे यद्यपि कबीरकृत कहा गया है तथापि वह संभवत. इसी शाखा से संबद्ध किसी कबीरपंथी की रचना है (रचनाकाल अनुमानतः १९वीं शताब्दी का अंतिम चरण)।

छत्तीसगढ़ी शाखा का साहित्य

कबीरपंथ का अधिकांशत. साहित्य उसकी छत्तीसगढ़ी शाखा में निर्मित हुआ। यह साहित्य कई प्रकार का है: (क) सृष्टि उत्पत्ति आदि से संबंधित पौराणिक साहित्य, (ख) जीवनी साहित्य, (ग) बाह्याचार संबंधी साहित्य, (घ) सिद्धांतपरक साहित्य। किंतु प्राचीनतर रचनाओं में रचयिता आदि का निर्देश न रहने से इनके रचनाकाल निर्धारण में अधिकतर अनुमान का आश्रय लेना पड़ता है। ऐसे ग्रंथ बहुत कम हैं जिनमें उपलब्ध कुछ साक्ष्यों के आधार पर उनके रचनाकाल का निश्चित रूप से पता लगाया जा सके। यहाँ उपर्युक्त विभाजन के अनुसार उनका संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

(क) पौराणिक साहित्य

१. **अनुरागसागर**--प्राणनाथ (सं० १६७५-१७५१ वि०) तथा जगजीवन दास (जन्म स० १७२७) द्वारा प्रवर्तित धामी तथा सतनामी संप्रदायों का इसमें उल्लेख होने के कारण डा० पीतांबरदत्त बड़थ्वाल ने इसे उक्त संप्रदायों की स्थापना के बाद की रचना माना है (हिंदी काव्य में निर्गुण संप्रदाय, पृ० ४३४)। 'अनुरागसागर' के संपादक स्वामी युगलानंद बिहारी को इस ग्रंथ की प्राचीनतम प्रति प्रमोदगुरु 'बालापीर' (गद्दी स० १७५०) के समय की मिली है अत. अनुमानतः इसे उसी समय की रचना माना जा सकता है। कबीरपंथ में अत्यधिक प्रसिद्ध होने के कारण यह रचना कई स्थानों से प्रकाशित हुई है।

२. **खुदबानी** (अप्रकाशित)--इसमें सृष्टि, उत्पत्ति आदि का वर्णन 'अनुरागसागर' से मिलता जुलता है। डा० केदारनाथ द्विवेदी को इसकी एक हस्तलिखित प्रति स० १८२८ की लिखी मिली है जिससे ज्ञात होता है कि इसकी रचना स० १८२८ के पूर्व किसी समय, संभवतः 'अनुरागसागर' के समांतर, हुई होगी।

३. **दीपकसागर**--यह ग्रंथ अभी मुद्रित नहीं हुआ है, इसकी एक प्रति स० १८६९ की लिखी हुई डा० केदारनाथ द्विवेदी को दामाखेडा (म० प्र०) में प्राप्त हुई है (कबीर और कबीरपंथ पृ० ३९)। डा० द्विवेदी ने यही उसका रचनाकाल भी माना है, क्योंकि प्रति के आरंभ में पाकनाम साहब तक के गुरुओं की वंदना है। किंतु यह रचना इसके पूर्व की भी हो सकती है, क्योंकि गुरुओं की वंदना लिपिकर्ता द्वारा प्रतिलिपि करते समय की जाती है, उसे मूल रचना का अंश नहीं मानना चाहिए। डा० द्विवेदी के अनुसार यह ग्रंथ पच्चीस खंडों में विभक्त है। सभी खंडों में कबीरपंथी पौराणिक कथाएँ

मिलती हैं। इस पुस्तक के अनुसार सर्वप्रथम सत्यपुरुष ने 'सोलह पुत्रों की सृष्टि की जिनमें एक जलखंडी भी था। जलखंडी आततायी निकला अतः उससे जीवो की रक्षा करने के लिये सत्यपुरुष ने अपना एक अश उत्पन्न किया जिसने जलखंडी का वध किया। सत्य-पुरुष ने पुन: अपने अश को कबीर के रूप मे भेजा। कबीर ने विभिन्न युगो मे विभिन्न अवतार धारण कर सत्यपुरुष की आज्ञा का पालन किया।

४. **गरुडबोध**--(बंबई, सं० २००६) सपादक युगलानद बिहारी के अनुसार इसकी प्राचीनतम प्रति स० १७०३ की है अत. अनुमान से यह उसी समय की रचना होगी। इसमे कबीर द्वारा गरुड को शिष्य बनाए जाने की कथा है। जन्मातरवाद का प्रतिपादन करते हुए त्रिदेवो को जीवनमरण के बधन मे बद्ध दिखाकर इसमे सगुणोपासना का तिर-स्कार तथा निर्गुणोपासना का महत्वाकन किया गया है।

इनके अतिरिक्त कुछ पौराणिक ग्रथ ऐसे है जिनका रचनाकाल अनिश्चित है किंतु उन्हें अनुमानत आलोच्य काल के अतर्गत माना जा सकता है।

ज्ञानसागर (बबई, स० २०१०) को, जिसमें सृष्टिप्रक्रिया आदि का वर्णन 'अनुरागसागर' (स० १७५० के लगभग) के सदृश मिलता है, डा० बड़थ्वाल ने सिद्धातों के विकास की दृष्टि से प्राचीनतर माना है (निर्गुण संप्रदाय, पृ० ४३४); किंतु यह भी सभवत स० १७०० के पूर्व का न होकर उसके पश्चात् का ही होगा।

'आगमनिगमबोध' नामक ग्रथ (बबई, स० २००६) पर 'रामचरितमानस' (स० १६३१) का प्रभाव ज्ञात होता है, अतः यह उसके बाद की ही रचना हो सकती है; किंतु यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि स० १७०० तक इसकी रचना हो ही गई होगी। इसी प्रकार **अंबुसागर, कूर्मावली** तथा **लक्ष्मणबोध, भूपालबोध, हनुमानबोध, सुलतानबोध, निरंजनबोध, जगजीवनबोध, अमरसिंहबोध** आदि अनेक 'बोधग्रथ' पौराणिक विचारधारा के प्राप्त होते है जिनके रचनाकाल के सबंध मे निश्चयपूर्वक कुछ नही कहा जा सकता। ये सभी ग्रथ लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस बबई द्वारा सं० २००६, १० तथा ११ मे प्रकाशित किए गए है। सभी का संपादन युगलानद जी ने किया है। 'भूपालबोध' तथा 'हनुमानबोध' का प्रकाशन सरस्वतीविलास प्रेस, नरसिंहपुर (म०प्र०) मे भी क्रमश. स० १९१० तथा १२ मे हुआ था।

यत्किंचित् अतरो के साथ, जिनका उल्लेख ऊपर रचनाओं के परिचय में कर दिया गया है, उपर्युक्त सभी ग्रथों मे सृष्टि उत्पत्ति तथा उसका विकासक्रम इस प्रकार बतलाया गया है---पहले सत्यपुरुष के अतिरिक्त कुछ नही था। सृष्टि का सारा प्रपच उसी मे समाया हुआ था जैसे वटवृक्ष में उसकी छाया समाई रहती है। उसने अपनी इच्छा से अट्ठासी सहस्त्र द्वीपों की रचना की और कूर्म, ज्ञानी, विवेक, निरजन आदि अपने सोलह अशो को उत्पन्न किया। निरजन अथवा धरमदास ने सत्तर युग तक तपस्या कर सृष्टि उत्पन्न करने और उसका सचालन करने का वरदान सत्यपुरुष से माँग लिया। उसने अपने

बड़े भाई कूर्म का पेट काट डाला और उसमें से सृष्टिरचना का सरंजाम निकाल लिया। निरंजन ने पुन: तपस्या कर सृष्टिरचना के लिये खेत, बीज आदि की जब प्रार्थना की तो सत्यपुरुष ने अपने तेज से आद्या नामक अष्टांगी कुमारी को जन्म दिया। निरंजन ने आद्या से ब्रह्मा, विष्णु, महेश नामक तीन पुत्रों को उत्पन्न कर स्वय गुप्त हो गया। तीनों पुत्रों ने आद्या की आज्ञा से समुद्रमंथन किया जिसमे ब्रह्मा को वेद मिला जिसे निरंजन ने अपनी श्वास मे रचकर समुद्र मे छिपा रखा था। वेद पढ़कर ब्रह्मा को निराकार का संकेत मिला। उसने आद्या से अपने निराकार पिता का पता पूछा। आद्या ने निरंजन का भेद बताया नही; किंतु पुत्रों के हठ करने पर ब्रह्मा को आकाश की ओर और विष्णु को पाताल की ओर भेजा। विष्णु तो असफल होकर लौट आए, किंतु ब्रह्मा जब बहुत समय तक नहीं लौटे तो आद्या ने अपनी मैल से गायत्री की सृष्टि की और उसे ब्रह्मा को मनाने भेजा। ब्रह्मा ने उससे सावित्री (नामांतर पुष्पावती) को उत्पन्न किया। ब्रह्मा इस शर्त पर वापस होने को राजी हुए कि वे दोनो यह बता देंगी कि ब्रह्मा ने पिता का दर्शन कर लिया है। तीनों के वापस आने पर आद्या ने निरंजन का ध्यान कर सारा रहस्य जान लिया और तीनों को शाप दे दिया। विष्णु और शिव के ऊपर प्रसन्न होकर उसने उन्हे वरदान दिए। फिर आद्या ने पुत्रों की सहायता से चार खान सृष्टि (अंडज, पिंडज, ऊष्मज, उद्भिज) और चौरासी लाख योनियों की रचना की। ब्रह्मा ने वेद, स्मृति, शास्त्र, पुराण आदि बनाकर लोगों को उनमें उलझा दिया। जब सारे संसार मे हाहाकार मच गया तब सत्यपुरुष ने कबीर को अपने अंश रूप मे उनकी रक्षा के लिये भेजा। उन्होंने सतयुग में सत्यसुकृत, त्रेता में मुनींद्र, द्वापर मे करुणामय तथा कलियुग मे कबीर नाम से अवतार लेकर जीवों का कष्ट निवारण किया। कलियुग मे उन्होंने धर्मदास को दीक्षित किया और अपने अंश से चार गुरुओं (बंके जी, सहते जी, चतुर्भुजदास जी और धर्मदास जी) को मुख्य 'कड़िहार' (कर्णधार) के रूप में स्थापित किया तथा धर्मदास की बयालिस पीढ़ियों द्वारा कबीर-पंथ के विस्तार की भविष्यवाणी की। उन्होंने चौका आरती, पान, परवाना आदि की विधियाँ भी निर्धारित कीं।

डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इस कथा में निहित कुछ तत्वों का विश्लेषण कर यह सिद्ध किया है कि कबीरपंथ पर पूर्वी बिहार तथा बंगाल, उड़ीसा में प्रचलित धर्मसंप्रदाय का प्रभाव है और उनके अनुसार धर्मसंप्रदाय स्वत: परवर्ती बौद्ध धर्म से प्रभावित है (दे० 'कबीरपंथ और उसके सिद्धांत', विश्वभारती पत्रिका, ५–३)। डा० केदारनाथ द्विवेदी ने बौद्ध प्रभाव के अतिरिक्त कबीरपंथी साहित्य पर ब्राह्मणधर्मी पुराणों का प्रभाव भी सिद्ध किया है (दे० 'कबीरपंथ पर पौराणिक प्रभाव', सम्मेलन पत्रिका, ४६–१)। मेरे विचार से कबीरपंथी साहित्य तथा बाह्याचार पर मध्यप्रदेश के आदिवासियों की संस्कृति का भी प्रभाव पर्याप्त मात्रा मे है, जिनके बीच उसकी छत्तीसगढ़ी शाखा का विकास हुआ है। स्वत: धर्मसंप्रदाय में अनेक आदिवासी तत्व निहित हैं। किंतु अभी इस दिशा मे शोध अपेक्षित है।

(ख) जीवनी साहित्य

इस शाखा से संबद्ध कुछ ग्रंथ ऐसे मिलते हैं जिनसे कबीर अथवा धर्मदास के जीवन संबंधी कुछ तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है। इस प्रकार की रचनाओं में 'सुखनिधान' के संबंध में पहले ही इस बात का निर्देश किया गया कि यह भ्रमवश काशी के सुरतगोपाल साहब की रचना मानी जाती रही; किंतु यह वस्तुतः धर्मदास के ही जीवन पर अधिक आधारित है और छत्तीसगढी शाखा से संबद्ध अन्य ग्रंथों की तरह इसमें भी कबीर धर्मदास के सवाद मिलते है। डा० की ने इसका रचनाकाल सं० १७८६ माना है। यह ग्रंथ 'बीजक सुखनिधान' नाम से सरस्वतीविलास प्रेस, नरसिंहपुर मे प्रकाशित हो चुका है (प्रकाशन-समय अज्ञात)। यह संस्करण जिस प्रति पर आधारित है उसका लि०का० सं० १८६३ दिया हुआ है, लिपिकर्ता देवनगर निवासी खेमदास हैं। 'धर्मदास बोध' अथवा 'ज्ञान प्रकाश' (बबई, सं० २०१० तथा नरसिंहपुर) भी इसी प्रकार धर्मदास के जीवन से संबद्ध है। नरसिंहपुर मे प्रकाशित सस्करण में प्रति का लिपिकाल सं० १८७६ दिया हुआ है। इन दोनो ही ग्रथो से ज्ञान होता है कि धर्मदास पहले रूपदास नामक वैष्णव के शिष्य थे और मूर्तिपूजा करते थे। कबीर ने 'जिंदा' वेश मे प्रकट होकर मथुरा में उन्हें ज्ञान दिया और मूर्तिपूजा का खडन किया। 'कमालबोध' और 'वीरसिहबोध' में कबीर द्वारा क्रमशः कमाल और वीरसिंह बघेल को दीक्षा देने का वर्णन है। 'कमालबोध' में कबीर रामानंद के शिष्य और सिकदर लोदी तथा शेख तकी के समकालीन बताए गए है। दूसरी रचनाएँ वीरसिंह और बिजली खाँ के बीच सघर्ष का वर्णन है। दोनों ग्रथो में रचनाकाल का निर्देश नही किंतु अनुमानतः दोनो अठारहवी शताब्दी के माने जा सकते हैं। 'कमालबोध' बबई से स० २००६ मे तथा 'वीरसिंहबोध' बंबई तथा नरसिंहपुर दोनों स्थानों से क्रमशः स० २०१० तथा सं० १९६४ मे प्रकाशित हुआ। 'स्वसंवेदबोध' (बबई, स० २००६) यद्यपि कबीरपथियो मे कबीर की रचना के रूप मे प्रसिद्ध है, तथापि वह अठारहवी शताब्दी की रचना ज्ञात होती है जिसमे जातक शैली में कबीर के प्राकट्य का वर्णन है। इसके अनुसार नीरू और नीमा पूर्वजन्म मे नरहरि और लक्ष्मी थे। 'आशासागर' (अप्रकाशित) की एक ह० लि० प्रति डा० केदारनाथ द्विवेदी को पुरी के कबीरमठ से प्राप्त हुई है जिसमे कबीर तथा कबीरपथ से संबद्ध अनेक व्यक्तियों के नाम मिलते है। इन नामो मे गरीबदास तथा भदनसाहब के नाम भी है जिन्हे यदि क्रमशः छुड़ानी, रोहतक के गरीबदास (मृ० सं० १८३५) तथा बड़ैया के मदनसाहब (मृ० स० १९११) से अभिन्न माना जाय तो इसे काफी अर्वाचीन मानना पडेगा, किंतु सभव है, इसमे उल्लिखित मदनसाहब कोई अन्य महात्मा हो। 'जन्मौती मगल' की जो हस्तलिखित प्रति डा० केदारनाथ द्विवेदी को मिली है, उसमे चूरामणि (सत्रहवी शताब्दी) के जन्म का वर्णन मिलने के कारण उन्होंने उसे स० १७०० के पूर्व की रचना माना है (कबीर और कबीरपथ, पृ० ८१), किंतु सभवतः यह रचना भी अठारहवी शताब्दी वि० की है।

(ग) बाह्याचार संबंधी साहित्य

१. **अमरमूल** (बंबई, सं० २०११, नरसिंहपुर, सं० १९५६) को डा० की ने सं० १८५७ की रचना माना है (कबीर ऐंड हिज फालोवर्स, पृ० १२८)।

२. **कबीरबानी** (बंबई, सं० २०११) का संग्रहकाल खो० रि० में यद्यपि सं० १५६९ बताया गया है तथापि इसमें सं० १७७५ तक की घटनाओं का उल्लेख होने के कारण इसे लगभग सं० १८०० की रचना मानना चाहिए।

३. **मूल वंशावली** (अप्रकाशित) की एक हस्तलिखित प्रति केदारनाथ द्विवेदी को सं० १८२८ की लिखी हुई प्राप्त है जिसमें धर्मदास की इस जिज्ञासा पर कि कौन व्यक्ति स्वर्ग जाता है, कबीर द्वारा ग्रंथ में प्रचलित कर्मकांड का विवेचन कराया गया है।

उपर्युक्त तीनों ग्रंथों में चौका, आरती, पान, परवाना, नारियल मोड़ना आदि कबीरपंथी बाह्याचारों के विवरण हैं, यद्यपि दूसरी रचना के शीर्षक से भ्रम होता है कि कदाचित् उसमें कबीर की ही वाणियाँ संकलित हैं।

४. **धर्मदास गुसाईं की समाधि** में तीन खंड हैं। प्रथम खंड में छह महीने पूर्व ही भविष्य जानने की विद्या का वर्णन है। द्वितीय खंड में यमराज के यहाँ जानेवाले जीवों का लक्षण बताया गया है। तीसरे में धर्मदास की मृत्यु तथा उनके शवसंस्कार का वर्णन है। इसी प्रसंग में अंत्येष्टि संबंधी कबीरपंथी कर्मकांड का विवरण है। यह ग्रंथ नरसिंहपुर से प्रकाशित हो चुका है। डा० केदारनाथ द्विवेदी को इसकी जो हस्तलिखित प्रति प्राप्त हुई है उसमें इसका रचनाकाल सं० १८२९ बताया गया है किंतु रचयिता का उल्लेख नहीं है।

इनके अतिरिक्त सुमिरनबोध (बंबई, सं० २०११), एकोतरा सुमिरन (हस्तलिखित), चौका स्वरोदय (बंबई, सं० २०११), अठपहरा (हस्तलिखित), स्वरगांजी (हस्तलिखित), कागापांजी (बंबई, सं० २००९) आदि कुछ अन्य परवर्ती ग्रंथ भी मिलते हैं जिनकी रचना संभवत सं० १९०० के बाद हुई।

(घ) सिद्धांतपरक ग्रंथ

१ हंसमुक्तावली में अनाथ कवि के 'प्रबोधचंद्रोदय' नाटक (सं० १७२६) का उल्लेख मिलने के कारण उसे अठारहवीं शताब्दी की रचना माना जा सकता है। इस ग्रंथ में बताया गया है कि मन राजा की दो रानियां हैं—प्रवृत्ति तथा निवृत्ति। प्रवृत्ति के गर्भ से काम, क्रोधादि की उत्पत्ति होती है और निवृत्ति के गर्भ से विवेक, विचारादि की। बाद में दोनों के पुत्रों में संघर्ष होता है। मन राजा की आसक्ति पहले की ओर होती है, किंतु अंततोगत्वा उसका पराजय देखकर वह निवृत्ति रानी का समर्थन करने लग जाता है और 'पारख पद' प्राप्त कर सुखपूर्वक राज्य करता है।

२ मूलज्ञान (अप्रकाशित) में श्रेष्ठतम ज्ञान 'मूलशब्द' को बताया गया है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति पाकनाम साहब (गद्दी सं० १८६०) के समय की मिलती है जिससे यह उन्नीसवीं शताब्दी की रचना ज्ञात होती है।

इनके अतिरिक्त ३ **संतोषबोध** (बड़ा तथा छोटा), ४. **ध्यानबोध**, ५. **कर्मबोध**, ६. **मुक्तिबोध** अथवा **मुक्तमाल**, ७. **धर्मबोध**, ८ **ज्ञानउपदेश**, ९ **ज्ञान-स्थिति बोध** आदि अनेक ग्रंथों में भी कबीरपंथी सिद्धांतों के आध्यात्मिक अथवा दार्शनिक विवेचन मिलते है। इनमे से 'मुक्तिमाल' तथा 'ज्ञानउपदेश' नरसिंहपुर से तथा अन्य ग्रंथ बंबई से प्रकाशित हो चुके है। 'ज्ञानप्रकाश' तथा 'अमरमूल' आदि मे भी, जिनकी चर्चा पहले दूसरे वर्गो मे की जा चुकी है, प्रसंगानुसार सैद्धांतिक विवेचन मिलते है।

भवतारणबोध (नरसिंहपुर, सं० १९६५, बंबई, सं०२०११) नामक एक प्रसिद्ध ग्रंथ यद्यपि धर्मदास जी की रचना के रूप मे प्रसिद्ध है, किंतु मेरे विचार मे यह भी परवर्ती ग्रंथ है और संभवतः अठारहवीं शताब्दी का है।

अज्ञात शाखा की रचनाएँ

कुछ कबीरपंथी रचनाएँ ऐसी भी मिलती है जिन्हें उपर्युक्त शाखाओं मे किसी एक मे निश्चित रूप से नही रखा जा सकता। उदाहरणतया अनेक **गोष्ठीग्रंथ**–जैसे **कबीर-गोरख-गोष्ठी**, **कबीर-शंकराचार्य-गोष्ठी**, **कबीर-जोगाजीत गोष्ठी**, **कबीर–सर्वाजीत गोष्ठी**, **कबीर–हनुमान गोष्ठी** आदि (दे० कबीरग्रंथावली, हिंदी परिषद्, इलाहाबाद विश्व०, पृ० ३९–४०)। ये सभी ग्रंथ अनुमानतः ऐसे समय में लिखे गए होंगे जब 'कबीरपंथ' काफी प्रौढ़ हो चुका होगा (अर्थात् सं० १७०० के पश्चात्)। किंतु इन ग्रंथों मे ऐसे संकेत नही मिलते जिनसे किसी विशिष्ट शाखा से इनका संबंध जोड़ा जा सके। इन ग्रंथों की शैली बड़ी तीक्ष्ण तथा मनोरंजक है जिसका उदाहरण मैंने 'कबीर ग्रंथावली' मे दिया है। इनमे प्रायः कबीर का महत्व दिखलाने के लिये उत्तर पक्ष वालों की खिल्ली उड़ाई गई है।

इसी प्रकार **ग्रंथबत्तीसी**, या **सारबत्तीसी** (दे० क० ग्रं०, पृ० ४८) **जन्मबोध या जन्मपत्रिका की रमैनी** (वही, पृ० ४९) **सबदभोग** (निरंजनी संप्रदाय के हस्तलिखित ग्रंथों मे संकलित कबीरपंथी रचना दे० वही, पृ० ४९), **राममंत्र** (पृ० वही) तथा **अलिफनामा** या **ककहरा** (दे० वही, पृ० ४५) आदि को भी किसी विशिष्ट शाखा से संबद्ध नही किया जा सकता। इन सभी ग्रंथों की रचना अनुमानतः आलोच्य काल मे ही हुई होगी।

दर्शन तथा सिद्धांत

सिक्ख धर्म का दार्शनिक सिद्धांत उसके प्रवर्तक गुरु नानकदेव के उस महावाक्य में निहित है जो 'श्री गुरु ग्रंथसाहिब' के आरंभ मे इस प्रकार मिलता है : "एकोंकार सतिनामु करता पुरुष निरभउ निरवैरु अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि।" इसका

तात्पर्य यह है कि परमात्मा एकमात्र, सत्यस्वरूप, स्वयंभू और नित्य है, किंतु साथ ही वह 'कर्ता' होने के नाते हम सबसे संबद्ध भी है। इस प्रकार नानक के अनुसार ओंकार अथवा ब्रह्म पारमार्थिक सिद्धांत मात्र न होकर कुछ करनेवाले के रूप में भी लक्षित होता है और किंचित् ध्यानपूर्वक विचार करने पर स्पष्ट हो जाता है कि यहाँ पर 'करना', 'करनेवाला' अथवा 'रहना', 'रहनेवाला' या 'होना', 'होनेवाला' भी परस्पर भिन्न नहीं है। सबके सब, चाहे वस्तु हों या क्रिया हो, एक में ही अनुस्यूत हैं और कोई भी अंश किसी भी रूप में उस एकमात्र सत्य से पृथक् नहीं है। 'हुकुम' देनेवाला भी वही है और जिसे 'हुकुम' दिया जा रहा है, वह भी वस्तुतः उससे अभिन्न ही है। इस प्रकार सिक्खों का मूल दार्शनिक सिद्धांत सर्वात्मवाद के उस रूप की ओर संकेत करता है जिसके अनुसार उस नित्य, निर्विशेष तथा एकमात्र सत्य और व्यावहारिक ससीम सत्ता में कोई अंतर नहीं रह जाता। इसीलिये सिक्ख मत के अनुसार यदि कोई 'हुकुम' का रहस्य भली भाँति समझ ले तो फिर उसे अपने को भिन्न सिद्ध करनेवाले अहंकार का बोध भी न होने पावे। परमात्मा की अगम्यता तथा सर्वव्यापकता के संबंध में अनेक उक्तियाँ सिक्ख गुरुओं की वाणी में मिलती हैं।

गुरु नानकदेव की एक रचना 'जपुजी' में, जिसका पाठ सिक्ख लोग नित्य प्रति प्रातःकाल किया करते हैं, बतलाया गया है कि किस प्रकार हमें परमात्मा की महत्ता, सर्वज्ञता, सर्वशक्तिमत्ता, दयालुता आदि का चिंतन कर अपने व्यक्तित्व को उसके अनुकूल ढालना चाहिए। उन्होंने साधना की चार सीढ़ियों की ओर भी संकेत किया है। सर्वप्रथम 'धरमखंड' की स्थिति में वह अपने सभी कर्मों को कर्तव्यरूप में मानता है। दूसरी स्थिति 'ज्ञानखंड' में उनके मूलभूत कारणों के ज्ञान द्वारा उन्हें अपनाने लगता है। तीसरी स्थिति 'करमखंड' में सभी उच्च कोटि के कार्यों को वह स्वयं करने लगता है। अंत में वह 'सच खंड' अर्थात् सत्य की वास्तविक रंगभूमि में प्रवेश करता है जहाँ पर उसे आध्यात्मिक पूर्णता की उपलब्धि हो जाती है और वह विधिनिषेध के परे चला जाता है। यही प्रकारांतर से सहजसमाधि अथवा स्थितप्रज्ञावस्था है। इस अवस्था में पहुँचे हुए व्यक्ति ही सबके लिये 'पंच' या आदर्श हो सकते हैं।

सिक्खों में नामस्मरण तथा प्रार्थना को सर्वाधिक महत्व दिया जाता है। उनमें बाह्याचार अथवा संस्कारविधान का नितांत अभाव है। उनकी दीक्षाविधि जिसे 'पाहुल' संस्कार कहा जाता है, बहुत सीधी सादी होती है। विवाहसंस्कार में प्रयुक्त 'आनंद' की विधि भी उसी प्रकार सरल और आडंबरहीन है। ऐसे सभी अवसरों पर किसी न किसी रूप में प्रार्थना का ही विधान है। उनके मान्य ग्रंथ भी अधिकतर स्तुतियों से भरे पड़े हैं। उनकी दिनचर्या में भी प्रार्थना का ही सर्वाधिक महत्व है। प्रातःकाल 'जपुजी' के साथ कुछ लोग 'आसा दी वार' का भी पारायण करते हैं। उसी प्रकार सायंकाल के लिये 'रहिरास' का पाठ निर्धारित है और सोने के पहले 'सोहिलो' पढ़ा जाता है। सभी में परमात्मा का स्मरण दिलाकर कर्तव्यपालन का निर्देश है। छठे गुरु हरगोबिंद के समय तक धर्म-

ग्रंथ तथा प्रार्थनाभवन आदि की व्याख्या निश्चित हो जाने पर सामूहिक प्रार्थना का महत्व सांप्रदायिक सगठन की दृष्टि से अधिकाधिक बढ़ गया और दसवे गुरु गोविदसिह के समय उसके रूप तथा क्रम मे परिस्थिति के अनुसार कुछ परिवर्तन भी किए गए। अब कुछ ऐसी लघु प्रार्थनाओ का भी प्रचलन हो गया जो गृहस्थी मे उलझे हुए व्यक्ति को भी सुलभ जान पड़े। एक ऐसी भी प्रार्थना प्रचलित हुई जिसमे परमात्मा की स्तुति के साथ दसो सिक्ख गुरुओ, पाँच 'पियारो' तथा गुरु गोविदसिह के चारो पुत्रो के बलिदान अथवा अन्य प्रसिद्ध उत्सर्गों का भी उल्लेख रहता है।

सिक्खो की उपर्युक्त प्रार्थनाओ का मुख्य उद्देश्य है परमात्मा अथवा अपने पूज्य गुरुओ के प्रति भक्तिभाव प्रदर्शित करते हुए उनके उदात्त गुणो का स्मरण कर अपना मानसिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक विकास करना।

साहित्य

आलोच्य काल के सिक्ख गुरुओ में से अतिम दो गुरुओ की ही रचनाएँ उपलब्ध होती है। श्री गुरु ग्रथसाहिब मे नवें गुरु तेगबहादुर के ५७ सलोक (= साखियाँ) तथा विभिन्न रागो के अतर्गत कुल ५८ पद सकलित है। 'ग्रथसाहिब' सर्वप्रथम गुरु अर्जुनदेव के समय मे स० १६६१ मे तैयार किया गया था जिसके लिपिकार भाई गुरुदास थे। गुरु गोविदसिह जब मुगलो के आक्रमण के समय आनदपुर छोड़कर अपने अनुयायियो के साथ दक्षिण की ओर जा रहे थे उसी समय उन्होने दमदमा नामक स्थान पर भाई मनीसिह से 'ग्रथसाहिब' का एक नया सस्करण तैयार कराया जिसमे गुरु तेगबहादुर की रचनाएँ पहली बार समिलित की गई। इससे भी पहले एक अन्य सस्करण भाई बन्नो द्वारा तैयार किया जा चुका था। भाई गुरुदास तथा भाई बन्नो लिखित 'ग्रंथ' क्रमश: करतारपुर (जि० जालधर) तथा माँगर (जि० गुजरात) मे सुरक्षित बतलाए जाते है। भाई मनीसिह-वाला सस्करण अब उपलब्ध नही। लोगो का अनुमान है कि वह कदाचित् अहमदशाह अब्दाली द्वारा नष्ट कर दिया गया।

यह विलक्षण बात है कि निरतर सैनिक जीवन व्यतीत करते हुए भी गुरु गोविद-सिह ने अविस्मरणीय साहित्यसेवा की। इनकी रचनाओ का सग्रह 'दसम पातसाह का ग्रथ' या 'दशम ग्रथ' के नाम से प्रसिद्ध है जिसे भाई मनीसिह ने ही स० १७९१ मे तैयार किया था। इस ग्रथ मे उनकी रचनाओ के अतिरिक्त उनके दरबारी कवियो की भी कुछ रचनाएँ सकलित है। अपने दरबार मे इन्होने ५२ कवियो को आश्रय दिया था और सस्कृत ग्रथो का शुद्ध अनुवाद कराने की इच्छा से पाँच व्यक्तियो को अपनी ओर से काशी मे सस्कृत का अध्ययन करने के लिये भेजा था। गुरु गोविदसिह ने अपने सरक्षण मे कुछ सस्कृत ग्रथो के भी अनुवाद कराए थे जिनमे महाभारत, रामायण एवं सप्तशती मुख्य है। इस बृहत् संग्रह का नाम इन्होने 'विद्याधर' रखा था। कहते है, इस महाग्रंथ का वजन लगभग ३ मन १५ सेर था। आनदपुर छोड़ते समय इसका काफी अश नदी मे गिरकर नष्ट

हो गया। अपनी एक रचना 'विचित्र नाटक' में गुरु गोविंदसिंह ने अपने पूर्वजन्म का इतिवृत्त लिखा है। अनूपकौरवाली घटना से प्रेरणा प्राप्त कर ४०४ कथाओं का सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'त्रियाचरित' भी लिखा था। पहाड़ी राजाओं से युद्ध करने के अनंतर पौंटा नामक दुर्ग के पास रहते हुए इन्होंने 'राममंडल' सदृश कुछ रचनाएँ लिख डाली थीं। इनके अतिरिक्त 'अकालस्तुति', 'चंडीचरित्र', 'ज्ञानप्रबोध', 'चौबीस अवतार', 'जाप', 'शस्त्रमाला' आदि इनके अन्य ग्रंथ भी उल्लेखनीय हैं।

डा० कु० प्रसिन्नी सहगल ने 'गुरु गोविंदसिंह और उनका काव्य' शीर्षक शोधप्रबंध (पृ० १२३–२४) में दशम गुरु की जिन सोलह रचनाओं को प्रामाणिक माना है उनके नाम हैं : १. जापु, २. अकाल स्तुति, ३. विचित्र नाटक, ४. चंडीचरित्र उक्तिविलास, ५. चंडीचरित्र, ६. वार श्री भगवती जी की, ७. चौबीस अवतार, ८. मीर मेंहदी, ९. ब्रह्मा अवतार, १०. रुद्र अवतार, ११ शस्त्रनाममाला, १२. ज्ञानप्रबोध, १३ पाख्यानचरित्र, १४. हजारे दे शब्द (दस पद), १५. सवैए (१०), १६. जफरनामा तथा हिकायतें। इनका रचनाकाल सं० १७४०–६३ है।

अपने पुत्रों की मृत्यु के अनंतर दीना नामक स्थान से 'जाफरनामा' शीर्षक एक रचना फारसी में लिखकर इन्होंने औरंगजेब के पास भेजी थी। अपने संघर्षरत जीवन में साहित्यसेवा के लिये इतना समय वे कितनी कठिनाई से निकालते रहे होंगे, इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। ग्रंथ का उनकी दृष्टि में इतना महत्व था कि अपने पश्चात् 'ग्रंथसाहब' को ही वे सदा के लिये सिक्खों का पथप्रदर्शक बनाकर छोड़ गए।

अन्य सिक्ख रचनाकारों में पृथीचंद सोढी के पौत्र तथा मनोहरदास उपनाम मेहरबान के पुत्र हरि जी (सं० १६६०-१७५२) तथा भाई सतोखसिंह के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। हरि जी की तीन गद्यकृतियाँ उपलब्ध हैं, किंतु तीनों ही अप्रकाशित हैं। उनके नाम हैं : १. गोसट गुरु मिहरबानु, २. सुखमनी सहसरनाम, तथा ३ पोथी हरि जी। पहली में मिहरबान जी की प्रामाणिक जीवनी है दूसरी मिहरबानकृत 'सुखमनी' का भाष्य है (रचनाकाल सं० १७०३) तीसरी भी मिहरबानकृत 'पोथी सचुखंड' (नानक की जीवनी) के अनुकरण पर लिखी गई सिक्ख गुरुओं की जीवनियों का संग्रह है (विशेष विवरण के लिये दे० सम्मेलन पत्रिका, ५०।४ में डा० गोविंदनाथ राजगुरु का 'हरि जी : १७वीं शती के अज्ञात हिंदी गद्यकार' शीर्षक निबंध)। हरि जी के पश्चात् इस परंपरा में 'पोथी चतुर्भुज', 'पोथी केसोराइ' आदि के उपलब्ध होने की चर्चा डा० राजगुरु ने की है, किंतु उनका अधिक विवरण प्राप्त नहीं। हरि जी के गद्य का विशिष्ट ऐतिहासिक महत्व है; क्योंकि अभी तक की उपलब्ध सामग्री के आधार पर स्वामी प्राणनाथ (मृ० सं० १७५१) को खड़ीबोली गद्य का प्राचीनतम लेखक माना जाता था किंतु हरि जी का खड़ीबोली गद्य उनसे भी प्राचीन है और उनके गुरु मिहरबान (मृ० सं० १६९७) तो इतःपूर्वज्ञात खड़ीबोली गद्यलेखकों में प्राचीनतम सिद्ध होते हैं। सिक्ख सप्रदाय के

किंचित् प्राचीन ऐतिहासिक अथवा अर्ध ऐतिहासिक ग्रंथों में सरूपचंद भल्ला (तीसरे गुरु अमरदास के पुत्र श्री मोहरी जी के परिवार से संबद्ध) रचित 'महिमाप्रकाश (सं० १८३३), संतदास छिब्बर द्वारा रचित 'जनमसाखी नानकशाह की' (सं० १८३४) तथा उदासी सतरेण कृत 'नानकविजय' गुरु नानक के जीवन पर आधारित है। 'नानकविजय' बीस खडों मे विभक्त १८६० पृष्ठो का विशाल ग्रंथ है और आकार मे 'गुरु ग्रंथसाहब' के बराबर है। इसका रचनाकाल अनुमानतः १९वी शताब्दी वि० का उत्तरार्ध है। इसी प्रकार भाई सुक्खासिह (जन्म १८२५–मृ० १८६५ वि०) रचित 'गुरुविलास' (सं० १८५४) गुरुगोविंदसिह के जीवन पर आधारित विशालकाय ग्रंथ है जिसमें ३० अध्याय और ४६५१ छंद हैं। यह आकार मे 'नानकविजय' से थोड़ा ही कम है। भाई मनीसिह (मृ० १७६४ वि०) के नाम से भी दो 'गुरविलास' प्रचलित है किंतु उनके रचयिता तथा रचनाकाल के सबध मे बड़ा विवाद है। इनके अतिरिक्त केशवदासकृत 'वार अमरसिंह की' (स० १८२१) तथा सहजराम, अड्डणशाहकृत 'परचियाँ' (स० १८३४) भी प्रसिद्ध है।

भाई सतोषसिह उत्कृष्ट कोटि के कवि थे। उन्होने 'सूर्यप्रकाश' नामक प्रसिद्ध सिख इतिहासग्रथ स० १८८० मे लिखा था जिसमे गुरु नानकदेव से लेकर गुरु गोविंदसिंह तक का जीवनवृत्तात कथारूप मे वर्णित है। इनके अतिरिक्त सत गुलाबसिह तथा ज्ञानी ज्ञानसिह के नाम भी साहित्यरचना की दृष्टि से उल्लेखनीय है। उपर्युक्त सभी लेखको की रचनाएँ यद्यपि गुरमुखी लिपि मे मिलती हैं, किंतु उनकी भाषा हिंदी ही है।

मिहरबानु, हरि जी तथा हरिया जी आदि की वाणियो को 'कच्ची वाणी' संज्ञा से अभिहित किया जाता है। नानक आदि प्रामाणिक गुरुओ की वाणी 'सच्ची वाणी' है और गुरुपदवाचित अथवा स्वघोषित 'कच्चे' गुरुओ द्वारा 'सच्ची वाणी' के अनुकरण पर रचित वाणी 'कच्ची वाणी' है। 'कच्ची वाणी' की भी अपनी पृथक् परपरा है और उसका भी संकलन ग्रथ रूप मे किया गया। इस वाणी का अपना एक विशिष्ट व्यक्तित्व है जो गुरुवाणी का प्रत्यक्ष विरोधी न होने पर भी उससे पर्याप्त भिन्न है। दोनो मे मुख्य अतर यह है कि गुरुवाणी मे यद्यपि वेदपुराण का प्रत्यक्ष विरोध नही है, तथापि अवतारवाद, वर्णाश्रम, चमत्कार आदि में उसकी आस्था नही ज्ञात होती जबकि कच्ची वाणी इसी अवतारवाद, वर्णाश्रम, चमत्कार आदि का समर्थन करनेवाली पौराणिक हिंदू भावना के पुनरुद्धार की द्योतक है।

उदासी सप्रदाय के सतरेण जी ने पाँच ग्रथो की रचना की थी जिनमे से चार उपलब्ध है---१. मनप्रबोध, २. नानकविजय, ३. अनभै अमृतसागर या अनभैप्रकाश, ४. उदासोबोध। पहला सिद्धातनिरपेक्ष काव्यग्रथ की कोटि में रखा जा सकता है, दूसरे में भगवान् के नामावतार की लीलाओ का आख्यान है, तीसरी वेदांतविषयक है और

चौथा उदासी संप्रदाय के सिद्धांतों का निरूपक ग्रंथ है। इन सभी ग्रंथो की रचना १९वीं शताब्दी वि० के पूर्वार्ध में हुई थी।

सेवापंथी संतों ने भी कुछ साहित्यरचना की थी। इनके अधिकाश ग्रंथ खड़ीबोली गद्य में अथवा पद्यमिश्रित गद्य मे हैं, क्योकि सेवापंथियों में कथा एव प्रवचन का बड़ा रिवाज है। डा० हरिभजनसिंह के अनुसार 'परचियाँ भाई कन्हैया' तथा अड्डणशाहकृत साखियाँ, 'विवेकसार' (ले० अज्ञात) मौलिक गद्य रचनाएँ है तथा 'पारसभाग', 'योग-वाशिष्ठ' अनूदित गद्यरचनाएँ है। इनमे से पहली इमाम गज्जालीकृत 'कीमिया-ए-सआदत' नामक फारसी रचना का अड्डणशाहकृत गद्य रूपांतर है। (सेवापंथ अड्डणशाही पंथ के नाम से भी प्रसिद्ध है)। दूसरी रचना उसी नाम के संस्कृत ग्रंथ का भाषानुवाद है किंतु अनुवादकर्ता का परिचय अज्ञात है। इस संप्रदाय के महत्वपूर्ण कवि सहजराम (जन्म १७३०, मृ० १८२५ वि०) है जो पंजाब के नूरपुरथल स्थान के निवासी थे और अपने गुरु सेवाराम की छाप से कविता करते थे। 'आसावरियाँ तथा 'परचियाँ' नामक इनके दो ग्रंथ प्रसिद्ध हैं। पहले मे सहजराम के अतिरिक्त ननुआ आदि १६ सेवापंथियों तथा तुलसी, सूर, कबीर आदि अन्य संतो की रचनाएँ भी संकलित है। दूसरे मे सेवाराम की जीवनी है। इनमे से केवल 'पारसभाग' तथा 'परचियाँ सेवाराम' ही प्रकाशित हैं।

विवेच्य काल का दादूपंथी साहित्य स्थूल रूप से पाँच वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है: (क) वाणी साहित्य, (ख) भक्तवार्ता साहित्य, (ग) अनुवाद तथा संकलन साहित्य, (घ) काव्यशास्त्रीय तथा संगीतशास्त्रीय साहित्य तथा (ङ) दार्शनिक साहित्य। आगे प्रत्येक वर्ग की रचनाओ का कालानुक्रम से निर्देश किया जा रहा है।

(क) वाणी साहित्य—दादू जी के शिष्यों में रज्जब जी तथा सुंदरदास जी की रचनाएँ (प्रकाशित) परिमाण तथा प्रभावोत्पादकता दोनों दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। रज्जब जी ने अकेले लगभग साढ़े पाँच हजार साखियाँ, २०६ पद, ११७ सवैए, ३३ गुणछंद, ८२ अरिल्ले, ८६ छप्पय तथा १३ लघु पद्यात्मक रचनाएँ प्रस्तुत की। इनका रचनाकाल अनुमानत सत्रहवी शताब्दी वि० का उत्तरार्ध तथा अठारहवी का पूर्वार्ध माना जाता है। दृष्टांतों के प्रयोग मे रज्जब जी का कौशल विशेष रूप से उल्लेखनीय है। राघवदास जी का कथन है—

> **साखि सबद अरु कवित, बिना दिष्टांत न कोई।**
> **जितने जग प्रसताव रहे, कर जोड़े दोई** ॥—भक्तमाल, छंद ३७८।

रज्जब जी ने दादूवाणी को प्रकरणानुसार व्यवस्थित किया जिसे 'अंगबधू' नाम दिया गया। आजकल अधिकाश संतों की वाणियाँ 'अंगों' मे विभाजित मिलती है, जैसे '**कुसंगति कौ अंग**', 'परचा कौ अंग' आदि। हिंदी-संत-साहित्य मे, जहाँ तक पता है, वाणियों के अंगविभाजन की परंपरा कदाचित् रज्जब जी के ही समय से आरंभ हुई। संत लोग

अपनी वाणियों के लेखन अथवा क्रमानुबंध की अधिक चिंता नहीं करते थे। सहज उल्लास में जो उद्गार आया, उसे उन्होंने सहज रूप में ही प्रकट कर दिया। यही स्थिति दादूवाणी की भी रही होगी और रज्जब जी को उसे सर्वप्रथम व्यवस्थित करने का श्रेय दिया जाना चाहिए। डा० भरतसिंह उपाध्याय ने 'ध्यानसंप्रदाय' (पृ० १४६) में इस शब्द के पारिभाषिक अर्थ पर विचार करते हुए आचार्य बुद्धघोष (पाँचवीं शताब्दी) के 'विसुद्धिमग्ग' में आए हुए 'अगनि कारणं वुच्चति' की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया है जिसके अनुसार 'अग' शब्द का प्रयोग बौद्ध साहित्य में 'कारण' अर्थ में किया जाता था। पालि तिपिटक में भी उपाध्याय जी को इस शब्द के ऐसे ही प्रयोग मिले है। उनका मत है कि संतों की भी जो जो 'साखियाँ' या गवाहियाँ जिन जिन कारणों से दी गई हैं उनका उल्लेख तत्तत् 'कारणों' या 'अंगों' में किया गया। किंतु मेरे विचार से 'अंग' शब्द यहाँ किसी विशिष्ट पारिभाषिक अर्थ में नहीं, प्रत्युत 'भाग' अथवा 'अवयव' आदि अत्यधिक प्रचलित अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। जैसे वेद के अनेक अंग 'वेदांग' हुए, वैसे ही संतो की वाणियाँ भी अनेक प्रकरणों या हिस्सों में बाँटी गई और उन्हें 'अंग' कहा गया। 'आचारांगसूत्र' आदि बारह जैन आगमग्रंथ प्रसिद्ध हैं जो वस्तुतः जैनधर्म के विभिन्न अंगों या अवयवों पर आधारित है। योग के भी यम, नियम आदि आठ अंग प्रसिद्ध है। कबीर द्वारा प्रयुक्त 'अंग'—सतनि का अंग गह (दे० कबीर ग्रंथावली, हिंदी परिषद्, इला० विश्व० संस्क० ४।२४ सभा संस्क० २६।१)—शब्द के विशिष्टार्थ के लिये अवश्य ही डा० उपाध्याय का सुझाव महत्वपूर्ण है—व्रत, नियम या अभ्यास अर्थ में, जैसे 'पांशुकूलिकांग' (विसुद्धमग्ग) अर्थात् पांशुकूलिक होने का व्रत या नियम। किंतु यह अर्थ वाणीविभाजन के प्रस्तुत प्रसंग में उपयुक्त नहीं प्रतीत होता।

छोटे सुंदरदास जी की रचनाओं का संग्रह स्व० पुरोहित हरिनारायण शर्मा ने 'सुंदरग्रंथावली' नाम से प्रकाशित करवाया था जिसमें उनके छोटे बड़े ४२ ग्रंथ मिलते है। इनके बड़े ग्रंथों में 'ज्ञानसमुद्र' तथा 'सुंदरविलास' (सवैए) अधिक प्रसिद्ध है। पहले की रचना सं० १७१० में हुई थी और उसमें अष्टांगयोग, सांख्य, अद्वैत, भक्ति आदि का पांडित्यपूर्ण और रसमय निरूपण है। इसे दार्शनिक ग्रंथों की कोटि में रखा जा सकता है, किंतु इसकी शैली बड़ी ही सरस है। वेदांत की सर्वोच्चता प्रतिपादित करना ही इस ग्रंथ का मुख्य ध्येय जान पड़ता है। 'सुंदरविलास' में विभिन्न अंगों के अंतर्गत ५६३ सवैयों में अनेक विषयों का वर्णन किया गया है। काव्यकौशल की दृष्टि से संत कवियों में सुंदरदास जी का अप्रतिम स्थान है। वे छंदःशास्त्र तथा काव्यशास्त्र में भी निष्णात ज्ञात होते है—सुंदर कौ सब सुगम, काव्य कोद कला न छाँनै (राघवदास, भक्त०)। उन्होंने छत्रबंध, कमलबंध, नागबंध आदि कठिन छंदों की रचना की और अंतर्लापिका, बहिर्लापिका, गजल आदि भी लिखे जिससे छंद तथा वर्ण्य विषय की विविधता के प्रति उनकी रुचि का परिचय मिलता है।

दादू जी के कुछ ऐसे शिष्यों की भी रचनाएँ मिलती हैं जिनके समय का निश्चयात्मक पता नहीं। उनमें से कुछ का अवसान, संभव है, सं० १७०० के पूर्व ही हो चुका हो। इन रचनाओं की सूचनाएँ ऐसी हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर दी जा रही है जिनका उपयोग मैंने कबीरवाणी संबंधी अपने अनुसंधान के उपक्रम में किया था। अन्य स्रोतों का उल्लेख भी यथास्थान कर दिया गया है। दादू महाविद्यालय, जयपुर की स० १८३१ की हस्तलिखित प्रति में टीला जी, बनवारीदास जी के पद, जगन्नाथदास जी के पद व कवित्त आदि, मोहनदास (मारोठवाले) के 'ब्रह्मलीला ग्रंथ' तथा पद, हरिसिंह जी तथा मेहरदास लाहोरी की 'चितावनी', हरिकेश की 'जखडी' नामक रचनाएँ मिलती है। मोहनदास (मारोठा ?) के 'मुखदेवलीला ग्रंथ' तथा 'कर्मविपाक' और जगन्नाथदासकृत 'मोहमदराजा की कथा' भी पुरोहित जी की स० १७१५ वाली प्रति में मिलते है। मंगलदास जी के 'संक्षिप्त इतिहास' से मोहनदास (मेवाड़वाले) के 'आदिबोध' तथा जगन्नाथदास के पद, साखी तथा २० लघु ग्रंथों का पता चलता है। मेहर की 'चितावनी' पुरोहित जी वाली प्रति में भी मिलती है। इसी में जयमल जोगी के पद तथा वाजिद पठान के 'गुनउत्पत्तिनामा', 'गुनघरियानामा', 'गुनश्रीमुखनामा', 'गुनहरिजननामा', 'गुनहरिनाँवनामा', 'गुनगंजनामा' (जगन्नाथदासकृत 'गुणगंजनामा' से भिन्न), 'गुननिरमोहीनामा', 'गुनप्रेमनामा', 'गुनप्रेमकहानीनामा', 'गुनबिरहनामा', 'गुननिसानी', 'गुनछंद', 'गुनहितउपदेश' तथा पद मिलते है। स्वामी मंगलदास जी द्वारा संपादित 'पंचामृत' में इनकी १३५ अरिल्लें प्रकाशित हुई है। नागरीप्रचारिणी सभा की सं० १७७१ की प्रति में उपर्युक्त कुछ संतो के अतिरिक्त दादूशिष्य दूजनदास, जगजीवनदास और माधूदास के भी पद मिलते है। मंगलदास जी ने 'संक्षिप्त इतिहास' में जगजीवन की रचनाओं के प्रसंग में साखियों तथा बीस लघुग्रंथों का भी उल्लेख किया है किंतु उनके नाम नहीं दिए हैं। ये सभी रचनाएँ अभी अप्रकाशित हैं। स्वामी लक्ष्मीराम ट्रस्ट, जयपुर द्वारा प्रकाशित 'श्री दादू जन्मलीला परची' की भूमिका (पृ० च) में जनगोपाल जी की बारह अन्य रचनाओं के भी नाम इस प्रकार दिए हुए है : १. ध्रुवचरित्र, २ प्रह्लादचरित्र ३ जडभरतचरित्र, ४ मोह-विवेक-संवाद, ५ शुकसंवाद, ६ काया-प्राण-संवाद, ७ अनंतलीला, ८. चौबीस गुरुओं की लीला, ९ बारहमासिया, १० भेंट के सवैए, ११. पद, १२. साखियाँ। दादूशिष्यों में संतदास जी को 'बारहहजारी' कहा जाता है जिससे ज्ञात होता है कि कदाचित् उन्होंने बारह सहस्र अनुष्टुप्प्रमाण वाणियों की रचना की होगी, किंतु स्वामी मंगलदास जी ने 'संक्षिप्त इतिहास' में केवल उनकी साखियों, सवैयों तथा उन्नीस लघुग्रंथो के उपलब्ध होने का निर्देश किया है।

दादू जी के पौत्रशिष्यों में से जिनकी इस वर्ग की रचनाएँ प्राप्त होती है अथवा जिनके उल्लेख मिलते हैं उन्हें आलोच्य परिधि के अंतर्गत कुछ अधिक निश्चयात्मक

रूप में माना जा सकता है। गरीबदास के शिष्य केवलदास के पद तथा साखीसाहित्य का उल्लेख राघवदासकृत 'भक्तमाल' (छद ५०३, पृ० २३४) मे है। रज्जब जी के शिष्य खेमदास के १६ रेखतो का प्रकाशन मंगलदास जी ने 'पचामृत' मे कराया है और भूमिका मे इनकी कुछ अन्य रचनाओं का भी सकेत किया है जिनके नाम है : १. शुकसवाद, २. गोपीचद वैराग्यबोध, ३. धर्मसवाद, ४ ज्ञानचिंतावणि, ५. भयानकचितावणि, ६. रविया बिसरे का पद्धतिनामा ७ नसीहतनामा। प्रथम तीनो दोहा चौपाई छदो मे हैं और अन्य केवल चौपाइयों मे। माधूदास के शिष्य खेमदास के पद, 'मुला-पडित-सवाद', 'भगत-पचीसी', रेखते, कुडलियाँ, अरिल्ले (८ अगो में), झूलने तथा सवैए दादू विद्यालय की स० १८३१ वाली पोथी मे पत्र ६११ से २८ पर्यंत मिलते है। रज्जबशिष्य छीतरदास की कुछ रचनाएँ विरक्त साधु भगवानदास (ऊमरावाले) की पोथी मे मिलती है, ऐसा उल्लेख 'पचामृत' की भूमिका मे मिलता है। उनके सवैयो की चर्चा भक्तवार्ता साहित्य के प्रसग मे होगी। छोटे सुदरदास के शिष्य बालकराम के षट्ऋतुकी कवित्तों, मनहर कवित्तो, इदव छदो तथा कुडलियाँ की चर्चा राघवदास जी ने 'भक्तमाल'(छद ५२४) मे की है। 'पचामृत' मे इनके ५५ कवित्त प्रकाशित है और सपादक द्वारा इनका रचनाकाल अठारहवी शताब्दी वि० का पूर्वार्ध या मध्य अनुमानित किया गया है। जनगोपाल जी के शिष्य चैन जी के 'बिहगमनामा रूपक'का उल्लेख 'भक्तमाल' छद ५०६ में मिलता है और उनके 'करुणासार' तथा सवैए पुरोहित जी की उपर्युक्त प्रति मे सकलित है। इससे ज्ञात होता है कि उनका रचनाकाल उक्त पोथी के लिपिकाल स० १७१५ के पूर्व ही रहा होगा। 'सक्षिप्त इतिहास' (पृ० ७६) मे इन रचनाओं के अतिरिक्त उनके ४५ लघुग्रथो का निर्देश है और उनका रचनाकाल सत्रहवी का अत और अठारहवी का आरभ बतलाया गया है। ठाकुरदास के शिष्य दास जी के 'भक्तदीप' (?), 'गुणसागर', 'पथपरीक्षा', 'नाँवमहिमा' तथा पद साहित्या का उल्लेख 'भक्तमाल' छद ५२६ मे है। मगलदास जी ने 'सक्षिप्त इतिहास' मे इन्हे लालदास का शिष्य बताया है और इनकी रचनाओ मे 'गुणनाटक', 'प्रेम-परीक्षा', 'अजामेलचरित्र' का नामोल्लेख किया है; नाटक को मुद्रित भी बताया है और उनका रचनाकाल सं० १७२०–३० निर्धारित किया है। 'भक्तमाल' मे दास जी के पश्चात् नृसिहदास के छप्पयो तथा सवैयो का निर्देश है और साथ ही किन्ही अमरदास नामक पौत्र-शिष्य की भी चर्चा है जिनको राघवदास जी ने सुदरदास जी के समान 'विरह-प्रेम-समिलित चोज अनुप्रास' युक्त पदो का रचयिता कहा है, किंतु खेद है, इनकी रचनाएँ अब उपलब्ध नहीं है। नागरीप्रचारिणी सभा की स० १७५७ की हस्तलिखित प्रति में ध्यानदासकृत 'हरिश्चद्र सत' मिलता है। रचना के लिपिकाल की दृष्टि से ये दादू जी के पौत्रशिष्य ज्ञात होते है। 'दादू संप्रदाय का सक्षिप्त इतिहास' मे इन्हें १६वी शताब्दी का बतलाया गया है जो चित्य है।

दादू जी की पाँचवी पीढ़ी के प्रसिद्ध सत राघवदास की 'भक्तमाल' के अतिरिक्त

अन्य रचनाएँ भी मिलती हैं। स्वामी मंगलदास जी के अनुसार उनकी अन्य रचनाओं के रूप मे १६३७ साखियाँ, ३७० अरिल्लें (१७ अगों मे) और २६ रागों मे १७६ पद तथा १३ अगो मे १२५ कवित्त मिलते है। इसके अतिरिक्त उनके कुछ स्फुट ग्रथ भी है जिनके नाम हैं १. हरिश्चद्रसत, २. ध्रुवचरित्र, ३. गुरु-शिष्य-सवाद, ४. गुरुदत्त रामरज, ५. पद्रह तिथिविचार, ६. सप्तवार, ७ भक्तिजोग, ८ चितामणि ज्ञाननिषेध। उनके टीकाकार चत्रदास के भी ६५२ सवैयो की सूचना मगलदास जी ने 'सक्षिप्त इतिहास' मे दी है और उनका रचनाकाल १९वीं शताब्दी वि० का मध्य बतलाया है।

'समेलन पत्रिका' (४६।३–४ तथा ५०।२–३) मे प्रकाशित श्री अगरचद नाहटा के विवरणानुसार मालवा के स्वामी स्वरूपदास की इन पूर्वज्ञात बारह रचनाएँ काल-क्रमानुसार इस प्रकार है : १ रसरत्नाकर (स० १८८३), २. पाडवयशेदुचद्रिका (स० १८९२), ३. वर्णार्थमजरी (१८९५), ४. हृन्नयनाजन (१८९६) ५ वृत्तिबोध (गद्य, १८९६), ६ तर्कप्रबध (गद्य, १८९९), ७ पाखडखडन (१९००), ८. दृष्टान-दीपिका (गद्य पद्य, १९०१), ९ साधारणोपदेश (गद्य. १९०३), १० सूक्ष्मोपदेश (गद्य पद्य, १९०५), ११. अविवेकपद्धति (गद्य, १९०८), १२ निज्जडबोध पत्रिका (गद्य, १९०९)। 'पांडवयशेदुचद्रिका' मे महाभारत की कथा सोलह मयूखों मे गुफित है। इस ग्रंथ के तीन सस्करण प्रकाशित हो चुके है जिनमे श्री भैरूसिह तोमर का स० १९९० वाला संस्करण विशेष रूप मे उल्लेखनीय है। उनके पाँच अन्य ग्रंथ भी उनके जीवनकाल मे ही इदौर के लीथो प्रेस मे छपे थे, किंतु अब वे उपलब्ध नही है।

'दादू सप्रदाय का सक्षिप्त इतिहास' मे रचनाकारो की जो तालिका दी हुई है उसमे कुछ अन्य रचनाओ का भी पता चलता है जो इस प्रसग मे उल्लेखनीय है। बौली के जयमल चौहान (रचनाकाल अठारहवी शती का आरभ) ने साखियो तथा आठ लघुग्रथो की रचना की थी। हरिसिह (समय नहीं) के लघुग्रथो की सख्या वहां दस दी हुई है। रतिया के हरिदास उतराधा कृत साखियो, शब्दो तथा दो लघुग्रथो का उल्लेख है जिनके नाम है 'धराज जैमल की कथा' और 'भर्तृहरिसवाद'। जगजीवन जी के शिष्य माधोदास ने 'जन-रायलीला', 'मदालसा आख्यान' तथा कवित्तों की रचना अठारहवीं शती के आरंभ मे की। बनवारीदास की शिष्यपरंपरा के निगमदास तथा अन्य परपरा के आत्मविहारी जी के पद तथा 'गूढ़ार्थ अष्टपदी' मात्र मिलते हैं जिनका रचनाकाल १९वी शती का आरभ बताया गया है। बनवारीदास की परपरा के ही उतराधा मत नारायणदास के प्रसिद्ध शिष्य हरिदास जी के पद, कवित्त, साखी, सवैए तथा नसीहतनामा आदि 'दादूसेवक' पत्र के विशेषांक रूप में सं० २००२ में प्रकाशित हो चुके है। इनका रचनाकाल भी १९वी शताब्दी है। उतराधा सत सहजरामकृत 'सुरतिविलास', साखी, पद, कवित्त, रेखते आदि मिलते है (सं० १८७५–७६)। उन्नीसवीं शती के अतिम चरण मे होनेवाले देवादास का 'जबूसर-प्रसंग-वर्णन' नामक एक लघुग्रथ मिलता है।

(ख) **भक्त-वार्ता-साहित्य**--दादूपंथ का भक्त-वार्ता-साहित्य (भक्तमाल तथा परचइयाँ) भी पर्याप्त महत्वपूर्ण है। इस क्षेत्र का सर्वाधिक महत्वपूर्ण ग्रंथ राघवदास-कृत 'भक्तमाल' है जो राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर द्वारा अभी हाल ही मे (स० २०२१) प्रकाशित हुआ है। नाभादासकृत 'भक्तमाल' के पश्चात् संतों का परिचय प्राप्त करानेवाला यही सर्वाधिक उल्लेखनीय ग्रंथ है क्योंकि इसमें सगुण भक्तों के अतिरिक्त निर्गुण भक्तों का भी विस्तृत परिचय दिया गया है। इनका वर्णन उन्होंने चार प्रधान सप्रदायों के अंतर्गत किया है : १. नानकपंथ, २. कबीरपंथ, ३ दादूपंथ, ४ निरजनपंथ। मुद्रित सस्करण में मूल 'भक्तमाल' के ५५५ छंद मिलते है, शेष १२८० छंद इसके टीकाकार चतुरदास के है। चतुरदास का वही महत्व है जो नाभा के टीकाकार प्रियादास का है। जैसा पहले सकेत किया गया, राघवदास ने इसकी रचना सं० १७१७ मे की थी और इसकी चतुरदासकृत टीका, स० १८५७ मे पूरी हुई थी।

किंतु कालक्रमानुसार दादू के शिष्य जग्गा जी तथा जनगोपालशिष्य चैन जी के भक्तमाल प्राचीनतर है। ये दोनों भी उपर्युक्त 'भक्तमाल' के साथ प्रकाशित हुए हैं। यद्यपि जग्गा जी के भक्तमाल का रचनाकाल अभी अज्ञात है, तथापि पूर्वोल्लिखित जनश्रुति के अनुसार स० १६५३ तक ही उनका रचनाकाल मानना उपयुक्त होगा। इस दृष्टि से हिंदी के भक्तमालों मे यह कदाचित् प्राचीनतम सिद्ध हो। मगलदास जी ने 'सक्षिप्त इतिहास' (पृ० ७६) मे उनका रचनाकाल सं० १६५५-८० दिया है जो चिंत्य है। विद्वानों ने नाभादासकृत भक्तमाल के वर्तमान रूपातर का रचनाकाल स० १७१५ के लगभग सिद्ध किया है, क्योंकि उसमे औरंगजेब के समकालीन महाराजा जसवंतसिंह का वर्णन भी मिलता है (डा० ललिताप्रसाद दुबे के 'हिंदी का भक्त-वार्ता-साहित्य १४००-१८०० वि०' शीर्षक अप्रकाशित शोधप्रबंध के आधार पर)। राधावल्लभी सप्रदाय के 'रसिक अनन्यमाल' का रचनाकाल भी स० १७०६ से १७२० तक बतलाया जाता है। अतः जग्गा जी के भक्तमाल का ऐतिहासिक महत्व है, किंतु अभी इसकी और भी छानबीन करने की आवश्यकता है। वैसे इसका आकार बहुत छोटा है—केवल ६९ द्विपदियों का। चैन जी का भी रचनाकाल स० १७१५ से कुछ पूर्व होना चाहिए क्योंकि उनकी कुछ रचनाएँ पुरोहित जी के संग्रह की उपर्युक्त सवत् मे लिपिबद्ध एक पोथी मे मिलती है। उनका 'भक्तमाल' भी केवल ६१ द्विपदियों का है। राघवदास के लगभग सौ वर्ष बाद के चारण ब्रह्मदास नामक एक दादूपंथी सत ने स० १८१६ के लगभग एक 'भगतमाल' की रचना की जिसका प्रकाशन भी उपर्युक्त शोध प्रतिष्ठान द्वारा किया जा चुका है।

बड़े सुदरदास की शिष्यपरंपरा के सत मंगलदास ने १९वीं शती के अंत मे 'सुदरोदय' तथा 'गुरुपद्धति' नामक दो महत्वपूर्ण ग्रंथों की रचना की। मंगलदास जी का संबंध नागा जमात के उदयपुर केंद्र से था। 'सुदरोदय' मे नागा संप्रदाय के प्रवर्तक बड़े सुदरदास तथा उनके परवर्ती महंतों के महत्वपूर्ण कार्यों अथवा युद्धों आदि का प्रामाणिक

चित्रण है। इनकी रचनाएँ उत्कृष्ट कोटि की हैं और छंदो की विविधता छोटे सुंदरदास जी के ही समान आकर्षक है। उपर्युक्त दोनों ग्रंथ अभी अप्रकाशित है।

'परचइयों मे जनगोपालकृत 'श्री दादू जन्मलीला परची' तथा दादूशिष्य माधोदास कृत 'संतगुणसागर' अधिक प्रसिद्ध है। इनमे से केवल पहली का ही मुद्रण हुआ है। मोहनदास मेवाड़ा की 'साधमहिमा' नामक रचना भी मिलती है। किंतु इनका रचनाकाल अभी निश्चित नही है। बहुत सभव है, ये स० १७०० के कुछ पूर्व की सिद्ध हो जायँ। रज्जबशिष्य छीतरदास तथा जनगोपालशिष्य चैन जी के 'दादू जी के भेट के सवैए' मिलते हैं। इनमे से छीतर जी के सवैए 'पचामृत' मे प्रकाशित है और चैन जी के सवैए स० १७१५ की हस्तलिखित प्रति मे मिलते है। अन्य स्फुट ग्रथो मे 'भक्तबिड़दावली' तथा 'नाममाला' संज्ञक रचनाएँ उल्लेखनीय है। इनमें प्रसिद्ध दादूपथी सतो के नाम ग्राम मिलते है। पहले प्रकार की रचनाएँ बौलीवाले जयमल चौहान, हरीदास (हापा ?) तथा ठाकुरदास के शिष्य दास जी को मिलती है। इनमे से पहली का निर्देश 'सक्षिप्त इतिहास (पृ० ७७) मे है और शष दोनो स० १८४५ की हस्तलिखित प्रति मे सगृहीत है। 'नाममाला' संज्ञक रचनाएँ मोहनदास मेवाडा, गरीबदासोत लालदास (सं० १८३५) और हिरदैराम (१९वीं शती) द्वारा प्रणीत मिलती है। इन सबका उल्लेख 'संक्षिप्त इतिहास' मे किया गया है। सं० १८३१ की दादू विद्यालय वाली प्रति मे पत्र ६४८–४९ पर 'दयाल जी के प्रसंग' तथा 'प्रसगलोला' शीर्षक दो लघु रचनाएँ मिलती है कितु उनके रचनाकारो का पता नही चलता। प्रसिद्ध परचई लेखक अनतदास को स्वामी मगलदास जी ने 'संक्षिप्त इतिहास (पृ० ८१) मे दादूपथी रचनाकारो मे ही सम्मिलित किया है और नामदेव, कबीर, रैदास, पीपा तथा सेऊ समन सबधी उनकी पाँच परचइयो का निर्देश किया है किंतु उनके दादूपथी होने में इस बात से सदेह किया जा सकता है कि अन्य अनेक सतो की परचइयाँ लिखनेवाले अनतदास जी ने अपने ही संप्रदायप्रवर्तक दादू जी के सबध मे क्या नही कुछ लिखा। मंगलदास जी द्वारा निर्धारित उनका समय (अठारहवी शताब्दी) भी विवादास्पद है, क्योकि अनतदास ने स्वय अपनी किसी परची का रचनाकाल 'सबत सोलह सै पैताला' अर्थात् १६४५ वि० बतलाया है।

(ग) अनुवाद तथा सकलन साहित्य—इस दिशा मे सर्वाधिक प्रशसनीय कार्य रज्जब जी (मृ० स० १७४६) का है जिन्होने लगभग ६५ सतो तथा नाथ योगियो की वाणियो का सकलन १४२ अंगो में 'सर्बंगी' या 'सर्वांगयोग' नामक ग्रथ मे किया। सम्पूर्ण पोथी मे लगभग २७०० साखियाँ, ८०० पद, पौने दो सौ सस्कृत श्लोक (श्रीमद्भागवत, भगवद्गीता, नीतिशतक आदि से), ७३ फारसी बैत तथा कतिपय कवित्त और अरिल्ल सगृहीत है। 'सर्बंगी' के सबध मे रज्जब जी ने निवेदन किया है—

आँनी गिरिवर ग्याँन तें, सबद सिला एहि काजि।
रज्जब जोड़ी राज गुरु, सक्ति समद सिर पाजि॥

ततबेत्ता तरवर भले, मतमधु आँन्यां छाँनि।
सर्बंगी माँनूं सहत, प्राँण पुष्ट रस पाँनि॥

रज्जब जी के ही समकालीन जगन्नाथदास जी ने अपना 'गुणगंजनामा' संकलन तैयार किया जिसमे १७९ अगो मे लगभग साढ़े पाँच हजार साखियाँ अथवा उन्ही से मिलते जुलते छोटे छोटे छद मिलते है। इसमे सकलित कवियो की सख्या 'सर्बगी' के समान ही है, किंतु लघु छंदों के कारण इसका आकार उससे छोटा है।

उपर्युक्त दोनो ग्रंथो मे गोरखनाथ से लेकर दादू के समय तक के अनेक संतों तथा योगियो की रचनाओ का सुरुचिपूर्ण सकलन तैयार कर दोनों ही संतो ने अपनी व्यापक दृष्टि का परिचय दिया। किंतु अभी तक ये दोनों ही ग्रथ प्रकाशित नही हो सके हैं। इनकी अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ राजस्थान के कुछ भंडारों और काशी नागरीप्रचारिणी सभा तथा पूना विश्वविद्यालय के पुस्तकालयो मे सुरक्षित हैं।

स्वामी मगलदास जी ने 'संक्षिप्त इतिहास' में जमात उदयपुर के स्वामी चंपाराम जी के १३०० छदोंवाले 'क्षीरार्णव' नामक सकलन की सूचना दी है जिसका प्रणयन सं० १८९६ मे हुआ था। यह ग्रंथ भी अभी अप्रकाशित है।

अनुवाद ग्रथो म सतदास के शिष्य चत्रदास का 'भागवत एकादश स्कंध भाषा', जगन्नाथदास के शिष्य दयालदास का 'नासिकेत आख्यान' (स० १७३४) तथा लालदास नामक एक परवर्ती सत द्वारा लिखित 'इतिहास भाषा' (?) उल्लेखनीय है। पहले का निर्देश 'भक्तमाल' (छद ५२५) मे है, दूसरे का 'संक्षिप्त इतिहास' में और तीसरा सभा की स० १८७२ वाली हस्तलिखित पोथी में मिलता है। उन्नीसवी शताब्दी के कृपारामकृत 'कीमियासार' शीर्षक गद्यग्रथ का भी उल्लेख इस प्रसग मे किया जा सकता है जो किसी फारसी ग्रंथ का भाषातर है।

(घ) **काव्यशास्त्रीय तथा संगीतशास्त्रीय ग्रंथ**---दादूपथ मे रीतिशैली की भी कुछ रचनाएँ मिलती है। इनमे से चार विशेष रूप मे उल्लेख्य है। 'वृत्तविनोद' तथा 'चमत्कारचद्रिका' की रचना छोटे सुदरदास की शिष्यपरपरा के रसपुंज जी ने सं० १८७८ के लगभग की थी। रसपुज जी का महत्व इसी बात से स्पष्ट है कि उन्होने निश्चलदास जैसे विद्वान् को पिगलशास्त्र की शिक्षा दी थी। 'रसरत्नाकर' की रचना स्वामी स्वरूपदास जी ने सीतामऊ के महाराजकुमार रतनसिह के अध्ययनार्थ सं० १८८३ मे की थी जिसका उल्लेख पहले भी हो चुका है। 'छदरत्नमाला' भी उन्ही के समकालीन रतनभजन जी की कृति है। सगीतशास्त्रीय रचनाओ मे केवल 'नागरलता' उल्लेखनीय है जिसका प्रणयन मोहनदास मेवाडे की शिष्यपरपरा के संत मधुपदास ने सं० १८६७ मे किया था। ये सगीत के विशेषज्ञ थे और इस ग्रंथ मे इन्होने गेय पद्यों का विभिन्न रागो के अनुसार सग्रह किया है।

(ङ) **दार्शनिक साहित्य**--इस परंपरा का सर्वप्रथम ग्रंथ सुंदरदासकृत 'ज्ञान समुद्र' (सं० १७१०) है जिसके पाँच अध्यायों में क्रमशः गुरु, नवधा भक्ति, अष्टांगयोग, सेश्वर सांख्य मत एवं अद्वैत ब्रह्मज्ञान का पांडित्यपूर्ण निरूपण है। दादूपंथियों की अभिरुचि आरंभ से ही अद्वैत वेदांत के पठनपाठन की ओर रही है। इस प्रवृत्ति की चरम परिणति हमें निश्चलदास (मृ० १६२०) में देखने को मिलती है जिनके 'विचारसागर', 'वृत्तिप्रभाकर' तथा 'मुक्तिप्रकाश' नामक ग्रंथ (तीनों प्रकाशित) न केवल इस संप्रदाय में, प्रत्युत समस्त भारतीय दर्शनसाहित्य मे विशिष्ट स्थान रखते है। 'विचारसागर' खड़ीबोली पद्य तथा गद्य में लिखा गया है। इसमें पारिभाषिक वेदांत का न केवल गहरा अध्ययन है, प्रत्युत उसकी नई दिशाओं मे उल्लेखयोग्य विकास भी दीख पड़ता है। किंतु यह ग्रंथ साधारण जिज्ञासुओं के लिये है। प्रौढ़ चिंतकों के लिये निश्चलदास जी ने 'वृत्तिप्रभाकर' खड़ीबोली गद्य मे लिखा। इसमे एक ओर तो भामतीकार वाचस्पति मिश्र, पंचदशीकार विद्यारण्य स्वामी आदि मौलिक ग्रंथकारों के कतिपय सिद्धांतों को अद्वैत परंपरा मे विसंगत दिखलाया गया है और दूसरी ओर नव्य न्याय के प्रमुख प्रवर्तकों और आचार्यों के कुछ सिद्धांतो का अद्वैतसंमत खंडन किया गया है। डायसन और स्वामी विवेकानंद से काफी पहले निश्चलदास जी ने वेदांत की व्याख्या आधुनिक भाषा और शैली मे की। स्वामी विवेकानद ने पिछली तीन शताब्दियों की समस्त भारतीय पुस्तकों मे 'विचारसागर' को सर्वाधिक महत्वपूर्ण घोषित किया है (कंप्लीट वर्क्स, ४।८८१)। श्री संगमलाल पांडेय ने निश्चलदास को आधुनिक वेदांत का जनक बतलाया है ('हिंदी अनुशीलन', धीरेंद्र वर्मा विशेषांक, पृ० २१५-२४)। निश्चलदास जी ने कठोपनिषद् और ईशावास्योपनिषद् की संस्कृत व्याख्या भी लिखी है।

इतर संप्रदायों के साहित्य की सुरक्षा

उपर्युक्त संक्षिप्त रूपरेखा से यह ज्ञात हो जाता है कि दादू जी के पश्चात् उनके शिष्य प्रशिष्यों ने भी उत्कृष्ट साहित्यनिर्माण का श्रेयस्कर कार्य किया। इसके अतिरिक्त उनकी एक अन्य अविस्मरणीय साहित्यिक सेवा यह है कि उन्होंने सर्वांगी मनोवृत्ति का परित्याग कर इतर संप्रदायों के साहित्य की सुरक्षा भी मनोयोग तथा महानुभूतिपूर्वक की। दादूपंथियों ने संतसाहित्य के विशाल संग्रहग्रंथ सुंदर नागराक्षरों मे लिखे और पुस्तकलेखन की ऐसी सुव्यवस्थित परंपरा चलाई जिससे लुप्तप्राय प्राचीन साहित्य की रक्षा हो सकी, अन्यथा प्राचीन संत लोग अपनी वाणियों को लिपिबद्ध कराने की अधिक चिंता नही करते थे और इस मनोवृत्ति के कारण उनकी वाणियाँ या तो लुप्त हो रही थी या फिर विकृत हो रही थी। निरंजनी संप्रदाय मे भी संत साहित्य के बड़े बड़े गुटके मिलते है किंतु वहाँ यह परंपरा बहुत बाद में, अमरदास जी के समय से, कदाचित् दादूपंथियों के ही अनुकरण पर, आरंभ हुई। सिक्खों के 'गुरु ग्रंथसाहब' मे भी इतर संप्रदायों का साहित्य उतने परिमाण मे नही मिलता जितना दादूपंथी ग्रंथों मे मिलता है। इस संप्रदाय मे पंच-

वाणी की भी परंपरा मिलती है जिसमें दादू जी के अतिरिक्त कबीर, नामदेव, रैदास तथा हरदास की वाणियाँ संकलित रहती हैं और इन वाणियों की पाठपरंपराएँ काफी प्राचीन है। आज भी दादूपंथियों की सर्वग्राहिता तथा दृष्टि की व्यापकता अपेक्षाकृत अधिक प्रशंसनीय है।

दादूपंथी दर्शन तथा साधना

दादूपथ आरभ में 'ब्रह्म संप्रदाय' या 'परब्रह्म संप्रदाय' के नाम से प्रसिद्ध था। यह नामकरण स्वत. दादू का किया हुआ हो, इस बात के पुष्ट प्रमाण तो नही मिलते, किंतु सुंदरदास जी की रचनाओ में इस नाम का प्रयोग स्पष्ट रूप से कई स्थलो पर मिलता है। 'गुरुसप्रदाय' नामक ग्रंथ में उन्होंने बतलाया है कि उनके सप्रदाय का आदिगुरु स्वतः परब्रह्म है, अतः उसका नाम 'ब्रह्म संप्रदाय' या 'परब्रह्म सप्रदाय' पडा। उन्होने अन्यत्र भी इसकी चर्चा करते हुए इस बात पर अधिक बल दिया है कि जब दो विरोधी दल आपस मे लड़ रहे थे तभी ब्रह्मस्वरूप गुरु दादूदयाल ने 'परब्रह्म संप्रदाय' को सर्वत्र प्रचारित किया (सुंदर ग्रथावली, पृ० २४४)। इस नाम की अर्थवत्ता इस बात से भी पूर्णतया स्पष्ट है कि दादू जी के अनुयायियों ने अद्वैत वेदात के ही सिद्धांतो का मुख्य रूप से प्रतिपादन किया है। रज्जब तथा सुदरदास जी की रचनाओं में इस प्रयत्न का श्रीगणेश हुआ और उसकी चरम परिणति निश्चलदास जी के ग्रथो मे हुई जिन्होंने इसको सर्वधर्मसमन्वयवाद के शीर्षबिंदु तक पहुँचा दिया और यही दादू जी का भी चरम लक्ष्य था, क्योंकि पक्षविशेष की दृष्टि से ब्रह्म को देखना दादू जी के अनुसार उसको खड खड करके बाँट देना है--

> खंड खंड करि ब्रह्म को, पखि पखि लीया बाँटि।
> दादू पूरण ब्रह्म तजि, बँधे भरम की गाँठि॥
>
> --दादूवाणी, १३।५०

निश्चलदास जी ने भी एक ओर तो यह निश्चय किया कि ब्रह्मविद् की वाणी का नाम ही 'वेद' है, वह चाहे जिस भाषा मे हो (विचारसागर, पृ० ८०) और दूसरी ओर तत्वज्ञान का अधिकारी उन्होंने मनुष्यमात्र को घोषित किया, चाहे वह शूद्र या स्त्री हो या किसी उच्च वर्ग का हो। इस प्रकार एक ओर तो उन्होने अद्वैत वेदात पर से सस्कृत का एकाधिकार अमान्य सिद्ध किया और दूसरी ओर वेदात को जनतांत्रिक तथा साम्यवादी रूप दिया। पिछली कई शताब्दियों मे शूद्रो को केवल भक्ति का अधिकार था, तत्वज्ञान का नही। निश्चलदास जी ने उसके द्वार सबके लिये उद्‌घाटित किए। इसके अतिरिक्त तत्वदर्शन की दृष्टि से भी उनकी अनेक मौलिक उपलब्धियाँ है और उन्ही का केवल संकेत मात्र यहाँ किया जा रहा है, क्योंकि अद्वैत वेदात के सभी सिद्धातो की चर्चा न यहाँ शक्य है और न व्यावहारिक।

निश्चलदास जी ने तत्वज्ञान की तीन विधियाँ बतलाई हैं--तत्वदृष्टि, अदृष्टि तथा तर्कदृष्टि की विधियाँ। इनका वर्णन उन्होंने 'विचारसागर' की क्रमशः चतुर्थ, पंचम तथा षष्ठ तरगो में किया है। इन्हें पाश्चात्य दर्शन की शब्दावली मे क्रमशः मेटा-

फिजिकल, मिस्टिकल तथा लाजिकल मेथड कहा जा सकता है। पहला वस्तुतः ज्ञानमार्ग है, दूसरा उपासनामार्ग तथा तीसरा समीक्षात्मक मार्ग। उन्होंने तत्वज्ञान की ये तीन वैकल्पिक पद्धतियाँ मानी है और उनकी स्थापना है कि इनमें से किसी एक का अवलंबन लेकर तत्वज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

शंकर के परवर्ती अद्वैतवादियों में तत्वदृष्टि तथा तर्कदृष्टि की अपेक्षा श्रद्दृष्टि की ही अधिक मान्यता है। इससे उनमें सगुणोपासना स्वीकृत हुई और फिर उनमें शैव या वैष्णव संप्रदायों का विभाजन हो गया। अप्पय दीक्षित जैसे अद्वैतवादी भी सांप्रदायिक थे। निश्चलदास जी ने सांप्रदायिक धारणाओं का मूलोच्छेद कर अद्वैत को सर्वधर्मसमन्वयवादी बनाया। उन्होंने बताया कि वस्तुतः विष्णु, शिव आदि के दो दो रूप होते है—कारणब्रह्म और कार्यब्रह्म। प्रत्येक संप्रदाय में उसका इष्टदेव कारणब्रह्म बनाया जाता है और दूसरे संप्रदायों के इष्टदेव कार्यब्रह्म माने जाते है। इस प्रकार विभिन्न संप्रदायों में अपने कारणब्रह्म की प्रशंसा तथा दूसरों के कार्यब्रह्म की निंदा मिलती है। वास्तव में यह तर्कदृष्टि ऐसी है जो तनिक भी सांप्रदायिक नही। इसी दृष्टि से पहले कबीर, दादू आदि ने और फिर बीसवी शताब्दी में गांधी तथा विनोबा भावे ने सर्वधर्मसमन्वय का प्रयत्न किया। वास्तव में यही विश्वधर्म है।

मधुसूदन सरस्वती के प्रस्थानभेद की शैली पर निश्चलदास ने समस्त शास्त्रों तथा दर्शनों का अद्वैतवाद में समन्वय किया है और उसे समस्त शास्त्रों का चूडामणि बनाया है। उनके अनुसार समस्त शास्त्रों का लक्ष्य मोक्ष है, मोक्ष का साधन ज्ञान है और ज्ञान वस्तुतः अद्वयबोध है। भेदबुद्धि यथार्थ नही है।

निश्चलदास ने जीवब्रह्म और जगद्ब्रह्म के संबंधों पर भी अच्छा प्रकाश डाला है जिनके संबंध में अधिकांश वेदांती भेद नहीं करते, किंतु ऐसा करना निश्चलदास के अनुसार अद्वैतवाद के अनुकूल नहीं है (वृत्ति प्रभाकर, पृ० ३४६--५१ तथा विचारसागर, पृ० ३८५)।

इस प्रकार आधुनिक भाषा में सर्वप्रथम अद्वैतवाद का सयुक्तिक और असांप्रदायिक तथा शास्त्रीय विवेचन प्रस्तुत करने के नाते निश्चलदास को आधुनिक वेदांत का जनक मानना सर्वथा उचित ही है।

साधन की दृष्टि से दादूपंथी संत दादू के ही सिद्धांतों से प्रभावित है और स्वतः दादू कबीर की सहज साधना से अत्यधिक प्रभावित है। इस दृष्टि से उनका 'कायाबेली' नामक ग्रंथ उल्लेखनीय है जिसमें उन्होंने यह प्रतिपादित किया है कि काया में ब्रह्मांड की समस्त विभूतियाँ वर्तमान हैं और साथ ही उनका कर्ता भी उसी में स्थित है जिसकी प्राप्ति का एकमात्र साधन है मन की वृत्तियों को अंतर्मुखी करना। मन के स्थिरीकरण से ही जीवन्मुक्ति अथवा सहजदशा प्राप्त होती है जिसके संबंध में सुंदरदास कहते है—

निज स्वरूप कौ जाँनि अखंडित, ज्यों का त्यों ही रहिए।
सुंदर कछू ग्रहै नहिं त्यागै, वहै मुक्तिपद कहिए॥

—सुंदर ग्रंथावली, पृ० ८७६।

अन्य मतो की भाँति दादूपंथियो को भी मृत्यु के अनतर मुक्तिप्राप्ति मे विश्वास नही है। सुंदरदास, रज्जब आदि के जीवनवृत्त से ज्ञात होता है कि उन्होने कई वर्ष सुरति-शब्दयोग की साधना मे बिताए थे, किंतु यह साधना व्यक्तिगत होते हुए भी लोककल्याण की भावना से प्रेरित थी। पं० परशुराम चतुर्वेदी ने (उ० भा० की संतपरपरा, पृ० ४५१) दादू की साधना का समाहार चार शब्दो मे किया है। वे हैं—सहज, समर्पण, सुमिरण और सेवा। परवर्ती दादूपंथियों की भी साधना का मूल स्वर यही है। इनमें भी सेवातत्व दादूपंथी साधना मे वस्तुत सर्वाधिक प्रधान है।

निरंजनी संप्रदाय

संत परपरा मे तथा इतर मतों में भी 'निरजनी' नाम के अनेक संप्रदाय हो चुके हैं। इसी नाम के एक सिक्ख संप्रदाय का उल्लेख पीछे हो चुका है। आचार्य क्षितिमोहन सेन ने उडीसा के एक निरजनी सप्रदाय की चर्चा की है जिसका प्रभाव उन्होंने मिलहट के आस-पास सत्रहवी शताब्दी मे प्रचलित अनेक सतसप्रदायो पर माना है। प्रो० जी०एस० घुरये ने 'इडियन साधुज' (पृ० ११७–१८) मे एक एक निरजनी अखाड़े की चर्चा की है जिसकी स्थापना उनके अनुसार स० ६६१ मे कच्छ प्रदेश के माडवी नामक स्थान मे हुई और जिसका एक प्रधान केंद्र प्रयाग में भी है। किंतु प्रयाग का निरजनी अखाड़ा किसी सत सप्रदाय से सबद्ध नही है। यहाँ जिस निरजनी सप्रदाय की विवेचना की जा रही है उसका सबध मुख्यत राजस्थान से है और यह लगभग निश्चयात्मक रूप मे कहा जा सकता है कि उसपर उपर्युक्त संप्रदायो मे से किसी का भी प्रभाव नही है। वह मूलत नाथ सप्रदाय से प्रभावित है।

दर्शन तथा साधना

निरजनी सत तात्विक दृष्टि से कबीर की भाँति अद्वैतवादी है। जीव, ब्रह्म तथा माया आदि के सबध मे उनके विचार प्राय कबीर से मिलते जुलते है। निरजनी लोग भी परमात्मा को एक और सर्वव्यापी मानते है, उदाहरणार्थ—

सब घट आतम एक है, भिन्न भिन्न भासंत।

(तुरसी, आतम परमातम परिकरन)

नमो सर्व व्यापीक थूल सूछम सब माँहीं। (मोहनदास, छप्पय)

उनके अनुसार जीव परमात्मा का एक अश है और तुरसी की दृष्टि मे यह भेद इतना ही है कि परमात्मा प्रकृति अथवा माया से परे है, किंतु जीव उसमे लिप्त है। जीव मे 'अबध' (परमात्मा) का अंश कम है और 'बंध' (माया) का अंश विशेष है। वह स्वभाव

से तो निर्लिप्त अवश्य है, किंतु गुणों के संसर्ग में बँध जाता है। इसीलिये तुरसी कहते हैं : 'जीव सीव सो भिन्न है, समिलित करे न जाहि।' अवतारवाद का खंडन अन्य संतों की भाँति निरंजनियों ने भी किया है। माया को निरंजनी संत भी अद्वैतवादियों की भाँति अनादि मानते हैं उनके अनुसार अनादि ब्रह्म और अनादि माया के संपर्क से ही जीव की उत्पत्ति होती है :

> अनादि माया ब्रह्म की अपनै सहज सुभाइ।
> उपजावै संसार कूँ, पुरुष संपरक पाइ॥ (तुरसी)

ब्रह्म से उत्पन्न न होने पर भी माया उसी प्रकार ब्रह्म का अंश है जैसे छाया वृक्ष का अंश है जिसे वृक्ष नहीं बनाता। अन्य संतों की भाँति निरंजनी भी माया के दो रूपों—कनक, कामिनी—की विगर्हणा करते हैं।

साधना की दृष्टि से निरंजनी पंथ गोरखनाथ तथा कबीर से प्रभावित है किंतु उसपर गोरखनाथ का प्रभाव अपेक्षाकृत अधिक ज्ञात होता है। इसके संस्थापक हरिदास ने अपनी रचनाओं में 'गुरु हमारे गोरख बोलिए', 'जन हरिदास नाथ का बालक रह नाथ की छाया' आदि अनेक उक्तियों द्वारा गोरखनाथ से प्रेरणा प्राप्त करने का स्पष्ट संकेत किया है। कबीर के प्रति भी उन्होंने श्रद्धासमन्वित भाव व्यक्त किया है। वे कहते हैं कि बहुत सोच विचारकर मैंने कबीर का 'करड़ा पंथ' (कठिन मार्ग) स्वीकार किया है। अन्य निरंजनी संतों ने भी कबीर के प्रति पूर्ण श्रद्धा दिखलाई है। उदाहरणतया मोहनदास के संबंध में राघवदास कहते हैं : 'राघौ करै हठ चालण दे नहिं, नाम कबीर की देत दुहाई।' किंतु परवर्ती निरंजनियों की वाणियाँ देखने पर ज्ञात होता है कि उनकी साधनाप्रक्रिया अपेक्षाकृत नाथपंथ के अधिक निकट है। उनमें हठयोग का वर्णन अधिक निष्ठा के साथ मिलता है।

श्री मंगलदास जी स्वामी ने उपर्युक्त ग्रंथ की भूमिका (पृ० ८०) में बतलाया है कि डीडवाने में हरिदास जी की समाधि के निकट जागानदी नाम से नाथों का एक प्राचीन स्थान है जिसको निरंजनी संत बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक मान्यता प्रदान करते रहे। उनका यह अनुमान बिलकुल ठीक है कि उसी से संबद्ध किसी नाथयोगी द्वारा स्वामी हरिदास साधनामार्ग में दीक्षित हुए होंगे। अतः स्वाभाविक रूप से समस्त निरंजनी संतों की वाणियों में षट्चक्रभेदन, कुंडलिनी जागरण, मन स्थैर्य के लिये प्राणनिरोध तथा इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना का एकत्रीकरण आदि के वर्णन प्रचुरता से मिलते हैं। इन संतों ने कबीर की भाँति अपनी बहिर्मुखी वृत्तियों को अंतर्मुखी करने पर अत्यधिक बल दिया है। इसी को वे 'उलटा पंथ' या 'उलट धार' कहते हैं। तुरसी के अनुसार सीधा चलनेवाले विषयवासना के नद में बह जाते हैं—

तुरसी यह उलटा पथ, सूधा पथ नाहीं।
सूधौ चलै सु बहि चलै, बिषया मद माँहीं।

(सूषिम मारग परिकरन)

सेवादास भी इसी प्रकार उलटी डुबकी लगाने को कहते है। इस दृष्टि से डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल के अनुसार निरजनी सप्रदाय को गोरखपथ तथा कबीरपथ के बीच की कड़ी मान सकते है, किंतु उनकी यह स्थापना कि उसे सतसंप्रदाय से पृथक् मानना चाहिए, मान्य नही प्रतीत होती, क्योंकि उसमे यद्यपि हठयोग को प्रधानता दी गई है, तथापि वह योग कबीर की ही भाँति भक्तिसमन्वित योग है। उसमें 'सुमिरण' का महत्व अक्षुण्ण है, यथा तुरसी कहते है :

जैसी सुरति बिषयी पर नारी। लोभी परधन हरन मझारी॥
जैसी सुरति नटनी की होय। बाँस बरत चित राषै सोय॥
ऐसी सुरति राँम सौ होय। तुरसी सुमिरन कहिए सोय॥

निरजनी साहित्य मे प्रेम तथा विरहपरक ऐसी अनेक उत्कृष्ट पक्तियाँ मिलती है जिनका नाथ साहित्य मे नितात अभाव है। उदाहरणतया तुरसी का निम्नलिखित पद द्रष्टव्य है---

हरि बिन ए दिन जात दुपारे
सकल सिंगार सेज सुष त्यागे जा दिन ते भए न्यारे।
सुँन री सषी स्रावन रुति आई, बरषि सबै बन पारे।
हमरे तन अजहूँ नहिं उलहत, विरह अगिनि केजारे॥...
आरतिवंत आस चात्रिग लौ, सारी रैनि पुकारे।
जन तुरसी प्रभु प्रीति जानिकै, घन लौ आनि गलारे॥

--डा० भगीरथ मिश्र . निरजनी सप्रदाय, पृ० १६१।

मन, पवन, विरह और 'विंद' के योग से ही तुरसी आनद की उत्पत्ति मानते है--

ज्यूँ सराव पावक पुनि बाती। तेल भराय जु जोबै राती॥
यूँ मन पवन बिरह अरु बिंद। भए एकत्र उपजै आनंद॥

---वही, पृष्ठ ७०।

उन्होंने तो सगुणी नवधा भक्ति की भाँति निवृत्तिप्रधान निर्गुणी नवधा भक्ति का प्रतिपादन किया है।

तुरसी ने इस प्रकार के आनंद रसास्वादी साधको की अनेक कोटियो का वर्णन किया है। उनके अनुसार प्रथम प्रकार का साधु 'जीवन्मुक्त' है जिसकी कामनाएँ समूल नष्ट हो चुकी हो। दूसरे प्रकार के साधु 'कुसलीविदेह' अवस्था में होते है और गुण दोष की दृष्टि नष्ट कर समस्त ससार का क्षेम देखते है, परमात्मा के साथ आटा नमक की भाँति मिले रहते है। तीसरे प्रकार के साधु 'विदेह' होते है जिनकी अवस्था बड़ी बेढब होती है। उनके अनुसार विदेह साधुओ की बात पूछने का अधिकार सबको नहीं

होता । वह विश्वात्मा के साथ इस प्रकार मिल जाता है जैसे वाष्प गलकर पानी हो जाता है । चौथे प्रकार के संत 'सिल्ला' कोटि मे रखे जा सकते है जो शिला के ही समान सुख दुःख, आतप वर्षा आदि के प्रभाव से मुक्त होते है । पाँचवे प्रकार के साधुओं को वे 'समिता' की कोटि मे रखते है जिसकी विशेषता यह है कि 'कोऊ चंदन लेपन करौ, काऊ उडावौ धूरि', किंतु ये दोनों 'समिता' सिद्ध साधकों के लिये समान है । विरह और हृदयमंथन से प्राप्त हुई निष्कलुषता के पश्चात् साधक इन्ही दशाओं मे से किसी को प्राप्त होता है ।

रचनाएँ तथा रचनाकार

आलोच्य काल के निरंजनी संतो की जिन रचनाओं का पता अब तक चल सका है, उनकी संक्षिप्त रूपरेखा रचयिताओं के परिचय सहित यहाँ प्रस्तुत की जा रही है ।

१. **तुरसीदास**—राघवदास के अनुसार तुरसीदास आत्मजयी, मायात्यागी, ब्रह्मजिज्ञासु तथा पूर्ण तत्ववेत्ता थे । उनके अखाडे मे करणी की ही शोभा थी—"राघौ कहै करणी जित सोभित देखो हो दास तुरसी को अखारौ ।" इनका निवासस्थान अनेक सूत्रों से शेरपुर विख्यात है । डा० बडथ्वाल ने 'इतिहाससमुच्चय' नामक एक हस्तलिखित ग्रंथ के लिपिकार को इनसे अभिन्न माना है । उपर्युक्त प्रति की पुष्पिका इस प्रकार है "इति श्री महाभारथे इतिहाससमुच्चये तैतीसमो अध्याय (३३) संवत १७४४ वृषे मास कार्तिक सुदी ७ वार सनीवासरे । नगर साधार सुथाने सुभमस्तु । लिषते स्वामी जी श्री श्री श्री श्री १०८ ऊधोदास जी को सिष्य स्वामी जी श्री श्री श्री श्री १०८ श्री श्री लालदास को सिष्य तुलसीदास बाचे जिसका राम राम ।" प० परशुराम चतुर्वेदी तथा डा० भगीरथ मिश्र ने डा० बड्थ्वाल के इस साक्ष्य को प्रामाणिक मानकर तुरसी को प्रसिद्ध गो० तुलसीदास का समकालीन माना है, किंतु उपर्युक्त पुष्पिका मे उल्लिखित साधार स्थान के कारण इस प्रतिलिपिकार को तुरसीदास निरंजनी से अभिन्न मानने मे आपत्ति हो सकती है, यद्यपि उसमे दिया हुआ समय असंभव नही प्रतीत होता । डा० मिश्र के अनुसार डा० भवानीशंकर याज्ञिक ने बडथ्वाल जी को सूचित किया था कि उनके पास तुरसी के हाथ की लिखी और भी सामग्री है और दोनों के सादृश्य के आधार पर 'इतिहाससमुच्चय' की प्रति को निश्चित रूप से इन्ही तुरसी द्वारा लिपिबद्ध माना जा सकता है, किंतु बिना मूल सामग्री का सावधानीपूर्वक निरीक्षण किए ऐसे महत्वपूर्ण निर्णय पर पहुँच जाना निरापद नही कहा जा सकता ।

तुरसीदास की रचना सेवादास को छोडकर निरंजनी संप्रदाय मे सबसे अधिक विस्तृत है । इनकी चार हजार से अधिक साखियाँ, ४६१ पद (२६ रागों मे), चार लघुग्रंथ (१. चौअक्षरी, २. करणीसार, ३. साधुसुलच्छन, ४. तत्वगुणभेद), १८ श्लोक तथा १० सबदियाँ मिलती है । डा० मिश्र की पुस्तक में इनकी १०० साखियाँ तथा

१०० पद है। मगलदास जी ने १२ श्लोक, १०६ साखी चौपाइयाँ, १७ पद तथा 'तत्वगुण-भेद' के अतिरिक्त शेष तीनो लघुग्रंथ प्रकाशित कराए है।

सिद्धानविवेचन आदि की दृष्टि से तुरसी ने निरंजनी संप्रदाय के लिये वही महत्व-पूर्ण कार्य किया जो दादूपथ के लिये सुदरदास ने किया।

२. **जगजीवनदास**--राघवदास के अनुसार जगजीवनदास भादवे के थे। इनके नाम से अब एक पृथक् उपसप्रदाय हो गया है जिसके अनुयायी अपने को जगजीवनपंथी कहते है, किंतु इनके आचार विचार निरजनी सतो से मिलते जुलते हैं। इनके थाँभे से सबधित कुछ स्थान अब भी मौजूद है जिनमे नागौर प्रमुख है। अब तक इनके केवल दो लघुग्रथो (१. चितामणि : ४० साखियाँ तथा २. प्रेमनामा : ५६ साखियाँ), ५६ पदो और दो चाद्रायणों का पता है जिनमे से दोनो ग्रथ तथा २४ पद और दो साखियाँ मंगलदास जी के उक्त ग्रथ मे प्रकाशित है।

३. **ध्यानदास**--मगलदास जी के अनुसार इनका समय सोलहवी शताब्दी का उत्तरार्ध तथा सत्रहवीं का पूर्वार्ध होना चाहिए। राघवदास ने इन्हें म्हार का और प्यारेराम ने सामोद का निवासी बतलाया है। भाऊदास ने अपनी गूदड़ी मे इनका निर्देश 'अवधूत' विशेषण के साथ किया है। यद्यपि राघवदास ने इनके कवित्तो, साखियों तथा पदो का उल्लेख किया है तथापि मगलदास जी को अभी तक इनके दो लघुग्रथ (गुण-माया-सवाद तथा गुणादिबोध), सौ से अधिक चाद्राइणा तथा दो पद और दो साखियाँ ही प्राप्त है जिनमे से उन्होंने उक्त दोनो ग्रथ, २८ चांद्राइणा तथा २ पद प्रकाशित कर दिए है।

४ **मोहनदास**--राघवदास तथा प्यारेराम के साक्ष्य के अनुसार ये बारह प्रधान निरजनी महतो मे एक है तथा भाऊ जी के अनुसार हरिदास के शिष्य है। 'भाट की बही' के आधार पर मगलदास जी इनका देहावसान स० १६०६ मे मानते है, किंतु राघवदास (स० १७१७) ने इनका वर्णन ऐसी शैली मे किया है जिससे ये उनके समकालीन लगते है---राघो करैं हठ चालन दे नहिं नाम कबीर की देत दुहाई। भक्तमालो में इनका स्थान देवपुर बताया गया है, किंतु इनका थाँभा डीडवाने मे हो है। इनकी परंपरा मे एक महात्मा बालकिसन जी (लोटन जी, मृ० सं० १८१४) हो गए है जिनके नाम पर यह स्थान 'लोटन जी का बाडा' नाम मे प्रसिद्ध है। इनके शिष्य जैरामदास ने स० १८६५ में इनकी 'छतरी' का निर्माण कराया। इनकी रचनाओ की एक प्रति (लिपिकाल स० १८८२) श्री अगरचद नाहटा (बीकानेर) के अभय ग्रथागार म है जिसमें पाँच अगो मे एक हजार साखियाँ, चार अगो म साठ चाद्रायण तथा आठ रेखते, दस पद है। मंगलदास जी के ग्रथ मे इनमे से एक रेखता, ७ साखियाँ, १ छप्पय, छह चाद्रायण तथा ४ पद प्रकाशित है।

५. **रामजीदास**--ये मोहनदास के शिष्य थे। उपर्युक्त गुटके में इनके भी कुछ सवैए तथा पद हैं जिनमे पाँच छद उक्त ग्रंथ मे मुद्रित है।

६. खेमदास (बड़े)—इन्होंने स्वत अपने 'विरागलच्छी' ग्रंथ में स्वामी हरिदास को अपना गुरु माना है। वैसे इनकी गणना द्वादश महंतों में की जाती है। खेमदास जी अधिक समय तक हरिदास जी के सानिध्य में रहे थे इसीसे वे 'हजूरी' विरद से भी प्रसिद्ध है। जैसा पहले बताया गया, इनकी शिष्यपरंपरा का सर्वाधिक विस्तार हुआ, किंतु इनकी रचनाएँ बहुत ही कम मिलती है—केवल दो लघु ग्रंथ (१ चितावणी, २ विराग-लच्छी) तथा १ पद मिलते है। सभी मंगलदास जी ने प्रकाशित करवा दिए हैं।

७ नरीदास—ये हरिदास जी के ५२ शिष्यों में से थे। इन्होंने सीकर जिले के फतहपुर नामक स्थान में अपना आवास बनाया जिससे संबद्ध कुछ स्थान शेखावाटी में आज भी वर्तमान है। मंगलदास जी को इनकी रचनाओं की केवल एक प्रति मिल पाई, किंतु वह भी त्रुटित है। उसमे से साखीभाग लुप्त हो चुका है, शेष में लगभग १२०० पद हैं, किंतु अनुमानतः और कुछ रचनाएँ उसमे रही होंगी। इनमे से उनके १२ पद छपे है।

८. दास पींपा जी—ये भी हरिदास जी के ५२ शिष्यों में से एक है। जनश्रुति के अनुसार इनका जन्म आमेर के छीपा दरजी परिवार में स० १५६५ में हुआ था। नागौर के छीपावाडी मुहल्ले मे इनका मुख्य स्थान है, अत इनकी जाति कदाचित् वही रही हो, किंतु जन्मतिथि विश्वसनीय नही जान पड़ती। निरंजनी संप्रदाय के हस्तलिखित ग्रंथों मे इनकी रचनाओं के रूप मे केवल चितावणी ग्रंथ, कुछ फुटकल साखियाँ तथा २० पद मिलते है। अधिकांश उक्त ग्रंथ में छप चुके है।

९. कल्याणदास—इनका नाम भी कहीं कहीं हरिदास जी के ५२ शिष्यों में मिलता है। एक स्थान पर इन्होंने 'दयाल' शब्द का भी प्रयोग किया है जो हरिदास जी का ही पर्याय है। कबीर का नाम भी कई स्थलों पर इन्होंने अत्यंत श्रद्धापूर्वक लिया है। इनकी रचनाएँ दो हस्तलिखित प्रतियों मे मिलती है जिनके लिपिकाल स० १८२६ तथा १८३० है। इनकी छाप से ६३० साखियाँ, १० लघुग्रंथ तथा २१२ पद मिलते है जिनमे से ५१ साखियाँ, दो ग्रंथ (निराकारमहिमा, ज्ञानमार) तथा १२ पद मुद्रित है। संभव है, इनकी रचनाएँ और भी मिले।

१०. प्रेमदास—ये स्वामी हरिदास के पौत्रशिष्य तथा महरवान के शिष्य थे। इनकी केवल एक रचना 'सिद्धवदन।' मिलती है जिसे मंगलदास जी ने प्रकाशित कर दिया है।

११ सेवादास—बड़े खेम जी की परंपरा मे दयालदास के शिष्य सेवादास का व्यक्तित्व कई दृष्टियों से बड़ा महत्वपूर्ण है। इस संप्रदाय में साहित्यरचना की दृष्टि से तुरसी तथा सेवा ही अग्रगण्य है। संप्रदाय की परंपरावृद्धि की दृष्टि से भी इनका नाम विशेष सम्मान के साथ लिया जाता है। हरिदास के परवर्ती निरंजनी संतों में सर्वप्रथम इन्ही के जीवनकाल का स्पष्ट निर्देश मिलता है। इनके प्रसिद्ध शिष्य अमरदास के शिष्य रूपदास ने 'सेवादास जी की परचई' में इनके जन्म तथा देहावसान की तिथियों का उल्लेख इस प्रकार किया है—

सोलह सौ सत्ताएवे, चैत सुदि नौमी दिन।
ता दिन बाजे बाजिए, प्रगटे सेवा जन॥
सतरा सौ अठाएवे, बद पडवा जेठ मास।
जन सेवा स्वर्ग सिधाइया, कियौ ब्रह्म में बास॥

इससे ज्ञात होता है कि सेवादास को एक सौ एक वर्ष (सं० १६६७–१७६८) की आयु मिली थी। इनकी विपुल वाणी का विवरण इस प्रकार है : साखियाँ ३५६१ (५७ अंग), कुडलियाँ ४०० (३४ अग), चाद्राइण १३४ (१२ अग), रेखते ४४ (६ अग), पद ४०२ (२१ राग), छप्पय, मनहर, सवैए आदि २४ तथा १० स्फुट ग्रथ (५७५ दोहे चौपाइयों मे)। रचनाओं से उनकी अनुभूति की तीव्रता प्रकट होती है। मगलदास जी की पुस्तक मे इनकी १४६ साखियाँ, ३ स्फुट ग्रथ, १५ कुडलियाँ, ६ रेखते, ४० चाद्राइण, १० कवित्त तथा १५ पद प्रकाशित है। डा० मिश्र की पुस्तक मे इनकी १०० साखियाँ, १५ कुडलियाँ, १ कवित्त, १ चद्रायण और २० पद है।

१२. **मनोहरदास**—इनका स्थान निरजनी सप्रदाय के विद्वान् रचनाकारो में है। 'ज्ञानमजरी' तथा 'वेदातपरिभाषा' मे इन्होने रचनाकाल के रूप मे सं० १७१६ तथा १७१७ का उल्लेख किया है अतः इनका समय अनुमानत. सत्रहवी शताब्दी का अतिम तथा अठारहवी का पूर्वांश माना जा सकता है। अब तक इनके छह ग्रथ मिले हैं और सभी दार्शनिक विषयों पर है। इन्होंने अपनी कुछ रचनाओं मे गद्य का भी प्रयोग किया है जो भाषावैज्ञानिक दृष्टि से महत्वपूर्ण कहा जा सकता है। इनकी उपलब्ध रचनाओं के नाम है १. ज्ञानमजरी (स० १७१६), २. वेदातपरिभाषा (स० १७१७), ३ षट्-प्रश्नोत्तरी (गद्य-पद्य-मय), ४. शतप्रश्नोत्तरी (गद्य-पद्य-मय), ५. ज्ञानवचनचूर्णिका (गद्य मे भी), ६. सप्तभूमिका। डा० मिश्र ने नाहटा जी की सूचना के आधार पर 'वैराग्यवृद' नामक एक अन्य ग्रथ भी इनका बतलाया है, किंतु मगलदास जी ने इसका जो अश प्रकाशित करवाया है उसमे स्पष्ट ही भगवानदास निरंजनी की छाप है। इनके प्रथम पाँच ग्रंथों के कुछ अश प्रकाशित हुए हैं।

१३ **भगवानदास**—अर्जुनदास के शिष्य भगवानदास विद्वान् संत थे और क्षेत्रवास मे रहते थे। इनके ग्रंथों मे उल्लिखित रचनाकाल से इनका समय अठारहवी शताब्दी का पूर्वार्ध ज्ञात होता है। अब तक इनकी जिन रचनाओं का पता लग सका है उनके नाम हैं १ अमृतधारा (स० १७२८), २ वैराग्यवृद (भर्तृहरिशतक का पद्यानुवाद स० १७३०), ३ गीतामाहात्म्य (स० १७४०), ४ अध्यात्मरामायण पद्यानुवाद (स० १७४१), ५. कार्तिकमाहात्म्य (स० १७४३), ६ पचीकरण, ७. मनोरथमजरी, ८. प्रेमपदार्थ, ९ जैमिनिअश्वमेध (स० १७५५)। 'एकादशीमाहात्म्य' (डा० मिश्र द्वारा सूचित) कदाचित् 'कार्तिकमाहात्म्य' का ही अपर नाम है। मुझे 'अनभैहुलास' नामक इनकी एक अन्य रचना दादू महाविद्यालय, जयपुर की उस प्रति (लिपिकाल स०

१८६१) में मिली थी जिसका विस्तृत विवरण मैंने अपनी 'कबीर ग्रंथावली' में 'नि० १' के रूप में दिया है। इनकी ख्याति विशेषतया वेदांतविषयक ग्रंथ 'अमृतधारा' के कारण है जिससे इनका पांडित्य प्रकट होता है। मंगलदास जी ने इनमें से प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ तथा पंचम ग्रंथों के कुछ अंश प्रकाशित कराए हैं।

१४. **अमरदास या अमरपुरुष**--संप्रदाय के प्रचार प्रसार की दृष्टि से इनकी अत्यधिक ख्याति है। ये स्वामी सेवादास के शिष्य थे और अधिकतर कोलिया ग्राम में रहते थे जहाँ इनकी समाधि भी है। इनका जन्म सं० १७५५ में ब्राह्मण परिवार में हुआ था, दीक्षा सं० १७७५ में हुई थी तथा मृत्यु सं० १८४२ में। इनके केवल आठ पद मिलते हैं (मंगलदास द्वारा प्रकाशित) जिनमें इन्होंने अपने गुरु का ही नाम रचयिता के रूप में दिया है। इनका एक स्मरणीय योगदान यह है कि इन्होंने अपने शिष्यों को आदेश देकर पूर्ववर्ती निरंजनी संतों की वाणियाँ लिपिबद्ध करवाईं। यही कारण है कि अधिकांश निरंजनी गुटके इसी समय के मिलते हैं।

इनके अतिरिक्त (१५) लालदास जी कृत 'चितावणी', (१६) हरिरामदास (अठारहवीं शती उत्तरार्ध) कृत 'छंदरत्नावली', 'परमार्थसतसई' (दोनों प्रकाशित), 'हरिदास की परची' (पूर्व उल्लिखित) तथा कुंडलियाँ, (१७) आत्माराम (मृ० सं० १८१६) कृत साखी, कुंडलियाँ, शब्दी, रेखते आदि (१८) उनके शिष्य जगराम तथा (१९) चतुर्भुजकृत कुछ पद, (२०) रूपदास (अमरदास के शिष्य) कृत 'सेवा जी की परची' (सं० १८३२) तथा अन्य वाणियाँ, (२१) रत्नदासकृत धमार, होली आदि, (२२) पोकरदास कृत 'गुरूपदेश जोग' तथा रघुनाथदास और प्यारेरामकृत क्रमशः 'परची' और 'भक्तमाल' मिलते हैं (जिनमें से अंतिम दो का उल्लेख पहले हो चुका है)। डा० भगीरथ मिश्र ने 'योगवाशिष्ठभाषा' (सं० १७९८) के लेखक रामप्रसाद निरंजनी तथा 'पांडवयशेंदुचंद्रिका' के लेखक स्वरूपदास निरंजनी की भी गणना निरंजनी संतों में की है (पृ० १८) किंतु 'निरंजनी' वस्तुतः उनका आस्पद या उपाधि ज्ञात होती है और उन्हें इस संप्रदाय के अंतर्गत सम्मिलित नहीं करना चाहिए।

रामस्नेही संप्रदाय

अभिधेयार्थ के अनुसार राम के प्रति स्नेह या भक्ति रखनेवाला कोई भी व्यक्ति 'रामस्नेही' है, किंतु संत साहित्य में यह शब्द विशिष्ट अर्थ में रूढ़ हो गया है। यह वस्तुतः उस संप्रदाय के संत के लिये प्रयुक्त होता है जिसका प्रवर्तन मूलतः राजस्थान में हुआ।

राजस्थान में इस संप्रदाय के चार प्रमुख आचार्यपीठ निम्नलिखित स्थानों पर हैं--

१. **रेण**--जोधपुर फुलेरा लाइन पर मेड़ता से दस मील उत्तर, जिसे इस संप्रदायवाले दरियावनगर भी कहते हैं, क्योंकि इस गद्दी के मूलाचार्य दरियाव जी (दरिया साहब मारवाड़वाले के नाम से भी प्रसिद्ध) हैं--दीक्षा सं० १७६९ में।

२. **सिंहथल अथवा सींथल** --बीकानेर दिल्ली लाइन पर नापासर के पास और बीकानेर से लगभग २० मील की दूरी पर स्थित। इस शाखा के प्रथम आचार्य हरिरामदास जी माने जाते है--दीक्षा स० १८०० में।

३. **शाहपुरा**--अजमेर चित्तौड़ मार्ग पर स्थित प्रसिद्ध स्थान। यहाँ के रामनिवासधाम के आद्याचार्य रामचरण जी थे--दीक्षा स० १८०८ मे।

४. **खेड़ापा**--नागौर जोधपुर मोटर मार्ग पर जोधपुर नगर से लगभग ३७ मील दूर। इस रामद्वारे के मूल आचार्य रामदास जी माने जाते है--दीक्षा सं० १८०६ मे।

अंतिम अर्थात् खेड़ापा शाखा के प्रवर्तक आचार्य ने सिंहथल के हरिरामदास (हरियानंद) से ही दीक्षा ली थी, अत इन दोनो गद्दियो में घनिष्ठ संबंध है। यह घनिष्टता अद्यावधि वर्तमान है, और दोनो की आचारसंहिता भी समान है अत. दोनो को पृथक् न मानकर प्राय एक ही शाखा से संबद्ध माना जाता है।

दरियाव जी तथा रेणपरंपरा का साहित्य

दरियाव जी का जन्म स० १७३३ मे भाद्रपद कृष्णा जन्माष्टमी के दिन मेड़ता से ४० मील दक्षिण जयतारण नामक स्थान मे बताया जाता है। सांप्रदायिक पुस्तकों मे पिता का नाम मनसाराम तथा माता का नाम गीगाबाई मिलता है, किंतु 'दरियासाहब की बानी' (बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद) के 'जीवनचरित्र' मे उन्हीं की एक पंक्ति के आधार पर उन्हे धुनिया जाति का बताया गया है--'जो धुनिया तो भी मै राम तुम्हारा (पृ० १)।

कहा जाता है, दरियाव जी की अनुभववाणी विपुल परिमाण मे थी, किंतु उसका संकलन होने पर उन्होंने "अनुभव झूठा थोथरा, निर्गुण सच्चा नाम" कहते हुए उसे लाखासागर में प्रवाहित कर दिया। बाद मे पुन उसका संकलन किया गया जिसके आधार पर उसके दो संस्करण प्रकाशित भी हो चुके है--एक सन् १९२२ मे बेलवेडियर प्रेस से 'दरियासाहब (मारवाडवाले) की बानी' नाम से, जिसमे इनकी साखियाँ और कुछ पद मिलते है, और दूसरा अप्रैल, १९६५ मे रामधाम, रेण से 'रामस्नेही अनुभव आलोक' नाम से जिसमे उनकी चार सौ से कुछ अधिक साखियाँ तथा दो तीन पद है।

दरियाव जी की वाणी के अतिरिक्त पूर्व उल्लिखित 'रामस्नेही अनुभव आलोक' (संपादक, वर्तमान पीठाधिकारी श्री बलराम शास्त्री) मे पूरणदास, किशनदास, सुखरामदास, नानकदास (आतमध्यान ग्रंथ), हरखाराम, टेमदास, हरिदास, रामकरण, बुधाराम सॉंवतराम (मृ० स० १८६३), खेताराम, अभाबाई, शिवकरण, दयाराम, प्रेमदयाल, मदाराम, बीरमदास, सहजराम, सुखरामदास तथा तेजराम की रचनाओ के केवल कुछ अंशों का संकलन है। इनमें से लगभग सभी का रचनाकाल वि० १८--१९ वी शताब्दी के अंतर्गत पड़ता है। संपादक के कथनानुसार उपर्युक्त संतो की अधिकांश वाणी अप्रकाशित है और वह पर्याप्त परिमाण में है, उदाहरणतया किशनदास की संपूर्ण रचनाएँ ४०००

अनुष्टुप परिमाण, सुखराम की ३०००, हरखाराम की ६०००, साँवतराम की ५०००, खेताराम की २०००, शिवकरण की १५००, प्रेमदयाल की ६००० श्लोक परिमाण है। इनमे माधवराम का 'भक्तमाल' तथा प्रेमदयाल का 'ज्ञानविलास' विशेष रूप से उल्लेखनीय है, क्योंकि पहले का ऐतिहासिक महत्व है और दूसरे का दार्शनिक। इसी शाखा के सत सुखसारणकृत एक अन्य 'भक्तमाल' (रचनाकाल स० १६००) स्वामी मुक्तिराम (जोधपुर) द्वारा प्रकाशित 'श्री सतवाणी' मे मिलता है।

शाहपुरा शाखा का साहित्य

रामचरण जी की रचनाओं का सग्रह 'अणभैवाणी' नाम से आचार्य निर्भयराम जी ने स० १६८१ (सन् १६२५) में प्रकाशित करवाया जो सिक्खों के 'गुरु ग्रथसाहब' से भी बड़े आकार का, लगभग ११०० पृष्ठों का, एक विशाल ग्रथ है। आरम्भ मे अतिरिक्त रूप से ६३ पृष्ठो मे सतदास जी (रामचरण के दादागुरु) की भी वाणी है जिसके अन्तर्गत १३८३ साखियाँ, ४ रखते, दो स्फुट ग्रथ तथा ८ पद है। रामचरण जी की वाणी के सग्रह का कार्य सर्वप्रथम उनके गृहस्थ शिष्य नवलराम ने किया। इनके द्वारा तैयार किया हुआ सग्रह ८००० श्लोक परिमाण था। तदनन्तर द्वितीय आचार्य रामजन जी ने सग्रह कार्य आरंभ किया तथा २८३६७ श्लोक परिमाण वाणी और खोज निकाली। इस प्रकार पूरा संग्रह ३६३६७ श्लोक परिमाण हो गया। 'अणभै वाणी' के पृ० १०७० पर समस्त वाणी का विवरण देते हुए निम्नलिखित रचनाओं का उल्लेख है—

१. साखी, २. चान्द्रायण, ३ सवैया, ४. झूलना, ५ कवित्त, ६. कुडलिया, ७. रेखता, ८. ग्रथ गुरुमहिमा, ६. नामप्रताप, १० शब्दप्रकाश, ११. अणभै विलास, १२ सुखविलास, १३. अमृतउपदेश, १४. जिज्ञासबोध, १५. विश्वासबोध, १६ विश्रामबोध, १७. समतानिवास, १८. रामरसायनबोध, १६. चितावनी, २० मनखडन, २१. गुरु-शिष्य-गोष्ठी, २२. ठग पारख्या, २३. जिद पारख्या, २४ पडितसवाद, २५ लाछ-अलच्छ-जोग, २६. बेजुक्त तिरस्कार, २७ काफरबोध, २८ शब्द, २६. दृष्टातसागर। इसके पश्चात् रामजनदासकृत 'ग्रथ रामपद्धति' (पथ का इतिहास), जगन्नाथकृत 'ग्रथ ब्रह्म-समाधि-लीन-जोग' तथा जनगोपाल (दादूपथ) कृत 'प्रह्लादचरित' भी मिलते है। हम देखते है कि परिमाण की दृष्टि से कदाचित् रामचरण जी से अधिक रामस्नेही सप्रदाय क्या, अन्य किसी भी सप्रदाय के किसी सत कवि की रचना न मिलेगी। विषयो की दृष्टि से हम देखते है कि परवर्ती कबीरपथी तथा निरजनीपथी रचनाओं से उनका बड़ा साम्य है।

'श्री रामस्नेही संप्रदाय' (सपा० वैद्य केवलराम स्वामी वैद्य राधाकृष्णप्रसाद शर्मा आदि, सन् १९५९ ई० मे प्रकाशित) नामक एक अन्य ग्रथ मे सतदास तथा रामचरण जी की कुछ रचनाओं के अतिरिक्त बारह प्रधान शिष्यो तथा हरिदास, स्वरूपाबाई (नवलराम की पुत्री), मुक्तराम तथा सग्रामदास की रचनाओ (अशाशो) का सकलन है। प्रस्तुत ग्रथ मे शाहपुरा के रामस्नेहियो की केवल कुछ ही रचनाएँ प्रकाशित हो सकी है वैसे रामचरण जी की भाँति अन्य सतो की वाणियाँ भी विपुल परिमाण मे मिलती है। ग्रथ के सपादको

की सूचना के अनुसार रामजन की वाणी ८२२६ तथा दूल्हैराम की १४००० श्लोक परिमाण है। भगवानदास की १०७४ साखियो, ११३ अरीलों, ४३ सवैयो, ५३ कवित्तों तथा २७० मनहर छदो आदि का उल्लेख है। देवादास की वाणी मे २२५० तो केवल साखियाँ ही है, इसके अतिरिक्त अन्य रचनाएं भी है। मुक्तराम जी की वाणी १४१८१ श्लोक परिमाण है जिनमे साखियाँ ही ३३११ है। सग्रामदास मुरलीराम के शिष्य थे। राजस्थान मे इनकी कुडलियों का बहुत प्रचार है। किनु उनकी भाषा ठेठ राजस्थानी है अत अन्य प्रातवालो को उनका अर्थ समझने मे कठिनाई हो सकती है।

उपर्युक्त सभी कवियो का रचनाकाल उन्नीसवीं शताब्दी वि० तक ही पड़ता है।

सिंहथल शाखा का साहित्य

इस शाखा का साहित्य अपेक्षाकृत अल्पतर परिमाण मे उपलब्ध है। 'श्री रामस्नेह धर्मप्रकाश' के प्रथम परिच्छेद मे पचवाणी के रूप मे स्वामी रामानद, जैमलदास, हरिरामदास, नारायणदास तथा हरिदेवदास जी की रचनाओ के कुछ अश प्रकाशित है। इसमें हरिरामदास जी की साखियाँ (१४ अग), ग्रंथनिसानी (योगपरक महत्वपूर्ण ग्रथ), ग्रथ नामपरचा, पदछत्तीसी, ग्रंथ प्रश्नोत्तर, रेखता, छद, सवैया, कवित्त तथा पद सकलित है। नारायणदास जी की कुछ साखियां, ग्रथ चेतावनी तथा प्राणपरचा है। 'नारायण-शब्द-सुधा' नाम से ४८ पृष्ठों की एक पुस्तिका मे नारायणदास जी की रचनाएँ पृथक् से भी हाल मे ही प्रकाशित हुई है। भूमिका से ज्ञात होता है कि उनकी वाणी का गुटका अग्निप्रकोप से नष्ट हो गया था, बाद मे अन्य सूत्रो से उसका पुन सग्रह किया गया। उक्त पुस्तिका में आदूराम, रघुनाथदास आदि की वाणियो के अत्यल्प अश भी सकलित है। किन्हीं गंगाराम के शिष्य जैरामकृत 'हरिरामदास की परची' (रचनाकाल स० १६०० वि०) ऐतिहासिक महत्व की दृष्टि से विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यह 'रामस्नेह धर्म प्रकाश' के तीसरे परिच्छेद में प्रकाशित है। वहाँ के वर्तमान आचार्य श्री भगवद्दास जी शास्त्री के पत्र (२२.७.६५) से ज्ञात होता है कि हरिरामदास जी तथा हरिदेवदास जी की रचनाएँ (क्रमशः ५००० तथा ४५०० श्लोक परिमाण) शीघ्र ही प्रकाशित होने को है।

खेड़ापा शाखा का साहित्य

इस शाखा का साहित्य कई ग्रथो में प्रकाशित हो चुका है, किंतु अब भी बहुत सी रचनाएँ प्रकाश मे नहीं आ सकी है। 'रामस्नेहधर्मप्रकाश' (सं० १६८७) के द्वितीय परिच्छेद मे रामदास, दयालुदास, पूरणदास, अर्जुनदास आदि की वाणियो के कुछ अंश सकलित है जिनमे रामदास कृत 'भक्तमाल' (रचनाकाल का निर्देश नही), पूरणदास-कृत 'दयालुजन्मलीला परची' (रचनाकाल का उल्लेख नही) और अर्जुनदासकृत 'परचीसार' ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। 'परचीसार' वस्तुतः दयालुदासकृत 'रामदास जी की परची' (रचनाकाल सं० १८५५) पर आधारित है जो आनंदाश्रम, बीकानेर द्वारा 'गुरुप्रकरण' के साथ पृथक् प्रकाशित है। दयालुदास कृत 'प्रगटबोध' भी आध्यात्मिक

महत्व की रचना है क्योंकि इसमें रामस्नेही-साधना-पद्धति का विवेचन है। दयालुदास जी की रचनाएँ सर्वाधिक परिमाण में इसी ग्रंथ मे मिलती है। उनकी एक अन्य रचना 'करुणा-सागर', जिसमे अनेक भक्तो की विरुदावली है, स० २०१६ मे श्री 'दयालु-दिव्य-चरित्र' के साथ खेड़ापा से भी प्रकाशित हुई है।

रामदास जी की सपूर्ण रचनाएँ श्री हरिदास (वर्तमान खेड़ापा पीठाधीश्वर) तथा प्रो० रामप्रसाद दाधीच (जोधपुर विश्वविद्यालय) के सपादकत्व मे रामस्नेही शोध प्रतिष्ठान, खेड़ापा द्वारा 'रामदास जी की वाणी' नाम से स० २०१८ में प्रकाशित हुई है। इस ग्रंथ मे उनकी साखियाँ (८४ अग), तीन प्रसंगग्रथ, तथा 'भक्तमाल', 'चेतावनी' आदि २७ अन्य ग्रथ और 'हरिजस' शीर्षक के अतर्गत ७२ पद है। अत मे वहाँ के परवर्ती पीठाधीश्वरों की रचनाओं के यत्किंचित् अश भी सकलित है।

एक अन्य ग्रथ 'श्री रामस्नेही-मत-दिग्दर्शन' (ले० उत्साहराम प्राणाचार्य स० २०१६) के उत्तरार्ध मे रामानद, जयमलदास, हरिरामदास, रामदास तथा दयालुदास की पंचवाणी के अतिरिक्त रामदास के शिष्य दौलतराम तथा उनके शिष्य प्रशिष्यों की वाणियो का सग्रह है।

आचार्य हरिदासलिखित 'आचार्यचरितामृत' (स० २००२) मे खेड़ापा शाखा के प्रवर्तक रामदास जी का विस्तृत जीवनवृत्त है।

रामस्नेही साधनापद्धति

रामस्नेही सप्रदाय मे रामनाम का स्मरण एक विशिष्ट योगपद्धति पर अवलंबित है। उसके अनुसार नामस्मरण की चार कोटियाँ है: १. अध स्मरण, २ मध्य स्मरण, ३. उत्तम स्मरण, तथा ४. अति उत्तम स्मरण। इनके स्थान क्रमशः जिह्वा, कठ, हृदय तथा नाभि है। वाणी के चार भेदो—बैखरी मध्यमा, पश्यती तथा परा—से इनका सादृश्य विचारणीय है। नाभि मे जाकर 'राम' के मकार एव अकार, जो माया एवं जीव के प्रतीक माने जाते है, केवल रकार रूप होकर परब्रह्म मे लीन हो जाते है—

अति उत्तम सुमरन परकारा। रोम रोम लागा ररंकारा॥ (रामदास)

नाभि मे शब्द के स्थित होने पर सपूर्ण रोमावली मे केवल ररकार ध्वनि होती है नाड़ नाड़ि रू रू बिखे, ररकार धुन होय (दरियाव, नादपरचै, पृ० ५३)। तत्पश्चात् साधना द्वारा कुडलिनी का जागरण कर ररकार ध्वनि को ऊर्ध्वगति प्रदान की जाती है। सुषुम्ना से होते हुए यह शब्द त्रिकुटी (इड़ा, पिगला, सुषुम्ना का सगम) में जाकर अविनश्वर ब्रह्म मे लीन हो जाता है जहाँ माया का प्रवेश नहीं—

मन बुधि चित अहंकार की, है त्रिकुटी लग दौर।
जन दरिया इनके परे, ब्रह्म सुरति की ठौर॥

—ब्रह्मपरचै, साखी ६, पृष्ठ ५४।

यही संतों की सहज समाधि या वेदांतियो की निर्विकल्पक समाधि है--"तत्र पिताऽपिता भवति चाण्डालोऽचाण्डालो भवति"।

इसी साधनाप्रक्रिया का वर्णन रामचरण जी ने 'ग्रंथ नामप्रताप' तथा हरिराम दास जी ने 'ग्रथ निसाणी' तथा रामदास जी ने 'सिवरण' तथा 'सिवरण मेध्या' अग की साखियो मे किया है (दे० क्रमश. अणभैवाणी, पृ० २०६-७; रामस्नेह धर्मप्रकाश, पृ० ८३-१२७ तथा 'रामदास की वाणी', पृ० १०-१५)।

हम देखते है, यह साधनापद्धति अन्य सतो की पद्धति से यद्यपि कुछ मिलती जुलती है तथापि इसमे राम-नाम-स्मरण को एक विशिष्ट विधि पर बल दिया गया है; बल्कि यह कहा जाय कि वही समस्त साधना का मेरुदड है। इसी विशिष्टता के कारण संप्रदाय के प्रवर्तकों ने उसे 'रामस्नेही' नाम दिया।

प्रणामी या धामी संप्रदाय

प्रणामी सप्रदाय की स्थापना सत प्राणनाथ ने सं० १७३५ मे हरिद्वार के कुंभ मेले के अवसर पर अनेक मतावलबियों को पराजित कर अपने धर्मगुरु देवचंद (निजानद स्वामी) द्वारा प्रदत्त 'तारतम्य मत्र' अथवा निजानद सिद्धांत के आधार पर की जो आगे चलकर प्रणामी, प्राणनाथी, धामी, मेहेराज पथ अथवा निजानंद संप्रदाय आदि कई नामों से विख्यात हुआ। प्राणनाथ के शिष्य लालदास ने अपने 'बीतक' (∠ स० वृत्त + क) नामक ग्रथ (रचनाकाल अनुमानत स० १७५१ वि०) मे प्राणनाथ तथा उनके गुरु देवचद जी का प्रामाणिक जीवनवृत्त लिखा है।

प्रणामी साहित्य--प्राणनाथ की रचनाओ का सर्वप्रथम परिचय श्री एफ० एस० ग्राउज ने सन् १८७९ मे एशियाटिक सोसाइटी ग्राफ बंगाल के जर्नल मे प्रकाशित अपने एक निबध द्वारा दिया; किंतु उनके द्वारा उल्लिखित नामों मे यत्किंचित् त्रुटियाँ रह गई थी। प्राणनाथ की चौदह रचनाओ का सकलन 'कुलजमेशरीफ' या 'कुलजम स्वरूप' के नाम से प्रसिद्ध है। 'कुलजमेशरीफ' का अर्थ डा० बडथ्वाल ने 'मुक्ति की पवित्र धारा' या 'मोक्षमार्ग' किया है। किंतु सप्रदाय मे आजकल उसका नाम 'कुलजम सरूप' ही प्रचलित है। मूल नाम कदाचित् 'कुलजम शरीफ' ही रहा होगा। अरबी 'कुलजम' या 'कुल्जुम' का अर्थ वस्तुत: दरिया (नदी या समुद्र) है। प्राणनाथ जी की वाणियों का सग्रह या सागर होने के कारण ही उसे 'कुलजम शरीफ' कहा गया। 'शरीफ' पवित्रता-बोधक है जैसे 'कुरान शरीफ' मे। प्रणामी संप्रदाय मे इस्लामी शब्दावली का प्रयोग धडल्ले से किया गया है। 'शरीफ' का 'सरूप' मे परिवर्तन परवर्ती ज्ञात होता है। 'कुलजम सरूप' मे सकलित ग्रथो के नाम इस प्रकार है--१. **रसग्रंथ** (गुजराती, १०१० चौपाइयाँ), २ **प्रकाशग्रंथ** (गुजराती जाटी तथा हिंदी, ११७६ चौपाइयाँ), ३ **षटऋतु** (गुजराती, ३३० चौ०), ४ **कलस** (गुज० ७६८ चौ०), ५ **सनंध** (हिंदी, फारसी दोनो में १६९१ चौ०), ६ **किरतंन** (हिंदी, २१०३ चौ०), ७. **खुलासा** (खड़ी बोली, १०२९

चौ०), ८. खिलवत (ख० बो०, १०६४ चौ०), ९ परकरमा (खड़ी-ब्रज-मिश्रित तद्भव-शब्दावली-प्रधान, २४८४ चौ०), १० सागर (हिंदी, ११७८ चौ०), ११ सिंगार (खड़ी, २२०९ चौ०), १२. सिंधी भाषा की चौपाई (सिंधी, अंत में कुछ पदों के हिंदी अनुवाद, ५९९ छंद), १३ मारफत (खड़ी, फारसी शब्दावली प्रधान, १०३४ चौ०), १४. कयामतनामा छोटा तथा बड़ा (खड़ी बोली, फारसी शब्दावली से युक्त, ७६७ चौ०) कुल १८२३६ चौपाइयाँ।

प्रतियों में 'रास' के साथ 'अंजील', 'प्रकाश' के साथ 'जबूर' और 'कलस' के साथ 'तौरेत' शब्द लगे हुए हैं। 'बीतक' के अनुसार इन तीनों ग्रंथों में ईसाइयों, यहूदियों और दाऊदपंथियों के धार्मिक सिद्धांतों का निरूपण है। इसी प्रकार 'सनंध' में कुरान की भागवती व्याख्या है। 'रासग्रंथ' में वस्तुतः गोपी-कृष्ण-रास का वर्णन है, अतः ईसाइयों के सिद्धांत का निरूपण उसमें किस प्रकार हुआ है, यह स्पष्ट नहीं होता। 'बीतक' में इन समस्त रचनाओं के रचनाकाल तथा स्थान आदि का उल्लेख है। समय समय पर 'आवेश' या 'जोश' में प्राणनाथ के मुख से जो बानियाँ उतरती थीं उन्हें उनके शिष्य लिखते जाते थे। वे चौपाई में ही बात करने के अभ्यस्त हो गए थे। उनकी मृत्यु के दो महीने दस दिन के उपरांत उनके एक प्रधान शिष्य केशवदास ने उनकी समस्त वाणियों को क्रमबद्ध किया किंतु 'जो चौपाई हादी ने फुरमाई थी। तिनमें एक हरफ जादा या कम नाही किए।।' इस प्रकार सिक्खों के 'गुरु ग्रंथसाहब' की भाँति इसकी भी प्रतिलिपिपरंपरा बड़ी ही व्यवस्थित रही।

उपर्युक्त रचनाओं के अतिरिक्त नागरीप्रचारिणी सभा की सन् १९२४–२६ ई० की रिपोर्टों में उनकी कुछ अन्य रचनाओं की सूचना भी मिलती है, उनके नाम हैं १. प्रगट बानी, २. ब्रह्मबानी, ३. तीस गिरोहों का बाब, ४. बारा गिरोहों की हकीकत, ५. प्रेमपहेली, ६ तारतम्य, तथा ७ राजविनोद। 'तारतम्य' या 'तारतम्यसागर' 'कुलजमसरूप' का ही दूसरा नाम है। शेष रचनाओं का अभी परीक्षण नहीं किया गया अतः निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि इनमें से कौन सी रचनाएँ नई हैं और कौन उपर्युक्त रचनाओं से अभिन्न। इनके अतिरिक्त 'बैराटचरित्रामृत', 'पदावली', तथा 'महातरियात' नामक इनकी रचनाएँ भी बताई जाती हैं जिनमें से अंतिम को डा० बड़थ्वाल 'कलजमेशरीफ' या 'कुलजमसरूप' से अभिन्न मानते हैं।

'कुलजमसरूप' अभी इसी वर्ष (सं० २०२२ में) श्री मातावदल जायसवाल तथा ब्रह्मचारी मोहनमुकुंददास द्वारा संपादित होकर सेठ वल्लभदास जी बागला, बाँकुड़ा (प० बंगाल) द्वारा प्रकाशित किया गया है।

लालदास जी की निम्नलिखित रचनाएँ प्रसिद्ध हैं १. बीतक, २. बड़ी वृत्त (पद्य) ३. छोटी वृत्त (खड़ी बोली गद्य में, ब्रह्मचारी मगनदास के संपादकत्व में सेठ श्री चिम्मनलाल जी राजा द्वारा प्रकाशित), ४. माजजा (खड़ी बोली), ५. बड़ा मसौदा

(खडी) तथा ६. श्रीमद्भागवत टीका। इनमें से सर्वाधिक महत्वपूर्ण ग्रंथ 'बीतक' में कुल ७१ प्रकरण तथा ४३०४ चौपाइयाँ है। इसे 'तीनों सरूपों' (कृष्ण मुहम्मद और देवचद, प्राणनाथ) की 'बीतक' कहा गया है और उपर्युक्त तीनो महापुरुषो के ऐक्य की ओर संकेत किया गया है। इसके आरभिक ५६ प्रकरणो में देवचंद तथा प्राणनाथ के जीवनवृत्त (पन्ना तक) लिखे गए है, शेष १२ में पन्ना में निवास करते समय प्राणनाथ के आठो पहर की दिनचर्या वर्णित है। 'बीतक' की रचनातिथि का निर्देश लालदास जी ने नहीं किया है, किंतु सप्रदाय मे यह प्रसिद्ध है कि प्राणनाथ के देहांत (श्रावण बदी ४, सं० १७५१) के दूसरे दिन से उन्होने बीतकलेखन का कार्य आरंभ किया और भाद्रपद जन्माष्टमी के दिन समाप्त किया। इसके पश्चात् लालदास की इहलीला भी समाप्त हुई। प्रणामी मदिरो मे अब भी श्रावण बदी पंचमी से भाद्रपद बदी अष्टमी तक बीतक का पाठ किया जाता है। अत इसकी रचनातिथि सं० १७५१ ही मान्य सिद्ध होती है। अन्य बीतके इसी के अनुकरण पर लिखी गई। यह महत्वपूर्ण ग्रथ अभी तक अप्रकाशित है।

मकुंददास (नौरंग स्वामी) की बानियों की संख्या १६०० से अधिक बतलाई जाती है जिनमे निम्नलिखित २६ ग्रथ है १. रास, २. रससागर, ३. लीलाप्रकाश, ४. चिद्विलास, ५. बीतक, ६. योगारभ, ७. तात्विक मत, ८. अष्टपदी, ९. गुरुशिष्य, १०. कीर्तन, ११ छांदोग्य उपनिषद् (अनुवाद ?), १२. षटशास्त्री (शास्त्र ?), १३. श्रीगीता, १४ कीर्तनखोज, १५. कीर्तनबमन. १६. रोशननामा, १७ जकडी; १८. कीरतनव्रत, १९ हिंडोला, २० जन्म के कीर्तन, २१ दूसरे जन्म के कीर्तन, २२ रामत-मूल-सबंध, २३. व्रत, २४. रेपता, २५. आकड़ी पद्रह, २६. गुजराती केदारा, २७. कबीर की खोज, २८. काजी महमूद की जकड़ी, २९. स्फुट (पन्ना की स० १८६२ की प्रति के आधार पर श्री मातावदल जायसवाल द्वारा प्रदत्त सूचनानुसार, दे० समेलन पत्रिका, ४१।१)। इन ग्रथों की भाषा प्रधान रूप से व्रज है, किंतु कुछ ग्रथ खडीबोली तथा गुजराती मे भी है।

लालदास की 'बीतक' परपरा मे नौरगस्वामीकृत 'बीतक' के अतिरिक्त अन्य पद्रह बीतके भी मानी जाती है किंतु उनमें से निम्नलिखित पाँच अधिक प्रसिद्ध है---

१ **छत्रसाल के शिष्य ब्रजभूषणकृत बीतक** (वृत्तात मुक्तावली)---इसका रचनाकाल स० १७५५ वि० है। यह प्रधानतया ब्रजभाषा मे है, किंतु यत्रतत्र खड़ीबोली का भी पुट है। इसमे हरिद्वार मेले मे प्राणनाथ की दिग्विजय का विशेष रूप से वर्णन है अत. उनके जीवनवृत्त के अतिरिक्त इसमे वल्लभ, रामानुज, मध्व, निबार्क आदि के अनु-यायियो तथा दशनामी सन्यासियो आदि का सक्षिप्त दार्शनिक विवेचन भी मिलता है। इसमे वर्णिक और मात्रिक दोनो प्रकार के छदो का प्रयोग है। काव्यतीर्थ पं० कृष्णदत्त शर्मा द्वारा सपादित यह बीतक श्री प्रणामी धर्मसभा, जामनगर द्वारा स० १९८८ मे प्रकाशित हो चुकी है।

२ **बख्शी हंसराजकृत बीतक (मेहराजचरित)**---लगभग २५० पृष्ठो के इस

बीतक की हस्तलिखित प्रति पन्ना के प्रणामी मंदिर में सुरक्षित है। प्राणनाथ तथा लालदास की चौपाइयों से इनका चौपाई छंद अधिक व्यवस्थित है। इसकी रचना उपर्युक्त बीतकों के पश्चात् हुई थी। इनका प्रसिद्ध ग्रथ सनेहसागर है तथा इन्होंने विरहविलास की भी रचना की थी। इनका सबंध पन्ना दरबार से भी था।

३. **स्वामी लल्लू महाराज की बीतक**—यह गुजराती मे है और इसकी हस्तलिखित प्रति जामनगर के प्रणामी मदिर मे है।

४. ५. **जयरामदास तथा बहुरंगस्वामीकृत बीतकों** का केवल नामोल्लेख मिलता है, उनके संबंध मे अधिक ज्ञात नहीं।

उपर्युक्त ग्रंथों के अतिरिक्त छत्रसाल के भतीजे पंचमसिंह के सवैए तथा प्राणनाथ जी के एक अनन्य भक्त मस्तानाकृत 'पचकप्रकाश' भी प्राप्त होते है। 'पचकप्रकाश' कानपुर के प्रणामी मदिर से पकाशित भी हो चुका है।

इस प्रकार हम देखते है कि परिमाण तथा महत्व दोनो दृष्टियो से प्रणामी सप्रदाय का विशिष्ट साहित्यिक योगदान है।

सिद्धांत—प्राणनाथ के गुरु देवचंद ने ही अनेक धर्मों के मूल ग्रथों का अनुशीलन कर यह सिद्धांत निर्धारित कर दिया था कि भगवत्प्राप्ति के लिये ज्ञान एवं भक्ति से श्रेष्ठतर साधन प्रेम है। परमात्मा की मूलशक्ति प्रेमस्वरूपिणी है अतएव प्रेम का आश्रय लेने पर जीव की ओर परमात्मा स्वय आकर्षित होता है और उसमे तदाकार हो जाता है। इसीलिये देवचद जी पर श्रीमद्भागवत में वर्णित गोपिकाओं के प्रेम का बड़ा प्रभाव पड़ा था।

प्राणनाथ जी ने देवचद जी की इसी स्थापना का और भी विशदतापूर्वक प्रतिपादन किया। उन्होंने वैष्णवों की अनन्य शरणता, सूफियो के 'इश्क हकीकी' तथा ईसाइयो के 'ईश्वरीय प्रेम' को एकवाक्यता तत्तत् धर्मग्रंथों के वचनों से प्रतिपादित कर यह सिद्ध किया कि जीव एव ब्रह्म दोनो ही अलौकिक आनदस्वरूप है सभी धर्मग्रथ यही कहते है—

जोतष कहै विजयाभिनंद। सब कुम्नजुग की करसी निकंद॥
अंजीर कहै ईसा बुजरक। सो आऐ ने करसी हक॥
अहूद (=यहूदी) कहे मूसा बड़ा होऐ। ताके हाथ छूटे सब कोऐ॥
सारों ने रसम जुदी कर लें। सब बुजुरकी धनी की कही लें॥
यूँ उरझे नाँम जुदे घर। रब आलम की आवा आखर॥
अपनी अपनी समझे सब। खुदा न रह्या कोई अब॥
—कयामतनामा १।४१।

इस प्रकार अनन्य दशधा प्रेमलक्षणा भक्ति द्वारा हिंदू, मुसलमान, ईसाई तथा यहूदी धर्मों

मे उन्होंने तारतम्य स्थापित किया। अनादि अक्षरातीत कृष्ण ही ईसामसीह हुआ और फिर मुहम्मद के रूप मे अवतरित हुआ। अपने 'कयामतनामा' नामक ग्रंथ मे उन्होने इस्लाम, हिंदू तथा ईसाई धर्मग्रंथो मे की गई भविष्यवाणी की ओर सकेत कर यह दिखलाने का प्रयास किया है कि मानव जाति का अंतिम उद्धारक उनके गुरु निजानंद के रूप में अथवा स्वतः उनके रूप मे प्रकट होकर 'साक्षात् शब्दातीत इश्क' का रहस्य समझाकर सभी धर्मो को एक सूत्र मे ग्रथित करेगा। श्रीमद्भागवत तथा कुरान के सिद्धांतों मे वस्तुतः अत्यधिक साम्य है, दोनो मे अनादि अक्षरातीत परमात्मा तथा उसके प्रेम को ही महत्व दिया गया है। कबीर ने सामान्य सिद्धांत के रूप मे यह तथ्य अपनी वाणियों में प्रतिपादित किया था, किंतु प्राणनाथ ने श्रमसाध्य मनन परिशीलन के बाद कबीर की इस मान्यता का शास्त्रीय प्रतिपादन विस्तारपूर्वक किया। 'सनंध' ग्रंथ मे उन्होने श्रीमद्भागवत के प्रकाश मे कुरान की नई व्याख्या की, कलमा ('लाइला इलिल्लिल्लाह' आदि) और भागवत के अनादि अक्षरातीत कृष्ण मे 'मूल मिलावा' या 'तारतम्य' स्थापित किया। वस्तुतः यही उनकी सबसे बड़ी उपलब्धि है, और इस दृष्टि से यदि कहा जाय कि कबीर के धार्मिक सिद्धांतो की शास्त्रीय व्याख्या को उन्होने चरम उत्कर्ष तक पहुँचाया तो कोई अत्युक्ति न होगी। इसी तारतम्यभावना के कारण 'कुलजमसरूप' 'तारतम्यसागर' के नाम से भी प्रसिद्ध है और इसीलिये प्रणामियों को 'तारतम्य मंत्र' की दीक्षा भी दी जाती है—वैसे औपचारिक दीक्षामंत्र क्या है, इसे दीक्षित प्रणामी लोग ही जानते होंगे। प्राणनाथ जी ने परमात्मा को सर्वोच्च प्रेमदशा या परमधाम माना था, इसीलिये उनके द्वारा प्रवर्तित संप्रदाय 'धामीपंथ' भी कहा जाता है।

साहित्यिक क्षेत्र मे उनका तथा उनके अनुयायियो का विशिष्ट योगदान यह है कि विक्रम की अठारहवी शताब्दी के पूर्वार्ध मे ही खड़ीबोली हिंदी का महत्व उन्होने समझा और गुजराती होते हुए भी अपनी अधिकांश रचनाओं में उसका प्रयोग किया। इस बात की ओर सबसे पहले डा० माताप्रसाद गुप्त ने 'हिंदुस्तानी' (भा० ६, अंक १, जनवरी, १९३६) मे प्रकाशित "सत्रहवी सदी ईस्वी के 'हिंदुस्तानी' गद्य का नमूना" शीर्षक निबंध द्वारा विद्वानो का ध्यान आकृष्ट किया। बीतक साहित्य भी प्रणामियो का विशिष्ट योगदान है। लालदास ने अपने बीतक मे प्रयुक्त भाषा के लिये 'हिंदवी' तथा 'हिंदुस्तानी' शब्दो का प्रयोग भी किया है। प्रायः समस्त बीतककारो ने प्राणनाथ के वृत्तवर्णन में कहीं भी अतिरंजनापूर्ण शैली का प्रयोग नही किया है। उनमे सैकड़ो ऐतिहासिक व्यक्तियों, स्थानो तथा घटनाओ का यथातथ्य वर्णन है अतः उनका ऐतिहासिक महत्व भी कम नही है। हिंदी साहित्य मे मध्यकालीन साहित्यकारो या सुधारको की बहुत कम जीवनियाँ इतनी पूर्णता तथा यथार्थता से लिखी गई है।

'बीतक' को अब तक उत्तरी भारत की प्रथम खडीबोली गद्यरचना माना जाता रहा है, किंतु डाक्टर गोविंदनाथ राजगुरु द्वारा प्रकाशित मिहरबानु (सं० १६३८–१६६७

वि०) की 'पोथी सचुखंड' (गुरु नानक की हिंदी गद्यमयी जीवनी) तथा हरि जी कृत 'गोसट मिहरबानु' (खड़ीबोली गद्य में मिहरबान की प्रामाणिक जीवनी, रचना सं० १७०३) के परिचय (सम्मेलन पत्रिका, ५०।४) से यह मान्यता गलत सिद्ध हो जाती है।

साध अथवा साध सत्तनामी संप्रदाय

साध अथवा साध सत्तनामी संप्रदाय का इतिहास अभी तक निश्चित रूप से नहीं ज्ञात हो सका है। इनके प्रवर्तकों के रूप में उदयदास, वीरभान तथा जोगीदास के नाम लिए जाते है, किंतु इनके समय तथा पारस्परिक संबंध आदि के विषय में प्राय: अनुमान का ही आश्रय लिया जाता है।

साहित्य—साध अथवा साध सत्तनामी संप्रदाय की तीन प्राचीन रचनाओं के नाम बताए जाते हैं। पहला 'बानी' नामक ग्रंथ है जिसमें वीरभान की पद्यात्मक रचनाएँ संगृहीत बताई जाती हैं, दूसरा ग्रंथ 'आदि उपदेश' के नाम से प्रसिद्ध है जिसमें जोगीदास के गद्यात्मक उपदेश संगृहीत है और तीसरा 'निर्वान ग्यान' ग्रंथ है जो [illegible] के अनुसार १२ पंक्तियोंवाले २५० पृष्ठों में समाप्त हुआ है और [illegible] में है। इसमें उदादास, वीरभान, जोगीदास की रचनाओं के अतिरिक्त कबीर, [illegible] गोरखनाथ आदि की भी कुछ रचनाएँ संकलित है। इसका संप्रदाय में सबसे अधिक मान है। उपर्युक्त तीनों ही ग्रंथ अभी अप्रकाशित है और (हम जैसे) 'बाहरी' को [illegible] में दिखलाया भी नहीं जाता, अत: उनके संबंध में अधिक कुछ नहीं कहा जा सकता।

इस संप्रदाय से संबद्ध दो ग्रंथ प्रकाशित है, किंतु दोनों ही [illegible] अर्वाचीन है। पहला 'साधपंथ' है जिसके लेखक [illegible] हैं जिन्होंने ईसाई धर्म स्वीकार कर लेने पर यह ग्रंथ लिखा था। इसमें गोरख, कबीर, [illegible] आदि की रचनाएँ [illegible] है। दूसरे ग्रंथ का नाम 'नसीहत की पुड़िया' है जिसके लेखक उमरावसिंह साध है। लगभग १०० पृष्ठों की इस पुस्तक में चौदह अध्याय है जिनमें [illegible] संबंधी [illegible] उपदेशों का संकलन है। ईसाई मिशनरियों के ग्रंथों का उल्लेख पहले ही किया जा चुका है।

बावरी पंथ

नाम की समस्या—इस संप्रदाय का नामकरण बावरी साहिबा के नाम पर हुआ है जो सम्राट् अकबर (मृ० १६६२ वि०) की पूर्ववर्तिनी मानी जाती हैं। इनके शिष्य बीरूसाहब और पौत्रशिष्य यारीसाहब माने जाते हैं, किंतु यारी के पूर्व की परंपरा इतनी धुँधली है कि उसका संबंधसूत्र अधिक स्पष्ट नहीं हो पाता।

साहित्य तथा मान्यताएँ—बावरीपंथ की पश्चिमी शाखा के संतों का साहित्य अपेक्षाकृत कम परिमाण में मिलता है। यारी साहब की रचनाओं का एक लघु संग्रह 'रत्नावली' नाम से बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग द्वारा प्रकाशित हुआ है और उनके लगभग ७० फुटकल पद भुरकुड़ा से प्रकाशित 'महात्माओं की बानी' (१९९० वि०) में सम्मिलित

हैं जिनमें फारसी वर्णमाला पर आधारित अखरावती भी है। उनकी रचनाओं से ज्ञात होता है कि वे एक मस्तमौला फकीर थे और उनकी साधना बड़े ऊँचे स्तर की थी। केशवदास की 'अमीघूंट' भी उक्त बेलवेडियर प्रेस से प्रकाशित हो चुकी है (सं० १९७१) और सूफीशाह की कुछ रचनाएँ 'शाहफकीर' छाप से 'महात्माओं की बानी' मे सकलित है। 'केशोदास की रास' शीर्षक के अतर्गत उपर्युक्त ग्रंथ मे भी गयारह पद तथा आगे चलकर ७ रेखते और १० साखियाँ 'केशव' की छाप के संगृहीत है। यद्यपि इन दोनो सतो का कार्यक्षेत्र दिल्ली था, तथापि दोनो की रचनाओ मे प्राप्त होनेवाले कुछ पूर्वी प्रयोगो से वे मूलतः पूर्व के ही ज्ञात होते है; उदाहरणतया केशवदास ने 'जोरली', 'सोदिलै', 'अपन' आदि का और सूफीशाह ने 'उतरब', 'तहवाँ', 'देहियाँ,' 'इहवाँ' आदि का प्रयोग किया है। सूफीशाह की भाषा मे फारसी शब्दो का भी आधिक्य है। पश्चिमी शाखा के सत अजबदास के भी ३२ झूलने तथा ८ रेखते इसके अत मे मिलते है।

इसकी पूर्वी शाखा का साहित्य काफी समृद्ध है। 'बुल्लासाहब का शब्दसार' बेलवेडियर प्रेस से प्रकाशित है और भुरकुड़ा वाले ग्रथ मे भी उनके लगभग सवा सौ पद, झूलना आदि मुद्रित है। अपनी रचनाओ मे बूलासाहब ने अपने गुरु यारी साहब के प्रति अगाध श्रद्धा दिखलाई है--

यारी सतगुर दिया लखाई। 'बूला' निरखि परम पद पाई।।

--महात्माओं की बानी, पद ५५।

यारी दास अगाधि परम पद, कहँ लगि बरनौ उनकी बात।

--वही, पद ५६।

जन 'बूला' कातहि तन मन दे, यारी दास को चेरा।

--वही, पद ६७। आदि

हमने यह देखा कि भुरकुड़ा की परंपरा बूलासाहब से ही शुरू होती है। उनपर यारीसाहब के इस व्यापक प्रभाव को देखते हुए उनकी या उनके शिष्य गुलाल की परंपरा को पृथक् मानना कहाँ तक न्यायसंगत है ?

गुलालसाहब की रचनाओ का एक संग्रह 'गुलालसाहब की वाणी' नाम से बेलवेडियर प्रेस द्वारा सं० १९६७ मे प्रकाशित हुआ है और 'महात्माओं की वाणी' मे भी इनके अनेक पदो के अतिरिक्त एक लबी 'रमैनी' भी संगृहीत है। उसमे 'ग्यानगुष्टि' तथा 'सहस्रनाम' का भी यद्यपि इन्ही की रचनाओ के रूप में निर्देश है, तथापि वस्तुतः वे उनके शिष्य भीखासाहब की रचनाएँ ज्ञात होती है।

भीखासाहब की वाणी के भी दो संस्करण मिलते हैं : एक बेलवेडियर प्रेस द्वारा प्रकाशित तथा दूसरा 'महात्माओं की बानी' मे संकलित। उनकी रचनाएँ छह भागों में विभक्त की जाती है : रामकुडलिया, रामसहस्रनाम, रामसबद (परिमाण में सबसे बड़ा), रामराग, रामकवित्त, भगतबच्छावली।

भीखासाहब के शिष्य गोविंदसाहब की तीन रचनाओं की सूचना डा० राधिका-प्रसाद त्रिपाठी के उपर्युक्त निबंध मे मिलती है। उनके नाम है : गोविंद-योग-भास्कर, सत्यसार और सत्यटेर। पहला स्पष्ट ही योग ग्रथ है, दूसरे में बाह्याचारप्रवृत्त हिंदू मुसलमानो को वादविवाद का त्यागकर घटघटव्यापी साहब से लौ लगाने का उपदेश दिया गया है, तीसरी केवल १८ छंदों की लघु रचना है। उनके तीन सौ के लगभग फुटकल छद भी बताए जाते है।

पलटू साहब के लगभग १००० छंदो का सग्रह बेलवेडियर प्रेस मे तीन भागो मे प्रकाशित हुआ है और उनके अखाड़े के महंत जगन्नाथदास ने भी 'शब्दावली' नाम से इनकी वाणी का सग्रह प्रकाशित करवाया है। इनमे कुडलिया, रेखते झूलने, अरिल्ल तथा शब्द और साखियाँ आदि अनेक प्रकार के छंद मिलते है। स्पष्टवादिता उनकी रचनाओं को सबसे बड़ा गुण है। अरबी फारसी का प्रभाव भी उल्लेखनीय है। इनकी गद्दी से सबद्ध परसादसाहब तथा चतुर्भुजसाहब के कुछ फुटकल पद साधारण कोटि के मिलते हैं और हुलाससाहब की रचनाएँ 'ब्रह्मविलास' नामक ग्रथ मे मिलती है।

हरलालसाहब (चौट बडगाँव) की परपरा में केवल उनकी पाँचवी पीढी के सत देवकीनंदनसाहब की रचनाएँ शब्द, चतुरमासा, कुडलिया और स्फुट पदो के रूप में मिलती है और अभी तक अप्रकाशित है। उनमे यत्र तत्र भगवान् कृष्ण के सगुण रूप का वर्णन भी मिलता है।

गोविंद साहब के शिष्य कृपादास की रचनाओं का एक सग्रह 'बाबा कृपादास की शब्दावली' नाम से उनके पौत्रशिष्य बच्चाराम द्वारा करमा से प्रकाशित किया गया है।

बावरीपथ के सपूर्ण साहित्य का अवलोकन करने पर यह ज्ञात होता है कि उसके पश्चिमी सतो की विचारधारा पर सूफी प्रभाव पर्याप्त मात्रा मे है। उदाहरण के लिये यारी साहब का निम्नलिखित छद द्रष्टव्य है--

ईस दँर मो मातु है रे तहकीक, करै आरिफ सोई।
पूरब मलकूत पश्चिम जबरूत उत्तर के रुख लाहूत सोई॥
दक्षिण तरफ नासूत है रे जुलमत मो मति रहै कोई।
मते मात सब अवश 'यारी' सोई जात कुनद स जोति सोई॥

—महात्माओं की बानी, छद ३६८।

यह प्रभाव उसकी पूर्वी शाखा के सतो मे भी, विशेष रूप से पलटू साहब की रचनाओं में, अनुस्यूत मिलता है। इसी प्रकार उसपर सगुण विचारधारा का भी यत्किंचित् प्रभाव गुलालसाहब के समय म दिखलाई पडने लगता है। इस सबध मे उनकी निम्नलिखित पंक्तियाँ अवलोकनीय हैं जिसमे उन्होंने 'रघुनायक' अथवा 'रघुवंसमणि' का प्रयोग साकार भावना से प्रेरित होकर ही किया है—

कृपासिंधु रघुबंस मणि दुखित देखि आपन कियो ...
सही स्यामवर सही सूर प्रभु तुम सब लायक।
सही राम प्रभु धीर पीर नाशक रघुनायक।।
सही संत सुखरासि प्रेमपद पूरन भावन।
सही सुफल प्रभु दर्श तरत युग युग पद पावन।।
सेसहि करत है संत जन युग युग कीरति जस बरन।
कहै 'गुलाल' तुम धन्य प्रभु का न करत अरु का न करन।।

—वही, छंद ८१७ तथा ८२८।

यह प्रभाव पलटू साहब की रचनाओं में और भी अधिक उभड़कर दिखलाई पड़ता है जब कि उन्होंने जनक के द्वार पर राम की आरती का वर्णन किया है। उनके अखाड़े में हनुमान की पूजा होने और राम सीता आदि की प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित हो जाने से भी इस भावना की पुष्टि होती है। देवकीनंदन साहब की भी रचनाओं में भगवान् कृष्ण की सगुण लीलाओं का वर्णन मिलता है। साथ ही संतों द्वारा प्रतिपादित अद्वैत तथा सुरति शब्दयोग का भी अनुभूतिपूर्ण चित्रण इन संतों की रचनाओं में मिलता है। भीखासाहब तथा पलटूसाहब ने तो काफी विस्तार से शास्त्रीय पद्धति पर अद्वैत विचारधारा का स्पष्टीकरण भी किया है। पलटूसाहब की रचनाओं में निश्चित रूप से साधना की अभिव्यक्ति अधिक निष्ठा स्वानुभूति तथा तीव्रता से युक्त है। इस संदर्भ में उनका एक रेखता द्रष्टव्य है—

प्रेम की घटा में बुंद परै पटापट, गरज आकास बरसात होती।
गगन के बीच में कूप है अधोमुख, कूप के बीच इक बहै सोती।
उठत गुंजार है कुंज की गली में, फेर आकास तब चली जोती।
मानस सरोबर में सहस दल कँवल है, दास पलटू हंस चुगै मोती।।

—पलटू साहब की बानी, भा० २, पृ० १३।

इस प्रकार जो आध्यात्मिक दीवानापन बावरी साहित्य ने अपने पथ में सँजोया वह यारी साहब के सूफी संस्कारों में और अधिक तीव्र हुआ और पूरब में आकर गुलालसाहब और भीखासाहब के वेदांती वातावरण में पोषित हो गया। (पलटूसाहब तक अन्य अवतारों से भी सिंचित होता हुआ अपने पूर्ण और प्रौढ़ रूप में अभिव्यक्त हुआ।

सत्तनामी संप्रदाय

प्रस्तुत सत्तनामी संप्रदाय का प्रवर्तन कोटवा (जि० बाराबंकी) के जगजीवन साहब द्वारा हुआ था जिनका संबंध नारनौल के सत्तनामियों से उतना अधिक नहीं जान पड़ता जितना बावरी संप्रदाय से संबद्ध बूला साहब से ज्ञात होता है। वैसे नारनौल के किसान विद्रोही भी 'सत्तनाम' में श्रद्धा रखते थे, किंतु जैसा पहले संकेत किया जा चुका है, उनका संबंध साधसंप्रदाय के जोगीदास से जोड़ा जाता है।

घासीदास और छत्तीसगढ़ी शाखा का साहित्य--कोटवा शाखा के प्रवर्तक जगजीवनसाहब की सात रचनाएँ प्रसिद्ध है जिनके नाम है : १. शब्दसागर, २. ज्ञानप्रकाश, ३ प्रथमग्रंथ, ४. आगमपद्धति, ५. महाप्रलय, ६. प्रेमग्रंथ तथा ७ अघविनाश। किंतु इनमे से केवल 'शब्दसागर' बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग से 'जगजीवनसाहब की बानी' नाम से दो भागों मे प्रकाशित हुआ है। यह वस्तुतः उनके पदों का संग्रह है। दूसरे भाग मे दूलनदास तथा देवीदास के नाम लिखे उनके कुछ पद्यबद्ध पद्य भी संकलित हैं।

दूलनदास की रचनाओं मे 'भ्रमविनाश', 'शब्दावली', 'दोहावली', 'मंगलगीत' आदि प्रसिद्ध है, किंतु अभी तक उनकी बानियों का एक छोटा सा संग्रह ही प्रकाशित है। देवीदास के नाम से अनेक रचनाएँ मिलती है किंतु अभी तक कदाचित् उनमें से कोई भी प्रकाशित नहीं हो पाई है। प० परशुराम चतुर्वेदी के अनुसार उनकी रचनाओं मे 'गुरुमनाथ', 'चरनध्यान', 'गुरुचरन', 'विनोदमंगल', 'भ्रमरगीत' 'ज्ञानसेवा', 'नारदज्ञान', 'भक्तिमंगल', 'वैराग्यखान' आदि ग्रंथों की गणना की जाती है। उन्हीं के अनुसार गोसाईंदास ने 'शब्दावली', 'दोहावली', तथा 'ककहरा' को, खेमदास ने 'काशीखंड', 'तत्वसार', 'दोहावली' तथा 'शब्दावली' को, सिद्धादास ने 'साखी', 'कवित्त', 'शब्दावली' तथा 'विरहसत्य' को और उनके शिष्य पहलवानदास ने 'उपमातत्विवेक', 'विरहसार', 'मुक्तभान', 'अरिल्ल', 'गुरुमाहात्म्य' तथा कुछ फुटकल पदों की रचना की थी। ये सभी रचनाएँ अप्रकाशित है।

धरनीश्वरी संप्रदाय

धरनीदास--'प्रेमप्रगास' नामक रचना के अंतःसाक्ष्य के अनुसार धरनीदास जी माँझी गाँव (जिला सारन, बिहार) के श्रीवास्तव कायस्थ परशुरामदास के पुत्र थे। माता का नाम बिरमा देवी था। इनके दादा टिकैतराय मुसलमानी आक्रमणों से भयभीत होकर प्रयाग की ओर से भाग गए थे और माँझी में बस गए थे। धरनीदास के चार छोटे भाई थे जिनके नाम क्रमशः बनी, ...छिराम, हलपति और कुलपति थे। धरनीदास का विवाह भी हुआ था और उनके दो पुत्र तथा चार पुत्रियाँ थी, किंतु इनके दोनों पुत्र निस्संतान ही मरे थे। उक्त रचना के आधार पर यह भी ज्ञात होता है कि स० १७१३ के आषाढ़ मास मे शुक्ल प्रतिपदा बुधवार के दिन इनके पिता परसराम का देहांत हो गया। इसी घटना से उनके पूर्वसंस्कार जगे और वे उसी वर्ष विरक्त हो गए। इन्होंने स्वतः कहा है--

> संमत सत्रह सो चलि गैऊ। तेरह अधिक ताहि पर भैऊ॥
> सोच बिसारि आत्मा जागी। धरनी धरेउ भेख बैरागी॥

धरनीदास जी ने स्वतः अपनी जन्मतिथि का उल्लेख नहीं किया है, किंतु उनके अनुयायियो मे इससे संबद्ध निम्नलिखित पंक्तियाँ प्रसिद्ध है--

संवत सोरह सौ चलि गयऊ। अधिक ताहि पर बत्तिस भयऊ।
परसराम अरु बिरमा माई। ता घर देवी (?) प्रगटे आई।

यदि 'देवी' नाम का प्रयोग धरनीदास के ही लिये हुआ हो तो उक्त चौपाई के अनुसार उनका जन्म सं० १६३२ मे सिद्ध होता है जिससे विरक्त होने तक इनकी आयु ८१ वर्ष तक की माननी पड़ेगी जो कुछ अधिक प्रतीत होती है, अतः इस तिथि को पूर्णतया प्रामाणिक नही माना जा सकता।

साहित्य---धरनीदास के तीन ग्रंथ अधिक प्रसिद्ध है---'प्रेमपरगास', 'शब्दप्रकाश' और 'रतनावली'। 'शब्दप्रकाश' की ही अधिकांश रचनाएँ 'धरनीदास जी की बानी' नाम से बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग द्वारा प्रकाशित हैं। 'शब्दप्रकाश' का प्रथम संस्करण सं० १९४४ में नरसिहशरण प्रेस, छपरा से निकला था जिसकी चर्चा शांति निकेतन के बाबू अनाथनाथ बसु ने बिहार उडीसा रिसर्च सोसाइटी के जर्नल (भा० १८) मे की थी। शेष दोनो ग्रंथ अभी हस्तलिखित रूप मे ही पड़े है। पं० परशुराम चतुर्वेदी को 'प्रेमप्रगास' तथा 'रतनावली' की जो प्रतियाँ देखने को मिली थीं उनका लिपिकाल क्रमशः १२८२ फसली तथा १८९९ वि० है (उ० भा० संतपरंपरा, पृ० ५६१)।

'प्रेमपरगास' सूफी शैली की एक प्रेमकहानी है जिसमें मनमोहन एवं प्रानमती के विरह मिलन का प्रतीकात्मक वर्णन है। 'इस्त्रि पुरुष को भाव, आत्मा और परमात्मा' द्वारा उन्हाने अपने प्रतीको का स्पष्ट उल्लेख भी किया है। उन्होने ग्रथरचना का स्थान मेहसि (?) बतलाया है और उसका समय 'पूस सुदि ५ पुष्य नक्षत्र गुरुवार' तो बताया है, किंतु संवत् का उल्लेख नही किया। इसमे प्रसगवश उन्होंने कुछ अपने जीवन का विवरण भी दिया है।

'रतनावली' मे धरनीदास जी ने अपनी गुरुप्रणाली देते हुए उसके महत्व की चर्चा की है और कुछ अन्य नाथयोगियो तथा संतो के भी संक्षिप्त परिचय दिए है। इस ग्रंथ मे पद तथा लीलाएँ मिलती है।

'शब्दप्रकाश' उनकी प्रौढ़तम रचना है जिसके ४३ प्रसगो की ४०१ साखियो मे उन्होंने अपने सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है।

धरनीश्वरी संप्रदाय के अन्य किसी मत की रचनाएँ नही मिलती।

दरियादासी पंथ

दरियादासी पंथ के प्रवर्तक दरियादास बिहार के शाहाबाद जिले के थे और रामस्नेही संप्रदाय के दरियाव या दरिया साहब से भिन्न है जो राजस्थान के थे। दरियादास की कुछ रचनाओ के हस्तलिखित संकलनो के अंत मे उनकी जन्म-मृत्यु-संबंधी तिथियों का भी उल्लेख मिलता है जिससे ज्ञात होता है कि उनका देहावसान सं० १८३७ के भाद्रपद कृष्णपक्ष की चतुर्थी को शुक्रवार के दिन हुआ था।

साहित्य--दरियासाहब के लगभग २० ग्रंथ मिलत हैं जिनमें प्राय: १५००० छंद

तथा छोटी बडी कुल मिलाकर २७००० से अधिक पंक्तियाँ है । अत साक्ष्य से प्रकट होता है कि 'दरियासागर' उनकी प्रथम रचना है और 'ज्ञानस्वरोदय' ('दरियानामा' पर आधारित) उनकी उपान्तिम रचना है--केवल दो रचनाएँ उसके बाद लिखी गई । डा० धर्मेंद्र ब्रह्मचारी शास्त्री के 'संतकवि दरिया' ग्रंथ (पृ० ४१–४६) के आधार पर उनके ग्रंथों का संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जा रहा है--

१. **दरियासागर**--शब्द और नाम की महिमा, छपलोक का प्रसग, मूर्तिपूजा तथा जातिवाद का खडन, हिंदू मुसलमानो की हिंसावृत्ति का विरोध, यम तथा माया की प्रबलता, उनसे बचने के उपाय आदि ।

२ **अग्रज्ञान**--दरिया तथा सत्पुरुष के प्रश्नोत्तर रूप मे निर्गुण और त्रिगुण तथा अभयलोक और सृष्टिरचना का वर्णन, सत्पुरुष के सोलह पुत्रों मे से अल्ला (अथवा निरजन) तथा सुकृत (दरिया का पूर्व अवतार) के सघर्ष तथा छपलोक का वर्णन ।

३ **अमरसार**--दरिया का सत्पुरुष से साक्षात्कार, मिथ्यायोग तथा पाखड का खंडन, अमरपुर तथा उनके पार्श्ववर्ती लोकों का वर्णन, सगुण और निर्गुण तथा स्वरोदय और प्राणायाम आदि का विवेचन ।

४. **भक्तिहेतु**--भक्ति ज्ञान तथा साधु असाधु का वर्णन, सत्सगति की महिमा, मन की चचलता, स्त्री तथा सपत्ति का परित्याग, सत्पुरुष के अशावतार रूप मे सुकृत (दरिया) का उनसे वार्तालाप, हठयोग आदि का खडन तथा विभिन्न लोकों मे होकर हस की अमरपुरयात्रा का वर्णन ।

५ **ब्रह्मचैतन्य**--विहगमयोग और पिपीलिका योग, माया, मन, सद्गुरु, अमरपुर आदि का वर्णन ।

६. **ब्रह्मविवेक**--छपलोक, निर्गुण और त्रिगुण, आदिभवानी और ब्रह्म का वार्तालाप, राम और सत्पुरुष मे भेद, राम की कथा का संक्षिप्त विवेचन, ब्रह्मचर्य की महिमा, दुर्वासा तथा उर्वशी की कथा, सत्पुरुष तथा कृष्ण का अतर शृंगीऋषि, पांडव तथा पराशर की कहानियाँ, निरजन का प्रभाव, सुकृत के विभिन्न अवतार, दरिया का अतिम अवतार ।

७ **दरियानामा**--फारसी मे स्वरोदय सबधी ग्रंथ जिसमे कुरानशरीफ से भी कुछ अश उद्धृत है ।

८ **गणेशगोष्ठी**--गणेश पडित और दरिया साहब के विवाद जिसमे मूर्तिपूजा, कर्मकाड, ईश्वर, अवतार, स्वर्ग, माया आदि विषयो पर विचार प्रकट किए गए है ।

९ **ज्ञानदीपक**--निर्गुण और त्रिगुण, अमरपुर के आनद, पाखडखडन, कुभज भारद्वाज तथा शिव-पार्वती सवाद जिनमे सृष्टिरचना आदि पर विचार है और फिर सुकृत

(दरिया) के विभिन्न जन्मों का आत्मचरित् के रूप में वर्णन है जिसकी चर्चा ऊपर जीवनी के प्रसग मे हो चुकी है।

१०. **ज्ञानमूल**--त्रिगुण देवो से सत्पुरुष की भिन्नता, सत्पुरुष द्वारा मुक्ति का जबू द्वीप भेजा जाना, कबीर और नामदेव के प्रसंग, सत्पुरुष का दरिया को युवराज (शाहजादा) बनाना, उनके परिवार तथा शिष्यो की चर्चा और उनके चमत्कारो का वर्णन।

११ **ज्ञानरत्न**--नोखागढ के जमीदार शुजाशाह तथा दरिया साहब के बीच रामावतार, कृष्णावतार, ज्ञान, भक्ति, माया, मुक्ति, सत्तनाम आदि विषयो पर वार्तालाप।

१२ **कालचरित्र**--दरिया तथा कालनिरंजन के सघर्ष का वर्णन और प्रसंगानुसार सगुण, निर्गुण, शब्द, योग आदि का विवेचन।

१३. **मूर्तिउखाड़**--धरकंधा के गणेशपंडित मे मूर्तिपूजा पर वादविवाद, भवानी की मूर्ति छिपाकर उसकी निरर्थकता दिखाना, परिणामस्वरूप कट्टर हिंदुओ द्वारा दरिया पर आक्रोश दिखलाना, अंत में दरिया की विजय, सत्पुरुष का प्रकट होकर अपने अनेक अवतारों का वर्णन। कुछ लोग इसे फक्कड़ या फकीरदास की रचना मानते है।

१४. **निर्भयज्ञान**--सत्पुरुष का गुणानुवाद, शब्दचिंतन का आत्मा पर प्रभाव, यम के चौदह दूत (प्रलोभन) तथा २५ प्रकृतियों का ज्ञान द्वारा दमन।

१५ **प्रेममूल**--अनेक दृष्टातों द्वारा प्रेम और भक्ति का वर्णन।

१६ **शब्द या बीजक**--यह दरियासाहब के गेय पदों का सबसे बड़ा सग्रह है। अन्य अनेक विषयो के अतिरिक्त इसमे 'अरील' और 'अलिफनामा' (क्रमश: नागरी तथा फ़ारसी अक्षरों पर आधारित ककहरा शैली की रचनाएँ) भी है।

१७ **सहसरानी**--लगभग १००० साखियों का संग्रह होने के कारण इसका नाम 'सहस्रानी' है, किंतु मूलरूप में संभवत: सात सौ साखियाँ ही इसमे रही होंगी।

१८. **ज्ञान स्वरोदय**--'दरियानामा' नामक फारसी ग्रंथ का हिंदी रूपांतर जिसमें ईश्वर, आत्मा, माया, ज्ञान, भक्ति, पुनर्जन्म मुक्ति आदि के अतिरिक्त प्राणायाम अथवा स्वरोदय विज्ञान का विशद वर्णन है।

१९ **विवेकसागर**--गरुड़ की वंदना, यम की यातना, शरीर का लोको में विभाजन, स्वर्ग के आमोद प्रमोद, विहंगमयोग, कौरव पांडवों का युद्ध, प्रायश्चित्त के निमित्त यज्ञ का आयोजन, श्वपच सुदर्शन की अनुपस्थिति में घंटा न बजने और उनको भोजन कराने पर घंटा बजने आदि का वर्णन है।

२०. **यज्ञसमाधि**--इसमें 'विवेकसागर' के ही उत्तरार्ध का विषय अन्य पदों में वर्णित है। इनके अतिरिक्त 'पारसरत्न' तथा 'ज्ञान-चुंबक-सार' नामक दो रचनाएँ उनकी और बतलाई जाती हैं, किंतु इस समय वे अलभ्य हैं।

उपर्युक्त ग्रंथो में अधिकतर साखी (दोहा), गोन्ठा, चौपाई, तोमर, नाराच, छदों का ही पयोग हुआ है—शब्द भाग मे अवश्य ३५ विभिन्न छदो के प्रयोग देखने को मिलते है ।

उल्लिखित सूची के केवल आठ ग्रंथ अभी तक मुद्रित हो सके है—१. दरिया-सागर, २ ज्ञान रत्न, ३ ज्ञानस्वरोदय, ४. भक्तिहेतु, ५. ब्रह्मविवेक, ६. ज्ञानमूलक (दरिया-ग्रथावली के अंतर्गत), ७ ज्ञानदीपक तथा ८ प्रेममूल (पृथक्) । शेष रचनाओं की हस्त-लिखित प्रतियाँ बि० रा० परिषद्, पटना मे सुरक्षित है, केवल 'यज्ञसमाधि' ऐसी रचना है जिसकी प्रति वहाँ नही मिलती ।

कबीर तथा कबीरपंथ की रचनाओं के साथ दरियासाहब को कृतियों का तुलनात्मक अध्ययन करने पर कुछ रोचक तथ्य उद्घाटित होते है । कबीरवाणी के विभिन्न रूपातरो मे बीजक का अत्यधिक प्रभाव दरियासाहब पर ज्ञात होता है । यह स्वाभाविक भी है, क्योंकि दरियासाहब के जीवनकाल म बिहार में कबीरपथ की भगताही शाखा का प्रचार प्रसार अधिक था और उसके संस्थापक भगवान गोसाई के समय मे ही वहाँ 'मूलबीजक' उनके धर्मग्रंथ के रूप मे मान्य था जिसके मूल सकलयिता भी कदाचित् भगवान गोसाईं ही थे (दे० कबीर ग्रथावली, प्रयाग विश्वविद्यालय, भू० पृ० ६६) । कबीरबीजक को छदयोजना, विचारधारा आदि का प्रभाव दरिया साहब का पदावली पर मिलता ही है, कही कहीं दोनो की शब्दावली मे भी अत्यत साम्य है । उलटवाँसियों की प्रतीकयोजना मे भी दोनों में समरूपता है । 'ज्ञानदीपक' मे उन्होंने अपने को कबीर का अवतार घोषित किया है । इन्ही तथ्यों के आधार पर उन्हे बिहार का कबीर कहा जाता है । कबीरवाणी के पश्चिमी रूपांतरों से दरियासाहब का परिचय बिल्कुल नही ज्ञात होता ।

कबीर के अतिरिक्त कबीरपंथी रचनाओं का भी पर्याप्त प्रभाव दरियासाहब की रचनाओं पर परिलक्षित होता है । उनके कुछ ग्रथों के नाम कबीरपथी ग्रथों के नामो से हूबहू मिलते है । उदाहरणतया, निर्भयज्ञान, विवेकसागर, ज्ञानस्वरोदय, यज्ञसमाधि, गणेशगोष्ठी नामक रचनाएँ दरिया साहित्य तथा कबीरपथी साहित्य- दोनो मे मिलती है । किंतु उनके तुलनात्मक अध्ययन से ज्ञात होता है कि इनके वर्ण्य विषयो मे पर्याप्त अतर है । ज्ञानस्वरोदय मे भविष्यत्कथन आदि की प्रक्रियाएँ समान रूप से वर्णित है, यहाँ तक कि कुछ पंक्तियाँ भी समान रूप से मिल जाती है ।

कबीरपथी 'ज्ञानसागर' तथा दरियाकृत 'ज्ञानरत्न' मे काफी साम्य दीख पड़ता है । दोनो मे राम का चरित्र वर्णित है । 'ज्ञानरतन' पर यद्यपि तुलसीकृत 'रामचरित-मानस' का अत्यधिक प्रभाव है तथापि ज्ञानसागर के प्रभाव से भी वह अछूता नही ज्ञात होता । यहाँ तक कि कहीं कहीं इन दोनों में भी समान पंक्तियाँ मिल जाती है । उदाहरणतया कबीर पथी 'ज्ञानसागर' (लक्ष्मी वेंकटेश्वर सस्क०, पृ० ३७) मे लिखा गया है—

टूट्यो धनुष धूम भइ भारी। परसराम तब लाग गुहारी ॥

इससे 'ज्ञानरतन' (पृ० १३२) की यह पंक्ति तुलनीय है--

टूटे धनुष सब्द भौ भारी। परसुराम सुनि लाग गोहारी ॥

इसी प्रकार दरियाकृत 'ज्ञानदीपक' तथा 'विवेकसागर' के अनेक विवरणों पर कबीरपंथी 'ज्ञानसागर' का प्रभाव दिखलाई पड़ता है। 'ज्ञानदीपक' में कबीर साहब की जीवनी से संबद्ध अंश 'ज्ञानसागर' से काफी मिलता जुलता है। दोनों में चंदनसाहु की पत्नी द्वारा जलाशय के निकट शिशु कबीर के प्राप्त होने तथा पति के रुष्ट होने पर पुनः उसी स्थान पर उसके फेंके जाने तथा नीरू नीमा के उसी रास्ते से गुजरने और शिशु को प्राप्त करने की कहानी समान रूप से मिलती है। कबीर के बाल्यकाल तथा रामानंद से दीक्षा ग्रहण करने के विवरण भी दोनों में समान रूप से उल्लिखित है। दरियाकृत 'विवेकसागर' तथा कबीरपंथी 'ज्ञानसागर' में पांडवयज्ञ तथा श्वपच सुदर्शन की कथाएँ समान रूप से मिलती है। कबीरपंथी 'अनुरागसागर' तथा 'ज्ञानदीपक' में भी कबीर की जीवनी तथा कबीरपंथ के द्वादश संप्रदायों से संबद्ध विवरण समान रूप से मिलते है। इन दोनों ग्रंथों में कुछ वाक्यगत साम्य भी मिलते हैं। इतने अधिक साम्य से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि दरियापंथ तथा कबीरपंथ में आरंभ से ही घनिष्ठ संबंध रहा है और दोनों में विचारधाराओं का पारस्परिक आदान प्रदान भी हुआ है। उपर्युक्त रचनाओं में से केवल 'ज्ञानस्वरोदय' ही एक ऐसा अपवाद है जिसमे दरियासाहब कबीरपंथ से प्रभावित नहीं हुए है अन्यथा उल्लिखित सभी कबीरपंथी रचनाएँ पर्याप्त प्राचीन हैं और उन्हीं का प्रभाव दरियासाहब पर माना जा सकता है न कि दरिया का प्रभाव कबीरपंथी रचनाओं पर।

दरियासाहब यद्यपि विशुद्ध भोजपुरी क्षेत्र के थे तथापि उनके ग्रंथों की भाषा प्रधानत पूर्वी अवधी है। कबीर के अतिरिक्त उनपर तुलसी तथा उनके 'मानस' का भी अत्यधिक प्रभाव दिखलाई पड़ता है। उनकी 'ज्ञानरतन' नामक रचना मे तथा 'मानस' मे वाक्यगत तथा भावगत सादृश्य सैकड़ों स्थानों पर मिलते हैं। संभवतः इसी कारण से वे अवधी के प्रयोग के लिये उत्साहित हुए हों अथवा उस समय उत्तरी भारत की साहित्यिक भाषा का यही सामान्य रूप रहा हो, क्योंकि उनकी भाषा मे कबीर के समान खड़ी बोली का पुट भी अत्यधिक मात्रा में है।

दरियासाहब की उपर्युक्त रचनाओं के अतिरिक्त उनके अवलंबियों में से तेलपा के शिवनाथ द्वारा रचित 'भक्तमहातम', 'शिवसागर', दंगसी के रूपसाहब द्वारा लिखित 'ज्ञानटीका', 'ज्ञानगरकाब', 'ज्ञानमणि' तथा मोहनसाहब द्वारा लिखित 'आदि अंकावली' का भी पता चलता है, किंतु अभी तक इनमें से कोई भी प्रकाशित नहीं है।

अघोरपंथ

अघोर मत काफी प्राचीन है। उसका निकटतम संबंध शैव मत की शाक्त तथा तांत्रिक साधनाओं से है और शैव मत का भी संबंध ऋग्वेद तथा अथर्ववेद के रुद्र से जोड़ा

जा सकता है । बौद्ध तंत्र का भी पर्याप्त प्रभाव इसमे ढूँढ़ा जा सकता है । अघोरपथी सत इस मत की प्राचीनता प्रतिपादित करने के लिये प्रायः 'श्वेताश्वतरोपनिषद्' का यह मंत्र उद्धृत किया करते है जिसमे शिव का शरीर 'अघोर' बताया गया है—

या ते रुद्र शिवातनूरघोरा पापकाशिनी।—३।५

ह्वेनसांग (सातवी शताब्दी) ने अघोरियो की चर्चा नग्न कपालधारियो के रूप मे की है जो शरीर पर भभूत लगाते थे और हड्डियो की माला पहनते थे । सातवी शती के ही बाण-भट्ट ने 'हर्षचरित' मे तथा आठवी शती के भवभूति ने 'मालतीमाधव' मे अघोरघट के रूप मे इसी मत के अनुयायियो का वर्णन किया है । किंतु कालातर मे यह मत गोरक्ष सप्रदाय मे अतर्भुक्त हो गया और विवेच्य काल तक आते आते इसके सर्वप्रमुख प्रचारक बाबा किनाराम पर कबीर के सतमत का इतना अधिक प्रभाव पड गया कि इसकी चर्चा सतसंप्रदायो के अतर्गत करने मे कोई अनौचित्य नही माना जा सकता—वैसे इसकी साधना मे अभी पर्याप्त वाममार्गी तत्व वर्तमान है, यद्यपि सतो के सुरति-निरति-योग से भी यह पर्याप्त मात्रा मे प्रभावित हो चुका है ।

साहित्य—साधनापक्ष पर अधिक बल दिए जाने के कारण इस पथ मे साहित्य बहुत कम परिमाण में उपलब्ध होता है । इसके सर्वप्रमुख सत किनाराम की चार रचनाएँ प्रकाशित है . १. विवेकसार २ रामगीता, ३ गीतावली तथा ४ रामरसाल । इनमे से 'पोथी रामरसाल' मे उनके वैराग्यभावनापरक लगभग १६ छद है जिनमे रामावतार की प्रमुख लीलाओ के उल्लेख के साथ शिव जी और महावीर की स्तुतियाँ भी मिलती है । इस प्रकार के पद्यों के दो अन्य लघु सग्रह 'रामचपेटा' तथा 'राममंगल' भी बताए जाते है, किंतु कदाचित् वे मुद्रित नही है । 'गीतावली' तथा 'रामगीता' निर्गुण भावनापरक स्फुट पद्यो के छोटे छोटे सकलन है । उनकी सर्वाधिक प्रसिद्ध रचना 'पोथी विवेकसार' है जो गुरु-शिष्य-सवाद रूप मे है और जिसमे दोहा, चौपाई तथा छप्पय छदो में सतगुरुस्वरूप, ज्ञान, विज्ञान, निरालंब, राम, अजपा, शून्य तथा रक्षा नामक आठ 'अगो' अथवा विषयो का वर्णन है । इस ग्रथ का रचनाकाल 'सत अष्टादस वर्ष मह दस दुइ उभय मिलाप' के अनु-सार स० १८१२ सिद्ध होता है जिसमे ज्ञात होता है कि इसका प्रणयन उन्होने अपनी मृत्यु के लगभग चौदह वर्ष पूर्व किया जबकि उनकी साधना तथा विचारधारा काफी प्रौढ़ता प्राप्त कर चुकी थी । इनकी तुलना मे उनकी अन्य प्रारंभिक रचनाएं प्रभावहीन ज्ञात होती है और यद्यपि उनमें 'रामकिना' या 'किनाराम' की छाप है तथापि भाषा आदि की दृष्टि से उनकी प्रामाणिकता भी संदेहास्पद है ।

सरभग शाखा के भिनकराम तथा उनके शिष्य गोविदराम, मनसाराम और झखरा के टेकमनराम तथा उनके शिष्य दरसनदास (चडगाहा, मोतिहारी) के अतिरिक्त हेकहा मठ के कर्ताराम, धवलराम (द्रष्टव्य : 'कर्ताराम धवलराम चरित्र' नामक मुद्रित ग्रथ) बिलबनिया मठ के प्रवर्तक भगतीदास और बहहरवा मठ के हरलाल व उनके शिष्य बाल-

खंडीदास, गोनरवा–सोहरवा-मठ के तालेराम (मृ० १२६२ फ०), मुसहरी (सारन) के भैंगेनाथ के शिष्य मोतीदास, बोधीदास, भखरामठ के डीहूराम आदि के स्फुट पद मिलते हैं जिनमें सबद्ध हस्तलिखित प्रतियाँ कदाचित् बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना में सुरक्षित हैं। इनमें से प्रसगानुसार कुछ पदों का प्रकाशन डा० ब्रह्मचारी की उपर्युक्त पुस्तक में हुआ है। टेकमनराम के गुरु भीखम बाबा का लिखा हुआ 'बीजक' भी इस शाखा का 'प्रसिद्ध ग्रथ' बतलाया जाता है जिसकी हस्तलिखित प्रति राजामाड़ (बिहार) के टेनाराम नाई के पास बतलाई जाती है। इसी प्रकार सदानद बाबा की कुछ रचनाएं, जो अग्निकाड से बच गई थी, चपारन के मुसहरवा निवासी श्री नरसिह चौबे के पास तथा 'योगांगमुक्तावली' नामक इनकी एक रचना बि० रा० भा० परिषद्, पटना मे सुरक्षित बतलाई जाती है। अभी तक इस शाखा का साहित्य समग्र रूप से प्रकाशित नही हुआ है। सरभग शाखा की सभी रचनाओं की भाषा स्वाभाविक रूप से भोजपुरी है जबकि किनाराम की भाषा खड़ीबोली मिश्रित अवधी है।

अक्षर अनन्य

सतकाव्य के विभिन्न पथों के उल्लेख के साथ एक ऐसे सत का परिचय देना भी नितांत आवश्यक है जो इन पथो मे से किसी से भी सबधित नही है और जिन्होंने अपना कोई नया पथ भी नहीं चलाया। इसका कारण यह था कि वे पथ को भ्रम मानते थे। उन्होंने इसी प्रकार वैष्णव भक्ति सप्रदायों की अवतार सबधी मान्यताओं का खडन भी किया है और योग, भक्ति, वैराग्य आदि का उपदेश भी दिया है। इससे स्पष्ट है कि वे सतमत को माननेवाले थे।

रचना की साहित्यिकता और विविधता की दृष्टि से ये दादू जी के शिष्य सुदरदास जी के समकक्ष ठहरते हैं। इन्होंने २५ ग्रथों तथा अनेक स्फुट छदों की रचना की। इनकी रचना जहाँ ज्ञान और विवेक की चर्चा करनेवाली है, वहीं वह कवित्व की दृष्टि से भी उत्कृष्ट है। ये सतकवियों मे उन कतिपय इने गिने कवियों मे से है जिनकी कविता साहित्यिक गुणों से सपन्न है।

अक्षर अनन्य का जन्मकाल स० १७१० वि० के आसपास माना जाता है। ये दतिया राज्य के अतर्गत सेवढा के राजा महाराज पृथ्वीसिह उपनाम 'रसनिधि' के गुरु थे। अक्षर अनन्य का चिट्ठा है जिसमे उन्होंने पृथ्वीसिह को उपदेश दिया है। अक्षर अनन्य का पन्नानरेश महाराज छत्रसाल तथा प्राणनाथ जी से सपर्क रहा था। अक्षर अनन्य का जन्मस्थान ओड़छा माना जाता है। ये कायस्थ कुल के मानिकचंद की वंश-परपरा मे 'भानसाह' के पुत्र थे। ओड़छा मे रहते हुए इनका सबंध कुछ चमत्कारिक कृत्यों से भी जोड़ा जाता है। अक्षर अनन्य ने कहीं भी अपने गुरु के नाम का उल्लेख नहीं किया। अपनी साधना की पूर्णता की अवस्था में ही वे सेवढा आए थे और उस समय तक उनका एक सिद्ध सत के रूप मे समान प्रतिष्ठित हो गया था। अक्षर अनन्य द्वारा रचित

२६ ग्रंथ माने जाते है, परंतु उनके प्राप्त २५ ग्रंथ निम्नलिखित है जिन्हे मध्यप्रदेश शासन साहित्य परिषद् ने 'अक्षर अनन्य' नाम से प्रकाशित किया है –

१. महिमासमुद्र, २. उत्तमचरित्र, ३ प्रेमदीपिका, ४ भवानीस्तोत्र, ५ गणेशाष्टक, ६. अनन्यप्रकाश, ७. सिद्धान्तबोध, ८. अक्षर अनन्य के सिद्धा, ९. विवेकतरंग, १०. ज्ञानपंचासिका, ११. शिवशक्तिपचीसी, १२. निराधारशतक, १३. उपासनाबोध, १४. ज्ञानयोग, १५. शृंगारयोग, १६. अक्षर अनन्य की साखी, १७ गुणानवत्तीसी, १८ हरिहरसवाद, १९. स्फुट पद्य, २०. ज्ञानतरग, २१ उत्तरमालिका, २२. अष्टागयोग, २३. विवेकदीपिका, २४. वैराग्यतरग, २५. भक्तिभावना।

उपर्युक्त सूची से स्पष्ट है कि अक्षर अनन्य ने भक्ति की विविध भावनाओं का समन्वय किया था और उनके निष्कर्ष बौद्धिक तथा तर्कसंगत थे। उनकी रचना में उपदेशात्मकता और ज्ञान के साथ साथ कवित्व के तत्व भी सुदर रीति से समाविष्ट हैं। ज्ञानयोग के प्रसग में उनका एक छंद इस प्रकार है ----

आनदरूप ससांकमुखी, पट पकज बाट चलै गज गामिनि।
चेतन चारु सुधामयि मूरति, जोति कला मुकुला कुल कामिनि।
'अक्षर' श्री गुरु अक्षर की धुनि, नाद सवाद भरी अभिरामिनि।
प्रान अधार विहार सदा, मन की सुखदानि सुषुम्नानि स्वामिनि।

सुषुम्ना का महत्व इतनी सुदर रीति से किसी भी संत ने वर्णित नहीं किया है। अक्षर अनन्य ने अपने सभी प्रसगो को इसी प्रकार काव्यमय बनाया है। अत. सतकाव्य मे इनको विशिष्ट स्थान प्रदान करना चाहिए।

महाराष्ट्रीय संतों का रीतिकालीन हिंदी काव्य

परंपरा और परिवेश

आधुनिक महाराष्ट्र की प्रादेशिक भाषा के रूप में व्यवहृत मराठी मूलतः आर्य परिवार की भाषा है, जिसका आविर्भाव महाराष्ट्री प्राकृत से हुआ है। महाराष्ट्री प्राकृत का अस्तित्व विक्रम सवत् ५५७ तक था। इसके उपरान्त लगभग सातवीं शताब्दी तक महाराष्ट्री अपभ्रंश प्रचलित रही और उसी महाराष्ट्री अपभ्रंश से आठवीं शताब्दी मे मराठी का विकास हुआ। इसका प्राचीनतम लिखित रूप श्रवणबेलगोला की गोम्मटेश्वर की मूर्ति के नीचे उत्कीर्ण है।[१] इस शिलालेख का समय विक्रम सवत् १४० के लगभग है। मुकुंदराजकृत 'विवेकसिंधु', जिसका रचनाकाल विक्रम सवत् १२४५ है, लिखित मराठी

१. आद्य मराठी लेख---अँकेडेमिक्स, वर्ष १, अक १, सन् १९६८, संपादक डा० भगवानदास तिवारी, प्रकाशक जी० के० पाटील प्राचार्य, सोलापूर कालेज, सोलापूर-२।

साहित्य का प्रथम ग्रंथ कहा जाता है। परंपरा की दृष्टि से संस्कृतनिष्पन्न शब्दावली और देवनागरी लिपि के कारण मराठी हिंदी की सगी बहिन है, अतः इन दोनों भाषाओं में प्राचीन काल से ही आत्मीय भाव पाया जाता है।

तेरहवी शताब्दी से हिंदी-मराठी-संपर्क सुदृढ़ होने लगा था और चौदहवी शताब्दी में, जब मुहम्मद तुगलक ने अपनी राजधानी दिल्ली से दौलताबाद मे स्थानातरित की, तब दिल्ली और मेरठ के आसपास को खड़ीबोली महाराष्ट्र की ओर और आगे बढ गई। यों, महाराष्ट्र में सिद्धो और नाथों की वाणियो के साथ पुरानी हिंदी बारहवी शताब्दी से ही प्रचलित थी, पर कालक्रम की दृष्टि से चौदहवी शताब्दी से महाराष्ट्र मे हिंदी काव्यरचना की परंपरा विधिवत् प्राप्त होती है।

हिंदी साहित्य के इतिहास में निर्गुण काव्यधारा का जो प्रवाह कबीर के युग से तीव्र गति से प्रवहमान हुआ, उसका श्रेय भी महाराष्ट्रीय संत नामदेव की हिंदी पदावली[२] को है। नामदेव के पूर्व जो ज्ञानमार्गी हिंदीकाव्य प्रचलित था, उसमें सिद्धों और नाथों की रहस्यवाणियो का प्राधान्य था। वह तात्कालिक साधको की एक ऐसी ज्ञानपिटारी थी, जिसमे योगसाधना की अनेक प्रणालियों और अटपटी रहस्यानुभूतियों की गूँज तो थी, पर हृदय को रससिक्त करनेवाली सरसता नही थी। नामदेव ने ज्ञान की उस रहस्य-साधना को लोकमानस के अनुरूप मोड़कर एक उल्लेखनीय ऐतिहासिक कार्य किया।

अपने आरंभिक जीवन में नामदेव चद्रभागा नदी के तट पर स्थित पढरपुर के विठोबा के उपासक थे, पर ज्ञानेश्वर और उनकी बहिन मुक्ताबाई से प्रेरित हो उन्होने नाथपंथी साधक विसोबा खेचर से दीक्षा ली और सगुणपरक निर्गुण की आराधना शुरू की। इस प्रवृत्तिपरिष्कार का परिणाम यह हुआ कि नामदेव के लिये विठोबा केवल मूर्ति ही नही, मूर्ति की सीमा से विकसित हो सृष्टि के कण कण मे विद्यमान सक्रिय, सचेतन विराट् ब्रह्म हो गए। वे नामदेव को सर्वत्र, सर्वव्यापी रूप मे दृग्गोचर होने लगे और नामदेव कह उठे--विट्ठल बिनु ससार नही।

नामदेव वारकरी संप्रदाय के संत थे। वे भक्ति और केवलाद्वैत को अविरोधी मानते थे, इसीलिये उनके काव्य मे ज्ञान और भक्ति एक दूसरे के पूरक है। हम उन्हे ज्ञानमूलक भक्ति के गायक और भक्तिपरक ज्ञान के चिंतक कवि मानते हैं। इसका एक महत्वपूर्ण कारण यह है कि नामदेव और उनके परवर्ती महाराष्ट्रीय संतो ने आत्मोद्धार के लिये हृदयपक्ष और बुद्धिपक्ष के बीच भक्ति और ज्ञान की सत्ताओं को एकमेक कर सगुणोपासना और निर्गुणाराधना का तादात्म्य स्थापित किया है। इसीलिये उनकी रचनाओं

---

२. संत नामदेव की हिंदी पदावली, सपादक डा० भगीरथ मिश्र व राजनारायण मौर्य, प्रकाशक पूना विश्वविद्यालय, पूना, प्रथम सस्करण, सन् १९६४।

में हिंदी साहित्य की तरह ज्ञान और भक्ति की धाराएँ अलग अलग नहीं दीखतीं बल्कि उनका संमिश्रित प्रवाह ही दिखाई देता है। महाराष्ट्रीय संतों की कृतियों में सर्वव्यापी ब्रह्म के साथ साथ राम, कृष्ण, विठोबा, शिव, गंगा आदि की वंदनाएँ उनकी ज्ञानमूला भक्ति के प्रमाण हैं।

महाराष्ट्र में नामदेव के युग से ही ज्ञानेश्वर, गोदा महाराज, सेना नाई, भानुदास, एकनाथ, अनंत महाराज, श्यामसुंदर, संत जनजसवंत आदि की हिंदी रचनाएं मिलती हैं। छत्रपति महाराज शिवाजी, उनके पिता श्री शहाजी, पुत्र संभाजी और पौत्र साहू छत्रपति के दरबार में हिंदी कवियों का बड़ा संमान था। स्वयं छत्रपति शिवाजी के भक्तिपरक पद हिंदी मे उपलब्ध हैं, जो उनके हिंदीप्रेम के ज्वलंत प्रमाण हैं। उनका एक हिंदी पद इस प्रकार है—

जय हो महाराज गरीब निवाज।
बंदा कमीना कहलाता है, साहिब तेरी लाज॥
मैं सेवक बहु सेवा माँगू, इतना है सब काज॥
छत्रपति तुम सेकदार शिव, इतना हमारा अर्ज॥[१]

रीतिकाल में महाराष्ट्र में जैन, ईसाई, इस्लाम और वैष्णव धर्मों के साथ साथ शैवमत व लिंगायत संप्रदाय का अच्छा प्रचार था और नाथसंप्रदाय, महानुभावपथ, वारकरी संप्रदाय, दत्त संप्रदाय और समर्थ सप्रदाय खूब क्रियाशील थे। इनमें भी वारकरी संप्रदाय सर्वाधिक लोकप्रिय और समृद्ध था। महाराष्ट्र के जनकवि संत तुकाराम इसी संप्रदाय के थे। वे हिंदी साहित्य के रीतिकाल की कालगत सीमा में वर्तमान थे, अतः महाराष्ट्र के रीतिकालीन संतों की हिंदी रचनाओं की परपरा तुकाराम से ही शुरू होती है।

महाराष्ट्रीय संत और उनका रीतिकालीन हिंदी काव्य

१. तुकाराम

महाराष्ट्र के सर्वाधिक लोकप्रिय संत तुकाराम का जीवनकाल विक्रम संवत् १६६४–६५ से १७०७ तक माना जाता है। इनका जन्म शूद्र वर्ण में हुआ था। इनके पिता का नाम बोल्हो बोवा और प्रथम पत्नी का नाम रखूबाई था। रखूबाई के निधन के बाद तुकाराम ने जीजाई से दूसरा विवाह किया, पर जीजाई के कर्कश स्वभाव के कारण इनकी उनसे नही पटी। तुकाराम विरक्त हो गए और अभग रचने लगे। इनके अभंगों का महाराष्ट्र में वही स्थान है जो हिंदीभाषी क्षेत्रों मे कबीर के पदों और साखियों का है।

---

१. हिंदी साहित्य को विदर्भ की देन, डा० प्रयागदत्त शुक्ल, प्रथम संस्करण, सन् १९६१, पृष्ट १०, प्रकाशक विदर्भ हिंदी साहित्य समेलन, नागपुर।

कबीर और तुकाराम में भाव-विचार-साम्य विलक्षण है। दोनों ने ही आत्मानुभूति और आँखों देखी को वाणीबद्ध करने का प्रयत्न किया। दोनों ने कर्मकांड की निरर्थकता, बाह्याडंबर की व्यर्थता, शास्त्री पंडितों की टें टें और धर्म के नाम पर चलनेवाले ढोंग का कट्टर विरोध किया। दोनों ने समान रूप से पाखंडोच्छेदन कर धर्माभिमान, आत्मनिष्ठा, चित्तशुद्धि, सदाचार, सत्य, अहिंसा और मानवप्रेम के साथ भूतदया का प्रचार प्रसार किया।

कबीर के ही समान तुकाराम की वाणी में लोकव्यवहार का सूक्ष्म निरीक्षण, मानवस्वभाव का गंभीर ज्ञान, जबरदस्त आत्मविश्वास और जातिसमाज व धर्म के प्रदर्शनीय खोखलेपन पर आक्रमण करने की प्रवृत्ति बलवती थी। दोनों ने ही अपने अपने युग की जनता को उच्चतर जीवनमूल्यों से परिचित कराया।[१]

तुकाराम के अभंगों की संख्या ४,०१,३४,००० कही जाती है, परंतु अभी तक उनके लगभग ५,००० अभंग ही प्रकाश में आए हैं।

तुकाराम की हिंदी रचनाओं में गोपीप्रेम, पाखंडोद्घाटन, नीति तथा भक्ति का विवेचन मिलता है। उनकी कुछ साखियाँ इस प्रकार हैं —

चीत मिलै तो सब मिलै, नही तो फोकट संग।
पाणी पाथर यक ही ठौर, कोर न भीगे अंग ॥१॥
ज्याका चीत लागा, मेर राम को नाम।
कहे तुका मेरा चीत, लागा त्याके पाउँ ॥२॥
लोभी के चीत धन बैठा, कामीन के चित काम।
माता के चीत पुत बैठा, तुका के चीत राम ॥३॥

२. कान्होबा

ये संत तुकाराम महाराज के अनुज[२] और परमार्थमार्गी शिष्य थे। तुकाराम के सदेह स्वर्गारोहण के बाद भी ये जीवित थे। मराठी में इनके अभंग प्रसिद्ध हैं। कोशोत्सव स्मारक में पृष्ठ ९७ पर श्री रामचंद्र भालेराव ने 'तुक्या बंधु' के नाम से इनका एक पद प्रकाशित करवाया है—

चुग चुराकर माखन खाया, ग्वालिन का नदकुमार कन्हैया।
काहे बड़ाई दिखावत मोही, जानत हू प्रभु मन तेरो सबही ॥

---

१. प्राचीन मराठी वाङ्मयाचें स्वरूप, ह० श्री० शेणोलीकर, द्वितीयावृत्ति, सन् १९६२, पृष्ठ १५६–५७, प्रकाशक स्कूल अंड कालेज बुक स्टाल, कोल्हापुर।

२. महाराष्ट्र सारस्वत, मूल लेखक वि० ल० भावे, पुरवणी लेखक डा० शं० गो० तुलपुले, पाँचवीं आवृत्ति, सन् १९६३, प्रकाशक पाप्युलर प्रकाशन, ३५ सी, ताडदेव, मुंबई–३४, डब्ल्यू० बी०।

और बात सुन ऊखल सों गला, बाँध लिया तूने अपना गोपाला ।
फिरता बन बन गाय चरावत, कहे 'तुक्या बंधु' लकरी ले ले हाथ ।।

३. श्री समर्थ रामदास

शिवाजी के गुरु और प्रेरक श्री समर्थ रामदास राष्ट्रधर्मी संत थे । इनका जन्म चैत्र शुक्ल ६, संवत् १६६५ और समाधिकाल माघ कृष्ण ६, सवत् १७३८ है । बचपन में इनका नाम नारायण था । इनके पिता श्री सूर्याजी पंत बड़े सूर्यभक्त और माता राणूबाई बड़ी धार्मिक वृत्ति की महिला थी । शैशव से ही नारायण बड़े हृष्ट पुष्ट और भगवद्भक्त थे । किशोरावस्था मे विरक्ति के भाव इनके मन मे इतने अधिक उमड़े कि विवाह के पूर्व ही ये शुभमगल प्रसंग से सावधान हो भाग गए । विरक्त साधु के रूप मे इन्होने आसेतु हिमाचल यात्रा की और आत्मबोध तथा लोककल्याण के लिये श्रीमद्दासबोध नामक राष्ट्रीय ग्रथ लिखा ।[1] समर्थ के मनाचे श्लोक महाराष्ट्र के घर घर मे प्रसिद्ध हैं ।

महाराष्ट्र में समर्थसंप्रदाय के केंद्रों में समर्थ के हजारो पद हिंदी में मिलते हैं, जिनका सकलन, संपादन और अनुशीलन होना चाहिए । समर्थ के पदों में उनके नाम के साथ साथ उनकी छाप 'दास फकिरा' भी मिलती है—

सब घट भाई रे खुदाई ।
खाली जागा नई रे खुदा बिना ज्यानत नाई रे ।।
झुट कहे सो झुट दिवाने, खबर न पाई रे ।।
'दास फकिरा' कहे इतना हि अतर भाई रे ।।

समर्थ रामोपासक थे, अत: जिस प्रकार से तुलसीदास 'सियाराममय सब जग जानी' लिखकर राम को सर्वव्यापी मानते थे, उसी तरह समर्थ रामदास भी अपने राम को सर्वत्र परिव्याप्त मानते थे—

जित देखो उत रामहि रामा । जित देखो उत पूरन कामा ।।
तृण तरुवर सातो सागर । जित देखो उत मोहन नागर ।।
जल थल काष्ठ पषाण अकासा । चंद्र सूरज रह तेज प्रकासा ।।

श्री समर्थ की प्रेरक शक्ति और संगठनक्षमता अद्भुत थी । वे ज्ञानेश्वर, एकनाथ, नामदेव और तुकाराम के समान महाराष्ट्र के महान संतो में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं ।

४. जयराम पंत

जयराम पंत समर्थ रामदास से आयु मे बड़े थे, पर समर्थ के अनुयायी होने के कारण

---

१. श्री समर्थ रामदास, जीवनी और तत्वज्ञान, डॉ० भगवानदास तिवारी, प्रथम संस्करण, सन् १९५९, पृष्ठ १ से १६, प्रकाशक श्री समर्थ सेवामंडल, सज्जनगढ़, महाराष्ट्र ।

समर्थ-संत-मंडल में उनकी गणना समर्थ के बाद ही होती है। इनका जन्म गोकुलाष्टमी विक्रम संवत् १६५६ और निधन भाद्रपद कृष्ण ११, विक्रम संवत् १७२६ को हुआ। मराठी में इन्होंने अनेक ग्रंथ लिखे, पर हिंदी में भी इनके फुटकर भजन मिलते हैं, जिनकी भाषा मराठीहिंदी है—

ज्याके भेद पायबे कु बेद गुंग हो रहे,
ऐसे कोई हय गुणी वाके नीव नीव है।
च्यारमुख, पंचमुख, सेषमुख असेषमुख,
वाके गुणन की माला वरने सो कोन है॥
नारदादि सिद्ध साध, व्यास, वाल्मीक, शुक्र
च्युक च्युक के गये सो मोह की नदी बहे।
ज्याहि आदि मध्य नही, अंत कहत जयराम पंत,
कहाँ लौं बराई करौ, मोहे येक जीभ है॥[१]

५. देवदास

ये समर्थसप्रदाय के संत थे और दादेगाँव के रामदासी मठ के अधिपति थे।[२] हिंदी में इन्होने अनेक पद और गारुड़ी लिखे हैं। गारुड़ी में सँपेरे के रूपक द्वारा आध्यात्मिक भावो का ज्ञापन किया गया है। कुछेक पदों मे गोपी-कृष्ण-प्रेम का वर्णन है—

देख्यो रे भाई बहुरूपी का ख्यात॥
नवनागर नवरस लीला, अजेब बने नंदलाल।
दस अवतार रामकृष्ण बन्यो है, सब गोपी खुशाल॥
ईत गोकुल ईत मथुरा नगरी, सबे भई नीहाल।
दास कहे सब गोपी ग्वालन, तन मन धन बेहाल॥

६. बहिणाबाई

महाराष्ट्र सारस्वत में बहिणाबाई का जन्म संवत् १६८५ और तुकाराम से दीक्षा ग्रहण करने का काल संवत् १६१७ दिया गया है।[3] इससे पता चलता है कि विक्रम सवत् १६६७ के पूर्व ही बहिणाबाई के पति रत्नाकर पाठक का निधन हो गया था और वे संसार से हटकर आध्यात्मिकता की ओर मुड़ गई थीं। तुकाराम के स्वर्गारोहण के बाद बहिणाबाई कुछ समय तक समर्थ रामदास के सत्संग से भी लाभ उठाती रही, पर मूलतः वे तुकाराम की ही शिष्या थी।

---

१. हिंदी को मराठी सतों की देन, आचार्य विनयमोहन शर्मा, संवत् २०१४, प्रथम संस्करण, भूमिका, पृष्ठ 'ख', प्रकाशक बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना–३।
२. महाराष्ट्र सारस्वत, पृष्ठ ३२०।
३. वही, पृष्ठ ३०७–३०८।

हिंदी में बहिणाबाई के फुटकर पद मिलते हैं। उनकी एक 'गौलण' देखिए—

जमुना के तिर धेनु चरावत है, गोपाल री ॥
गीत प्रबंध हास्य विनोद, नाचत है श्री हरी।
धर कानो मे कुंडल लाल, सिर पर मोरपखा नँदलाल ॥
अबीर गुलाल सबके माला, हार सुवास पिन्हाये।
जाइ जुई चंपक कोमल, चंदन चोवा लाये ॥
छंद धीमा धीमा सुनावत है हरि, बँध गयो मेरो प्रान।
बहिणी कहे सो भूल गए, मेरा हरि से लगा है मन ॥

बहिणाबाई के हिंदी पदो की भाषा अव्यवस्थित होने पर भी उनमें भावों की नारी-सुलभता है।

७. बयाबाई :

बयाबाई श्री समर्थ रामदास की शिष्या थी। 'रामदास गुरु उनकी दासी। दास वचन फिरे देस बिदेसी।' से उनका रामदास की शिष्या होना सिद्ध होता है। बयाबाई के एक शिष्य गिरिधर थे, जिन्होने समर्थप्रताप नामक रचना लिखी है। मराठी मे बयाबाई के बाद बाइयाबाई नाम की एक अन्य सत कवियित्री हुई हैं जो बयाबाई के ही मठ की उत्तराधिकारिणी थी, अत. बयाबाई और बाइयाबाई दोनो को एक नही मानना चाहिए महाराष्ट्र सारस्वत मे बयाबाई की रचना की प्रशंसा की गई है और उनकी एक हिंदी रचना का उद्धरण दिया गया है—

बाग रँगेली महाल बना है। महाल के बीच में झुलना खुला है ॥
इस झुलने पर झुलो रे भाई। जनन मरन की भूल न आई ॥
दास बया कहे गुरु मैया ने। मुझकु झुलाया सोहि झुलाने ॥[1]

बयाबाई के पदों में आत्मविभोरता, प्रासादिकता और अरबी फारसी के लोक-प्रचलित शब्दों का प्रयोग दर्शनीय है।

८. रंगनाथ स्वामी निगडीकर :

रामदास पंचायतन में रंगनाथ स्वामी[2] का नाम मिलता है, जिससे ये समर्थ-संप्रदाय के संत सिद्ध होते है। इनका जन्म विक्रम संवत् १६६६ मे हुआ था। १४ वर्ष की अवस्था में ये घर से निकल बदरिकाश्रम पहुँचे और बाद मे ज्ञानसपादन कर अपने घर लौट आए। इन्होंने अपने पिता निजानद से ही गुरुमंत्र लिया। इनकी वाणी में ज्ञानमार्गी चर्चा पाई जाती है---

---

१. वही, पृष्ठ २४८।
२. वही, पृष्ठ ३३६।

देखा नाथ गोपाला जग मो ॥
कलयुग स्थाने ले अवतार, आप रूप अविनाशी ।
चारो मुक्ती सेवा करती, होकर उनकी दासी ॥
घट पर घट मो आप रमे है, आप गुरु आप चेला ।
जोग जुगत मे हमेसा खेले, झूठे घर में झूले ।
छह अठरा का विचार करके, पडत होकर भूले ॥
सब संतन में नाथ रँगेली ।
रंगनाथ जन गुरु बन ते, आप दूजा नहि कोई ॥
अदर बाहर भज ले भाई, रूप रेखा नाहीं ।
गुरु नाम का धौसा बाजे, निरगुन खेल खेला जग मो ॥

रंगनाथ स्वामी की भाषा अनगढ़ है और उसमे फक्कड़पन विद्यमान है ।

९. मानसिंह

ये शिवकालीन (विक्रम सवत् १६८४ से १७३८ तक) नाथपंथी संत थे। इनके हिंदी पद मिलते है, जिनकी भाषा तत्कालीन महाराष्ट्रीय हिंदी है—

राग व्याहाग (विहाग)
बिगरी कौन सुधारे नाथ । बिगरी कौन सुधारे ॥
बनि बने का सब कुछ साथी । दीननाथ गुसांई रे ॥
भरी सभा में लज्या राखी । दीनानाथ गुसांई रे ॥
करु बेल की करु तुमरिया । सब तीरथ फिर आई रे ॥
गंगा न्हाई जमुना न्हाई । तो बिन गई कड़वाई रे ॥
दया धरम का ज्याल बनाया । समुद्र बीच तिर आया रे ॥
कर्मी धर्मी पार उतर गये । पाप सो नाव डुबाई रे ॥
भली बुरी ये दोनो बहिना । परापरी सो आई रे ॥
नाथ जलंदर मुद्रा वाले । मानसींग जस गाई रे ॥

१०. राम कवि :

इनके पिता का नाम नृसिंह, पितामह का नाम गोपीनाथ और गुरु का नाम नारायण स्वामी था, जो पेठण के निवासी थे । महाराष्ट्र सारस्वत के अनुसार ये विक्रम संवत् १७०२ में उपस्थित थे, क्योंकि सवत् १७०२ में इनके द्वारा लिखा गया 'प्रदोषव्रत माहात्म्य' नामक साढ़े तीन हजार ओवियो का ग्रंथ मिला है ।[१] राम कवि की हिंदी रचनाओं

---

१. महाराष्ट्र सारस्वत, पृष्ठ ८०७ ।

से इनके भाषाधिकार का अच्छा परिचय मिलता है। कृष्णजन्मोत्सव संबंधी इनका एक छंद देखिए--

ताल लिए वरुण, कुबेर करताल लिए,
झाँज लिए पवन, दंग अमरेस है।
बीन लिए नारद, पितामह सारंगी लिए,
मरुत सीतार, मुहचग लिए सेस है॥
गावे गुरु, सनक, सनंदन, ज्यम (यम), अनल,
गणेश उच्चार करे, चंद्रमा दिनेस है।
राम कहे गोकुल में नंदन मुकुंद भए,
देवन की सभा मधे नाचत महेस है॥

११. नरहरि रामदासी

ये समर्थसंप्रदाय के संत थे और विक्रम संवत् १७०७ से १७५७ तक वर्तमान थे। इनकी रचनाओं मे बोलचाल की हिंदी का लिखित रूप मिलता है—

नंद के नंदन, कौस (कंस) निकंदन, त्रिभुवन वदन आवतु है।
वेद पुरान बखानत भारत, व्यास गुणी ज्यन गावतु है॥
इंद्र, फणींद्र, दिवाकर, चंद्र, चतुर्मुख, रुद्र मनावतु है॥
सूरत देखत मन की बूझत, नरहरि के मन भावतु है॥

१२. समर्थशिष्य कल्याण

समर्थशिष्य कल्याण का असली नाम अंबाजी था। इनके पिता कृष्णाजी पंत भोगूर या बायुल के पटवारी थे। बाद मे वे सन्यासी हो गए। अंबाजी गृहस्थ थे, पर प्रथम विवाह के बाद ये विरक्त हो गए। विरक्तावस्था में इन्होंने कोल्हापुर में एक स्वप्न देखा, जिसके अनुसार ये पारगाँव के बरवाजी पंत की पुत्री रखमाबाई से विवाहकर ने के लिये प्रेरित हुए। पहली पत्नी से इन्हे एक पुत्र और दूसरी पत्नी मे दो पुत्र और एक कन्या प्राप्त हुई। इनकी अधिकृत जन्मतिथि नहीं मिलती, पर इतना निश्चित है कि इन्होंने श्री समर्थ रामदास से विक्रम संवत् १७१२ मे दीक्षा ली, तथा आषाढ़ शुक्ल १३, संवत् १७७१ को इनका स्वर्गवास हुआ। ये समर्थ रामदास के परम प्रिय शिष्य थे। इनकी हस्तलिपि बहुत सुंदर थी, अतः समर्थ की वाणी इन्होने ही लिपिबद्ध की। ये प्रायः सदैव समर्थ के साथ रहते और उनकी रचनाओं के साथ साथ अपनी रचनाएँ भी मराठी और हिंदी में लिखते थे। इनकी रचना का एक नमूना इस प्रकार है—

अलख जागे, गुरु गोरख जागे॥
अलख निरंजन भाव न भावे। सब घट व्यापक अलख जागे॥
जो कोऊ राखे गोइ हीया कू। सो ही गोरख अलख जागे॥
मन की जोगिणी समजत बझे। नाथ निरंजन कल्याण जागे॥

१३. गोस्वामी नंदन

ये तंजौर के निवासी गोस्वामी के पुत्र थे। इनका मूल नाम वासुदेव और जीवन-काल संवत् १७१५ से १७८५ तक था। इनके गुरु का नाम निरंजन स्वामी था। काव्य-विषय और काव्यशैली की दृष्टि से ये कबीर की परंपरा के महाराष्ट्रीय संत प्रतीत होते हैं। इनकी भाषा खड़ीबोली मिश्रित मराठी हिंदी है। ब्राह्मणों पर इन्होंने प्रहार किया है—

वेद पुरान सबहिं पढकर औरन कु सिकलावे।
आप हमेशा बिखिया रस मो पैसे मुफ्त गमावे।।
ऐसा मन उचक्का देखा पक्का चोर खुदाई।
कहते हैं गोसामी नंदन, दूर कर उसकू भाई।।

१४. केशव स्वामी

ये शिवाजी के समसामयिक संत थे और संवत् १७३५ के लगभग पैठण के आस-पास कहीं वर्तमान थे। इनके गुरु का नाम नारायण था। इनकी समाधि हैदराबाद में है। केशव स्वामी ने संतो की तरह मन की महिमा बतलाते हुए कहा है—

मन मे गगा, मन में काशी,
मन में सदा शिव गुरु अविनाशी।।
मन को मरम न जाने कोय।
मन समजो सो विरला होय।।१।।
मन में जमुना, मन मे द्वारका,
मन में ब्रिंदाबन, प्रभू हरी सरीखा।।२।।
पिड ब्रह्माड की, मन में रचना,
कहे केशव मन ब्रह्म ही समजना।।३।।

इनकी रचनाओं मे भक्ति की तन्मयता, अभिव्यक्ति की स्पष्टता और प्रेम की मस्ती छलकती है। इन्होने कृष्ण को सगुण के साथ निर्गुण ब्रह्म भी माना है।

१५. रामदासी वामन पंडित

महाराष्ट्र मे वाई के निकट भोगाँव में इनकी समाधि है, जिसपर इनका जन्म संवत् अस्पष्ट है, पर निधनकाल शके १६१० अर्थात् विक्रम संवत् १७४५ स्पष्ट दीखता है। इससे ये समर्थ के समकालीन जान पड़ते हैं। इनकी कीर्ति एक कीर्तनकार के रूप में थी, अत: इनके हिंदी पदों में संगीतात्मकता अधिक है—

तौ मैं हरि का भगत कहावूं।।
हरि का रूप सब जग देखूं। और न कोई को जावूं।।
गीतों मों सब भगत बड़ाई। हरि भगत को सुनावूं।।
वामन कहे दूजा देव न मानूं। सब देव हरि रूप भाऊं।।

१६. मध्व मुनीश्वर :

मध्व मुनीश्वर का नाम त्र्यंबक कहा जाता है। इनका जन्म नीरा नदी के तट पर कलबोली नामक ग्राम में विक्रम संवत् १७४६ में और निधन संवत् १७८८ में दुरबाडा में हुआ था। महाराष्ट्र सारस्वत मे इनका निधनकाल शके १६५६ अर्थात् विक्रम संवत् १७९१ दिया गया है।[1] इनके पदों में सगुण की भक्ति और सतो को फटकार की भावना एक साथ दिखाई देती है। एक ओर ये हिंदी के कृष्णोपासक सगुण भक्तों की तरह कृष्ण की रूपमाधुरी का गान करते हैं तथा दूसरी ओर निर्गुण संप्रदाय के सतों की तरह पंडितों, योगियों, कीर्तनकारों और काजियो के पाखंड पर कठोर प्रहार करते हैं। कृष्ण के मधुर स्वरूप की व्यंजना करते हुए मुनीश्वर जी कहते हैं—

भज मन साहेब मोहनलाल।
कानन कुंडल मुगुट विराजे, गल बीच मोतन माल।
मृगमद आधो तिलक लगायो, सौंधे भीने बाल॥
पीत लँगोटी दामिनि चमके, ऊपर वोढ़ी साल।
कुंज गलन में बंसिब जावे, गावै माधव ख्याल॥

धार्मिक ढोंगियों पर प्रहार करनेवाली उनकी स्पष्टोक्तियाँ भी देखिए—

बम्हन पढा है बेद कू। समजा नही उसी के भेद कू।
पूजे फत्तर के देव कू। पंडित हुवा तो क्या हुआ ?
अंदर नही दिल पाक रे। सेवा जिकिर कू च्याख रे।
ऊपर लगावे खाक रे। जोगी हुवा तो क्या हुवा ?
माला लिई है हात में। जपता रहे दिन रात में।
दिल नही उस बात मं। भजनी हुवा तो क्या हुआ ?
फजर किताबां खोलता। मु से नसीहत बोलता।
अपने अमल नही डोलता। काजी हुवा तो क्या हुवा ?

मध्व मुनीश्वर की उपदेशात्मक पद्धति भी बड़ी प्रभावशाली है। सांसारिक जीव को उनका सदेश है—

अब चल भाई हमारे सात।
जो कुछ होना होयगा, सो परमेसर हात॥
अपने महल में अकल से जाना, घोर अंधेरी रात।
इस पानी में वैसा रेना, जैसे कमल का पात॥

---

१. महाराष्ट्र सारस्वत, पृष्ठ ४६१।

१७. अमृतराय :

ये ऋग्वेदी देशस्थ ब्राह्मण थे और विदर्भ के बुलढाना जिले में फत्तेखेड़ा गाँव के रहनेवाले थे। इनका जीवनकाल विक्रम संवत् १७५५ से १८१० तक माना जाता है। इन्हें संस्कृत, मराठी और हिंदी का अच्छा ज्ञान था। अंबिका सरस्वती के अतिरिक्त इनके तीन और भी गुरु बताए जाते है। इन्होंने सानुप्रास शब्दावलीयुक्त 'कटाव' छंद लिखने में अच्छी सफलता पाई है। इनका कार्यक्षेत्र औरंगाबाद का निकटवर्ती प्रदेश रहा है। इनके कटाव का कुछ अंश इस प्रकार है--

श्री वृंदावन मो ब्रजराज विराजत है ॥
सत्यलोक ते ब्रह्मदेव जब गोप भेख धर देखन आए।
गोवन के लघु रच्छपाल, कर पुच्छ धरत,
सिर मोरपच्छ गर गुंज गुच्छ, विछ लच्छ,
श्री वच्छ चिह्न प्रभु तुच्छ गन्यो बल परिच्छिबे को,
बच्छा बाल सखा सकल चुराए।
ग्रह ग्रह की बछिया, नई नई अछिया,
धोरी, धुमरी, कारी, पियरी, हरी विचित्रा, कपिला बरनी,
प्रतच्छ हरनी,
रंग चाल, खुर सिध भाल, गोपाल बाल,
सब विष्णु अवतरे।

कटाव छंदों को लिखने में शब्दों को तोडने मोड़ने की प्रवृत्ति तो है, पर इससे अन्वात्मकता की रक्षा हुई है। अमृतराय के परवर्ती कवियों ने भी कटाव लिखने का प्रयत्न किया है, पर वे अमृतराय सी सफलता कम पा सके हैं।

१८. माधव :

ये अमृतराय के तीन शिष्यों में से एक थे। महाराष्ट्र सारस्वत के अनुसार अमृतराव का निधन विक्रम संवत् १८१० मे हुआ,[1] अतः माधव का जीवनकाल अठारहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध और उन्नीसवी शताब्दी का पूर्वार्ध माना जा सकता है। अपने गुरु की ही भाँति माधव भी कटाव लिखने मे पटु थे। हिंदी में इनके दो पद मिले हैं, जिनमें से एक इस प्रकार है—

प्रात समय रघुबीर जगावे कौशल्या महतारी।
उठो लाल जी भोर भयो है, संतन को हितकारी ॥

---

१. वही, पृष्ठ ४६६।

बंदीजन, गंधर्व, गुण गावे, नाचे दै दै तारी।
शैलसुता शिव द्वारे ठाडे, होत कोलाहल भारी॥
सुन प्रिय वचन उठे रघुनंदन, नैनन पलख उघारी।
चितवन अभय देत भक्तन को, मुक्त भए नर नारी॥
कर स्नान दान नृप दीन्हे, गो, गज, कंचन थारी।
जय जयकार करत धन्य माधव, रघुकुल जस विस्तारी॥

१६. सिद्धेश्वर महाराज :

ये अमृतराय की शिष्यपरंपरा के संत और माधव के समकालीन थे, अतः इनका जीवनकाल विक्रम संवत् १७५० से १८५० के लगभग माना जा सकता है। इनकी वाणी में देह का वर्णन देखिए—

बँगला खूब बनाया बे, उसमो माधव सोया बे॥धृ०॥
पंचतत्व की भीत बनाई, तीन गुनन का गारा।
राम नाम की छान छबाई, चानेहारा न्यारा॥
उस बंगले कु नव दरवाजे, बीच पवन का खभा।
आवे जावे सब कोई देखे, ये ही बड़ा अचभा॥
आशा दुराशा माया नाचे, मन मो ताल बजावे।
सुरत निरत मिरदंग बजावे, राग छतीसा गावे।
बँगला खूब बनाया बे, उसमो माधव सोया बे॥

२०. शिवदिन केसरी

इनका मूल नाम शिवदिननाथ था। इनके पिता कृष्णाजी पंत यजुर्वेदी ब्राह्मण थे। इनका जीवनकाल विक्रम संवत् १७५५ से १८३१ तक माना जाता है। जीवननिर्वाह के लिये ये नौकरी करते थे, पर ज्ञानेश्वरी पर प्रवचन सुन ये विरक्त हो गए और पैठण में गंगा किनारे मठ बनाकर रहने लगे। इनकी हिंदी रचनाओं में सांसारिक संबंधों की निस्सारता, शरीर की नश्वरता, योगसाधना की विविध दशाओं का वर्णन और सदाचार का महत्व पाया जाता है—

किसका कौन संघाती बाबा॥धृ०॥
अकेला आवे, अकेला जावे, हात हुजूर की पाती।
तन मन धन जो गर्वहि मत कर, कहत पुरान की पोथी॥
मति तात जोरू लरका, घर होय मसान की माती।
शिवदिन के प्रभु केसरि साहेब, देख दिल भर मार्था॥

कुंडलिनीसाधना और अर्धचंद्र के अमृतपान का विवरण देखिए—

उलट पलट मो दर्शन गाढ़ा। रूप रेख बिन पुरुष ठाढ़ा॥
द्वि दल पर किया चपेटा। तब सहसदल पर भौंरा पैठा॥

अजरामर पद केसरि गुरु का । पाया शिवदिन आदि अंत का ।।
अमृत पीया अर्ध चद्र का । धोका नहिं अब जनम मरन का ।।

शिवदिन केसरी की रचनाओ में उपमा, रूपक, विभावना आदि अलंकार तथा अरबी फारसी के लोकप्रचलित शब्द व्यवहृत हुए है ।

२१. कृष्णदास

ये बाजीराव पेशवा (विक्रम संवत् १७५८ से १७९७ तक)[1] के समकालीन महाराष्ट्रीय संत थे । इनके हिंदी पदो में कृष्णलीला के वर्णन मिलते है—

जसोमत सुत नंदलाला, ब्रज की गेल डोले ।
पीताबर कछनी कस, गव्वन के संग जात,
फेट मुरली मुकुट शीस, बैस बैन बोले ।।१।।
ग्वाल बाल सग लिए, अग अग जोरे,
हात लकुटि दूध मटकि, सखियन सो जोरे ।।२।।
वृंदावन कुज जात, गावत हरि कृष्णदास,
यह छबि न कही जात रसनामृत थोरे ।।३।।

२२. मकुंदानंद

ये निमाड़ प्रदेश में खंडवा के रहनेवाले थे, परंतु बचपन में ही पितृविहीन हो जाने के कारण खानदेश मे जेतापुर मे आकर रहने लगे । कुछ समय तक इन्होने औरंगजेब के पुत्र मुअज्जम के यहाँ नौकरी भी की, परंतु अंत में सवत् १७५८ मे स्वप्न मे गुरुमंत्र ले विरक्त हो गए और देशाटन के लिये निकल पड़े, खूब घुमक्कड़ी की और मराठी के साथ साथ हिंदी में भी छंद रचे । यथा--

च्याहे जल कमल रे, कोकिल बसंत हित,
　　च्याहे मोर मेघ रे, चकोर इक चद को ।
च्याहे चक्रवाक परकाश परभात भई,
　　च्याहे मेहु सरवर, सिंपी स्वांति बुंद को ।।
नादन कु स्वाद च्याहे, कुरंगी कुलहु मोहे,
　　भुजंग च्याहे च्यंदन, औ भृंगी मकरद को ।
च्याहत चरनारविंद विलोकि मुकुदानंद,
　　वसुदेव सुतानंद नंदनक नंद को ।।

---

१ इतिहासकर्ते मराठे, डा० ग० ह० खरे, पृष्ठ ८, प्रकाशक भारत इतिहास संशोधक मंडल, पूना-२, प्रथम संस्करण, सन् १९५१ ईस्वी ।

२३. शिवराम

ये मनमौजी साधु थे। इनका जन्म विक्रम संवत् १७६० में हुआ था। इनके गुरु पूर्णानंद थे। कल्याणी (नजामशाही) में इनका मठ था। इनके हिंदी दोहों मे कबीर की साखियों सी सरसता है—

साधू हमारे ग्रात्मा, हम साधू के जीव।
साधू दुनिया यो बसे, ज्यों गोरस मे घीव॥
साह का घर उच्च है, जैसे बड़ी खजूर।
चढ़े तो चाखे प्रेम रस, गिरे तो चकनाचूर॥

उपर्युक्त दोहे का भाव कबीर के निम्नलिखित दोहे से तुलनीय है—

साधु कहावन कठिन है, ऊँचा पेड़ खजूर।
चढ़े तो चाखे ग्रमी रस, गिरे तो चकनाचूर॥

२४. मानपुरी

मानपुरी के जन्मकाल, जन्मस्थान, मातापिता, गुरु ग्रौर ग्रारंभिक जीवन के बारे में ग्रभी तक कोई निश्चित तथ्य उपलब्ध नही है। उनके नाम के साथ 'पुरी' शब्द जुड़ा हुग्रा देख उन्हें दसनामी गोसावी घराने का संत कहा जा सकता है। इनका निधन सवत् १७८७ ग्रौर समाधिस्थल देवगिरि (दौलताबाद) है। इनकी भाषा काफी प्रभावशाली है ग्रौर बड़ी दूर तक कबीर की वाणी मे साम्य रखती है। मानपुरी के पदो का सकलन धूलिया, पूना ग्रौर त्रिपुटी मे हस्तलिखित ग्रथों मे मिलता है। ग्रभी ग्रभी 'मानपुरी पदावली'[१] का एक संस्करण छप गया है।

मानपुरी की वाणी के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

मृगनाभ सुगध भरे भटके, बन मुं सुगध चित्त उदासी।
घट में नट ग्रापु विराजतु हे, सुद न लेत मुरख बुद्ध विनासी॥
देही के देव को भेद न जाणत, कैसी कटेगी तेरी जम फाँसी।
कहे मानपुरी गुरु गुमान बिना, नित मीन मरे जल मौहि पियासी॥

मानपुरी उत्तरभारत में केवल घूमे ही नही, बल्कि वहाँ सुदीर्घ काल तक रहे थे, ग्रतः इनकी वाणी पर कबीर का गहरा ग्रसर खोजा जा सकता है। पूर्वोक्त छद के भाव कबीर के "तेरा साँई तुझ में, ज्यो पुहुपन मे बास। कस्तूरी का मिरग ज्यों, फिर फिरि ढूँढे घास।" ग्रौर "पानी बिच मीन पियासी। मोहि सुन सुन ग्रावन हाँसी।" से मिलते जुलते हैं।

---

१. 'मानपुरी पदावली', संपादक रामचंद्र चिंतामणि ढेरे व ग्रशोक कामत, पुष्पक प्रकाशन, पूना, सन् १९६७, प्रथम संस्करण।

इसी तरह मानपुरी का पद, "जग गुलज्यारी रे, जीते देखो नित लाली ।" कबीर के "लाली मेरे लाल की जित देखो नित लाल ।" से तुलनीय है ।

मानपुरी ने गंगावदना, शिव-प्रशस्ति-परक पद भी रचे है, जिनके आधार पर इन्हें केवल ज्ञानमार्गी संत ही नही, एक अच्छा भक्त भी माना जा सकता है । पाठकों के हृदय को छू जानेवाली कवित्वशक्ति मानपुरी की वाणी में स्पष्ट दीखती है ।

२५. हरिहर

हरिहर का जीवनवृत्त पूर्णत ज्ञात नहीं है, पर इनकी हिंदी, कन्नड़ और मराठी में रचनाएँ मिलती हैं, जिनमे उर्दू, ब्रज, दक्खिनी हिंदी, मराठी और गुजराती के शब्दों का प्रयोग पाया जाता है । प्राप्त सूचनाओं के अनुसार ये विक्रम सवत् १७९६ मे विद्यमान जान पड़ते है । इनका एक पद देखिए--

साहेब मन्न प्यारा, आपे आप हुवा सारा ।
सबमे भरपुर होकर, आखर सबसु समभय न्यारा ।।
मुझमे मध्य कु बेचुन कर करु, कुपट दिल का भारा ।
ऊठत बैठत सोवत जागत, हरिहर पद मो थारा ।।

२६. देवनाथ महाराज

ये विदर्भ के सुर्जी ग्राम के निवासी सत थे । इनका जीवनकाल विक्रम सवत् १८११ से १८५६ तक माना जाता है । प्रारभ में ये मल्लविद्या के रसिक थे पर बाद में नाथपंथी, भागवतसप्रदायी गोविंदनाथ के शिष्य हो गए । इनके काव्य में कृष्णभक्ति, सतों का निर्वेद और नाथ निरजन का वर्णन पाया जाता है । कृष्णलीलाओं का वर्णन इन्होने हिंदी के कृष्णभक्तो की भी तन्मयता से किया है--

बंसी कुंज बन मो मधुर बजी ।।धृ०।।
आधि रैन सुख चैन पिया संग, सुनत कान भयो रजी ।।१।।
बेगि उठि चली कुंज रहा सो, बावरी भई मोहे कछु न सुजी ।।२।।
देवनाथ धुन सुनत कान तब गृह धन सुत संसार तजी ।।३।।

इनकी हिदी रचनाओं में बारहमासी, आध्यात्मिक होली, भगवद्भक्ति का महत्व और गुरुमहिमा के अतिरिक्त निर्गुणियाँ संतों की तरह निर्वेद के पद भी मिलते हैं--

रमते नाथ फकीर । कोई दिन याद करोगे ।।
कोई दिन बैठे पालखि घोड़ा । कोई दिन शिर पे अबदागीर ।।
कोई दिन वोढे शाल दुशाला । कोई दिन भगवे चीर ।।
कोई दिन धोती और लँगोटी । कोई दिन नंगे पीर ।।
कोई दिन खासा पलँग बिछौना । कोई दिन जमिन पे शीर ।।

ज्योतिस्वरूप निर्गुण निरंजन की सर्वव्यापकता का इन्होंने इस तरह परिचय दिया है---

घट घट मो विराजे निरंजन साई रे।
निर्गुण ज्योतिस्वरूप सदाघन। नैनन मो छब छाई ॥१॥
रूप न गून अनाम अगोचर। व्याप रह्यो सुखदाई ॥२॥
देवनाथ प्रभुनाथ निरंजन। आपहि आन न कोई ॥३॥

२७. गोपालनाथ :

ये औरंगाबाद के पास मल्लावतपुर के निवासी थे और रगनाथ के शिष्य थे। इनकी जन्मतिथि के बारे में कोई अधिकृत जानकारी नही मिलती, पर ऐसा कहा जाता है कि इन्होने श्रावण कृष्ण १५, विक्रम सवत् १८२३ को त्रिपुरी मे जीवित समाधि ली थी। इनकी रचनाएँ शास्त्रज्ञान की अपेक्षा सतसत्सग का प्रभाव द्योतित करती हैं---

कर विचार मन रे, तू क्या करे गुमान।
दो दिन के मेजवान, आखिर जायगा नादान ॥
क्या साथ लाया, ले जायगा नही।
आया अकेला जब, जायगा तुही ॥
भाइ बहिन लड़के, तु ज काम न आवेंगे।
बाँध मारे जम के दूत, तुजको न छुड़ावेंगे ॥
कर सवदा सुकृत का तुज काम आवेगा।
जब बिच आत्माराम, बिहरि है कृपाल ॥
साधु संग बुझले, भरपूर है गोपाल ॥

२८ दयालनाथ

दयालनाथ का जन्म विक्रम संवत् १८४५ में हुआ था। बचपन में इनके पिता ने, जो विदर्भ के निवासी थे, इन्हें देवनाथ को सौंप दिया था, अत बाद मे ये देवनाथ के ही शिष्य हो गए। देवनाथ जी इन्हे बचपन मे 'दयाल्या' कहकर सबोधित करते थे, इसलिये इन्होंने अपना नाम दयालनाथ रख लिया। ये बडे मधुर गायक और प्रत्युत्पन्नमति वक्ता थे। सारे महाराष्ट्र का इन्होंने पर्यटन किया था। अपने गुरु के समाधिस्थ होने पर ये सुर्जी अंजनगाँव के देवनाथी मठ के अधिष्ठाता हुए। इन्होंने सतो और भक्तों की तरह गुरुमहिमा का बखान किया है---

गुरु के चरण चित लागा जी ॥
लागा जी प्रीत धागा जी। अनुरागा जी ॥धृ०॥
गुरु किरपा अंजन नैनन मो। लेतही भवभ्रम भागा जी ॥१॥
लाल सुफेद पर काला नीला। बोठा भवर बागा जी ॥२॥

वामो पीत शिखा झमकत है। जोतहि झगनग जागा जी ॥३॥
परब्रह्म देवनाथ दयाला। देखत भवभ्रम भागा जी ॥४॥

दयालनाथ ने कृष्णलीला, गणपति, शंकर, विठोबा आदि के बारे में खूब और अच्छी रचनाएँ लिखी हैं। इन्होंने उद्धव-गोपी-प्रसंग पर भी अपनी कलम चलाई है, अतः उनकी यह रचना हिंदी साहित्य की भ्रमरगीत-परंपरा-विषयक पदावली की दृष्टि से उल्लेखनीय है—

ल्यावो बनवारी उधो, ल्यावो बनवारी।
प्रेम कटारी तूं काहे कु मारी, कहियो बात हमारी।
जसोमतिनंदन ममता छोड़ी, प्रीति सभी वाकू कुबरी रे ॥
घायल घूमै घाम मो, करै न चित मन बोध।
लहु नयना टपकते, बिसर गई सब सुद ॥
रूपहीन कुल जात की, प्रीत करे नंदलाल।
गोपिन मोहरे डार के, चाल चलत ब्रिजपाल ॥
करत करि बिसरत बुरि, येहि देही येहि रीत।
किन सुख पायो ये सखि, परदेसन की प्रीत ॥
उधो कहो व्हाँ जाय के, मर गई ग्वालण।
एक बार तुम सींचियो, अमृत जसोमति प्राण ॥
वा कुबरी ने चंदन चर्चो जादू ही कर डारा।
देवनाथ प्रभुनाथ दयालु बिन, मारे हमे मारी ॥

दयालनाथ के उक्त पद में असूयाभाव और उपालभ की व्यंजना मार्मिक है और एक मराठी संत की हिंदी कृति के नाते उसका अपना महत्व है।

२६. गंगाधर

ये विक्रम संवत् १८५० के आसपास विद्यमान जान पड़ते है। इनकी रचनाओं में भगवन्नाम का महत्व, मानव शरीर की नश्वरता और आत्मानुसधान के भाव पाए जाते हैं—

रसना क्यों भूली हरिनाम ॥धृ०॥
षडरस भोजन स्वाद बनायो, कूर कपट की खान ॥
या नरदेह को गर्व न कीजे, ज्यों बादर को घाम।
गंगाधर के अंतर्यामी, खोजो आत्माराम ॥

गंगाधर की रचनाओं मे भाषा की सफाई, भावों की स्पष्टता, संगीतात्मकता और प्रभाव पाया जाता है।

३०. नरहरिनाथ

ये पैठणनिवासी संत शिवदिन केसरी के पुत्र तथा उनके ही शिष्य थे।[१] इनका जीवनकाल अठारहवी शताब्दी के अंत से उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्ध तक माना जा सकता है। इनपर नाथसंप्रदाय का प्रभाव अधिक था और ये बड़े मनमौजी कवि थे। इनकी रचनाओ में इनके स्वभाव का फक्कड़पन और बेतकल्लुफी झलकती है—

क्या वे किसी से काम, हम तो गुलाम गुरु घर के।
बेपरवाह मनमौजी राजा, हम अपने दिल के ॥१॥
नही किसी से दरकार, टुकड़ा माँगकर खाते हैं।
गुरु ज्ञान के अमल नशे में, हमेशा झूलते है ॥२॥
गगन मडल के दस नादों का, आवाज सुनते हैं।
तीनों ऊपर धुनी लगाकर, बैठे रहते है ॥३॥
चाँद सूरज मशाल लेकर, आगे चलते है।
अर्ध चंद्र का अमृत प्याला, भर भर पीते है ॥४॥
नाही रहना, काम करो कुछ, डेरा गिरता है।
नरहरि मौला जल्दी आकर, हुशार करता है ॥७॥

३१ महीपति

ये शिवदिननाथ केसरी के पुत्र नरहरिनाथ के शिष्य थे और स्वभावतः बड़े घुमक्कड थे। इनपर नाथ संप्रदाय का स्पष्ट प्रभाव है। इनके एक हिंदी पद मे उन्मनी मुद्रा और ब्रह्म के दीदार का वर्णन देखिए—

साँई अलख पलख में झलके, लहलहाट बिजली चमके ॥
मोतियन मेह बरसत सो, ब्रह्मा ज्ञान विधाता ।
खूब घटा, बनी खूब छटा,
तारा सो बिमन रूप सजता, पालनवाल भरमता,
गोल गुंडाला, चकर उजाला शिव मतवाला,
'मही' रूप तीनो का हुआ,
चल आगे और कुछ हुआ,
बड़ी लहर बहर बने था,
मन उन्मन होके गरके, लहलहाट बिजली चमके ॥

महीपति ने विक्रम संवत् १८७६ में ग्वालियर में समाधि ली।[२]

---

१. महाराष्ट्र सारस्वत, पृष्ठ ४५२।
२. वही, पृष्ठ ४५३-४५४।

३२. गुंडा केशव

ये महाराष्ट्र में विदर्भ के संत थे और यवतमाल जिले में बिड्डल नामक गाँव मे रहते थे। महाराष्ट्र सारस्वत के अनुसार ये विक्रम सवत् १८८७ में वर्तमान थे,[1] अतः इन्हे रीतिकालीन सत ही मानना चाहिए। इनके जीवनकाल के बारे में अद्यावधि प्रामाणिक जानकारी नही मिलती। इनके हिंदी पदो मे बोलचाल की भाषा प्रयुक्त हुई है—

॥ ख्याल ॥
हुआ है मनुआ, सब तिरथ सपड़ा ॥
सकल तिरथ को आद गुसाई, वाकू लगन ज्यड़ा।
भटकत कोण फीरे दिल्ल ज्यामे, गुरुमुख भ्रम निबड़ा ॥
बेहाली मो मस्त सदा है, मब तन प्रेम मड़ा।
केशोदास येकीन साबुत से हिरदे खूब खड़ा ॥

उपर्युक्त सतों के अतिरिक्त महाराष्ट्र में अनेक ऐसे सत थे, जो मराठी के अतिरिक्त हिंदी में भी रचनाएँ लिखा करते थे। इन सभी संतो की वाणियों का उद्धार होना आवश्यक है। विश्वास है, महाराष्ट्र में जैसे जैसे हिंदी के अनुसधान की प्रवृत्ति बढ़ेगी, इन प्राचीन कवियों को काव्यपरंपरा को प्रकाश में आने का सुयोग प्राप्त होगा।

मराठी संतों की हिंदी रचनाओं की काव्यगत विशेषताएँ

महाराष्ट्र के सतो को हिंदी रचनाओ का सूक्ष्मानुशीलन करने पर यह स्पष्टतः परिलक्षित होता है कि महाराष्ट्रीय संत निर्गुण और सगुण ब्रह्म मे हिंदी के सतो और भक्तों की भाँति अलग अलग दृष्टि नही रखते थे, इसीलिये उन्होंने निर्गुण ब्रह्म और सगुणो-पासना का तादात्म्य स्थापित कर सदाचारपूर्ण धर्माचरण को आत्मोद्धार का साधन माना है। उनकी वाणी शरीर की नश्वरता, सांसारिक सबधो की निस्सारता के साथ साथ मन, वचन और कर्म की पवित्रता पर जोर देती है। आध्यात्मिक जगत् मे ब्रह्मचिंतन और लोकव्यवहार में त्यागपूर्ण सरल जीवन को वे मानवादर्श बतलाते है और धर्म के नाम पर चलनेवाले पाखडों का निषेध करते है। ज्ञानमार्गी होने पर भी वे भक्ति के विरोधी नहीं हैं. अतः उनकी भक्ति ज्ञानमूला होते हुए भी लोकधर्मी है। वह मनुष्य को ससार में विदेहता के साथ उन्नत विचार और दिव्य भाव संयुक्त आस्थाविश्वास संपन्न निर्मल जीवन बिताने की प्रेरणा देती है। इसी आधार पर मराठी सतों की भक्ति को हम लोकाभि-मुखी ज्ञानमूला भक्ति कहना अधिक समीचीन मानते है।

छंदःशास्त्र की कसौटी पर मराठी संतो की हिंदी रचनाएँ खरी नहीं उतरतीं, पर उनमें ओवी, अभंग, मुंढा, गौलण, कटाव, दोहरा, ध्रुपद, ख्याल, लावणी आदि छंदो और रागों का संगीतात्मक सौंदर्य है। उनकी भाषा में मराठी, गुजराती, व्रजी, उर्दू, फारसी

---

१. वही, पृष्ठ ८६३।

आदि भाषाओं के तत्सम और तद्भव शब्दों के साथ साथ दक्खिनी हिंदी के शब्द भी मिलते हैं। स्वरों के मामले में हमें उनकी शब्दावली मे आगम, लोप, परिवर्तन और विकार आदि सब नजर आते है। कहीं कहीं तो ये सत शब्दों के बंधन तोड़कर भी भावप्रवण वचनों के कथन मे व्यग्र दीखते है। इस दृष्टि से उनकी भारुड, गारुड़ी आदि रचनाओं मे उनके कथनांतर्गत सत्य का चमत्कार दर्शनीय है।

यद्यपि मराठी संतों की हिंदी रचनाओं में हमें महाराष्ट्र में प्रचलित तत्कालीन सधुक्कड़ी हिंदी का रूप मिलता है, जिसमें भाषा की सफाई कम है, पर इससे उनकी देन मे कोई कमी नही आती, क्योंकि उनकी रचनाओं मे भाषा की अपेक्षा भावगत अर्थवत्ता मूल्यवान् है और उसके आधार पर ही रीतिकालीन हिंदी साहित्य के इतिहास में हम राष्ट्रभाषा हिंदी के तद्देशीय मूल्य, महत्व और प्रदेय का आकलन कर सकते है।

गुजराती संतों का रीतिकालीन हिंदी काव्य

परंपरा और परिवेश

विक्रम की पाँचवी छठी शताब्दी में भारत मे प्रविष्ट हो गये और आधुनिक गुजरात, सौराष्ट्र और कच्छ मे बसनेवाली गुर्जर जाति के गुर्जर अपभ्रंश से गुजराती भाषा का विकास हुआ। विक्रम की अठारहवी शताब्दी के गुजराती कवि प्रेमानंद (संवत् १७०६ से १७७१ तक) ने अपने काव्य मे 'बाधु नागदमण गुजराती भाषा' लिखकर तत्कालीन काव्यभाषा को गुजराती कहा है। इसकी नागरी, चरोतरी, सूरती और सोली प्रमुख बोलियाँ है। आजकल गुर्जर ही नहीं, अपितु गुजरातनिवासी हिंदू, मुसलमान, पारसी, ईसाई आदि सभी गुजराती बोलते है।

गुजराती की प्रकृति, वाक्यरचना, शब्दसंपदा और व्याकरण हिंदी से भिन्न होने पर भी हिंदी के प्रतिकूल नही है अत गुजराती भाषाभाषियों को हिंदी कभी भी प्रतिकूल प्रतीत नहीं हुई। प्राचीन काल में नाथों और सिद्धों की वाणियों के माध्यम से गुजरात मे पुरानी हिंदी का प्रचार हुआ। बदरीकेदार, रामेश्वरम्, द्वारका और पुरी की यात्रा करनेवाले संतों के लिये गुजरात मार्ग मे पड़नेवाला अनिवार्य क्षेत्र था, अत: गुजरात से गुजरते समय उन्होंने अपनी आध्यात्मिक साधनाजन्य उपलब्धियों और लोककल्याण की भावनाओं को सधुक्कड़ी भाषा से यहाँ प्रचारित कर अपने सदुपदेशों से गुजराती जनजीवन को प्रभावित किया। रीतिकाल के पूर्व यहाँ जैन वैष्णव, सूफी, सिद्ध, नाथ, शैव और शाक्त संप्रदायों का प्रचार हो चुका था। कबीर के अनुयायी राम कबीरिया पंथ और संत कबीरिया पंथ गुजरात में प्रभावशाली थे अत: इसी परंपरा में गुजरात के रीतिकालीन संतों ने अपने अपने संप्रदायों और पंथों को जोड़ पूर्ववर्ती परंपरा को आगे बढ़ाया।

रीतिकाल के पूर्व गुजरात में पुष्टिमार्ग को प्रशस्त करने के लिये वल्लभाचार्य जी के पुत्र गोसाईं विट्ठलनाथ जी ने विक्रम संवत् १६१३ से १६३८ के बीच छह बार यात्राएँ की थीं। डाकोर और द्वारका कृष्णभक्ति के प्रधान केंद्र थे, जिनकी धार्मिक महत्ता आज

भी अक्षुण्ण है। रामभक्ति के प्रशंसकों की भी गुजरात में कमी नहीं थी। चक्रधर, शेख बहाउद्दीन बाभन, काजी महमूद दरियायी, माडण, हीरादास, समर्थदास (बका जी), शाह अलीगाम धनी आदि कुछ एक ऐसे गुजराती संत है, जिनकी हिंदी रचनाएँ विक्रम की सत्रहवी शताब्दी के अंत तक गुजरात में लोकप्रिय हो चुकी थी। डा० रामकुमार गुप्त ने 'गुजरात के संतों की हिदी साहित्य को देन' में चक्रधर का समय संवत् १२५० से १३३० तक[1] माना है, जिसके आधार पर गुजराती सतो के हिंदी काव्य की परंपरा विक्रम की तेरहवी शताब्दी के उत्तरार्ध से मानी जा सकती है।

गुजराती संत और उनकी हिंदी रचनाएँ

विक्रम की अठारहवी शताब्दी के आरंभिक वर्षो मे प्राणनाथ और अखा जीवित थे, अत: इन दोनो संतों से रीतिकालीन गुजराती संतों के हिदी काव्य की परंपरा का आविर्भाव माना जा सकता है।

१. प्राणनाथ

प्रणामी संप्रदाय के संत तथा सुप्रसिद्ध लोकनायक, छत्रसाल बुंदेला के गुरु, स्वामी प्राणनाथ जी का जन्म जामनगर (काठियावाड) मे आश्विन कृष्ण १४, विक्रम संवत् १६७५ को हुआ था। इनके पिता का नाम केशव ठाकुर और माता का नाम धनबाई था। इनकी दो पत्नियाँ थीं—फूलबाई और तेजकुँवरि तथा ये स्वयं 'इंद्रावती' और 'महामति' नाम से रचनाएँ लिखते थे।

प्राणनाथ जी अध्ययनशील स्वभाव के संत थे। इन्होने वेद, कुरान, इंजील आदि धर्मग्रंथों का अध्ययन किया था तथा हिदी, सस्कृत, अरबी और फारसी भाषाओं से अच्छा परिचय पाया था। बचपन से ही इनके मन मे विरक्ति के भाव थे अत: विरक्त होने के बाद इन्होंने खूब पर्यटन किया और सर्वधर्मसमन्वय और मानवऐक्य की भावना से प्रेरित हो श्रीमत्तारतम्यसागर नामक ग्रथ लिखा, जिसमे प्रकाश, कलश, सनंध, कीर्तन, खुलासा, खिलवल, परिक्रमा, सागर, शृंगार, सिधी मारफतसागर, कयामतनामा संग्रहीत हैं। सनंघ का प्रणयन कुरानशरीफ के मानवप्रेम और भूतदया के तत्वो के आधार पर हुआ है। प्राणनाथ जी की वाणी शास्त्रसंमत होने पर भी साहित्यिक सौष्ठव और काव्यकौशल की दृष्टि से उच्चस्तरीय नही है। इनकी पदावली का स्वरूप इस प्रकार है—

---

१. गुजरात के संतों की हिदी साहित्य को देन, डा० रामकुमार गुप्त, प्रकाशक जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, प्रथम संस्करण, सवत् २०२४, पृष्ठ ८५।

२. महाराजा छत्रसाल बुदेला, डा० भगवानदास गुप्त, प्रकाशक शिवलाल अग्रवाल ऐंड कंपनी, आगरा, प्रथम संस्करण, सन् १९५८, पृष्ठ १०४।

रस मगन भई सो क्या गावे ।।टेक।।
बिचली बुध मन चित मनुग्रा । पाय शब्द सीधा मुख क्यों आवे ।।
बिचल गई गम वार पार की । ग्रांग अग न कछु मावे ।
पिया रस मे यों भई महामती । प्रेम मगन क्यों करसी गावे ।।

संवत् १७३० मे प्राणनाथ जी सूरत पधारे थे और संवत् १७३५ मे उन्होंने मनघ लिखा ।

प्राणनाथ जी और छत्रसाल का सबंध श्रीसमर्थ रामदास और छत्रपति महाराज शिवाजी जैसा था । प्राणनाथ जी ने छत्रसाल जी को निम्नलिखित आशीर्वाद दिया था—

छत्ता तेरे राज मे, धकधक धरती होय ।
जित जित घोड़ा मुख करे, तित तित फत्ते होय ।

स्वामी प्राणनाथ जी की मृत्यु पन्ना मे शुक्रवार, श्रावण कृष्ण ३, संवत्१७५१ को हुई ।[1]

२. ग्रखा

अखा सुनार का जन्म जेतलपुर और निवासस्थान अहमदाबाद था । अपनी ही आँखों के सामने पिता, पत्नी और छोटी बहन के मृत्युप्रसगो को देख इनके मन मे विरक्ति का भाव जागा और इनका मन भगवद्भक्ति की ओर उन्मुख हुआ । पहले इन्होंने गोसाईं विट्ठलनाथ जी से पुष्टिमार्ग मे दीक्षा ली, पर बाद मे काशी जाकर ब्रह्मानंद से वेदांत सीखा। इन्होने हिंदी और गुजराती दोनो भाषाओ मे रचनाएँ की । ब्रह्मलीला संतप्रिया, जकड़ी, झूलणा, कुंडलियाँ, एक लक्ष रमैनी, साखियाँ, भजन, पद, धमार और विष्णुपद आदि अखा की हिंदी कृतियाँ है । गुरु-शिष्य-सवाद और अखेगीता नामक गुजराती रचनाओ के रचनाकाल के अनुसार अखा विक्रम संवत् १७०१ और १७०५ के मध्य अवश्य वर्तमान थे । यद्यपि अखा का जीवनकाल विवादास्पद है, तथापि उपर्युक्त रचनाओं के आधार पर उन्हें विक्रम की सतहवीं अठारहवीं शताब्दी का कवि मानना युक्तियुक्त प्रतीत होता है ।

अखा कबीर की तरह धर्म के बाह्याडम्बरो के विरोधी थे--

माला न फेरूँ, टीका न बनाऊँ, शरणों न जाऊँ मैं काऊ किसी का ।
आपा न मेटूँ, थापा न थापूँ, मैं मदमाता हूँ, मेरी खुशी का ।।

अखा के आध्यात्मिक पदो में काव्यसौंदर्य का आकर्षण है—

अकल कला खेलत नर ज्ञानी ।
जैसेहि नाव हिरे फिरे दसों दिस, ध्रुव तारे पर रहत निशानी ।।ध्रु०।।
चलन वलन अवनी पर वाकी, मन की सुरत अकाश ठहरानी ।
तत्व समास भयो है स्वतंतर, जैसे हिम होत है पानी ।।१।।

---

१. महाराजा छत्रसाल बुंदेला, डा० भगवानदास गुप्त, पृष्ठ १०५–१०६ ।

कुई आदि अनंत न पायो, जाइ न सकत जहाँ मन बानी ।
ता घर स्थिती भई है जिनकी, कही न जात ऐसी अकथ कहानी ।।२।।
अजब खेल अद्‌भुत अनुपम है, जाकू है पहचान पुरानी ।
गगनहि गेब भया नर बोले, ऐहि अखा जानत कोई ज्ञानी ।।३।।

अखा के काव्य मे आत्मानुभव और लोकानुभव दोनों ही समृद्ध व पुष्ट है, अत वे भाव, विचार अनुभूति, अध्यात्मदर्शन और तत्वचितन की दृष्टि से कबीर मे अद्‌भुत साम्य रखते है ।

३. गोपालदास

ये अखा के समकालीन ज्ञानमार्गी सत थे । इनका जन्मस्थान नांदोद, पिता का नाम खीमजी और गुरु का नाम सोमराज था । ये जाति के वैश्य थे और अहमदाबाद में फरमान-वाडी में रहते थे । सवत् १७०५ मे इन्होंने ज्ञानप्रकाश नामक ग्रंथ लिखा, जो बाद मे गोपाललीला के नाम से प्रसिद्ध हुआ । ज्ञानमार्ग के इस पथिक ने वेदांत के साथ साथ रासलीला, कृष्णभक्ति और नाममाहात्म्य के पद भी रचे—

मै मतवाला राम का ।
अजर प्याला प्रेम का मुज, अमर आया रे ।
मस्त भया गोपालिया, सोमराज पीवाड्या रे ।।

४. मकुंददास

मुकुददास सूरत के रहनेवाले थे । इनका जीवनकाल सवत् १७०५ से १७७५ तक माना जाता है । इनके पिता का नाम राघव जी भाई तथा माता का नाम कुँवरबाई था । २५वर्ष की आयु मे इन्होंने प्राणनाथ जी से तारतम्यदीक्षा ली और उनके धामगमन के बाद राजस्थान मे उदयपुर मे जाकर रहने लगे । इन्होने मिहिराजचरित, सुदरसागर, षट-शास्त्र, लीलाप्रकाश, गीतारहस्य, गुरु शिष्य-सवाद और फुटकर पद रचे । इनकी समाधि उदयपुर मे है ।

५. मेकनदादा

मेकनदादा के पिता का नाम हरदोल जी भट्टी, माता का नाम पावाबा और गुरु का नाम महत गांगा राजा था । इनका जीवनकाल अठारहवी शताब्दी के प्रथम चरण मे लेकर अतिम चरण तक (अनुमानत. विक्रम संवत् १७१० से १७८६ तक) माना जाता है । यों, ये कच्छ के निवासी थे, पर बडे घुमक्कड़ और प्रभावशाली संत थे । लोग इन्हे 'रेगिस्तान का फरिश्ता' कहते थे । 'लालिया' नामक गधा और 'मोतिया' नामक कुत्ता मेकनदादा के दो प्रख्यात शिष्य थे, जो अपनी पीठ पर पखाल लाद मरुस्थल के यात्रियों की प्यास बुझाया करते थे ।

मेकनदादा एश्वरवाद के प्रचारक और हिंदू मुस्लिम एकता के समर्थक इनकी रचनाओं में कच्छी, सिंधी, गुजराती और हिंदी का मिश्रण है। यथा—

हिंदू जपे राम राम, मुसलमान के अल्ला।
मुंजो नाथ मेकणचें, वय घर भल्ला॥
जब लग दीवी ऊफरो, तब लग सीभी नाहि।
सीभी तो सब जानिए, जब नाचन कूदन नाहि॥

६. अनुभवानंद

अनुभवानंद का जीवनकाल विक्रम संवत् १७३७ से १८५६ तक माना गया है। संन्यास ग्रहण करने के पूर्व इनका नाम नाथभवान था। ये सौराष्ट्र के वडनगरा नागर थे और जूनागढ़ की देवी के उपासक थे। देवी की उपासना इन्होंने ब्रह्म की विश्वव्यापिनी चिन्मयी शक्ति के रूप में की है। ये अखा और कबीर की तरह आत्मानुभवी और ब्रह्मचिंतनरत संत थे। इनकी ब्रह्मविषयक धारणा थी——

स्थूल सूक्ष्म दीर्घ लघु नाहि। श्वेतादिक रंग रूप न काहि॥
वर्जित नाम रूप गुन कर्म। वर्णाश्रम नहिं धर्माधर्म॥
करत उचार सदा बिन बान। दृग बिन देखे सुने बिन कान॥
पग बिन नाचत कर बिन तान। धा बिन नहि ध्याता ध्ये ध्यान॥
अनंत अखंडित ज्यों आकाश। सूर्य ज्यों सब करत प्रकाश॥
अनुभवरूप अनुभवानंद। दृष्टा साक्षि सदा निर्द्वंद्व॥

ब्रह्मचिंतनकर्ता अनुभवानंद की रचनाओं में कल्पना की सुकुमारता और सरसता भी है—

बरसत अनभव उमग्यो सावन।
जल थल होय रह्यो सब दुनिया, लागे खेत सुहावन॥

भाव, भाषा, मार्मिकता, ज्ञान और रसानुभूति से अनुभवानंद की हिंदी रचनाएँ समृद्ध हैं।

७. कृष्णदास

ये अष्टछाप के कृष्णदास से भिन्न, सूरत में ताप्ती के तट पर अश्वनी आश्रम के निवासी कबीरपंथी साधु थे, जिन्होंने चिदानंद से दीक्षा ली थी। इन्होंने मधुक्कड़ी भाषा में ज्ञानप्रकाश, यदुनंदन और रघुवंशमणि नामक ग्रंथ लिखे। ज्ञानप्रकाश संवादात्मक शैली में लिखा गया ज्ञानमार्गी ग्रंथ है। यदुनंदन और रघुवंशमणि में क्रमशः कृष्ण और राम के सगुण रूप के साथ साथ विराट् ब्रह्म का विवेचन है। कृष्णदास लगभग संवत् १७५० में वर्तमान थे।

८. भाण साहेब

ये लोहाणा जाति में गुजरात के कनखीलोड ग्राम में संवत् १७५४ में उत्पन्न हुए थे। इनके पिता का नाम ठक्कर कल्याण जी और माता का नाम अंबाबाई था। ये गृहस्थ थे। इनका प्रथम पुत्र पाँच वर्ष की आयु मे स्वर्ग सिधारा और दूसरा खीमदास बड़ा भगवद्भक्त हुआ।

भाण साहेब दलबल के साथ घूमनेवाले सत थे। इनके साथ प्राय. इनके ४० शिष्यों का एक समूह चला करता था। कबीर की तरह ये जीवन और जगत की नश्वरता के प्रचारक ज्ञानमार्गी संत थे। इनका संपूर्ण जीवन ज्ञानसाधना और परोपकार में बीता। संवत् १८११ मे कमीजड़ा के पास ये स्वधाम पधारे। इनकी रचनाओं में निर्वेद का एक स्वर देखिए--

जागो जग सुपने का मेला।
राजरिद्ध सबही मन देखत, जगत भया अकेला॥
तात मात नस्तार कबीला, कदि चलत नहि भेला।
एकहि आना एकहि जाना, पाप पुण्य धर थेला॥
कहाँ ते आया, कहाँ जाओगे, कर विचार मन मेला।
चटक रंग है चार घड़ी का, तामें कहाँ परेला॥
राव रंक की खबर ना पाई, गए गुरू अरु चेला।
एकहि राम नाम का सच्चा, भाण कहे घर पेला॥

९ दीनदरवेश

ये पालनपुर निवासी लुहार थे। जीविकोपार्जन के लिये ये ईस्ट इंडिया कंपनी की सेना मे मिस्त्री का काम करते थे, परन्तु एक दिन गोला लग जाने से इनकी एक बाँह कट गई और ये नौकरी से हटा दिए गए। नौकरी ही नही, दुनिया के जंजाल से मुक्त हो ये साधु संतो के साथ भटकने लगे और अंत मे किसी नाथपंथी साधु बाबा बालानाथ के शिष्य हो गए। इन्होंने सूफी मत, वेदांत और नाथसंप्रदाय के साहित्य का गंभीर ज्ञान प्राप्त किया और गुरु की आज्ञा से दीनदरवेश पंथ चलाया। पीरुद्दीन बाबा, फजल, संत हुसेन खाँ, बाबा नवी आदि इनकी शिष्यपरंपरा के संत थे। इनकी बानियो का एक संग्रह हस्तलिखित रूप मे महामहोपाध्याय गौरीशंकर हीराचंद ओझा के पास था, जिसके आधार पर इन्हे सदाचार, मानवप्रेम और नाम माहात्म्य गायक संत कहा जा सकता है। इनकी वाणी के कुछ उदाहरण इस प्रकार है--

साँई घट घट मे बसे, दूजा न बोलनहार।
देखो जलवा आपका, खाविंद खेवनहार॥
हिंदू कहे सो हम बड़े, मुसलमान कहे हम्म।
एक मूँग दो फाड़ हैं, कुण ज्यादा कुण कम्म॥

दीनदरवेश की कुंडलियाँ गिरिधर की कुंडलियों की तरह मार्मिक हैं—

जितना दीसे थिर नहीं, थिर है निरंजन नाम।
ठाढ बाट नर थिर नहीं, नाहीं थिर धन धाम।।
नाहीं थिर धनधाम, गाम घर हस्ती घोड़ा।
नजर भ्रात थिर नाहि ,नाहि थिर साथ सँजोड़ा ।।
कहे दीन दरवेश, कहा इतने पर इतना।
थिर निज मत सत नाम, नाहि थिर दीसे जितना।।

दीनदरवेश की रचनाओं में भाषा की सफाई है, फिर भी उसमे पंजाबी और गुजराती का प्रभाव दीखता है। इनका जीवनकाल संवत् १७६० से १८५० के लगभग माना जा सकता है।

१०. प्रीतमदास

अखा के उपरांत गुजरात के लोकप्रिय संतों में बावलानिवासी प्रतापसिंह और तेजकुँवरबा के पुत्र प्रीतमदास का नाम उल्लेखनीय है। इनका जीवनकाल विक्रम संवत् १७७५ से १८५४ तक माना जाता है। इनके विवाहित जीवन और अधत्व के बारे में विद्वानों मे मतैक्य नही है, पर प्रीतमदास जी की परंपरा के अनुसार उनके विरक्त जीवन की प्रामाणिकता असंदिग्ध है। इन्होंने हिंदी और गुजराती में जीव, माया, सदाचार, योग-साधना, वैराग्य और आध्यात्मिक विरह के अतिरिक्त कृष्ण की दानशीलता और रासलीला का भी वर्णन किया है, अत. ये संत और भक्त दोनों ही रूपों में हमारे सामने आते हैं। संतों की ही भाँति प्रीतमदास ने गुरुमहिमा का बखान किया है—

हरि गुरु संत कृपा करे, हरे सकल संदेह।
पुरुष आदि परमात्मा, तामूं प्रगटे स्नेह ।।

प्रीतमदास की वाणी में हिंदी और गुजराती का मधुर मिलन हुआ है, अत इनकी हिंदी 'गुजराती हिंदी' कही जा सकती है।

११. रवि साहेब

रवि साहेब जाति के बनिया थे और बड़े सूदखोर थे। इनका जन्म संवत् १७८३ और निधन संवत् १८६० में हुआ। इनके पिता का नाम मंछाराम, माता का नाम इच्छा-बाई और गुरु का नाम संत भाण साहेब था। कहते हैं, संवत् १८०६ में रवि जी संत भाण साहेब का प्रवचन सुन इतने प्रभावित हुए कि उनके मन से संसार का मोह हट गया और वे भाण साहेब से ही गुरुमंत्र ले विरक्त हो गए। इन्होंने हिंदी और गुजराती दोनों भाषाओं मे ग्रंथ रचे। इनकी कृतियों में सत्संगमहिमा, वैराग्यभाव, मोक्ष, सदाचार, आदि के साथ साथ वेदांती विचारों का समन्वय पाया जाता है। इनकी वाणी में हिंदी, गुजराती और उर्दू के शब्द मिलते हैं। इनकी रचनाओं के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

सतगुरु के परताप से, खोजा पिंड ब्रह्मांड।
परम सुन में परम तंत है, दरसा गहे निसाण ।।
× × ×
आज्ञा गुरु की पाऊँ, के गाथा प्रेम की गाऊँ।
संगत साध की कीजे, के प्याला प्रेम का पीजे ।।

रवि साहब की पदावली मे कही कही माधुर्य भक्ति की सुंदर छवियाँ हैं—

मैं पतिव्रता नार पिया की, बाहेर कबहुँ न जाऊँ।
अथवा
मैं पनिहारी राम की, छीलर जले न न्हाऊँ।
पड़दा तोड पियाड़े पहुँचूं, निरमल जल भरि लाऊँ ।।

रवि साहब का परमधाम गमन संवत् १८६० मे वाकानेर में हुआ, जहाँ से उनके प्रिय शिष्य मोरार साहेब ने उनके शव को जाम खंभालिया ले जाकर समाधिस्थ किया, जिसपर, बाद मे, रामचंद्रजी का मंदिर बना। रवि साहेब के शिष्यो की परंपरा मे आगे चलकर जीवणदास नामक एक चमार संत हुए, जो ब्रह्म की उपासना दासीभाव से करते थे और 'दासीजीवण' नाम से पदरचना करते थे। 'दासीजीवण' के पद गुजरात मे प्रसिद्ध हैं।

१२. हाशिम अली

हाशिमअली के २३८ मर्सियों का संग्रह 'दीवान हुसैनी' के नाम से प्रसिद्ध है। ये अपने मर्सियो के लिये विशेष रूप से उल्लेखनीय है। दुर्भाग्य से इनके संपूर्ण जीवन का विवरण उपलब्ध नही है। कुछ लोग इन्हें बुरहानपुर का निवासी और कुछ गुजरात का कवि कहते है, पर अंत.साक्ष्य गुजरात के ही पक्ष में हैं। इनकी भाषा दक्खिनी हिंदी है—

तुझकूँ हाशिमअली हुसेन सरूर,
हर बरस मर्सिया लिखाते हैं।
लिखूँ कहाँ तलक मैं बयाने सितम,
मुजे हर बरस लेके तीरे कलम।
कहाँ तलक मैं लिखूँ इस गम की बाताँ,
कि दिल के जोश सो पुरख्राँ हैं आँखाँ।

हाशिम साहब विक्रम संवत् १७९३ के लगभग जिंदा थे।

१३. देवा साहेब

देवा साहेब कच्छ के क्षत्रियजातीय संत थे। बीस वर्ष की अवस्था में ये एक पुत्र और पत्नी को छोड़कर विरक्त हो गए और ज्ञानसाधना के साथ ही सगुणभक्ति के अनुरूप कृष्णलीलापरक पद लिखने लगे। दोहा सोरठादि छंदों में इन्होंने अपने विचार बड़ी स्पष्टता से प्रकट किए हैं—

बहार नाए तो क्या भया, अंतर मैल न जाई।
अंतर मेल उतारिये, ज्ञान नीर में न्हाई॥
इह माया को फंद, एक कनक दुजी कामिनी।
जीव जेहि मति मद, याते छूटी नां सके॥

अनुमानतः देवा साहेब विक्रम संवत् १८०० के लगभग वर्तमान थे। इनकी गद्दी हमला में है।

१४. बिहारीदास

ये देवा साहेब के शिष्य थे। इनका जन्म संवत् १८०४ में कच्छ में वांढाय नामक ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम मेघराज जी था। बिहारीदास का छंदःशास्त्र और साहित्यिक ज्ञान परिपक्व था। हिंदी के सुप्रसिद्ध कवि गिरिधर कविराय की तरह बिहारीदास की हिंदी कुंडलियाँ बहुत लोकप्रिय हैं—

सिर पर जमरा फिरत है, ज्यों तीतर पर बाज।
सबके पीछे है लग्यो, हम हरन के काज॥
हंम हरन के काज, बधिक यह चहुं दिश धावे।
बिल्ली मूषक काल, निशोदिन यों ही खावे॥
कह बिहारी कर जोर, चेत मन चंचल भमरा।
ज्यों तीतर पर बाज, फिरत त्यों सिर पर जमरा॥

बिहारीदास की शिष्यपरंपरा में ईश्वरराम, लालराम और ओधवदास आदि परवर्ती संतों की हिंदी रचनाएँ मिलती हैं।

१५. धीरा

इनके पिता का नाम प्रताप बारोट, माता का नाम देवाबा और गुरु का नाम वनवासी साँई था। इनका जन्म बडोदा के निकट सावली गोठडा नामक ग्राम में संवत् १८०६ में हुआ था और स्वर्गवास संवत् १८८१ में। इनके ऊंचे हिंदी पद मिलते हैं, जिनमें संतपरंपरा के भावों और विचारों का प्राधान्य है—

दम का भरोसा मत कर भाई, साधन करंदा सांई।
साधन करदा साँई में वारी वस्या ॥टेक॥
पाव पलक की खबर न जाणे, करे कारल की आश।
शीर पर जमड़ा जड़प रहे, हो ग्या जंगल वास॥
हस्ती घोड़ा माल खजाना, कोई काम नहीं आये।
अचेत होकर कब बैठा हो, पीछे थी पस्तावे॥

१६. मोरार साहेब

मोरार साहेब का मूल नाम मानसिंह बघेला था। ये मारवाड़ के राजवंश में संवत्

१८१४ में पैदा हुए थे और संवत् १८३२ में संत रविदास से प्रभावित हो विरक्त हो गए थे। इनकी रचनाओं मे रहस्यानुभूति, पिंड में ब्रह्मांड और गगनध्वनि के अतिरिक्त आत्मा की विरहानुभूति और गुरुमहिमा आदि का अंकन हुआ है। एक पद देखिए—

मेरे प्रीतम चले परदेस, जीवन में कैसे जीवूँ ?
आवे न जावे कोई खबर न लावे, कोवन को कहावुँ संदेस ?
साँचु कहो तो मैं संग चलुंगी, हाँ रे दिल में किया दरवेश।
नाही कहो तो मै निश्चय मरूँगी, हाँ रे मैं ऐसो लियो उपदेस ॥

रविदास की प्रेरणा से मोरार साहेब ने जाम खंभालिया में अपनी गद्दी स्थापित की और संवत् १६०५ में निर्वाण पाया। इनकी शिष्यपरंपरा मे सिकंदर मुसलमान के होथी नामक एक पुत्र का उल्लेख मिलता है, जिन्होने 'दास होर्थी' के नाम से हिंदी में अनामी एकोपासना के पद रचे हैं।

१७. गवरीबाई

ये डूंगरपुर की वडनगरा ब्राह्मणी थीं और संवत् १८१५ में जन्मी थी। पाँच छह वर्ष की अवस्था में इनका विवाह हो गया था और उसके एक साल बाद ही इनके पति स्वर्ग सिधार गए। मातापिता ने इन्हें समुचित शिक्षा दी, पर विरक्त हो ये मीरा की तरह तीर्थाटन के लिये चल दी। मथुरा वृंदावन होते हुए ये काशी पधारी और संवत् १८६५ मे चैत्र शुक्ल ६ को काशी मे ही स्वर्ग सिधारी। इनके पदों की सख्या लगभग ६५० हैं, जिनमें गुजराती, राजस्थानी और हिंदी का प्रयोग पाया जाता है।

मीरा की ही भाँति गवरीबाई की भक्ति माधुर्यभाव की है, पर इनकी विशेषता यह है कि इनके भाव सगुण ब्रह्म से उपजकर निर्गुण मे पर्यवसित हुए हैं। इनके सगुण भावापन्न पदो में मीरा की सी तन्मयता है—

होरी खेले मदन गोपाल।
मोर मुकुट कट काछनी, आछे चंचल नैन विशाल।

पर गुरुमहिमा और ज्ञानघटा की चर्चा करते समय ये निर्गुणिया संतों के निकट खड़ी हुई दीखती हैं—

ज्ञान घटा घिरानी, अब देखो।
सतगुर की किरपा भई मुजपर, शब्द ब्रह्म पहचानी, . . .

१८. केवलपुरी

केवलपुरी का समय विक्रम संवत् १८१५ से १६०५ तक है। ये सवत् १८५५ मे डाकोर के पास उमरेठ में आकर बस गए थे और वही ये समाधिस्थ हुए। कहा जाता है, ये किसी राजवंश से संबंधित थे और ईडर के संत सेजपुरी के शिष्य थे। तात्विक दृष्टि से ये पूर्ण अभेदवादी या अद्वैतवादी प्रतीत होते हैं। इनकी रचनाओ में योगसाधना के विवरण मिलते हैं—

शुन घर शेहेर, शेहेर घर बस्ती, दम जागे तन सोता है।
लाल हमारे हम लालन पे दम जागे तन सोता है ॥
ऐसी धुन मे रेना जोगेसर, बंकनाल रस पीना है।
बंकनाल रस पीग्रो जोगेसर, बंकनाल रस पीना है ॥
ध्रुवे पिया, प्रहलादे पिया, पीवे लछमन बाला है।
दास केवल ने ऐसा पीना, एक नाम की आशा है ॥

१९. त्रिविक्रमानंद

त्रिविक्रमानद जंबूसर के औदीच्य ब्राह्मण थे और बचपन से साधुमतों का सत्संग करते थे, जिसके परिणामस्वरूप इनके मन में वैराग्य के भाव सुदृढ़ हो गए। महाराष्ट्र के प्रसिद्ध संत तथा छत्रपति महाराज शिवाजी के गुरु श्री समर्थ रामदास की ही तरह ये भी विवाह के समय शुभमगल सावधान सुन 'सावधान' हो गए और गठबंधन तोडकर घर से भाग गए। इन्होंने खूब अध्ययन, मनन, चिंतन और पर्यटन किया और बाद मे सूरत में आकर धूनी रमाई। यहीं ये समाधिस्थ हुए। इनका जीवनकाल विक्रम संवत् १८१६ से १८७६ तक माना जाता है। इनके पदों की भाषा गुजराती, पंजाबी, ब्रज और अरबी फारसी मिश्रित है—

मैं देख्या दिलदार, तेरा ख्याल समजते।
तू आदी निरगुण, सगुण भया समजते ॥

२०. निर्मलदास

सूरत के सुप्रसिद्ध सत निर्मलदास का जीवनकाल सवत् १८२२ से १९३५ तक माना जाता है। इनके पिता का नाम बाला जो ग्रोर माता का नाम पार्वतीबाई था। ये शब्दब्रह्म के प्रतिपादक, गुरुमहिमा के प्रचारक और नामस्मरण के उपदेशक सत थे। इनकी वाणी में गुजराती और हिंदी का मिश्रण है—

संत मतवाला रे, रामरस पीवता रहे।
× ×
सचराचर व्यापी रहे, देखा तो कोई खाली नही।

इनकी शिष्यपरंपरा मे प्रभुदास का नाम उल्लेखनीय है, जिन्होंने अपने गुरु का परिचय एक हिंदी दोहे में इस प्रकार दिया है—

मैं दीवाना नाम का, मोहे पीव मिलन की आस।
अब तो मिलिहो जाय के, जहाँ गुरु निर्मलदास ॥

२१. खीम साहेब

खीम साहेब भाग्म साहेब की शिष्यपरपरा के संत थे। सवत् १८२६ में चैत्र मास की पूर्णिमा को इन्होंने चितामणि नामक ग्रंथ लिखा, जिसके आधार पर यह अनु-

मान किया जा सकता है कि खीम साहेब विक्रम की उन्नीसवीं शताब्दी में वर्तमान थे। हिंदी में इनके फुटकर पद मिलते हैं, जिनमें पूजा उपासना के बाह्याडंबरों का खंडन, अंतर्मुखी साधना और आत्मशोध का महत्व विद्यमान है। इनकी भाषा में प्रवाह और संगीतात्मकता के अतिरिक्त प्रभविष्णुता भी अच्छी है--

अब तो आत्म हीरला पाया, हरि चरणे चित लाया।
घर मे माल अ मुलुख भरिया, जुगते जोग कमाया॥
जनम सुधारण सतगुरु भेट्या, नवला घाट घड़ाया॥

× ×

गगन मंडल मे करते वासा, वाँ है जोगी लहेरी।
सदगुरु ए मुने सेन बताई, जाप अजंपा केरी॥

खीम साहेब निर्गुणियाँ मात्र न थे, उनके काव्य मे सगुण सियाराम के प्रति भी उत्कट प्रेमभाव मिलता है --

जिन मुख से सियाराम न सुमरे, तिन मुख में तो धूल परी रे॥टेक॥
धिक तेरो जनम. जीवन तेरो धिक है, धिक धिक मनुष की देह धरी रे॥
जीवत तात मूवे नही तेरा, क्यूँ जनम्यों तू पाप करी रे॥

२२. त्रीकम साहेब

ये निम्न जाति में उत्पन्न हुए थे, परतु भक्तिभाव की दृढ़ता के कारण खीम साहेब ने इन्हें अपना शिष्य बना लिया था। ये विक्रम सवत् १८२६ के लगभग उपस्थित थे। गुरुमत्र लेने के बाद ये चित्तौड चले गए और वहाँ अपने सप्रदाय का प्रचार करने लग। सवत् १८५८ मे इन्होने निर्वाण पाया और इनके शिष्यो ने इनकी ही इच्छा के अनुसार रापर मे खीम साहेब की समाधि के पास इनकी भी समाधि बनाई।

त्रीकम साहेब की भाषा सधुक्कड़ी हिंदी है--

मानसरोवर हंसा झील न आयो जी।
इंद्री का बाँध्या अवधूत, जोगी न केना जी॥
जब लग मनवो न बाँध्यो मेरे लाल।
लाल मेरा दिल माँ लागी बैरागी॥
खीम केरा चेला अवधूत, त्रीकमदास बोलियाजी।
साधुड़ा ने जुगति माँ रेना मेरे लाल।
लाल मेरा दिल माँ लागी बैरागी॥

त्रीकमदास की भाषा में साहित्यिक गरिमा भले ही न हो. पर उनके कथन में भावानुभूति की आत्मीयता अवश्य है।

२३. कुबेरदास :

कुबेरदास संवत् १८२६ में गुजरात के खेड़ा जिले में कासोर और अजरपरा के बीच

एक तालाब के तट पर कबीर की भाँति नवजात शिशु के रूप में पाए गए थे। इनका पालन पोषण किसी क्षत्रिय परिवार में हुआ था। बड़े होने पर इन्होंने श्रीकृष्ण स्वामी से श्रोड नामक गाँव में दीक्षा ली और ज्ञान, वैराग्य, आत्मानुभव तथा सदाचार आदि से संबंधित १८ ग्रंथ लिखे। हिंदी मे इनके फुटकर पद मिलते है। इनका निधन संवत् १९३४ में हुआ, तदुपरांत इनके नाम पर इनके शिष्यो ने कुबेरपंथ चलाया।

कुबेरदास का एक हिंदी पद इस प्रकार है—

ज्ञान की गुंज अबूझ न बूझत, जीव दशा लेह डोले हो।
विचरग अेहरणी रेहणी नर जेसे, ज्ञान कपाट न खोले हो॥
त्याग वैराग औरन कु देखावे, अंतर माया का ध्याना हो।
हंसा होउ करी मुख बोले, करणी काग समाना हो॥
करत कथा नित पाठ सीख को, तृष्णा गाँठ न छूटे हो।
कहे कुबेर सत शब्द समझ बिना, पकर पकर जम कूटे हो॥

२४. वस्तो विश्वंभर

खंभात निवासी वस्तो विश्वंभर सरकपुर पारे के निवासी थे और विक्रम संवत् १८३१ के लगभग वर्तमान थे। अपनी भाभी के कटु वचन सुन ये घर से निकल पड़े और रामानंदी संत विश्वभरदास के शिष्य हो गए। इन्होंने हिंदी और गुजराती में अनेक ग्रंथ लिखे। इनका संगीत विषयक ज्ञान बहुत अच्छा था। हिंदी मे इनके ३०० से अधिक पद और २६४३ साखियाँ मिलती है। यथा—

एक दाड्य आसमान मे, एक लगी पाताल।
छोटो मुख ये है नही, है बडो मुख काल॥
× × ×
नाँ हम नाचे, नाँ हम गावे, ना हम तान मेल्लावे।
नाँ हम पोथी पढे पंडीत की, सेहेज्य अमर पद पावे॥

वस्तो की ज्ञानचर्चा में शुष्क उपदेश अथवा शाब्दिक ज्ञानप्रकाशन नहीं बल्कि भावगत और अर्थगत रसात्मकता है।

२५. बापू साहेब गायकवाड

बापू साहेब गायकवाड मराठीभाषी थे पर इनके काव्य की भाषा मधुक्कड़ी गुजराती हिंदी है। बचपन से इनके मन पर संत निरात और धीरा का प्रभाव था, अतः इनके पिता ने इन्हें घर से निकाल दिया और इस सुअवसर से बापू पारिवारिक उत्तरदायित्वो से मुक्त हो आत्मानंद की खोज में चल दिए। इन्होंने ब्रह्मज्ञान और वैराग्य से पूर्ण पद, गरबी, राजिया, और काफियो की रचना की। कई प्रसंगों मे इन्होंने धार्मिक ढोंगियों पर शाब्दिक चाबुक जमाए है, जो गुजरात में 'चाबखा' के नाम से प्रसिद्ध हैं। एक चाबखा लीजिए—

निमाज पढ़ता तो बोले बिसमिल्ला रे,
भाई रे निमाज पढता तो बोले बिसमिल्ला रे. . . ।।टेक।।
तीस रोजा रखता और मच्छियों कु चखता,
और बकरे का काटता है गल्ला।
साहेब का जीव बंदे मार क्यों तें डारा,
एक बदी करने से, दोजख में टल्ला ।।
× × ×
बापु कहे, नाम एक अल्ला का सच्च है,
और रफे दफे होयगी तेरी बल्ला ।।

बापू साहेब का समय विक्रम संवत् १८३५ से १८९९ तक माना जाता है। इनकी वाणी में भाषा की सफाई भले ही न हो, पर उसमें भावों का आवेश निस्संदिग्ध रूप से प्रभावशाली है।

२६. निरांत :

इनका जन्म देथाण नामक ग्राम में विक्रम संवत् १८३८ में एक राजपूत परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम उमेदसिंह और माता का नाम हेतांबा था। बचपन से ही इनके मन में साधु संतों के प्रति प्रेम और भक्तिभाव था, पर इन्होने पलायनवादी न बनकर संसार मे प्रवेश किया, दो विवाह किए और बारह संतानों के पिता होने का गौरव पाया, पर अंत में विरक्त हो इन्होंने अपने नाम पर निरांत संप्रदाय चलाया। इनके प्रथम शिष्यों की सख्या १६ थी।

ये योगसाधना और नाममहिमा के गायक सत थे, अत: दार्शनिक दृष्टि से इन्हें ज्ञानमार्गी ब्रह्मवादी कहना उचित जान पड़ता है, पर इनके काव्य में कबीर की तरह रहस्य-मूलक माधुरी भक्ति भी पाई जाती है। आत्मा पर नारीत्व का आरोप कर इन्होने बड़े मधुर पद रचे है––

कौन बात पर राजी, न जानुं पिया, कौन बात पर राजी ।।टेक।।
मैं रे अजानी, कछु मरम न पाऊँ, बहोत बनाई बाजी।
बाजी से बाजो मिल खेलें, भूले हैं पंडित काजी ।।
शिव सनकादिक नारद आवे, भारे पद ब्रह्मा जी।
अन्य उपासी की कौन गिनत है, बावन मत माँ बिराजी ।।
बाजी की मै जाऊँ बलिहारी, बाजी ऊपर सब राजी।
बाजीगर को कोऊ न बूझे, ऐसी अकल मत छाजी ।।

२७. भोजा सावलिया :

भोजा सावलिया के पूर्वज सावली ग्राम के निवासी कुणबी थे। इनके पिता का नाम करशनदास, माता का नाम गंगाबाई, जन्मस्थान काठियावाड़ मे जेतपुर के निकट

गालोल ग्राम और जन्मसंवत् १८४१ था। इनके गुरु रामेतवन नामक कोई संत थे, जिनके प्रभाव से ये अजपा जाप में प्रवृत्त हुए। यद्यपि इन्हें शास्त्रीय ग्रंथज्ञान प्राप्त न था, फिर भी इन्होंने संतों के सत्संग से अपनी आत्मज्योति प्रज्वलित कर काव्यरचना की। गुजरात में इनके रचे चाबखा, उसी भाँति लोकप्रिय है, जैसे अखा के छप्पा, दयाराम की गरबी, प्रीतम के पद या धीरा की काफियाँ।

भोजा के एक प्रिय शिष्य थे जला भगत, जिनके आग्रह से ये कई बार वीरपुर आए और इसी वीरपुर में इन्होंने संवत् १९०६ में निर्वाण पाया। इनके पदों की भाषा गुजरातीमिश्रित हिंदी है--

संतों, मुनिवरे मन समझाया।
समझी चल्या शब्द सद्गुरु का, तो परब्रह्म कुँ पाया॥
पाँच कुँ मारी, पच्चीस कुँ वारी, काम क्रोध हटाया।
हद बेहद अनहद गति आवी, कर्म बिनानी काया॥
कर्म धर्म नी भ्रमणा भागी, एक लालन से नेहे लगाया॥
अबला हुता तो सबला कीधा, लखिया फेर लखाया॥

२८. मनोहरदास सच्चिदानंद

मनोहरदास जूनागढ के नागर गृहस्थ थे। इनका जन्म संवत् १८४४ में हुआ था। परिस्थितियों से विवश हो इन्होंने संवत् १८६५ में संन्यास लिया और अपना नाम बदलकर सच्चिदानंद रखा तथा आजीवन साधना करते हुए संवत् १९०१ में निर्वाण पाया।

ये हिंदी, गुजराती, सस्कृत और फारसी के अच्छे जानकार थे। अपने ज्ञान के आधार पर इन्होंने धार्मिक पाखंडों का विरोध, गुरुमहिमा और केवलाद्वैत के सिद्धातो का प्रचार किया। हृदय की ग्रंथि खोलन के लिये इन्होंने कहा है--

तप, तीरथ, व्रत, स्नानदान, जप, विध विध करत उपाय।
हृदय ग्रंथि को भेद न जाणे, अबला अंसड खाय॥

२९. जीतामुनि नारायण

शब्द की ताली लगाकर ब्रह्मांड का द्वार खोलनेवाले जीतामुनि नारायण का जन्म नाडियाद में और निवासस्थान सूरत के पास अमरोली गाँव में था। इनके मातापिता, जन्मसवत् का अधिकृत इतिवृत्त अनुपलब्ध है, पर इनके गरु का नाम हरिकृष्ण बताया जाता है। ये अखाप्रणालिका के संत थे और हिंदी में काफरबोध, साखियाँ आदि के रचयिता थे। इन्होंने कबीर की ही भाँति हिंदू मुस्लिम ऐक्य पर जोर दिया है। हिंदी में इनके कुछ फुटकर पद मिलते हैं। इनकी दो साखियाँ देखिए--

हिंदू ध्यावे देहरा, मुसलमान ध्यावे मस्जिद।
फकीर वहाँ ध्यावे जहाँ, दोनुं की परतीत।
ताली लागी शब्द की, फूट गया ब्रह्मांड।
साहेब निराला देखिया, सात दीप नव खंड॥

जीतामुनि के एक शिष्य कल्याणदास जी थे, जिन्होने अपने गुरु की देखादेखी गुजराती मे काफरबोध, अजगरबोध और हिंदी मे कुछ फुटकर पद लिखे।

३०. नभू

नभू का जीवनकाल विक्रम सवत् १८५८ से १९२८ तक माना जाता है। ये नडियाद मे पैदा हुए थे। इन्होने गुजराती, हिदी तथा संस्कृत मे काव्यरचना की। इनकी कृतियो मे निर्गुणोपासना और हरिलीला दोनों के उदाहरण मिलते है। अपनी कृतियो के आधार पर ये ज्ञानी और भक्त दोनो थे।

३१. रंगीलदास

ये राणा जाति के सूरत निवासी संत थे और संवत् १८६० विक्रमाब्द के लगभग ताप्ती के तट पर अश्विनकुमार घाट पर रहते थे। इनके गुरु का नाम विष्णदास कहा जाता है। इन्होंने ज्ञान, भक्ति और वैराग्य के भावो से परिपूर्ण 'रगील सतसई' लिखी जो कुडलिया छद मे है। गुजरात के जनजीवन मे इनकी प्रबोधात्मक कुंडलियाँ पर्याप्त लोकप्रिय है--

पंछी अब क्यों सो रहा, देख मच्यो रे शोर।
गाफिल नैना खोल तू, अब तो भयो रे भोर॥
अब तो भयो रे भोर, पार हो गयो सबेरा।
कैसे रह्यो अचेत, यहाँ कोई पार न तेरा॥
रंगीलदास लुभाव के, विरथा नर तन खोया।
विष्टा विषय के बीच, हाय पामर क्यो सोया॥

३२ छोटम

छोटम नागर ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम कालीदास, जन्म संवत् १८६८, निर्वाण सवत् १९४१ था। इनके गुरु का नाम पुरुषोत्तम सिद्धयोगी कहा जाता है, जिसने इन्हे नर्मदा नदी के तट पर दीक्षा दी थी। वैराग्य लेने के बाद छोटम ने गुजराती में आख्यानक काव्य और हिंदी मे स्फुट पदा, साखियों, लावनियों आदि का प्रणयन किया। कबीर की तरह इनकी साखियाँ सज्जन को अग, माया को अंग, दुरजन को अंग आदि में विभक्त हैं। इनकी साखियों का आनंद वृंद के दोहों सा है :

निज मत नीको सब कहें, और करे संवाद।
काग कहे नहिं कोकिला, तेरो सुंदर नाद॥

दुरजन सज्जन ना बनै, कीजे कोटि उपाय।
धोवे नित नित दूध मे, कागा हंस न थाय॥

छोटम की रचनाओं मे लोकज्ञान और सूक्ष्मानुशीलनवृत्ति पग पग पर दीखती है।

३३. संतराम

इनके प्रारंभिक जीवन और शिक्षा दीक्षा के बारे मे अधिकृत जानकारी नहीं मिलती, पर ऐसा कहा जाता है कि ये एक पहुँचे हुए संत थे और संवत् १८३२ के लगभग नडियाद पधारे थे। नडियाद के पास डुगाकुईवाले खेत मे इन्होंने धूनी रमाई और स्थानीय भक्तों के आग्रह से ये अपने जीवन के अंतिम काल तक अर्थात् संवत् १८८७ तक वहीं रहे। संतराम की गुरु बावनी प्रसिद्ध है, जिसमें इन्होंने सुँदर साखियाँ लिखी है--

संतराम संत जानिए, दूर देश को वास।
नेनु से अंतर भया, प्राण तमारे पास॥

पूर्वोक्त संतो के क्रम मे गुजरात मे हिंदू और मुसलमान संतों की एक सुदीर्घ परंपरा मिलती है। हिंदू संतो मे महात्म्यराम, कहान, खोजीराम, मूल जी भगत, पुमानबाई, चातकदास, भीम साहेब, भादुदास, बालकदास, राघो भगत, कल्याणदास, जगजीवनदास, माणिकदास तथा मुसलमान संतों मे अनवर खाँ, हुसेन खाँ, भूनन फकीर, शम्मद शेख, बाबा मलिक, बाबा गुलशन, दाना साहेब आदि के नाम उल्लेखनीय है।

काव्यगत विशेषताएँ

गुजराती संतों की हिंदी रचनाओं मे हिंदी के ज्ञानमार्गी संतो की तरह मानव शरीर की क्षणभंगुरता सांसारिक मायामोह की निस्सारता, आत्मोद्धार के लिये मनोनिग्रह, ब्रह्मानंद की प्राप्ति के लिये संत साधना और लोककल्याण के लिये जीवदया तथा सदाचार की प्रवृत्ति पाई जाती है। इन संतों ने बार बार जीव को ब्रह्म की अखंड अद्वैत सत्ता मे समरस होने का उपदेश दिया है, पर इनका ज्ञान, ज्ञान होने पर भी भक्तिपरक है, क्योंकि वह भक्तिभावना का अविरोधी तत्व और उसका पूरक है। गुजराती संतो ने माधुर्य भावापन्न प्रेमलक्षणा भक्ति के अनुसार आत्मा और परमात्मा के बीच पत्नी-पति-संबंध का आरोप कर आध्यात्मिक पतिव्रतधर्म और एकनिष्ठता का प्रचार किया है, अतः ज्ञानियों की यह माधुरी भक्ति रहस्यमूलक, नितांत भावरूपा और अंतर्मुखी है। विनय, दीनता, नाम-माहात्म्य, गुरुमहिमा और सत्संग इसके बाह्यप्रकटन के अंग है।

ज्ञान के दायरे मे घट घट मे साईं का निवास देख ये संत सर्वात्मवाद और अद्वैत-वाद का महत्व स्वीकार करते हैं व इसी आधार पर वर्ण, जाति, धर्म, संप्रदाय या पंथ के समस्त क्षुद्र बंधनों तो तोड़ मानवमात्र ही नहीं, अपितु प्राणिमात्र मे एक ही आत्मतत्व के दर्शन करते हैं और जगज्जंजाल मे कीचड़ मे कमल की तरह अलिप्त जीवन को मानवा-दर्श बतलाते हैं। आध्यात्मिक उन्नयन का विचार वैयक्तिक स्तर पर करनेवाले ये संत

सत्य, अहिंसा, दया, प्रेम, सदाचार, त्याग, आदि के द्वारा लोककल्याण के लिये हमें व्यग्र दीखते हैं और इनकी यह व्यग्रता इनके उपदेशपरक पदो, साखियो और कुंडलियो में स्पष्टतः झलकती है। इनके 'चाबखा' ज्ञान के चाबुक है और साखियाँ आत्मानुभूति की सत्य साक्षी, अत. सतो की वाणियों के आधार पर हम उन्हें केवल वैयक्तिक आत्मसुख के खोजों या ब्रह्मानंद की निजानुभूति के बावले मात्र नही मानते बल्कि उनकी शब्दसाधना में बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय आदर्श मानव समाज की निर्मिति के लिये राष्ट्रीय और सांस्कृतिक अभ्युदय की छटपटाहट भी देखते है और इसी दृष्टि से हम सतो को राष्ट्रीय लोकनायक और सांस्कृतिक अगुआ मानते है।

संतो की सधुक्कड़ी भाषा धक्कामार भले ही हो, पर उसमे धक्का देकर गिराने की अपेक्षा धकियाकर सही मार्ग पर लाने की प्रवृत्ति प्रधान है। समाज के दोषो का मार्जन कर उसे सही दिशा देना ही संतो की वाणी का सामाजिक कार्य है, अतः उनके कथन-सौष्ठव की अपेक्षा कथ्य अधिक मूल्यवान् है। भारतीय संतो की हिंदी रचनाओ मे गुजराती, मराठी, ब्रज, अवधी, पंजाबी, राजस्थानी आदि क्षेत्रीय भाषाओ के शब्दों के साथ अरबी फारसी के शब्द देख ऐसा लगता है कि संतों की भाषा उनकी आत्मानुभूति की ज्ञान-गुदड़ी है, जिसमे विविध भापाओ के शब्द अनेक रंगीन कपड़ो के टुकड़ों की तरह मति की सुई मे छदो के धागे द्वारा सी दिए गए है इसलिये वहाँ शब्दावली की एकरूपता की अपेक्षा उसकी विविधता ही अपना निजी सौंदर्य रखती है और उसमे कथनशैली के स्थान पर कथ्यगत अनुभूति और तज्जन्य सत्य की सुदरता का अपना आकर्षण है।

गुजराती सतो की हिंदी रचनाएँ प्रबध और मुक्तक के साथ साथ गीति शैली में भी लिखी गई है और उनमे दोहा, चौपाई, कुडलिया, छप्पय, सवैया आदि छंद तथा उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अन्योक्ति, दृष्टात, श्लेष, यमक आदि अयत्नसाध्य अलकार व भक्ति, शृंगार और शात रस अधिक प्रयुक्त हुए हैं। इन अनगढ़ रचनाओं का महत्व भारतीय आत्मचिंतन और भारतीय संस्कृति को गतिमान करने में है। रीतिकालीन भारतीय संतो की रचनाओ में उपनिषदो का ब्रह्मविचार, जैनों की अहिंसा व वीतरागभाव, बौद्धो की विरक्ति, सिद्धों की अतःसाधना, नाथो का सदाचार, रामानद व कबीर का जाति-पाँति-विरोधी मानवतावाद, सूफियो की आध्यात्मिक प्रेमपीड़ा इसका प्रमाण है। उनकी कृतियाँ उनकी समन्वयवादी सास्कृतिक चेतना की वाणीबद्ध अभिव्यक्ति है और यही उनका सांस्कृतिक मूल्य है।

समीक्षा के मानदंडों के अनुसार यद्यपि हिंदीतर क्षेत्र के रीतिकालीन संतों की हिंदी रचनाओं का साहित्यिक स्तर अत्युच्च नहीं है, तथापि तद्युगीन लोकभाषा और राष्ट्रभाषा के रूप में व्यवहृत हिंदी का जो रूप उनकी रचनाओ में मिलता है, उसका सास्कृतिक, राष्ट्रीय, धार्मिक, साहित्यिक, और भाषावैज्ञानिक महत्व किसी भी प्रकार कम नही है।

संतकाव्य का विवेचन और निष्कर्ष

संतकाव्य के विभिन्न पंथो और संप्रदायों के पूर्वगामी विवरण से यह स्पष्ट होता

है कि इस साहित्य का मूल उद्देश्य समाज के आध्यात्मिक और चारित्रिक स्तर को उच्च बनाना था। इस साहित्य के अंतर्गत दो बातें प्रधान रूप से देखने को मिलती हैं। प्रथम, विभिन्न धर्मों और जातियों के बीच समन्वय करना और पारस्परिक भेदभाव को दूर करना और द्वितीय, व्यक्ति के आचार पक्ष को सच्चा और सुदृढ़ बनाना। इन संतों के सामने हिंदू और मुस्लिम समाज के अनेक ऐसे सांप्रदायिक और जातिगत भेदभाव विद्यमान थे, जिनके कारण पारस्परिक सौहार्द के स्थान पर वैमनस्य और ईर्ष्या द्वेष की भावना प्रबल होती जा रही थी। संत काव्य के प्रचार में भेद की दीवारें ढहने लगीं और मनुष्य का जाति-वर्ण-धर्मगत रूप समाप्त होकर विशुद्ध मानव का स्वरूप प्रकट होने लगा। इसीलिये कहा जा सकता है कि समन्वयवादी दृष्टि और सच्चे आचार द्वारा संतों ने उस मानवतावादी धर्म का प्रचार किया, जो सार्वभौम और सार्वकालिक है, जिसमें देश, जाति, धर्म, वर्ण, ऊँच नीच का भेद बिल्कुल नहीं है। एक प्रकार से उसकी मूलभित्ति सदाचार और प्रेम है।

अपने उपर्युक्त व्यापक दृष्टिकोण और उद्देश्य को पूर्ण करने के लिये संतकाव्य में ब्रह्म के स्वरूप की जो चर्चा मिलती है, वह भी किन्हीं सीमाओं में बाँधा नहीं जा सकता। संतों का ब्रह्म, समस्त विश्व, सभी धर्मों और सभी जातियों का ब्रह्म है। जब हम ब्रह्म की कल्पना सगुण और साकार रूप में करते हैं तब वह एक विशिष्ट जाति या धर्म की परंपरा और संस्कारों के अनुरूप अपना स्वरूप ग्रहण कर लेता है और ऐसी दशा में वह उस धर्म, जाति या संप्रदाय का विशिष्ट उपास्यदेव बन जाता है। सार्वभौम ब्रह्मत्व की कल्पना उसमें करना कठिन होता है, क्योंकि दूसरे धर्मों, जातियों और संप्रदायों में ब्रह्म संबंधी अन्य प्रकार की धारणा विद्यमान मिलती है। इस भावना से प्रेरित होकर संतों ने निर्गुण ब्रह्म की चर्चा की। निर्गुण ब्रह्म का तात्पर्य गुणों से रहित नहीं, वरन् विशिष्ट गुणों की आबद्धता से मुक्ति है। उसमें सभी गुण विद्यमान हो सकते हैं—यहाँ तक कि विरोधी गुण भी। यह उसका गुणातीत स्वरूप है। व्यावहारिक दृष्टि से संतों का ब्रह्म निराकार है। किसी आकारविशेष में बाँधकर उसको देखना, उसको सीमित कर देना है, इसीलिये अनेक अलौकिक गुणों से संपन्न होते हुए भी यह ब्रह्म निर्गुण और निराकार है। वह परमचेतना के रूप में सर्वत्र व्याप्त है, अतः सभी के द्वारा ग्राह्य और प्राप्य हो सकता है। इसीलिये किसी भी धर्म या जाति को इस ब्रह्म को स्वीकार करने में आपत्ति नहीं हो सकती।

ब्रह्म के इस सार्वभौम स्वरूप की स्थापना से पारस्परिक वैमनस्य कम हुआ और संत संप्रदायों में विभिन्न जातियों और धर्मों के लोग सम्मिलित होने लगे। ये संत संप्रदाय स्त्री पुरुष, ब्राह्मण शूद्र हिंदू मुस्लिम सभी के लिये मुक्त थे, अतः सभी की आस्था इन संप्रदायों पर जमने लगी और संत साहित्य ने देश की एकता के सूत्र सुदृढ़ किए और मानवतावादी भारतीय संस्कृति का स्वरूप उद्घाटित किया।

ब्रह्म के इस स्वरूप को प्राप्त करने के लिये इन संत संप्रदायों में विभिन्न साधनाएँ

प्रचलित हुईं और मोटे तौर से इन साधनाओं के भेद के कारण ही विभिन्न संप्रदायों का स्वरूप निर्मित हुआ। लेकिन साधनापद्धतियों की भिन्नता के बावजूद भी जो सबसे व्यापक तत्व था, वह भक्तिभाव का था। भक्ति संतमत के लिये जीवन का आचार बनकर आई। भक्ति के द्वारा एक ओर जहाँ इन संतों ने मानव मानव के बीच संबंध जोड़ा, वहीं दूसरी ओर ब्रह्म का साक्षात्कार भी किया. अतः संत साहित्य में एक ओर जहाँ आचार शोधन के लिये ज्ञानचर्या और उपदेश प्राप्त होते हैं, वहीं दूसरी ओर ब्रह्मानुभूति के उद्गार भी मिलते हैं, जिनके अंतर्गत भक्ति के विविध भाव प्रस्फुटित हैं। भक्ति महारस है और इसकी धारा में संतकाव्य के विविध भाव समाहित हैं। अत. संतकाव्य उपदेशात्मक और आचारात्मक होते हुए भी विभिन्न भावों से युक्त है। इसमें कहीं तो ब्रह्म के अद्भुत स्वरूप पर आश्चर्यमिश्रित पुलक है तो कहीं अपनी बद्धता और विवशता पर खीझ। कहीं ब्रह्म को प्रियतम मानकर उससे मिलने की उत्कट अभिलाषा व्यक्त हुई है तो कहीं उसके वियोग की गहरी विरहानुभूति की भावना प्राप्त होती है। कहीं उपालंभ के भाव मिलते हैं तो कहीं अनन्यता और दृढ विश्वास की भावना विद्यमान है। संतों के ये विविध भाव लोकजीवन के बीच ब्रह्म की अभिव्यक्ति का अनुभव करके प्रकट हुए हैं। इसी अनुभव के कारण संतकाव्य रहस्यवादी है। उनके लिये प्रकृति जड नहीं, उसकी क्रियाओं और परिवर्तित रूपों में वे परमसत्ता की अनुभूति तथा संकेत प्राप्त करते हैं और इस प्रकार रहस्यदृष्टि को प्राप्त करते हुए जीवन में उस उल्लास का अनुभव करते हैं जो ब्रह्मानंद से संबंधित है। इस कारण हम कह सकते हैं कि संतकाव्य का भावपक्ष अलौकिक होते हुए भी तीव्र और गंभीर है।

गंभीर और निजी आध्यात्मिक अनुभूति की अभिव्यक्ति संतकाव्य में सहज रीति से भी हुई है और चमत्कारी ढंग से भी, परंतु संतों का यह उद्दिष्ट कदापि नहीं है कि वे अपनी वाणियों में जान बूझकर चमत्कार प्रदर्शित करें। कलात्मकता की दृष्टि प्रधान न होते हुए भी संतकाव्य में अभिव्यक्ति का चमत्कार सहज रूप में विद्यमान है। जहाँ वे व्यंग्यात्मक प्रहार और विशिष्ट आकर्षण से युक्त बातें कहना चाहते हैं वहाँ उन्होंने प्रतीकों का आश्रय लिया है। प्रतीक, रूपक और अन्योक्ति संतकाव्य के प्रमुख अलंकरण हैं, परंतु ये प्रतीक और रूपक भी कहीं कहीं ऐसा वैचित्र्य और विलक्षणता लिए हुए हैं कि उनको समझना सर्वसाधारण के लिये संभव नहीं है। ऐसी शैली संतों ने वहाँ अपनाई है जहाँ वे कोई बात सर्वसाधारण के लिये न कहकर साधना की दृष्टि से प्रबुद्ध व्यक्तियों से कहना चाहते हैं। ऐसी स्थिति में उन्होंने उलटबाँसियों का प्रयोग किया। उलटबाँसियों के प्रतीक और रूपक असंगतियों और विरोधों से युक्त हैं, फिर भी उनमें एक प्रबल आकर्षण और चमत्कार है, जो किसी का भी ध्यान अपनी ओर खींचता है।

इसके अतिरिक्त संतकाव्य में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, भ्रम, संदेह, अपह्नुति, अतिशयोक्ति, दृष्टांत, निदर्शना, दीपक, समासोक्ति, अन्योक्ति आदि अलंकार पाए जाते

हैं। ये अलंकार उनके वक्तव्य को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिये आए हैं, कहीं कहीं ऐसे भी स्थल संतकाव्य में मिलते हैं जहाँ गूढ़ और सूक्ष्म आंतरिक अनुभूति को इन अलंकारों की सहायता के बिना व्यक्त करना कठिन है। इसीलिये यह कहा जा सकता है कि संत-काव्य का कलापक्ष अभिव्यक्ति का स्वाभाविक सौष्ठव है। उनके काव्य में आए हुए अलंकार भावव्यंजना के सहज रूप हैं। कलागत कोई उद्देश्य न होते हुए भी साधना की गहराई और अनुभूति की तीव्रता के कारण संतकाव्य में कला का समावेश अपने आप हो गया है।

इस प्रकार व्यापक मानवतावादी दृष्टिकोण को लेकर सहज और सुगम भाषा में जीवन के मूलतत्वों का प्रचार संतकाव्य में किया गया है और जीवन की प्रगति के लिये इन तत्वों का अपनाना आवश्यक है। इस साहित्य में विकृतियों पर प्रहार भी है और सद्-वृत्तियों को प्रेरणा देने की क्षमता भी, इसीलिये इस साहित्य का मूल्य समाज में सत्य की स्थापना और असत्य तथा छल कपट और आडंबर का विनाश है। समाज में इस कार्य को करने के लिये एक बहुत बड़ा समुदाय चाहिए। संतों के रूप में मध्ययुगीन जनता को वह समाज मिला। विभिन्न संप्रदायों के रूप में संगठित यह संतसमुदाय समकालीन सामाजिक और आध्यात्मिक चेतना को जाग्रत करने में पूर्णतया सफल रहा। इसी संत-समुदाय द्वारा विकासशील समाज का निर्माण करनेवाले तत्वों की अभिव्यक्ति हमें संतकाव्य में प्राप्त होती है, अतः निश्चय ही इस काव्य का सामाजिक महत्व है।

द्वितीय अध्याय

सूफी प्रेमाख्यानक काव्य

प्रेमाख्यान और उनके लेखक

१७०० विक्रमी के पूर्व 'चंदायन', 'पद्मावत', 'मधुमालती', उसमानकृत 'चित्रावली' शेखनबीकृत 'ज्ञानदीप' और न्यामत खाँ (जान कवि) कृत रचनाएँ रची जा चुकी थीं। यहाँ तक कि विपुल संख्या में प्रेमाख्यान लिखनेवाले जान कवि का समय तो सत्रहवीं शती के उत्तरार्ध से लेकर अठारहवीं शती के आरंभ तक माना जाता है और उनका ग्रंथ 'लैला मजनूं' १६९१ वि० का लिखा हुआ बताया गया है। फिर भी यदि विवेचनकाल की सीमाओं को दृढ़तापूर्वक स्वीकार करके चलें तो उनकी रचनाओं को भी यहाँ विवेचन के अंतर्गत नहीं लिया जा सकता। रचनाकाल और विवेचनसीमा की दृष्टि से कासिमशाहकृत 'हंसजवाहिर' ही पहली रचना है जिसपर विचार किया जा सकता है।

कासिमशाह लखनऊ जिले के 'दरियाबाद' नगर के निवासी थे और इनके पिता का नाम इमानुल्ला था। जातिगत हीनता ने इन्हें उच्चता की ओर देखने से नहीं रोका। शाहेवक्त दिल्ली सुलतान मुहम्मदशाह के समय हि०स० ११४९ अर्थात् सन् १७३६ या वि० १७९० के आसपास 'हंस जवाहिर' की रचना इन्होंने की थी। पीर मुहम्मद के पुत्र पीर अशरफ, संभवतः, इनके गुरु थे। पूर्णतया काल्पनिक कथा को प्रस्तुत करते हुए कासिमशाह बलख, चीन और रूम सब जगह की यात्रा कर आते हैं, परियों को ही साधक और उनके अनजाने ही उनके द्वारा किए गए काम के कारण उन्हें बाधक बनाते हैं, नायक हंस को बचपन से ही कष्ट का सामना कराते और एकाधिक विवाह करते हुए भी जवाहिर के प्रति पूर्ववत् प्रेम में आबद्ध दिखाते हैं। प्रतिनायक दिनौर की चालबाजियाँ और उसके गुरु धीरनाथ को बाधक तत्व के रूप में प्रस्तुत करते हुए लेखक कथा को अंत में नायक के विरोधी मीरदौला के पुत्र से उसका घात करा देता है और जवाहिर से उत्पन्न उसके पुत्र 'हसीन' को राजगद्दी दिलाता है। हंस बलख के सुलतान बुरहानशाह का हजरत खिज्र ख्वाजा के आशीष से प्राप्त पुत्र है जिसके भाग्य में बलख से बिछुड़ना और पुनः वहाँ पहुँचना लिखा है। जवाहिर चीन के राजा आलमशाह की पत्नी रानी मुक्ताहर की पुत्री है जिसे तालाब में नहाने आनेवाली परी 'शब्द' की सहायता से हंस का रूपगुण सुनने को मिलता है और यहीं 'शब्द' हंस को जवाहिर का परिचय देती है जिसके लिये वह योगी बनकर निकल पड़ता है। कवि ने आश्चर्य तत्व के मिश्रण के लिये परी और

अप्सराओं का सहारा लिया है। परंपरा से हटकर गुरु को नायक का मार्गदर्शक न बनाकर प्रतिपक्षी का मार्गदर्शक बनाया है, नायक नायिका का बिछोह एक बार नही तीन तीन बार कराया है और इन सभी बातो से पूर्वपरिचित कथायोजना से नवीनता दिखाने का प्रयत्न किया है। अंत को दु खद बनाते हुए कासिमशाह ने ससार तथा जीवन की क्षणभंगुरता दिखाई है। प्रेमपद्धति के अनुकूल स्वप्नदर्शन और गुणश्रवण दोनो की ही योजना कवि ने की है।

इस क्रम में दूसरी रचना है नूरमुहम्मद कृत 'इंद्रावती'। उन्ही के द्वारा प्रणीत 'नलदमन' तथा 'अनुरागबाँसुरी' भी प्रेमाख्यान ही है। ये किसी 'सबरहद' गाँव के निवासी थे और स्व० चंद्रबली पांडेय के अनुसार अपने अंतिम दिनो में फूलपुर (आजमगढ) में रहने लगे थे। यहाँ इनकी ससुराल बताई गई है और माना गया है कि इन्होंने सन् १७८५ ई० तक यही निवास करते हुए फारसी मे 'कामयाब' नाम से, जिसका प्रयोग 'इंद्रावती' में भी मिलता है, रचनाएँ की। 'इंद्रावती' (रचनाकाल ११५७ हि०) की रचना के समय ये अपने आपको 'तरुण' बताते है। 'अनुरागबाँसुरी' की रचना इन्ही के अनुसार ११७८ हि० की है। इन दोनो ग्रंथो के बीच उन्होने 'नलदमन' काव्य की रचना की थी। ये कट्टर धार्मिक और धर्मप्रचारक थे। 'इंद्रावती' की कथा का संबंध कालिजर के राजा भूपति के एकमात्र पुत्र 'राजकुँवर' और आगमपुर नगर के जगपति नामक राजा की रतनजोत इंद्रावती नामक कन्या से है। दर्पण में, स्वप्न में ही, किसी सुदर का प्रतिबिंब देखकर, दूसरी रात पुन. स्वप्नदर्शन करके इस प्रेम की नीव पड़ती है। तपस्वी 'गुरुनाथ' इनके मिलन का माध्यम और राजकुँवर का गुरु है। सात बीहड वनों को पार करता और मार्ग मे कायापति नामक बनजारे से भेंट करता राजकुँवर अग्रसर होता जाता है। जिउपुर में उसकी भेंट एक यति से होती है जो आगमपुर के विश्रामस्थलों का पता देता और शिवमदिर की सूचना देता है जिसमे पहुँचने पर आराधना के समय ही आकाशवाणी द्वारा उसे प्रेमपुर मे इंद्रावती की मनफुलवारी में पहुँचने का आदेश प्राप्त होता है। इसी प्रकार कथा आगे बढ़ती जाती है और एक रूपक के रूप मे उपस्थित होती है। कथा का अंत राजा के निधन और रानियों के सती होने से होता है। नामो से ही प्रकट है कि लेखक की यह कथा आद्यंत काल्पनिक और उसका सिद्धांत प्रचारवादी है। राजकुँवर साधक का, गुरुनाथ तपस्वी मार्गदर्शक का, आठ सखा इंद्रियविकार का, रानी 'सुदर' सांसारिक मोह का, रतनजोत इंद्रावती परमैश्वर्यवान परमात्मा का, सात बीहड़ वन रूपरसादि के लालच का, उनपर विजय शारीरिक वासनाओ पर विजय का, देहंतपुर शरीर की आगे न बढ़ने की स्थिति का, कायापति शारीरिक वासनाओं के स्वामी का, जिउपुर चेतना का, जिअंतपुर बुद्धि त्याग कर और परमार्थ मार्ग पर चलने का तथा आगमपुर परमतत्व की प्राप्ति का रूपक उपस्थित करता है। 'मरजीया' होने के लिये साधक को 'प्रणमोती' या साधना पूरी करनी होती है। इस बीच अनिश्चय बुद्धि तथा दुर्जन का संग बाधक बनता है जिसके लिये कवि मोहिनी और दुर्जनराम नामों की कल्पना करता है। कथा का पूर्वार्ध इंद्रावती

तथा राजकुँवर के विवाह पर हो जाता है। यही आत्मा परमात्मा के मिलन का प्रतीक है। काव्यचमत्कार की अपेक्षा कवि का ध्यान विरहपीडा की अनुभूति के वर्णन पर ही जमता है। उत्तरार्ध मे उसने षड्ऋतु और बारहमासे का भी उद्दीपन रूप मे वर्णन किया है। हाँ, विरहदशाओ का वर्णन संकेत मात्र है। न भावो नों की तीव्रता है और न प्रभावोत्पादकता ही। अश्लीलता से बचकर ही कवि ने यह रचना प्रस्तुत की है। वर्णनात्मकता से आरंभ होनेवाली इस रचना मे कुतूहल की मात्रा अधिक नही रखी गई है। अन्तर्कथाओं की योजना के साथ कथाप्रवाह भी अक्षुण्ण ही रहता है। वैचित्र्य यह है कि राजकुंवर की पूर्वपत्नी राज्य भी करती है और शत्रु से युद्ध करके उसे परास्त भी करती है। जायसी के समान न तो वह समाप्ति के अवसर पर कथा की रचना का उद्देश्य बताता है, न अंत को मंझन के सदृश सुखांत ही रखता है, अपितु कथा के महत्व पर प्रकाश डालता है। दूसरे के शोक से करुणाविगलित होकर उसका नायक रोगी हो जाता है और फिर कथा की समाप्ति उसकी मृत्यु के साथ ही होती है। नवीनता की दृष्टि से यह भी यहाँ उल्लेखनीय प्रतीत होता है कि नूरमुहम्मद ने इस काव्य मे काव्यरीति, समाज की परंपरा, अंधविश्वास, वैद्यक तथा कामशास्त्र आदि के द्वारा अपनी बहुज्ञता का परिचय दिया है।

इन्हीं की रचना 'अनुरागबाँसुरी' वस्तुतः प्रेमकथा होकर भी लोककथा नही बल्कि धर्मकथा ही अधिक है। वह भी 'इंद्रावती' के समान रूपक लेकर ही उपस्थित होती है। विशेष अर्थव्यंजक पात्र एवं स्थाननामों के चयन में यह कवि कुशल दिखाई देता है। काया के लिये मूरतिपुर, काया के स्वामी के लिये जीव, जीव के आधारस्वरूप पुत्र के लिये अंतःकरण, उसके दो मित्रों के लिये संकल्प, विकल्प, साथियों के लिये मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, आकर्षण के लिये माया, या उसकी पत्नी महामोहिनी, अंतःकरण के जीवनलक्ष्य के लिये सनेहनगर के स्वामी दर्शनराय की पुत्री सर्वमंगला की प्राप्ति, परमेश्वर के लिये दर्शनराय, रागिनी के लिये सर्वमंगला आदि नाम रखे गए हैं। इसी प्रकार 'बूझ' भेदिया है, 'बुद्धि' अंतःकरण का साहस दिलानेवाली, गुरु है स्नेह जिसकी अंतःकरण शरण जाता है और उपदेशदाता सुवे की सहायता से सिद्धि प्राप्त करता है। विघ्नस्वरूप कामुकी, मनभावनी, रूपसनेही, रसनेही एवं बासनेही को उपस्थित करके प्रकारांतर से रूप-रस-गंधादि को ही उपस्थित किया गया है। अततः ध्यानदेवहरा मे तन्मय हो जाने पर सर्वमंगला का ध्यान करने से सिद्धि प्राप्त होती है। कथा के इस स्वरूप के कारण सहज ही उसमें शृंगार के अतिरिक्त शांत एवं करुण का भी मिश्रण हो गया है, किंतु परिपाकदशा तक वे नही पहुँच सके हैं। शृंगार के प्रधान रस होने पर उनकी पुष्टि उचित भी नही थी। ध्यान देने की बात यह है कि नूरमुहम्मद ने इस काव्य में संयोग का वर्णन नहीं किया है। साथ ही बरवै का प्रयोग भी छंदप्रयोग की दिशा में एक उल्लेखनीय पृथक्ता सूचित करता है। तीन चौपाइयो के पश्चात् बरवै का प्रयोग नवीन ही है। भाषा प्रयोग के स्तर पर भी संस्कृत तत्सम शब्दावली का प्रयोग इन्हें अन्य कवियों से अलग

ला खड़ा करता है। वैसे मूलतः इनकी भाषा अवधी ही है, किंतु उसमें ब्रज और खड़ी बोली का भी संमिश्रण है।

नूरमुहम्मद के उल्लेख के बाद वस्तुतः 'यूसुफ जुलेखा' के लेखक का उल्लेख ही महत्वपूर्ण है, किंतु इन दोनो के बीच एक और कवि का नाम आता है। यह नाम है हुसेन अली का। इनकी कृति का नाम है 'पुहुपावती' जिसकी रचना संभवतः हि० ११३८ में हुई है। इस कवि का उपनाम 'सदानंद' था और निवासस्थान था हरिगाँव। बताया गया है कि ये कन्नौजवासी केशवलाल कवि के काव्यगुरु थे। हुसेन अली की यह प्रेमगाथा दुर्भाग्य से त्रुटित रूप मे ही प्राप्त होती है, किंतु उतने से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि यह रूपक आदि की जटिलता और युद्ध आदि के वर्णनो से विरहित एक सीधी सादी प्रेमकथा है जिसका अंत भी प्रेमी प्रेमिका के विवाह और तदुपरांत पुत्रजन्म के साथ होता है। कथा काशीपुर के राजा लालसिंह के पुत्र मानिकचंद तथा जंबूद्वीप के रूपनगर के नरेश पद्मसेन एवं रानी कौशल्या की पुत्री 'पुहुपावती' की प्रेमकथा है। लेखक बड़ी चतुराई से एक विप्र द्वारा सिंहलद्वीप की पद्मिनी नायिकाओं की प्रसिद्धि के कथन के विरोध मे एक भाटिन के द्वारा जंबूद्वीप मे पद्मिनी नायिकाओं की प्राप्ति की प्रतिष्ठा करता है और जायसी द्वारा स्वीकृत प्रसिद्धि का मानो तिरस्कार करके नई नींव डालता है। पुहुपावती की प्राप्ति का माध्यम भी यहाँ बनी है एक भाटिन जो अपने को चित्रकार के रूप में पुहुपावती के समीप उपस्थित करती है। साथ ही लेखक ने मंदिर मे पुहुपावती द्वारा मानिकचंद की प्राप्ति की अभिलाषा भी व्यक्त कराई है और स्वप्न में उसका दर्शन और गुणश्रवण एवं चित्र-दर्शन भी कराया है। विकलता का वर्णन दोनो ओर से किया गया है। परंतु कोई विरोधी-तत्व इसमे उपस्थित नही होता, कोई अंतराय नही आता। ध्यान रखना चाहिए कि इस 'पुहुपावती' की योजना और कथा दोनो ही दुखहरन कृत 'पुहुपावती' से भिन्न है। दुख-हरन ने विरोधी तत्वो का वर्णन करते हुए राजपुर के परजापति के पुत्र और अनूपगढ़ के राजा अंबरसेन की पुत्री पुहुपावती की कथा लिखी है। हुसेन अली की कथा त्रुटित होने के कारण जितने अंश उपलब्ध है उनसे उसके वर्णनों की कामोत्तेजकता का ही पता चलता है और साथ ही यह भी ज्ञात होता है कि रूढ़िगत वर्णनो के कारण इस काव्य मे रसात्मकता की कमी है। अवधी भाषा को अपनाते हुए भी लेखक ब्रजभाषा से पर्याप्त मात्रा में प्रभा-वित है।

इन कवियो में दूसरा महत्वपूर्ण कवि है शेखनिसार जिसने 'यूसुफ जुलेखा' की रचना सं० १८४७ में ५७ वर्ष की अवस्था में की। इनका जन्म स० १७८६ और १७६० के बीच कभी हुआ होगा। इनके रचनाकाल के समय दिल्ली का शासनाधिपति सुलतान शाह आलम था। यह रुदौली सोहावल (उत्तर प्रदेश) के बीच शेखपुर के रहनेवाले थे। 'बड़ा गाँव' की कविपरंपरा में उपस्थित होनेवाले सैयद मुख्तार हसन के ग्रंथ 'मकसूब नजात' से पता चलता है कि इनका असली नाम गुलाम अशरफ और उपनाम शेखनिसार

था। इन्होंने 'ग्रहसन जौहर' मसनवी लिखी थी। इनके तीन भाई थे—गुलाम गौस, गुलाम रसूल एवं गुलाम सादिक। अन्यत्र इनकी कुल आठ रचनाओं का पता लगता है। ये हैं—आख्यानक काव्य 'मेहर निगार', शृंगार रसात्मक रीतिग्रंथ 'रसमनोज', दीवान, मसनवी फारसी 'ग्रहसन जौहर', सगीत ग्रंथ 'ग्रोदी', फारसी गद्य ग्रथ 'नस्र' तथा संग्रह ग्रथ 'नमाव' और 'यूसुफ जुलेखा'। कहते हैं, ये आशुकवि और समस्या-पूर्ति-प्रवीण थे।

निसार की प्रेमगाथा जामी कृत 'यूसुफ जुलेखा' मसनवी के आधार पर लिखी गई है और पूर्वार्ध की कथा पूर्णत कुरान मे ग्रहीत है। फारसी मे कथा ग्रहण करते हुए भी निसार ने उसमें भारतीयता का मिश्रण कर दिया है। किंतु कवि ने प्रभावग्रहण करने के साथ ही अपनी मौलिक कल्पना का भी परिचय दिया है। कुरान की कथा में प्रचलित प्रेमाख्यानपरंपरा के सदृश कुछ वर्णनो को काव्य मे स्थान दिया है ताकि उसका काव्यपरपरा के मेल में बैठ सके। उसने कुरान मे अवर्णित जिन प्रसगों का समावेश किया है वे इस प्रकार है :—जुलेखा की पूरी कथा, नखशिख वर्णन, यौवनागम, स्वप्न-दर्शन, विरहवेदना, जुलेखा-अजीज-विवाह, जुलेखा का अपने पति से सतीत्व की रक्षा, यूसुफ के लिये सर्वस्वत्याग और तपस्या, नेत्र तथा सौंदर्यहीन होना, विप्रलभ वर्णन, अत मे मिलन तथा गृहस्थ जीवन, यूसुफ एव जुलेखा की मृत्यु। अन्य स्थलों पर जुलेखा परकीया के रूप मे उपस्थित होती है किंतु निसार ने उसके सतीत्व की रक्षा करके उसके परकीयत्व को भी कुछ पवित्र रूप देने का प्रयत्न किया है और साथ ही बाद मे उसकी तपस्या से उस बाधा को और भी दूर करके यूसुफ को ही गृहस्थ का अधिकारी और उसका पति बनाकर उसके रूप को ही बदल दिया है। ऐसा लगता है कि लेखक उसके प्रेम को शुद्ध आदर्शात्मक रूप देने के लिये विशेष प्रयत्नशील रहा है। इस कवि की यह भी विशेषता है कि इसने नायक को ईश्वरीय गुणो से सपन्न माना है और उसके रूप पर जुलेखा को मुग्ध होते दिखाया है। यूसुफ को उसके प्रति कोई मोह या आकर्षण नही है। आरंभिक रूप में जुलेखा का यूसुफ के प्रति प्रेम ऐकांतिक है, स्वप्न में तीन तीन बार दर्शन कराकर लेखक ने सौंदर्य के परिचय को सघन बनाने का प्रयत्न किया है। इसके विपरीत यूसुफ का प्रेम न तो आरंभ से ही जुलेखा के प्रति दीखता है न वह लोकबाह्य और ऐकांतिक ही है। वस्तुत. वह कर्तव्यनिष्ठ ही अधिक है। जीवन भर प्रेम में रत रहनेवाली जुलेखा अतत. अध्यात्म और अलौकिकता के अकन की लालसा के कारण विवाह के उपरात इश्कमजाजी के स्थान पर इश्कहकीकी की ओर झुक जाती है और उसी मे मग्न रखी गई है। कवि ने उसके प्रेम की प्रगाढ़ता का वर्णन करते हुए जैसे विरहवर्णन का अवसर निकाल लिया है और प्रकृति के उद्दीपक चित्र अकित किए है। इसी प्रकार यूसुफ को उसके पिता याकूब से अलग करके वात्सल्य रस के परिपाक के लिये भी उचित अवसर निकाल लिया गया है। वस्तुत: निसार की यह कल्पना प्रेमाख्यानो मे नई ही है। सयोग शृगार का वर्णन तो नहीं के बराबर ही किया गया है किंतु विरह की प्रबलता अवश्य है और प्रियतम के सौंदर्य के आधार पर ईश्वर की कल्पना करके नया ढंग अपनाया गया है। वस्तुत: प्रेमाख्यानों की

पद्धति से हटकर ही 'यूसुफ जुलेखा' की सारी कथा चलती है और राजघराने से संबंध रखने के साथ ही सौदागर, दास आदि जीवन का व्यवहार भी प्रदर्शित करती है। न यहाँ गढ़ है, न समुद्र की बाधा, यहाँ तो कथा शुद्ध प्रेमानुभूति पर निर्भर है और साधारण लोकप्रवाह मे बहनेवाली प्रेमिका के चरित्र की गूढता को स्पष्ट करती है। जेल मे डालनेवाली जुलेखा के प्रेमी हृदय की क्रूरता का सकेत करके लेखक ने नारीचित्त की गूढ़ता का ही परिचय दिया है और कथा को प्रेमाख्यानो से सर्वथा भिन्न धरातल पर ला रखा है। कथा भी अततः सुखात न होकर दुःखांत ही बनी है जिसके आधार पर अटकल लगाई जाती है कि संभवत. शेखनिसार ने पुत्रशोक से विह्वल होकर ससार की नश्वरता के प्रदर्शन हेतु ऐसा किया है। जो हो, इससे करुण रस के समावेश का अवसर कवि को अवश्य मिल गया है। इतना सब होते हुए भी कवि के वर्णन और उपमान परपराभुक्त ही है तथा भाषा अवधी का लोकप्रचलित रूप उपस्थित करती है। एक अर्धाली को ही चौपाई माननेवाले निसार ने नौ अर्धालियो के बाद दोहे का क्रमनिर्वाह ही नही किया है, अपने काव्य को कवित्त और सोरठा से भी सजाया है तथा भाषा मे मुहाविरों का प्रयोग करके इसे ग्राह्यता तथा सशक्तता भी प्रदान की है।

इस काल के अतिम कवि है सलोन, जिला रायबरेली के निवासी तथा रीवाँ नरेश महाराज विश्वनाथसिंह के आश्रित अधे किंतु दिव्य-दृष्टि-सपन्न शाह नजफ अली सलोनी। इन्होने 'अखरावटी' की रचना हि० १२२४ (ई० सन् १८०९) मे तथा प्रेमाख्यान 'प्रेमचिनगारी' की रचना हि० सन् १२६१ मे की। धर्मप्रवण अतुर दानशील सलोनी ने मस्जिद भी बनवाई और खुले हाथ दान भी दिया। 'प्रेमचिनगारी' काव्य की रचना इन्होने मौलाना रूमी की मसनवी की मात्र दो हिकायतों के अनुवाद या टीका रूप में की है। ग्रथारभ मे निर्गुणवदना, मुहम्मद साहब की प्रशसा, चार खलीफाओं, हसन हुसेन का गुणगान तथा पीर की चर्चा की गई है। सूफी अद्वैतवाद को स्पष्ट करनेवाली पहली कथा बाँसुरी की कथा है जो वन मे अलग रहकर विरहव्याकुल रहती है। प्रेम की इस बाँसुरी के रहस्य को कोई बिरला ही समझता है और जो समझता है वह सासारिक मायाजाल से परे हो जाता है प्रेम का आनदलाभ करता हुआ वह उन्मत्त हो उठता है। आत्मा की सारी विकलता उसी ईश्वरीय प्रेम की बाँसुरी को सुनकर फूट पड़ती है। दूसरी कथा है हजरत मूसा और एक गड़ेरिए की जिसके माध्यम से लेखक ने ज्ञान की अपेक्षा प्रेम को अधिक महत्वपूर्ण सिद्ध किया है। अवधी भाषा में लिखी गई इस प्रेमगाथा का रंग और गाथाओं से सर्वथा निराला है जिसमे प्रेमाख्यानो की परपरा के वर्णन नही पाए जाते और न शृंगार रस की मान्यता ही स्वीकृत होती है बल्कि सरल बोधगम्य भाषा में शातरस का परिपाक होता है और कथारूपक या अन्योक्ति समासोक्ति की जटिलता से भी बची रहती है। निर्गुण सिद्धांत की व्याख्या मे लिखा जानेवाला यह काव्य अपना अलग ही महत्व रखता है।

१७०० से १९०० वि० के अंतर्गत उत्तर भारत मे लिखी गई इन कथाओं के बाद भी यह परंपरा विकसित होती रही है और इस परंपरा में संवत् १९६२ में ख्वाजा अहमद द्वारा लिखित 'नूरजहाँ', सं० १९७२ मे रचित शेखरहीम की कृति 'भाषाप्रेमरस' कवि नसीर द्वारा हि० सन् १३०५ या स० १९७४ वि० भाद्रपद कृष्ण द्वादशी को समाप्त की गई कृति 'प्रेमदर्पण', किसी अज्ञात कवि की 'कामरूप की कथा' तथा अलीमुरादकृत 'कथा कुँवरावत' नामक प्रेमगाथाएँ ग्रहण की जाती है। उनका यहाँ वर्णन अपेक्षित नही है।

इस कालखड के अंतर्गत दक्खिनी मे अनेक रचनाएँ लिखी गई है। यो दक्खिनी की प्रेमगाथाओं का आरंभ बंदानवाज गेसूदराज (१४१२ ई०) से ही हो जाता है और १७०० वि० तक आते आते निजामी, वजही, और गवासी जैसे कई प्रेमगाथाकार हो जाते है, परंतु अपनी कालसीमा के अन्तर्गत आनेवाली प्रेमगाथाओं मे सबसे पहली है शेख अहमद जुनैदी कृत माह पेकर। इनके बाद तो निशाती, हाशमी, तबई, गुलामअली, फायज, बहरी, जईफी, अजिज, इशरती, अमीन, हुनर, वजदी, और सिराज नाम के अनेक कवि हुए। वस्तुतः अपने इस विवेचन मे दक्खिनी पेमगाथाओं का मध्यकाल तथा उत्तरकाल दोनो ही आ जाते है। इस प्रकार ये रचनाएँ कुतुबशाही, आदिलशाही, मुगलिया और आसफिया काल की रचनाएँ है। यहाँ इन रचनाओं और लेखकों का सामान्य सा परिचय दिया जा रहा है :—

सैयद अहमद जुनेदी कृत 'माहपैकर' १६५३ ई० म लिखी जानेवाली पहली रचना है जो हमारे कालखड से संबंध रखती है। आध्यात्मिकता की गहरी छाया लिए हुए यह काव्य गजनी के हसन मेंहदी मत्री की कठिनाई से प्राप्त सुदर कन्या 'माह' और गजनी के ही एक व्यापारी अब्दुल्ला के पुत्र 'पैकर' की एक ऐसी प्रेमकथा है जो प्रेमाख्यानों की पूर्वपरपरा से हटकर नायक नायिका को राजवश मे सबधित नही दिखाती और विद्याध्ययन काल मे ही उन्हें विद्यालय के एक होने के कारण, निकट दिखाती है। इस प्रकार का वर्णन केवल लैला मजनूं की कथा में मिलता है। सूफी विचारधारा का प्रचार करती हुई यह कथा कहाँ से ली गई, कहा नही जा सकता। इतना साफ है कि यह दोस्तो के आग्रह पर ही रची गई है। वर्णनविषय और भाषाशैली की दृष्टि मे इसे सुंदर कृति बताया जाता है और माह के बाग और उसमे पुष्पित फूलों के दृश्यवर्णन की विशेष प्रशसा की जाती है। मध्यम वर्ग से संबंधित इस रचना का नायक यात्राएँ भी नही करता और न उसका मार्ग बाधाएँ या संकट ही अवरुद्ध करते है। किंतु इसमें काव्य की रसात्मकता और प्रेमभावना मे कोई कमी नहीं आती।

मनहर मधुमालती की कथा जिस प्रकार उत्तर के सूफी असूफी कवियों को प्रभावित करती रही है, उसी प्रकार दक्खिनी के कवि भी उससे प्रभावित हुए हैं। इन कवियों में **मुल्ला नुसरती** का नाम उल्लेखनीय है जिन्होंने १६५७ ई० मे इस कथानक के आधार पर 'गुलशने इश्क' की रचना की है। इसकी कथा मझन कृत 'मधुमालती' से मिलती

जुलती है। यत्र तत्र गड़बड़ी के अतिरिक्त नुसरती के काव्य में नाम भी मंझन की कृति के सदृश ही हैं। संभवतः ऐसा लोकप्रचलित कथा पर आश्रित रहने के कारण हुआ हो और मंझन की कृति को स्वयं लेखक ने न देखा हो। योगी बनने की उत्तर भारतीय सूफी काव्य-नायकों की परपरा से हटकर शामी परंपरा के अनुकूल नुसरती का कुँवर साहसिक यात्राओं पर जाता है, साथ ही लैला मजनूं के कथानक के सदृश मनोहर को विक्षिप्त ही प्रदर्शित नही किया है, उसे दुबारा विक्षिप्तावस्था में भी दिखाया है। 'लैला मजनूँ' के मजनूं के समान ही इस कथा मे भी नायक नायिका के संदेशवाहक चंद्रसेन के चरणो में गिरकर उसके प्रति अपना प्रेमभाव व्यक्त करता है। आध्यात्मिकता के निर्वाह के लिये रूपकात्मकता का महारा लेते हुए भी कवि ने सफलतापूर्वक केवल भाव एवं रस का निर्वाह ही नही किया है बल्कि भाषाशैली मे भी अपनी सामर्थ्य का परिचय दिया है जिसके कारण विद्वानों ने इसे दक्खिनी प्रेमगाथाओ मे प्रथम स्थान का अधिकारी माना है।

गोलकुंडा के निवासी तथा सुलतान अब्दुल्ला कुतुब (१६२४–७२ ई०) के दरबार के उच्च पदाधिकारी **इब्न निशाती** का कथाकाव्य 'फूलबन' (रचनाकाल १६५६ ई०) भी इस संदर्भ की उल्लेखनीय रचना मानी जाती है। फारसी रचना 'बिसाते' या 'बिसातीन' के आधार पर रचित इस काव्य में फारसी अरबी शब्दो का विपुल प्रयोग है, फिर भी वातावरण और वर्णनशैली से कवि भारतीयता का ही परिचय देता है। साथ ही इसकी कवित्वशक्ति का एक सुखद परिणाम यह होता है कि यह रचना शाब्दिक अनुवाद की कोटि से निकलकर दक्खिनी के सर्वश्रेष्ठ सूफी आख्यानकाव्यो मे स्थान पाती है। साहित्यिकता, छंदयोजना, कल्पनाशीलता और भावोद्रेक के लिये इस रचना की विशेष प्रशंसा की जाती है। स्वाभाविक रूप मे रीतिरिवाजों या विवाह आदि की प्रथाओं के वर्णन में भी कवि कुशल है और समकालिकता से प्रभावित चित्र अंकित करता है। पग पग पर अलंकार की सुंदर छटा दर्शनीय है। आध्यात्मिकता का निर्वाह करते हुए लेखक उसका यत्रतत्र ही उल्लेख लाता है और लौकिकता को भी हावी नही होने देता। कहते हैं, कवि के एक शताब्दी बाद मिघोट (कडपा, आंध्र) की किसी जागीरदारनी से प्रेरणा पाकर जाफर के पुत्र मुहम्मद हैदर ने इसमे समनवर तथा हुमायूँ के विवाह का अंश भी जोड़ दिया है। अलिफलैला के समान अनेक किस्सो का समूह और कथानकप्रवाह को प्रस्तुत करनेवाले इस काव्य में कंचनपटन के बादशाह के उस स्वप्न का वर्णन है जिसमें वह एक दरवेश को देखकर उसे बुलाता है और उससे जिन किस्सों को सुनता है उनका कभी अंत ही नही होता। महापंडित राहुल सांकृत्यायन इसे १०६६ हि० अर्थात् १६५६ ई० की रचना मानते है।

१६७० ई० मे **तबई** द्वारा रचित 'बहराम व गुलन्दाम' की कथा भी इन कवियो के बीच पर्याप्त प्रचलित रही है। मलिक खुशनूद, अमीन व दौलत, तीन तीन कवियों ने इसे अपने प्रबंध का विषय बनाया है, किंतु तबई ही एकमात्र ऐसे कवि हैं जो सर्वाधिक सफल कहे जा सकते हैं और जिनकी मौलिकता, कविताशक्ति, कथासंगठन, भाव एवं भाषाभि-

व्यक्ति की दृष्टि से प्रशंसा की जा सकती है। आलोचकों का तो यह भी मत है कि उनकी रचना मूल फारसी रचना से भी कई बातों मे श्रेष्ठ है और उससे पूर्णतया भिन्न कथानक पर आधृत है। इसका आरंभ शाहे रोम के पुत्राभाव के वर्णन से होता है। शाह बहराम के स्वप्न मे ही गुलंदाम से स्नेहसबंध स्थापित करने की कल्पना भी तबई की अपनी है। मूल कथानक मे बहराम को गुलंदाम की प्राप्ति कराता है एक गौर देव और उसी को अन्य कथाकारो ने भी स्वीकार किया है किंतु तबई के नायक का मार्गदर्शक एक पीर बनता है। बहराम संघर्ष करता हुआ अपना मार्ग स्वयं बनाता चलता है। इन सारी बातों मे स्पष्ट है कि तबई की रचना फारसी का अनुवाद नहीं है। तबई तो बहराम की ओर उसके उज्वल चरित्र के कारण आकृष्ट है और उसे निखारकर ही प्रस्तुत करता है। कवि ने उसे मनचाहे रूप में कठपुतली बनाकर चित्रित नही किया है, बल्कि उसके चरित्र को स्वाभाविक विकास की अवस्था मे रखा है। तबई से बहुत पूर्व अमीर खुसरो ने भी 'हश्तबहिश्त' में शाह बहराम का चित्रण किया था किंतु वह रचना भी चरित्रचित्रण या कथासंगठन में तबई की रचना की बराबरी नहीं कर पाती। इस काव्य में न संघर्षमय जीवन की कमी है, न रूपकात्मकता के निर्वाह में ही कोई गड़बड़ी है। इसी कारण आलोचकों ने इसे एक प्रौढ़ कलाकृति बताया है।

पहले शेखनिसार की कृति 'यूसुफ जुलेखा' की प्रशंसा की जा चुकी है, किंतु उत्तर में उसकी रचना सन् १७६० ई० में हुई जबकि दक्खिनी में हाशमी ने इस कथा को इसी नाम से सन् १६८८ ई० में ही रच डाला था। और **हाशमी** के दस वर्ष ही पश्चात् **अमीन गूजरी** ने १६९८ ई० में इसी कथा की रचना कर ली थी। किंतु अमीन ने हाशमी से कथा न लेकर फारसी से ली है और उसे गोधरा स्थान तथा गोधरी भाषा मे लिखा है। शेख निसार अवश्य हाशमी से प्रभावित जान पड़ते हैं। हाशमी जन्मांध थे, अत. उन्होंने फारसी से जामी की कथा को केवल श्रुतपरंपरा से ग्रहण किया होगा, किंतु अमीन ने उसका सीधे लाभ उठाया है। अत उनकी रचना में कथानक में कोई अंतर नहीं किया गया है। अमीन की रचना हाशमी की रचना से आकार में छोटी और कुल ४११८ शेरों की है। हाशमी की रचना मे ६००० पद है और उनकी रचना का मूलस्वर तसव्वुफ ही है। प्रेम को सर्वोपरि चित्रित करते हुए कवि ने अलंकारों की प्रचुरता से भी काम लिया है। पात्रों के चरित्रांकन में भारतीयता को अपनाया गया है तथा दैवी चरित्रो की अपेक्षा मानवीय रूप ही विशेष प्रभावशाली रूप में अंकित हुए है। सब कुछ होते हुए भी, चाहे आजमाइश के लिये ही हो, कवि ने अश्लीलता का भी समावेश कर लिया है। मलिक खुशनूद, और अमीन दोनों का रचनाकाल १६४६ और १६४० ई० पड़ता है, अत उनका यहाँ विशेष उल्लेख संभव नहीं है।

इस बीच ऐतिहासिक क्रम की दृष्टि से १६८० ई० मे लिखी गई **गुलाम अली** की कृति 'पद्मावत' का भी उल्लेख होना चाहिए, किंतु अधूरी प्रति होने से उसके संबंध में

कुछ विशेष नहीं कहा जा सकता। इतना अवश्य स्पष्ट है कि यह रचना जायसी के 'पदमावत' के आधार पर लिखी गई है। किंतु कथाविन्यास और आकार दोनों मे ही अंतर है। इनके बाद पद्मावत का ही आधार लेकर मेल खाती हुई रचना 'दीपकपतंग' के लेखक **सैयद मुहम्मद इशरती** का ही उल्लेख आता है। इनकी रचना का समय १६६५ ई० है। 'पद्मावत' को आधार मानने के कारण ही गुलाम अली के साथ इशरती का उल्लेख किया जा रहा है अन्यथा इनके पहले भी १६८३ ई० में फायज के 'रिजवानशाह रूहअफजा' और लगभग इसी समय आजिज कृत 'मसनवी मलिकै मिश्र' एवं १६८६ ई० मे गोलकुंडा के शेख **दाऊद 'जईफी'** के दो पद्यग्रंथ 'हिदायात हिंदी' तथा 'इश्के सादिक' (मसनवी) की रचना की सूचना मिलती है।

फायज गोलकुंडा के सुलतान तानाशाह के राज्यकाल मे थे, केवल इतना ही इनके विषय में ज्ञात होता है, किंतु अपने वाक्य मे इन्होंने शाहे वक्त की वंदना नहीं की। यह अपनी रचना नम्रतापूर्वक जनता को समर्पित करते है और इनकी कथा का रूपकात्मक पक्ष स्पष्ट है। आजिज नाम से तीन अलग अलग कवियों की कल्पना की गई है और 'मसनवी मलिकै मिस्र' का रचनाकाल एवं कविनाम भी दो भिन्न प्रतियों मे भिन्न दिया हुआ है जिससे भ्रम की संभावना बनी रहती है। विद्वानों की धारणा है कि पहले आजिज की कृति 'लैला मजनूँ' १६३० ई० की रचना है, दूसरे की 'मलिकै मिस्र' वस्तुतः १६८८ की रचना है। तीसरा—'लाल व गौहर' का लेखक अफ्फुद्दीन आजिज उसके अनेक वर्ष बाद रचना प्रस्तुत करता है। दूसरा आजिज सैयद मुहम्मद कुरान का विश्वासी था अतः वह मलिका मिस्र तथा भारतीय विद्वान् अब्दुल अलीम के बीच प्रश्नोत्तर कराकर इस्लाम धर्म के प्रचार की लक्ष्यपूर्ति करता है। वस्तुतः इनके लिये फारसी रचना आधार बनी है, बल्कि ऐसा लगता है कि मात्र दो लिपियों का ही अंतर है। मसनवी 'इश्के सादिक' मे जईफी द्वारा पैगंबर मुहम्मद पर एक अरब स्त्री के सच्चे प्रेम की कथा वर्णित है और उसकी वर्णनशैली नीरस है। इस कथा का उद्देश्य रसूल के प्रति विश्वास जगाना है। कवि ने लोकसामान्यता को बनाए रखकर मुहम्मद के जीवन से उसका मेल मिलाया है। उल्लेखनीय कवियों मे 'इशरती' का ही नाम आता है। यह सैयद यूसुफ हुसैनी के पुत्र थे और इन्हे औरंगजेब से जागीर और आश्रय प्राप्त हुआ था। हैदराबाद मे इनका जीवन बीता किंतु जन्म एवं मृत्यु की तिथि की कोई सूचना प्राप्त नही होती। 'दीपकपतग' को पद्मावत के आधार पर लिखने पर भी इनकी मौलिकता का संकेत उस रचना से भी मिलता है। इनकी दूसरी रचना 'चितलगन' यद्यपि अपूर्ण ही प्राप्त होती है, तथापि वह बृहत्काय रचना है। बीच बीच में त्रुटित होने के कारण कथाप्रवाह विच्छिन्न हो गया है और भाषाशैली प्रभावशाली होते हुए भी यह कृति गहरा प्रभाव नही छोड़ती। इस कृति का रचनाकाल भी अज्ञात ही है। सामान्य कथा के रूप में यहाँ भी तोते के द्वारा जहानदार के मन में प्रेम उत्पन्न कराया जाता है और वह अन्य सुंदरी की ओर उन्मुख होता है।

दक्खिनी के कवि **मुकीमी** ने १६३५ में 'चंद्रबदन व महियार' की रचना की थी और फारसी में कवि 'इश्क' तथा हकीम मिर्जा **कासिमअली बेग** की रचनाएँ भी प्रसिद्ध थी। **मुहम्मद अमीन आतिशी** ने इसे फारसी मसनवी का रूप भी दिया था और उत्तर के कवि बुलबुल ने उर्दू में इस विषय पर पद्यरचना की थी। इसी प्रकार दक्खिनी में मुहम्मद बाकर '**आगाह**' ने १७११ ई० में 'बुदरते इश्क' और १८१२ में **वाकिफ** ने 'कुस्साने इश्क या महियार व चंद्रबदन' की रचना की। ये रचनाएँ हिंदू धर्म को हेय सिद्ध करती हुई इस्लाम के प्रचार के उद्देश्य से लिखी गई है, फलतः चरित्रांकन में इनके लेखकों की रुचि नहीं है। कथानक का विकास असफल है और कलापक्ष एवं रूपकात्मकता का निर्वाह नहीं हो सका है। ध्यान रखना चाहिए कि १७०० ई० में बीजापुर के शोगी स्थान के **काजी महमूद बहरी**' ने विविध शैलियों में सफलतापूर्वक मरसियों, गजलों, रुबाइयों और कसीदों आदि की रचना के अतिरिक्त 'मनलगन' नामक मसनवी की भी १८३० शेरों में रचना की है। इनका रचनाकाल १६३२ से १७१८ के बीच माना जाता है और औरंगजेब से इनकी भेंट की भी सूचना प्राप्त होती है। 'मनलगन' के अतिरिक्त इन्होंने १४८ के लगभग शेर युक्त 'मसनवी बंगालनामा', १००० शेरों युक्त 'कुलियाते बहरी' और ५९ शेरों में 'अफसाने इश्क खुद' की रचना की। इनकी रचना में माधुर्यादिगुण देखकर आलोचकों ने उसे मध्यकालीन संत या सूफी किसी भी कवि के जोड़ का बताया है। भावों की विपुलता, अनुभवगाम्भीर्य और हृदय की पीर के कारण रचना में प्रभावशालिता प्रकट होती है। यही कारण है कि 'मनलगन' को अनूठी और स्थायी रचना कहा गया है। अतः इशरती के बाद कोई कवि ध्यान में आता है तो वह उसी का पुत्र **सैयदमुहम्मद हुनर** है जिसने १७२१ ई० में 'नेहदर्पण' की ६४६० शेरों में रचना की है। स्वयं हुनर इस बात को स्वीकार करते हैं कि उन्होंने यह कथा किसी फारसी गद्यरचना से ली है, किंतु राजा कुँवर एवं कामलता की कथा होने के कारण कुछ विद्वानों की दृष्टि में यह भारतीय लोककथा ही है और फारसी की 'अलिफलैला' आदि में इसके स्रोत ढूंढना व्यर्थ है। इस रचना पर 'पद्मावत' का प्रभाव स्पष्ट है। सिंहलद्वीप, राजकुमारी कामलता का प्रति वर्ष उत्सवपर्व पर मंदिर जाना, विद्याचंद को तोते के रूप में संदेशवाहक बनाना तथा देव की सहायता से कारागार से मुक्त होकर ससैन्य सिंहलद्वीप पर आक्रमण करना आदि बातें इस प्रभाव को स्पष्ट करती हैं। हुनर विभिन्न स्थलों पर घूमने का ऐसा प्रेमी है कि मुख्य कथा का प्रवाह टूटने की भी चिंता न करके भटक जाता है। 'हुनर' की इस कथा की विशेषता यह है कि इसमें हिंदू मुसलिम का भेदभाव नहीं किया गया है, प्रेम को ही प्रधानता देकर राजा राजकुँवर और कामलता की प्रेमकथा का वर्णन विस्तारपूर्वक एवं अंतर्कथाओं के मिश्रण सहित किया है, किंतु सौभाग्य से कथासंगठन को आघात नहीं पहुँचता। रूपकात्मकता का आधार ग्रहण करते हुए 'हुनर' ने सूफी विचारों का समावेश भी कृति में कर दिया है, तथा भाव, भाषा और शैली में भी रचनाओं को सुंदर बनाए रखा है।

'हुनर' के पश्चात् तीन लेखक ही दक्खिनी-प्रेमगाथा-कवि के रूप में और सामने

आते हैं। ये है—शेख वजीहुद्दीन 'वज्दी' वली वेल्लोरी तथा सैयद सिराज औरंगाबादी। वज्दी औरंगजेब के समकालिक और करनूल निवासी थे, किंतु इनके जन्मादि के संबंध में कोई सूचना नही मिलती। इन्होने तीन प्रेमगाथाओ की रचना की है। राहुल जी 'तोहफमे आशिकाँ' या 'तुहफे आशिकाँ' को १७०३ ई० की रचना मानकर उसे इनकी पहली रचना मानते है, किंतु दूसरे आलोचक इसका रचनाकाल १७४० ई० निर्धारित करते है। उनके विचार से 'मखजने इश्क' या 'बागे जाँफिजा' (१७३१-३२ ई०) पहली रचना है और उसके बाद 'पच्छीनामा' या 'पंछीबाचा (च्छा)' और तुहफे आशिका' का नाम आता है। 'पछीबाचा' की रचना भी १७३२-३३ ई० में हुई बताई गई है। पहली रचना 'मखजने इश्क' किसी फारसी रचना के आधार पर ही रची गई है किंतु वज्दी ने उसका नाम नही बताया है। सूफीमत की प्रधानता के साथ भाव और भाषा का अच्छा निर्वाह। रचनाओं मे किया गया है। लगता है, 'वज्दी' अच्छे कवि थे जिसके कारण ५००० शेर मे लिखी गई 'मखजने इश्क' के कथासगठन मे कही शिथिलता नही आ पाई है, बल्कि उलटे रचना प्रभावशाली ही बन गई है जिसमे भाव एव कला का अच्छा समन्वय दिखाई पड़ता है। 'पछी बाचा' ईरानी संत फरीदुद्दीन 'अत्तार' की लोकप्रिय रचना 'मतिकुतैर' का अनुवाद जान पड़ती है। वही कथानक है, वही भाव और वही सूफी सिद्धांतो का निर्वाह। अनेक स्थलो पर शब्दश अनुवाद का संकेत भी मिलता है। अत यही कहा जा सकता है कि 'वज्दी' की सफलता उनके अनुवादक रूप की सफलता है, भले ही उन्होंने अपनी रचना को अत्तार की रचना की तुलना मे कुछ सक्षिप्त ही रखा हो। यह सक्षिप्तता उन्हे शेर संख्या मे लगभग आधी दूरी तक ही ले जाती है। अत्तार की प्रेमगाथा के ४६५० शेर इनकी रचना में केवल २६५० शेरों मे सिमट आए है। अनुवाद करते हुए भी संक्षेप और विस्तार मे 'वज्दी' ने स्वतत्रता बरती है। कथानक की दृष्टि से कहा जा सकता है कि 'पछी जीवात्मा का प्रतीक है जो सूफी साधना के अनुसार सात वादियो से होकर महबूब सीमुर्ग (परमात्मा) से मिलने को अग्रसर होता है और आत्मज्ञानलाभ द्वारा जीवनरहस्य की जानकारी प्राप्त करता है। उसकी यात्रा विकट है और उसके उत्कट प्रेम को प्रकट करती है। इनकी तीसरी रचना 'तुहफे आशिकाँ' भी अत्तार की प्रेमगाथा 'गुल व हुरमज' का रूपांतर है जिसमें भाषाशैली और भी परिष्कृत दिखाई देती है तथा चरित्रांकन और आध्यात्मिक पक्ष को प्रस्तुत करने मे इन्हे सफलता प्राप्त हुई है।

वली वेल्लोरी (१७२४ ई०) का जन्म वेल्लोर में हुआ था। ये पहले सातगढ़ (मद्रास) के सूबेदार हिरासत खाँ के अधीन सैनिक नौकरी मे रहकर फिर कड़पा के सूबेदार नवाब अब्दुल मजीद खाँ के मित्र बनकर रहे। उसने इन्हे प्रशंसा रूप मे सिघोट में उच्च पद पर नियुक्त किया था। इनकी मृत्यु १७३७ ई० से पहले अरकाट में हुई जहाँ इनकी कब्र अब भी है। अतिम काल मे ये जागीर चरपेट्टा मे थे। वस्तुतः ये पेशेवर कवि नहीं थे, तो भी इन्होंने दो काव्यग्रथ—रतन व पदम तथा रौजतुश्शुहदा—लिखे जिनमें पहली रचना ४००० अर्धालियो में है और संभवतः जायसीकृत 'पद्मावत' के आधार पर

लिखी गई है। दूसरी रचना ५५०० अर्धालियों की विशाल रचना है। जान पड़ता है, यह ग्रंथ उन्होंने मुल्ला हुसैन वायज काशफी के इसी नामवाले ग्रंथ के आधार पर बनाया है। मूल फारसी में दस अध्याय होने के कारण उसे 'दह मज्लिस' भी कहा जाता है। इसमें रसूल के वंशजों के युद्धों और उनकी वीरगति की गाथा है अत: यह प्रेमाख्यान के अंतर्गत नहीं आती।

अंतिम कवि हैं सैयद सिराज औरंगाबादी जो वली के समकालीन थे। इनका समय १७१५ ई० से १७६५ ई० तक बताया गया है। ये सिद्धहस्त और उत्कृष्ट कवि कहे जाते हैं। उन्होंने अनेक रचनाएँ की हैं किंतु 'बूस्ताने ख्याल' इनकी प्रेमगाथा है और १७४८ ई० में रची गई है। फारसीपन के साथ प्रमुखत: उर्दू का मिश्रण उपस्थित करती हुई भी इनकी रचना भाषाशैली में सुगम, सुबोध और सुसगठित है। पीड़ा की अंतरानुभूति इनके काव्य में भली प्रकार एवं स्वाभाविक ढंग पर व्यक्त हुई है। मर्म-वेदना से ही इस काव्य का प्रारंभ होता है।

मूल्यांकन : सूफी प्रेमाख्यानों की रचना व्यापक रूप में अन्य अनेक भाषाओं में भी हुई है। ये रचनाएँ या तो फारसी मसनवियों की पद्धति का अनुसरण करती हैं अथवा हिंदी प्रेमाख्यानों के अनुवाद के रूप में प्रस्तुत की गई हैं। इस प्रसंग में साहित्येति-हासकारों ने बँगला के सूफी कवियों की ईसवी सन् १६वीं–१७वीं शताब्दी की 'पाचाली' रचनाओं के साथ दौलत काजी की 'लोरचद्राणी', अलाओलकृत 'पद्मावती', अमीर-हमजा की 'मनोहरमालती', मुहम्मदखान की 'मृगावती' तथा 'लैलामजनूँ' एवं पंजाबी साहित्य में प्राप्त 'ससीपुन्नू', 'हीररांझा', 'सोहिनी महेवाल' नामक रचनाओं का विशेषो-ल्लेख किया है। इनकी रोचकता तथा काव्यरूपकों की सिद्धि के लिये इन रचनाओं की प्रशंसा की जाती है। दक्खिनी की रचनाओं को विशेषत: इस दृष्टि से उल्लेखनीय माना गया है कि उनमें फारसी प्रेमाख्यानों की रचनाशैली, उनके वर्ण्यविषय एवं छंद, सभी का अनुकरण किया गया है। इन रचनाओं से प्रभावित उर्दू साहित्य में शृंगार की कुछ ऐसी प्रबल धारा प्रवाहित हुई कि वही उस साहित्य का मुख्य विषय माना जाने लगा। इस प्रकार की रचनाएँ प्रवृत्तिविशेष का अनुसरण करती हुई २०वीं शताब्दी तक रची जाती रहीं—न उनका मसनवी आदर्श परिवर्तित हुआ और न ईरान की प्रेमकहानियों का प्रभाव ही इनपर से कम हुआ। हाँ, हिंदी सूफी कवियों के हाथों में प्रेमकथाएँ भारतीय ढाँचे में ढलती गईं जिसके परिणामस्वरूप इनमें प्रचलित भारतीय लोकगाथाओं की कथानक-रूढ़ियों और परिचित भारतीय वातावरण का समावेश तो हुआ ही, इनकी भाषा भी जन-प्रचलित अवधी बनी। प्रेमतत्व की व्यापकता और महनीयता का जैसा वर्णन इन काव्यों में मिलता है, वह अन्यत्र नहीं मिलता। साथ ही इन काव्यों ने भारतीय वातावरण, भारतीय समाज आदि को इस रूप में चित्रित किया और ईश्वरीय सत्ता का कुछ इस प्रकार आभास दिया कि धर्म, वर्ग, समाज आदि के भेदों को भूलकर सर्व जनसामान्य समाज की प्रतीति संभव लगने लगी। लोक और अध्यात्म के मिश्रण ने इन रचनाओं को जैसा लोक-

रंजनकारी रूप दिया वैसा ही लोकमंगलकारी रूप भी दिया। लौकिक प्रेम को विशुद्ध आध्यात्मिकता के धरातल तक उठा ले जानेवाले इन काव्यों मे विश्वबंधुत्व एवं आत्मशांति के लिये पर्याप्त सामग्री उपलब्ध हो सकती है। मनुष्य के हृदय को, उसकी विशालता और सस्कार को इन काव्यो मे विशेष गौरव मिला तथा हृदय की दृढ़ता और एकनिष्ठता को इनसे बल मिला। जिस इश्कहकीकी का सूफी ढंग पर इन काव्यो में वर्णन हुआ है वह वस्तुत: साप्रदायिक ढग मे ढले होने का प्रभाव अंकित नही करता बल्कि दृष्टांत मात्र बनकर रह जाता है और इस प्रकार काव्यत्व की पूर्ण रक्षा हो पाती है। घटनाओं की योजना विशेष उद्देश्य को रखकर की गई होने पर भी स्वाभाविक प्रतीत होती है और इस स्वाभाविकता को बल मिलता है इस बात से कि इन काव्यो का दैनिक जीवन, वातावरण, इनके नायक नायिका ही नही, इनके सिद्धात भी भारतीयता के मेल मे बैठते हैं। विशेषत: लोकपक्ष को इन काव्यो मे जितना ग्रहण किया गया है उसमे एक ओर इस स्वाभाविकता के निर्माण मे तो सहायता मिली ही है, दूसरी ओर काव्य की ग्राह्यता भी बढ़ गई है। इनका लोकपक्ष इतना सजीव है कि हिंदी के दूसरे काव्यों में उसकी कमी ही अधिक जान पड़ती है। प्रचलित लोककथाओं, कथानकरूढ़ियों, लोकविश्वासों, लोकोत्सवों के वर्णन के समावेश के कारण इन काव्यों का प्रभाव सर्वसामान्य के लिये अधिक बढ़ जाता है। इनके कथानायक आदि का पौराणिक या अवतारी चरित्र न होने के कारण इन्हें लौकिक प्रसगो को, विशेषत: शृंगारिक प्रसग मे, स्थान देने का विशेष अवसर प्राप्त हुआ है। इनके राजकुमार भी राजकुमार नही रहते, ऐश्वर्यशाली व्यक्ति भी सामान्य मानव होकर ही सामने आते है। सामान्यता के कारण ही वे परिस्थितियों से जूझते हुए दिखाई देते है, उसके शिकार होते है और फिर अदम्य उत्साह तथा दृढ़ निष्ठा से उनपर विजय प्राप्त करते है। पं० परशुराम चतुर्वेदी के शब्दों मे "प्रेमकथा के अंतिम छोर पर पहुँचकर वे हमारे सामने ऐसे तपे तपाए और अनुभवसिद्ध रूप मे आ जाते है कि हमें उनके भावी जीवन की भी एक झाँकी लेने की स्वभावत प्रबल इच्छा हो पड़ती है, परतु कथाकार उनका साथ हमसे ऐसे ही महत्वपूर्ण अवसर पर छुड़ा देता है और इनके विषय में बढ़ती आई हुई जिज्ञासा प्राय: अतृप्त बनकर ही रह जाती है।" (हिंदी साहित्य, भाग० २, पृ० २६४)।

सूफी काव्य की यही विशेषताएँ उसे भारतीय वातावरण से जोड़ती हुई भी हिंदी काव्य से पृथक् करती है। प्रेम का निरूपण तो भारतीय प्रेमकथाओं में भी विपुल मात्रा मे हुआ है किंतु उसे इस प्रकार का न तो अलौकिक रूप दिया गया है, न प्रेमपात्र नारी परमात्मतत्व की प्रतिनिधि के रूप मे ही उपस्थित की गई है। सूफियों मे वह ईश्वरीय 'नूर' का प्रतीक है और उसी की ओर से प्रेमभाव का प्रारभ होता है। साथ ही वह मात्र नारी नहीं है, भोग्या नही है, बल्कि सिद्धिरूपा है और सभवत. इसी कारण आदर्श सभोग के लिये विवाह की अनिवार्यता उसके लिये महत्वपूर्ण नही है, केवल हिंदू होने से ही मानो वह इस सबंध से जुड़ी हुई है। स्वकीया से अधिक वह परकीया ही प्रकट की जाती रही है।

वीरगाथा-काव्य-परंपरा में प्रेम का जो लालसापूर्ण रूप अंकित हुआ है और उसके कारण जिन युद्धों की योजना की गई है उनका उद्देश्यसिद्धि अथवा ईश्वरप्राप्ति न होने के कारण उनका प्रभाव भी लोकजीवन पर वैसा नहीं पड़ता जैसा सूफी कवियों के काव्य का पड़ता है। सूफीकाव्य का नायक यश की लिप्सा से प्रपीड़ित नहीं है, उसके प्रयत्नों में भारतीय भक्तिकाव्य का आवेश भी है। भक्ति का ही एक रूप होकर भी उसका कार्यकलाप भारतीय (कृष्ण एवं रामकाव्य में प्रदर्शित) भक्ति से भिन्न भी है। राम का भक्त प्रभु की कृपा चाहता है और कृष्ण का भक्त भगवान् की भक्ति गोपीभाव से करता है, किंतु सूफीकवि न तो रामभक्त के सदृश अपने को दासानुदास मानकर चलता है और न उसकी नायिकाएँ ही गोपिकाओं के समान तत्पर और विरहिणी दिखाई पड़ती है। सूफीकवि का नायक ईश्वर की प्राप्ति अपने प्रयत्नों के आधार पर करता है और आत्मगौरव और आत्मीयता को बनाए रखता है। उसके प्रेम में भारतीय प्रेम के साथ ईरानी प्रेम का रूप भी मिश्रित है और वह अध्यात्म की संयोजना के आग्रहवश ही आया है। रामकाव्य के समान मर्यादित प्रेम उन काव्यों में कहीं नहीं पाया जाता। दूसरी ओर यह काव्य भारतीय निर्गुण संतों के प्रेम से भी भिन्न पड़ता है जो सदैव अपने अंदर ही उस परमतत्व की प्राप्ति किया करते हैं। प्रेम की पराकाष्ठा हमारे यहाँ के रीतिकाव्य में दिखाई पड़ती है जहाँ नायिकाओं के हाव-भाव, अनुभाव, चित्रण के साथ संयोग वियोग के अनंत रूपों का अलंकृत, अनलंकृत वर्णन केवल लौकिक धरातल पर हुआ है। सूफियों के लिये यह प्रेम केवल रीतिकालीन कवियों के राधा-कन्हाई-सुमिरन के ही बहाने के रूप में नहीं था, वास्तविक था और प्रयत्नपूर्ण था। इस प्रकार अपने समकालीन हिंदीकाव्य से यह सूफीकाव्य मेल खाता जान पड़ता हुआ भी मूलतः उससे भिन्न ही ठहराता है और हिंदी काव्य की महनीय वस्तु है।

शुद्ध प्रेमाख्यान काव्य

सूफी प्रेमाख्यान काव्यों के साथ साथ हिंदी साहित्य के अंतर्गत शुद्ध प्रेमाख्यान काव्य भी लिखे गए। रीतिकाल में ये शुद्ध प्रेमाख्यान अधिक संख्या में नहीं मिलते। पूर्ववर्ती युगों में किसन रुकमणी री, छिताई वार्ता, रसरतन, उषाचरित जैसे काव्यों की रचना हुई। रीतिकाल में इस परंपरा में अधिकांशतः जो काव्य लिखे गए वे माधवानल कामकंदला के आधार पर हैं। आलम और बोधा ने माधवानल-कामकंदला-प्रेमाख्यान को लेकर अपनी रचनाएँ की। इन दोनों कवियों का विस्तृत विवरण हम 'रीतिमुक्त शृंगार काव्यधारा' के अंतर्गत दे चुके हैं। इनके अतिरिक्त इस धारा के अन्य कतिपय साधारण महत्व के कवियों का विवरण नीचे दिया जाता है :—

केस कवि—इनका रचनाकाल सं० १७१७ माना जाता है। इन्होंने 'माधवानल नाटक' की रचना की। यद्यपि इसका नाम नाटक है, तथापि है यह काव्य ही। यह आलम-कृत माधवानल के आधार पर है। यह ब्रजभाषा की उत्तम रचना है। इसमें दोहा, चौपाई, सवैया, दंडक, भुजंगी, त्रोटक, भुजंगप्रयात, सोरठा, मोतियदाम, नगस्वरूपिणी

आदि छंदों का प्रयोग किया गया है। इस ग्रंथ में सौदर्यवर्णन आलंकारिक ढंग पर है। संयोग और वियोग शृंगार का सुंदर वर्णन है।

हंस कवि—हंस कवि ने अपने आश्रयदाता परताप सिह खुमाण के मनोरंजनार्थ 'चंद्रकुँवर री बात' नामक ग्रंथ की रचना की। कवि के संबंध मे विशेष ज्ञात नही है, परंतु उसने इस ग्रंथ की रचना सं० १७४० वि० में की थी जैसा निम्नांकित पंक्तियों से प्रकट है :—

सबकूं लगे सुहावणी। रचे सु जोभ सीणगार।
मूरख हूँ को मन हरे। सबकूं लगसूं मार।
सतरह सै चालीस में। तेरस पोसज मास।
गुण कियो घर चाहते। भोगी पूरण आस॥

'चंद्रकुँवर री बात' वार्ता रचना है और गद्य पद्य दोनों मे लिखी गई है। प्रेमकथानक के अतिरिक्त इस आख्यान में पर-स्त्री-प्रेम, वात्सल्य भाव, टोने टोटके, परंपरागत रूढियों आदि का वर्णन है। यह राजस्थानी मिश्रित हिंदी मे है। इसमें अमरसेन राजा के पुत्र चंद्रकुँवर और एक सेठानी की कथा है। कथा मे प्रेम के विकास का अवसर अधिक नही। इसमे कामभावना का अधिक विवरण है और वियोगपक्ष नगण्य है।

जनकुंज—जनकुंज के सबध में अधिक ज्ञात नहीं है। इनकी रचना उषाचरित्र (बारहखडी) अवधी भाषा में लिखा हुआ अनिरुद्ध और उषा की प्रेमकथा से सबधित आख्यान है। इसकी रचना स० १७८२ मे हुई थी। इसके अंतर्गत स्वप्नदर्शन के उपरांत उषा और अनिरुद्ध के भीतर प्रेमभाव पनपता है। दोनों व्याकुल हो जाते है। चित्रलेखा वैद्य रूप धारण कर अनिरुद्ध के कान मे उषा के मिलाने की बात कहती है। अनिरुद्ध उषा के यहां जाता है। यह बात ज्ञात होते ही उषा का पिता बाणासुर क्रुद्ध होता है। तदनतर कृष्ण और बाणासुर का युद्ध होता है और उषा अनिरुद्ध का विवाह होता है। भागवत की कथा का कवि ने अधिक स्वाभाविक रीति से वर्णन किया है।

इस प्रेमाख्यान की भाषा यद्यपि अवधी है, तथापि बीच बीच मे ब्रजभाषा का भी पुट है। भाषा सरल और प्राजल है। वर्णन सुदर और मर्यादापूर्ण है। सयोगवर्णन के प्रसंग में कवि ने विलासचेष्टाओं का वर्णन न करके सामाजिक दृष्टि से इसे पठनीय बनाया है। यह सरस रचना है। वियोगवर्णन अधिक स्वाभाविक और प्रभावकारी है। अलंकारों मे उपमानों का प्रयोग परंपरागत है।

ये प्रेमाख्यान सूफी प्रेमाख्यानों मे भिन्न सहज लौकिक स्तर पर हैं। रोमांटिक परपरा के ये आख्यान लोकप्रचलित प्रेमाख्यानों का अनुसरण करते हुए दिखाई देते हैं।

तृतीय अध्याय

कृष्णभक्ति काव्य

कृष्णभक्ति काव्य की पूर्ववर्ती परंपरा

हिंदी कृष्णकाव्य का मूल आधार संस्कृत कृष्णकाव्य की परंपरा है। यद्यपि कुछ विद्वान् वेदों में भी कृष्ण नाम की गवेषणा करते हैं, तथापि जिस कृष्ण रूप ने हिंदी काव्य को प्रभावित किया वह वेदोत्तर काल का है। विशेष रूप से उसका विकास श्रीमद्-भागवत और महाभारत में परिलक्षित होता है। महाभारत और श्रीमद्भागवत के कृष्ण-रूपों में अंतर मिलता है। जहाँ महाभारत के कृष्ण राजनीतिक, दार्शनिक और एक क्रांतिकारी व्यक्ति के रूप में आते हैं, वहीं श्रीमद्भागवत के अंतर्गत उनका सच्चिदानंद-घनस्वरूप ब्रह्म का सगुण रूप है। हिंदी कृष्ण काव्य को महाभारत के कृष्ण नहीं वरन् श्रीमद्भागवत के कृष्ण ने विशेष रूप से प्रभावित किया।

कृष्ण की कथा केवल श्रीमद्भागवत में ही नहीं बल्कि अग्नि, कूर्म, गरुड, पद्म, ब्रह्मवैवर्त, ब्रह्मांड, वामन, वायु, विष्णु और हरिवंश पुराणों में भी है। श्रीमद्भागवत में कृष्ण के साथ साथ राधा का स्पष्ट उल्लेख नहीं है। कृष्ण का स्वरूप वहाँ पर अद्भुत पराक्रमशाली, अपार सौंदर्यमय, राजनीतिवेत्ता और ब्रह्मरूप में है। उनके आनंद और सौंदर्यमय लीलारूप को और अधिक मधुर बनाने के लिये राधारूप की कल्पना परवर्ती उपासकों और पुराणकारों ने की। राधा का प्रथम बार उल्लेख गोपालतापनी उपनिषद् में आया है। दक्षिण भारत के आलवार भक्तों के बीच भी एक नारित्र कृष्णप्रिया के रूप में मिलता है जिसका नाम 'नाप्पिनइ' है। मध्वाचार्य ने भी राधा का उल्लेख नहीं किया। राधा का विशेष महत्व निंबार्क, वल्लभ और चैतन्य संप्रदायों के अंतर्गत प्रतिष्ठित हुआ और उसी का और अधिक विशद रूप हिंदी कृष्णकाव्य में प्राप्त होता है।

कृष्णभक्ति काव्य की परंपरा अति प्राचीन है। हिंदी में उसका विकास जयदेव और विद्यापति की प्रेरणा से हुआ और वल्लभ संप्रदाय के अष्टछाप कवियों के अतिरिक्त राधावल्लभ संप्रदाय तथा अन्य सखी संप्रदाय के कवियों द्वारा विशिष्ट रूप से किया गया। हित हरिवंश, मीरा, हरिदास, हरि रामव्यास, रसखान आदि उल्लेखनीय अन्य संप्रदायों के कवि हैं।

इसी प्रकार भक्तिकाव्य की परंपरा रीतियुग में भी आगे बढ़ी। भक्तियुग में गोपी कृष्ण का प्रेममिलन आत्मा परमात्मा का संयोग माना गया। वात्सल्य तथा शृंगार के एकाधिकारी सूर ने कृष्ण के शृंगारिक क्रियाकलाप का खुलकर चित्र खींचा। ठीक है,

समाज के प्रबल पौरुषसंपन्न व्यक्ति की आत्मा को आध्यात्मिक उन्नयन के हेतु स्त्री बनना पड़ता है; विदेशी विद्वान् भी इससे सहमत हैं। किंतु कृष्णोपासना की मौलिक शुद्धता शृंगारकाल के अधिकांश विकृतमना कवियो के लिये रसिकताप्रदर्शन की प्रतीक बनी। भक्तकवियों की 'प्रयोगशाला' में रीतियुगीन कवियो ने अपने ढंग से प्रयोग आरंभ किए। भगवत्प्रेम के व्याज से उनकी दमित वासना तथा मानसिक विकार का प्रतिफलन परकीया प्रेमवर्णन तथा अभिसारिका की मिलनोत्कंठा के आवेगनिदर्शन में हुआ। भक्तिभाव के अभाव मे आध्यात्मिक अनुरागनिरूपण के स्थान पर पार्थिव शृंगार का चित्रण हुआ, जो विकारोत्पादक प्राकृत शृंगार मुनियो द्वारा हेय माना गया। 'राधिका कन्हाई सुमिरन' के लिये अनेक सप्रदाय प्रचलित हुए। राधाबल्लभ, हरिदासी, सखी सप्रदायों के भक्तकवि नारीसूचक नाम रखने लगे। इस युग मे सप्रदायविशेष से पृथक् रहकर कृष्णभक्तिपरक रचना करनेवालो में गुमान, बीर, मचित, कृष्णदास, रामदास, टहकन, देवनाथ, दयालनाथ तथा रत्नकुँवरि बीबी आदि के नाम उल्लेखनीय है। नागरीदास और ब्रजवासीदास बल्लभ संप्रदाय, अनन्य अली, चाचा हितवृंदावनदास, सुंदरि कुँवरिबाई, हठी जी आदि राधावल्लभ सप्रदाय के भक्तकवि है। निबार्कगत टट्टी सप्रदाय मे भगवतरसिक सहचरिशरण की रचनाएँ कृष्णप्रेम से ओतप्रोत हैं। सखी सप्रदाय मे अलबेली अलि, हंसराज बख्शी, प्रेमसखी आदि की तन्मयता स्पृहणीय है।

कृष्णभक्ति काव्य की परपरा का वैदिक युग से शृंगार युग तक का ऊपर विवरण दिया गया है। निश्चय ही न्यूनाधिक परिवर्तन के साथ यह परंपरा आधुनिक युग के कविभक्तो की रचनाओं मे अनुवर्तित है।

कृष्णभक्ति के विभिन्न संप्रदाय : कवि और उनका साहित्य

कृष्णभक्ति काव्य की विषयवस्तुगत, स्वरूपसबद्ध, भाव तथा कलापक्षपरक पिछली विवेचना मे उस काव्य की सामान्य प्रवृत्तियों से परिचय हो जाता है। सप्रति इस काव्यधारा के विशिष्ट सप्रदायगत तथा स्वतंत्र प्रमुख भक्त कवियो का विवरण दिया जा रहा है। अति संक्षेप मे प्रति संप्रदाय की सामान्य साधनापद्धति की ओर सकेत कर तब संप्रदायगत कवियो का परिचय दिया गया है।

विष्णु संप्रदाय

भगवान् कृष्ण ने विष्णुस्वामी की निष्ठा, निरशन तपस्या से प्रसन्न हो उन्हें सातवें दिन दर्शन दिए। सदा के लिये चिद्रूप श्रीविग्रह के रूप में उन्हें प्राप्त हुए और कहा—

"सौम्य ! भगवद्गीता श्रीभागवतं मे शास्त्रे, अहमेत देव एक एव। 'कृष्ण ! तवास्मीति' पंचाक्षरवाक्येनात्मनिवेदनम्, नामैव मंत्र, महाराजोपचार विधिना सेवैव कर्म। यत्स्वत्संप्रदायीभूत्वा यशोदागोप्युद्धवादिवत् परिचरिष्यति मां प्रतिभारूपमपि साक्षान्मत्वा, तत्कृतां सेवां पुरावद्गृहीष्यामि"। —संप्रदायप्रदीप, तृतीय प्रकाश।

उपर्युक्त वक्तव्य से विष्णु संप्रदाय की भक्तिपद्धति का बोध हो जाता है।

१. **वंशी अलि**—भागवत के विशिष्ट व्याख्याकार, श्रीनारायण मिश्र के वंशज ऊँचे भक्त थे वंशी अलि। ललिता जी की उपासना करके इन्होंने श्री प्रिया जी का दर्शन पाया था। इन्हीं वंशी अलि के शिष्य अलबेली अलि हुए हैं।

२. **अलबेली अलि**—अनुमानत: १८वी शताब्दी के मध्य मे उत्पन्न अलबेली अलि संस्कृत के विद्वान्, सगीतज्ञ और सुकवि थे। रसात्मकता, तन्मयता तथा संगीतात्मकता इनके काव्य की विशेषताएँ है। कविता की बानगी लीजिए—

लीन्हो वृंदावन बसि लाह्यो।
सेवा टहल महल की निसि दिन, यह जिय नेम निबाह्यो।
अद्भुत प्रेम बिहार चारु रस रसिकनि बिनु किनु चाह्यो।
अलबेली अलि सफल कियो सब, जिन यह रस अवगाह्यो।।

निंबार्क संप्रदाय

निबार्कमत का दार्शनिक सिद्धात है द्वैताद्वैत। यहाँ उस सबध मे कुछ न कहकर सप्रदायगत भक्तिभावना की ओर सकेत करना सगत होगा। इस संप्रदाय मे कृष्ण ही सेव्य और भजनीय है, 'नान्यगति. कृष्णपदारविदात्'। परन्तु सप्रदायी वैष्णव उनकी सशक्तिक उपासना को ही अधिक फलवती मानते है। भगवान् के साथ सयुक्त रूप मे नारीविग्रह की भक्तियुक्त अर्चना से कामभाव तिरोहित हो जाता है और स्त्री पुरुष के मिथुनीकृत भाव का भगवल्लीला रूप मे द्रष्टा साधक शिक्षित होकर निर्मलत्व प्राप्त करता है। हरिदासी सप्रदाय इसी से स्फुटित हुआ है।

(१) **घनानंद**—घनानद का परिगणन रीतियुग की स्वच्छद काव्यधारा के कवियो मे विशेष आदर के साथ होता है। किनु चूँकि इनका सुजानप्रेम हरिराधा के प्रेम-महोदधि का कोई 'तरल तरग सग छूट्यो कन' है, अत नृपरोद्धत बादशाह मुहम्मदशाह के आक्रोशपात उनके मीरमुशी को व्यक्तिबद्ध प्रेम का एकागी पक्ष त्यागकर कृष्णोपासक बनना पड़ा। वे प्रेमोन्मत्त कविभक्त है। 'रसखानि' की भाँति घनानद को भी 'भक्तो की श्रेणी से खारिज करने की आवश्यकता नही है।

हरिदासी संप्रदाय

दार्शनिक बधनो, शास्त्रीय विधिविधानो से दूर हरिदासी संप्रदाय मे राधाकृष्ण का परस्पर सबध स्वकीया-परकीया-भाव-निर्विशेष नित्यविहारी भाव को मान्यता मिली। उनका प्रेम उन्हीं के सदृश अनादि, अनंत और नित्य माना गया। तप, तीर्थ, होम, व्रत, विधिनिषेध का पालन करके नित्यविहार का आनदाभिलाषी उस यात्री के सदृश है जो पूर्व की ओर जाने की भावना से पश्चिम की ओर पग रखता है —

चलत चाह नैमित्य की, चाहत नित्य विहार।
किसोरदास पछ्यम चलै, पुरब करत उचार॥
—सिद्धातरत्नाकर, सं० विश्वेश्वरशरण, सिद्धांतसरोवर, पृ० ७२

(१) **ललितकिशोर**—टट्टी सस्थान के निर्माता तथा उसकी गुरुपरंपरा में सप्तम ललितकिशोर जी के संबंध मे सहचरिशरण ने अपनी आचार्योत्सव सूचना मे लिखा है—

ललितकिसोरी ललित प्रगत पट अगहन बदि आठै दिन,
सत्रह सौ तैंतीस मनोहर ताहि न भूलौ इक छिन।
अंतरध्यान पौष बदि छठि को रसिकन के उर दाहू।
वर्ष अठारह सौ तेईसा हर्ष हरचौ सब काहू।

अष्टाचार्यवाणी मे इनकी रचनाएँ सगृहीत है। उदाहरण—

मन तै भली कीनी वीर।
महा मधुर रस पान कीनो छाँड़ि विषया नीर।
गौर स्याम हित चित्र दीनो जानि यह निज पीर।
ललित केलि के रग रन मे मड़्यो सुभट सुधीर।

(२) **ललितमोहिनी**—ललितकिशोर जी के शिष्य ललितमोहिनी के संबंध मे सहचरिशरण ने कहा था—

ललितमोहिनी प्रभा सोहिनी आस्विन सुदि दसमी को,
कियो प्रकास सरद जनु चदन बरसायो सुअमी को।
सवत् सत्रह सौ सु असी कौ अति प्रमोद को दानी।
सरन माघ बदि इकदसमी को सबही ने यह जानी।

स्पष्ट है कि आश्विन सुदी १०, स० १७८० मे उत्पन्न भक्त फागुन बदी ६, स० १८५८ को रगमहलवासी हुआ। उनकी अभिलाषा के माध्यम मे कविता का उदाहरण देखिए—

कुंजमहल मे बैठक राखे, कुंजमहल मे केलि,
गौर स्याम लिपटे रहै मानौ कनक की बेलि।
नैन बिहारी रूप निरखि रसन बिहारी नाम।
श्रवन बिहारी सुयश सुनि निस दिन आठौ जाम।
ना काहू सो रूसनो ना काहू सो रंग।
ललितमोहिनीदास को अद्भुत केलि अभंग।

(३) **भगवतरसिक**—ललितमोहिनी जी के शिष्य भगवतरसिक का जन्म अनुमानत स० १७९५ में हुआ था। मस्त भक्त ने अपना नाम सार्थक करते हुए गद्दी की उपेक्षा की। इनका 'अनन्यनिश्चयात्मक' छप चुका है। कृष्णभक्त इस प्रेमयोगी ने

विराग अनुराग के मनोरम वर्णन किए हैं। इनकी सिद्धांत कुंडलियाँ बड़ी सारगर्भा हैं। इनकी रचनाओं का एक उदाहरण नीचे दिया जाता है—

पौढ़े ललित लतान तरे।
सुमन सेज सुखराशि सनेही अधरनि अधर धरै।
उरजनि उरज जोरि कटि सों कटि लपटि भुजानि भरै।
यह रस मत्त मगन मन सोये 'भगवत' व्याजन करै।

(४) **सहचरिशरण**—टट्टी संस्थान की महंतपरंपरा में ग्यारहवें गुरु राधिकादास के उत्तराधिकारी का वास्तविक नाम था सखीशरण। इनका अनुमानित जन्मकाल विक्रम की १९वीं शती का उत्तरार्ध है। टट्टी संस्थान के अष्टाचार्यों का समय, परिचय, 'गुरुप्रणालिका' आचार्योत्सव सूचना में दिया गया है। 'ललितप्रकाश', 'सरस मंडावली' इनकी सुंदर कृतियाँ है। दूसरी में १४० मंज या मांभ. लिखे हैं। यत्र तत्र अष्टिल्ल छंद का प्रयोग है। ब्रजी, खड़ीबोली, पंजाबी, फारसी की मिश्री है इनकी भाषा। कविता इनकी उत्तम है। कुछ पंक्तियाँ पढ़िए—

(मंज) उर मे घाव रूप सों सैंकै हित की सेज बिछावै।
दृग डोरे सुइयाँ अरु बरुनी, टाँक ठीक लगावै।।
मधुर मच्चिकन अंग अंग छवि हलुवा तरस खवावै।
श्याम तबीब इलाज करै जब तब घायन सचुपावै।।

(५) **हंसराज बख्शी**—पन्नावास्तव्य श्रीवास्तव कायस्थ बख्शी हंसराज का जन्म सं० १७८९ के आसपास हुआ। गुरु विजयसखी ने सांप्रदायिक नाम रखा प्रेमसखी। राधा-कृष्ण-प्रेम से परिपूर्ण इनके नौ ग्रंथ है—सनेहसागर, विरहविलास, रामचंद्रिका, बारहमासा, श्रीकृष्ण जू की पाती, श्री युगलस्वरूप, विरहपत्रिका, फागतरंगिनी और चुरिहारिन लीला। पन्ना के समसामयिक राजाओं—हृदयशाह, सभासिंह, अमानसिंह के यहाँ यह रहे थे। सनेहसागर उच्च कोटि की कृति है। हिंदी में जयदेव की पीयूषवर्षिणी वाणी जैसी सरसता, स्निग्धता तथा माधुरी के थपेड़ों से उत्क्षिप्त मधुराभक्ति की भावमणियाँ पाकर अध्येता आनंदाप्यायित हो जाता है। बुंदेलखंडी और ब्रजभाषा के कोमल शब्दों का संघटन तथा लालित्यपूर्ण वाक्य-विन्यास-युक्त शैली में राधाकृष्ण की चारित्रिक विशेषताएँ उभारी गई है। वस्तुतः एक ओर वाणी का वरदान पाकर हंसराज भावमानसरोवर में बिहार करता है, दूसरी ओर भक्तिभाविता प्रेमसखी प्रेम विपंची पर विश्वजनीन प्रेम का शाश्वत आलाप छेड़ती है। 'सनेहसागर' में न भरती के शब्द हैं और न अलंकारों का बाजार गर्म है। उस युग मे मर्यादा का ऐसा निर्वाह पाठकों को पुलकाकुल कर देता है। एक उद्धरण नीचे दिया गया है—

खेलत खेल इतै सखियन सँग उत को नैन चलावै।
मारि दृगन के तीरन तीछन धीरज सुभट हलावै।।

अति आनंद सों ठाढ़े लालन गहे कदम की डरिया।
बार बार नीके कै निरखत नवल बैस नागरिया॥

बख्शी जी बाद में प्राणनाथ के धामीसंप्रदाय मे संमिलित हो गए जिसका प्रमुख केंद्र पन्ना था।

गौड़ीय संप्रदाय

चैतन्यमत का विकास माध्वसप्रदाय से हुआ, अतः इसे माध्वगौड़ेश्वरमत भी कहते है। द्वैतवाद का प्रचार मध्व के पश्चात् चैतन्यदेव ने किया। मध्वमत की दार्शनिकता का स्थान भक्तिभावना ने लिया। निम्नोक्त श्लोक में चैतन्यमत प्रतिपादित है—

आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृंदावन—
रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्-
श्री चैतन्य महाप्रभोर्मतमिदं तत्राग्रहो नाऽऽरः।

वृंदावनधामी कृष्ण एकमात्र आराध्य है। ब्रजांगनाओं की उपासनापद्धति उनका आराधनादर्श है। श्रीमद्भागवत प्रमाणग्रंथ है और प्रेम ही जीव का परम पुरुषार्थ है—माध्वमत मे राधाकृष्ण की वृंदावनलीला का महत्व नहीं है। नामसंकीर्तन भी वहाँ नहीं है, जब चैतन्यमत मे कहा गया :—

उपास्येर मध्ये कौन उपास्य प्रधान
श्रेष्ठ उपास्य युगल राधाकृष्ण नाम
चैतन्यचरितामृत, मध्वलीला, परिच्छेद ८।

परस्परविलास द्वारा रसास्वादन के हेतु एक ही आत्मा ने राधा, कृष्ण दो विग्रह धारण किए है। राधा कृष्णमयी, गोविंदनंदिनी, मोहिनी तथा गोविंदसर्वस्वा हैं। गोपियाँ घृतभाव 'त्वदीयाभाव' (तू कृष्ण की है) और मधुभाव 'मदीयाभाव' (कृष्ण मेरे है) से कृष्णोपासन करती है। वे युगलसेवा सखी और मंजरी भाव से करती है। वेशविन्यास, केशरचना आदि राधा की समजातीया सेवा से कृष्ण का प्रीतिविधान करती है तथा मंजरी (सखी से वयस् मे कम) राधा-कृष्ण-मिलन व्यवस्था करती है। आगे संप्रदाय के प्रमुख कवियों का परिचय दिया जा रहा है।

(१) **भगवतमुदित**—इनका जन्म संवत् अनिश्चित है। हाँ, अस्तित्वकाल सं० १६५० से १७२० तक अनुमानित है। वृंदावनशतक के अंत:साक्ष्यानुसार वे आगरा निवासी माधवमुदित के पुत्र तथा हरिदास के शिष्य थे। चैतन्यमतावलंबी होकर भी राधावल्लभीय मत के प्रति आस्थावान् थे। चैतन्य के बाद वृंदावनसंतों मे उन्होंने हित

हरिवंश की सर्वप्रथम वंदना की है। इस आधार पर मिश्रबंधुओं को इनके राधावल्लभ संप्रदायी होने की शंका हुई है।[1]

स्फुट पदों के अतिरिक्त इनके दो ग्रंथ प्रसिद्ध हैं, १ वृंदावनशतक की टीका, २. रसिक अनन्यमाल। प्रथम कृति प्रबोधानंद सरस्वती के 'श्रीवृंदावन महिमामृत' का अनुवाद है और द्वितीय राधावल्लभीय भक्तों का खोजपूर्ण चरित्र है। उदाहरण :

मेरी महारानी राधारानी।
जाके बल मैं सब सो तोरी, लोक लाज कुलकानी॥
प्रान जीवनधन लाल बिहारन बार पिऊँ तिन पानी।
भगवत मुदित न को मनमोहन टहल भई मनभानी॥

(२) **किशोरीदास गोस्वामी**—बंगाली विप्र, कवि तथा संगीतज्ञ किशोरीदास गोस्वामी वंशीदास के शिष्य थे। उनका अनुमानित अस्तित्वकाल सं० १६८०–१७५० है। वे सनातन गोस्वामी की शिष्यपरंपरा में पाँचवी पीढ़ी में हुए थे। उन्होंने ठा० मदनमोहन के हेतु पुष्कल धन एकत्र किया था। बादशाह द्वारा मनदे तथा समान मिला था। रचना इनकी साधारण है। उदाहरण :—

जहँ भक्त जूथ मिल करत गान। जहँ नृत्य करत है गुननिधान।
जहँ बरषत है रँग रग धार। जहँ पिचकारिन की होन मार।

× ×

जहँ भाव भरे नाचै सुधीर। जहँ अंग पुलकि दृग बहै नीर।
को कवि बरनै तिही बार। जहँ किसोरिदास सुख भयो अपार।

(३) **किशोरीदास**—पूर्वोक्त गोस्वामी जी से पृथक् किशोरीदास अभी तक प्रसिद्ध 'श्योपुरवाली कुंज' के आधार पर ग्वालियर राज्य के श्योमपुर के जागीरदार थे। अनुमानित अस्तित्वकाल १८वीं शती का मध्यकाल है। किशोरीदास की बानी में विविध उत्सवों पर निर्मित गीत, राग रागिनियाँ संगृहीत है। ऐसी रचना में चैतन्य-मतानुयायियों में वे अद्वितीय हैं। उदाहरण—

जै जै श्री चैतन्य मंगलनिधि गाइयै।
सच्चिदानंद स्वरूप, रसिक सुख दाइवै॥
प्रेमअवधि ललित लीला अधिकाइयै।
ऐसे गौर किसोर सदा उर ध्याइयै॥

(४) **गौरगणदास**—मिश्रबंधुओं द्वारा स्वीकृत खड़ीबोली के प्रथम कवि शीतल से पूर्व मंज या माँझ रचनाओं के लिये प्रसिद्ध गौरगणदास का अस्तित्वकाल १८वीं शती का आदि है। अंतःसाक्ष्य के आधार पर गुरु-वैष्णव-भक्त गौरगणदास एकांत में

---

१. मिश्रबंधु विनोद, भाग २, पृ० ४५५।

प्रियाप्रियतम ध्यान में लीन रहा करते थे। भागवतपाठ, भिक्षाटन के साथ चैतन्यदेव तथा उनके परिकर के अटूट अनुरागी थे।

इनकी बहुछंदमयी रचनाओं में भाषा के विभिन्न रूप द्रष्टव्य हैं। कहीं कहीं भाषा संस्कृतनिष्ठ और दुर्बोध है। कविता उत्तम है, परन्तु यत्र तत्र छंदोभंग-गतिभंग-दोष आ गए हैं। बाबा कृष्णदास ने 'गौरांगभूषण मंजावली' नाम से इनकी तीन पुस्तिकाएँ प्रकाशित की हैं। वे रचनाएँ हैं, १. गौरांगभूषणविलास, २. शृंगाररसमंजावली (पूर्व और उत्तर), ३. सिद्धांत-प्रणाली-शाखा। रचनाओं से एक उदाहरण दिया जा रहा है—

नीलोत्पलाभ छवि गती, पीत जलजगत अरा हुआ।
ताही सुवृत्त क्रीड़ा सुनृत्य, वपु भौम कोटगत धरा हुआ॥
पीतोत्पलाभ रति कोष्ट विभव, मकरंद सुधासव भरा हुआ।
अति सुता पुनीत चंचल सुनीति पुनचंद्रपान रति करा हुआ॥

(५) बल्लभरसिक—गौरगणदास की भाँति 'मंज' या 'माँझ' लेखन के लिये प्रसिद्ध बल्लभरसिक गदाधर भट्ट के पुत्र न होकर उनके वंशज थे। श्री प्रभुदयाल मीतल ने मिश्रबंधुओं की उस भ्रांति का भी निराकरण किया है जिसके कारण इस नाम के दो कवियों के सं० ३८४ और ७८० पर पृथक् पृथक् विवरण दिए गए हैं।[१] दाक्षिणात्य ब्राह्मण बल्लभरसिकोत्तंस के भाई थे। उनके वंशज उन्हें गदाधर भट्ट (जन्मकाल सं० १५८० के लगभग) का पुत्र मानते हैं जो भ्रामक है।

'वाणी श्री बल्लभरसिक जी की' का संपादन बाबा कृष्णदास ने किया है। इसमें 'कवित्त', 'हिंडोरा', 'पत्रिका', 'वर्षगांठ', 'साँझी', 'दशहरा', 'दीवाली' 'वर्षा आदि की माँझ', 'नित्यगान के पद' और 'बारह बाट अठारह पैंडे' शीर्षक कृतियाँ संकलित हैं। इनकी कविता में भक्तिभावनापरक सात्विक मादकता भरी है। प्रवाहमयी, सरस और प्रांजल भाषा में एक ओर ब्रजभाषा का माधुर्य है तो दूसरी ओर पंजाबी और फारसी शब्दों की छटा। आनुप्रासिकता, कलात्मकता और लालित्य उनकी कृतियों में पदे पदे द्रष्टव्य है। उदाहरण देखिए—

अटकी मूरति नागर नट की—एरी! यह मेरे मन।
मैन सैन नैननि हँसि मटकनि, लटकनि मोर मुकट की।
कुतल कुंडल चिलक तिलक, केसरि बेसरि ढरि लट की।
अंग अंग आभरनि भरनि मन, मनमथ गति उद्भट की।
चटक चटक पग धरति धरनि पर छुट चटकीले पट की॥

---

१. चैतन्यमत और ब्रजसाहित्य, पृष्ठ २२३।

पान भरे आनन तानन लै तिय मनि गनि अनि हटकी।
तितहीं चखि चलि जुगनि जितै हित चितवनि चित मैं खटकी ॥

(६) **गोपाल भट्ट**—वृंदावन के प्रख्यात गोस्वामी गोपाल भट्ट (जिन्होंने संस्कृत में ही काव्यरचना की है) से ये पृथक् हैं। नारायण भट्ट की चौथी पाँचवीं पीढ़ी में ब्रज के ऊँचे गाँव की गद्दी के अधिकारी गोपाल भट्ट सं० १७०० के लगभग उत्पन्न हुए थे। कविता इनकी भक्तिपरक पर साधारण है। कुछ पंक्तियाँ उद्धृत हैं—

होरी खेलत श्री सचिनंदन।
अपनी रसिक मंडली के संग गावत गीत मुछंदन।
... ...
राधा स्याम नाम गुनि बोलत, और नाहि अनुसंधन।
सो सुख निरखत श्री 'गोपाल भट्ट' प्रभु कटाक्ष गुन वदन ॥

(७) **तुलसीदास**, (८) **जगन्नाथ**—यद्यपि गोस्वामी जी के ग्रंथों में 'गीता-भाषा' का उल्लेख समीक्षकों ने किया है, तथापि उसके रचयिता ये तुलसीदास हैं जिनका स्मरण चैतन्य संप्रदायी जगन्नाथ भक्त कवि ने किया है। इनका रचनाकाल सं० १७४० अनुमानित है। भाषा, भाव की दृष्टि से रचनाएँ साधारण हैं। इनके शिष्य जगन्नाथ ने गुरुचरित्र गुरुमहिमा दो छोटी छोटी पुस्तकें लिखी हैं। प्रथम के आरंभ में चैतन्य और उनके परिकर के भक्तों की वंदना है। उन्होंने कुछ स्फुट पद भी लिखे हैं।

(९) **मनोहरराय**—भक्तमाल के टीकाकार प्रियादास के गुरु मनोहरराय श्रीगोपाल भट्ट की शिष्यपरंपरा में आते हैं। वे रामशरण चट्टराज के शिष्य थे। अंत-साक्ष्य के आधार पर इनका दीक्षापूर्व नाम कुछ और रहा होगा—

ता दिन सफल जन्म भयौ है अनाथ बंधु,
'मनोहर' नाम राखि मोहि अपनायो है।

इनके लिखे दो ग्रंथ मिलते हैं, श्रीराधारमण रससागर (श्रावण कृष्णा ५, सं० १७५७) तथा संप्रदायबोधिनी (लिपिकाल सं० १७०७, जो संदिग्ध है)। बाबा कृष्णदास, जो प्रथम ग्रंथ के प्रकाशक हैं, 'क्षणदागीति चिंतामणि' मनोहरराय की संपादित कृति मानते हैं। 'रसिकाई कविनाई जाहि दीनी तिन पाई' प्रियादास के इस उद्घोष से मनोहरराय के प्रति उनकी श्रद्धा के अतिरिक्त कवि का अपने समय का महत्व प्रकट है। प्रथम कृति में विभिन्न ऋतुगत राधाकृष्ण का क्रीड़ाकलाप वर्णित है द्वितीय का वर्ण्य नाम से प्रकट है। उसमें चारों संप्रदायों की शिष्यपरंपरा का वर्णन है। 'श्रावण-विहार-वर्णन' के रूप में कविता का एक उदाहरण देखिए—

ऊँची अति नीव साखा, भूलिबे की अभिलाषा,
बाँधी है बिसाखा, डोरी पंचरंग पाट की।

पटली जटित हीरा, चढ़े दोऊ एक जीरा,
सुनहरी चीरा, सारी सुघराई घाट की।
उमँगि उमँगि भूलैं, उभै अंग सग फूलैं,
अपनपौ भूलैं, रुचि नई नई ठाट की।
राधिका रमन सोभा 'मनोहर' औरै ओभा
हिये उठै गोभा, परिपाटी प्रेम बाट की।

(१०) **प्रियादास**—नाभा जी कृत 'भक्तमाल' के टीकाकार के रूप में प्रसिद्ध प्रियादास का प्रामाणिक जीवनवृत्त अप्राप्त है। गुजराती 'भक्तमाल' के अनुसार वे सूरत के समीप राजपुरा ग्राम के एक विप्रकुल में उत्पन्न हुए थे। उनके माता पिता थे—गंगाबाई और बामदेव। श्री प्रभुदयाल मीतल के अनुसार उनका जन्म सं० १७३० तथा निधन सं० १८०० के आसपास हुआ होगा। गुरु मनोहरराय की प्रशस्ति के साथ चैतन्यदेव की भूयसी प्रशंसा आपने की है। उनके पाँच ग्रंथ ये है—भक्तिरसबोधिनी (भक्तमाल की टीका), अनन्यमोदिनी, चाहवेली, भक्तसुमरनी और रसिकमोहिनी। भक्त और साहित्यिक रूप की अक्षय कीर्ति का आधार प्रियादास की 'भक्तिरसबोधिनी' है जिसे कवि ने जयपुर के गलताश्रम में नाभा जी के भौतिक शरीर की शांति पर नाभा दास की आज्ञा के आभास पर लिखा था। इस तथ्य की संपुष्टि के साथ उनकी कविता की बानगी देखिए—

नाभा जी की अभिलाष पूरन लै कियो मैं तो,
ताकी साखी प्रथम सुनाई नीके गाय कै।
भक्ति बिस्वास जाकें ताही को प्रकास कीजै,
भीजै रंग हियौ लीजै सतनि लड़ाय कै।
संवत् प्रसिद्ध दस सात सत उनहत्तर,
फाल्गुन ही मास बदी सप्तमी बिताय कै।
नारायणदास सुखरास, भक्तमाल लै कै,
'प्रियादास' दास उर बसौ, रहौ छाय कै।

(११) **वृंदावनचंद्र**—प्रियादास के समसामयिक वृंदावनचंद्र का अस्तित्वकाल सं० १७४० से १८१० वि० अनुमानित है। प्रियादास के शिष्य न होकर उनके प्रति इनका पूज्यभाव प्रशस्य है। 'अष्टयाम' इनकी प्रसिद्ध रचना है, जिसमे कृष्ण, चैतन्यदेव की स्तुति के साथ प्रख्यात गौडीय भक्तो की वंदना तथा गुरु-संत-माहात्म्य वर्णित है। इनकी दो संस्कृत रचनाएँ भी मिलती हैं, 'श्रीकृष्णोत्तर सतनाम', 'श्री गोपाल स्तवराज'। दूसरी का अनुवाद इन्होने स्वयं ब्रजभाषा में किया है। इनकी कविता सरस है। उदाहरण नीचे दिया जा रहा है—

कैसे तमाल सु स्याम ही स्याम हैं, देखे बनै घनस्याम जू आए।
मानो घटा अवनी उतरी है, व फूले मनों चपला चमकाए।
गंध उड़ै मानौ पौन चलै, भये बावरे भौर फिरै भरमाए।
दंपति दौरि धँसे बन मे, मानो राधिका के मुख चंद गुहाए।

(१२) **दामोदरदास**—इस नाम के कई कवि हिंदी मे हुए है। कुछ का उल्लेख मिश्रबंधुओं ने किया है। परन्तु प्रस्तुत कवि उनसे भिन्न है। दामोदरदास ने राधाकृष्ण की अष्टकालिक दैनिक लीलाओं का कथन रूपगोस्वामी के 'स्मरण मगल' के आधार पर इसी नाम की सामान्य रचना मे किया है। गदाधर पंडित गोस्वामी की शिष्यपरंपरा में परिगणित यह कवि संभवत: १८वी शती पूर्वार्ध मे हुआ है। साधारण भाषा और पद्यात्मक शैलीवाली इनकी रचना की चार पंक्तियाँ उद्धृत है—

वृंदा दुहुँ को सखिन संग बडी छतरी मे ल्याय।
मन भाए भूषन बसन, दीने सबनि बनाय॥
मंडल पुलिन रचादि सब, देखि दुहुँ हुलसात।
खग नग विपिन सुपेखि कैं, रोम रोम पुलकात॥

(१३) **सुबलश्याम**—नारायण भट्ट की पाँच पीढ़ी के भक्त यदुपति के शिष्य 'वेणीकृष्ण' 'सुबलश्याम' उपनाम से कविता करते थे। समकालीन भक्त जगन्नाथ तथा स्वगुरु की चर्चा करने से इनके समय का निर्धारण हो जाता है। सुबलश्याम (जन्म लगभग सं० १७४०, रचनाकाल सं० १७७५) अयोध्या के निकटवर्ती अमोढा ग्रामवासी थे। उन्होने भागवतदशमस्कंध भाषा मे दोहा चौपाई शैली म लिखी थी। अत स्पष्ट है कि सुबलश्याम सबलश्याम से पृथक् है। रहे सबलसिंह, वे महाभारत के अनुवादक है। सुबलश्याम ने कृष्णदास कविकृत 'चैतन्यचरितामृत' को बँगला मे ब्रज मे रूपातरित किया था। मौलिक प्रतिभा के उदाहरण न मिलने पर भी भक्तों द्वारा समादृत कृष्णदास के ग्रथ का सुबलश्याम द्वारा अनूदित एक छंद पठनीय है—

काम तात्पर्य कहै केवल संभोग निज,
कृष्ण सुख तात्पर्य प्रेम बल यही है।
वेदधर्म, लोकधर्म, देहधर्म, कर्मलज्जा,
धैर्य आत्मदेह सुख जोई प्रिय सही है;
दुस्त्यज जो आर्यपथ परिजन स्वजन को,
ताड़न और भर्त्सन सोऊ सुख नहो है।
सबै त्यागि कृष्ण भजैं, तत्सुख ही हेत रजै,
करैं प्रेम सेवा भाँति प्रिय रुचि लही है।

(१४) **साधुचरण**—उत्कल प्रांतीय संत श्यामानद जी के शिष्य साधुचरण ने शनिवार, बसंत पचमी, सं० १७९८ मे 'रसिकविलास' नामक ग्रंथ कवित्त, दोहा, छप्पय

प्रभृति २८० छंदों में लिखा है। इनका अस्तित्वकाल १८वी शती का उत्तरार्ध और १९वीं शती का प्रथम चरण माना जा सकता है। इनका ग्रंथ इनके गुरु के विस्तीर्ण ग्रथ 'रसिक मंगल' पर आधृत है। भक्त्युपेत होते हुए भी काव्यात्मकता इसमे साधारण कोटि की है। उदाहरण नीचे दिया गया है—

'रसिकविलास' नाम ग्रंथ अभिराम किधौ—
रस कौ है धाम ताकौ उपमा विचार्यो है।
किधौ भक्ति अग देखिवे को इहै आरसी है,
किधौ साधिबे को पाटी विधि ने सुधार्यो है।
किधौ जत्रमाला मन मोहिबे को मोहन कौ
किधौ चटसाला भक्तितत्व लै उँचार्यो है।
अज्ञान अधकार धारिबे को मेरे जान,
भक्ति महरानी प्रेमदीपक लै बार्यौ है।

(१५) **वैष्णवदास 'रसजानि'**—प्रियादास के पौत्र और हरिजीवन के शिष्य वैष्णवदास का जीवनकाल अनिश्चित है। फिर भी पितामह के साथ निवास, उनसे 'रसजानि' नाम से अभिहित होने की बात, तथा भक्तकवि रामहरि की सं० १८३३ की 'सतहसी' नाम्नी रचना मे उनकी विद्यमानता के उल्लेख प्रभृति से उनका अस्तित्व सं० १७७० से १८८० के बीच अनुमानित है। अनुवादक के रूप मे वैष्णवदास प्रशसनीय है। 'विद्यावता भागवते परीक्षा', इस निकष पर खरे उतरनेवाले कवि ने सरल भाषा में उक्त विशद ग्रथ का अनुवाद और जयदेव के गीतगोविंद को विभिन्न छदो में सं० १८१४ मे ब्रज-भाषा मे रूपातरित किया। इनके ग्रथो के नाम ये है—१. भक्तमालमाहात्म्य, २. भक्त-उरबसी, ३. भागवतभाषा, ४. गीतगोविंदभाषा, ५. भक्तिरत्नावलीभाषा तथा स्फुट पद।

अनुवादक की सीमाओ के परिज्ञान के साथ काव्योचित सरसता से 'रसजानि संपन्न हैं। नीचे एक उद्धरण देखिए :—

ऐसे बसत में काम की पीर सो, ब्याकुल बीर अहीर की बेटी।
माधवी फूल तें कोमल पाँय, फिरै बन ही बन लाज लपेटी॥
ढूंढत प्रानपियारे दुखारे को, चाह सभी उत्साह चपेटी।
ओंठनि पापरी आ परी यों, यह ताहि कही इक बापुरी चेटी॥

(१६) **राधिकादास**—रामराय के अनुज ब्रजेंद्र के पुत्र राधिकादास का जन्म १७७० वि० स्वीकृत है। इन्होने अपनी छोटी सी पुस्तक 'भावसिधु' में जयदेव की वंदना की है। लिखा है—

बनि कै चैतन्य कभू, कभू राधामाधव बनि,
कमती करवाई आसक्ति देव देव में।

'राधिका की दास' एक ग्रास विम्वास एक ।
हरि को ग्रारोप कहा करो जयदेव मे ।

(१७) **गुणमंजरी**--भक्तिपरक गुणमजरी नामवाले ये महाशय प्रसिद्ध गोस्वामी गोपाल भट्ट की शिष्यपरपरा मे ग्राते है । इनका ग्रस्तित्वकाल, इनके शिष्य दक्षसखी की स० १८३५-३६ की रचनाग्रो के ग्राधार पर, जिनमे इनकी विद्यमानता सकेतित है, स० १७७५ से १८५० वि० ग्रनुमानित है । रूपगोस्वामी कृत 'स्मरण-मगल' नामक प्रख्यात स्तोत्रकाव्य के ग्राधार पर ग्रनेक भक्त कवियो की भाँति इन्होने भी 'स्मरणमगलभाषा' दोहा चौपाई मे लिखा । उदाहरण लीजिए —

वृ दावन जन कुज कुटीर । विलसत दोऊ रति रनधीर ।
नित नित इहि विधि करत विलास । सहचरि बिन नहि जानत दास ।
ग्रमृतसिधु यह जुगल विहार । ग्रस को कहै जा ग्रको पार ।
ग्रमृत व्रजविहार रस गायो । ताकी दिग दरसन करवायो ।

(१८) **वृंदावनदास**--ग्रत साक्ष्य के ग्राधार पर यह विदित है कि वृ दावनदास चैतन्यदेव के प्रधान सहकारी ग्रद्वैताचार्य की शिष्यपरपरा मे हुए है । वर्तमान भ्रमरघाट (तब के भ्रमरकुज) मे उनका निवास था । इनकी स० १८१३-१४ मे लिखी पुस्तको के ग्राधार पर इन्हे सवत् १७७५ से १८४० के बीच विद्यमान माना जा सकता है । इनकी रचनाएँ तीन भक्तो की तीन प्रसिद्ध पुस्तको के ग्रनुवाद है—

(१) भक्तनामावली (देवकीनदन की बँगला 'वैष्णववदना' का ग्रनुवाद) ।

(२) प्रेमभक्तिचद्रिका (नरोत्तमदास ठाकुर की इसी नाम की पुस्तिका का व्रजभाषा रूपातर) ।

(३) विलापकुसुमाजलि (स्वामी रघुनाथदास की इसी नाम की सस्कृत रचना का व्रजभाषानुवाद) ।

इनके ग्रतिरिक्त चैतन्य महाप्रभु की बधाई के पद भी उपलब्ध है । कविता इनकी सरल ग्रौर भावमयी है । नीचे एक रोला उद्धृत है—

सरस भृङ्ग उल्लसित मजु कंजन की पाँती,
सुठि सोभित जा वार वारि मधि ग्रनुपम भाँती ।
बहै मधुर जल मधुर, भरयो तुमरौ सरजोई ।
मम नैननि तट सुमुखि, ग्रघट प्रगट्यो जब सोई ।।

(१९) **नीलसखी**--प्रसिद्ध भक्तकवि हरिराम के वंशज गोस्वामी ग्रानदकर के पुत्र का जन्म बुदेलखड के सतारी नामक ग्राम मे संवत् १७८१ म हुग्रा था । यह ग्राम महाराज छत्रसाल ने नीलसखी के वशजो को जागीर रूप मे स० १७६४ मे दिया था । सप्रदायगत 'नीलसखी' का व्यावहारिक नाम भ्रमर जू था । ग्रारभ मे 'भ्रमरेश' उपनाम

से भी आपने कविताएँ लिखी है। भक्तिविषयक 'बानी' के केवल ११० पदों में से कुछ ही उपलब्ध है। 'अमरेश' 'नीलसखी' दोनो नामों के उदाहरण—

(१) धवल अबीर सत्व गुन सो तनक, तातै,
बढ़ती रजोगुन की परखी गुलाल मे।
कारी कीच नीच सो तमोगुन अधिक ताके,
खुलि खुलि खलक भरी है वह बाल मे।
भनै 'अमरेस' सुनौ सुकवि सुरेस, यहाँ,
रचना बिचारौ गूढ फागुन बिसाल मे।
जथा रूप जितने प्रमान तीन गुन ये,
सु होरो मे प्रगट कर दीने कलिकाल ने।

(२) अब कहुँ कहिबे की कछु नाही।
पावै कौन सहायक अपनौ, ऐसे या दुख माही।
हितू न और हमारौ हरि सम, जिन रसरीति निबाही।
तेई स्याम 'नाम सजनी' कौ हित करिहै गहि बाही।

(२०) **रामहरि**—हरिराम का उपनाम 'रामहरि' था। गोपाल भट्ट गोस्वामी की शिष्यपरंपरा मे आविर्भूत, वैष्णवदास के प्रति शिष्यभाव रखनेवाले रामहरि विरक्त भक्त और विद्वान् थे। संस्कृत, ब्रजभाषा दोनो पर इनका अधिकार था। बाबा कृष्णदास ने 'श्रीरामहरि ग्रंथावली' मे इनकी रचनाएँ संगृहीत की है जिनके नाम ध्यानरश्मि (सं० १८२०), बुद्धिविलास (१८३२), सतहंसी (१८३३), लघुनामावली (१८३४) लघुशब्दावली (वही), बोधबावनी (१८३५), प्रेमपत्री तथा रसपचीसी (रचनाकाल अज्ञात) है।

इन कृतियों मे उनके आलंकारिक, कोशकार तथा आचार्य आदि रूपो का पता चलता है। बुद्धिविलास के (जिसमें कुछ अन्य कवियों के भी दोहे है) भक्ति-प्रेम-उपदेश-नीति-परक दोहे 'कबीर की साखी' शैली के प्रतिनिधि है। सतहंसी में यमक की चमक है। लघुनामावली और लघुशब्दावली से कोशात्मक विषय प्रकट है। गोपियो द्वारा कृष्ण को लिखी गई पत्री है प्रेमपत्री। रसपचीसी में नायिका के कुछ गुण वर्णित है।

(१) सावन मे घनसार है, जेठ माँहि घन सार।
भूर्हहि हू घन सार है, बन हू को घनसार॥
ऊधो! ते सु पुरान है, सुनत सु नाहिं पुरान।
भई पुरा न सु करत है, दोन्ही त्यागि पुरान॥

(सतहसी से)

(२१) **रामकृपा**—गोपाल भट्ट की षष्ठ पीढ़ी के भक्त रामकृष्ण के शिष्य रामकृपा ने गुर्वाज्ञा से चैतन्य के प्रसिद्ध आकर ग्रंथ 'ब्रह्मसंहिता' की जीव गोस्वामी-कृत कठिन संस्कृत टीका 'ब्रह्मसंहिता-दिग्दर्शिनी-टीका की भाषा' शीर्षक टीका की। जो बाबा कृष्णदास की कृपा से प्रकाश में आ चुकी है। इसका रचनाकाल 'सुरवैद्य शर युग्म वसु इंदु' के अनुसार सं० १८२२ है। उक्त संकेत से स० १८८२ भी तिथि निकलती है किंतु उससे रामकृष्ण के समय की संगति नहीं बैठती। इस प्रकार रामकृपा का जन्म प्राय: स० १७८० और निधन लगभग १८४० वि० में हुआ होगा। रचना से उदाहरण लीजिए—

> कृष्ण एक परब्रह्म बखाना। इनते अपर न कोउ श्रुति गाना।
> लक्षन तासु कहत अब गाई। सुनहु चित्त दैहै सुखदाई।
> जासु एक स्वासा करि कालू। तेहि अवलंबि सकल जगजालू।
> जगत अंडनायक जे कोई। विष्णु आदि जगपति है जोई।

(२२) **दक्षसखी**—गुणमंजरी के शिष्य दक्षसखी का जीवनवृत्त अज्ञान के अंधकार से आच्छन्न है। उनकी वर्ण्यसूचिका में चार छोटी छोटी रचनाएँ प्राप्त हैं—मंगल-आरती, व्यंजनावली, वनविहारलीला तथा अष्टकाललीला। कवित्व की दृष्टि से इन रचनाओं का विशेष महत्व नहीं है। अंतिम रचना प्रसिद्ध 'स्मरणमंगलस्तोत्र' पर आधृत है। उदाहरण—

> मनिन जटित सब भूमि सुहाई। कोटि रमा लखि ताहि लजाई।
> छैओ रितु के फूल जो फले। देखत पभा उमापति भूले।
> मुक्ता नवल द्रुमन लपटाहीं। रत्न फूल फूले तिहि पाहीं।
> सब फल जुकत चोप अति सरसैं। कबहुं दर्पत निज कर परसैं।

(२३) **ललितसखी**—नारायण भट्ट की नवीं पीढ़ी में प्रादुर्भूत मुरलीधर भट्ट के शिष्य ललितसखी का मूल नाम अज्ञात है। इनकी दो कृतियाँ 'कहानीरहसि', 'कुँवर-केलि' प्राप्त हैं। गुरुभक्त कवि ने अपनी छाप में गुरुनाम भी जोड़ लिया है। रचनाकाल की दृष्टि से 'कुँवरकेलि' सं० १८३६ में विरचित है। अतः उनका जन्म संभवतः सं० १८०० के आसपास हुआ होगा। 'कहानीरहसि' में राधा के कथा श्रवणोत्सुका में बालहठ तथा माता द्वारा उसकी पूर्ति में वात्सल्य भाव की सुंदर व्यंजना हुई है। 'कुँवरकेलि' में ११६ छंद हैं। सवैया छंद में एक ही साथ दो से अधिक लघुवर्ण यत्र तत्र प्रयुक्त हैं। उदाहरण-

> सब बैठिकै गावति गीत, जबै ललितादिक मोद बढ़ावन कूँ।
> एक आई सखी धरि रूप जहाँ, मुरलीधर हित सुर गावन कूँ।
> मुसिकाय नवेली ने बात कही, समुझाय कै हियो सिरावन कूँ।
> यह कौन सहेली, हौ जानौं अरी, याहि चौप भरी हिग लावन कूँ।

(२४) **गोकुलदास**—'भजनपद्धति' के लिपिक, कर्ता के रूप में गोकुलदास

ने गौडीय भक्तो के प्रति श्रद्धा व्यक्त की है, और उनके द्वारा प्रवर्तित भक्तितत्व का विशद वर्णन किया है। सं० १८४० की रचना होने से उनका अस्तित्वकाल १९वी शती का पूर्वार्ध अनुमानित है। इनके ग्रथ मे भजनपद्धति का सात भागो मे वर्णन हैं--१. चौसठ अंग भक्ति, २. साधनभक्ति, ३ वृंदावनमहिमा, ४. सखीनाम, ५. प्रातलीला, ६. उत्तर-गोष्ठ तथा ७. रात्रि-विहारलीला-वर्णन है। छदो में गतिभग, यतिभग आदि दोष हैं।

(२५) **छोटे ब्रह्मगोपाल**--बड़े ब्रह्मगोपाल वासुदेवकृत 'प्रणालिका' के अनुसार १९वीं शती में हुए थे। छोटे ब्रह्मगोपाल (राधिकादास के पुत्र) १९वो शती मे हुए थे और 'ब्रह्मपुरी' का निर्माण कराया था। रचनाकाल स० १८२७ है। इनकी दो प्रसिद्ध रचनाएँ है--श्री यमुनाष्टकपदी और श्री वृदावनविलास। एक पद उद्धृत है--

प्रिया जू की श्री वृंदावन रजधानी।
माधवलाल बने बनमाली, आली सब सुख खानी।
चौदह लोक सोक हरिबे कों, जहाँ रसामृत बानी।
इद्र चद्र ब्रह्मादिक सेवत, आज्ञा मन मे मानी।
लक्ष लक्ष उपलक्ष सख्य के, सेष न जात बखानी।
ब्रह्म रह्यो जहाँ दीन चरन धर, का की कहौ कहानी।

(२६) **हरिबल्लभ**--चैतन्य मतानुयायियो मे प्रकाड पडित, दार्शनिक भक्त और महान् ग्रथों के प्रणेता विश्वनाथ चक्रवर्ती ने सभी ग्रथ संस्कृत मे लिखे है जिनमे उनकी छाप 'हरिवल्लभ' है। 'हरिबल्लभ' छापवाले कुछ पद इधर मिले है, परन्तु मुर्शिदाबाद जिले मे उत्पन्न प्रसिद्ध विश्वनाथ चक्रवर्ती को इन पदो के रचयिता के व्यक्तित्व के अन-र्भुक्त कर देना असंगत होगा। अज्ञातवृत्त हरिबल्लभ का एक पद नीचे दिया जा रहा है--

हरि हरि कौन कृपा रस एह।
धन्य गौड़ धरनी, जहं लोकन अवलोकन हरि गौर देह।
विनहि जतन नव प्रेम रतन सों सबहिन के यहाँ भर्यौ गेह।
सबहि रसिक सबही 'हरिबल्लभ' राजत यहाँ परस्पर नेह।

(२७) **कल्याणराय**--चद्रगोपाल के वंशज ब्रह्मगोपाल के पुत्र कल्याणराय का जन्म स० १८३० माना जाता है। 'संकल्पकल्पद्रुम', 'ब्रजमाधुरी' दो रचनाएँ उपलब्ध है। कविता इनकी साधारण है।

(२८) **गोपालदास**--वृंदावनवासी ब्रह्मभट्ट गोपालदास 'गुपाल कवि' के पिता का नाम खड्गराय था। ये रामबक्स भट्ट के शिष्य थे और पटियाला के महाराज कर्मसिंह के अनुज अजीतसिंह इनके आश्रयदाता थे। 'श्रीवृदावनधामानुरागावली' का रचनाकाल स० १९०० है। अत. इनका अस्तित्वकाल सं० १८६० से १९३० वि० माना जा सकता है। ये १६ ग्रंथों के प्रणेता कहे जाते हैं। चूँकि हिदी मे इस नाम के अन्य कवि भी हुए हैं,

अतः संभव है इस नाम के अन्य कवियों की रचनाएँ भी इनमे संमिलित हो गई हों। फिर भी विविध विषयक रचनाओं के कर्ता गोपालदास का आचार्यत्व, वैपश्चिनी प्रकृति तथा भक्तिभावना की दृष्टि से निजी स्थान है। उनके ग्रंथों के नाम या हैं—

(१) दपतिकाव्यविलास, (२) दूषणविलास, (३) ध्वनिविलास, (४) भावविलास, (५) भूषणविलास, (६) मानपचीसी, (७) रससागर, (८) रामपचाध्यायी, (९) ब्रजयात्रा, (१०) वनयात्रा, (११) श्रीवृंदावनधामानुरागावली, (१२) वृंदावनमाहात्म्य, (१३) वशीलीला, (१४) वर्षोत्सव, (१५) गोपालभट्टचरित, (१६) वृंदावनवासिन के कवित्त तथा (१७) भक्तमाल टीका।

इन ग्रंथों के नामो से कवि के दुहरे व्यक्तित्व की झलक मिलती है। कविता का का नमूना निम्नांकित है—

मदन मोहन की जोग पीठ, द्वादसादित्य ढिग जानो।
तहाँ ते मदनमोहन अद्वैत प्रभु हित प्रगटे मानो।
सूरदास जो मदन मोहन भये भगत, छोड पतिसाही।
तिनकौ दरवाजौ समाधि इक राजत है तरु छाही।
सूरज चद्र सीतलादेवी, मदनेश्वर सिव सोहैं।
तहाँ सनातन की समाधि ढिग वह समाधि मन मोहै।

(२९), (३०) नंदकिशोर, ब्रजकिशोर—रामराय चद्रगोपाल के वश मे श्री चुन्नीलाल यशोदा नाम के दंपती के पुत्र हैं नदकिशोर तथा ब्रजकिशोर। नदकिशोर का जन्म स० १८७० और निधन सं० १९१२ मे हुआ। इस प्रकार ३२ वर्ष की अल्पायु में ही 'मुहूर्तमपि ज्वलितं श्रेय' को चरितार्थ करनेवाले ने सस्कृत मे १० ग्रंथों की रचना की। उनका 'शुकदूत' महाकाव्य कृष्णदास की कृपा से भाषा-टीका-सहित प्रकाशित हो चुका है। भागवत पर उन्होंने ब्रजभाषा गद्य मे सरल टीका लिखी है। एक छोटी रचना बारहखड़ी-महिमा ब्रजभाषा मे है। कविता का नमूना देखिए—

अब प्रभु सुनिये मेरी टेर।
चहूँ ओर ते कठिन व्यथा में मैं लीना हूँ घेर।
सुर नर किन्नर और मुनीस्वर, सिव विधि वरुन कुबेर।
सबही भ्रमत फिरत है निसि दिन, तव माया के फेर।
जब गजराज पुकारयौ जल मे नैकु न लागी देर।
कैसे कियो 'किसोर' कठिन मन, मो गरीब की बेर।

अनुज ब्रजकिशोर का जन्म श्रावण सुदी ८, स० १८३५ मे हुआ था। उनकी एक रचना 'सेवाप्रकाश' है जिसमे सेवापरक ५०१ दोहे है। उदाहरण—

आठ सखिन के आठ हैं, भारे सुख सिंगार।
चंद्र स्वेत मंगल सुरँग, बुध कछु हरित बिचार॥
गुरु कों पीरे, सुक्र कों, स्वेत कोई नव रंग।
सनि को स्याम धराइयै, वस्त्र अलौकिक अंग॥

(३१) **गुणमंजरीदास**—इनका वास्तविक नाम था गल्लू। सांप्रदायिक नाम था गुणमंजरीदास। ये गोपालभट्ट के परिकर म माधवगौड़ेश्वराचार्य थे। राधारमणी गोस्वामी श्री रमणदयाल इनके पिता थे। ये ज्येष्ठ ८, सं० १८८४ में उत्पन्न हुए थे। सं० १९३२ में इन्होंने षड्भुज महाप्रभु के मंदिर की स्थापना की थी। गल्लू जी की दूसरी पत्नी सूर्यदेवी के गर्भ से प्रसिद्ध साहित्यिक श्री राधाचरण गोस्वामी का जन्म हुआ था। मार्गशीर्ष कृष्ण १, स० १९४७ में आप चैतन्यलोकवासी हुए। इनकी रचनाएँ है—'युगलछद्म', 'श्रीराधारमणपदमजरी', 'रहस्यपदपदावशेष', 'भागवतपद', 'उराहनौ-लीला', 'मुक्तावली', 'गोपालभट्टशतक' और 'प्रार्थना'। एक पद पढ़िए—

श्रीराधारमन चरन तल मेंहदी।
कैसे रची खची मो हिय में, निरखौ जाय अलहदी।
बसी नैन मेरे री सजनी, कैसी बनी जू कहूँ दी।
'गुनमंजरी' लखें याही को, और कछू नहिं चहँदी।

चैतन्य संप्रदाय के प्रमुख भक्तकवियों का परिचय ऊपर दिया जा चुका है। इन कवियो के अतिरिक्त कुछ अन्य कवि भी हुए है, जैसे चैनराम, सदानंद, चतुरशिरोमणि, जनदयाल, श्रीलाल, लाडिलीदास, गोविंदचरण तथा गौरकृष्ण आदि। कृष्णचैतन्य, ललितकिशोरी तथा ललितमाधुरी आदि शृंगारकाल के बाद मे हुए है, अत उनका परिचय यहाँ नही दिया गया है।

राधावल्लभ संप्रदाय

डा० विजयेंद्र स्नातक ने इस सप्रदाय का मूल सिद्धांत एक वाक्य में यों लिखा है, "हृदय की रसस्निग्ध भावनाओ की सहज स्वीकृति और सरस अभिव्यक्ति ही इस सप्रदाय के भक्तिसिद्धान्त की नीव और रसोपासना का आधार है'।[१] रसोपासना के हेतु राधा-वल्लभी भक्त द्वैत, शुद्धाद्वैत, द्वैताद्वैत तथा विशिष्टाद्वैत आदि दार्शनिक मतो के वक्र अराल तर्कजाल से बचकर सीधी भक्तिभावना अपनाना चाहते है। अद्वैत के साथ माया जुडी हुई है। अतः उसके प्रपच से भी सुरक्षित रहना चाहते है। इस मत के अनुवर्तक गोस्वा-मियो न शांकर अद्वैन के ढब पर राधावल्लभीय भाष्यो मे इस संप्रदाय के दर्शन को सिद्धा-द्वैत नाम दिया तथा ब्रह्म, जीव क अभेद सबंध की भाँति राधा और कृष्ण को अभेद बताया। इस मत में राधाकृष्ण का अद्वैत स्वत सिद्ध समझा गया।

---

१. राधावल्लभ सप्रदाय : सिद्वात और साहित्य, पृष्ठ १२६।

इस संप्रदाय में 'श्रीवृंदावननाथपट्टमहिषी राधेव सेव्या मम' के अनुसार आनंद-स्वरूपा राधा इष्टदेवी है। कृष्ण उस आनंदशक्ति के पदकिंकर हैं तथा उनकी कृपा अनुग्रह पर जीवित है। फिर भी राधा का अस्तित्व कृष्ण के साथ है, स्वतंत्र नहीं।[1] वे लीला के लिये द्विविग्रही होते हुए सिद्धांतत एक है—

एकै सील सुभाव मृदु रस के हित द्वै देह।

सम्प्रति इस मत के प्रमुख कवियों का परिचय दिया जा रहा है। इस सम्प्रदाय के प्रमुख पूर्ववर्ती कवि है—हितहरिवंश, हरिरामव्यास, नागरीदास, लालस्वामी, कृष्णचंद्र गोस्वामी, सेवक जी, चतुर्भुजदास, ध्रुवदास, दामोदरस्वामी, सहचरिसुख, कल्याण पुजारी, रसिकदास, हित अनूप आदि। विवेच्य काल मे आनेवाले कवियों का परिचय निम्नलिखित है:

(१) **चंद्रसखी**—इनका अस्तित्वकाल सं० १७०० से १७६० है। राजस्थान में मीरा के पश्चात् चंद्रसखी जी के गीतों का महत्व और प्रचार है।

(२) **हितरूपलाल**—राधावल्लभ संप्रदायी भक्तों मे हितरूपलाल उत्कृष्ट कोटि के संत हुए है। इनका आविर्भावकाल वैशाख कृष्ण ७, स० १७३८ से १८०१ है। ये उच्च कोटि के रसिक और जन्मजात कवि थे। ये प्रख्यात भक्त और सुकवि चाचा हित-वृंदावनदास के गुरु थे। इनके बनाए हुए छोटे बड़े ८३ ग्रंथ कहे जाते हैं। सैद्धांतिक ग्रंथों के अतिरिक्त राधाअवतार, राधास्तोत्र, वनलीला, समयप्रबंध निकुंजकेलिलीला प्रभृति रचनाएँ महत्वपूर्ण है। एक उदाहरण देखिए—

बडभागी सोई जगु जानौ।
जाके भक्ति भाव राधावर चरनकमल चित आनौ।
श्रीवृंदावन रज अनुरागी प्रेम पंथ पहिचानौ।
नित्य निकुंज बिहार सार रस भजन सजनि सुख ठानौ।
करत मानसिक सत रँगु भीनो प्रेम रूप ललचानौ।
रूपलाल हित सरनागति सुख सहज सदा मानौ।

(३) **श्री अनन्य अली**—श्री अनन्य अली का 'स्वप्नप्रसंग' या 'स्वप्नविलास'[2] उनके जीवन की घटनाओं का अंत साक्ष्य है। उस आधार पर कुछ वाक्यों मे उनका जीवनवृत्त दिया जा सकता है। दीक्षा से पूर्व उनका नाम था भगवानदास। वणिक्-वृत्ति से उनकी जाति वैश्य प्रतीत होती है। इनके गुरु थे श्री गोविंदलाल गोस्वामी। ये आजीवन अविवाहित रहे। इनका जन्म सं० १७४० अनुमानित है। २० वर्ष की अवस्था मे सं० १७६० में ये वृंदावन आए थे और ध्रुवदास की कुटी के निकट रहकर भक्तिभाव भरे पद रचते थे।

---

१ ब्रजभाषा के कृष्णकाव्य में माधुर्य भक्ति, ले० डा० रूपनारायण पृ० ३१२।
२. स्वप्नप्रसंग अनन्यअलिकृत, प्रकाशक बाबा तुलसीदास (वृंदावन), पृ० १ से २३।

कहा जाता है, इन्होंने ७६ ग्रंथों की रचना की है। सं० १७५६ से १७६० के बीच की ये रचनाएँ हैं। अतः सं० १७६० ही संभवतः इनका महाप्रयाण संवत् है। नीचे उनके ग्रंथों की तालिका दी जा रही है—१. स्वप्नविलास (गद्यवार्ता), २. जीवप्रकार, ३. मनविनतीलीला, ४. आशाष्टक, ५. श्रीहरिवंशाष्टक, ६. श्रीवृंदावनदास की प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ अवलोकन अवस्था, ७. चरणप्रतापलीला, ८. श्रीक्रीड़ासरखेल, ९. प्रतिबिंबलीला, १०. श्रीलाड़िलीजू की नामावली, ११. श्रीलाल जू की नामावली, १२. श्री हरिवंश जू की नामावली, १३. वृंदावनरजधानीलीला, १४. वर्णीविलास-लीला, १५. परिचर्याविलासलीला, १६. षटऋतुलीला, १७. स्वप्नलीला, १८. रहसि बचनविलास लीला, १९. सुरतांतविलास लीला, २०. मगलविनोदलीला, २१. कुजविलास-लीला, २२. स्नानविलासलीला, २३. सिंगारविलास लीला, २४. जुगलसभाविनोद लीला। २५. राजभोगलीला, २६. उत्थापनसमयविलास, २७. संध्यासमय विलास, २८. शयनसमयविलास, २९. सज्जासमयविलास, ३०. बसंतऋतुलीला, ३१ ग्रीष्मऋतु लीला, ३२ पावसऋतुलीला ३३. सिसिरऋतुलीला, ३४. शरदऋतुलीला, ३५. हिमऋतुलीला, ३६. फूलरचनाविलास, ३७. झीनेचीरसोभाविलास, ३८. चंद्रचित्र, ३९. महाशीतलविनोदविलास, ४०. चदखेलविलास, ४१. जलनौकाविलासलीला, ४२. जलविहारलीला, ४३. चरनअष्टक, ४४. नवलजुगलविनोदलीला, ४५ व्याह विनोदलीला, ४६ चौपरखेललीला, ४७. शतरंजखेलविलास ४८. थलनौकाखेल लीला, ४९. गेंदखेललीला, ५०. भउड़खेल विलासलीला, ५१ आँख मिचौनी खेल, ५२, ५३, ५४. वचन-हास-विरह-विलास, ५५, ५६. मगनविलास, छविचंद्रावली लीला, ५७–५९. संजोग-सज्जामान-विलास, ६०. दानविनोद लीला, ६१–६२. रूप-सेवा-विलास, ६३–६७. छविलताविलास, ललितलताविलास, माधुरीलताविलास खमो, लावण्यप्रभा विलासलीला, ६८. कंचनलताविलास, ६९–७०. चद्रलता-मृदुता-विलास-लीला, ७१–७२ सुकुमारिता, मोहनता की सीमा, ७३–७६. नवलविलास, विमलविलास, सौरभ-विलास, चातुर्यविलास, भोरताविलास, नेत्रविलास तथा दरसविलास लीला और ८० फुटकल दोहे।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि किसी किसी रचना में ४ से १० छंद तक ही हैं। कृष्ण से सबद्ध लीलाएँ ग्रंथों की वर्ण्य है। भक्ति के सिद्धांतों के बीच सरसता की अबाध आपगा सतत प्रवाहित होती रही है। उदाहरण नीचे प्रस्तुत हैं—

(१) जुगल भजन की हाट करि, ऐसी विधि व्यौहार।
रसिकन सौ सौदा बने, चर्चा नित्य-बिहार॥
चित डाँड़ी पलरा नयन प्रेम डोरि सों बानि।
हियो तराजू लेहु करि तौल रूप मन सानि॥

(२) माधुरी कुंजनि मे बिधि प्रीतम खेल बसंतनि को सरसाई।
सेत सिंगार सुगंध पगे, सुलगै तन मे न कछू दरसाई।

अवनि (?) मौर धरे कलसा, मनि नीर गुलाननि सी मुस्काई।
श्री हरिवंश कृपाबल ते बन खेल अनन्य अली निरखाई।

(४) **रसिकदास**--राधावल्लभ संप्रदाय में इस नाम के कई कवि हुए हैं। प्रथम रसिकदास भक्तियुग में हुए हैं। द्वितीय रसिकदास, 'भोरी सखी' (अस्तित्वकाल सं० १७२०--१८००) के शिष्य थे। 'भोरी सखी सींची हियौ रसिकदास भरपूर' उसका प्रमाण है। तृतीय रसिकदास लाड़लीदास (सं० १७८०--१८५० वि०) के समसामयिक थे। चतुर्थ रसिकदास चंद्रसखी की गद्दी पर बैठे थे और खेमदास के गुरुभ्राता थे।

प्रस्तुत प्रसंग में प्रथम रसिकदास का परिचय अभीष्ट है। धीरीधर (सं० १६७०--१७६८ वि०) के शिष्य रसिकदास ने सं० १७४३ से १७५३ के बीच प्रायः दो दर्जन पुस्तकें लिखीं। रसकदंबचूड़ामणि (दो भाग), मनोरथ लीला के अतिरिक्त सभी पुस्तकों के उत्तरांश में 'लता' शब्द जुड़ा हुआ है। लतासंपृक्त नाम यों हैं--प्रसाद, मनोरथ, अभिलाषा, सौंदर्य, माधुर्य, सौभाग्य, विनोद, तरंग, विलास, सुखसार, अद्भुत, कौतुक, रहस्य, रतन, अतन, रतिरंग, हुलास, आनंद, चारु तथा सुकुमारीलाला।

सौंदर्यलता में राधाकृष्ण के नखशिख की वर्णना है, जो एक ओर कवि को रीतिपरिपाटी-पालक सिद्ध करती है तो दूसरी ओर सामान्य नायक नायिका के रूपांकनकर्ताओं से उसे पृथक् कर देती है। चारुलता में केवल आंगुल्यसुषमा वर्णित है। रसकदंबचूड़ामणि में न सैद्धांतिक गंभीरता है और न काव्य की आत्मा रस का सहज प्रवाह ही। मनोरथलता गाथिक वृत्त में तथा मनोरथलीला वर्णवृत्त में लिखी गई है। लताओं में कमनीय काव्यकुसुम प्रफुल्लित हैं। एक उदाहरण देखिए---

कहा अनंगी धनुष सम, भ्रूभंगी नव वाल,
जाकी भंगी में नचत, नवल त्रिभंगीलाल।
नासा स्वास्त सौरभनि, मनि मुक्ता अदोल,
मनों हास अनुराग की, शोभा चढ़ी हिंडोल।

(५) **श्री हठ जी**--श्री हितहरिवंश की शिष्यपरंपरा के श्री हठी जी उच्च कोटि के भक्त, साहित्यमर्मी तथा सुकवि हुए हैं। अपनी रचना 'राधासुधाशतक' का, जिसमें ११ दोहे तथा १०३ कवित्त, सवैया, छंद हैं, रचनाकाल सं० १८३७ बताकर अपने संबंध में आपने कुछ नहीं कहा। राधा के इस अनन्य भक्त ने भाव तथा कला दोनों पक्षों पर समान बल देते हुए अनुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों द्वारा सुथरी ब्रजभाषा में राधा को देवदेवीशिरोमणि सिद्ध किया है। भारतेंदु जी द्वारा प्रशंसित 'राधासुधाशतक' में राजविभवों के चित्र मिलते हैं जो इस बात के साक्षी हैं कि राजदरबारों से भी उनका अच्छा परिचय था। एक उद्धरण नीचे दिया गया है--

चंद सो आनन, कंजन सो तन, हौं लखि कै बिन मोल बिकानी।
औ अरविंद सी आँखिन कों 'हठी', देखत मेरियै आँखि सिरानी।

राजति है मनमोहन के सँग वारी मैं कोटि रमा, रति, बानी।
जीवन मूरि सबै ब्रज की, ठकुरानी हमारी है राधिका रानी।

(६) *चाचा हितवृंदावनदास*--इन्हें निःसंदेह वाणी का वरद पुत्र कहना संगत होगा। भक्ति, रीतियुगीन काव्यपरंपरा का तुलसी के उपरांत इतना सुंदर निर्वाह अन्यत्र नहीं है। फिर शैलीवैविध्य और रचना-परिमाण-विपुलता में भी राधावल्लभी भक्त कवियों में वे अद्वितीय हैं। वियोगीहरि,[1] आचार्य शुक्ल, डा० भगीरथ मिश्र प्रभृति विद्वानों ने इनका जन्मसंवत् १७६५ लिखा है। इनकी प्रथम कृति 'अष्टयाम' समयप्रबंध कार्तिक शुक्ल ११, सं० १८०० की है। अतः जन्म-संवत्-परक मिश्रबंधुओं का यह अनुमान, कि इनका जन्म सं० १७५०--१७६५ के मध्य हुआ होगा, प्रत्यायक है। सेवक-परिचयावली इनकी अंतिम रचना है जो सं० १८४४ में लिखी गई है, इससे स्पष्ट है कि इनका निधन इसी के आसपास हुआ होगा।

चाचा वृंदावनदास के पूर्वार्द्ध जीवन से हम अपरिचित हैं। किंतु उत्तरार्ध से इसलिए अवगत हो जाते हैं कि कुछ संकेत अपने संबंध में स्वयं उन्होंने तथा कुछ समसामयिक भक्तों ने किए हैं। उनके द्वारा प्रयुक्त ब्रजभाषा से उनका वृंदावननिवास परिलक्षित है। कृष्णगढ़ के राजा नागरीदास के अनुज बहादुरसिंह के कृपापात्र ये शैशव में रहे या युवावस्था में, यह अनिश्चित है। यह भी अनिर्णीत है कि ये विप्र, वैश्य या कायस्थ में किस जाति के रत्न थे; सच्चे भक्त को जाति से क्या सरोकार? वे गुरुगृह, सेवाकुंज तथा साधुमंडली में ही आनंद लिया करते थे। श्रीहितरूपलाल इनके गुरु थे, जिनके पद-चाँपन का वर्णन उन्होंने स्वयं किया है--

पौढ़ें रजनी अलस रहि अति श्रमित भये तन।
चापत चरन नित तहाँ, दास हित वृंदावन।

सवालक्ष वाणी की रचना उन्होंने की। तद्विषयक वक्तव्य स्वयं दिया है, और लिपिक केलिदास का भी नाम दिया है--

श्री राधावल्लभ श्री हरिवंश। गुरु हित रूप जगत परसंस।
हित वृंदावन तिनकौ भृत्य। बानी सवालक्ष तिन कृत्य।
केलिदास पुस्तक लिखि हाथ। जोरी पद सेवैं निज साथ।

चाचा के काव्य में न केवल भक्तिभावित हृदय के उद्गार ही है, वरन् समसामयिक ऐतिहासिक घटनाओं के उल्लेख भी। उदाहरणार्थ 'हरिकलाकेलि' में यवनों के 'जमन

---

१. ब्रजमाधुरीसार, २०१६ वि० सं०, पृ० २१५; हिंदी साहित्य का इतिहास, सं० २००६ सं०, पृ० ३५५; हिंदी साहित्य का उद्भव और विकास, सं० १९५६ ई०, पृ० २६२।

बिगोयो देस' आक्रमण का उल्लेख है। सं० १८१४ से सं० १८३८ तक आक्रमणों की पुनरावृत्ति ब्रज पर हुई। 'चाचा' ने तुलसी के 'हनुमानबाहुक' की भाँति 'आर्तपत्रिका' की भी सर्जना की।

(७) सुंदरिकुँवरि बाई—ये प्रसिद्ध नागरीदास की बहन, राघवगढ़ के कुँवर बलवंत सिंह की पत्नी थी। इनका जन्म स० १७९१ वि० में हुआ था। इन्होने ११ ग्रंथो की रचना की है। इनका शब्दसंघटन आकर्षक, भाव सरस तथा अभिव्यक्ति मृदु है। ग्रंथो के नाम निम्नोक्त है—

नेहनिधि (स० १८१७) वृंदावन-गोपी-माहात्म्य (१८२३), संकेतयुगल (१८३०), रसपुंज (१८३४), प्रेमसंपुट (१८४५), सारसंग्रह (वही) रंगझर (वही), गोपीमाहात्म्य (१८४६), भावनाप्रकाश (१८४९), तथा रामरहस्य (१८५३)।

रचना का एक उदाहरण देखिए—

स्याम रूप सागर मैं नैन वार पार थके,
    नचत तरग अंग अंग रँगमगी है।
गाजन गहर धुनि बाजन मधुर बेनु
    नागिनि अलक जुग सोचै सगबगी है।
भँवर त्रिभंगताई पानिप लुनाई तामें
    मोती मनि जालन की ज्योति जगमगी है।
काम पौन प्रबल धुकान लोपी लाज नामै
    आज राधे लाज की जहाज डगमगी है।

(८) श्री चंद्रलाल गोस्वामी—चंद्रलाल गोस्वामी चाचा हितवृंदावनदास के समकालीन थे। अठारहवीं शती के पूर्वार्ध मे ये विद्यमान थे। इनके पिता का नाम गोवर्धननाथ था। गोस्वामी जी के अनेक ग्रंथ मिलते है जिनमे से दो ग्रंथो मे रचनाकाल दिया हुआ है। एक वृंदावनप्रकाशमाला की रचना संवत् १८२४ मे हुई और दूसरी गोस्वामी कृष्णचंद्र की लिखी 'उपराधासुधानिधि' की टीका संवत् १८३५ में पूर्ण हुई। इनकी अधिकांश रचनाएँ कवित्त सवैयों मे है। अन्य महत्वपूर्ण ग्रंथो के नाम है—अभिलाषबत्तीसी, समयपचीसी और भावनापचीसी। इनके संबंध मे चाचा हितवृंदावनदास ने अपनी रसिकपरचावली के ४२२वें छंद मे लिखा है—

श्री बनचंद्रसुता सुवंश आदरै रसिक जन।
बानी मानी असीवदन उज्वरत मुदित मन।
हित मारग रस रीति अर्थ विस्तार विचक्षन।
कृपा द्रवत रहै हियौ सुमति सचरयौ भजन धन।
सुत गोवर्धन नाथ के, मूरति सुभव्य दृग देखिये॥
श्री चंद्रलाल लाली अधिक ,सज्जनता हिये बिसेखिये॥

इनकी रचना सुंदर ब्रजभाषा में हुई है। दो एक उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं—

वह बनभूमि द्रुम लता रही भूमि ते तौ
विविध समीर सौ उठति है लहकि लहकि।
फूली नवकुंज तहाँ भँवर करत गुंज,
सदा सुख पुंज रह्यौ सौरभ महकि महकि।
कोकिल मयूर शुक सारौ आदि पक्षी सब,
दंपति रिझावत है गावत गहकि गहकि।
हित सौ जो देखै नित तिनकी तौ कहा कहौ
बात ही मे चंद चित जात है बहकि बहकि।

—समय पचीसी

(९) **प्रेमदास**—ये हितरूपलाल गोस्वामी के शिष्य और उच्च कोटि के रसिक भक्त थे। हितचौरासी की इनकी टीका सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है जो संवत् १७९१ में पूर्ण हुई। चाचा हितवृंदावनदास की 'हरिकलाबेली' में उल्लेख है कि संवत् १८१३ में यवनो के उपद्रव से वृंदावन में घनानंद जी के साथ प्रेमदास जी भी मारे गए। इनके अन्य ग्रंथ नही मिलते किंतु उत्सवो मे इनके पद गाए जाते है। उदाहरण के लिये एक छंद दिया जाता है—

फूलनि कौ मुकुट विराजै सीस साँवरे के
प्यारी संजै फूलनि की चंद्रिका नवीन हैं।
फूलनि कै भूषन बसन सोहै फूलनि के
फूलनि की फूली फूलो डारै कर लीन है॥
फूलनि सौ निर्त करै फूले फूले मन हरै
प्रेमदास हित फूली संगरंग भीन है।
फूलनि की कुंज मजु गुज अलिपुंज पुंज
फूली फूली गावै अलि बीन मे प्रबीन है॥

(१०) **लाड़लीदास**—ये घनश्यामलाल गोस्वामी के शिष्य थे और १८वीं सदी के पूर्वार्ध मे विद्यमान थे। इनकी मुख्य रचना सुधर्मबोधिनी है, जो संवत् १८४२ मे पूर्ण हुई। इसके अतिरिक्त इनकी अन्य रचनाएँ प्रश्नोत्तरी, पदावली, कामवनविलास और स्वप्नविलास है। इनकी छाप कहीं कहीं बिजदासी के रूप मे भी है।

(११) **ब्रजजीवन**—ये हरिलाल गोस्वामी के शिष्य थे। इनकी मुख्य रचना 'हृदयभरण' है जिसमे १०४२ दोहे है और अनेक अलंकारो के उदाहरण भी है। यह ग्रंथ संवत् १८६१ में आश्विन शुक्ला द्वितीया को पूर्ण हुआ था। अलंकारो के अतिरिक्त इसमे षटऋतु, होली, दीवाली आदि के पद है। ब्रजजीवन जी पंजाबी थे। इस कारण पंजाबी शब्दो का प्रयोग भी इनकी रचना मे मिलता है। यहाँ दो एक उदाहरण दिए जा रहे हैं—

राधाकृपा कटाक्ष की लागी हिय बौछार।
राधागुन सुमिरत कथन छिन छिन नित्य विहार ।।
लाल प्रेम उलही फिरै नव दुलही दिन रात।
रँगरलियाँ अलियान सौं बूझत रस की बात ।।
बरबस री बँसुरी करत परबस री मन घेर।
रस गँगुरी अँसुरी झरत सुनि बँसुरी की टेर ।।

(१२) **आनंदीबाई**--ये रूपलाल गोस्वामी के पुत्र रसिकानंदलाल गोस्वामी की शिष्या थी। इनकी वाणी साहित्यिक दृष्टि से तो अधिक महत्व की नहीं है, परंतु अनुभव की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इनकी 'निजुभावविचार' नामक रचना संवत् १८४० में पूर्ण हुई। यह रचना दोहा चौपाई और छप्पय छंदों में है। रचनाकाल संबंधी उल्लेख निम्नलिखित है--

अठारह सै चालीसिया संवत माधौ मास।
यह प्रबंध पूरन भयौ कृष्ण पचमी सनोवास ।।

इनकी रचना की कुछ पंक्तियाँ नीचे दी जा रही हैं—

रूपप्रेमरस गहर मे बूड़े ललना लाल।
मदन मुदित मुख खिलि रहे पानिप बढी रसाल।
सुहृद अली करि आरती डगमग जगमग होति।
श्रीमुख लखौं कि आरती कै जुग मुख छबि जोति।

वल्लभ संप्रदाय

माहात्म्यज्ञान को स्वीकार करके भी वल्लभाचार्य ने प्रेम की तीव्रता के दृष्टिकोण से अपने संप्रदाय में बालभाव की सेवा का प्रचार किया। भगवदनुग्रह (पोषण) ही भक्ति का आधार है। डा० दीनदयालु गुप्त ने लिखा है, "आचार्य जी ने पहले माहात्म्यज्ञानपूर्वक वात्सल्य भक्ति का ही प्रचार किया था, बाद को उन्होंने. . तथा गोस्वामी बिट्ठलनाथ ने किशोर कृष्ण की युगल लीलाओं का तथा युगलस्वरूप की उपासनाविधि का भी समावेश अपनी भक्तिपद्धति में कर लिया।"[१] राधा कृष्ण की आत्मशक्ति है और उनसे अभिन्न है। लोकरंजन के विचार से माधुर्य भक्ति को मानते हुए भी बालरूपोपासन ही इस मत का अभीष्ट रहा। इस संप्रदाय मे साधनसापेक्ष मर्यादाभक्ति से रागात्मक साधननिरपेक्ष अनुग्रहजन्य पुष्टिभक्ति को उत्कृष्ट माना गया है। सर्ग, विसर्ग की भाँति भक्ति, अनुग्रह पुष्टि आदि प्रभु की लीलाएँ है। अत: लीला का व्यापक प्रभाव, जैसा हम पीछे दिखा आए हैं, सभी कृष्णभक्त संप्रदायों में द्रष्टव्य है। इस संप्रदाय पर गौड़ीय, राधावल्लभीय,

---

१. अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय, पृष्ठ ५२७।

हरिदासी सबका अपने ढंग से प्रभाव पड़ा है। संप्रदायगत कवियों का परिचय नीचे दिया जा रहा है :

(१) ब्रजवासीदास--ब्रजवासीदास का जन्म सं० १७६० के आसपास अनुमानित है। वल्लभ संप्रदाय के भक्त मोहन गोसाईं इनके गुरु थे तथा निवास इनका वृंदावन था। इन्होंने 'प्रबोधचंद्रोदय' नाटक का पद्यानुवाद किया था। माघ शुक्ला ५, सं० १८२७ को इन्होंने 'ब्रजविलास' लेखन प्रारंभ किया था। सभा की खोज रिपोर्ट[१] के आधार पर 'पुरातनकथा' नामक इनके एक अन्य काव्यग्रंथ का पता चला है। इसमें यशोदा ने कृष्ण से रामकथा कही है।

रामकथा की भाँति कृष्णकथा के प्रचार में ब्रजविलास के योगदान का महत्व है। परंतु 'ब्रजविलास' साधारण पढ़े लिखे लोगों में ही प्रचलित है। कवि ने 'उक्तिजुक्ति सब सूरइ केरी' के अतिरिक्त स्पष्ट कहा है--

भाषा की भाषा करी छमियो कवि अपराध।

किंतु कवि ने भाषा की भाषा ही नहीं वरन् कहीं कहीं तो सूरसागर की सारी सामग्री ही उद्धृत कर दी है, अंतर रह गया है तो लघु दीर्घ मात्राओं का। उदाहरणार्थ 'सूरसागर' की दूसरी 'गुरुमानलीला' और ब्रजविलास की मानलीला द्रष्टव्य है। दोनों में प्रारंभ की ६० पंक्तियाँ एक हैं और फिर ६८ पंक्तियाँ अपनी ओर से कहकर तब ३६ पंक्तियाँ सूरसागर से उतार दी गई हैं।[२] कवि की स्वीकारोक्ति की उपेक्षा कर आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'ब्रजविलास' में तुलसी की वाणी की मर्मस्पर्शिता, रामचरितमानसगत जीवनपरिस्थितियों की अनेकरूपता तथा गंभीरता का अभाव पाया। ऐसी तुलना करना शुक्ल जी के ही शब्दों में 'रसज्ञता और भावुकता से ही पुरानी दुश्मनी निकालना है।'[३]

सूर के अतिरिक्त नंददास, तुलसी और बिहारी का भी उनपर प्रभाव है। ब्रजवासीदास की 'सूरई की उक्ति जुक्ति' तथा 'भाषा की भाषा' के परिप्रेक्ष्य में इसे परपुरप्रवेश प्रतिभता (दोष) ही कहेंगे। देखिए--

नंददास--　तब लीनी कर कमल जोगमाया सी मुरली।
अघटित घटना चतुरि बहुरि अधरासव जुरली।
जाकी धुनि तैं अगम निगम प्रगटे बड़ नागर।
नाद ब्रह्म की जननि मोहिनी सब सुख सागर॥

---

१. नागरीप्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट, सन् १९३५-३७, पृष्ठ ४९।
२. सूरसागर, भाग २ (ना० प्र० सभा, सं० २००७ स०), पृ० ११९२ से ११९५, ब्रजविलास गुटका, पृ० ५१४ से ५२२।
३ हिंदी साहित्य का इतिहास (२००९ सं०), पृ० ३६७, ३८५।

ब्रजवासीदास---तब कर लई सकल गुण जुरली । ललित योगमाया सी मुरली ॥
नादब्रह्म की उतपति जासों । निगम अगम उपजै पुनि तासों ॥
तुलसीदास-- कवि न होउँ नहि चतुर कहावौ । मति अनुरूप राम गुन गावौं ॥
ब्रजवासीदास---मैं नहि कवि न सुजान कहाऊँ । कृष्णविलास प्रीति करि गाऊँ ॥
बिहारी--- लोभ लगे हरि रूप के करी साँटि जुरि जाइ ।
हौं इन बेची बीच ही, लोयन बडी बलाइ ॥
ब्रजवासीदास---बेचि दिये मनु आपुही, मृदु मुसकन धन पाइ ।
परी रही हौं बीच ही, लोयन बड़ी बलाइ ॥

ब्रजवासीदास ने सूर के भाव, नंददास की उक्तियाँ तथा गोस्वामी जी के मानस का काव्यरूप अपनाकर कृष्ण के जीवन की विपुल घटनाओं को संग्रथित किया है। अत: 'ब्रजविलास' को एकार्थकाव्य न कहकर कृष्णजीवनपरक आख्यान कहना संगत होगा। भावगरिमा, शैलीऔदात्य तथा चरित्रांकन के अभाव में भी 'ब्रजविलास' कम पढ़ी लिखी भगवन्निष्ठ हिंदू जनता को भावविभोर करता है।

(२) **नागरीदास**---इस नाम के भी हिंदी में कई कवि हुए हैं। एक नागरीदास आगरा निवासी थे और वल्लभाचार्य के शिष्य थे। दूसरे नागरीदास हरिदासी संप्रदाय में हुए हैं। तृतीय राधावल्लभ संप्रदायी नागरीदास 'नेही' उपाधि से विभूषित थे, अत: सबसे अलग है। चतुर्थ नागरीदास चैतन्यमत में दीक्षित है। पंचम प्रसिद्ध नागरीदास कृष्णगढ के महाराज सावंतसिंह थे, जो पौष कृष्ण द्वादशी सं० १७५६ को उत्पन्न हुए थे। १३ वर्षीय किशोर सावंतसिंह ने बूँदी के हाड़ा जैतसिंह को मारा था। पितृनिधन के पश्चात् सं० १७०४ में वे दिल्ली के बादशाह अहमदशाह द्वारा कृष्णगढ के राजा नियुक्त किए गए किंतु उनके भाई बहादुरशाह ने जोधपुरनरेश की सहायता से राज्य प्राप्त कर लिया था। यद्यपि बाद में वे मरहठों की सहायता से विजयी हुए, तथापि गृहकलह ने इन्हें विरक्त किया और वे वृंदावन आकर गुनगुना उठे---

कहा भयो नृपहू भये, ढोवत जग बेगार।
लेत न सुख हरि भक्ति कौ, सकल सुखन कौ सार ॥
मैं अपने मन मूढ तें, डरत रहत हौ हाय।
बृंदावन की ओर ते, मति कबहूँ फिरि जाय ॥

पार्थिव वैभव से विरक्त भगवद्भक्तों ने, 'कृष्णगढ़ के राजा' का आगमन सुनकर उपेक्षा की, परंतु नागरीदास (राधा के सेवक) की शुभागति समझकर उन्हें स्नेहश्लथ होकर भुजाओं में जकड़ लिया, लिखा है---

सुनि व्यौहारिक नाम को ठाढे दूरि उदास।
दौरि मिले भरि नैन सुनि, नाम नागरीदास ॥

वृंदावनदास से नागरीदास पूर्णत संतुष्ट थे। वल्लभकुल के गोस्वामी रणछोड़ जी का शिष्यत्व, अनन्य प्रेमी घनानंद की मैत्री और रसिकबिहारी नाम से कविता करनेवाली उपपत्नी बणीठणी का साहचर्य इन्हें प्राप्त था। भाद्र शुक्ला ३, सं० १८२१ को इन्होने इहलोकलीला संवृत की। इनके प्राप्त ७३ ग्रथो का तीन भागों 'वैराग्य सागर, शृंगार-सागर तथा पदसागर' में विभक्त नागरसमुच्चय नामक सग्रह प्रकाशित हो चुका है। इनमें ६१ पद बणीटणी जी के भी है। ग्रथो के नाम निम्नोक्त है—

अरिल्लपचीसी, अरिल्लाष्टक, इश्कचमन, उत्सवमाला, कविवैराग्यवल्लरी, कृष्णजन्मोत्सव, ग्रीष्मविहार, गुप्तरसप्रकाश, गोधनआगमन, गोपीप्रेमप्रकाश (स० १८००), गोपीवैनविलास, गोवर्धनधारन के कवित्त, गोविदपरचई, चरचरियाँ, चाँदनी के कवित्त, छूटक कवित्त, छूटक दोहा, छूटक विधि, जुगुलभक्ति विनोद (सं० १८०८), जुगुल रसमाधुरी, तीर्थानद, दिवारी के कवित्त, देहदशा, दोहन आनद, नखशिख, निकुजविलास (सं० १७६४), नैनरूपरस, पदप्रसगमाला, पदप्रबोधमाला, पदमुक्तावली, पारायण-विधि-प्रकाश, पावसपच्चीसी, प्रियाजन्मोत्सव कवित्त, प्रीतिरसमजरी, फागखेलन, समेतानु-क्रम कवित्त, फाग गोकुलाष्टक, फागविलास, फागविहार, फलविलास, बसतवर्णन, बाल-विनोद (१८०६). वैनविलास, ब्रजसार, ब्रजबैकुठतुला, भजनानंदाष्टक, भक्तिमगदीपिका (१८०२), भक्तिसार (१७६६), भोरलीला, मजलिसमडन, मनोरथमंजरी (१७८०), साँझी के कवित्त, रसानुक्रम के कवित्त, रसानुक्रम के दोहे, रसिकरत्नावली रामचरित्र-माला, रास के कवित्त, रासरसलता, रेखता, लग्नाष्टक, वनजनप्रशंसा, वनविनोद (१८०६), वर्षाऋतु की माँझ, वर्षा के कवित्त, विहारचद्रिका, वैराग्यवल्लरी, शरद की माँझ, शिखनख, शीतसार, सदा की माँझ, सिगारसार, सुजानानंद (१८१०), माँझ-फूलबीनन-सवाद, हिडोरा के कवित्त, होरी की माँझ और होरी के कवित्त।

वल्लभ संप्रदाय में दीक्षित नागरीदास की रचनाएँ हित हरिवशीय हरिदासी भक्तों की बानियो से मेल खाती हैं। उनकी कविता के कुछ उद्धरणो से उनकी भाषा, वर्णनशैली, भगवन्निष्ठा, रसिकता, प्राकृतिक उपादानो मे संवेदना के हेत्वाभास और आंतरिक अनुभूतियों की मर्मस्पर्शिता प्रकट हो जायगी।

(१) इश्क उसी की झलक है, ज्यो सूरज की धूप।
जहाँ इश्क तहँ आपु है कादिर नादिर रूप ॥
कोई न पहुँचा वहाँ तक, आशिक नाम अनेक।
इश्क चमन के बीच में आया मजनूं एक ॥

(२) हरिजू अजगुन जुगत करेंगे।
परबत ऊपर बहल काँच की नीके लै निकरेंगे।
गहिरे जल पाषान नाव बिच आछी भाँति तरेंगे।
मोम तुरंग चढ़े पालकि बिच, नाहीं पधरि परेंगे।

या हूँ ते असमंजस हो किन, प्रभु दृढ करि पकरेंगे ।
नागर सब आधीन कृपा के, हम इन डरन डरेंगे ।

(३) दयाराम--हिंदी साहित्य के इतिहासकारों के लिये प्राय अपरिचित, परंतु मध्ययुगीन गुजराती के अंतिम किंतु अन्यतम कवि दयाराम ब्रजभाषा के महान् कवि थे। नर्मदा के पावन तट पर स्थित अपनी प्राकृतिक सुषमा के लिये प्रसिद्ध चाँदोद नामक स्थान मे साठोदरा नागर ब्राह्मणकुल मे दयाराम भाद्रपद शुक्ला द्वादशी, शनिवार, स० १८३३ (शाके १६९९) को उत्पन्न हुए थे। महावद पंचमी, स० १९०९ को इनका स्वर्गवास हुआ था। प्रभुराम इनके पिता और राजकौर या महालक्ष्मी इनकी माता थी। 'अनुभव-मजरी' नामक अप्रकाशित रचना मे इन्होने अपना जो विवरण दिया है उससे जन्मसवत् ही नही, इनकी पूरी जन्मकुंडली स्पष्ट हो जाती है।

सवत् अष्टादस तेतीस शके सौलननानू,
भयो अमल पक्षतिति द्वादशि जानिए।
सनीवार नक्षत्र श्रवन मौवी अती गज,
रविदयगत घटी एकतालीस पहचानिए।
दूजे राहु तीजे गुरु शुक्र उभय चौथे बुध,
रवि पचम छठे शनि सप्तम कुभ मानिए।
अष्टम केत, नौ ससि, यह विधि के जन्माक्षर,
कृष्णदास दयाराम ताके उर आनिए।
प्रभुराम पितानुनाम, नर्मदातट विप्र दयाराम,
राजकौर महालक्ष्मी मात, जेनी कीर्ति स्वपुर विख्यात।

दयाराम की धार्मिक वृत्ति का पता उनकी अनेक बार की तीर्थयात्राओं से चलता है। उनकी आयु का तृतीयांश—जीवन के प्राय: २५ वर्ष—तीर्थयात्रा में व्यतीत हुआ था इसीलिये दयाराम खड़ीबोली, मारवाड़ी, उर्दू, फारसी, पजाबी, सिंधी तथा कर्नाटकी आदि भाषाओं के अच्छे ज्ञाता थे। आजीवन अविवाहित रहनेवाले दयाराम परिष्कृत रुचिसंपन्न, सगीतज्ञ तथा पुष्टिमार्गीय साहित्य के पडित थे। 'सूरसारावली' तथा 'कालीय-दमनलीला' का रूपातर गुजराती मे इन्होने किया था। पुष्टिमार्गीय दयाराम कृष्ण के अनन्य भक्त थे। उनकी 'सतसैया' का मगलाचरण इस बात का प्रमाण है—

बल्लभ ते दुर्लभ कहा, सबहो जाके हाथ,
जंगल मे मगल करें, बाबा बिट्ठलनाथ।
श्री राधावर जाहि बस, ता पद पुष्कर खेह,
वदन कर माँगू सदा, ता में नूतन नेह।

दयाराम ने स० १८५८ तथा स० १८६१ में क्रमश: 'मनमरजाद' तथा 'पाकी

मरजाद' गुरु बल्लभलाल से ली थी।[१] ब्रजभाषा में इन्होंने ४१ ग्रंथ रचे हैं। इनके द्वारा लिखित १२,००० फुटकल पदो मे प्रायः ३०० पद हिंदी के है। इनके ग्रंथों की संख्या ३०० से भी ऊपर मानी जाती है।

दयाराम की कृतियो मे 'रसिकरजन' और 'दयाराम सतसैया' उच्च कोटि की हैं। इनके अतिरिक्त 'अनुभवमजरी', 'वस्तुवृंददीपिका', 'श्रीकृष्णस्तवनामृत', 'श्रीमद्-भागवतानुक्रमणिका' आदि भी अच्छी कृतियाँ हैं। 'रसिकरंजन' में काव्यानुरागियों का मनोरंजन करनेवाले २८० छद है। 'सतसैया' ने हिंदी को—तुलसी, रहीम, बिहारी, मतिराम, रसनिधि, वृंद, राम और विक्रम आदि की—आठ सतसइयों मे अपने को मिलाकर हिंदी को 'सतसईनवक' सी निधि अर्पित करने का योग दिया। 'सतसैया' के सबंध मे गुजराती लेखक मोदी के शब्द उसके महत्व को प्रकट करते है, "आली उदयपुर के दरबार मे एक बार किसी चारण ने बिहारीसतसई का एक दोहा गाकर सुनाया। उसी समय किसी दूसरे आदमी ने दयाराम कृत 'सतसैया' से एक दोहा सुनाया। राजा ने पूछा, 'इन दोनो मे कौन सा दोहा अच्छा है !' चारण ने उत्तर दिया कि महाराज दोनो ही दोहे अच्छे हैं। यह सुनकर राजा ने जवाब दिया, 'तुम्हारा कहना ठीक है, पर दयाराम के दोहे बाजी मार ले जायं, ऐसे है। कारण, बिहारी ने लौकिक शृंगार गाया है, जब कि दयाराम ने अलौकिक शृंगार।'[२]

'सतसैया' मगलाचरण, भगवत्स्तुति विज्ञप्ति, प्रेमवर्णन, नायिकावर्णन, रूप-वर्णन, संगवर्णन भक्तिप्रकरण, वादप्रकरण, नाममाहात्म्य प्रकरण, आश्रयप्रकरण, विवेकप्रकरण, शिक्षाविवेक प्रकरण, प्रस्तावप्रकरण, काठिन्यार्थ प्रकरण तथा काव्य-चातुर्यादि १५ प्रकरणा मे विभक्त है।

स्पष्ट है कि दयाराम ने अलौकिक ही नहीं, लौकिक शृगार (प्रेमवर्णन, नायिका-वर्णन, रूपवर्णन) का भी खुलकर वर्णन किया है। उनकी 'सतसैया' मे बिहारी की नायिकाओं जैसी अनेक रूपरग, स्थिति तथा स्वभाववाली नायिकाएँ दृष्टिगोचर होती हैं। हिंदी के प्राचीन कवि रहीम, रसखान, वृंद और बिहारी के द्वारा तैयार की गई पुरानी जमीन पर कवि की प्रसंगकल्पनाओ और उद्भावनाओं के वेलबूटे देखते ही बनते है। परिपाटीमुक्त उपमानों के स्थान पर अभिनव दृष्टातों के प्रयोग आकर्षक हैं। 'सतसैया' के दोहे दैनंदिनी

---

१. डा० अंबाशंकर नागर, गुजरात के हिंदी गौरव ग्रथ (प्रथम स०), पृ० ७१।

२. "....त्यारे दरबो कह्युं तुमारुं कहेवुं खरु छे, पण दयाराम नी सतसैया वधी जाय, कारण के बिहारीए लौकिक शृंगार गायो छे, अने दयारामे अलौकिक शृंगार गायो छे।" (मोदीकृत दयाराम से)

—डा० नागर द्वारा 'गुजरात के हिंदी गौरव ग्रंथ,' पृ० ८४ पर उद्धृत।

जीवनव्यापारों की बाँकी झाँकी प्रस्तुत करते हैं। उनकी कतिपय सूक्तियाँ इतनी प्रभावक और चुटीली हैं कि उनके आधार पर कहा जा सकता है, दयाराम हिंदी के सूक्तिकारों को मात देने की क्षमता रखते हैं।

कविता में जहाँ एक ओर प्रसादगुण विद्यमान है वहाँ काठिन्यार्थ और काव्य-चातुर्य प्रभृति प्रकरण से कवि का दृष्टिकूटपरक चित्रकाव्य के प्रति मोह भी झलकता है। व्रजेंद्र, व्रजभूमि और व्रजभाषा के अनन्य प्रेमी दयाराम के मत में जो लोग संस्कृत को श्रेष्ठ और भाषा को निकृष्ट मानते है, वे मूर्ख हैं, (दोहा ७०७)। वस्तुत वेदवाणी से व्रजभाषा अधिक अच्छी है; कारण कि वेद नारायण के मुख से निद्रावस्था में उच्चरित हुए हैं, पर व्रजभाषा व्रजपति की प्रियवाचा है। कहा तो उन्होंने यहाँ तक है—

स्तुति श्रुतिन की तुम्हें लागत नहि वैसी प्यारी।
जैसी माधुरि लगत प्रीति की गोपिन गारी॥[1]

भक्ति और कवित्व 'सतसैया' में शीर्षस्थ हैं। यों उसमें रीतियाँ नीतियाँ, प्रास्ताविक उक्तियाँ, सूक्तियाँ आदि सभी समाहृत है। नीचे दयाराम का एक कवित्त और कुछ दोहे नमूने के रूप में दिए जा रहे हैं—

(१) पन्हैया बनावे तातें, रैदास राखो पास;
नामा वस्त्र ब्योंते सीवे, कैसे बने त्यागनो।
सेनो नाई क्षौर करे, सिदामा बनावे दाग;
धोबी धोय दे पुशाग, बने नहीं मँगनो।
नरहरि सोनी घहनो, जनीदासी टहल करे,
पिंगला तो नाचे गावे वादित्र अनुरागनो।
दयाराम ब्राह्मण नहि डरपो हो दीनानाथ,
श्रीमुख देखिहो नित्य, कछु नहि माँगनो।

(२) बिन समझ हरिकाव्य सब, श्रीत गद्भुतपन काम।
आरकूट भूखन रुचिर, पै जिमि मिले न दाम॥
दुर्ग, काव्य, कुसमांड, कुच, ऊख कठोर त्या सार।
तन, मन, बानी, तुलसिदल, भल कोमल यह चार॥
प्रेमप्रिया के शिर बसे, वैष्णो जन के बीच।
ताकों कुच बिच राखिये, अजा अलग रही मीच॥

दयाराम के परवर्ती वैष्णव भक्तकवियों में उल्लेख्य है शिहोर निवासी हर्षदास

---

१. श्रीकृष्णस्तवनामृत, छंद ४२।

'हरषजी' मेहता, गिरिधर, जूनागढ़ के संगीतशास्त्री आदित्यराम तथा जामनगरनरेश रिडमल की राजकुमारी प्रतापबाला आदि।

स्वामीनारायण संप्रदाय

गुजरात प्रांत में १८वीं शती के अंतिम चरण मे जब वल्लभ संप्रदाय का प्रभाव धीरे धीरे कम होने लगा और समाज मे कुरीतियों का प्रचार और प्रसार आरंभ हो गया तो वहाँ सहजानंद जैसे दिव्यज्योतिसभूत महात्मा की प्रेरणा से स्वामीनारायण सप्रदाय की स्थापना हुई। जिस प्रकार वल्लभसंप्रदाय के अष्टछापवाले कवियों की अंतः-विपंचियो पर कृष्णप्रेम की राग रागिनियाँ कभी छिड़ी थी, उसी प्रकार गुजरात के मुक्तानंद, ब्रह्मानंद, प्रेमानद, निष्कुलानंद, भूमानंद, देवानंद, दयानद और मंजुकोशानंद आदि अष्टानंदो ने आनंदविभोर होकर आनंदकद कृष्णचंद्र के प्रति अपनी निष्ठा प्रकट की। इन कवियों में मुक्तानंद, ब्रह्मानद और प्रेमानंद की त्रिपुटि का प्रखर व्यक्तित्व गरिमा-मंडित है। नीचे इनका सक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है—

(१) **मुक्तानंद**—कृष्ण के परमभक्त मुक्तानंद सहजानद के गुरुभाई थे। इनका आविर्भावकाल सं० १८१८ से १८८७ माना जाता है। हिंदी में इनकी दो रचनाएँ प्राप्त है, विवेकचितामणि, सत्सगशिरोमणि। कृष्ण के प्रति उनकी अनन्य निष्ठा निम्न शब्दो मे प्रकट है—

> छाँड़ि के घनश्याम और को धरूँ जो ध्यान;
> फाड डारो छाती मेरी कठिन कुठार सों।

(२) **स्वामी ब्रह्मानंद**—डूँगरपुर के खाँणगाँव में स० १८२९ मे उत्पन्न हुए स्वामी ब्रह्मानद की शिक्षा भुज की ब्रजभाषा पाठशाला में हुई। बालक 'लाडूबरोट' जोवन के अरुणाभ प्रहर मे 'श्रीरंग' मे परिणत हुआ और बाद में 'ब्रह्मानद' नाम से अभिहित। इन तीनों ही नामो की छाप रचनाओं मे मिलती है। गुजराती, मारवाड़ी, डिगल और ब्रजभाषा के पडित ब्रह्मानंद संगीतज्ञ थे और पिगलकोविद् भी। 'संप्रदायप्रदीप', 'सुमति-प्रकाश', 'उपदेशचितामणि' तथा 'ब्रजविलास' प्रभृति रचनाओं के अतिरिक्त इनके स्फुट पद प्रसिद्ध है। कविता की बानगी लीजिए—

> कोउक शीश जटा नख दीरघ, डोलत अंग बघबर धारे।
> केश लुँचा अरु कान फटा कोउ, घट बजावत जंगम न्यारे।
> कोउक वीर के वादु कहावत, कोउक दादु ही दादु पुकारे।
> न्यासी अरु बनवासी कहे अरु, और उदासी गुरु मुख गावे॥

(३) **प्रेमानंद स्वामी**—पेमानद का जन्म सं० १८२६ मे गडहा मे हुआ था। स० १९०७ मे इन्हे स्वामीधाम प्राप्त हुआ था। 'प्रेमसखी' इनका सेवाभाव का नाम था। इनकी रचना मे मीराबाई की सी तन्मयता विद्यमान है। ब्रजभाषा मे लिखित सात हजार पदो की संगीतमाधुरी ने गुजरात में उन्हें अत्यंत लोकप्रिय बना दिया है।

गांधी जी की आश्रमपदावली में इनके तीन पद संगृहीत हैं। प्रसादगुणोपेत इनकी सरस रचना का एक उदाहरण देखिए—

बैरन मोरी रे बाजी बाँसुरी।
श्रवन सुनत मोरी सुध बुध बिसरी, नैना बहत है मेरे आँसु री।
बिरहाभरी बाजे बन बाँसुरी, छेदे करेजा रे मोरी पाँसुरी।
कैसी करूँ अब कल न परे मोहे, निकसत नाही रे मोरी साँसु री।
'प्रेमानंद' घनश्याम बिना पिया मोरे, जिया मे ठारी रे प्रेम फाँसु री।

स्वतंत्र कृष्णभक्त कवि (संप्रदायेतर)

(१) **टहकन**—पंजाब प्रांत के प्रख्यात कवियों में टहकन का विशिष्ट स्थान है: आत्मपरिचय के अनुसार जलालपुर निवासी चोपड़ा वंशीय ये श्री गीलदास के पुत्र थे। महाभारत की कथा सुनकर इन्होंने सैनिक वृत्ति छोड दी थी। दशम गुरु का राजकवि और सिक्खमतानुयायी होकर भी ये 'नंदलाल उपासी' थे।[१] इनके लिखे दो ग्रंथ जैमिनीय अश्वमेध, अमरकोश मिले हैं। प्रथम स० १७२६ में लिखा गया, जिसकी पाडुलिपियाँ पंजाब के अनेक स्थानो में मिलती हैं। अमरकोश पुरातत्व विभाग, पटियाला मे सुरक्षित है। अश्वमेध में नायक युधिष्ठिर का व्यक्तित्व कृष्णचरित्र के समक्ष दब गया है। इससे कवि की कृष्णभक्ति का पता चलता है। रचना दोहा, चौपाई, कवित्त, सवैया तथा छप्पय प्रभृति छदों से युक्त है। नीचे एक छद उद्धृत है—

दीनबधु दयासिधु आरत हरत भारी,
    द्रौपदी उबारी तैसे मोहु को उबार लै।
गनका उधारी गज संकट निवारी प्रह-
    लाद हितकारी भवसागर उतार लै।
गौतम तिया नारी चरन रज जुग धारी,
    द्विज हितकारी दुख दारिद निवार लै।
'टहकन' प्रभु नंदलाल दीनन अरु भक्तपाल,
    करुणा कृपाल लाल विरद सँभार लै।

(२अ) **त्रीकमदास**—त्रीकमदास जूनागढ़ में विक्रम की १८वी शताब्दी की अंतिम घड़ियों मे स० १७६१ के आसपास उत्पन्न हुए थे। वे संवत् १८५६ तक विद्यमान थे। इस गुजराती भक्तकवि ने 'डाकोरलीला' तथा 'रुक्मिणीहरण' नामक प्रबंधकाव्य लिखे थे। ब्रजभाषा में लिखे इनके १६० स्फुट पदों का उल्लेख मिलता है। समृद्ध

१. पंजाब प्रांतीय हिंदी साहित्य का इतिहास श्री चद्रकांत बाली पृ० २६२।

भाषा और सुंदर काव्यशैली से युक्त इनका एक सवैया नीचे उद्धृत है जिसमे श्रीरणछोड़ भगवान् कृष्ण के प्रति इनकी अनन्यासक्ति प्रकट है—

औरन उज्वल रंग रुच्यो, हम काले सो प्यार कर्यो सो कर्यो ।
बड देव भजो किन और कोऊ हम बारे सों नेह धर्यो सो धर्यो ।
कोउ भाव भरो तप तीरथ को, हम ये ही सुभाव पर्यो सो पर्यो ।
गुन कीर्तन वह कोऊ और बरो, हम श्रीरणछोड़ बर्यो सो बर्यो ।।

(२) **वीरकवि**—वीरकवि का जीवनवृत्त अज्ञात है। मिश्रबधुओं ने जिनका परिचय 'विनोद' में दिया है वे 'कृष्णचंद्रिका' नायिकाभेद रस विषयक (रचनाकाल सं० १७७६) ग्रंथ के प्रणेता दिल्ली निवासी श्रीवास्तव कायस्थ है। समय के विचार से तो प्रस्तुत कवि वही प्रतीत होते है, किंतु वहाँ उनके 'सुदामाचरित्र' का उल्लेख नही है। मिश्रबधुओ ने उनकी ब्रजभाषा की सराहना करते हुए भी उन्हें साधारण श्रेणी का कवि माना है। किंतु ऐसा नही है।

अंत साक्ष्य से स्पष्ट है कि इनके आश्रयदाता रेवा-तट-स्थित माहिष्मती के महाराज (शिवाजी से भिन्न, जिनका निधन सं० १७३० मे ही हो चुका था) शिवराजसिंह थे। कवि ने १० अंगों में विभक्त 'श्यामसुदामाचरित्र' नामक सुंदर ग्रंथ लिखा जो 'सुदामा-चरित्र' नाम से नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से प्रकाशित हो चुका है। रचनाकाल सं० १७६८ वि० है। लिखा है—

वसु निधि कवि नखतेस मिलि, संवत् सरस पवित्र ।
माघ मास की पंचिमी, जग पर सुखद पवित्र ।

नरोत्तम ने सुदामा की दीनता, कृष्ण की उदारता पर बल दिया था, परंतु 'वीर' ने इन दोनो के साथ अनेक रूपात्मक जीवनाशों का चित्रण किया है, यथा समुद्र, उद्यान, संध्या, प्रभात, पनिहारी, राजविभव आदि। संवादात्मकता और मनोवैज्ञानिकता ने तो चार चाँद ही लगा दिए है। सारांश यह कि भाव और विभाव किसी की उपेक्षा यहाँ नहीं हुई है। वीर मे उच्च कोटि के भक्तों जैसी सहृदयता है रीतिसिद्ध कलाकारो जैसी विदग्धता। तुलसी का काव्यादर्श उसने अपनाया है—

श्रीपति जू के नाम करि अंकित कविता जोइ,
मेरे जान जहान सो सबै सुधा ही होइ ।

संवादों की सरसता केशव की सुध दिलाती है। नरोत्तम से कुछ आगे ही बढ़े हुए 'वीर' कवि हिंदी मे सख्यरस के महान् कलाकार सिद्ध होते है। एक उदाहरण नीचे उपस्थित किया जाता है—

दीरघ फुलाये नाक ठाड़्यो है निशंक देखो,
जरत घरीक द्विज खायो चहै खोपरा ।

मैल को निकेत हेतु करिकै लपेटे पट,
　　बड़े बड़े दाँत गात चीलर को झोंपरा।
बरस असीक को भयो है इन भाँतिन सों,
　　मागत फिरत भीख लीन्हें कर खोपरा।
छोलि छोलि बोलि हरिमीत मुख भाषतु है,
　　डोलत है मूड़ लिये दारिद को टोकरा।

(३) **गुमान मिश्र**—गोपालमणि त्रिपाठी के पुत्र गुमान संभवत उनके किसी मिश्र आस्पदीय संबंधी के दत्तक पुत्र हो गए थे। शिवसिंह सेंगर के आधार पर डा० इंद्रपालसिंह 'इंद्र' ने इन्हें सांडी (जिला हरदोई) निवासी बताकर 'कृष्णचंद्रिका' कार गुमान से अलग कर दिया है।[1] परंतु शैली और कृतित्व से स्पष्ट है कि दोनों एक ही है। वे महोबा के निवासी थे तथा कविवृत्ति के कारण मुहमदी रियासत (जिसकी राजधानी तब मिहाड़ी जिला, हरदोई थी) के अकबर अली के यहाँ आकर रहे थे। उनके गुरु थे सर्वसुख मिश्र। गुमान भक्त से अधिक आचार्य थे, तथापि 'कृष्णचंद्रिका' में उनकी भक्ति प्रकट है। इस ग्रंथ का प्रणयन सं० १८३८ में हुआ। लेखक अपने शोध प्रबंध में इसका महाकाव्यत्व तर्कों के आधार पर प्रमाणित कर चुका है।[2] गुमान प्रथम श्रेणी के कवि हैं। नीचे एक ऐसा अवतरण दिया जा रहा है जिसमें भावभंगिमा भरी भाषा, मानवीय स्थित्यनुरूप प्राकृतिक पर्यावरण तथा नादसौंदर्यभरी शब्दावली आदि सब कुछ विद्यमान है। वर्ण और स्वरमैत्री के साथ वसुदेव की आंतरिक स्थिति उल्लेखनीय है—

हर्बरात बसुदेव बासुदेव लिये सीस,
　　दर्बरात दौर डर कंस बलवान कौं।
घघरात जमुना तरंग तोय बाढ़ि उट्यो
　　झंझनाय झमकनि झिल्लिनि झलानिकौं।
थर्थरात देह भारी भय सों भरत डग,
　　चमचमात चमकि चहूँधा चचलानि कौं।
सर्बरात पौन पय पातन में भर्भरात
　　घर्घरात धाराधर झर्झर झलान कौं।

(४) **देवनाथ**—विदर्भ के सुर्जी नामक ग्राम में सं० १८९१ में उत्पन्न देवनाथ बाल्यकाल में बाहर से 'मल्लविद्या' के उस्ताद, पर मनसा भगवद्भक्त थे। बलविक्रम के

---

१. रीतिकाल के प्रमुख प्रबंधकाव्य, पृष्ठ ३३१।
२. हिंदी के प्रबंधकाव्य (सं० १७००–१९०० वि०), अध्याय ४।

प्रतीक 'हनुमान' इनके आराध्य थे, जिन्होंने, किंवदंती है, दर्शन भी दिया था। जब इनकी विरक्ति का वृत्त नाथपंथी भागवत संप्रदायी गोविंदनाथ ने सुना तो वे इनके पास आए। देवनाथ को ध्यानस्थ पाया। दीक्षा देने की प्रेरणा की बात कही। परंतु देवनाथ हनुमान को ही अपना गुरु मान रहे थे। अनुश्रुति है कि स्वयं हनुमान के आदेश से उन्होंने दीक्षा ली थी। हनुमान का वरदान था कि ये जो कहेंगे कविता बन जायगी। गुरु आज्ञा से वे पुणे, सतारा, नागपुर, काशी, द्वारका, रामेश्वर प्रभृति स्थानों में गए। पुणे मे माधवराव पेशवा की माता द्वारा प्रसाद में निमंत्रित होने पर, श्रीमानों के प्रति विरक्ति दिखाकर वहाँ जाना अस्वीकार कर दिया। आग्रह और दीक्षा लेने के आश्वासन से वहाँ गए, भजन कीर्तन करते रहे, प्रत्यावर्तन के लिये पेशवा ने पालकी की व्यवस्था की। सुर्जी में इनके द्वारा निर्मित एक मठ है। इनके मतानुयायी प्रति शनिवार को भजन और भिक्षाटन करते है।[1]

हनुमानदर्शन, काशी में किसी स्त्री के मृतपुत्र को जीवनदान प्रभृति उनके जीवन की चमत्कारपूर्ण घटनाएँ है। स० १८७८ मे ग्वालियर के एक संकीर्तनमडप मे आग लग जाने से कीर्तन करता हुआ देवनाथ का भौतिक शरीर भी जगन्नाथ मे मिल गया।

स्व० वामनदास जी ओक द्वारा प्रकाशित 'कवितासंग्रह' मे मराठी के अतिरिक्त इनकी हिंदी कविताएँ सगृहीत है। भक्ति से ओत प्रोत इनकी कृतियो की भाषा मे ब्रज, खड़ीबोली, मराठी, अरबी फारसी की पँचमेल मिठाई मिलती है। उनके पदो मे अनुप्रास, उपमा, रूपक का प्रयोग अधिकतर मिलता है। वशीवादन प्रत्येक मास मे होता है और भक्त की आत्मा रूपी गोपी श्रवणातुर हो उठती है। उदाहरण लीजिए--

(१) कैसे मोहन बंसी बजाई।
सुनत धुन मोहे सुध नहिं पाई।
भादों मासो मेघ गड़ागड़ टपके बुंदरि खासी।
रुनझुम रुनझुम झुरमुर झरिया बरखत है घनरासी।
ओढ़ि खुशाल दुशाल पिया सँग रीझहि भोग विलासी।
बिजली सी बसी आई परि मोहि मदन कुमार मगाई।

(२) या जग भरया तो क्या करना जी।
भाऊ बंद औ पूत लुगाई, अत न कोउ अपना।
रैन बसे दिन उठ चले वे, दुनियाँ सब सपना।
देवनाथ प्रभुनाथ निरंजन, निरखत पग धरना।

(५) **ब्रजनिधि**—जयपुर महाराज सवाई प्रतापसिंह 'ब्रजनिधि का' जन्म सं० १८२१ में हुआ था। वीरता और साहित्यानुराग के कारण इनका जीवन शौर्यपरक

---

१. हिंदी को मराठी सतों की देन, ले० डा० विनयमोहन शर्मा, पृ० २०६।

घटनाओं से संकुलित और दरबार विद्वानों तथा पंडितों से मंडित था। इनके ग्रंथ 'ब्रजनिधि ग्रथावली' नाम से प्रकाशित हो चुके है। 'रेखतासंग्रह', 'राम का रेखता' खड़ीबोली मे लिखे गए है। आप इतिहास, धर्मशास्त्र, वैद्यक प्रभृति उपयोगी साहित्यसर्जना के प्रेरक थे। रक्तविकार और अतिसार के कारण स० १८६० मे इनका निधन हो गया। ब्रजी, राजस्थानी मिश्रित ब्रजभाषा का माधुर्य इनके काव्य मे पाया जाता है। रचना का एक उदाहरण द्रष्टव्य है--

> हरि बिनु को सनेह पहचानै।
> सब अपने स्वारथ के साथी, पीर न कोऊ जानै।
> यह जिय जानि श्यामश्यामा के चरन कमल चित ठानै।
> 'ब्रजनिधि' कहत पुरान सकल हरि हित के हाथ बिकानै।

(६) **मंचित**--मऊ महेबा (बुंदेलखंड) निवासी मंचित के सबंध मे इतना निश्चित है कि वे स० १८३६ तक वर्तमान थे। राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर की प्रति मे इनके एक ग्रथ 'कृष्णायन' का परिचय यो है--

> रस गुन वसु वसुधा बरनि, समय सधारन नाम।
> सत्रह सै इक आगरे, साके सुमिर सकाम।

स्पष्ट ही शक सं० १७०१ का अर्थ स० १८३६ वि० हुआ। उनका 'कृष्णायन' मानस शैली में लिखित कृष्णचरितपरक प्रबधकाव्य है। अपनी अनुप्रासमयी भाषा मे, जो सस्कृतनिष्ठ ब्रजी है, यत्रतत्र गोस्वामी जी की पदावली का अनुकरण किया गया है। उनकी सुरभीदानलीला में श्रीकृष्ण का नखशिख, बाललीला, दानलीला आदि सार छद मे सविस्तार वर्णित है। इस ग्रथ मे इक्कीस अध्याय है। दोनों से एक एक अवतरण दिया जा रहा है --

> (१) बाम ओर राजै बरबानी। सुकल सरीर सुभल सुचि मानी।
> बदन सरद ससि बिहँसि बिराजै। अधर मधर बिंबा लखि लाजै।
> कुदकली सी बनी बतीसी। सरद सरोरुह दृग दुति दीसी।
> नख ते सिख लगि बनि मनि गहनै। झलकन झलकि ललक मम रहनै।
>
> —कृष्णायन

> (२) खौर बिसाल भाल पर सोभित, केसर की चित भावै।
> ताके बीच बिंदु रोरी को, ऐसो बेस बनावै॥
> भ्रकुटी बंक नैन खंजन से कजन भंजन वारे।
> मन भंजन खग मीन सदा जे मन रंजन अनियारे॥
>
> —सुरभीदानलीला

(७) **दयालनाथ**—देवनाथ के शिष्य दयालनाथ गुरुनिधन पर सुर्जी अंजनगांव

के देवनाथी मठ के गद्दीधर हुए थे। इनका जन्म मूर्तिजापुर (विदर्भ) मे हुआ। अनेक संततियों के अल्पवय में कालकवलित होने से दुःखदग्ध पिता ने अपने 'हरि' नामक पुत्र को गुरुचरणों में भेंट कर दिया। गुरु के भी गुरु गोविंदनाथ हरि को 'दयाल्या' कहने लगे अतएव बाद मे वे दयालनाथ हो गए। गुरु की कृपा से ये महाराष्ट्र भर में घूम घूमकर अपनी प्रवचनपटुता, कंठमधुरता का परिचय देने लगे। इनकी प्रत्युत्पन्न-मति-संपन्नता का उदाहरण भाषाप्रसंग मे पिछले पृष्ठों में हम दे आए हैं। सं० १८६३ में महान् गुरुभक्त को परमगति मिली।

नाथसप्रदायी होने पर भी उन्होंने हिंदू देवी देवताओं, विशेषकर कृष्ण से संबद्ध पद लिखे है। पदो की शृंगारमाधुरी कृष्णकाव्यधारा की अनुरूपिणी है। इनकी उर्दू मिश्रित महाराष्ट्री हिंदी मे कृष्ण को राधा के चरणों पर झुकाने का एक सजीव चित्र देखिए--

यक मुरली कर की लै भागी। एक मोतनमाला तोरी।
पीतांबर यक सखी ले गई। आसपास सब दे दे तारी।
सरस बनी है नंद को लरको। कहत खिझावत सब नारी।
राधाजू के चरण कमल पर। सीस नमायो कर जोरी।
तब छोरू देवनाथ दयालू। कहो तुम जीते हम हारी।

(८) **कृष्णदास**--विंध्य, गंगा के समीप 'गिरिजापत्तन ग्राम' (जिला मिरजापुर) निवासी का जीवनवृत्त अधिक ज्ञात नहीं है। उनकी तीन कृतियों का पता चलता है: १. माधुर्यलहरी (सं० १८५२), २. भागवतभाषा और ३. भागवतमाहात्म्य। प्रथम ४२० बड़े पृष्ठों की विस्तृत रचना है जो छतरपुर राज्य पुस्तकालय में सुरक्षित है। नीचे एक मनहरण उद्धृत है--

कौन काज लाज ऐसी करै जो अकाज अहो,
बार बार कहो नरदेव कहाँ पाइये।
दुर्लभ समाज मिल्यौ सकल सिद्धांत जान,
लीलागुन नामधाम रूपसेवा गाइये।
बानी की सयानी सब पानी मे बहाय दीजै,
जानी सो न रीति जासो दपति रिझाइये।
जैसी जैसी गही जिन लही तैसी नैनन हू
धन्य धन्य राधाकृष्ण नितही गनाइये।

(९) **रत्नकुँवरि बीबी**--प्रसिद्ध राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिंद' की दादी रत्नकुँवरि का जन्म मुर्शिदाबाद के सपन्न सेठपरिवार मे हुआ था। विदुषी और भगवद्भक्ता बीबी जी के केश सत्तर वर्ष की अवस्था में भी भ्रमरकृष्ण थे और नेत्रज्योति अमंद

थी। ये सं० १८५७ के आसपास विद्यमान थीं। 'प्रेमरत्न' संचित तथा ब्रजवासीदास के ग्रंथों की कोटिवाला 'कृष्णचरित' काव्य इन्होंने लिखा है। रचना से कुछ पंक्तियाँ नीचे दी जा रही हैं—

मणि नख चित बैठत सिंहासन। चँवर छत्र कर गहे खवासन।
भीतहिं भीर नृप वास न पावै। द्वारहिं ते वह फिर फिर जावै।
छत्रपतिन्ह छरिचन्ह बिलगावत। तहँ हम सबकी कौन चलावत।
छपन कोटि यदु छाँड़ि सँगाते। क्यों मानै धाचन के नाते।

(१०) **किशोरीदास**—भक्तवर किशोरीदास अमृतसर के सारस्वत वंश में उत्पन्न कहे जाते हैं। बाल्यकाल से ही पार्थिवता के प्रति विरक्ति हो जाने से वे घर से निकल पड़े और वृंदावन आकर हरिरंग में रँग गए। आपका रचनाकाल श्री चंद्रकांत बाली के शब्दों में सं० १८४३ से १८७० के बीच ठहराया गया है।[१] गोस्वामी तुलसीदास जैसे भक्तों की अभिलाषा निम्नोद्धृत पंक्तियों में परिलक्षित है—

कब मैं या मारग पग धरिहौ।
वेद पुरान संत जो भावत करि विश्वास अचल अनुसरिहौं।
साधन परम धाम मिलिबे के समुख ह्वै का दिन आचरिहौ।
द्वंद्वरहित विज्ञान ज्ञानरति मान अनल कबहूँ नहि जरिहौ।
जग उदास निज इष्ट आगरज निर्भय हरियश विमल उचरिहौ।
श्रीवृंदावन वास निरंतर राधाकृष्ण रूप लखि अरिहौ।
सुनियै लाल कृपाल दयाल दयानिधि यह निश्चय दृढ़ कबहूँ कि करिहौं।
किशोरीदास हरिव्यास कृपाबल महल टहल सेवा सुख भरिहौ।

(११) **रामदास**—उदासीन संप्रदायगत रामकृष्ण के परम भक्त सन्यासी रामदास का संबंध पटियाला दरबार से था, ऐसा कहा जाता है। 'बाणी रामदास' के नाम से प्राप्त इनकी रचना से इनकी भक्तिभावना पंजाबी लिए हुए मधुर ब्रजभाषा में व्यक्त हुई है। रचनाकाल सं० १८८० से सं० १९२० अनुमानित है। रचना का उदाहरण लीजिए—

गोकुल बसैया ब्रजभूमि को फिरैया बन,
धेनु कौ चरैया और भैया बलराम कौ।
काली कौ नथैया कोल कंस को दिवैया पाँव,
सीस पै छुवैया जो पिवैया विषधाम कौ।
गिरि कौ धरैया मान इंद्र को मिटैया कोप,
केसी को दलैया जो कटैया अभिमान कौ।

---

१. पंजाब प्रांतीय हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० ३७२।

'रामदास' कौ रखैया खानपान कौ खवैया,
नंदराम जू को छैया है दिवैया सुरधाम कौ।

मूल्यांकन

शृंगारकाल की प्रमुख साहित्यिक चेतना का प्रस्फुटन शास्त्रीरिक तथा लक्षणग्रंथ प्रणयन के रूप मे माना जाता है। परंतु पिछले पृष्ठो में दिए गए विविध संप्रदायो के भक्त कवियो के विवरण इस बात के साक्षी है कि वह युग जिन शृंगारपूर्ण व्यंजनाओं के लिये 'बदनाम' है उनको इस युग के कृष्णभक्त कवियो ने आतरिक गहराई से व्यक्त कर भक्ति की ओर उन्मुख किया।

सभी सप्रदायो के भक्तकवि राधाकृष्णयुगलकिशोर के उपासक रहे परंतु शनैः शनैः राधातत्व को प्राधान्य मिला। इन कवियो मे वियोगिनी सयोगिनी नायिकाओं के चित्र उरेहनेवालो के समक्ष निंबार्क तथा वल्लभ संप्रदाय की राधा स्वकीया, गौड़ीय में परकीया तथा राधावल्लभ और हरिदासी संप्रदायों मे नित्यविहारिणी का रूप आया।

कृष्णभक्त कवियों के राधाकृष्ण के ध्यान और लीलागान की शैली में सूरदास, नंददास और मीरा की भाँति दार्शनिक चितना, साहित्यिक सरसता और सांगीतिक स्वरमाधुरी का सगम है। काम भौतिक दृष्टि से हेय सिद्ध हुआ, परंतु उसी को साधन रूपी इच्छा का प्रवर्तक मानकर प्रेममदिर का पथप्रदर्शक समझा गया। साधनपरा भक्ति से अलग, विधिनिषेध की जटिलताओं से दूर, इन कवियो ने सहज सरल तथा सरस कविताकल्लोलिनी प्रवाहित की।

काव्यसौष्ठव के विचार से इन कृती कलाकारों का योगदान सर्वथा स्तुत्य है। यदि अष्टछाप के कवियों ने ब्रजभाषा साहित्य को सौषम्य तथा समृद्धि प्रदान की है तो शृगारयुग के इन कृष्णभक्तकवियो ने अपनी भावानुवर्तिनी भाषा, अर्थ-सप्रेक्षण-क्षमता, और सदर्भगकला द्वारा उसे भक्तिभावना तथा लीलागान से परिपूर्ण किया है। चाचा वृंदावनदास, रसिकदास, घनानंद, नागरीदास तथा वल्लभरसिक प्रभृति का वर्चस्व अष्टछाप के सूरदास, नंददास और परमानददास आदि को छोड़कर अन्य कवियो के पास कहाँ ?

कला की दृष्टि से इन भक्तकवियों ने कविताकला के अतिरिक्त भजन कीर्तन द्वारा सगीतकला मे भी अपना कौशल दिखाया है। विभिन्न संप्रदायो मे विभिन्न रागो के हेतु प्रचलित स्वरों से भिन्न स्वरताल के विधान यहाँ मिलते हैं। इनके द्वारा विरचित पद सगीतप्रेमियो, गायकों के हेतु अद्यावधि प्रेरक बने हुए है। इन सप्रदायों की समाजप्रथा—जो अब समाप्त हो चली है—सगीत को सार्वजनीन भाव बनाने में अपूर्व योग देती रही है।

भाषावैविध्य, साँझी और साँझी रचनाओं मे इस युग के कवियो की प्रतिभा अपने ढंग से प्रकट हुई है। कृष्णलीलाओं का बेलबूटों में नानाविध वर्णों में मूर्तन, शब्दों में चित्रण तथा लीलाओं का गायन इस युग की हमारी विशिष्ट उपलब्धियाँ हैं।

चतुर्थ अध्याय

रामभक्ति काव्य

रामभक्ति काव्य की पूर्ववर्ती परंपरा

रीतिकालीन रामकाव्य का अधिकांश स्वरूप रसिकोपासना से प्रेरित है और कहा जा सकता है कि इसपर कृष्णकाव्य की मधुरवृत्ति का विशेष प्रभाव पड़ा। परंतु रामकाव्य की पूर्ववर्ती परंपरा पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट होता है कि उसका बहुमुखी स्वरूप था। बहुत से विद्वान् यह मानते है कि रामकथा के बीज वैदिक वाङ्मय म विद्यमान हैं और उसका कारण यह है कि ऋग्वेद, ऐतरेय-शतपथ-ब्राह्मणों तथा अथर्ववेदीय रामपूर्व तापनीय और रामोत्तर तापनीय उपनिषदों मे राम तथा रामकथा के पात्रों का उल्लेख मिलता है। ब्राह्मण और उपनिषद् ग्रथों में जनक सीता आदि के भी उल्लेख मिलते हैं। परंतु इतना सब होते हुए भी रामकथा का आदि और मूलस्रोत वाल्मीकि रामायण को ही स्वीकार करना समीचीन है। वाल्मीकि की रामकथा भारतीय भूभाग तथा विदेशों में भी इतनी अधिक लोकप्रिय हुई कि मिस्र, तिब्बत, हिंदेशिया, मलाया, कंबोडिया तथा पूर्वी द्वीपसमूह में इसका बहुविध प्रचार हुआ। वाल्मीकि रामायण के अतिरिक्त महाभारत का रामोपाख्यान भी विशिष्ट महत्व का है जिससे राम के दैवी स्वरूप की पुष्टि होती है।

कृष्णस्वरूप के समान ही राम के अवतारी रूप का विकास पुराणो मे हुआ। जिन पुराणों में रामकथा का विशेष महत्वपूर्ण विवरण है वे हैं--हरिवंश पुराण, विष्णु पुराण, वायु पुराण मत्स्य पुराण, ब्रह्मांड पुराण, कूर्म पुराण, वराह पुराण, अग्नि पुराण, पद्म पुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण तथा श्रीमद्भागवत पुराण। यो थोड़ा बहुत उल्लेख तो सभी पुराणों मे मिलता है।

वाल्मीकि रामायण और पौराणिक साहित्य के अतिरिक्त हिंदी रामकाव्य को प्रभावित करनेवाले संस्कृत ग्रथों मे योगवाशिष्ठ और अध्यात्म रामायण प्रमुख हैं। अद्भुत, आनंद और भुशुंडि रामायणों की कथाओं का उतना अधिक प्रभाव नही पड़ा। संस्कृत के ललित वाङ्मय के अंतर्गत रघुवंश, महावीरचरित्, उत्तररामचरित्, हनुमन्नाटक तथा प्रसन्नराघव नाटक ग्रंथो का विशेष रूप से उल्लेखनीय महत्व है।

हिंदी साहित्य के रामकाव्य को हम दो रूपों मे देख सकते है--एक असांप्रदायिक रामकाव्य और द्वितीय सांप्रदायिक रामकाव्य। असांप्रदायिक रामकाव्य अधिकांश

वाल्मीकि रामायण से प्रभावित है और इनमें तुलसीकृत रामचरितमानस, केशवकृत रामचंद्रिका तथा रीतियुग में लिखी गयी सहजरामकृत रघुवंशदीपक जैसी कृतियाँ प्रमुख हैं। सांप्रदायिक रामकाव्य को हम तीन युगों मे देख सकते है। एक आलवार युग (सन् ८०० से ११०० ई०), दूसरा आचार्य युग (११०० ई० सन् से १४०० तक) और तीसरा रामावत युग (१४०० ई० से उपरांत)। आलवार युग में आचार्य सटकोप के प्रभाव से दक्षिण में रामभक्ति का प्रचार रहा। इस समय दक्षिण के कई राजपरिवार भी राम की भक्ति की ओर प्रवृत्त हुए। आचार्य युग में यामुनाचार्य, रामानंद और राघवाचार्य का मुख्य रूप से स्थान है। मूलतः ये विष्णु के उपासक थे, परंतु विष्णु के अवतार के रूप मे राम के स्वरूप का विवेचन किया। हिंदी काव्य पर सबसे अधिक प्रभाव राघवाचार्य के शिष्य स्वामी रामानंद का पड़ा। इनके सप्रदाय का नाम श्री वैष्णव सम्प्रदाय था जिसका मूल-स्थान आज भी अयोध्या है। इन्होने राम को परब्रह्म के रूप मे स्वीकार किया। इनका रामरक्षा ग्रंथ प्रामाणिक माना जाता है। रामानंद की शिष्यपरंपरा मे रैदास, कबीर, अनतानंद आदि हैं। कबीर ने राम की निर्गुणोपासना पर बल दिया जबकि अनंतानंद ने सगुणोपासना पर। स्वामी अनंतानंद के शिष्य कृष्णदास पयहारी और उनके शिष्य अग्रदास के द्वारा हिंदी रामकाव्य का रसिक संप्रदाय प्रारंभ होता है। नाभादास जी इन्हीं अग्रदास के शिष्य थे।

रीतिकालीन साम्प्रदायिक रामकाव्य का विकास इसी परंपरा का है। इस परंपरा के अतिरिक्त गुरु गोविंदसिंह, सहजराम, मुरलीधर मिश्र, मधुसूदनदास आदि कवि भी रामकाव्य के प्रणेता के रूप मे हमारे समक्ष आते है जिनका विवरण हम आगे दे रहे है।

रामभक्ति काव्य के कवि और उनका परिचय

'कृष्णभक्ति काव्य' शीर्षक पिछले अध्याय मे हम यह सिद्ध कर चुके है कि शृंगार-युगीन कृष्णभक्त कवियों मे चाचा हितवृंदावनदास, रसिकदास, घनानंद, नागरीदास तथा बल्लभरसिक का कृतित्व जहाँ सूरदास, नंददास तथा परमानददास के काव्यत्व की कोटि मे आता है वहीं अष्टछाप के अन्य कवियों से उत्कृष्टतर भी है। अतः रीतिकाल के संबंध मे प्रसिद्ध आलोचक डा० नगेंद्र का यह मत कि रामचरितमानस के स्थान पर अब 'ब्रजविलास' की ही रचना हो सकती थी, सूर और नंददास की प्रतिभा सर्वथा लुप्त हो चुकी थी[1], चिंत्य है।

और इस युग की कृष्णपरक साधारण रचना 'ब्रजविलास' के स्थान पर गुमानकृत 'कृष्णचंद्रचंद्रिका' का उल्लेख आवश्यक था। रामभक्त कवियों में सहजराम सदृश भक्त-कवि ने 'मानस' के आनुगत्य के साथ अति महत्वपूर्ण 'क्वचिदन्यतोऽपि' कहा है, अतएव

---

१. रीतिकाव्य की भूमिका (प्रथम संस्करण), पृ० २१।

सुधी समीक्षक डा० भगीरथ मिश्र का निम्नांकित वक्तव्य अंशतः ही स्वीकरणीय है—

'उनके (गोस्वामी जी के) मानस की पूर्णता और प्रभाव को देखकर किसी ने विशेष रूप से इसको लेकर लिखने का साहस न किया....'[1]

रामभक्ति काव्य की गति का पूर्वपृष्ठों मे जो उल्लेख हुआ है उससे रामभक्त कवियों की सामान्य विशेषताओं का परिचय मिल जाता है। रामभक्त कवियों को तीन वर्गों मे विभक्त किया जा सकता है—

१—रसिक रामभक्त कवि

२—रसिकेतर रामभक्त कवि

३—अन्य (सिक्ख) मतावलम्बी रामभक्त कवि

प्रत्येक वर्ग के प्रमुख कवियों का विवरण अग्रत प्रस्तुत है।

१—रसिक रामभक्त कवि

(१) **बालकृष्ण 'बालअली'**—बालकृष्ण नायक ने पहले रामानुज संप्रदाय मे दीक्षित होकर 'अहोबल' गद्दी की परंपराओं का निर्वाह किया। परन्तु आचारियों के बाह्य विधान से वे असंतुष्ट रहे। स्वप्न मे अग्रदास जी को सीतापरत्व उपदेश मिला फलतः वे रैवासा गद्दी के आचार्य चरणदास के शिष्य बन गए। ध्यानमंजरी की पुष्पिका मे लिखा है—

श्री विनोद श्री ध्यानदास जगजीव उधारक,
श्रीचरणदास जग तोष करन, जग जस विस्तारक।
तिनके अनुग विचारि रचो यह संत जनन हित,
या करि होइँ प्रसन्न नवल नागर नागरि नित।

प्रकट है कि बालअली अग्रदास के शिष्य विनोदस्वामी के प्रशिष्य चरणदास के शिष्य थे। अन्तःसाक्ष्य के आधार पर इनका कविताकाल सं० १७२६ से सं० १७४६ अनुमानित है।[2] अयोध्या में युगलस्वरूप दर्शन के लिये आगत भक्तिभावित बालकृष्ण को सीता ने सखियों मे स्वीकृत कर 'बालअली' बना दिया। रसिकप्रकाश भक्तमाल से इसकी पुष्टि होती है—

---

१. हिंदी साहित्य का उद्भव और विकास, द्वितीय खंड, पृ० ४८।

२. सत्रह सै षडविंश बरस मास पुनि फाल्गुन,
शुक्लपक्ष पचमी अमल सुभवार जन्मदिन।
तेहि अवसर यह ध्यान मजरी प्रगट भई है।
—पृ० ५४।

रूप सो छपायो उर विरह सतायो,
तब प्रगट लड़ैती छबि हेरी कृपामई है ।
भयो मन भायो बाल अली नाम गायो, उर-
अति सुख छायो सब स्वामी गीति लई है ।
—पृ० २६ ।

रैवासा गद्दी के इस आचार्य ने आठ पुस्तकें लिखी है । १. ध्यानमंजरी, २. नेहप्रकाश, ३. सिद्धात-तत्व-दीपिका, ४. दयालमंजरी, ५. ग्वालपहेली, ६. प्रेमपहेली, ७. प्रेमपरीक्षा तथा ८. परतीतपरीक्षा ।

(२) **बालानंद**—वैष्णवो के चतु.सप्रदायो के सगठनकर्त्ता, रामभक्तो में प्रख्यात 'लश्करी शाखा' के जनक, मात्र १६ वर्ष की वयस मे रामादल बनाकर दशनामी शैवो को मुँहतोड़ उत्तर देनेवाले राम के बाल रूप के उपासक बालानद शक्ति और शौर्य की दृष्टि से रामानदी सप्रदाय के गुरु गोविंदसिह थे । राजस्थान के किसी ग्राम मे सं० १७१० वि० मे उत्पन्न बालानंद विरिजानद के शिष्य थे । राम के बालरूपोपासक होते हुए भी उनके ऐश्वर्य तथा माधुर्य रूप मे भी उनकी श्रद्धा थी । उनके फुटकल पद ही सग्रहो मे मिलते है, कोई स्वतत्न कृति का पता नही चलता । उनका एक पद देखिए—

सुमिरौ मन राम सच्चिदानंद ।
जो सुमिरै त्रयताप हरतु है परत न जम के फंद ।
ऋषिमख राखि निशाचर मारे अभय किये मुनिवृ द ।
पदरज परसि सिला भई सुंदरी धाय उबारे गयंद ।
जनक स्वयंबर पावन कीन्हों तोड़ो धनुष प्रचंड ।
सियाजी बिवाहि अवध हरि आये घर घर भयो है अनद ।
मात कौशल्या करत आरती निरखत सुख के कंद ।
जय जयकार भयो सुरपुर मे गावत बालानंद ।

(३) **छत्रसाल**—चपतिराय के घर छत्रसाल सं० १७०६ में उत्पन्न हुए । चंपतिराय के निधन के बाद १५ वर्षीय छत्रसाल ने औरंगजेब की नौकरी करते हुए शिवाजी से लोहा लेकर देवगढ़ विजय किया था । परंतु कृतघ्नी बादशाह ने विजय का श्रेय बहादुर खाँ को दिया । फिर क्या था ? छत्रसाल विरक्त हुए और शिवाजी से मिले । वीरपूजा की भावना से प्रेरित लालकवि ने 'छत्रप्रकाश' में इनकी विजयों का विशद वर्णन किया है, जो पूर्णत: विश्वसनीय है—इसलिये कि छत्रसाल की पराजयों का भी उल्लेख उसमे किया गया है । सैयद अफगन से वे पराजित हुए थे ।

इनके रचे आठ ग्रंथ, जो वियोगीहरि द्वारा संपादित 'छत्रसालग्रंथावली' में संगृहीत हैं, ये हैं—१. रामावतार के कवित्त, २. रामध्वजाष्टक, ३. हनुमानपचीसी, ४. श्रीराधाकृष्ण पचीसी, ५. कृष्णावतार के कवित्त, ६. महाराज छत्रसाल प्रति

अक्षर अनन्य के प्रश्न, ७. दृष्टांती और फुटकर कवित्त तथा ८. दृष्टांती तथा राजनैतिक दोहा समूह।

छत्रप्रकाश अध्याय २३ तथा लाल की हस्तलिखित अप्रकाशित पोथी 'छत्रविलास' से इनकी राम, कृष्ण दोनों की मधुरोपासना का पता चलता है। प्राणचंद द्वारा ये धामी संप्रदाय में दीक्षित हुए थे। 'राममखे' को इनके वंशजों द्वारा कई गाँव माफी देने की इच्छा इनके परंपरागत रामरूप की मधुरोपासना का इतिहास कहती है। डा० भगीरथ मिश्र ने तो इन्हें कृष्णभक्त कवियों में ही स्थान दिया है, परंतु कृष्णभक्ति की अपेक्षा ये रामभक्त अधिक हैं। नीचे इनका एक छंद दिया जाता है जिससे इनकी कवित्वशक्ति का कुछ अनुमान हो जायगा—

पलय पयोनिधि लौं बहरा लगन लाग्यौ,
  लहरा लगन लाग्यौ पौन पुरवैया कौ।
भारी बहुभाँझरी भरी है भूरि भारनि सों,
  धीर न धरात छत्रसाल से खिवैया कौ।
महा पारावार परी अलख अगार माँझ,
  कीजिए सम्हार आप आसु यहि नैया कौ।
बहन न पैहै घेरि घाटहिं लगैहै फेरि
  अमित भरोसो मोहि राम रघुरैया कौ॥

(४) **रामप्रियाशरण**—ये जनकपुर के महंत थे। अधिकांश मैथिलों की भाँति ये भी सीता जी को अपनी सहोदरा मानते थे। 'युगलप्रिया' के अनुसार माधौपुर (मिथिला) में इनकी कुटी थी। इनका आविर्भावकाल सं० १७६० है। इनकी 'सीतायन' में १४ प्रकार के छंद प्रयुक्त हैं। ११ प्रकार की राग रागिनियों के उल्लेख के साथ ज्योतिषशास्त्र तथा काव्यशास्त्रज्ञान का आभास भी मिलता है। सीतायन में अनपेक्षित विस्तार (४४१ पृष्ठ), ऊबानेवाली नामावली, अतिशय इतिवृत्तात्मकता, सीता की शृंगारवर्णना, भाव से लेकर अन्य कवियों की शब्दावली तक का अपहरण आदि दोष हैं। फिर भी खड जीवन को लेकर चलनेवाले कवि ने सभी को कथासूत्र में येनकेनप्रकारेण पिरोए रखा है। सीतायन सात कांडों—बालमाल, मधुरमाल, जयमाल, रसमाल, सुखमाल, रसाल तथा चंद्रिकाकांड में विभक्त है। पर ग्रंथ केंद्रित है सीता की बाल तथा बिहार लीलाओं में ही। 'प्रेमकली' नाम के इस साधक की रचना का नमूना देखिए—

चली हास की बैन लाल तुम राके जाए,
कौशल्या है गौर, राय पुनि गौर सुहाए।
तुमको देखत श्याम ताहि ते शंका आई।
लक्ष्मण काहे गौर श्याम तुम देहु बुझाई।

(५) **जानकीरसिकशरण 'रसमाल'**—प्रमोदवन, अयोध्या के ये महात्मा

'रसमाल', 'रसमालिनि', तथा 'रसमालिका' छापों से युक्त रचनाएँ करते थे। १६ छंदों तथा १४ अध्यायों मे विभक्त सीताराम के अष्टयाम प्रसंग (बनविलास, जलविहार, रास, सभा, भोजन, शयन आदि) अवधीसागर मे लिखे हैं। शृगारी वृत्ति होते हुए भी कविता इनकी सुदर है। 'अवधीसागर' के रचनाकाल स० १७६० से इनका आविर्भावकाल उसी के आसपास अनुमानित है। उदाहरण---

झूलै सिय पिय रग हिडोरैं।
प्रीतम के संग रमक बढ़ावत रगभरी सखियाँ चहुँ ओरैं।
घन गरजत बिजुली अति चमकत बरसत रिमझिम पवन झकोरैं।
'रसमालिनि' प्रीतम मनमोहन बोलत खग रव मोर चकोरैं।

(६) रूपलाल 'रूपसखी'---बालअली के शिष्य रूपलाल रसिकप्रकाश भक्तमाल के अनुसार दिल्ली के दीवान थे। 'रामरसिकावली' मे ये दिल्ली के दीवान के पुत्र कहे गए है। औरगजेब के बाद मुगल बादशाहो की वृत्ति हिंदू पर्वो---विशेषकर होली मनाने की हो गई थी। उन्ही मे से किसी एक के शाही महल मे रसोन्मत्त 'रूपसखी' ने होली मनाई और आनद के साथ शाश्वत रसपान कर लिया। रूपलाल नाम के दीवान की स्थिति का कोई प्रमाण इतिहास मे नहीं मिलता। रूपसखी की 'होरी' नामक रचना मिली है। उदाहरणार्थ कुछ दोहे द्रष्टव्य है---

फागुन भागन करि बढ्यो, अलिन बढ्यो अनुराग।
अब हिलिमिलि हम खेलिबो, लली लाल सँग फाग॥
लालन लालन की जरी, भरी रंग पिचकारि।
असि छांड़ी छवि सो बिहँसि, सिय उर ओर निहारि॥
दुरि विमला तब दौरि कै पिय सिर केशरि ढोरि।
हो हो होरी कै उठी, हिलिमिलि नवलकिशोरि॥

(७) रामप्रपन्न (मधुराचार्य) 'मधुरप्रिया'---कील्हस्वामी की पाँचवी पीढ़ी में गलता के गद्दीधर रामप्रपन्न ने वेदोपनिषद् तथा वाल्मीकि रामायण आदि आर्ष ग्रथो से रामचरित्र में शृगारभावना की प्राचीनता प्रमाणित की। गलता मे रास का आयोजन, रास विरोधियो से तर्कतीक्ष्ण शास्त्रार्थ द्वारा रसिक संप्रदाय का उन्नयन किया। एक जनश्रुति के अनुसार जयपुरनरेश रामसिंह द्वारा आयोजित यज्ञ मे पत्नीसहित राजगुरु बनने के हेतु विवाह करने के लिये बाध्य किए गए रामप्रपन्न ने जयपुर छोड़कर चित्रकूट मे इष्टदेव की शरण ली। तब से रसिक सिद्धात और रसिक साहित्य का प्रचार और प्रणयन इनके जीवन के लक्ष्य हो गए। हिंदी में फुटकल पद ही मिलते है। संस्कृत में लिखे इनके चार ग्रथ हैं---१. भगवद्गुणदर्पण, २. माधुर्यकेलिकादंबिनी, ३. वाल्मीकि रामायण की (शृंगारपरक) टीका तथा ४. रामतत्वप्रकाश।

उन्होंने मर्यादावादियो को 'लोकवेदकिंकर' कहा है। उनकी दृष्टि में मर्यादा का ढिंढोरा पीटनेवाले मधुररस के बलिदानमय आनंद को नहीं समझ सकते।

सुंदरमणि संदर्भगत वाल्मीकि रामायण के श्लोकों की व्याख्या इनके गहन अनुशीलन तथा मल्लिनाथी मेधा का प्रमाण है। इनकी रचनाएँ प्रायः शृंगारी प्रतीत होती है। उदाहरण देखिए—

लाड़िली मान न कीजै होरी के दिन कौन सिहारी बान।
बरस बरस को खेल छाँड़ि तुम बैठी हो भौंहे तान।
मान सिखावन लेहु हमारी कहत जोरि जुग पान।
'मधुरप्रिया' प्रिय पास चलो उठि मंदिर केलि की दान।

(८) **सूरकिशोर**—जयपुर के सनाढ्य ब्राह्मणवंशोत्पन्न सूरकिशोर कील्हगस्वामी के पौत्रशिष्य और अग्रदास के गुरुभाई थे। इनका आविर्भावकाल सं० १७६० के आसपास अनुमानित है। रामप्रपन्न के चित्रकूट जाने के मूलकारण राजा रामसिंह के व्यवहार से क्षुब्ध ये भी गलता छोड़कर 'लोहार्गल सीकर' के किसी संतसमाज में सम्मिलित हुए थे। जानकी के प्रति पुत्रीभाव के कारण उनकी मूर्ति का साथ रखना, उनके लिये मिठाई, खिलौने आदि क्रय करना प्रभृति इनका व्यापार साधुओं को न भाया। उन्होंने जगन्माता की प्रतिमा छीनकर इन्हें उद्विग्न कर दिया। फलतः वे मिथिला आ गए। रसिकप्रकाश भक्तमाल के तथा उनके ग्रंथ साक्ष्य के अनुसार सीतामूर्ति पुनः प्रकट हुई :

मिथिला कलिकाल असी सिगरी तब जानकी जू भेंट दै उधरो।

अपने को जनकबंधु, रामश्वसुर मानने के कारण ये अयोध्या में अन्नजल न ग्रहण कर लकड़मंडी के निकट रुकते थे। एक बार अयोध्या में पुत्री की भेंटवेला में सीताविग्रह को मलिनवसना तथा निरलंकृता देख विक्षुब्ध सूरकिशोर उलटे पाँव मिथिला आए। खिन्नपिता के समक्ष दिव्याभ पुत्री ने प्रकट होकर रुदन किया। इस घटना से संबद्ध इनका छंद वात्सल्य रस के विवरण में पीछे उद्धृत किया जा चुका है। भक्त की विनयपूर्ण अविनय तथा लोक-मर्यादा-निर्वाह-परक प्रसिद्ध पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

मिथिला बसि राम सहाय चहै तो उपासक कौन करै भल की।
जिनके कुल बीच सपूत नहीं करैं आस दसानन के बल की॥

इनके छंदों से वात्सल्य भाव तो छलकता ही है, समसामयिक सामाजिक तथा राजनीतिक वातावरण भी झलकता है। उनकी एकमात्र उपलब्ध रचना 'मिथिलाविलास' का एक सवैया देखिए—

नृप के गृह बाल बिहार करै सिय को पद रेनु जहाँ लहिये।
मुनिवृंद उपासक रामविवाह सोई निज ठौर हिये गहिये।
कहि 'सूरकिशोर' विचार यही हिम वो तप वो बरसो सहिये।
चितरो चखिकै, फलवो भखि कै मिथिला महँ बाँधि कुटी रहिये।

(९) **मामा प्रयागदास**—भावना से जानकी के पितृव्य थे सूरकिशोर अतः

उनके शिष्य प्रयागदास अपने को सीतानुज मानते थे। फलतः दास्यनिष्ठावाले अयोध्या-वासी इन्हें मामा कहते थे और वहाँ के सख्य भक्तों तथा इनके बीच मधुर गालियों का आदानप्रदान होता रहता था। प्रसिद्ध मराठी लेखक मामा वरेरकर की भाँति मामा इनके नाम का अभिन्न अंग हो गया था। इनका अभिजन अज्ञात है पर 'रसिकप्रकाश भक्तमाल' के अनुसार काशी, प्रयाग होते हुए मिथिला पहुँचने पर बाल वीतराग प्रयाग सूरकिशोर के शिष्य हुए और वहाँ नर्म सखाओं के मध्य क्रीड़ाकलाप करते रहे। एक बार गुरु ने कर्क-चतुर्थी पर्व पर कन्या के लिये 'करवा' भेजा। बहन को 'चिउरा' और मिष्ठान्न भेजकर 'करवा' माँगकर वे, नीम के प्रति निमि-कुल-परंपरागत प्रेम प्रकट करते हुए उसके नीचे रहने लगे। भावनातिशयता का मुखरण यों हुआ--

नीम के नीचे खाट परी है खाट के नीचे करवा।
'परागदास' अलबेला सो हैं रामलला के सरवा।

बनवासप्रसंग, इनकी व्याकुलता, पंचवटी तक की विचित्र यात्रा का संकेत सख्य रस के अंतर्गत पीछे किया जा चुका है। पिष्टपेषण से बचकर यहाँ 'जनकपुर के सखा' संप्रदाय के प्रवर्तक प्रयागदास की वाणी के सहज उद्गार में उनकी अभिलाषा देखिए--

परागदास जो पीपर होते राघो होते भुतवारे।
आठ पहर छाती पर रहते वे दसरथ के पुतवारे।
धुनि धुनि केसवा कहे महेसवा पार न पावै सेसवा।
परागदास पहलदवा के कारन रघवा होइगे बघवा।

(१०) **रामसखे**--विक्रम की १८वीं शती के प्रथम चरण में जयपुर के अभि-जात विप्रकुल में उत्पन्न रामसखे माध्वसप्रदाय के केंद्र उडुपी में आचार्य वसिष्ठतीर्थ द्वारा दीक्षित किए गए। वहाँ से ये अयोध्या आए। वासुदेवघाट पर इनकी रसिकसाधना का प्रतीक 'नित्यगाधर कुंज' नामक मंदिर आज तक विद्यमान है। अयोध्या से चित्रकूट आकर कामदवन में १२ वर्ष तक 'करिया नृपतिकिसोर' अपने चितचोर के लिये ये तरसते रहे। साधना तथा सिद्धि के मध्यवर्ती व्याघात के मिट जाने पर 'चित्रकूट की खोर' में भगवान् ने इन्हें दर्शन दिए थे।

पार्थिव विभव से इन्हें घोर विरक्ति थी। इसके दो उदाहरण मिलते है। ये संगीत विद्या में निष्णात थे। एक गवैए को अपने द्वारा विरचित पदों के गायन में निपुण कर दिया। गायक लखनऊ के नवाब (ऐतिहासिक उल्लेखों के अनुसार ये आसफुद्दौला होंगे, क्योंकि इनका निधन २१ सितंबर, सन् १७९३--वि० स० १८५०--को हुआ था) के यहाँ गया। संगीतप्रिय नवाब ने रामसखे के 'प्यारे तेरी छवि पर वारियाँ' तथा 'ये री कोऊ मोहि बताओ देखे कहूँ राम सुजान' टेकवाले दो पद सुनकर, रामसखे का पता पूछकर उन्हें लखनऊ आकर रहने के फलस्वरूप एक लाख रुपया प्रति वर्ष बधान देने का

आश्वासन दिया। परंतु संतों का यदि 'सीकरी से कुछ काम' न था तो रामसखे का लखनऊ और बंधान से क्या प्रयोजन होता !

इसी प्रकार पन्नानरेश हिंदूपति ने चित्रकूट में इनके दर्शन से कृतार्थ हो अपनी कृतज्ञता पान के बीडे में अनेक गाँवों की माफी की सनद की भेंट द्वारा प्रकट करनी चाही परंतु रामसखे ग्रामसखे न बने। ख्याति के साथ चित्रकूट में भीड़ लगने लगी। रामसखे सं० १८३१ में मैहर आए। पेशवाओं द्वारा अधिकृत मैहर के प्रबंधक रूपसिंह ने शिष्यत्व ग्रहण किया और मैहर पूर्वाधिकारी को लौटा दिया। यह पूर्वाधिकारी रामसखे की जन्मभूमि जयपुर के दुर्जनसिंह थे।

अयोध्या और मैहर मे सख्य धर्म की परंपराएँ अक्षुण्ण है। दिन में नर्मसखा भाव के कारण राम के क्रीडाकलाप में, रात्रि में सखीभाव के कारण रासलीला मे सम्मिलित होते हैं। उनकी स्वीकारोक्ति देखिए,--

सखी सखा द्वै भाव जु राखै, मधुरे चरित राम के भाखै।[1]

उनके दस ग्रंथ ये है--१. द्वैतभूषण, २. पदावली, ३. रूपरसामृत सिंधु, ४. नृत्यराघवमिलन दोहावली, ५. नृत्यराघवमिलन कवितावली, ६. रास्यपद्धति, ७. दानलीला, ८. बानी, ९. मंगलशतक तथा १०. राममाला।

रचना उनकी परम सशक्त है। उदाहरण लीजिए--

रसिक अनन्य यहै सुखदानी। राम रूप बिन लखहि न आनी।
छवि आसक्त रहहि मन माही। क्षण पल राघव बिसरत नाही।
हेरि कोऊ सुंदर नर नारी। राम वियोग करहि अति भारी।
वेष नृपति छैलन अमवारी। आवत राम ध्यान छविकारी।
मुनि कोकिल कर कूक मृदु नटनि मयूर निहारि।
रामसखे मन करत भष, मिलन राम छवि वारि॥

(११) **प्रेमसखी**--डा० रामकुमार वर्मा ने इनका समय सं० १७९१ तथा मिश्रबंधुओं ने सं० १८८० लिखा है।[2] 'शिवसिंह सरोज' के अनुसार इनका आविर्भावकाल स० १७९१ है[3], जो इनके समसामयिक संत रामप्रसाद (स० १७६०-१८६७) और अवध के प्रथम नवाब सआदत खाँ बुरहानउलमुल्क (शासनकाल १७८९-१८९६) के आवि-

---

१ नृत्यराघवमिलन कवितावली, पृ० ११९।

२ अ--हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (प्र० सस्करण), पृ० ६८४।
आ--मिश्रबंधुविनोद, द्वितीय भाग, पृ० ६२०।

३. शिवसिंह सरोज, पृ० ४४६।

भक्तिकाल की संगति में है। इनकी सिद्धि का प्रमाण है शाह सआदत खाँ द्वारा रामप्रसाद से उनके अपने सदृश भक्त का नाम पूछे जाने पर रामप्रसाद का 'प्रेमसखी' का नाम बताना। रामसखे की भाँति प्रेमसखी ने भी नवाब की सवा लाख की खिलत लौटा दी थी।

शृंगवेरपुर के समीप विप्रकुलोद्भूत प्रेमसखी[1] ने बाल्यकाल में ही चित्रकूट के महात्मा रामदास गूदर से दीक्षा ली थी। जब ये मिथिला गए तो माता ने प्रकट होकर सखी रूप में अपनाया। तब से ये 'दिव्य दंपति' की विहारलीला में भावोन्मत्त रहने लगे। होली, कवित्तादि प्रबंध तथा १३६ कवित्त सवैयों वाला श्री सीताराम नखशिख इनके तीन ग्रंथ हैं। भक्तिभावना और सरसता इनके काव्य की विशेषताएँ हैं। रचना के उदाहरण देखिए—

सेस महेस औ बानी बिरंचि थके गुन गावत जेते प्रबीन हैं।
सेइ रहे पद की रज को सनकादिक जो पद चाहै नवीन हैं।
प्रेमसखी मनबुद्धि मिलिंद रहे सिय के पदपंकज लीन हैं।
देखत पाँयन की महिमा सुख पाइ नितंब भए अति पीन हैं।

(१२) **हर्याचार्य 'हरिसहचरी'**—मधुराचार्य के शिष्य हर्याचार्य हिंदी के साथ संस्कृत के भी असाधारण कवि थे। उनके 'जानकीगीत' को पढ़कर जयदेव की सुध आ जाती है। रसिकसाहित्य की संस्कृत गीतकृतियों में वह निश्चय ही अत्युत्तम है। गुरु द्वारा आदिष्ट हर्याचार्य ने चित्रकूट में गुरु को छोड़ गलता गद्दी का आचार्यत्व स्वीकार किया था। हिंदी के सूर आदि अन्य कवियों की भाँति इनकी कई छापें मिलती हैं, 'हरि-सहचरी' 'जनहरिया', 'हरि' तथा 'हरिकवि'। हिंदी रचनाओं का एक उदाहरण नीचे दिया जा रहा है—

जनक लली को सोहिलो गाऊँ।
धन्य जनक धनि रानी सुनैना निरखि लली मुख नयन जुड़ाऊँ।
या रघुकुल प्रगट किया है सुरनर मुनि जाको सुमिरत नाऊँ।
'हरिसहचरि' वारी तन मन धन भक्ति बधाई नित नई पाऊँ।

(१३) **कृपानिवास**—'भक्तिचरित्र संग्रहों' में बहुचर्चित कृपानिवास ने संप्रति आचार्य रामचंद्र शुक्ल के 'एक कल्पित व्यक्ति' की स्थिति प्रमाणित कर दी है[2]। डा०

---

१. 'बुंदेलवैभव' के लेखक श्री गौरीशंकर द्विवेदी के अनुसार ये ओड़छा निवासिनी स्त्री भक्त थीं। डा० सावित्री सिनहा ने भी इस तथ्य का समर्थन किया है।—मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ (१९५६), पृ० २२२।

२. हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ १५४।

भगवतीप्रसाद सिंह ने अयोध्या के रसिक संत रामकिशोरशरण से प्राप्त सामग्री से भी कुछ तथ्य संगृहीत किए हैं[1] जिनके आधार पर ये दाक्षिणात्य और श्रीरंगोपासक सिद्ध होते हैं। सीतानिवास तथा गुणशीला की पुत्र ... नाम था श्रीनिवास। बाल्यकाल में आनंदविलास द्वारा दीक्षित यह गुरुधाम ... रसिक संप्रदाय में दीक्षित हुआ था। आगे चलकर ये रैवासा में अग्रदासजी की गद्दी में भी दीक्षित हुए थे[2]। मनभावन से इन्होंने भेंट की थी। रासरास में मधुराचार्य के शिष्य प्रियाचार्य के साथ आनंद लेते थे। मिथिलायात्रा इन्होंने यहाँ से की थी। चित्रकूट में स्थायी निवास करते हुए रसिक साहित्यसर्जना इन्होंने की। उज्जैन जाने पर ... दामोदरप्रपन्न रामानुज से भेंट करते हुए ये मातृभूमि पहुँचे थे।

अंतःसाक्ष्य के आधार पर इनकी रचनाकाल तथा उपस्थिति विक्रम की १९वीं शताब्दी का पूर्वार्ध है, कारण कि रत्नसार ग्रंथ की रचना सं० १८३५ में हुई थी। महाराज रघुराजसिंह द्वारा प्रस्तुत तथ्य कृपानिवास को दाक्षिणात्य, मधुरोपासक प्रसिद्ध भक्त कवि होना प्रमाणित करते हैं।[3]

चित्रकूट के जानकीकुंड के समीपस्थ स्फटिकशिला पर कृपानिवास ने अखंड कृपानिवास प्राप्त किया। उनकी १८ रचनाएँ ये हैं—१. गुरुमहिमा, २. नित्यसुख, ३. प्रार्थनाशतक, ४. रहस्योपास्य, ५. लगनपचीसी, ६. युगलमाधुरीप्रकाश, ७. भावनाशतक, ८. जानकीसहस्रनाम, ९. रामसहस्रनाम, १०. समयचिंतामणि, ११. समयप्रबंध, १२. वर्षोत्सवपदावली, १३. रूपरसामृतसिंधु, १४. रसपारप्रबंध, १५. रहस्यपदावली, १६. सिद्धांतपदावली, १७. उभकनी अष्टक तथा १८. हनुमतपचीसी। रचना की बानगी देखिए—

प्रथम उपासक भाव बिचारे।
सगर दयामयी तन कर निज रस महल रस रहस बिहारे।
तन ... करि गुरु प्रेम भावना गायगुपाल सहज पग धारे।
मधुर मधुर गति मधुर भाव सों मधुर मनोहर सेज सवारे।
सोये सजनी रजनि उनींदे सुरति विनोद प्रमोद अपारे।
निरखि झरोखन सकुच जगावत उमगद छवि लखि प्रान बिसारे।
मंगल आदि सिंगार सेज सुख चिर विलास रस टहल सम्हारें।
कृपानिवास श्री रामप्रिया की कृपा अगम सब सुगम हमारे।

---

१. रामभक्ति में रसिक संप्रदाय, पृ० ४०५।
२. रसिकप्रकाश भक्तमाल पृ० ३४–३५।
३. रामरसिकावली, पृष्ठ ९९८।

(१४) **सियासखी**—जयपुर के गौड़ ब्राह्मण गोपालदास सियासखी ने अग्रदास के प्रशिष्य झाँझूदास से दीक्षा ली थी। सीताराम गद्दी चाँदपोलद्वार (जयपुर) पर १७ दिन आसीन रहकर फिर वह भार अनुज चद्रअली को सौंपकर ये चित्रकूट आए, जहाँ कामदगिरि पर दिव्यरास की झाँकी लेने लगे।

इनका उपस्थितिकाल १८वी शताब्दी का पूर्वार्ध अनुमानित है। इनके पुत्र रूपसरस भी भक्त और कवि थे। अयोध्या में (रहस्य प्रमोदवन) 'जयपुर मदिर' इनकी शिष्यपरंपरा का साक्षी है। राजस्थानी पुट युक्त इनके स्फुट शृंगारी पद ही उपलब्ध हैं। एक उदाहरण देखिए—

सिया बाई जू सुनियो अरज हमारी।
औरन के तो और भरोसो म्हारे आस तिहारी।
करनी की तुम ओर न देखो अपनी बिरद सम्हारी।
ऐसो होय नही या जग मे लोग हँसै दै तारी।
रगमहल में आवन दीजो सुनो पिया अवध बिहारी।
सियासखी के सरबस तुम हो और लगै नहि सारी।

(१५) **रामप्रसाद बिंदुकाचार्य**—अयोध्या में रसिक संतपरंपरा के मूलप्रेरक रामप्रसाद का जन्म प्रसिद्ध मलिहाबाद (लखनऊ) मे श्रावण शुक्ल ७, स० १७६० को पंडित हीरामनि के यहाँ हुआ। रघुनाथप्रसाद के श्री महाराजचरित्र के अनुसार तुलसी पुत्ररूप मे जन्म लेने के हेतु अर्धसुप्त स्थिति मे इनके माता पिता से प्रतिश्रुत हुए थे।[१] इसीलिये—'बालमीकि तुलसी भये तुलसी रामप्रसाद' आज भी लोगों की जीभ पर रहता है।

बसावन नामक शैवसत इनके विद्यागुरु थे। बाल्यकाल में ही परिणीत होकर भी इनका झुकाव खिलवाड़ की ओर अधिक था। परतु शनै: शनै. सतसेवा की ओर ये इतने उन्मुख हुए कि घर का सामान साधुओं को खिलाने लगे। फलत भाइयों ने इन्हें पृथक् कर दिया। फिर भी दानविधान में व्यवधान न पड़ा। इसी बीच वैष्णव महात्मा लक्ष्मीराम से दीक्षित ये गृहस्थाश्रम मे रहते हुए प्रख्यात हो गए। 'घर बन बीच ही राम प्रेमपुर' छाकर रहनेवाले रामप्रसाद को रामगुलाम, रामकुँवरि दो संतानें देकर उनकी पत्नी दिवंगत हो गईं। तब ये गाँव के बाहर पत्नी के दाहसंस्कार के बाद वहीं 'जानकी वाटिका' लगाकर साधनारत हुए।

अयोध्या मे शैव संन्यासियो से बचकर सोनखर कुंड पर इन्होंने आवास किया था। जनश्रुति है कि 'जानककीनवमी' के दिन इनके भाल को बिंदुशून्य पाकर स्वयं सीता जी

---

१. महाराजचरित्र, पृ० ११० ।

ने इनके भाल पर बिंदु लगा दिया था। संप्रदायविरुद्ध बिंदुतिलक संबंधी तथ्य निवेदित करने पर भी साधुओं ने उसे बालू से रगड़वाकर धुलाने का व्यर्थ प्रयास किया तब से ये 'बिंदुकाचार्य' से सोपाधिक हुए। कई वर्ष की तीर्थयात्रा में ये जन्मभूमि भी आए तथा अपने वृद्ध पितरों को अयोध्या ले आए। रामचरणदास को रसिक भक्तिप्रचार की प्रेरणा इन्होंने दी। अयोध्या के बड़ा स्थान में तंबूरा लेकर पैरों में घुँघुरू बाँधकर ये नाचते थे। अयोध्या के 'बड़ा स्थान' में इनका घुँघुरू अद्यावधि सुरक्षित है।

१०१ वर्ष की आयु पाकर श्रावण कृष्णा तृतीया को ये साकेतधामधामी हुए। स्पष्ट है कि इनके जन्म और मरण की तिथियाँ वे ही है जो गोस्वामी जी की है। हनुमान जी से रामायण पढ़ने तथा टीका करने का उल्लेख रामरसिकावली में है।[१] परंतु इनकी कोई टीका नहीं मिलती। 'शिक्षापत्री', 'गीता-तात्पर्य-निर्णय' दो कृतियाँ प्रकाशित होकर भी अप्रचलित है।

(१६) **रामदास 'तपसी'**—जम्मू से ५० मील पर स्थित बड़ा पिंड खंतापाड़ा के पं० हरिनारायण सारस्वत के घर १८वी शती के पूर्वार्ध में तपसी जी का जन्म हुआ। रामानंदी साधु संतदास इनके गुरु थे। तीर्थाटन इन्होंने हृदय खोलकर किया था। रामघाट की विशाल छावनी भजनानंदियों का आवास बनी। इन्होंने तीन नियमों—प्रातः सरयूस्नान, संध्या को जन्मभूमिदर्शन तथा रात्रि में भंडार की स्वच्छता के बाद शयन का आजन्म व्रत निभाया। ११५ वर्ष की सुदीर्घ आयु पाकर ये सदा के लिये राम-पद-लीन हुए। देश के विभिन्न भागों में इनकी शिष्यपरंपरा के मठ स्थापित है। खेद है, अभी तक इनकी कोई रचना नहीं मिल सकी।

(१७) **मनभावन**—सूरकिशोर की भाँति सीता के 'लली' रूप के आराधक दूधू ग्राम, जयपुर के निवासी मनभावन महाराज सवाई प्रतापसिंह 'व्रजनिधि' (सं० १८२१–१८६०) के समसामयिक और मुड़िया, जिला शाहजहाँपुर निवासी तथा चंदनराय के शिष्य मनभावन से नितांत पृथक् है।[२] इनका शिष्यत्व दूधू के अनेक स्त्रीपुरुषों ने स्वीकार किया था। भक्त के साथ विद्वान् साहित्यज्ञ के रूप में प्रख्यात अन्य पंडितों की अक्षमता पर 'व्रजनिधि' द्वारा एक काव्यग्रंथ के स्पष्टीकरण के हेतु आहूत 'मनभावन' ने पहले अपनी सरस रचनाएँ सुनाई फिर दुर्बोधगम्य स्थलों को व्याख्यायित कर सभा को विस्मयविमुग्ध कर दिया।

किसी ग्रंथ का पता न चलने पर भी इनके जो स्फुट पद मिले हैं उनसे सीता के प्रति इनकी प्रगाढ़ भक्ति प्रकट है। कविता इनकी मध्यम कोटि की है। उदाहरण—

---

१. रघुराजसिंह : रामरसिकावली, पृ० ६१२।
२. मिश्रबंधुविनोद, द्वितीय भाग, पृ० ७५६।

सिया जू मोहि भरोस तिहारो।
सुनु मिथिलेश कुमारि लड़ैती अपनो विरद सँभारो।
नाता नाम धाम मिथिला को और न काऊ हमारो।
मनभावन की यही बीनती चरनन ते नहिं टारो।

(१८) रामचरणदास — शृंगारी भावना के प्रवर्तक, स्वसुखी शाखा के स्थापक रामचरणदास का जन्म प्रतापगढ़ जिला के एक कान्यकुब्ज विप्रकुल में सं० १७६० में हुआ था। प्रतापगढ़नरेश के यहाँ ऊँचे पद पर काम करते समय एक दिन विलंब से पहुँचने पर जब ये ग्लानिग्रसित हो रहे थे तभी राजा साहब ने उनके द्वारा हस्ताक्षरित अनेक राजकीय पत्र दिखाए। उन्होंने उसी समय त्यागपत्र दे दिया और अयोध्या में रामप्रसाद 'बिंदुकाचार्य' के प्रशिष्य तथा रघुनाथप्रसाद के शिष्य बन गए। कुटुंबीजन इस अयोध्यावासी को लेने आए। परंतु संतमंडली में पत्तलों पर से उच्छिष्ट भोजन करते देख आभिजात्य-दर्प-स्फीत वे सब इन्हें भ्रष्ट समझकर लौट गए। बस रामचरणदास एक दिन जूठन खाकर सामान्य बंधनों से मुक्ति पा गए। फिर तो भवबंधन से निष्कृति पाने के हेतु आजीवन भक्तों की सीथप्रसाद को पाने का व्रत उन्होंने ले लिया।

रामप्रसाद के साथ चित्रकूट जाकर, शृंगारी उपासना का ज्ञानार्जन कर ये मिथिला गए और वहाँ के समसामयिक रसिकोपासकों को प्रभावित किया। रैवासा आकर 'अग्रसागर' के अध्ययन के स्वरूप सिद्धांत निर्धारित किया। जानकीघाट पर गद्दी का स्थापक, कारुणीशाखा, कारुणीनाम [illegible] का निर्माता, आश्रम के साधुओं, शिष्यों के प्रति सहज दयालु यह संत 'करुणासिंधु' नाम से प्रख्यात है। नवाब आसफुद्दौला ने इनके संत स्वभाव के कारण जानकीघाट की सारी भूमि तथा कई गाँव इन्हें अर्पित किए थे।

रामसखे तथा प्रेमसखी की भाँति रीवानरेश विश्वनाथसिंह के निमंत्रण को यह लिखकर ठुकरा दिया था कि—

तजि रघुनाथ जो जाचत औरहि ता मुख मलो मसी।

इनके शिष्यों में 'युगलप्रिया', रसिकअली तथा हरिदास ने रसिकभक्ति प्रसार में योग देकर सैद्धांतिक पक्ष पर बल दिया। रामचरणदास ने सर्वप्रथम 'मानस' की प्रसिद्ध टीका की थी जो इनके पांडित्य और सरस शैली की परिचायिका है। इनकी मानसकथा में दूर दूर के संत सम्मिलित होते थे। मिर्जापुर के प्रसिद्ध रामायणी रामगुलाम द्विवेदी तो इतने प्रभावित थे कि साकेत-धाम-यात्रा में भी इनका साथ दिया था। इनकी मृत्यु से तीन दिन पूर्व रामघाट पर कीर्तन, सत्संग होता रहा। तीसरे दिन द्विवेदी जी का पत्र मिला जिसमें अपनी दिवंगति का समय और उनके द्वारा प्राक्प्रतिश्रुति का निर्वाह संकेतित था। साकेतवास के लिये बद्धपरिकर संत ने थोड़ी ही देर में माघ शुक्ल ६, सं० १८८८ को इहलौकिक लीला संवृत की।

इनके लिखे ग्रंथों की सूची नीचे दी जा रही है।

१ अमृतखंड, २. अष्टयामसेवाविधि, ३. उपासनाशतक, ४ कवितावली, ५. काव्यशृंगार, ६ कौशलेंद्ररहस्य, ७ [illegible], ८ [illegible] ९ जयमाला-संग्रह, १०. [illegible], ११ [illegible], १२ [illegible], १३ नामशतक, १४ पिंगल, १५ रसमालिका, १६ [illegible], १७ [illegible]-संग्रह, १८ रागपदावली, १९ [illegible]शतक, २० विवेकशतक, २१ [illegible], २२. [illegible]पचासिका, २३. सियाराम रसमंजरी तथा २४ सेवाविधि।

रचनाओं का एक उदाहरण लीजिए—

सुनहु [illegible] अधि मने [illegible] नहिं [illegible] ।
[illegible] नहिं मिलत [illegible] ।
यथा [illegible] ।
मनि [illegible] ।

(१९) **जानकीचरण 'प्रियासखी'**—इनका प्रामाणिक जीवनवृत्त अज्ञात है। इतना विदित है कि ये अयोध्यावासी थे और [illegible] के शिष्य थे। मिश्र-बंधुओं द्वारा इनका आविर्भावकाल सं० १९०० वि० अनुमानित है[1] जो ठीक नहीं है; वस्तुतः इनका आविर्भावकाल [illegible] की १९वीं शताब्दी [illegible] गुरु की उपस्थिति का समय है। डा० रामकुमार वर्मा[2] ने सं० १९०० तथा डा० भगवतीप्रसाद सिंह[3] ने सन् १८२० (सं० १८७७) [illegible] लिखा है। इनकी रसमंजरी और चित्ताकर्षक तीन कृतियों का पता चला है—१. [illegible], २. सियाराम रसमंजरी तथा ३. भगवानामृत कादंबिनी।

प्रथम में राम-सीता-जन्म, उनके प्रेम, विवाह का वर्णन है। द्वितीय में भक्ति तथा रामतीर्थों—अयोध्या और मिथिला—की [illegible] है। रचना नीचे उद्धृत है—

नाना विधि [illegible] ।
[illegible] ।
[illegible] ।
[illegible] ।

(२०) **शिवलाल पाठक**—[illegible] ग्राम (जिला गोरखपुर) के पंडित देवीदत्त पाठक की पत्नी [illegible] देवी [illegible] को शिवलाल को जन्म देकर १० मास बाद ही संसार से विदा हो गई। [illegible] विवाह किया। विमातृ-व्यवहार से खिन्नमना ९ वर्षीय शिवलाल एक [illegible] के साथ [illegible] गए। रामनिष्ठ,

---

1 मिश्रबंधुविनोद, तृतीय भाग, पृ० १०३५।

2. हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ८८८।

3 रामभक्ति में रसिक संप्रदाय, पृ० ५४१।

षट्शास्त्री विद्वान् शिवलोचन शास्त्री के विद्यागुरुत्व से ये शास्त्रों में निष्णात हो गए और गुरुप्रभाव से 'मानस' के प्रति प्रीति बढ़ी। इधर अयोध्या से संस्कृत अध्ययनार्थ काशी आए हुए प्रसिद्ध रामायणी रामप्रसाद से पाठक जी की भेंट हुई। उन्ही से ये षड्क्षर राम-मंत्र मे दीक्षित हुए। गुरुप्रसाद तथा प्रतिभा और व्युत्पत्ति के बल पर ये 'मानस' के अभूत-पूर्व व्याख्याता हुए जिसका प्रमाण है प्रथम सार्वजनिक मानसकथा (जतनबर, काशी) की भेंट पौन लाख मुद्राएँ, जो पाठक द्वारा गुरु को समर्पित हुई थीं।

सख्यभाव के कारण वे अपने को वसिष्ठ का पुत्र सुयज्ञ कल्पित कर राम को सखा मानते थे। गुरुपुत्र भाव की दृष्टि से रामोपासकों में वे सचमुच अद्वितीय हैं। इनके लिखे ग्रंथ ये हैं---१. मानसमयंक, २. मानस-अभिप्राय-दीपक तथा ३. वाल्मीकि रामायण की भावप्रकाश टीका।

रचना का उदाहरण लीजिए---

जय जय जय मुखचंद जू रसिकन आनँद कंद।
बूझि लड़ैतनी राजजू, गहि भुज हरिये फंद।
सुनि मुसुकाइ बुलाइ ढिग युग करुणारस भेइ।
कहे चंद्रिका रसरचन, जो मानस रस देइ।
---मानस मयंक

(२१) **शंकरदास**---आपका जन्म छपरा जिला के इसुआपुर ग्राम में कात्यायन गोत्रीय कान्यकुब्ज चतुर्वेदी श्री शोभाराम के यहाँ विक्रम की १८वीं शताब्दी मे हुआ। पिता के निधन पर बालक शंकर विधवा माता की सहायता गोचारण तथा खेती करके करने लगे। जनश्रुति है कि गाय चराते समय राम ने अश्वारूढ़ शिकारी के वेश मे इन्हे दर्शन दिए। फिर क्या था। शंकर राम की खोज करने लगे और माता, पुत्र शंकर की। बिहार के अकाल के समय ये १८ वर्ष के थे। 'अयोध्या में सुकाल है', इस विचार से विधवा माँ तथा अपनी बहन को लेकर अयोध्या आए जहाँ माता ने कल्पवास और फिर स्वर्गवास किया। इन्होंने बहन को किसी संबंधी को सौंपकर चारों धामों की यात्रा की। ये उज्जैन भी गए थे। नैमिष में रामदुबे की कन्या से विवाह किया था। इनके चार पुत्रों मे 'रसिकप्रकाश भक्तमाल' के रचयिता प्रसिद्ध भक्त जीवाराम 'युगलप्रिया' भी थे। आगे चलकर अपने पुत्र के ये दीक्षागुरु भी हुए थे। आरा जिला के बोधछपरा में किसी संत से ये दीक्षित हुए थे। सरयू-गंगा-संगम, चिरान छपरा मे इनका आश्रम था। ये दास्यभाव के रामोपासक थे परंतु जिज्ञासु पुत्र को रामचरणदास की शरण मे शृंगारी भक्ति के लिये भेज दिया था।

इनकी एक पुस्तक 'रामनाममाला' सं० १९५८ मे छपी थी। इनकी कविता साधारण है परंतु भाषा की दृष्टि से अनुपेक्षणीय है। भोजपुरी भाषा मे फारसी के शब्द तो क्या वाक्य तक प्रयुक्त हैं। रचनाओं का उदाहरण देखिए---

बैबुल बोफा बय हिफाकत गोवाह शाद सदर कबहि
होय न एक मोहर बिना काजी

उनका एक पद और दिया जाता है—

धन्य सोई प्राणी जिन राम नाम लेल।
वेद औ पुराण इतिहास ढूंढ़ि ढूंढ़ि ढूंढा बह प्राणपान
खोज खोज भइले जेल।
होइ पवित्र वे पवित्र प्रेम अनप्रेम अनखाय अलसाय
अकुलाय समुझावे।
'शंकरदास' सुख दुख वो हानी लाभ होइबे करे कोई न मिटाई।

(२२) **बलदेवदास 'चंद्रअली'**—'सियासखी' के अनुजरूप में बलदेवदास का कुछ वृत्त हम दे आए हैं। भक्तिभावना मे 'चंद्रअली' का वास्तविक नाम बलदेवदास था। इनकी रचना 'अष्टयामपदावली' अप्रकाशित है। निम्न पद से इनका सखीभाव परिलक्षित है—

लखो री मिथिला मोद भरी।
माधव शुक्ल पक्ष पूरण तिथि बासर चंद्र धरी।
चित्रा नखत लगन धनि धनि वह धन्य सो धन्य घरी।
रानी चंद्रकान्ति नृप अरिजित सुकृत की बेलि फरी।
जन्मी चारु शीता जू जिनकी चंद्रअली अनुचरी।

(२३) **रामगुलाम द्विवेदी**--प्रसिद्ध रामभक्त, मानसतत्वज्ञ रामगुलाम असनी ग्राम (मिर्जापुर) में उत्पन्न हुए थे। बाल्यकाल मे ही पितृनिधन के कारण मिर्जापुर में पल्लेदारी करके ये जीविका चलाते थे। आरंभ मे ग्राम के निकट 'लोहनी' हनुमान के समक्ष 'मानस' का नैत्यिक पाठ करनेवाला मारुतिनिष्ठ एक दिन नियम भूलकर भोजन कर रहा था कि सहसा उसे आराध्य का स्मरण हो आया। मार्ग मे एक नाला पड़ता था। हुआ यह कि रामगुलाम को जल का उद्दाम प्रवाह बहा ले गया। जनश्रुति है कि इन्हें हनुमान जी ने ही निकाला था। इन्होने आर्द्र परिधान और पोथी सहित मंदिर पहुँचकर नियमपालन किया। कहते हैं, हनुमान ने मानस का सांगोपांग अध्ययन कराकर आदेश दिया कि वे टीका नही करेंगे। जो टीकाएँ मिलती हैं वे उनके भाषणगत व्याख्याओं के संगृहीत अंश हैं।

परमहंस रामप्रसाद इनके दीक्षागुरु थे। रसिकाचार्य रामचरणदास से इनकी घनिष्ठता तथा दोनों की सह-रामधाम-यात्रा का विवरण पीछे दिया गया है। मानसतत्वज्ञ रामगुलाम भावुक रामभक्त थे। उनकी कुछ हस्तलिखित कृतियाँ काशी के प्रसिद्ध साहित्यिक सीताराम चतुर्वेदी के पास सुरक्षित है। इनकी पुस्तकों का विवरण यों है—

१. कवित्तप्रबंध, ३. दोहावली रामायण, ३. बरवा, ४. रामकृष्णसप्तक, ५. रामगीतावली, ६. रामविनय, ७. रामस्तवराज, ८. ललितनामावली, ९. विनयनव-पंचक, १०. श्रीकृष्ण-पचरत्न-पचक, ११. श्रीरामाष्टक तथा १२. हनुमानाष्टक। कविता का उदाहरण—

जाके वाम भाग में विराजैं मिथिलेस सुता,
सहित सनेह सदा छवि की छटा छई।
दाहिने रहत जाके लखन अनूप रूप,
नखशिख नीके हेम उपमा न ह्वै दई।
जाके अंग अंग पै अनंग कोटि वारियत,
धारे धनुबान मानि विस्व विजयी नई।
बदत गुलाम राम दया करि दीजै राम,
मेरे मन बसै सोई मूरति कृपामई।

••• •••

भूला विपिन बटोही मग गै छूटि। सग अमित बटपरवा कीन्ही लूटि।
पूछौ तोहि पथिकवा कहँ घर तोर। दिना चारि के छूटे परिगा भोर।

(२४) **महाराज विश्वनाथसिंह**—संस्कृतज्ञ रीवाँनरेश जयसिंह के पुत्र और सुकवि रघुराजसिंह के पिता महाराज विश्वनाथसिंह का जन्म चैत्र शुक्ला चतुर्दशी, सं० १८४३ और स्वर्गवास कार्तिक कृष्णा सप्तमी, सं० १९११ को हुआ। उन्होंने महात्मा प्रियादास से 'षडक्षर' राममंत्र लिया था और सखी रूप मे सीताराम की अष्टयाम भावना करते थे। पुत्र की ही साक्षिता लीजिए—

करै भावना ध्यानहि माही। सखी रूप सियरामहिं काहीं[१]।

युगलप्रिया के अनुसार ये महाराज

उत्तम पंथ शृंगारभक्ति दसधा के भेदी,
पडित कला प्रवीन रसिक रस ग्रंथ निवेदी

थे और रामचरणदास से मानसीपूजा में दीक्षित हुए थे[२]।

रामनिष्ठ महाराज ने 'शालग्राम' मूर्ति का नाम 'रासबिहारी' रखा था। यद्यपि ये स्वयं रामोपासक थे, तथापि निर्गुण संतमत का भी वंशपरंपरागत समादर इन्होंने किया। कबीरबीजक की टीका इसका प्रमाण है। उनकी रामनिष्ठा अयोध्यादर्शन, सरयूस्नान, चित्रकूट में मंदिरनिर्माण और रीवाँ में स्थापित सीताराम मदिर मे चैत्र में रासलीला आयोजन आदि है। इनका 'आनंदरघुनंदन नाटक' हिंदी का प्रथम नाटक है। जिसके

---

१. रामरसिकावली, पृ० ६००।

२. रसिकप्रकाश भक्तमाल, पृ० १२४।

संवाद ब्रजभाषा गद्य में है। इसमें देशी विदेशी भाषाओं का प्रयोग पात्रानुरूप हुआ है। पात्रों के वास्तविक नामों के स्थान पर दूसरे नाम लिखे है, जैसे राम, लक्ष्मण, हनुमान अंगद और रावण के लिये क्रमशः हितकारी, डीलधर, नेतामल्ल, भुजभूषण और दिक्-शिरा।

इतिहासकारों ने इनके अनेक ग्रंथों के नाम दिए हैं। डा० भगवतीप्रसाद सिंह के अनुसार इनकी संख्या ३८ है।[1] पूर्ववर्ती विद्वानों[2] द्वारा दी गई नामावली मे यहाँ संख्या बढी हुई है। रचनाओं का विवरण यो है—

१. रामगीताटीका, २. तत्वमस्यर्थसिद्धांत भाष्य, ३. राधावल्लभी भाष्य, ४. सर्वसिद्धांत, ५. रामरहस्यटीका, ६. राममंत्रार्थनिर्णय टीका, ७ सुमार्गस्तोत्रटीका, ८. बीजक टीका, ९. विनयपत्रिका टीका, १०. वैष्णवसिद्धान्त टीका, ११ धर्मविद्या, १२ रामचंद्रिकाह्निक तिलक, १३. राग सागराह्निक, १४. संगीत रघुनंदन, १५ भुक्ति-मुक्ति-सदानंद, १६. दीक्षानिर्णय, १७. व्यंग्यार्थचंद्रिका, १८ भागवत एकादश स्कंध की टीका, १९. सुमार्ग की ज्योत्स्ना टीका, २०. रामपरत्व, २१. व्यंग्यप्रकाश, २२ विश्वनाथप्रकाश, २३. आह्निक अष्टयाम, २४. धर्मशास्त्र त्रिंशत्श्लोकी, २५. परमधर्मनिर्णय, २६ शान्ति शतक, २७. विश्वनाथचरित, २८. ध्रुवाष्टक सतिलक, २९ मृगयाशतक, ३०. परमतत्व, ३१. उत्तम काव्यप्रकाश, ३२. गीतारघुनंदनशतिका, ३३. रामायण, ३४ गीता रघुनंदन प्रमाणिक, ३५. सर्वसंग्रह, ३६. रामचंद्र जू को सवारी, ३७ भजनमाला तथा ३८ आनंद-रघुनंदन नाटक—

कविता का एक नमूना नीचे प्रस्तुत है—

नारिन की जु सलाह करै अरु भाइन मंत्री स्वतंत्र बनावै।
बैरी के चाकर राखे रहै जो अधर्म की राह सदा मन लावै।
मंत्री कह्यौ हित मानै नही अरु साहू को सासन नाम न आवै।
भाखत है बिसुनाथ ध्रुवै कछु काल में भूप सुराज गँवावै।

(२५) **मनीराम**—ये संत रामप्रसाद की चौथी पीढ़ी में हुए थे। श्री कामदनाथ को चित्रकूट में 'वाल्मीकि रामायण' के २४ पाठ सुनाकर ये अयोध्या आए और जानकीघाट पर उक्त ग्रंथ के तीन पाठ किए। रामरस पीनेवाले संतों की बुद्धिमती कृपा ने वहीं कुटिया बनवा दी और मनीराम की छावनी प्रसिद्ध हो गई। इनका कोई स्वतंत्र ग्रंथ नहीं मिलता। इनके पद तथा दोहे जनता के जिह्वाग्र और ग्रंथों में संगृहीत हैं। इनकी कविता साधारण है। बानगी नीचे दी जा रही है—

---

१. रामभक्ति में रसिक संप्रदाय, पृ० ४३५।
२. मिश्रबंधुविनोद, तृतीय भाग, पृ० १०२२ और हिंदी साहित्य का उद्भव और विकास (द्वितीय खंड), पृ० ६१।

जय श्री रघुनाथ जय जानकी माता, दो कर जोरी विनवौं प्रभु मोरि सुनो बाता ।
तुम रघुनाथ हमारे प्राण पिता माता, तुम हो सजन सँघाती मुक्ति भुक्तिदाता ।

× × ×

रघुबर लक्ष्मण भरत सत्रुहन संग चारो भैया, जगमग ज्योति विराजे सोभा अति रैया ।
हनुमत नाद बजावै नूपुर ढुमकैया, सुवर्ण थाल आरति करत कौसल्या मैया ।

(२६) **जीवाराम 'युगलप्रिया'**—'शकरदास' के परिचय मे उनके पुत्र जीवाराम के कुछ जीवनप्रसग दिए जा चुके है । खरोद गाँव के मसाराम पंडित से अष्टांगयोग और स्वरोदय के अध्येता पुत्र को उसकी इस इच्छा के प्रतिकूल स्वयं दास्यभाव के रामोपासक ने शृंगारभक्ति मे दीक्षा लेने रामचरणदास के पास भेज दिया । गुरु के समीप रहनेवाले जीवाराम ने एक दिन देखा कि श्री गुरु ने शीतप्रसादी उन्ही के पत्तल से उठाई है अत. गुरु को अपना उच्छिष्ट खिलाने की पुनरावृत्ति से बचने के लिये वे अलग ठहरने लगे । इन्होंने चिरान मे पितृनिधन के उपरात एक मठ बनवाकर गद्दी स्थापित की थी । ये 'युगल सरकार' की सेवा मृदंग बजाकर करते थे । एक दिन तंद्रिल युगलप्रिया ने देखा कि चंद्रकला से वे मृदंग सीख रहे थे कि चारुशीला जी आ गईं । चद्रकला ने विधिवत् संबध और चारुशीला की अनुमति के बिना मृदगशिक्षण मे ननुनच किया परतु चारुशीला की कृपा से उन्होने श्रीचद्रकलापरत्व प्राप्त किया ।

जीवाराम ने रसिकोपासक परिवार के प्रसार मे विशेष योग दिया । इनकी कीर्ति का आधारस्तंभ है, रसिकप्रकाश भक्तमाल, जो रसिकपरंपरा का एक प्रकार से कोश है । इसके अतिरिक्त सैद्धांतिकता और काव्यसुलभ सरसता तथा अवधी भाषा की मधुरतायुक्त इनकी तीन रचनाएँ और है—पदावलो, शृंगाररसरहस्य तथा अष्टयामवार्तिक । एक पद पढ़िए—

जय श्री चंद्रकला अलबेली ।
अति सुकुमार रूप गुन आगरि नागरि गर्व गहेली ।
निमि कुल प्रगटि संग सिय प्यारी प्रियकारी रसकेली ।
चंद्रप्रभा जी के सुकृत कल्पतरु उलही लता नवेली ।
कंचन वन कमला प्रमोद वन लीला लहरी मेली ।
'युगलप्रिया' अनुराग सदा संबंध राग की डेली ।

(२७) **जानकीरसिकशरण**—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इन्हें १८वीं शती का भक्त कवि माना है ।[१] डा० भगीरथ मिश्र इनकी उपस्थिति सं० १७५७ के आसपास अनुमान करते है ।[२] मिश्रबंधुओं ने 'भक्तमाल' की 'रसिकसुबोधिनी' की टीका का

१. हिंदी साहित्य उसका उद्भव और विकास, पृ० २५३ ।
२. हिंदी साहित्य का उद्भव और विकास, द्वितीय खंड, पृ० ५० ।

रचनाकाल सं० १७१६ बताया है ।[१] डा० भगवतीप्रसाद सिंह के अनुसार जानकीरसिकशरण 'युगलप्रिया' के शिष्य तथा 'रसिकप्रबोधिनी' टीका के लेखक हैं ।[२] एक नाम के अनेक कवि हिंदी मे हुए है और एक के जीवन की घटनाएँ और कृतियाँ दूसरे कवि के साथ सहज ही जुड़कर साहित्यिकों के लिये समस्या बनती रही है । लेखक का अनुमान है कि जानकीरसिकशरण के आविर्भावकाल को बहुत पूर्व तक ले जाना असगत होगा । टीका भी उन्होंने की है । संभव है, 'रसिकप्रकाश भक्तमाल' की भी टीका उन्होंने की हो । इनका ९१६ छदों मे विस्तीर्ण, १४ अध्यायो मे विभक्त 'अवधीसागर' प्रसिद्ध है । इसमें अष्टयाम प्रसंगों की सविस्तार वर्णना है जिससे इनकी शृगारीवृत्ति स्पष्ट प्रकट होती है । रचना का उदाहरण देखिए—

झुकी लता द्रुम डार भूमि पर सत सुखगामी
मनहुँ भए द्रुमलता इहाँ के तीरथ बासी ।
उडि उड़ि परत बिहार थली की अँग रज तिनके ।
लगे सुभगफल गुच्छ नवलदल परहित जिनके ।

(२८) जनकराजकिशोरीशरण 'रसिकअली'—सुदामापुरी (गुजरात) का नागर ब्राह्मण बालक बचपन मे ही अयोध्या आ गया । इनके दीक्षा तथा साधनागुरु क्रमशः राजराघवदास तथा 'करुणासिधु' रामचरणदास थे । अतःसाक्ष्य के आधार पर 'रसिकअली' का समय स० १८७५ के आसपास निश्चित है । कनकभवन में अर्धनिद्रितावस्था में सपरिकर भगवान को बिहार करते देखकर ये विक्षुब्ध हुए थे । उस समय राजराघवदास वहाँ आ गए थे । उन्ही की कृपा से पहले दास्यभाव फिर रामचरणदास से इन्हें माधुर्यभक्ति प्राप्त हुई । स्वतत्रचेता 'रसिकअली' ने गुरु से अर्धचंद्रयुक्त बिंदु के धारण करने की अनुज्ञा प्राप्त की । इनके शिष्य टिकारी (बिहार) नरेश ने अष्टकुंजों सहित इन्हें कनकभवन निर्माण के लिये दस हजार रुपए दिए । माधुर्यकेलि गृहनिर्माण के समय मजदूरों के पीतवस्त्रों, उनमें सुगंधित द्रव्यलेपन की व्यवस्था के साथ कारीगरों के औजारों और हाथों मे घुँघुरू बांधे गए । परंतु बना एक कुंज का एक द्वार । सतसुख और भक्ति का प्रचार तो हुआ पर उनकी अव्यावहारिकता से गुरुराज राघवदास तथा स्वयं राजा साहब कुछ खिन्न हो गए ।

उस अधूरे कार्य को छोड़कर जालौन के एक निर्जन स्थान में १८ वर्ष तक साधानारत रहकर भक्ति का प्रचार किया । यही शास्त्रार्थ मे पराजित लाडलीशरण इनके शिष्य बन गए और इनके साथ अयोध्या आए । वहाँ से ये मिथिला गए और वही मार्गशीर्ष पूर्णिमा को प्रियतम की लीला देखने के लिये साकेतधाम सिधारे ।

---

१. मिश्रबंधुविनोद तृतीय भाग, पृ० ४६३ ।

२. रामभक्ति में रसिक संप्रदाय, पृ० ३ ।

विचारस्वातंत्र्य का प्रमाण है तत्सुखी से स्वसुखी शाखा में इनका परिवर्त डा० भगीरथ मिश्र ने 'रसिकअली' और जनकराजकिशोरीशरण को दो अलग अ व्यक्ति माना है[1] परंतु लेखक का विश्वास है कि होली, अष्टयाम, मिथिला विहार, ऋतु पदावली आदि कृतियाँ जनकराजकिशोरीशरण की हैं जिन्हें डा० मिश्र ने रसिकअ की कृतियाँ बताया है और जनकराजकिशोरीशरण का पृथक् परिचय दिया है। वस्त जनकराज किशोरीशरण का सेवाभावना का नाम 'रसिकअली' है। संस्कृत, अव और ब्रजी में समान गतिवाले कवि की रचनाओं का विवरण इस प्रकार है--

१ अमररामायण, २. अष्टयाम-प्रबंध-पद, ३ आदोल-रहस्य-दीपिका, ४. आत संबंध-दर्पण, ५ कवितावली, ६. जानकीकर्णाभरण, ७. जिज्ञासापंचक, ८. तुलसीदा चरित्र, ६. दोहावली, १०. बारहखड़ी, ११ मिथिलाविलास, १२. रघुबरकर्णाभर १३. ललितशृंगारोदीपक, १४. वर्षोत्सव पदावली, १५. विवेकसार चंद्रिका, १६ वेदांतसा शुभदीपिका, १७. श्रीरामरासदीपिका, १८. श्रीसीताराम-अनन्य-रसतरंगिनी, १६. सीताराम-रहस्य-तरंगिनी, २० श्रुतिदीपिका, २१. सीताराम-सिद्धांत-अनन्य तरंगि २२. सिद्धांतचौतीसा, २३. सिद्धांतमुक्तावली तथा २४ होलिकाविनोद।

भावव्यंजना के अंतर्गत पीछे एक सवैया हम उद्धृत कर आए है। यहाँ च पंक्तियाँ और देखिए--

प्रीतम प्रियामुख सलिल श्रमकन पोंछि हित मुख लेत।
जनु नागराज सुइंदु अरचत सुधा साधन हेत।
जब लाडिली कटि लचकि मचकति भृकुटि पिय की ओर।
तब जानि बलि बलि लाड़लौ गति होत चंद्र चकोर।

(२६) **लक्ष्मीनारायण पौहारी**--ये 'मझेन' ग्राम (जिला देवरिया) में शिवराम पांडेय के घर उत्पन्न हुए थे। गृह के निकटस्थ 'महेंद्रनाथ' के मंदिर मे शिवना जपनेवाले पौहारी अयोध्या आए। किसी साधु से प्रेरित रामपद में इनकी भक्ति हुई अं संबंधियों के प्रति विरक्ति, अतः उक्त मंदिर इनका स्थायी आवास बन गया। कहा जा है, एक दिन एक हाथी आया। वह इन्हें कंधे पर चढ़ाकर पैकोली से बैकुंठपुर, बड़हलगं होता हुआ पुन. पैकोली ले आया और उतार दिया। रामभक्तों के अनुसार गजरूप स्वयं श्रीकृष्णदास पयहारी ही थे। आज पयहारी शाखा की गद्दियों से युक्त तीनों स्थ पूज्य बन गए है।

फिर अयोध्या के बडा स्थान के महाराज अवधप्रसाद से दीक्षा लेकर कुर्ना नदी तट पर स्थित 'ठकुरही' वन मे कुछ समय तक जपयोग किया। तत्पश्चात् सं० १८६० पैकोली आकर, वटवृक्ष के नीचे कुटी बनाकर रहने लगे। सं० १८७७ मे इन्होंने चित्रकू

---

1. हिंदी साहित्य का उद्भव और विकास, द्वितीय खंड, पृ० ५०, ५८।

की यात्रा की थी। व्रतोत्सव पर पैकोली में कृष्ण जन्माष्टमी, रामनवमी, बड़हलगंज में रथयात्रा तथा बैकुंठपुर में रामविवाह मनाने की परंपरा उनके समय से अद्यावधि चली आ रही है।

फलाहारी होने के कारण इन्हें पौहारी संज्ञा मिली। आषाढ़ शुक्ल ३, सं० १६०३ वि० को पौहारी ने राम-धाम-यात्रा की। उनकी हस्तलिखित मात्र एक पुस्तक 'भक्ति-प्रकाशिका' है। उनकी भाषा पर भोजपुरी प्रभाव स्पष्ट है। एक पद द्रष्टव्य है—

हौ मैं हरिचरणन की दासी।
जा दिन ते हरिशरणन्हि आए मेटलि सकल उदासी।
गुरु की सेवा साधु की सगति मीति गए अविनासी।
तब ते काम क्रोध भय छूटल होइ गए सुखरासी।
ज्ञान विराग योग बहु बाढ़त भक्ति भई हिय वासी।
होइ अनुराग परम पद पावत भए अवध के वासी।
तब ते लोभ भए वोहि नृप के जानेउ निज पुर वासी।
प्रभु करकमल शसि पर परसत यम मुख लागत मासी।
अस संयोग पूर कर रघुपति सिया लषन सँग वासी।
'लक्ष्मीनारायण' दासि तुम्हारी छूटि गई जग लासी।

(३०) प्रतापकुँवरिबाई—मारवाड़नरेश मानसिंह की तृतीय रानी प्रतापकुँवरि के पिता गोयददास रवलोत जाखण परगना (जोधपुर) के निवासी थे। रामानुजीय वैष्णव पूर्णदास इनके गुरु थे। भक्ति का बीज हृदय में पहले से विद्यमान था, दैवयोग से सं० १६०० वि० में पति के निधन से महत्तम और मधुरतम लौकिक संबंध समाप्त हो गया। आज्ञानुवर्ती पुत्रों से पति-वियोग-जन्य दुःख का यत्किंचित् परिहार होता रहा। लिखा है—

पति वियोग दुख भयो अपारा। हुआ सकल सूना संसारा।
देख देख सुत आज्ञाकारी। कछु इक दुख की बात बिसारी।

जयपुर में इन्होंने अपने श्रद्धेय संत दामोदरदास के लिये रामद्वार मंदिर निर्माण कराया था। राम के निर्गुण और सगुण रूपों की ओर इनकी वृत्ति थी जो रचनाओं से झलकती है। इनके दस ग्रंथ मिल चुके है, जिनके नाम नीचे दिए हुए हैं—

१. प्रतापविनय, २. भजनपदहरजस, ३. रघुनाथ जी के कवित्त, ४. रघुबर स्नेह-लीला, ५. रामगुणसागर, ६. रामचद्रमहिमा, ७. रामसुजसपचीसी, ८. रामप्रेम-सुख-सागर-पत्रिका, ९. श्री रामचंद्रविजय तथा १० हरजसगायन।

कविता इनकी साधारण है। उदाहरण देखिए—

होरिया रँग खेलन आओ।
इला पिंगला सुषमणि नारी ता संग खेल खिलाओ।

सुरत पिचकारी चलाओ ।
काचो रंग जगत को छाडो साँचो रंग लगाओ ।
बाहर भूल कबों मत जाओ काया नगर बताओ ।

(३१) **नवलसिंह प्रधान**--श्रीवास्तव कायस्थों की 'प्रधान' संज्ञक अल्ल संपन्न नवलसिंह झाँसीनिवासी थे । रामानुज संप्रदाय के अनुयायी होने के कारण इनका नाम था रामानुजशरण । ये समथरपति महाराज हिंदूपति के आश्रित थे । सं० १८६० तक टीकमगढ़ राजदरबार मे विद्यमान थे । समर्थ कवि होने के साथ ये कुशल चित्रकार भी थे । इनके लिखे ग्रंथ ये है--

रासपचाध्यायी, रामचंद्रविलास, जौहरिनतरंग, रसिकरंजनी, विज्ञानभास्कर, ब्रजदीपिका, शुक-रंभा-संवाद, नामचितामणि, मूलभारत, भारतसाविवी, भारतकविता-वली, भाषासप्तशती, कविजीवन, आल्हादरामायरण, रुक्मिणीमंगल, मूल ढोला रहस-लावनी, अध्यात्मरामायण, रूपकरामायण, नारीप्रकरण भारतवार्तिक तथा रामायण-सुमिरनी ।

इनकी प्रभूत रचनाओं से विषयवैविध्य का पता चलता है । पद्य के बीच बीच ब्रजभाषा गद्य का प्रयोग इन्होने किया है । 'रामचंद्रविलास' मे इनकी अलग गिनाई जानेवाली सीतास्वयंवर रामविवाह खंड, पूर्वश्रृंगारखड तथा मिथिलाखंड आदि अंत-र्भुक्त हैं । यह विशाल ग्रथ रामकथा के अतिरिक्त अनेक पौराणिक प्रसगो को क्रोडस्थ किए हुए है । ३३ खंडो मे विभक्त इस ग्रंथ मे एक एक खंड के अंतर्गत कई अध्याय हैं ।

कोशलखंड के 'रामरास-रमणी-विनोद' शीर्षक नवम अध्याय पर रसिक संप्रदाय का प्रभाव परिलक्षित है । टीकमगढ़ मे प० लोकनाथ द्विवेदी सिलाकारी ने लेखक को बताया था कि इस ग्रथ का प्रणयन महली सप्रदाय दीक्षित महारानी वृषभानु कुँवरि की प्रेरणा से हुआ है । ग्रथ मार्मिक प्रसंगपूर्ण, सुँदर संवादोपेत, दोहाचौपाई तथा अन्य छंद-छटा से मडित, समाजनीति तथा राजनीतिपरक कथनों से युक्त तथा पुष्कल भावराशि संपन्न है । रचना का उदाहरण लीजिए--

अभव अनादि अनंत अपारा । अयन अप्रान अमर अविकारा ।
अग अनीह आतम अविनासी । अगम अगोचर अविरलवासी ।
अपि अव्यक्त अनाम अमाया । अवय अनामय अभय अजाया ।
अकथनीय अद्वैत अरामा । अमल असेप अकर्म अकामा ।
रहत अलिप्त ताहि उर ध्याऊँ । अनुपम अमल सुजस मैं गाऊँ ।

(३२) **पतितदास**--गिरिधरपुर (जिला गोंडा) ग्रामवासी पतितदास जाति के ब्राह्मण थे । इनके छदो की सबोध्या कोई ब्राह्मणी स्यात् उनकी पत्नी थी ।[1] गिरिधर

---

१. भजन सर्वसंग्रह, पृ० ६८ ।

पुर के आसपास प्रचलित जनश्रुतियाँ उनके परिणीत होने की साक्षी देती हैं। निम्नोद्धृत पंक्तियों में उनके सुदामा का अपनी पँड़ाइन को बोध देनेवाला स्वरूप झलमला उठा है—

काहेक झखसि बँभनियाँ।
सीधा घटी अवध से आई पलटू धरे दुकनियाँ।
कपड़ा घटी मगहर से आई तनै कबीरा तनियाँ।

अंत:साक्ष्यों के अनेक आधारों से प्रकट है कि इन्हें गाँववाले तंग करते थे, विशेष रूप से किसनदत्त पंडित और कुबेर। लिखा है—

विप्र कहावत करम कसाई, ऐसो है अधम गँवार।
दुष्टनगर दुष्टन की बाम, कीन्हें भेष हैं मानहुँ यार।

—भजन सर्वसंग्रह, पृ० ८८।

तीर्थाटन के उपरांत ये जन्मभूमि में स्थायी रूप से रहने लगे। छह मास के भीतर महात्मा जगदीश का सत्संगलाभ इन्हें घर बैठे हुआ। तदनंतर अयोध्या जाकर ये महात्मा मनीराम के शिष्य हो गए। पतितदास की रचनाएँ न केवल भक्तिभावित हृदय के उद्गार ही प्रकट करती हैं वरन् समसामयिक सामाजिक, सांप्रदायिक, धार्मिक और राजनीतिक स्थितियों के प्रति प्रकट किए गए विचारों से युक्त हैं। सं० १९१४ के गदर में सवा पाँच लाख मानवसंहार इनके पदों में उल्लिखित है।

इनकी कृतियों से इनकी रामोपासना प्रकट है पर व्यंजना निर्गुण शैली के माध्यम से हुई है। इनकी भाषा भोजपुरी मिश्रित अवधी है। इनका एक पद नीचे दिया जा रहा है—

गले दै बाहीं खड़े रघुबीर
कानन कुंडल लालन कँगी बाँयें हीरा औ पग चोर।
भूषण बसन कहाँ लै बरनौं कमर कटारा धनु तीर।
घर घर आनँद बधाव कुलाहल चिंता सोच दूरि भै भीर।
निरखि निरखि सियाराम लषन छवि दरबानी हनुमत वीर।
दास पतित प्रभुचरन न छूहै माफ करो तकसीर।

(३३) **काष्ठजिह्वास्वामी देव**—इनकी पदावली शीर्षक रचना के निर्माणकाल (सं० १८६७) तथा काशीनरेश ईश्वरीप्रसादनारायण सिंह के (जो इनके शिष्य थे) शासनकाल (सं० १८६२ से १६४०) से इनकी उपस्थिति २०वीं शती के अंतिम और २१वीं शती के प्रथम चरण में प्रतीत होती है।

काष्ठजिह्वा ये क्यों कहलाए? गुरु से विवाद करने के अपराध में ग्लानि-

पीड़ित 'देव' ने जिह्वा पर काष्ठ की एक खोल चढ़वाकर मौनव्रत ले लिया था। संन्यासी होते हुए भी ये उच्च कोटि के रसिक रामभक्त है। हाँ, उनकी मधुरोपासना सखी नहीं, मधुर दास्यभावोपेत है, जैसा प्रकट है—

दास भाव तन मन में छायो गुरु अस राह बताई।

(वैराग्यप्रदीप, पृ० ८५)।

अयोध्या, मिथिला तथा चित्रकूट की यात्रा इन्होंने की थी। इनकी रचनाओं में अवधी, भोजपुरी और खड़ीबोली के मिश्रण से भाषासमक की चमक के साथ विशिष्ट माधुर्य आ गया है। इनकी कृतियों का विवरण इस प्रकार है—

१. अयोध्याबिंदु, २. अश्विनीकुमार बिंदु, ३. उदासीन संतस्तोत्र, ४. गयाबिंदु, ५. जानकीबिंदु, ६. पंचक्रोशमहिमा, ७. पदावली, ८. मथुराबिंदु, ९. रामरंग, १०. रामलगन, ११. रामायण परिचर्या, १२ विनयामृत, १३. वैराग्यप्रदीप, १४. श्यामरंग और १५. श्यामसुधा।

रचना का नमूना देखिए—

जगत में तीन मतवाले।
हाल मस्त कोई माल मस्त जहरी चश्मे के कोई घाले।
चश्म देवाना दर दर घूमै, मालमस्त धन के पाले।
हाल मस्त कोई राम देवाना जिसकी जीभ पड़े छाले।

(३४) **पं० उमापति त्रिपाठी 'कोविद'**—इनका जन्म पिंडी ग्राम, जिला देवरिया के पं० शंकरपति त्रिपाठी के यहाँ आश्विन कृष्णा नवमी, सं० १८५१ को हुआ था। काशी में इन्होंने श्रीकृष्णराम शेष, धन्वंतरि भट्ट तथा भैरवदत्त मिश्र से क्रमश. व्याकरण, मीमांसा तथा न्याय का अध्ययन किया था। समावर्तन संस्कार के उपरात ये परिणीत हुए और कन्यारत्न के पिता भी।

संस्कृत के उद्‌भट विद्वान् उमापति हिंदी के समर्थ कवि थे। इनकी दानवृत्ति इतनी बढ़ी हुई थी कि उन्हें उस समय का 'निराला' कहना सगत होगा। भुवनेश्वर कवि के एक कवित्त पर इन्होने उन्हें पुरस्कृत किया था।

इनकी उपासनापद्धति वृद्ध-वात्सल्य-भाव की थी। उपासनाक्षेत्र में गुरु-शिष्य-भाव रखकर भी उमापति आश्रमस्थापित श्रीविग्रह को 'गुरुसदनबिहारी' नाम से अभिहित करते थे। आराध्य का लीलागान भी उन्होंने मुक्तकंठ से किया है। संस्कृत का महान् पंडित, भाषा का समर्थ कवि 'कोविद' संगीतज्ञ भी था। विविध रागिनियाँ, कहरवा, पूर्वी, जोगिया आदि लोकगीत उन्होंने लिखे हैं। संस्कृत तथा हिंदी को मिलाकर उनकी ४१ रचनाएँ बताई जाती है—

१. न्यायतरंगिनी, २. महातत्वप्रकाश, ३. कपिलमूलसारोद्धार, ४. पतंजलि-

सूत्र-वृत्ति, ५. वेदांतकल्पलतिका, ६. वृत्तप्रकाश, ७ भाष्यटिप्पण, ८. शब्देंदुधराधर, ६. व्याख्येंदुधराधर, १०. पूर्वपक्षीय, ११ वेदरतुतिटीका, १२. सख्य-सरोज-भास्कर, १३ गीतगोविंद, १४. उमापति-शतक-त्रय, १५ सुधामदाकिनीस्तोत्र, १६. सरयूअष्टक, १७. सीताशतनाम, १८. वर्णमाला, १६. रामजानकीस्तोत्र, २० रम्यपदावली, २१ दोहावली रत्नावली, २२. श्रीधरशतक, २३. रुद्राष्टक, ३४ दर्शनशतक, २५. कालिकाअष्टक, २६. अयोध्याविंशतिका, २७. करुणाकल्पलता, २८. रघुनाथस्तोत्र, २६ हनुमदष्टक, ३०. लवोदरअष्टक, ३१. रामस्तोत्र, ३२ जानकीस्तोत्र, ३३. रघुनंदनषोडशक, ३४ हनुमत कुंडलिया, ३५. विचित्ररामायण, ३६ राममगीत, ३७. ऋतुवर्णन, ३८ होलिका-विसर्जन, ३६. अक्षरमालाभाष्य, ४०. दिग्विजयशतक तथा राममहस्रनाम।

इनकी रचना की बानगी परखिए—

श्रीगुरु सदन बिहारी खेलो होरियाँ हो भारी।
लै सँग बंधु, सुहृद दासादिक रंग भरत पिचकारी।
उत सखियाँ मुखिया लखु लानी मन सिया राजकुमारी।
पीत अपीत गुलाल थाल सत बरसत यक यक बारी।
जगत जाल यह ख्याल व्याकुलित जय जय सबहि पुकारी।
गान तान नाना विधि धारहिंन गुनि जन गाउ सुधारी।
लखि लीला अद्भुत शीला सुर बरसत सुन मदारी।
'कोविद कवि' छवि रघुवंशी का अनिहि प्रणमी भारी।

(३५) **रामशरण**—तिलोई राज्य (अवध) के समसा उपकंठ में स्थित पंडितपुरवा ग्राम में पं० रामस्वरूप ज्योतिषी के यहाँ आषाढ़ शुक्ल २, सं० १८६४ को रामशरण का जन्म हुआ। शैशव में मातृहीन पौत्र का लालनपालन दादी ने किया। जागतिक विरक्ति के कारण ये अधिक पढ़ लिख न सके। पं० रामदत्त ने यत्किंचित् शिक्षा इन्हे दी। १६ वर्ष की अवस्था में ये प्रयाग होते हुए अयोध्या आए और सुग्रीवलीला पर महात्मा गरीबदास को अपना दीक्षागुरु बनाया। फिर काशी आए। काशी से अयोध्या आने पर कनकभवन के लिये पुष्पानयन व्रत निष्ठापूर्वक पालन किया। फिर दक्षिण यात्रा में कन्याकुमारी, तिरुपति आदि गए और वहाँ समादृत हुए। वहाँ कुछ दिन रुककर जगन्नाथपुरी को प्रस्थान किया। यहाँ सत हरिहर प्रसाद ने सख्यभाव का संबंध ग्रहण किया। फिर वे मिथिला आए। पचारी में किन्हीं रामउदारसिंह द्वारा पक्की कुटीनिर्माण के प्रस्ताव को ठुकरा दिया। सेवकों ने कच्ची कुटी के चतुर्दिक् धन गाड़ने की योजना बनाई परंतु रामशरण अप्रसन्न होकर जनकपुर आ गए। यहाँ से वे कौआही आए। यदाकदा वहाँ से ये अयोध्या आया करते थे।

सख्य भावावेशी महात्माओं में अद्वितीय रामशरण की जन्मभूमि अवध, पर कर्म-

भूमि मिथिला रही है। शृंगारी भक्तों की भाँति उन्होंने प्रभु की बिहारलीलाओं का वर्णन किया है। सखा वे है पर रघु, निमि या ऋषिवंशी नही।

सोहर छंद और जनक-हल-यज्ञ, जानकीजन्म तथा फुलवारीलीला प्रभृति विषय तथा भोजपुरी शब्दबहुला भाषावाली इनकी कृतियाँ लोकतंत्री के तारों को झंकृत करने की क्षमता रखती है। उनके लिखे दो ग्रंथ है। रामतत्वसिद्धांतसंग्रह और मैथिली-रहस्य-पदावली। रचना का उदाहरण देखिए--

> हलवा जोतै ते राजा जनक न ये हो राजा जनक न हो।
> ललना अनुपम कन्या पाये सुमोद बढ़ायेल हो।
> मास बैसाख शुक्ल पक्ष नवमी न हो।
> ललना सीतानाम धराये मुनिन गुन गायेल हो।
> वेद पुरान प्रसंसत जाहि प्रसंसत हो।
> ललना सुनयना जू गोद खिलायिल हिये हुलसाइल हो।
> 'रामसरन' मिथिलेस द्वार पर मिथिलेस द्वार पर हो।
> ललना चहुँदिसि मंगलचारु सुसोहर गायेल हो।

२--रसिकेतर रामभक्त कवि

(१) **लाल कवि**--अन्यत्र अन्य प्राचीन कवियों की भाँति 'लाल' कवि का जीवन-वृत्त अज्ञात है। ये बरेली निवासी थे।[1] डा० बाबूराम सक्सेना ने एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल तथा नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, की खोज रिपोर्ट के आधार पर इनका नाम लालदास गुप्त लिखा है।[2] वस्तुत. अंत.साक्ष्य पर आधृत भूल विचारोपेक्ष्य है--

> वेद उक्ति अनुभव जुगुति जनम रतन की खानि,
> लाल गुप्त यहि प्रगट किय 'औध विलास' बखानि।

गुप्त को लाल का अंग मानना असंगत नहीं है, परंतु प्राचीनकाल में क्षत्रिय नाम ही गुप्त युक्त होते थे। आलोच्य काल में अन्य जातीय कवियों के आस्पद मिलते हैं, वैश्यो के नहीं। वस्तुतः उक्त दोहे में 'गुप्त' को प्रकट का विपर्यय मानकर 'लाल' के आगे कर्ता-चिह्न 'ने' के अध्याहार से सब बात बन जाती है। कवि ने ग्रंथ में 'लालदास' छाप कहीं नहीं डाली है।

इनका निवास निश्चय ही अयोध्या के बाहर था और ग्रंथसमाप्ति पर ये रमता जोगी की भाँति अयोध्या से अन्यत्र चले गए थे। इनकी एक कृति 'अवधविलास' उपलब्ध

---

१. डा० रामकुमार वर्मा : हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (१९४८), पृष्ठ ६७६।

२. एवोल्यूशन अव अवधी, पृ० १२।

है, जो वैशाख शुक्ला पूर्णिमा से आरंभ होकर, फाल्गुन शुक्ला पंचमी, सं० १७०० में पूर्ण हुई थी। तुलसी की शैली मे रचित 'अवधविलास' मे न गुरुता है, न गाभीर्य, न विराट् कल्पना की नियोजना है और न औदात्य। चरित्रसृष्टि और भावव्यंजना भी उच्चकोटि की नही है। देश-काल-दोषों की भरमार है। ये त्रेता के राम शाकटायन का व्याकरण, सस्कृत की लघुत्रयी एव बृहत्त्रयी पढ़े हुए है।[1] कवि ने कथा के बीच विविध मंत्रों, वाणियों, भक्तिपद्धतियो, प्राणिभेदों, अष्टयोगो, धौती, नेती, वस्ती, गजकारा तथा नादबिंदु आदि के विषय मे लिखकर अपनी बहुज्ञता प्रकट की है।

उनकी कविता का एक उद्धरण नीचे दिया जा रहा है जिसमे राम-वन-गमन पर जड़चेतन को वेदनावलयित दिखाया गया है और गाधी जी का सत्याग्रह आदोलन स्व० श्री मैथिलीशरण गुप्त के 'साकेत' के विनत विद्रोह की भाँति 'विषाद' और औत्सुक्य सचारियो के साथ छिड़ा हुआ है—

हिनहिनाइ घोरे दुख करही। नैन नीर भरि भरि गिरि परही।
रामहि जात देख पछिताए। हाथिन्ह तोरि जँजीर बहाए।
धारहि धूरि सीस गज धूनी। जिगव राम बिन बात त्रिहूनी।
कलस ध्वजा ना धीरज धरही। महलन्ह पर ते गिरि गिरि परही।
जिन जहँ सुने तहाँ ते दौरे। कोउ रथ कोउ पग कोउ चढ़ि घोरे।
पथहि रोकि रोकि रह ठाढ़े। चलन न देहि मोह अति बाढ़े।

(२) बारहट नरहरिदास—टेलाग्राम (जोधपुर) निवासी नरहरिदास का कविताकाल सं० १७०७ के आसपास अनुमानित है। यद्यपि इनकी कविता यथेष्ट प्रचार न पा सकी, तथापि उनका विषयचयन, छंदयोजना प्रशस्य है। इनकी निम्नलिखित कृतियों का पता चला है—

१. अवतारचरित्र, २. अहल्या पूर्वप्रसंग, ३. दशमस्कंध भाषा, ४ नरसिंह-अवतार-कथा, ५. बानी और ६. रामचरित्रकथा (काकभुशुंडि-गरुड-संवाद)।

रचना का एक उदाहरण देखिए—

यहि प्रकार कौशलकुमार ऋषिनारि उधारिय।
इंद्र धामपति शाप मोषि सिल देह सुधारिय।
पावन पदरज परस पाप परिहरि पुनीत भय।
सुमन बरषि सुर गगन बानि जस गावत जय जय।
जेहि चरन सरन नरहरि सुकवि विग्रह बंधन छोंद गनि।
सोइ राम करन कारन समथ महाबाहु अवतार मनि।

---

१. हस्तलिखित अवधविलास, अध्याय १३।

(३) **दौलसिंह**--विशेष विवरण अज्ञात रहने पर भी इनका आविर्भाव विक्रम की १८वी शताब्दी के पूर्वार्ध में निश्चित है, इसलिये कि इन्होंने १७५० वि० में ५३ तरंगो में विभक्त 'रामरसार्णव' नामक ग्रंथ लिखा था। इसमें रामचरित्र के साथ दशावतार, मार्कंडेय, गाधिचरित्र मानस की दोहा चौपाई शैली में तथा यत्रतत्र ब्रज, मराठी तथा भोजपुरी पुट सहित अवधी भाषा में लिखा है।

(४) **कलानिधि**--इनका वास्तविक नाम है श्रीकृष्ण। इनका आविर्भाव काल सं० १७६६ अनुमानित है। बूँदी के महाराज बुद्धिसिंह के आश्रित इस कवि ने अनेक ग्रंथो का प्रणयन किया है जो सरस और सुदर है। कृतियो के नाम है--१. शृंगार-रस-माधुरी, २. वाल्मीकि रामायण, ३. रामायणसूचनिका, ४. वृत्तचंद्रिका (छंदशास्त्र), ५. नवराई तथा ६. समस्यापूर्ति।

इस नाम के कई कवि हुए है। मिश्रबंधुओं ने ६६६ संख्यक कवि पर कलानिधि का परिचय दिया है जो तैलंग ब्राह्मण है और नाम है कृष्णभट्ट। यह वही कलानिधि है। रचना का एक उदाहरण लीजिए--

हरी सारी घूँघट घटा की छवि गहि ओट,
अनमित छवि छटा दामिनी की जगी है।
कलानिधि कालिंदी के हरित प्रवाह परि,
परिणत चंद की किरनि छवि लगी है।
कैधों सोभा सुधा की अलक उरगनि बीच
विमल विलोकि मुनि मनन में खगी है।
सुंदरी के बदन बतीसी मैं रदन पाँति
सीसा मै रतन कांति मानौ जगमगी है।

(५),(६) **गोपालचंद्र मिश्र और माखन**--गोपालचंद्र का जन्म सं० १७२० मे छत्तीसगढ़ के रतनपुर नामक स्थान मे हुआ। इनके पिता गंगाराम तथा पुत्र माखन भी कवि थे। रतनपुरनरेश के ये दीवान भी रहे थे। गोपालचंद्र ने खूब तमाशा (सं० १७४६) जैमिनि अश्वमेध (१७५२), सुदामाचरित्र (१७५६) तथा भक्तिचिंतामणि (१७५६) आदि ग्रंथ लिखे है। 'रामप्रताप' पिता पुत्र की सम्मिलित कृति है। ग्रंथ मे रचनाकाल नही दिया गया है। परंतु अनुमानतः वह १७७० के लगभग लिखा गया होगा जब माखन प्रायः २५ वर्ष के होंगे और पिता ५० वर्ष के।

गोपालचंद्र की ये कृतियाँ श्री लोकनाथ द्विवेदी सिलाकारी के अनुसार प्रकाशित हो चुकी है। रामप्रताप में बडे आकार के ३७६ पृष्ठ है। शिथिल भाषा सामान्य रसात्मकता तथा हीन कोटि के शीलनिरूपण के साथ रामप्रताप में मध्यमकोटि का कवित्व है। चरित्रचित्रण में तो कवियों की प्रतिभा कुंठित सी हो गई है। दोनों की रचनाओं के उदाहरण लीजिए--

(१) जहँ कामन क्रोधन लोभन मोहन द्रोहन की सब मीमखुटी।
जहँ नीदन भूखन त्रासन ह्रास विलासन साधन माध जुटी।
जहँ भक्ति 'गुपाल' सनातन चारहुँ चारहुँ मुक्ति समाज जुटी।
रमिए रघुनंदन जू रचिके तहँ पंचवटी तट पर्णकुटी।

(२) उत्तरहीन बसीठ, कृपण कायर सेनापति,
प्रोहित कामी कुटिल जुधकारिन ती संगति,
लोभी दानाध्यक्ष विप्रवृषली पतिपूजन,
वृद्ध गऊ संकल्प बोधि मिथ्याहि द्विज जन.
अविवेक दान अभिमान युत दुनहि देव फिर दीजिए,
कहि 'माखन' भनि न कर्म यह जान बूझकर कीजिए।

(७) सहजराम—सहजराम का जीवनवृत्त भ्रांतियों की कुहेलिका में आच्छन्न है। मिश्रबंधु तथा लाला भगवानदीन इन्हें बँधुआ ग्राम, जिला सुलतानपुर का निवासी सनाढ्य ब्राह्मण बताते है। शिवसिंह सेंगर ने इनका जन्म सं० १६०५ लिखा है, ऐसा संकेत मिश्रबंधुओं ने किया है। परंतु अपने महाकाव्य रघुवंशदीपक का रचनाकाल कवि ने यों दिया है—

संवत् सत्रह सै नब्बासी। चैतमास ऋतुराज प्रकाशी।

अतः स्पष्ट है कि यह कवि विक्रम की १८वीं शताब्दी में हुआ, परंतु सेंगर की भूल से ही मिश्रबंधुओं ने कवि को भारतेंदु युग में स्थान दिया है।[1]

सहजराम जी के जन्मस्थान, जाति आदि के संबंध में जो भ्रांतियाँ फैली हुई हैं उनका निराकरण प्रस्तुत लेखक कर चुका है।[2] यहाँ निष्कर्ष रूप में यह उल्लेख्य है कि सहजराम जाति के वैश्य थे। इनके 'रघुवंशदीपक' ग्रंथ की हस्तलिखित प्रतियाँ हरदोई जिले के प्रायः वैश्यपरिवारों में ही प्राप्त हुई हैं। 'दीपक' के प्रकाशक श्री रामभरोसेलाल को यह ग्रंथ हरदोई जिला निवासी अपने मामा जीवाराम के घर मिला है और श्री जीवाराम के बाबा के यहाँ सहजराम बराबर आया जाया करते थे।

हरदोई का प्राचीन नाम 'हरिद्रोही' कहा जाता है। पिता का स्मृतिचिह्न शेष न रहने पर भी भक्तराज प्रह्लाद के नाम का प्रह्लादघाट नगर के दक्षिण पश्चिम आज भी विद्यमान है। कवि का वन से प्रत्यागत राम द्वारा एक विमान पकटाकर सीता को विलोक-भ्रमण कराते समय प्रह्लादभूमि ही को प्रणाम करते दिखाना कालिदास और तुलसी की भाँति उसके मातृभूमिप्रेम का परिचायक है।

सहजराम की बही पलटू साहब का अखाड़ा, रामकोट, अयोध्या में रखी है। मिश्र-

---

१. मिश्रबंधुविनोद, भाग ३ (द्वि० संस्करण), पृ० १२०६।

२. हिंदी के प्रबंधकाव्य (सं० १७००–१६००), चतुर्थ अध्याय (अप्रकाशित)।

वृत्ति को निषिद्ध समझकर सत्संगप्रेमी सहजराम ने अयोध्या जैसे तीर्थ में आटा दाल की दूकान खोली थी। 'दीपक' की भाषा अवधी तो है ही, उसमें हरदोई जिला के ठेठ ग्राम्य वातवारण में प्रयुक्त होनेवाले शब्दों का प्राचुर्य है।

अंतःसाक्ष्य तथा उपरिनिर्दिष्ट तर्कों के संदर्भ में हरदोई जनपद का कोई स्थान इनकी जन्मभूमि हो तो आश्चर्य नही। परंतु यह निश्चित है कि इस जिले से इनका इतना गहरा संबध है जितना जन्मतः किसी व्यक्ति का उसकी जन्मभूमि से हुआ करता है। सुलतानपुर में प्रायः सरयूपारीय ब्राह्मण रहते है, गाँवों में तो सनाढ्य दुर्लभ ही है। अतः सहजराम को सनाढ्य कहना भी अपलाप है।

अयोध्या के प्रसिद्ध संत रामप्रसाद इनके गुरु थे।[1] सहजराम के शिष्यत्व से संबद्ध एक रोचक घटना प्रसिद्ध है। संत रामप्रसाद के नाम सहजराम की बही में ५००) पहले ही हो चुके थे, अतः उन्होने सौदा मँगाने पर इंकार कर दिया। फिर क्या था ? रामप्रसाद के छद्मवेश में भगवान् गए। पुराना ऋण चुकाया, २००) अग्रिम देकर सामान भेजने की बात कही। बही पर सहजराम ने हस्ताक्षर करा लिए। सहजराम रामप्रसाद के आदमी की प्रतीक्षा करते करते थक गए तो स्वयं उनके पास गए और कहा कि आपने सामान के लिये आदमी क्यों नहीं भेजा। महात्मा जी इंकार हो जाने के कारण आदमी कैसे भेजते ? फिर तो सारा रहस्य खुल गया। सहजराम ने ऐसे सिद्ध संत का शिष्यत्व तत्काल ग्रहण किया।

सहजराम की अक्षय कीर्ति 'रघुवंशदीपक' के अत्यंत लघ्वंश प्रह्लादचरित्र को मिश्र-बंधुओं ने स्वतंत्र रचना भूल से माना है। उनकी दूसरी कोई रचना उपलब्ध नही। प्रह्लादचरित्र श्रीरामकिशोर कपूर द्वारा सरस्वती सदन, हरदोई की ओर से प्रकाशित है।

आगे के पृष्ठों मे 'रघुवंशदीपक' का कुछ विस्तार के साथ परिचय दिया जा रहा है, कारण कि इस रीतियुगीन महाकाव्य ने विद्वानों की इस धारणा को निर्मूल सिद्ध कर दिया है कि रीतिकाल के कवियों की रुचि प्रबंधकाव्य सर्जनोन्मुखी न थी और ह्रासशील संस्कृति-पूर्ण हिंदी का उत्तर मध्यकाल महाकाव्य के लिये अनुर्वर सिद्ध हुआ।

महाकाव्य रघुवंशदीपक

रीतियुग मे सहजराम सदृश संत का आविर्भाव एक घटना है। यों, उस युग मे और भी भक्त कवि हुए है किंतु भक्ति के साथ तदनुरूप वाणी का प्रसाद उन्हें प्राप्त न था। तथा अनेक सत्कवि भी हुए है, पर कवित्वशक्ति के साथ उन्हे वह भक्त हृदय न मिला था जिससे वे प्राकृत-जन-गुणगान छोड़कर प्रभु का यशोगान करते। मुद्राओं के लोभ से मुखमुद्राओं के चितेरे बिहारी, शिवाप्रशस्ति मे 'शिवराजभूषण' रचनेवाले भूषण, अपने

---

१. अनुमानतः यह वही रामप्रसाद हैं जिन्होने शाह को अपने समान सिद्धभक्त का नाम बताने के लिये 'प्रेमसखी' का उल्लेख किया था। देखिए रसिक भक्तकवि संख्या ११।

पांडित्य के बल पर भूपेंद्रों के दरबार में संमानेच्छु देव, ठेस लग जाने पर प्रेम की लौकिक पीर को पारलौकिक पीर मे परिणत करनेवाले घनानंद और नायिकाभेद पूछने पर अपने साले से मात खानेवाले पद्माकर जैसे रससिद्ध कवि युग की परिस्थितियों के शिकार हुए। विदेशी शासनसत्ता से संत्रस्त खंड-जीवन-यापन करनेवाली परिशीर्यमाण हिंदू जाति को मुक्तक छंदो की छमक, अलंकारों की चमक तथा राग रागिनियों की गमक मानवीय चेतना के संतुलित तथा लोकहितकारी धरातल पर स्थापित नही कर सकती थी। ऐसे समय में संवेदनशील हृदय तथा उत्कृष्ट कारयित्री प्रतिभासपन्न कवि की उद्भूति समय की माँग थी।

'दीपक' मसूबा बाँधकर महाकाव्य का रूप देने के लिये सायास नहीं लिखा गया है। वास्तव में अपने अनुगामी के हृदय मे बैठकर 'तुलसी' ने 'मानस' मे जो लिखा था वह और जो लिखना था वह दीपक मे लिखकर पूरा कर दिया—

निज अनुगामी जानि कै स्वामी तुलसीदास,
सहजराम उरवास करि कीन्हो ग्रंथ प्रकाश। (पृ० ७०६)।

तुलसी की प्रातिभ प्रवर्हता 'कवित विवेक एक नहि मोरे' से प्रकट है, अनुगामी की वैनयिकी बुद्धि और कारयित्री प्रतिभा—

भगिनि तुम्हारि आदि पटरानी, चेरी चारु चतुर मम बानी।

मे व्यक्त है। महारानी का अनुगमन, सेवा तथा स्वामिनी कार्य में व्यतिक्रम आने पर यथामति उनका दूरीकरण चतुर चेरी का काम है। इस दृष्टि से 'दीपक' की उद्भावनाएँ राम-कथा-प्रेमियो की परपरागत शकाओं के समाधान बन गई है। फिर व्यावहारिक मनोदृष्टि, प्रत्यक्ष जीवनमूल्यो की निर्धारणा आदि सहजराम को देश के प्रकृत महाकाव्य-कारों की कक्षा मे खडा करती है।

मधुमाक्षिक वृत्ति की बात कहकर सग्रहणीय और त्याज्य का विवेक वह नहीं खोता। भक्त का व्यक्तित्व दीपक मे पूर्ण निखार पर है, फिर भी विश्व के नाना कार्य व्यापार, जागतिक अनुभूतियाँ, सामाजिक भावनाएँ, राजनीतिक सिद्धात, अरूप सवेदनाएँ, क्रियात्मक जीवन की व्यापकता तथा समग्रता आदि भी संघटित है। और कविकौशल ने जहाँ प्रसंगानुकूल छदोयोजना, सवाद, भावविह्वलता आदि को झलका दिया है वही उसके प्रातिभ प्रयास ने लोकाचार, अध्यात्म, युद्ध आदि विधाओं, कलाओं तथा नीतियो को भी ऊर्णनाभ की भाँति पकड लिया है। 'प्रतिभाद्यासर्वम्' के अनुसार अनौपदेशिक ज्ञान से उद्भूत सर्वज्ञता के उदाहरण उनके विस्तीर्ण आधारफलकवाले काव्य के विविध प्रसंगो मे मिलते है। नि संदेह उनकी कविता उस स्वामिनी की 'चतुर चेरी' है, जो विश्वसाहित्य के इने गिने महाकाव्यो में अपना स्थान रखती है।

'रघुबंशदीपक' सहजराम की आत्मा का संगीत है अत. न उसमे विलष्ट कल्पनाएँ हैं, न केशव सा छंदवैविध्य है और न उसकी भाषा अनावश्यक अलकारो के बोझ से दबी हुई है। आडबरो के पहाड़ से बचकर रामकथा का सहज प्रसन्न प्रवाह सबके हृदयक्षेत्रों को सींचने में समर्थ है।

भाषा—सहजराम ने जिस भाषा का प्रयोग किया है वह संस्कृत की गंगोत्री से निकली है। प्राकृत भाषा से प्रभावित शब्दप्रयोग कर्णगंगा और अलकनंदा का पवित्र जल है, विविध विदेशी भाषाओं तथा देशी विभाषाओं की शब्दावली यमुना, घाघरा आदि की भाँति उसकी सहायिका हैं। विदेशी शब्दो का सुष्ठु प्रयोग यह प्रकट करता है कि अवधी भाषाक्षेत्र में विदेशी शब्दों ने अनुप्रवेश नही किया है, वरन् वे अभ्यागत है अतः सत्कृत भी।

सामान्यत: प्रसादगुण, कोमलावृत्ति तथा पाचालीरीति 'दीपक' मे दिखाई देती है। उनकी विदग्धता तथा सांकेतिकता उनके द्वारा प्रयुक्त शब्दशक्तियों मे समाहित है। बोधव्य वैशिष्टय विभूषित आर्थी व्यजना लोपामुद्रा से सेतुबधवृत्त न कहने की सीता के प्रति राम की मनुहार मे अंतर्हित है।

वस्तु से काव्यार्थापत्ति अलंकार ध्वनि 'चतुर चौदही माँह' से निकल रही है। उनके छंदों का विवरण रामभक्ति काव्य की छंदोयोजना में दिया जा चुका है। दीपक में प्रयुक्त अलंकार सायास समवेतीकृत चमत्कृतिप्रसाधन नही, अभिव्यक्ति के साधन है। स्वयमभ्युपागत हैं।

आलोक प्रकाशित करनेवाला 'दीपक' निर्दोष नही है। उसमें कुछ दोष भी हैं, यथा अनवीकृतत्व, च्युतसंस्कृति, अधिकपदत्व, न्यूनपदत्व, अक्रमत्व तथा देशकाल आदि। परंतु ये दोष दीपशिखा के फूल की भाँति है जिसके हट जाने पर विशेष प्रकाश फैलता है।

आंतरिक गुण : जीवनरस

महाकाव्य की आत्मा है उसकी जीवतता तथा शक्तिमती प्राणवत्ता। इस आभ्यंतरिक गुण के अभाव मे सभी बाह्य विधान व्यर्थ हो जाते है। सहजराम ने देश के महान् महाकाव्यकारो वाल्मीकि, व्यास, कालिदास और तुलसी आदि की भाँति भारतीय संस्कृति की मूल चेतना को ग्रहण कर उसे युगानुरूप पर्यावरण में चित्रित किया है। 'दीपक' उपेक्षित को आलोक मे लाता है और आदर्श को यथार्थ की भी भूमि पर अधिष्ठित करता है। फिर 'मानस' के पूर्ण तथा समग्र जीवनचित्रण के बीच भी छूटे हुए पक्ष यहाँ प्रस्तुत किए गए हैं तथा राष्ट्र को स्वस्थ, सशक्त देखने के विचार से जीवन के सर्वांगीण स्वरूप का चित्रण कर स्वस्थ वृत्तियों को संघटित किया गया है। निःसंदेह इसी मे महाकवि सहजराम की प्राणवत्ता तथा दीपक का जीवत प्रकाश प्रकट है।

अब तुलसी के आनुगत्य के साथ कवि के 'क्वचिदन्यतोपि' पर आइए। वह कुछ है आध्यात्मिकता एवं पार्थिवता जैसी दो बूटियों को कूट पीसकर, हृदय की भट्ठी की मनोवैज्ञानिक मंद आँच देकर, 'दीपक' के भांड से संलग्न छंदनलिकाओं द्वारा अभिस्रावित

जीवनरस, जो युग युग के लिये कल्याणप्रद सिद्ध हो सकता है, उस युग के लिये तो लाभप्रद था हो।

वस्तुत. पाठकों की चित्तवृत्तियों का उदात्तीकरण, उनके अंतर्मन में मर्मस्पर्शिनी भावानुभूतियों की उद्रेकक्षमता, युगयुगीन जातीय जीवन में चिरंतन प्राणशक्ति का संचार-सामर्थ्य तथा देशकाल की सकुचित सीमा से निकालकर साहित्य को चिर नवीन, मधुर और विराट् बनाए रखनेवाले गुण दीपक में विद्यमान हैं। उसके कुछ प्रसंग, जैसे राम का वात्सल्य, भरत-दशरथ-वार्तालाप, गोड़िन-राम-संवाद तथा मंथराउद्धार आदि यदि 'मानस' में मिला दिए जायँ तो उसकी कुछ और ही शोभा हो जायगी। 'दीपक' 'मानस' की पुनरुक्ति नहीं है। उसके प्रसगों की उद्भावना प्रकरणवक्रता से बढ़कर प्रबंधवक्रता की व्यवस्था करती है। अत वह अवधी भाषा के सर्वश्रेष्ठ रत्नों 'रामचरितमानस' और 'पद्मावत' की भाँति समादरार्ह है। यदि 'मानस' भक्तियुग का चिंतामणि है तो रघुवंश-दीपक शृंगारकाल की अखंड ज्योति। 'मानस' के उपरात महाकाव्य की टूटती हुई प्रतीत होनेवाली शृंखला में रीतियुग के महोगत महाकाव्य के रूप में इस कड़ी का बड़ा महत्व है।

(८) सरयूराम पंडित--लोक में 'सरयूराम पंडित' नाम से ख्यात कवि का जन्म अंतःसाक्ष्य के आधार पर मणिपुर (आधुनिक मनवाँ, जिला सीतापुर) है। मणिपुर में बभ्रुवाहन की राजधानी थी। वहाँ की सरिता (सरायन) तथा कोट का वर्णन कवि की चक्षुसाक्षिता पर आधृत है। इन्होंने सं० १८०५ वि० में ७६०० छंदों में, जिनमें दोहा चौपाई प्रमुख हैं, 'जैमिनि पुराण' लिखा है। अवधी भाषा में युधिष्ठिर राजसूययज्ञ, चंद्रहास, मयूरध्वज आदि के वृत्तों के साथ कुछ रामायणीय प्रसंग सीतात्याग, रामाश्वमेध आदि वर्णित है। इस पौराणिक प्रबंध की भाषा परिष्कृत और प्रवाहपूर्ण है। रचना गंभीर तथा उच्च कोटि की है। एक उदाहरण देखिए—

> बिलपति बहुबिधि जनक दुलारी, सिथिल सरीर नयन बहबारी।
> पुनि पुनि सुरति करत सब केरी, लै लै नाम पुकारति टेरी।
> हे प्रिय देवर भरत सुजाना, तुम मोहि चाहत प्रान समाना।
> यहि अवसर तुम मोहि बिसारत, आइ न संकट मोर उबारत।
> प्रीति करत रिपुदवन न थोरी, काहेक सुरति बिसारत मोरी।
> हे प्रिय देवर लछिमन लाला, तुमहू तज्यौ मोहि यहि काला।

(९) भगवंतराय खीची—असोथर (जिला फतेहपुर) के महाराज भगवंतराय खीची स्वयं सुकवि थे। 'मल्ल' के अतिरिक्त 'श्यामल', 'सारंग' और भूधर को इनका प्रश्रय प्राप्त था। इनकी 'सातौ कांड रामायण' बहुचर्चित होने पर भी अप्राप्त है। 'हनुमत-पचीसी' की रचना इन्होंने सं० १८१७ में की थी। इनके फुटकल प्राप्त ५० छंद, लगता है, रामायण के ही अंश होंगे। स्वभाव से उदार और चरित्रनिष्ठ महाराज की आनुप्रासिक कविता में ओजगुण की प्रधानता है। इनका एक मनहरण देखिए—

सुरवरगिरि सों सरीर प्रभा श्रोणित सी,
 तामैं झलझलै रंग बाल दिवाकर को।
दनुज सघन वन दहन कृशानु महा,
 श्रोज सो विराजमान अवतार हर को।
भनै भगवत पिंग लोचन ललित सोहै
 कृपाकोर हेरयो विरदैत ऊँचे कर को।
पवन को पूत कपिकुल पुरहूत सदा
 समर सपूत बदौ दूत रघुबर को।

(१०) **मुरलीधर मिश्र**--मुरलीधर मिश्र 'जगनामा' के रचयिता श्रीधर उर्फ मुरलीधर से भिन्न है। अपने 'नलचरित्र' के ४०वे प्रकाश मे कवि ने जो परिचय दिया है उससे प्रकट है कि उनके पूर्वज आगरा किला के पास मथुरिया टोला मे रहते थे। बाद में ये गंगा यमुना के बीच गभीरपुर (प्रयाग के निकट) आ बसे। मुगल बादशाहो तथा राजपुरुषो से इनका वंशपरपरागत संबध रहा था। इनका वशवृक्ष इस प्रकार है--

परमानंद
|
कपूरचद
|
पुरुषोत्तम (सुकवि)
|
प्रेमराज
|
पृथ्वीराज (सुकवि)
|
दिनमणि (ज्योतिषी तथा शिवभक्त)
|
दिनमणि के अनेक पुत्रो में से एक
|
मुरलीधर

मुरलीधर रामभक्त थे या रघुबर नाम के गुरु के शिष्य, यह संदेह निम्नाकित पंक्तियों से उठता है।

विप्र माथुर वंश भारद्वाज प्रगटयो आय।
पिता दिनमणि पढे ज्योतिस भये ज्योतिसराय।
पुत्र मैने पढ़ी कविता भयो रघुबरदास।
नाम मुरलीधर दियौ उन कियौ जगत प्रकास।

वस्तुतः अपना विशद परिचय देनेवाला कवि अपना पूर्वनाम भी अवश्य देता, अतः 'उन' सर्वनाम पिता के लिये है और 'रघुबरदास' राम का भक्त होना सिद्ध करता है।

मुहम्मदशाह (सं० १७७६–१८०५ वि०) के यहाँ नौकरी तथा नादिरशाही आक्रमण के उल्लेख से उनका उपस्थितिकाल स्पष्ट हो जाता है। भारद्वाज गोत्रीय माथुर चतुर्वेदी मुरलीधर ने चतुर्वेदियो के प्रति गहरी ललक दमयतीस्वयंवर (नलचरित्र) में दिखाई है। इनके लिखे दो ग्रंथ मिले है—१. नलचरित्र, २. रामचरित्र।

रामचरित्र का रचनाकाल कार्तिक शुक्ला ११, स० १८१८ है। इस ग्रथ की भाषा ब्रज है। इसमें यत्रतत्र शैथिल्य है। आलकारिक शैली मे किए गए वर्णनो में केशव का प्रभाव परिलक्षित है। युद्ध कभी होरी तो कभी बसंत, वर्षा या अन्य ऋतु के रूप में वर्णित है। रामचरित्र मे लव-कुश-जन्म तक की कथा कही गई है। कवि का विश्वास है कि

रससिंगार मे सुख महा, करुणारस दुखमूल

इसलिये कारुणिक प्रसग सीतावनत्रास का वर्णन उसने नही किया। रचना के दो उदाहरण लीजिए—

साधि मढी पलकै बरुनी बन, तीरथ आँसू अन्हान कियौ है।
ताप तपे विरहानल के जग हेरन भोजन छाँडि दियौ है।
औधि मिलाप की माला गहे, मुरलीधर ध्यान ही जात जियौ है।
सीता वियोग भरे रघुनाथ के, नैनन जोग को नेम लियौ है।

(११) **मधुसूदनदास**—इटावा वास्तव्य माथुर चौबे मधुसूदनदास ने किन्ही गोविंददास की प्रेरणा से आषाढ सुदी २, गुरुवार, सं० १८३९ में ६६ अध्यायो तथा ४४८ बडे पृष्ठो मे विस्तृत 'रामाश्वमेध' नामक ग्रंथ लिखा। पद्मपुराण की विषयानुक्रमणिका की पूर्ण सगतिवाली कथा से युक्त इस ग्रंथ की भाषाशैली मानस का आनुगत्य करती है।

कर्मविधान, वर्णाश्रम-धर्म-महत्व, शालग्राममाहात्म्य आदि विविध कथाप्रसंगों मे सग्रथित होकर पौराणिकता की झलक देते है। कवि ने सुमित्रा, कातिवती, सुकन्या तथा सीता आदि स्त्री पात्रों तथा सुमद, सुरथ, नीलध्वज, शिव, हनुमान, लक्ष्मीनिधि, रत्नग्रीव, पुष्कल, चित्राग, च्यवन आदि पचास पात्रों के शील निरूपित किए हैं। सवादों द्वारा चारित्रिक विशेषताएँ विशेष रूप से उभरी हैं। वीरमणि पुष्कल, शकर हनुमान, चंपक पुष्कल, लक्ष्मीनिधि राम, सुरथ राम आदि के बीच हुए कथोपकथन बड़े महत्वपूर्ण हैं। चपक ने पुष्कल को समरांगण मे नाम बताना अवैध ठहराकर अपना नाम यों बताया है—

सुमन कनक इव नामु सोहावा, मध्य पराग लिग छवि छावा,
तेहि के निकट सकै नहि जाई। मधुमोहित मधुकर समुदाई।

प्रबधपाटव, अभिव्यंजनाकौशल, भाषाविभव तथा संवाद-सुषमा-युक्त, वीर-प्रमुख शृंगार, बीभत्स, भयानक, रौद्र आदि रसों से सांद्र यह प्रबंध 'मानस' का परिशेष है, यद्यपि अवांतर कथाओ एवं धार्मिक उपदेशो के कारण प्रबधात्मकता को धक्का लगा है।

साहित्य के इतिहासकार प्रायः इसके गुणों में ही बँधकर रह गए हैं, इसके दोष यद्यपि नगण्य हैं, फिर भी उल्लेख्य हैं—

मधुसूदन शत्रुघ्न तथा हनुमान को भक्ति की झोक में त्रेतायुगीन भगवान् के करुणामय कृत्यो का उल्लेख करते दिखाते हैं--

पुनि द्रोन सुत जब क्रोध करिकै ब्रह्म सर पेरचो प्रभो,
तब नाउ धरि कर जठर महँ तुम पंडु सुत रछ्यौ कियो।

और हनुमान ने अपने शब्दो मे वीरमणि द्वारा शत्रुघ्न को बँधा देखकर 'मुनि जठर मझारा पंडु कुमारा प्रतिपाल्यो निज बाहुबल' कहा है।

ज्योनार मे 'पायस' के परोसे जाने पर विप्रगण पायस के संबध मे अनेक उत्प्रेक्षाएँ करते लगे थे। प्रीतिभोज परिसवाद गोष्ठी मे परिणत हो गया। और वेदज्ञ पडित भी, जिन्हें भोजनवेला मे मौन रहना था, 'टेबिल टॉक' करने लगे। कविता का उदाहरण देखिए—

सुनि बोले प्रभु सों हँसि बानी, सुनत विनीत हास्य रससानी।
रिपुसूदन कहँ जो तुम कहेऊ, तिहि पथ चलत इनहि पथ नयऊ।
भूप सिरोमनि तुम यह भाखा, बँधइ न विप्र वेद मत राखा।
सो तुव जनक भली विधि जाना, बध्यो श्रवण द्विजवर तकि बाना।
पुनि तुम्हारि कीरति जग माही, को अस जीव जानि जो नाही।
नारि अबध्य विदित ससारा, हनि ताड़का सुयश विस्तारा।
लछिमन सुजस सकल जग जाना, सूपनखा कीन्ही बिनु काना।
महाराज इहि भाँति करि तुअ आयसु सिरधारि,
करिहै रिपुसूदन अवसि निजकुल रीति विचारि।

(१२) **प्राणनाथ**--हिंदी में इस नाम के कई कवि हुए है। प्रस्तुत प्राणनाथ मंडलागढ़ (मध्यप्रदेश) के हृदयनगर नामक ग्राम के निवासी हरीसिह के पुत्र और घनश्याम के शिष्य थे। इन्होंने कार्तिक कृष्णा ५, सं० १८५५ को 'अगदवादि' नामक एक ग्रंथ विविध छंदो मे, जिनकी स० ३०३ है, लिखा। इसमे अंगद-रावण-सवाद वर्णित है। कविता में ओज गुण का आभास है। रचना लीजिए--

जान दैहै देस को कलेस सरसान दैहै,
साके पर पाके जस पूरित प्रभान की।
जान दै हौ ढेर ये कुबेर गन मेरु अपै,
फेरि व्योम जू पै दिवानाथ दरबान की।
'प्राननाथ' जान दैहौ एते फुरमानदार
रुद्र की सौ छाँड़ि दैहौ बानि देवतान की।
मानि कूर एरे मोहि इष्टदेव जू की आन,
जान दैहौं प्रान पै न जान दैहौं जानकी।

(१३) **हरसहाय गिरि**—रामनगर के 'सरस्वती भंडार' में सुरक्षित अपने रामाश्वमेध मे गिरि ने अपना परिचय तथा ग्रंथ-रचना-काल यों दिया है—

> मिरिजापुर नामाद्य पूर्वन्तु गिरिजापुर,
> गंगातटेति विमलं शोभित जन सकुलं।
> समग्रैश्वर्यसंपन्नं सर्वलोक मनोहरं।
> यत्र सन्यासिन. सिद्धा वसन्ति शिवपूजका:
> नव शराष्ट मही मितवत्सरे सविजयाश्विन सद्दशयातिथौ।
> हरसहाय गिरिर्हयमेधजा कथित रामकथानर भापया।

प्रकट है, इन्होने आश्विन विजयादशमी, स० १८५६ को ग्रंथ लिखा। इसमें अनुवादक वृत्ति की झलक है। भाषा पर उनका अधिकार है। वे प्रौढ़ कवि हैं। कुछ पंक्तियाँ देखिए—

> सिया बिरह लखि के हिय हारे, चलै न अनत कमा के मारे।
> कह्यौ लषन सन सुनिए ताता, अश्व न चलै किए कर घाता।
> ... ...
> प्रभु आयसु आन्यो जब मनही, क्लेशित चले अश्ववर तबही।
> चलत अश्व दच्छिन दृग फरके, लखि प्रभु विरह सीय मन धरके।
> पुनि सुपच्छिगण कृत परिवर्तन, निरखि सीय मन करि अनुवर्तन।

(१४) **मनियार सिंह**—ये काशी के ठा० श्यामसिंह के पुत्र, कृष्णलाल के प्रमुख शिष्य तथा रामचद्र पंडित के सेवक थे। अपने भाषामहिम्न मे उसके रचनाकाल सं० १८४१ के साथ इतना परिचय इन्होने और दिया है। महिम्न (३५ छंद) के अतिरिक्त सौंदर्यलहरी (१०३ छंद), हनुमतछब्बीसी, सुंदरकाड (६३ छद) तथा भावार्थचंद्रिका आदि इनकी अन्य रचनाएँ है।

हनुमतछब्बीसी के अनुसार ये काशी से बलिया चले आए थे—

> बलिया नगर निवास भयो कछुक दिन ते सुमति।

संस्कृतमिश्रित ब्रजभाषा में ओज और प्रखरता विशेष है। ये विक्रम की १८वीं शती के उत्तरार्ध में आविर्भूत हुए होंगे। उदाहरण—

> अभय कठोर बानी सुनि लछिमन जू की.
> मारिबे को चाहि जो सुधारी खल तरवारि।
> 'यार' हनुमत तेहि गरजि महाय करि,
> झपटि पकरि ग्रीव भूमि लै परे पछारि।
> पुच्छ ते लपेटि फेरि दलन ते दरदराइ,
> नखन बकोटि चोथि देति महि डारि डारि।

उदर विदारि मारि लुत्थन को टारि वीर,
जैसे मृगराज गजराज डारै फारि फारि ।

(१५) **गणेश**—कवि लालू के पौत्र, गुलाब कवि के पुत्र गणेश, काशीनरेश उदितनारायण सिंह के दरबारी कवि थे। ये महाराज ईश्वरीप्रसादनारायण सिंह के समय तक जीवित रहे। इनके लिखे ग्रंथ हैं--

१. वाल्मीकि रामायण श्लोकार्थप्रकाश, २. प्रद्युम्नविजय, ३. ऋतुवर्णन तथा ४. हनुमतपचीसी।

प्रथम ग्रंथ में ये कवि ने बालकांड के सभी तथा किष्किंधाकाड के पाँच अध्यायों का सुंदर अनुवाद किया है। आनुप्रासिक तथा ओजमयी भाषा से समृद्ध इनकी रचना से एक मनहरण द्रष्टव्य है--

बुद्धि के निधान जे प्रधान काव्य कारज मैं,
दीजै वरदान ऐसे बरन हमेस के।
दूषन ते दूरि भूरि भूषन ते पूरि पूरि
भूषन समेत हेत नवो रस बेस के।
भनत गनेस छंद छंद में ललाम रूप
भूप मनमोहै मोहै पंडित सुदेस के।
ग्रंथ परिपूरन के कारन करनिहार
दीजिए निबाहि नेम नंदन महेस के।

(१६) **ललकदास**--बेनी कवि के भँडौवा की साक्षिता के आधार पर इनका उपस्थितिकाल सं० १८६० से १८८० अनुमानित है। शिष्याधिक्य, विवादविचक्षणता, समसामयिक के प्रति ईर्ष्या से प्रेरित बेनी ने निद्य डलमऊवासियों के लिये ललकदास को एक प्रसिद्ध उपमान माना है--

बाजे बाजे ऐसे डलमऊ में बसत
जैसे मऊ के जोलाहे लखनऊ के ललकदास।

बेनी की दृष्टि में ये 'कविन सो बाद करैं भेद बिन नाद करैं महा उन्माद करैं।' परंतु इस कंठीधारी महंत ने प्राचीन रामायणों से भिन्न, वर्णनात्मक शैली में 'सत्योपाख्यान' नामक ग्रंथ लिखा है। इस ग्रंथ में कथा के स्थान पर स्वरुचि के अनुकूल जन्मबधाई, बाललीला, जलविहार, होली, झूला आदि के विशद विवरण मिलते हैं। उन्होंने यत्रतत्र 'रघुवंश' तथा 'नैषधीयचरितम्' एवं भाषा कवियों के भाव ग्रहण किए हैं। मानस' की शैली में लिखित रचना प्रशस्य है। कुछ चौपाइयाँ लीजिए--

धरि निज अंक राम को माता, लह्यो मोद लखि मुख मृदु गाता।
दंत कुन्द मुकुला सम सोहैं, बंधुजीव सम जीभ विमोहै।

किसलय सधर अधर छवि छाजै, इंद्रनील सम गंड विराजै।
सुंदर चिबुक नासिका सोहै, कुमकुम तिलक चिलक मन मोहै।
काम चाप सम भ्रकुटि विराजै, अलक कलित मुख अति छवि छाजै।
यहि विधि सकल राम के अंका, लखि चूमति जननी मुख अंगा।

(१७) **मान**--इस नाम के कई कवि रीतिकाल मे हुए हैं। मान का वास्तविक नाम खुमान है और वे 'राजविलास' के कर्ता मान से भिन्न है। डा० भगीरथ मिश्र ने लिखा है, खुमान बुंदेलखंड स्थित चरखारी राज्य के निवासी थे। चरखारी नरेश विक्रमसाहि के यहाँ भी ये रहे।[1] 'भी' से प्रतीत होता है कि वे अन्यत्र भी रहे है। संभवत. चरखारी राज्यवासी टेहरी (टीकमगढ़) भी आया हो जैसी विभिन्न राजन्याश्रयण तत्कालीन कवियो की प्रवृत्ति रही। आचार्य शुक्ल ने भी इन्हे विक्रमसाहि का आश्रित माना है[2]। इनके अप्रकाशित लक्ष्मणशतक के अंत मे दी हुई पुष्पिका से पता चलता है कि ये टेहरी के निवासी थे और श्रीमन्नारायण के प्रपत्र (प्रपुत्र=पौत्र) थे।

इषु सरवसु ससि मित बरष रवि पंचमी बसंत,
नगर टेहरो मान कवि लक्ष्मणशतक रचंत।

इति श्रीमन्नारायण प्रपत्र मान कविकृत लक्ष्मणशतक समाप्तम्।

कहते है, ये जन्मान्ध थे किंतु किसी साधु की कृपाप्रेरणा से हिंदी संस्कृत दोनों में कविता करने लगे थे। इन्होंने अनेक ग्रंथ लिखे है, जैसे अमरप्रकाश, अष्टयाम, नखशिख, नीतिनिधान नृसिंहचरित्र, नृसिंहपचीसी, लक्ष्मणशतक, हनुमानपचक, हनुमनपचीसी, हनुमान नखशिख आदि।

मान समर्थ कवि हैं। उनकी भाषा सदा भावानुकूल रहती है। यत्रतत्र तो कवि पाठक को चंद के युग मे ले जाकर बिठा देता है। राम लक्ष्मण के प्रति प्रेमातिशय्य के कारण वीरवरेण्य हनुमान के लिए कह उठते है--

धिक हनुमान कौ अमान बलसान घमसान मे पलान

और

कीरति सुहाई सूरताई की बड़ाई करै जग क्यों भहाई दूजो भाई का भरत है।

परंतु इस दाप की पर्त मे मानववृत्ति की परख का विशेष गुण छिपा है। 'लक्ष्मण-शतक' से एक छंद उद्धृत है--

---

१. हिंदी साहित्य का उद्भव और विकास (द्वितीय खंड), पृ० ५४।
२. हिंदी साहित्य का इतिहास (२००६), पृ० ३२६।

भेंटि सब साथ फेरि मूछनि पै हाथ रघु-
नाथ को नवाइ माथ तेज झलाझल कौ।
वेगि पवमान तैं विमान तैं विमान हरि,
जान हू तैं मन तैं महान महाबल कौ।
भनैं कवि 'मान' नभ सत्वर उड़ान तान,
चल्यौ हनुमान लग्यौ पथ मे न पलकौ।
रच्छसन रोक्यौ तिन्हैं टोकरनि ठोक्यो कपि
जाइकै विलोक्यो अवलोक्यो द्रोनाचल कौ।

(१८) **संतसिंह**--अंत साक्ष्य के अनुसार ये सूरतसिंह ज्ञानी के सुपुत्र और अमृतसर निवासी थे। अपने 'रामाश्वमेध' के प्रणयन के सबध में उन्होंने लिखा है--

तिन निज जन्म मुधार हित, कीन्ह्यौ यहै विचार,
राम सुजस गायन श्रवन कलिजुग मे इहि सार।

'सरस्वती भंडार', रामनगर में सुरक्षित इनके रामाश्वमेध की हस्तलिखित प्रति में रचनाकालपरक जो दोहा दिया है उसमें संख्यासूचक शब्दों पर तत्तत् अंक लिखे हुए है, देखिए--

होय[९] होय[९] गज[८] ससि[१] वरष, मिथुन शुक्ल तिथि दूज,
पूरन कीनो ग्रंथ इहि रामचरण पद पूज।

मधुसूदन और हरसहाय की तुलना मे इनकी रचना साधारण है। उदाहरण देखिए--

पूछ गहे निरषे पुनि कीसा, पवनपुत्र मुग्रीव कपीसा।
बाँधे देखि अंग दृढ पासी, तव सिय कहि आई अति हासी।
तिन बड़ भटन छुडावन कारन, शुभग गिरा सिय कीन्ह उचारन।
इहि बलवान कपीसन राई, छाड़हु इन्हहि मात बलि जाई।
इहि भट तनै समीर, जिन दाह्यौ लकानगर,
इहि सुकंठ रणधीर सब कपि भालन को नृपति।

(१९) **चेमकर्ण**--इनका जन्म धनौली (जिला बाराबंकी) में स० १८२८ में हुआ और सं० १९१९ मे इन्होंने ऐहिक लीला समाप्त की। इनके लिखे हुए ग्रंथ ये है--
१. रामरत्नाकर (संस्कृत), २. कृष्णचरितामृत, ३. वृत्तरामास्पद, ४. गुरुकथा, ५. आह्लिक, ६. रामगीतामाला, ७ पदविलास, ८. रघुराज घनाक्षरी तथा ९. वृत्तभास्कर।

कविता इनकी चित्ताकर्षक है। एक मनहरण पढ़िए--

आई है बरात कोसलेस की विदेहपुर
बसती के बालक तुरंत उठि धाये हैं।

देखि आए राजा के समाज के विभूतिभूति,
सेना चतुरंग रंग रंग के सुहाए हैं।
पूँछै पितु मातु आए भूप सुत काहे पर
छेमकर सोई बात बदि कै बनाए हैं।
दंत उजियारे भारे अरिन के फंद फारे,
ता पै दसरथ के दुलारे चढि आए हैं।

(२०) **तुलछराय**—ये मारवाड़नरेश मानसिंह की रक्षिता रानी और प्रसिद्ध प्रतापकुँवरिबाई (रसिक रामभक्त कवि संख्या ३०) की सपत्नी थी। काव्य के प्रति अनुराग इन्ही को प्रेरणा से हुआ और ये कविता भी लिखने लगी। इनके द्वारा लिखे राम-भक्तिपरक गीतों में कृष्णकाव्य की विशेषताएँ मिलती है। राम की रसिकता सखियों के साथ होली खेलने मे प्रकट है। यद्यपि इनकी रचनाओं मे राम के प्रति माधुर्य भावना का विकास दृगगोचर होता है, फिर भी इन्हें रसिक सप्रदाय के कवियो के अतर्गत नही रखा जा सकता क्योकि इनकी प्रेरणा का मूलस्वर नारीसुलभ माधुर्यप्रिय वृत्ति है। इनकी रचनाओ मे कला का अभाव तो है, परतु नारी के अन्तर्मन की कोमल अनुभूतियाँ राजस्थानी मिश्रित ब्रजभाषा मे व्यक्त है। राम के रूप पर अपना तन-मन-धन अर्पित करनेवाली तुलछराय की रचना का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

सियावर राम लगे मोय प्यारे हैं।
क्रीट मुकुट मकराकृत कुडल भाल तिलक सुखकारो है।
मुख की शोभा कहा कहूँ उनकी कोटि चंद उज्यारो है।
गल बिच कठी है रतनारी, वनमाला उरधारी है।
केसरियो वानो जरकस को, दुपटो जाल लप्पारी है।
पीतांबर पट कटि पर सोहे पायन झझर न्यारी है।
'तुलछराय' कह मो हिरदय बिच आय बसो धनुधारी है।

(२१) **नाथूराम चतुर्वेदी 'व्रज'**—ये पंचद्रविड़ातर्गत गुर्जरी शाखा के कुत्स्थ गोत्री पं० कन्हैयालाल चतुर्वेदी के घर जयसिहनगर (सागर) में माघ सुदी ७, स० १८४८ को उत्पन्न हुए थे। जयसिहनगर दाँगी राजाओ की राजधानी था। इन्होने राजगुरु ढुढिराज से शिक्षा ग्रहण की थी। इनके तीन पुत्रों और एक कन्या का उल्लेख है। पन्ना के प्रसिद्ध पजनेस कवि ने यहाँ आकर एक छंद, जिसमें सुदरी की छूटी लट का शृंगारी वर्णन था, सुनाया—

तम तम लभस रसाल पद तोयद सी
नीलक जटान पात जट त्रिजटी सी है।
पजनपनि कदर्प दीपक छटा सी छूट ,
हाटक सबोट फोट चटक फुटी सी है।

कच कुच दुबिच विचित्र कृत गति वक्र
छूट लट पाटी कुच तट लिपटी सी है।
विरह अशुभ्र पक्ष तिय तन प्रदोष पाय,
पन्नगी पिनाकी पद पूज पलटी सी है।

ऐसा ही छद सुनाने के लिये आदिष्ट 'ब्रज' ने वीररसपरक निम्न छंद बनाकर सुनाया जिससे पजनेस इनकी काव्यप्रतिभा पर मुग्ध हो गए--

ससिकर निकर गौर वितरण विघटी
गुणिन जटी सी मणि स्फटिक फटी सी है।
परस कपोलतल तरल तटी सी रस-
सुरत नटी सी वीर मन्मथ भटी सी है।
सरस सुराग रस बिमल वटी सी ब्रज
बीज अवटी सी जत्र मत्रन जटी सी है।
घन पै चिकुर लटी लीलै ग्रास बिलुलै सु,
गौरव गुमान ते गिरीस लिपटी सी है।

इनके 'समरसागर' की प्रशस्ति मे प० लोकनाथ द्विवेदी सिलाकारी ने लिखा है-- 'हिंदी मे तुलसी और केशव को छोड़कर अन्य कवि रामचरितवर्णन मे इस महाकवि से अच्छा नही।'[1]

निःसदेह वीररस प्रधान यह महाकाव्य बड़ा सुदर है किंतु महाकाव्योचित आंतरिक जीवनरस और सदेशविशेष की दृष्टि से वह 'रघुवशदीपक' से उत्कृष्ट नहीं ठहर सकता। राम-रावण-युद्ध की आधिकारिक कथा मे अन्य प्रसग जोड़े गए है। बुदेलखडी, ब्रज और प्राकृत भाषा की छहरती छटा के बीच वीररस की धारा अबाध गति से बही है। 'उर्मिला'की उपेक्षा करने पर गुरुदेव रवीद्रनाथ ठाकुर और आचार्य द्विवेदी ने वाल्मीकि और तुलसी से कैफियत माँगी थी। 'ब्रज' जी ने उनका समाधान इस छद में किया है—

कनकाचल मदिर सो सुदर सिखर ओट,
मार खल निश्चर समूह ब्यूह राखो ना।
खैंचि हय डोर अध सारथी निहोरौ 'ब्रज'
रथ करि मद गति वेग अभिलाषौ ना।
गुरु इहि बंस के प्रसस अवतस देव,
आज थल कज पुंज कमल विकासो ना।
निसि तम घोर, कर जोरें तिय प्राची ओर
होय नहि भोर हे प्रभाकर प्रकासो ना।

---

१. मध्यप्रांतीय हिंदी साहित्य का इतिहास, पांडुलिपि।

रसिकेतर रामभक्त कवियों में कुछ के विशेष विवरण न मिलने, कुछ के दूसरे रूप मे ख्यात होने के कारण यहाँ यथासंभव कालक्रमानुसार उनके नामोल्लेख द्वारा इस वर्ग के कवियों का विवरण उपसहृत है।

कपूरचद (भाषा रामायण), पीताबर (रामविलास), मानदास ब्रजवासी (रामचरित्र), ईश्वरीप्रसाद त्रिपाठी, पटीनगर, जिला सीतापुर (रामविलास रामायण—वाल्मीकि रामायण का अनुवाद), मोहन (रामाश्वमेध), सूरत मिश्र (रामचरित्र), बाबा बुलाकीदास (भोजपुरी भाषा मे रामायण), चददास (रामरहस्य), मुशी साहबसिंह (रामविलास), शिवसिंह, भिनगा, जिला बहराइच (रामचद्रचरित्र), भामदास (रामार्णव रामायण), शिवप्रसाद पाडेय, भवानीलाल, रामजी भट्ट आदि द्वारा पृथक् पृथक् समयों, क्रमश: सं० १८३०, १८४०, १८६३ मे, लिखित अद्भुत रामायण, भूपति (रामचरित्र), हरिदास (रामायण), गुलाब सिह, गगाप्रसाद उर्दैनियां (राम अनुग्रह), सर्वसुखशरण (बारहमासा विनय), भगवानदास खत्री (महारामायण) परमेश्वरीदास (अष्टयाम), देशराज चौहान (परार्धचरित्र), बहादुरसिह कायस्थ, चरखारी राज्य (वीर रामायण, रघुबर विलास, हनुमानचरित्र), बलदेवदास (३१ सर्गो, विविध छदो में, सात काडो मे राम के जीवनवृत का कवित्वपूर्ण विवेचन, रामविनोद में) तथा लोकदास (रामस्वर्गारोहण) प्रभृति कवियो ने रामभक्ति काव्य के विकास मे यथाशक्ति योग दिया है। परन्तु यह उल्लेखनीय है कि इनमे से अधिकाश कवियो मे मौलिक प्रतिभा का अभाव है और उनकी प्रवृत्ति अनुवादक की है। अगले पृष्ठो मे अन्य (सिक्ख मतावलबी) रामभक्त कवियो का सक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है।

३— अन्य (सिक्ख) मतावलंबी कवि

(१) **गुरु गोविंद सिंह**—(इनका उल्लेख संतकाव्य के अतर्गत नानक पंथ में है) भारती तथा भवानी के वरद पुत्र गणेश एव कार्तिकेय के व्यक्तित्व के समिश्रण गुरु तेगबहादुर की पत्नी गुजरी के गर्भ से पौष शुक्ला २, सं० १७२३ को पटना में अपने मामा के यहाँ गुरु गोविंदसिंह उत्पन्न हुए। जन्मकालिक गगनगिरा, 'शिर पर छत्र रहेगा', सत्य सिद्ध हुई। पितरो, पुत्रो की बलि देकर धार्मिक एव राजनीतिक कष्टो मे जननेतृत्व करते हुए ये मन से तो क्या तन से भी विधर्मी नही बने। केवल ४२ वर्ष की अवस्था मे कार्तिक शुक्ला ५, सं० १७६५ को इनकी ऊर्ध्वगति हुई।

सिक्ख धर्मावलंबी गुरु गोविंदसिंह पौराणिकता के आधारस्तंभ तथा अवतारवाद के प्रति आस्थावान् है इसीलिये उन्होंने रामावतार (गोविंद रामायण नाम से प्रकाशित) बीन कथा तथा कृष्णावतार छोर कथाएँ लिखी हैं और अनेक अवतारो का सविस्तर वर्णन किया है।

मसनवी ढंग के २२ शीर्षकों तथा ३० से अधिक छंदोवाली गोविंद रामायण में

श्रवणवृत्त, सीतात्याग, रामाश्वमेध, लवणासुरवध आदि प्रसंग अन्य रामायणों से कुछ अधिक विस्तृत हैं। अहल्याउद्धार, शबरीमिलन, अनसूयासत्संग और सुरसाप्रसंग अस्पृष्ट है। भरत को ननसाल काश्मीर[१], कौसल्या की जन्मभूमि कुड़हाम[२] है। छंदों में वीररसानुकूल ध्वनिव्यंजना है। कवि की एक मौलिक उद्भावना द्रष्टव्य है। नारी को नासिका-कर्ण-हीन करना पुरुष का पौरुष नहीं, अभद्रता है। राम लक्ष्मण ने शूर्पणखा के विवाहप्रस्ताव को ठुकराकर रूप का अपमान किया, मानों उसकी नाक काट ली—

जात भई सुनि वैन त्रिया तहँ, बैठ हुते रणवीर जती जहँ।
सो न बरै अति रोप भरी तब, नाक कटाय गई गृह को सब।

वाल्मीकि और तुलसी की लीक छोड़नेवाले कवि का प्रयास प्रशंस्य है।

गोविंदरामायण में कवि ने यद्यपि वीररस और सामरिक पर्यावरण पर ही अपना ध्यान केंद्रित किया है, फिर भी कवित्व का प्रदीप सर्वत्र अपना प्रकाश बिखेरता है, भले ही समासशैली के आंचल में छिपकर। कविता के उदाहरण लीजिए—

सीय रही मुरछाय मनै रण राम कहा मन बात धरैंगे।
तोर शरासन संकर को जिमि मोहिं बरयो तिमि और बरैंगे।
दूसर ब्याह बधू अबही मन ते मोहि नाथ बिसार डरैंगे।
देखत हौ निज भाग भले विधि आज कहा इह ठौर करैंगे।

(७) **गुलाबसिंह**—खालसा पथ का अभिन्न अंग होकर भी, निर्मलपथ सामान्य सिक्ख समाज से विशिष्ट है। खालसा धर्म का अध्यापक या विद्वद्वर्ग है निर्मल संत समुदाय। ये वेदांती, रामकृष्णादि अवतारों के प्रति निष्ठावान्, गुरु का (धूप-दीप-पुष्प आदि से) पूजन, काषायश्वेत वस्त्रधारण आदि के कारण वेद-पुराण-संमत नियमों के पालक भी हैं और खालसा मतानुयायियों से पृथक् भी नहीं। ऐसे समन्वयवादी निर्मल पथ की आकाश-गंगा मे निर्मल गुलाबसिंह की सदीप्ति सर्वाधिक भास्वर है। इनका जन्म सं० १७८९ वि० में 'सेखब' नामक ग्राम में हुआ। यहाँ आज भी इनका स्मारकचिह्न एक कुआँ विद्यमान है। स्वरचित ग्रंथों में मातापिता, जन्मभूमि तथा गुरु स्मृत हैं—

गौरी रामा मात पित सेखब नगर उदार। (भावरसामृत, पृ० ६४)।
जिन अज्ञान निवारयो दीनो मोख अपार,
मानसिंह गुरुचरण को बंदौ बारबार।
(प्रबोधचंद्रोदय, पृ० ५५०)।

---

१. गोविंदरामायण, पृ० ७०।
२. वही, पृष्ठ ५१।

स्पष्ट है, इनकी माता गौरी, पिता रायचंद तथा गुरु मानसिंह थे। जनश्रुति है कि अपरिणीत गुलाबसिंह विरक्त होकर कुरुक्षेत्र आए और मानसिंह से दीक्षा ली। पितरों की अनुनय विनय पर भी ये घर न लौटे। परंतु कृतियों के ब्याज से माता पिता को अमर करने का आश्वासन दिया। काशी में संस्कृत साहित्य का अध्ययन कर इन्होंने संस्कृत के अनेक ग्रंथों का ब्रजभाषा में पद्यानुवाद किया। गोस्वामी जी की भाँति समसामयिक ईर्ष्यालु पंडितों के प्रकोप के परिणामस्वरूप इनके अनेक ग्रंथ नष्ट हुए। यद्यपि इनकी कृतियो की संख्या दो दर्जन के लगभग बताई जाती है, तथापि उपलब्ध केवल चार हैं—१. भावरसामृत, २ मोरपंथ, ३. अध्यात्मरामायण, ४ प्रबोधचंद्रोदय।

भर्तृहरि के वैराग्यशतक का १३० कवित्त सवैया छंदों में अनुवाद है भावरसामृत। इसका रचनाकाल सं० १८३४ वि० है। १८३९ वि० मे रचित 'अध्यात्मरामायण' इसी नाम के संस्कृत ग्रंथ पर आधृत है। कवित्त सवैया के अतिरिक्त मालती, नाराच, तोमर, दोहा चौपाई आदि छंद इसमें प्रयुक्त हैं। केशव, जसवंतसिंह की भाँति गुलाबसिंह ने भी प्रबोधचंद्रोदय का अनुवाद हिंदी में किया है। संस्कृत के वेदांत-ग्रंथ स्वराज्यसिद्धि का भाषारूपातर है मोरपंथ।

गुलाबसिंह की भाषा ब्रज है परंतु पंजाबी पुट उसमे अवश्य है उसमें भरती के पादपूरक शब्दों का प्रयोग है। शैथिल्य और कसावट का अभाव रहते हुए भी भाषा प्रवाह, माधुर्य तथा स्वाभाविक अलंकारमयी है। सिक्ख होते हुए भी निर्मल गुलाबसिह राम के गुण, शील तथा चरित्र किंबहुना उनके रूप पर मुग्ध है। रामभावनामय कवि निर्मल गुलाबसिंह की रचना प्रशंस्य है। उदाहरण देखिए—

भ्रकुटी कुटिला सुभ भाल विसाल भुकुकुम की युग रेख सुहाई।
युग काँचन कै सर लै रति नाहि मनोमणि को सुकमान चढ़ाई।
कच घुंघरवंत सुमंद समीर फुरे तिनकी छवि यो मन आई।
सु मना मुखकंज अमोद गहे, भ्रमनावल का भ्रम है विकसाई।

(३) रत्नहरि—भक्ति और काव्यप्रतिभा के जन्मजात अधिकारी सूर, तुलसी, नंददास तथा रसखान निर्मित मणिमाल मे रत्नहरि अविकल्पतः अनुस्यूत हैं। इनकी प्रशस्ति में लिखित भारतेंदु हरिश्चद्र का निम्न छप्पय कई तथ्यों का उद्घाटक है—

क्षत्रियवंश गुलाबसिह सुत मत रामानुज,
रामकुमारी गर्भरत्न त्यागी मडलभुज।
सुबस बेद बसुचद्र आठ कातिक प्रकटाये,
श्री हरिमहिमा ग्रथ ललित बत्तीस बनाये।

---

१. गुरु-शब्द-रत्नाकर, पृ० १२६५; डॉ० हरभजनसिंह · गुरुमुखी लिपि मे हिंदी काव्य, पृ० १६७ पर उद्धृत।

रणजीतसिंह बहुविधि कह्यो तदपि नाहिं दरसन दियो,
श्रीभक्तरत्नहरि दास जू पावन अमृतसर कियो।

स्पष्ट है, अमृतसर के उदासीन संप्रदाय के महान् संत रामानुज (प्रसिद्ध रामानुजाचार्य से अलग) के शिष्य रत्नहरि का जन्म कार्तिक अष्टमी, सं० १८४८ को स्यालकोट में हुआ था। गुलाबसिंह इनके पिता और राजकुमारी माता थी। ये महाराज रणजीतसिंह के आमंत्रण पर भी उनके दरबार में नहीं गए थे। कहते है, इनके स्मारकमंदिर में, जिसपर उनके वंशजों का उत्तराधिकारी अद्यतन है, एक कूप है, उसके निकट एक भूगर्भ है। इस भूगर्भ की खिड़की कुएँ मे खुलती थी। रत्नहरि यहीं ग्रथसाहिबदर्शन, पाठ करते थे। एक बार प्रावृषेण्य जल में भूगर्भ (पंजाबी भोरा) डूब गया। परिणामत: ग्रंथसाहिब कुएँ मे पहुँचकर जल के अवतरण के साथ तलहटी में पहुँच गया। निष्ठावान् रत्नहरि ने ग्रथसाहिब से ऊपर आने की प्रार्थना की। फिर क्या था, पानी ऊपर उठा और ग्रंथसाहिब ने ऊपर आकर अपनी अक्लेद्यता प्रमाणित की। ग्रथसाहिब की वह प्रति अद्यावधि अमृतसर के राघवानंद के पास सुरक्षित है। इनके लिखे ग्रथों की तालिका यों है—

१. रामरहस्य (५,००० पद), २. प्रश्नोत्तरी, ३. रामललाम गीत (६,००० पद), ४. सारसंगीत (६,००० पद), ५. दाशरथि दोहावली, ६. यमक-दमक-दोहावली (१२५ पद), ७. नानक-यश-चंद्रिका, ८. एकादश भागवत स्कंध, ९. कौशलेश कवितावली (१०८ पद), १० गुरुकीरत रत्नावली, ११ कुसुमक्यारी (१०८ पद), १२. दशम स्कंध कवितावली (१३७ पद), १३. महिम कवितावली, १४. नानक नवक, १५. रास पंचाध्यायी, १६. ब्रजयात्रा, १७. कविताकादंबिनी (१५० पद) ३८. रघूत्तमनाम सहस्र आदि ३२ ग्रथ।

गीतकाव्यकार के रूप में चंद्रकांत बाली ने इनका स्मरण आदरपूर्वक किया है—

"यदि पीयूषकंठ जयदेव महाप्रभु को गीतकाव्य का प्रथम छोर मान लें तो संत रत्नहरि निश्चयपूर्वक उसके दूसरे छोर है।"[1] खेद है, पूर्ण परिचय के अभाव मे मिश्रबंधुओं ने इन्हें साधारण श्रेणी में परिगणित किया है।[2] शब्दशोधन, रूपचित्रण, भावाभिव्यंजन, कल्पना की उड़ान तथा मनोवैज्ञानिक विश्लेषण आदि की दृष्टि से रत्नहरि रीतिकाल के कलाकारों में शीर्षस्थान के अधिकारियों मे से एक है। भक्तिभावना के साथ नादव्यंजकता उनके काव्य का विशिष्ट गुण है। वस्तुत: रत्नहरि का व्यक्तित्व भक्तिभावना और काव्यप्रतिभा का अद्भुत मिश्रण है। कविता का नमूना देखिए—

---

१. पंजाब प्रांतीय हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० ३३५।
२. मिश्रबंधुविनोद, तृतीय भाग, पृ० १०२८।

सिय संदेस सुदेस चले हरिवरेश हरि तीरा ।
गिरि अरिष्ट इत गुन गरिष्ठ सरितापति तीरा ।
तापर चढ़ै कूदि कपि केहरि थरहर कंपित कीनौ ।
सुरस विलास निवास तासु जौ सबनि विदा करि दीनौ ।
कूदत कपि पग धमक धरनि मैं धरचौ धराधर समरे ।
उच्च त्रिदस जोजन दस जोजन हुतौ बसुमती बगरे ।
इत अति वेग वेगनिधि धाए तजि उदेक सागर कौ ।
मारुतसुत मारुतगति गवने उर धरि रघुनागर कौ ।

(४) कीरतसिंह--संत कीरतसिंह का जीवनवृत्त अज्ञात है । उनकी लिखी अनेक कृतियों का पता चला है, जैसे अनूप रामायण, कीरत रामायण, सतसैया रामायण, भक्तमाल की टीका, भागवत एकादश स्कध तथा विषनपद आदि ।

प्रथम तीन रचनाओ से इनकी राम-भक्ति-भावना परिलक्षित है । स्पष्ट है कि कीरत कीरतसिंह राज्याश्रित कवि नही हैं । उनकी भक्तिभावमयी कृतियों में काव्यसौष्ठव का भी अभाव नही है । गुरुमुखी लिपि में लिखित इन रचनाओ की भाषा प्रसाद गुणोपेत ब्रज है । रत्नहरि के बाद पंजाब प्रात मे रामभक्ति शृखला की एक कड़ी के रूप मे कीरत-सिंह कीर्तनीय हैं । उदाहरण--

मोहन जा पर होत दयाला ।
प्रेम भक्ति ताको निज दे है लेत छुडाय जजाला ।
हरिगुन गाय सदा ही प्रफुल्लत ज्यो बसंत बन पाला ।
ताके अवगुन ढाकि कृपानिधि देत हृदय मुख साँता ।
कहा कहौ मैं अपनी करनी सदा चितव छल छाता ।
विरद लाज कीरतसिंह प्रभु तुम नाम देहु दिन राता ।

(५) निहालसिंह--गुरु गोविंदसिंह की भाँति पटियालानरेशो ने भी कवियों को प्रश्रय दिया था । निहाल के जन्म मरण का पता न रहने पर भी अत.साक्ष्य से यह प्रकट हो जाता है कि उनके पितामह रामचंद्र काश्मीर से पंजाब आए और दिल्ली निवास किया । उनके तीन पुत्र व्यास सदृश विद्वान् थे । उनमे दिलाराम १४ विद्याओ मे प्रवीण थे ।

पटियाला के महाराज कर्मसिंह की आज्ञा मे इन्होने स० १८६१ मे 'साहित्य शिरो-मणि' नामक एक लक्षणग्रंथ लिखा था । उनकी शेष रचनाएँ निम्नोक्त है—

ज्योतिषप्रकाश, लघुजातक (ज्योतिष), माधवनिदान (वैद्यक),. महाभारत

७-४०

(दानपर्व), दशमस्कंध भागवत का अनुवाद, पूर्णप्रकाश (मुक्तक कवित्त), फूलकथा (खंडकाव्य), रामचंद्रोदय (केशव की रामचंद्रिका पर आधृत रामकथा तथा रामायण रामचरित पर लिखित काव्य।

इनकी कृतियाँ गुरुमुखी लिपि में मिलती है। भाषा खड़ी बोली मिश्रित ब्रज है। रचना का नमूना देखिए—

ठौर ठौर सौरभ समीरन अधीर धरि,
हरी भरी भूमि घूमि घन घन छाय छाय।
नान्ही नान्ही निहुरि निहुरि परै बूंद बैस,
जलचर थलचर आवै तहाँ धाय धाय।
भौरन की भीर भननात भननात खग,
छननात छटा छूटै छिति छुवै आय आय।
तालन की पालन पै कंजन की मालन पै
सीतल किलालन पै हंसी गति गाय गाय।

छ—रामभक्ति साहित्य का मूल्यांकन

रीतिकाल के रामभक्ति काव्य का अध्ययन उस युग को मात्र स्वर्णयुग ही नहीं वरन् गुणधिमय स्वर्णयुग प्रमाणित करता है। इसलिये कि इस युग में कुछ ऐसी भी विशेषताएँ रामभक्ति काव्य के कारण दृग्गोचर होती हैं जिनकी दूर दूर तक कल्पना हिंदी के इतिहासकारों, साहित्यमनीषियों और सुधी अनुसंधाताओं ने नहीं की थी।

रामभक्त कवियों का सबसे बडा गुण है उनका समन्वयवादी दृष्टिकोण। गुरु गोविंदसिंह के राम, कृष्ण अथवा दुर्गा को अवतार रूप मे स्वीकार करने मे सिक्ख धर्म से क्या प्रयोजन है? निर्मल गुलाबसिंह का शुभकर्मों के अंतर्गत सदाचारमूलक दान, निस्वार्थता, कटुवचनत्याग, परस्त्री की ओर न देखना आदि विश्व के किसी भाग में स्वीकरणीय हो सकते हैं, परंतु गुरुपूजा, द्विजपूजा, देवपूजा, तीर्थनिवास तथा तप यज्ञ आदि के प्रति निष्ठा जहाँ विश्वजनीन न होकर मात्र सांप्रदायिक है वहाँ एक सिक्ख की ऐसी वैष्णवी वृत्ति प्रशंस्य है। सहजराम ने तो एक पंडित के मत को दूसरे के द्वारा न खंडित करना ही समीचीन मान लिया है। उसका समर्थन आज के प्रसिद्ध विद्वान् इतिहासकार आर्नल्ड टायनबी ने भी अपरोक्षत: किया है।

महाराज विश्वनाथ सिंह रामभक्त होते हुए भी निर्गुण संत मत का भी समादर करते थे। वे अलख को लखने के इच्छुक और विचेष्टित को 'नीच' कहना अनुचित समझते थे। कबीर बीजक की टीका उन्होंने की थी। युगलानन्यशरण का सूफियाना वेशविन्यास और भावनाप्रियता रामभक्तों के मनोराज्य की बाँकी झाँकी है। महाराज छत्रसाल और रघुराजसिंह की राम-कृष्ण-उपासना एक ओर स्मार्त वैष्णवता की परिचायिका है तो दूसरी ओर समन्वयसाधना को साक्षिता देती है।

तड़ाग में एक बार कुंभी (एक प्रकार की जल बेल) के उग आने पर जैसे वह अपना स्थान नही छोड़ती वैसे ही रीतिकाल के प्रति पर-प्रत्ययनेयवाद-जन्य यह धारणा कि यह युग प्रबंधकाव्य प्रणयन के लिये बजरभूमि के समान था, विद्वानों के मन से नहीं हटती। परंतु उस युग के अनेक प्रबंधकाव्य तथा रहोगत महाकाव्य 'रघुवंशदीपक' का शुभ्रालोक उनकी भ्राति, ध्वाति को दूर कर देते है। रामभक्ति काव्य का यह योगदान अप्रतिम है कारण कि 'मानस' और 'साकेत' को मिलानेवाली यही दृढ़ कड़ी है। मुक्तको की महत्ता तो पूर्वस्वीकृत है ही, फिर मुक्तक के अतिरिक्त जहाँ रत्नमदृश महार्घ महाकाव्य पाए जायँ वहाँ सामान्य खंड, एकार्थ प्रबधकाव्यो के पन्ना और पुखराजो का क्या कहना ?

रामभक्ति काव्य यह भी सिद्ध करता है कि तथाकथित रीतियुग स्त्रैण रूपविलास और चाटुकारिता का ही काव्य नही है, जहाँ गुणहीन पार्थिवों के सौमनस्य के लिये नायिका-भेद वर्णन करते हुए कवि अपने को धन्यार्ह समझते थे, वरन् यहाँ पर्यावरण परिवर्तित है। रामभक्त कवियों का कृपाकटाक्ष पाने के हेतु काशी, रीवाँ, ओड़छा, छतरपुर, टिकारी बलरामपुर के राजाओं तथा अवध के नवाबो ने उन्हे स्वत.स्फूर्त प्रेरणा से जागीरें आदि देकर उनके मंदिरो की व्यवस्था की थी। तदुपरि हुआ यह कि कभी एक मत ने इस भौतिक विभव को ठुकराया तो कभी दूसरे ने। रसिक सप्रदाय की रचनाओ को अश्लील बताकर उसी प्राचीन शब्दावली को इसलिये दुहराना है कि हमे सप्रदाय के मात्र राही या पथभ्रष्ट साधको की रचनाओ मे विश्वास हो जाता है और सिद्ध भक्तों की मधुरोपासना की आतरिक गहराई उपेक्षणीय बनकर रह जाती है। जहाँ राम के त्याग और बलिदान की गाथा तक गोस्वामी जी ने अपना ध्यान केंद्रित रखा वहीं ये रामभक्त जीवन के नितांत मधुर प्रसगो को लेकर मानवमात्र की हृदयविपंची मे पिहित राग को झकृत करने मे कृतसकल्प हुए। फिर मधुरोपासक भक्तो मे दास्य भावना परासीमा को पहुँची हुई थी। शरीर को वे आत्मा और जीव से निम्न स्तर पर स्थित मानते है। उच्च कोटि की साधना मे आत्मा को प्रभु की स्त्री देशी विदेशी सभी साधक मानते है।

रामभक्ति काव्य भावनाप्रधान होते हुए भी तर्क का तिलांजलि नही देता, अतः उससे हमारी एक बहुत बड़ी उपलब्धि यह है कि इस धारा के अधिकाश कवियो ने पात्रो का चरित्रविश्लेषण मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर किया है। गुरु गोविदसिह की शूर्पणखा प्रस्ताव की उपेक्षा, सहजराम की सीता की शूर्पणखा के प्रति सहानुभूति, प्राणनाथ के राम का लक्ष्मण के शक्ति लगने पर हनुमान पर आक्रोश। ब्रज कवि की उर्मिला की कुल-देवता से तब तक न उदित होने की मनुहार जब तक हनुमान बूटी लेकर लका न पहुँच जायँ, मधुसूदन के लक्ष्मीनिधि का रघुकुल की करतूतो का विवरण आदि प्रसग इसके उदाहरण हैं। तामसी, राजसी, तथा सात्विकी वृत्तियो की जय पराजय प्रत्येक हृदय के समर-प्रांगण में होती है, उक्त प्रसगो से यह स्पष्ट है। मनोविज्ञान के वर्धमान अध्ययन का तो इसे अनुमोदन प्राप्त है ही।

बहुमुखी विविधता के विचार से इस युग का रामभक्ति काव्य वर और वरेण्य है। तुलसी और गग के भाषावैविध्य ने उन्हे 'सुकविन का सरदार' घोषित कराया था। रामकाव्य में प्रयुक्त भाषा बडी सिद्ध और समृद्ध है। एक ओर अवधी और ब्रज अपने परिष्कृत रूप मे विद्यमान है जिसमें न प्रेमाख्यानो का ग्राम्यत्व है और न गोकुलनाथ का नीरस वाक्यविन्यास ही, फिर दूसरी ओर जहाँ देशज शब्दावली का प्रयोग है वहाँ स्थानानुगत वातावरण की विशिष्ट छटा छहरी है। मैथिली, भोजपुरी, बुंदेली, राजस्थानी तथा पजाब की आदि के पुट से वह 'देसिल बअना' होकर सभी के लिये मधुर बन गई है।

सबध भावना की उच्चता को महत्ता प्रदान करने मे रामभक्तों का असाधारण योग है। समाज मे साले बहनोई, सलहज नदोई तथा जीजा और साली के मधुर सबध आज भी प्रचलित है। रामसखे का यह उद्घोष--

सीताराम विवाह ते नातो भयो उदार,
रविवसिन के लगत है, निमिबसी सब सार।

और सेवासबध से प्रयागदास जैसे 'रामलला के सखा' को रामसखे के साले बनने मे प्रसन्नता ही थी। साराश यह कि विश्वविरक्त होकर भी आराध्य का कोई भी संबध सामान्य सामाजिक भावना के कारण उनका प्रिय था।

रूपवैविध्य का सकेत 'रघुवशदीपक' के नामोल्लेख के साथ हो चुका है। इन भक्त कवियो ने विषय (शिखनख वर्णन), शैली (अलकारयोजना) को अधिक व्यापक और प्रभविष्णु बनाया। आराध्य की नखशिख वर्णना और उनका राशीभूत सौदर्य केवल दोहा, चौपाई, कवित्त, सवैया मे ही नही, बहुछदमयी भाषा में हुआ है।

इन रामभक्त कवियो का सबसे बडा योगदान है तुलसी साहित्य के अध्ययन और अनुशीलन को व्यापक प्रसार देना। इस प्रसार का माध्यम है गद्य और सस्कृत की टीका-प्रणाली। रसिकाचार्य रामचरणदास द्वारा निर्दिष्ट पथ पर ही रामगुलाम द्विवेदी चले थे। और सत अंजनीनदनशरण का आज का 'मानसपीयूष' रामचरण के प्रथम बार 'मानस'-मंथन का परिणाम है।

भक्तिकाव्यप्रणेता महान् कवि ही नही, संगीतशास्त्र में भी निष्णात थे। इस दिशा मे रामसखे की गौरवगूँज लखनऊ के नवाबी खँडहरों मे सुनाई पड़ सकती है।

इस प्रकार रामभक्ति काव्य विविध काव्यरूपों से सपन्न, वैचारिक विभव से विभूषित, भाषा-भाव-परक सपत्ति से समृद्ध, छदछटा से छविमान है। जातिभेद और देश काल की संकुचित सीमाओ से हटाकर यह काव्य मानव को वह रस पिलानेवाला है जो स्वादु भी है और स्वास्थ्यप्रद भी और इस रामरस 'टॉनिक' विशेष के पीने से अधिकाधिक प्यास बढ़ती है, इस संबंध मे गोस्वामी जी का यह उद्घोष स्मृतव्य है——

रामचरित जे कहत अघाही, रसविशेष पावा तिन नाहीं

पंचम अध्याय

अन्य देवोपासक कवि और काव्य

भारतीय उपासना की बहुत बड़ी विशेषता है बहुदेववाद। प्रत्येक प्रमुख उपास्य-देव के साथ कुछ गौण देवों की उपासना यहाँ सर्वदा से होती रही है। यह बात कितनी विरोधी है कि जहाँ परमसत्ता के रूप में केवल ब्रह्म को ही स्वीकार किया गया वहीं उसके साथ सैकड़ों देवी देवताओं की उपासना भी चलती रही है। वस्तुतः यह बहुदेववाद एक ही परमदेव की उपासना का विस्तार है। विभिन्न देवी देवता उस एक परब्रह्म के विभिन्न पक्षों और गुणों के परिचायक हैं। प्रत्येक देवता उसकी किसी विशिष्ट शक्ति का प्रतीक है। परब्रह्म सर्वगुणसंपन्न, सर्वशक्तिमान और सर्वत्रविद्यमान है। उसके सभी गुणों, सभी शक्तियों और सर्वत्र विद्यमान रहने की स्थिति की अभिव्यक्ति एक साथ नहीं हो पाती, अतः इनकी अलग अलग अभिव्यक्ति अलग अलग देवताओं द्वारा होती है। परब्रह्म के विराट् रूप में सब कुछ एक साथ व्यक्त होता है। किंतु वह विराटता इतनी अंतहीन है कि इंद्रियगम्य नहीं हो पाती। वही विभिन्न देवी देवताओं के माध्यम से खंडरूप में व्यक्त होती है।

रचनाएँ एवं रचयिता

इसका उल्लेख किया जा चुका है कि रीतिकालीन भक्तिरचनाओं के रचयिता मूलतः भक्त नहीं थे, वे कवि थे। भक्तिकाव्य की रचना तो उनके लिये बहाना था। इसीलिये इनमें भक्तिकालीन कवियों सी तल्लीनता नहीं दिखाई पड़ती है। रामकृष्ण के संबंध में जो रचनाएँ हुई वे भक्तिकाल से आगे नहीं बढ़ सकीं किंतु अन्य देवी देवताओं से संबंधित जो काव्य रचे गए वे निश्चय ही कला की दृष्टि से आगे हैं। इस काल के रामकृष्णेतर काव्य के रचयिता तीन प्रकार के हैं—प्रथम वे जिन्होंने संस्कृत पुराणों का हिंदी में रूपांतर किया, द्वितीय वे जिन्होंने संस्कृत साहित्य की परंपरानुसार किसी देवता की उपासना के आधार पर लक्षणग्रंथों की रचना की और तीसरे वे जिन्होंने अपने आराध्य के प्रति सहज रूप से अपने भक्तिविषयक उद्गारों को व्यक्त किया। वैसे अन्य देवोपासना संबंधी काव्यरचनाएँ इस काल में भक्तिकाल से ज्यादा हुईं। आगे कुछ प्रमुख रचनाओं और रचनाकारों का विवरण दिया जा रहा है।

१—गुरु गोविंदसिंह

ये सिक्खों के दशम गुरु थे। इनका कार्यकाल संवत् १७२३ से १७६५ तक था। ये बड़े ही पराक्रमी तथा धर्मरक्षक थे। गुरु गोविंदसिंह जी अच्छे कवि और काव्यमर्मज्ञ

भी थे। वैसे परंपरा और संप्रदाय के अनुसार ये निर्गुणी थे, किंतु ब्रह्म के सगुण रूप के प्रति इनकी पूरी आस्था थी। इन्होंने लगभग सोलह ग्रंथों की रचना की है जिनमें पाँच रामकृष्णेतर देवों पर लिखे गए हैं। इन ग्रंथों का परिचय नीचे प्रस्तुत है--

(क) **चंडीचरित्र**--इस ग्रंथ में महिषासुर, शुंभ निशुंभ आदि असुरों का दुर्गा द्वारा वध का वर्णन किया गया है। इसमे कुल आठ अध्याय हैं। पहले अध्याय में महिषासुर से युद्ध और उसके वध का वर्णन है। दूसरे अध्याय में महादैत्य धूम्रनयन से युद्ध और उसके वध का वर्णन है। इसी तरह तीसरे अध्याय मे चंड मुंड नामक दैत्यों के साथ युद्ध और उनके बध का वर्णन है। चौथे अध्याय मे श्रोणिबिंदु, पाँचवें मे निशुंभ और छठे में शुंभ के वध का वर्णन किया गया है। सातवे अध्याय में देवी की स्तुति है। आठवें में स्तुति और ग्रंथ का माहात्म्य वर्णित है।

चंडीचरित्र खंडकाव्य है। इसमें देवासुर संग्राम का क्रमबद्ध वर्णन है। कथा में प्रवाह कम है किंतु शृंखला बनी रहती है। इसमें दोहा, चौपाई, सोरठा, ताटक, भुजंगप्रयात, रसावल, मधुमार, नराच, रुआल, मनोहर, विजय, मधुरा, कुल्क आदि छंदों का प्रयोग हुआ है किंतु भुजगप्रयात छंद का प्रयोग सर्वाधिक है। समस्त ग्रंथ मे ओजगुण प्रधान है। ग्रंथ की भाषा ब्रज है किंतु वीर भावों के अनुकूल तद्भव शब्दावली का प्रयोग है।

(ख) **चंडीचरित्र-उक्ति-विलास**--इस ग्रंथ में भी देवासुर संग्राम का कथानक लिया गया है। देवी चंडी की कथा मार्कंडेयपुराण से ली गई है। प्रत्येक अध्याय के अंत में 'इति श्री मारकंडेय पुराणे चंडीचरित्रे उक्तिविलास' लिखा हुआ है। अतः यह ग्रंथ मारकंडेय पुराण के दुर्गा सप्तशती प्रकरण पर आधारित है। स्वयं कवि ने भी इसका उल्लेख किया है--

'चंडी चरित्र कवित्तन में बरन्यो समही रस रुद्रमई है।
एक ते एक रसाल भयो नख ते सिख लौ उपमा सु नई है।
कउतुक हेतु करी कवि ने सतसै की कथा इह पूरी भई है।
जाहि निमित्त पढ़ै सुनिहै नर सो निसचै करि ताहि दई है।'[१]

संपूर्ण ग्रंथ मे सात अध्याय और २३३ छंद है। पहले अध्याय में अकालपुरुष की वंदना, देवी की स्तुति तथा मधुकैटभ दैत्य के वध का वर्णन है। दूसरे अध्याय में महिषासुर द्वारा इंद्र की सेना को पराजित करना, देवों का चंडिका के पास जाकर प्रार्थना करना, और देवी द्वारा समस्त दैत्यों का विनाश वर्णित है। तीसरे अध्याय मे प्रारंभ मे महिषासुर का वध और बाद मे देवी का नखशिख वर्णित है। चौथे अध्याय में चंड मुंड से देवी का युद्ध और दोनो के वध का वर्णन है। पाँचवे अध्याय में श्रोणबिंदु का भयंकर युद्ध और उसका वध वर्णित है। छठे मे शुंभ और निशुभ दैत्य स्वयं युद्ध के लिये आते हैं। इधर

---

१. सप्तम अध्याय।

विष्णु भी चंडी की सहायता के लिये सेना भेजते हैं। दोनों ओर से घनघोर युद्ध होता है और निशुंभ मारा जाता है। सातवें अध्याय में भी युद्ध और शुंभ के वध का वर्णन है। तदनंतर चंडी की स्तुति है।

यह भी एक सुंदर खंडकाव्य है जिसे कथात्मक चरितकाव्य कहा जा सकता है। वैसे ग्रंथ कवित्त में लिखा गया है किंतु बीच बीच में सवैया, सोरठा, तोटक, रेखता, दोहरा आदि छंदों का भी प्रयोग है। काव्य की दृष्टि से भी यह ग्रंथ काफी अच्छा है। ग्रंथ की भाषा ब्रज है परंतु कहीं कहीं फारसी के शब्दों का भी प्रयोग है। भाषा साफ सुथरी और मँजी हुई है। इसमें वीररस और ओजगुण की प्रधानता है तथा कलापक्ष और भावपक्ष दोनों का सुंदर सामंजस्य है। सिंह के वर्णन में अप्रस्तुत योजना का सुंदर प्रस्तुतीकरण द्रष्टव्य है—

दारुन दीरघ दिग्गज से बल सिंह ही केवल सिंह धरे हैं।
रोम मनो सर कालहि के जन पाहन पोत पै वृक्ष धरे हैं।
मेर को मद्धि मनो जमना लर केतकी पुंज पै भृंग ढरे है।
मानो महापृथ लै कै कमान सुभ्धर भूमि ते निआरे करे है।—छसंख्या २६।

(ग) चौबीस अवतार—इस विशाल ग्रंथ मे चौबीस अवतारों का विशद वर्णन है। प्रत्येक अवतार से संबंधित कथाएँ दी गई है जिनका आधार श्रीमद्भागवत ग्रंथ है। प्रत्येक अवतार और उनके लिए प्रयुक्त छंदों की सख्या इस प्रकार है—

१—मत्स्य अवतार, ५४ छंद
२—कच्छ अवतार, ५ छंद
३—नर अवतार
४—नारायण अवतार, २० छंद
५—मोहिनी अवतार, ८ छंद
६—बाराह अवतार १४ छंद
७—नरसिंह अवतार, ४२ छंद
८—वामन अवतार, २७ छंद
९—परशुराम अवतार, ३५ छंद
१०—ब्रह्मा अवतार, ७ छंद
११—रुद्र अवतार, ८९ छंद
१२—जलंधर अवतार, २८ छंद
१३—विष्णु अवतार, ५ छंद
१४—कालपुरुष अवतार, ७ छंद
१५—अरहंत देव अवतार, २० छंद
१६—मनु अवतार, ८ छंद

१७—धन्वंतरि, ८ छंद
१७—सूरज अवतार, २७ छंद
१६—चंद्र अवतार, १५ छंद
२०—रामावतार, ८६४ छंद
२१—कृष्णावतार, २४६२ छंद
२२—नर अवतार, ७ छंद
२३—बुद्ध अवतार, ३ छंद
२४—कल्कि अवतार, ५८८ छंद

यह ग्रंथ आकार प्रकार में महाकाव्य जैसा लगता है किंतु इसे महाकाव्य नहीं कहा जा सकता। फिर भी वर्णनशैली, भाव, कला आदि बहुत ही उत्तम है। भाषा ब्रज है और अलग अलग अवतारों में अलग अलग प्रकार के छंदो का प्रयोग है। विशेष रूप से दोहा, चौपाई, भुजंगप्रयात, त्रिभंगी, पद्धरि, मोहिनी आदि छंदों का प्रयोग है। कृष्णावतार काव्य और कला दोनों दृष्टि से बहुत ही उच्च कोटि का है। इसमें प्रबंधात्मकता का सुंदर निर्वाह है। संपूर्ण रचना में प्रसाद और माधुर्य गुणों का सामंजस्य है।

(घ) **ब्रह्मा अवतार**—इस ग्रंथ मे ब्रह्मा को अवतार मानकर उन्हें संसार का रचयिता और संहारकर्ता कहा गया है। उन्होंने ही राम, कृष्ण, मोहम्मद आदि को उत्पन्न किया है। ब्रह्मा की उपासना से मोक्ष की प्राप्ति होती है। पुस्तक के अंत में ब्रह्मा के सात उपावतारों का भी वर्णन है। ग्रंथ ब्रजभाषा में है और वर्णनशैली बड़ी ही सरल तथा मधुर है। पूरे ग्रंथ में कुल ३३२ छद हैं।

(ङ) **रुद्र अवतार**—यह प्रबंधात्मक काव्य है जिसमें २३ परिच्छेद हैं। छंदों की सख्या ४६८ है। इसमें रुद्र के अवतार दत्त भगवान् का चरित्र वर्णित है। प्रारंभ में दत्त जी के माता पिता और उनके आरंभिक जीवन का वर्णन है। आगे दत्त जी की तपस्या, उनके संन्यास तथा विभिन्न गुरु करने की कथाएँ विस्तारपूर्वक दी गई है। वैसे संपूर्ण रचना मे शांतरस की प्रधानता है, किंतु वीर और शृंगार का आधिक्य है। इस ग्रंथ में गुरु गोविंदसिंह जी को शृंगार रस की अभिव्यक्ति के अधिक अवसर मिले हैं। यह तत्कालीन प्रभाव के कारण है। ग्रंथ की भाषा ब्रज है किंतु कुछ अवधी के शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। इसमे लगभग २० प्रकार के छंदों का प्रयोग हुआ है जिनमें चौपाई, तोमर, श्रीभगवती, पद्धरी, रसावल, चर्पट आदि अधिक हैं। गुरु जी की यह रचना भाषा और भाव दोनों दृष्टियो से बहुत अच्छी है।

(च) **पारसनाथ अवतार**—इसमें पारसनाथ के जीवन की सारी कथा वर्णित है। बालक पारसनाथ दुर्गा की उपासना करके शस्त्र प्राप्त करता है और सम्राट् बनकर दत्त ऋषि के मत या विचारधारा को समाप्त कर देता है। बाद में मछिंदरनाथ के मिलने पर विवेक और अविवेक का अंतर समझता है। फिर विवेक और अविवेक मे युद्ध होता है। इसी बीच चर्पटनाथ प्रगट होते है और पारसनाथ चिता में जलकर प्राणांत कर देते हैं।

इस ग्रंथ में विवेक और अविवेक का वर्णन अन्योक्ति के ढंग पर है। वैसे मानसिक वृत्तियों का चित्रण बहुत ही सुंदर हुआ है। रचना में वीररस प्रधान है किंतु शांत और श्रृंगार भी कम नहीं हैं। ग्रंथ की भाषा ओज एवं माधुर्य गुण से संपन्न है। लगभग १५ प्रकार के छंदों का प्रयोग हुआ है जिनमें सवैया, भुजंगप्रयात, रसावल, श्रीभगवती आदि अधिक है।

गुरु गोविंदसिंह की सभी रचनाओं में रचनाकाल नहीं दिया गया है किंतु जिनमें दिया गया है उनके आधार पर ये रचनाएँ संवत् १७५० के आसपास की मानी जाती हैं। इनकी रचनाएँ हिंदी और पंजाबी दोनों भाषाओं में हैं। यहाँ उन्हीं का उल्लेख किया गया है जो हिंदी में है। गुरु जी की अधिक रचनाएँ प्रबंधात्मक है। इनमें प्रबंधपटुता, वर्णन-शैली और भाषा का प्रवाह द्रष्टव्य है। वीररस, श्रृंगाररस और शांतरस इनकी रचनाओं में प्रधान है। वीररस इनकी मौलिक वृत्ति थी। श्रृंगाररस युग के प्रभाव के कारण है और शांतरस इनकी भक्ति का परिणाम है। समष्टि रूप से इनकी रचनाएँ काफी प्रौढ़ और साहित्यिक है।

२—अनन्य कवि

इनका सर्वप्रथम उल्लेख मिश्रबंधु विनोद में आया है। उसमें इनके नाम के साथ से ज्ञानबोध, सिद्धांतबोध, ज्ञानयोग, हरसंवाद भाषा तथा योगशास्त्र स्वरोदक ग्रंथों का उल्लेख है। नागरीप्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में इनके १४ ग्रंथ बताए गए हैं जिनमें एक दुर्गापाठ भाषा है। इस ग्रंथ का रचनाकाल सं० १७३५ के आसपास है। यह ग्रंथ दुर्गा सप्तशती का पद्यात्मक अनुवाद है। इसमें कुल तेरह अध्याय हैं जिनमें दुर्गादेवी की कीर्ति का वर्णन है। यह ग्रंथ स्वतंत्र चरित्रग्रंथ न होकर पिंगलग्रंथ है। इसमें अनेक छंदों के उदाहरण दिए गए है; उदाहरणों का वर्ण्य विषय अवश्य ही देवी का चरित्र है। देवी की यह कथा श्रृंखलारूप में वर्णित है। रचना ब्रजभाषा में है और कवि ने भावानुकूल शब्दावली का प्रयोग किया है। इतना अवश्य उल्लेख्य है कि यह भक्ति-काव्य न होकर लक्षणग्रंथ है।

३—मानकवि

मान नाम से दो कवि प्रसिद्ध है किंतु दोनों के बारे में न तो कोई विवरण प्राप्त होता है और न इनकी रचनाएँ ही मिलती है। एक मान कवि हनुमान जी के बहुत बड़े भक्त थे और उनके नाम पर महावीर को नखसिख, हनुमानपचीसी, हनुमाननाटक आदि ग्रंथ प्रसिद्ध हैं। उन्हीं का लिखा हुआ 'पंचमुखी हनुमंतपचीसी' भी है। यह ग्रंथ काशी के लहरी प्रेस से संवत् १९६० में प्रकाशित हुआ था। अन्य ग्रंथ अप्राप्य हैं। 'पंचमुखी हनुमंतपचीसी' में हनुमान जी के रूप और गुणों का वर्णन किया गया है। ब्रजभाषा में

लिखे गए कवित्त छंद बहुत ही अच्छे हैं। संपूर्ण रचना में हनुमान का वीरभाव बड़े ही उत्तम ढंग से उभरा है। शब्दों का समुचित संगठन और आनुप्रासिक पदावली बड़ी मनोहारी है। प्रारंभ से अंत तक ओज गुण की प्रधानता है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

अद्धन मरुद्धत निरुद्धत मसान श्रद्ध सद्धरत रुधिर बेताल पिये घर को।
ऋद्ध शुद्ध बुद्ध बद्ध दुद्धर विरुद्ध प्रेत जोगिनी नरुद्ध वामनद्ध व्याह बर को॥
उद्धत कमद्ध श्रुद्ध नद्धतन भूत बद्ध भेद वृद्ध दुग्ध मुग्ध वृद्ध देन वर को।
जाके जुद्ध मद्ध वृख मधुज प्रबुद्ध छुद्ध बुद्धित त्रसुद्ध बदौं दूत रघुबर को॥
—पंचमुखी हनुमंतपचीसी, छंद २७।

४—श्रीकृष्ण भट्ट (कलानिधि)

ये तैलंग ब्राह्मण थे। इन्होंने कई संस्कृत ग्रंथों का सफल अनुवाद किया है जिनमें से वाल्मीकीय रामायण उत्तरकांड, ब्रह्मसूत्र तथा माडूक्य, केन और प्रश्न उपनिषद् प्रसिद्ध हैं। अलंकारकलानिधि, साँभरयुद्ध, शृंगार-रस-माधुरी और वृत्तिचंद्रिका इनके मौलिक ग्रंथ हैं। इनका जीवनचरित्र ठीक ठीक ज्ञात नहीं है किंतु इनका रचनाकाल सं० १७६६ के आसपास माना जाता है। 'दुर्गाभक्तितरंगिणी' इनका महत्वपूर्ण ग्रंथ है। कुछ लोग इसे दुर्गा सप्तशती का भाषानुवाद कहते हैं, किंतु यह ठीक नहीं। यह इनकी स्वतंत्र रचना है। यह बात अवश्य है कि इसकी कथावस्तु दुर्गासप्तशती पर आधारित है। इसके प्रत्येक तरंग के अंत में लिखा हुआ है "इति देवीमाहात्म्य भाषा श्रीकृष्ण कवि कृत दुर्गाभक्ति"। इससे यह इनकी स्वतंत्र रचना लगती है।

'दुर्गाभक्तितरंगिणी' की एक प्रति (हस्तलिखित) नागरीप्रचारिणी सभा के संग्रहालय में उपलब्ध है। इसमें कुल बारह तरंग हैं, किंतु बारहवें तरंग के केवल ५६ छंद ही प्राप्त हैं। इसमें इतने ज्यादा छंदों का प्रयोग किया गया है कि यह पिंगलग्रंथ सा लगता है। यद्यपि इसमें किसी छंद का लक्षण नहीं दिया गया है, तथापि छंदों की विविधता से ऐसा ज्ञात होता है कि ग्रंथरचना के समय कवि की वृत्ति विविध छंदों के उदाहरण प्रस्तुत करने की ओर रही है। कुछ भी हो, यह सुंदर कथात्मक काव्य है जिसमें देवी की कथा शृंखलाबद्ध रूप में है। पद्धरी, चौपाई, दुगई, छप्पय, कवित्त आदि छंदों का अधिक प्रयोग हैं। ग्रंथ में ब्रज, अवधी, राजस्थानी, अरबी, फारसी के शब्दों का प्रयोग है। युद्धादि के अवसरों पर कवि ने वीरगाथात्मक छंदों और शब्दावली का प्रयोग किया है। यथा—

चली सबै बसुधा भय पग्गिय। सकल महीधर तिहि डर भग्गिय :
लखि तिहि सिंहबाहिनी बुल्लिय। जय जय सद्धदेव जिय फुल्लिय।
—द्वितीय तरंग, ५०।

५—दीवान रणछोड़राय

ये जूनागढ़ के थे और वहाँ के नवाबों के प्रधानाध्यक्ष थे। ये जाति के नागर

और शैव मतावलंबी थे। इनके जन्म और मृत्युकाल की निश्चित तिथियाँ प्राप्त नहीं किंतु इनका रचनाकाल सं० १९०० के आसपास का है। इनके एक प्रकाशित ग्रंथ मे इनका मृत्युसवत् १९३० दिया हुआ है। इनके नाम पर शिवरहस्य, शिवपुराण भाषा, शिवस्तुति आदि ग्रथो का उल्लेख मिलता है। 'सदाशिव विवाह' नामक ग्रथ नागरी-प्रचारिणी सभा में (हस्तलिखित रूप मे) उपलब्ध है। शिव-माहात्म्य-रत्नाकर जूनागढ़ के सरकारी प्रेस मे छपा था जिसकी प्रतियाँ कुछ पुराने पुस्तकालयों मे प्राप्त होती हैं। अन्य कृतियाँ अप्राप्य हैं।

इनकी रचनाओं से यह ज्ञात होता है कि ये वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग मे बहुत अधिक प्रभावित थे। इन्होंने कृष्णभक्त कवियो की तरह शकर के माधुर्यरूप का चित्रण किया है। कृष्णलीलाओं की तरह शकर की लीलाओं का भी शृगारिक वर्णन इन्होंने किया है। संभवतः ये पहले कविभक्त है जिन्होंने शकर के माधुर्य और शृंगारिक रूप का इस प्रकार चित्रण किया है।

सदाशिवविवाह भक्तिप्रधान सुदर कृति है। इसमें शकर पार्वती के विवाह की कथा बड़े ही सुंदर ढग से आख्यान शैली मे कही गई है। पार्वती का नखशिख वर्णन बड़े विस्तार के साथ किया गया है। कहीं कहीं तो स्थूल शृगार का भी चित्रण है जो संभवतः तत्कालीन युग का प्रभाव है। शिव-माहात्म्य-रत्नाकर मे शिव के महत्व का प्रतिपादन है। उसमें सोमवारमहत्व, त्रिपुरआख्यान, मदन-सजीवन-आख्यान, रासोत्सव, ईश्वरविवाह, स्कंदउत्पत्ति, देवीचरित्र, जलधरआख्यान, शंखचूड़, त्रिपुरदाह, मोहिनी-समय आदि विषयो का वर्णन है। कथावस्तु सक्षेप मे है किंतु मार्मिक स्थलो का वर्णन विस्तार से किया गया है। इसमे शंकर सामान्य नायकों की तरह शृगारिक है जो भक्तो की दृष्टि से अमर्यादित है। कवि शकर के शृंगारिक रूप को ही ध्यान के योग्य मानता है—

महिधर राजकुमारिका, सोहत जाके अंक।
सो सहाय मेरी करौ, जय जय भाल मृगांक॥

इन दोनो कृतियो मे शकर के जिस रूप का चित्रण हुआ है वह परंपरा से भिन्न है। इसके दो कारण हो सकते है। एक तो रीतिकालीन प्रभाव और दूसरा कवि का राज-घराने से सबध। उन्होंने स्थान स्थान पर राजघराने के जीवन को चित्रित किया है। जो भी हो, रणछोड़राय के ये दोनो ग्रथ शिव की भक्तिभावना के एक विशिष्ट रूप को प्रस्तुत करते है, साथ ही युगीन स्थिति पर भी प्रभाव डालते है। अतः मूल्यांकन की दृष्टि से इनका अपना महत्व है, इसमे सदेह नही।

कवि की भाषा गुजराती होने के कारण इन ग्रंथों में गुजराती के शब्द पर्याप्त मात्रा में मिलते है। कुछ गुजराती छदो का भी प्रयोग हुआ है। इनमे दोहा, सोरठा, चौपैया, छप्पय, त्रिभंगी, तोटक, भुजगप्रयात आदि छदो का उपयोग किया है। भावों के अनुसार शब्दावली का प्रयोग हुआ है। नखशिखवर्णन या शृंगारवर्णन में शैली बड़ी

ही सरस और माधुर्यपूर्ण है। भाषा की प्रौढ़ता, छंदों का प्रवाह, कल्पना की ऊँचाई और सरस वर्णनों के कारण इनके ये ग्रंथ उच्च साहित्यिक काव्यों की कोटि मे रखे जा सकते हैं।

६—श्रीनिवास

मिश्रबंधु विनोद में श्रीनिवास नाम के दो कवि मिलते है किंतु दोनों मे से किसी के चरित्र का पता नही। 'हनुमानपचीसी' नामक ग्रंथ किसी की रचना भी नही बताई गई है। आर्यभाषा पुस्तकालय मे यह ग्रंथ उपलब्ध है। पढ़ने पर लगता है कि यह किसी प्रतिभाशाली कवि की रचना होगी। इस ग्रंथ मे हनुमान जी की महिमा का वर्णन है। बड़े साफ सुथरे छंदों एव आलकारिक ब्रजभाषा में हनुमान जी की विविध विशेषताओं को चर्चा की गई है। छदप्रवाह और शब्दसगठन देखने लायक है। भक्तहृदय की सरल अभिव्यक्ति सचमुच प्रभावशाली और मधुर है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

भक्तन के मालिक हौ, सालन अभक्तनि के, दीन के दयाल कहो पालक पयोधर के।
वेद में विसारद हो सारद अनेक बुद्धि, वारिधिलौं सीतलता दारिद दवारि के।
पावन परमेश्वर सो सुभावन केसर सो, गायन गुनेश्वर सौ नामन बिहार को।
कृपा श्रीनिवास धारि, यही रस बेदसार बरनौ जस बार बार अजनीकुमार को॥
—छंद सं० ६।

७—अखैराम

इनका रचा हुआ ग्रंथ गंगामहात्म्य है जो नागरीप्रचारिणी सभा के पुस्तकालय मे उपलब्ध है। ग्रंथ अभी तक अप्रकाशित है। कवि अखैराम के संबंध मे कोई भी जानकारी नहीं प्राप्त होती। मिश्रबंधु विनोद में रत्नप्रकाश, हस्तआमलक वेदांत नामक दो और रचनाओं का उल्लेख है। इनकी रचनाओं का काल सवत् १८३२ के आसपास है।

'गंगामहात्म्य' पुराणों मे प्राप्त कथाओं के आधार पर विरचित विशाल ग्रंथ है। इसमें २० प्रकरण हैं। इन प्रकरणों मे क्रमशः गुरुवंदना, नारदमोह तथा मोह-भंग, गंगाआगमन, तीर्थस्थानो का महत्व, गंगा की स्तुति, पूजन आदि का वर्णन है। अधिकतर प्रसंग ब्रह्मवैवर्त पुराण से लिए गए है। कथाओ को शृंखलाबद्ध अवश्य किया गया है परंतु भावात्मक स्थलो का संयोजन नही हो पाया। वर्णन का आधिक्य होने के कारण कृति में साहित्यिकता कम आ पाई है। सामान्य रूप से भावों की सरल अभि-व्यक्ति है। कथाओं के बीच बीच में कही कहीं आध्यात्मिक या दार्शनिक ज्ञान की चर्चा भी है। प्रबधत्व की दृष्टि से ग्रंथ अवश्य ही उत्तम है पर भावपक्ष कमजोर है। ग्रंथ की भाषा अवधी है और संपूर्ण ग्रंथ दोहा चौपाई में लिखा गया है। अवधी भाषा के ऐतिहासिक विकास का अध्ययन करने के लिये यह एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है।

८—पद्माकर

पद्माकर का 'गंगालहरी' बहुप्रसिद्ध काव्य है। ये रीतिकाल के प्रमुख

कवियों में से हैं। इनका रचनाकाल सं० १८४० के आसपास का है। जगतविनोद हिम्मतबहादुर विरुदावली, रामरसायन, प्रबोधपचासा आदि इनके अन्य प्रसिद्ध ग्रंथ हैं। 'गंगालहरी' उनकी अंतिम रचना कही जाती है। 'पद्माकर ग्रंथावली' नाम से इनकी सभी रचनाओं का प्रकाशन नागरीप्रचारिणी सभा से हो चुका है।

'गंगालहरी' साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण स्फुट काव्य है। इसमे कुल ५६ कवित्त हैं। इन कवित्तो में गंगा के यश, माहात्म्य और उनकी महत्ता का वर्णन किया गया है। काव्य की भाषा ब्रज है।

६—रामचद्र

चरणचद्रिका इनकी प्रसिद्ध रचना है जिसम पार्वती के आभूषणयुक्त चरणों की बंदना है। यह ग्रंथ स० १८६० में भारत जीवन प्रेस काशी से प्रकाशित हुआ था। इसका रचनाकाल संवत् १८३१ से १८५५ के बीच माना जाता है। इनकी अन्य रचनाएँ नही प्राप्त होती।

चरणचद्रिका एक श्रेष्ठ और कलात्मक कृति है। इसमे ६२ घनाक्षरी छद हैं। सारे ग्रथ को पाँच भागों मे विभाजित किया गया है जिसे कवि ने विलास कहा है। ये इस प्रकार है—१. विनयविलास, २—अभयविलास, ३—विभवविलास, ४—विरद-विलास, ५—विजयविलास। ग्रंथ ब्रजभाषा मे है किंतु संस्कृत तत्सम शब्दो का प्रयोग पर्याप्त हुआ है। अनुप्रास, रूपक, मालोपमा आदि अलकारो का प्रयोग बड़ी सफलता से हुआ है। यह ग्रंथ साहित्यिक दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण है। एक छंद द्रष्टव्य है—

गावै मंजुघोषा सी मधुररव नूपुर औ कलपलता सी पायजब उमगी रहै।
कामधेनु धन से सुपूरन गुलुक लाल एड़िन की छवि चितामणि सो रँगी रहै।
नदन सरस सुगंध रजराजै जाकी ऐरावत की सी गति सहज जगी रहै।
तेरे चंद्रमौलि मनभावती सुभाय नही मिरी अमरावती की पायन लगी रहै॥

—छंद १४।

१०—हरिआनंद

इनका ग्रंथ 'देवीविलास' है। ये डिबाई निवासी थे। देवीविलास की एक हस्तलिखित प्रति नागरीप्रचारिणी सभा के संग्रहालय मे उपलब्ध है। ग्रंथ का रचनाकाल सवत् १८४६ दिया हुआ है। इसमे सप्तशती की कथा भाषा में वर्णित है। वैसे, यह पिगलग्रंथ है। छंदों के लक्षण नही दिए गए है, केवल विविध छदो के उदाहरण ही है। कथा की शृंखला बराबर बनी हुई है। भाषा, भाव तथा अलकार की दृष्टि से ग्रंथ सामान्य है। छदों मे विविधता अवश्य है। ग्रंथ का प्रारभ गणेशबंदना से हुआ है।

---

१. मिश्रबंधु विनोद, भाग २।

ग्रंथ की भाषा ब्रज है। छंद अवश्य ही ब्रज, अवधी तथा संस्कृत भाषा से लिए गए हैं। ग्रथ के रचनाकाल का निर्देश नीचे के दोहे द्वारा किया गया है—

सवत दृग रस वसु ससी मधुतम पाख सुबार।
कुँज हरिआनंद स्वकर यह लिख्यो ग्रंथभरि प्यार ॥

११—ग्वाल

ग्वाल रीतिकाल के प्रसिद्ध कवि है और इनकी रचना यमुनालहरी प्रसिद्ध काव्यग्रथ है। वैसे इन्होने बहुत सी प्रसिद्ध रीतिबद्ध रचनाएँ की है और उनका महत्व भी है किंतु यमुनालहरी इनका कम महत्वपूर्ण ग्रंथ नहीं है। यमुनालहरी स्फुट काव्य है जिसमे कुल १०८ छद है। इसका रचनाकाल सं० १८७९ के आसपास का है। इस ग्रंथ में थोड़े से दोहे है, शेष कवित्त। कल्पना, शब्दसंगठन और छंदप्रवाह की दृष्टि से यह उत्तम काव्यग्रथ है। इसमें पौराणिक अतर्कथाओ के आधार पर यमुना तथा यमुनाजल का माहात्म्य बताया गया है। यमुना को आलबन मानकर कवि ने नौ रसो और षट्ऋतुओ का भी वर्णन किया है। ब्रजभाषा मे रचित इन कवित्तों मे आनुप्रासिक शब्दावली का अधिक प्रयोग है। ग्रीष्मऋतु का वर्णन द्रष्टव्य है—

सूरज सुता के तेज तरल तरंग नाकि पुंज देवता के घिरै ताके चहूँ कोय के।
ग्रीष्म बहारै वेश छूटत फुहारै धारै फैलत हजारै है गुलाब स्वच्छ तोय के।
ग्वाल कवि चदन कपूर चूर चुनियत चौरस चमेली नदीवदनी समोय के।
खासे खस खाने खासे खूब खिलवत खाने खुलिगे खजाने खाने खाने खुसबोय के।

छद ९८।

१२—मनियार सिंह

इनका उल्लेख मिश्रबंधु विनोद मे आया है। ये काशी के क्षत्रिय थे और 'यार' नाम से काव्यरचना करते थे। हनुमानछब्बीसी और महिम्नकवित्त इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। सौदर्यलहरी भी इनका प्रसिद्ध ग्रंथ है। इनका रचनाकाल सं० १८६१ माना गया है। हनुमानछब्बीसी मे हनुमान द्वारा अहिरावणवध की कथा है। यह आख्यानकाव्य है। वर्णन अत्यंत सरस और अलंकारयुक्त है। महिम्नकवित्त में स्फुट कवित्त है जो शंकर के महिमावर्णन में लिखे गए है। यह रचना भी सरस और साहित्यिक है।

१३—गनेश कवि,

इनके द्वारा रचित 'हनुमानपचीसी' (प्रकाशन १८९२ ई०) में २५ कवित्त छंदों में हनुमान जी की स्तुति है। शब्दसगठन, आनुप्रासिक पदावली, हनुमान के भयावह रूप का भी वर्णन है। एक उदाहरण—

डाकिनी पिशाच भूत शाकिनी पिशाचिनी की आवति न रीति परतीति कै भनै सुनै।
बारि जाति बारि चित्रभानु ते न पारिजात मारिजात अस्मतेन शस्त्र की हूनै तुनै।

आधि व्याधि परम उपाधि नहिं बाँधि सकै साधि सकै सिद्धि वृद्धि इच्छित भनै गुनै।
इसी हनुमंत की पचीसी मे देखति इसी, इसी भूमि दै करि दरिद्र कै वनै सुनै।

१४—उदय

हनुमाननाटक तथा गंगा को व्याहलो—र० १८६३। ये दोनों ग्रंथ नागरीप्रचारिणी सभा के हस्तलिखित संग्रहालय मे उपलब्ध है। हनुमाननाटक मे उदय का नाम है, किन्तु गगा को ब्याहलो मे नही, पर लगता है यह इन्ही की रचना है। मिश्रबंधु विनोद मे इनका उल्लेख है। हनुमाननाटक दोहा चौपाई मे लिखा हुआ सुंदर ग्रंथ है। इसका रचनाकाल सं० १८६३ है। इसमें प्रबंधत्व है। भावात्मक स्थलों का सुंदर चित्रण है। कथा तब से प्रारभ होती है जब कपि सीता की खोज मे जाते हैं। सीता की विरहावस्था का बडा सुंदर चित्रण है। इसपर रामचरितमानस के सुदरकांड का प्रभाव लक्षित होता है। वैसी ही शब्दावली का प्रयोग द्रष्टव्य है—

कहियो कपि कर जोर जोर परिणाम हमारौ।
कैसे करुणा सिंधु कहत है नाम तिहारौ।
एक मास मो अवधि की सत्य कहौ कपि तोहि।
जो कदापि आये नहीं जियत न पावो मोहि। —छंद ४४।

अंत में हनुमान के प्रति कृतज्ञता और ग्रंथ का माहात्म्य वर्णित है।

गगा को व्याहलो मे ६१ छद है। कथावस्तु गगा और शान्तनु के व्याह की है। साहित्य दृष्टि से सामान्य कृति है। लोकजीवन की झाँकी है।

१५—अजीत सिंह

इन्होंने 'दुर्गापाठ भाषा' के नाम से दुर्गा सप्तशती का अनुवाद अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध मे किया था। अनुवाद सुंदर और भाषा गँठी हुई है।

१६—कुलपति मिश्र

ये प्रसिद्ध रीतिग्रथकार और कवि थे। इन्होंने भी 'दुर्गासप्तशती भाषा' नाम से दुर्गासप्तशती का अनुवाद सं० १७२४ से ४३ के बीच मे किया। इनका एक और ग्रंथ 'भक्तिचंद्रिका है जिसमें दुर्गा जी के स्तोत्र है। स्तोत्र की भाषा बड़ी ही प्रवाहपूर्ण है।

१७—माधोदास

इनके नाम से 'शक्ति-भक्ति-प्रकाश' नामक ग्रथ मिलता है जिसकी रचना सं० १७४० में हुई थी। इसमें दुर्गा के स्तोत्र है।

१८—कवि पीतांबर

इन्होंने भी 'दुर्गासप्तशती' का भाषानुवाद सवत् १७८७ में किया जिसका

शीर्षक है 'देवी जी का बृहत कवित्त भाषा'। रचना देखने को नहीं मिली, पर लगता है कि इस ग्रंथ में सभी कवित्त ही हैं।

१९--खुसराम

इन्होंने 'देवीस्तुति' की रचना संवत् १७८४ में की थी। इस ग्रंथ में देवी के स्तोत्र हैं।

२०--मार्कंडेय मिश्र

इनका ग्रंथ 'चडीचरित्र' है जो संवत् १८४५ में रचा गया था। संपूर्ण चरित्र ब्रजभाषा पद्य में है।

चतुर्थ खंड

वीर काव्य

प्रथम अध्याय

वीर काव्य

वीर शब्द--

वैदिक संस्कृत मे वीर शब्द शूर अथवा योद्धा के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है[1] और इसी परंपरित अर्थ को लेकर अमरकोषकार ने वीर शब्द को क्षत्रिय वर्ग के अंतर्गत युद्धवीर के पर्यायरूप मे स्थान दिया है ।[2] ऋग्वेद के भाष्यकार आचार्य सायण ने वीर शब्द से संबोधित होने योग्य व्यक्ति के वांछनीय गुणों पर प्रकाश डालते हुए उसे केवल 'वीर वीक्रांतान' ही नहीं अपितु कर्म मे समर्थ,[3] यज्ञादि अनुष्ठानो मे दक्ष[4] एव प्रेरक[5] भी कहा है । इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अस्त्र-शस्त्र-संचालन में कुशल, युद्धकला मे निष्णात्, शौर्य-श्री-संपन्न, यज्ञ, दान, दया ,धर्मादि कर्मो मे दक्ष व्यक्ति वीर कहा जा सकता है ।

मार्कंडेय पुराण (३५।३१), रामायण और महाभारत (४।५२।१४) मे वीर शब्द युद्धवीर या सुभट के ही अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । महाभारत (१।६७।१०३) में महाविकट भट भीम को वीरबाहु विशेषण से अभिहित किया गया है । रघुवंश (१३।५२) में वीरासन शब्द मिलता है जो वीरो के बैठने की एक विशिष्ट पद्धति का परिचायक है । अस्तु, वीरो के गुण, स्वरूप और कार्यों का विवेचन वैदिक ऋषियो और पुराणकारो से लेकर परवर्ती कविपरपरा तक क्रमश. पाया जाता है, इसलिये वीरो की प्रशस्ति, उनके युद्ध, दान, दया, धर्मादि के कर्मों का बखान, उनके शौर्य, सामर्थ्य और पराक्रम का वर्णन प्राचीन और अर्वाचीन काव्यो मे समान रूप से विद्यमान है । इसी संदर्भ मे 'वीरभोग्या वसुंधरा' की उक्ति भी वीरो के सामर्थ्य से उद्भूत हुई है ।

---

१. ऋग्वेद, १।११४।८, ५।२०।४।

२. शूरो वीरश्च विक्रांतो जेता जिष्णुश्च जिन्वर: ।
सांयुगीने रणे साधु: शस्त्र जीवादयास्त्रिषु ।।
---अमरकोष, क्षत्रियवर्ग, द्वितीय कांड, पृष्ठ ८३, पंक्ति १६२१-२२ ।

३. इमंधा वीरो अमृतं वीरं कृण्वीतमर्त्तर: ।। --ऋग्वेद ८।२३।२१६ ।
वीर: कर्म्मणि समर्थ. -। ---ऋग्वेद, सायणभाष्य ।

४. कर्तां वीराय सुष्वय उलोकं । दाता वसुस्तुंबते कीरयेचित् ।।
--ऋग्वेद, ६।२३।३ ।
वीराय यज्ञादि कर्म्मसु दक्षाय । ---ऋग्वेद, सायणभाष्य ।

५. इवाहि वो विधते रत्नमस्तीदा । वीराय दाशुष उषास: ।। ---ऋग्वेद, ६।६५।४.

वीर भाव—

वीरों का मनोगत मूल भाव उत्साह है। यह उत्साह ही वीरकर्मों की प्रेरक शक्ति का प्रतीक और वीरतापूर्ण क्रियाकलापों का मूल उत्स है। रससिद्धांत के आचार्यों की भाषा में वीरभाव को वीर रस का स्थायी भाव 'उत्साह' कहा जा सकता है, जो अनुभाव, विभाव, संचारी भावादि से भावित होकर वीर रस की निष्पत्ति का कारण होता है और वीरों को वीरतापूर्ण कार्यों के लिये प्रेरित करता है।

वीर रस और वीर काव्य

तत्वत: वीरकाव्य वीररसात्मक काव्य होता है, इसलिये रसनिष्पत्ति की दृष्टि से वीरकाव्य और वीररस का अन्योन्याश्रित संबंध है। रससिद्धांत के आचार्य भरत मुनि ने वीर रस को उत्साहात्मक और उत्तमप्रकृति कहा है, जो असंमोह, अध्यवसाय, नय, विनय, बल, पराक्रम, शक्ति, प्रताप और प्रभावादि भावों से भावित होकर स्थैर्य, धैर्य, शौर्य, त्याग, वैशारद्य (नैपुण्य) आदि अनुभावयुक्त होता है। धृति, मति, गर्व, आवेग, उग्रता, अमर्ष, स्मृति व रोमांचादि उसके संचारी भाव होते हैं[1] और इन सबके सम्यक् संयोग से वीरभाव वीर रस में परिणत होता है। इस संदर्भ में दो आर्या (छंद) द्रष्टव्य है—

उत्साहा(होऽ) ध्यवसायादविषादित्वादविस्मयामोहात् ।
विविधादर्थ विशेषाद्वीर रसो नाम संभवति ॥
स्थितिधैर्यवीर्यगर्वैरुत्साहपराक्रम प्रभावैश्च ।
वाक्यैश्चाक्षेप कृतैर्वीररसः सम्यगभिनेयः ॥[2]

अर्थात् उत्साह वीररस का स्थायी भाव है, जिससे अध्यवसाय, अविषादित्व, विस्मय, अमोह आदि आविर्भूत होते हैं। ऐसे ही विविध अर्थविशेषों द्वारा वीर रस द्योतित होता है। विशेषकर नाटक में स्थिरता, धैर्य, शौर्य, गर्व, उत्साह, पराक्रम, प्रभाव और आह्वान-युक्त वाक्यों से वीर रस का सम्यक् अभिनय किया जाता है। इसके अतिरिक्त युद्धवीर के लिये संग्राम में शस्त्रास्त्र प्रहारों का योग होता है[3] तथा इन शस्त्रास्त्रों के संचालन की

---

१. अथ वीरोनामोत्तमप्रकृतिरुत्साहात्मकः। स चासंमोहाध्यवसायनयविनयबल पराक्रम शक्तिप्रतापप्रभावादिभिर्विभावैरुत्पद्यते। तस्यस्थैर्य धैर्य शौर्यत्याग वैशारद्यादिभिरनुभावैरभिनयः प्रयोक्तव्यः भावाश्चास्य धृति मतिगर्वावेगौग्र्यामर्ष स्मृति रोमांचादय.॥

—नाट्यशास्त्र, गायकवाड ओरिएंटल सीरीज, अध्याय ६, पृष्ठ ३२४।

२. वही, अध्याय ६, पृष्ठ ३२५।

३. युद्धवीरे हि संग्राम संप्रहार योगो॥ —वही, पृष्ठ ३२४।

पृष्ठभूमि में उत्साह नामक मूल भाव क्रियमाण रहता है। उत्साह उत्तम प्रकृति का लक्षण है अतः उसमे निष्पन्न वीररस भी उत्तम-प्रकृति-मूलक है।[1]

वीररस का वर्ण गौर[2] और देवता महेंद्र है।[3]

वीर रस के प्रकार

ब्रह्मा की सृष्टि में वीररस त्रिविध था—

दानवीरं, धर्मवीरं, युद्धवीरं तथैवच।
रस वीरमपि प्राह ब्रह्मा त्रिविध मवहि॥[4]

मूलत. दान, धर्म और युद्ध के क्षेत्र में प्रदर्शित उत्साह के अनुसार ब्रह्मा ने दानवीर, धर्मवीर और युद्धवीर का त्रिविध विधान किया था, किंतु धनजय ने दशरूपक में ब्रह्मा के विधान में परिवर्तन कर दानवीर के स्थान पर दयावीर की प्रतिष्ठा की——

वीरः प्रतापविनयाध्यवसायसत्त्वामोहाविषादनयविस्मयविक्रमाद्यैः।
उत्साह भूः स च दया रण दानयोगात्त्रेधा किलात्र मति गर्व धृति प्रहर्षा॥[5]

धनंजय के मत से प्रताप, विनय, कार्यकुशलता बल, अमोह, अविषाद, नय, विस्मय तथा शौर्य आदि विभावो से उत्साह नामक स्थायी भाव भावित होकर वीर रस में परिणत हो जाता है। वीर तीन प्रकार के होते है—१. दयावीर, २. रणवीर और ३. दानवीर। इनमे मति, गर्व, धृति और प्रहर्ष सचारी का कार्य करते है।

दशरूपक के व्याख्याकार डॉ० भोलाशंकर व्यास ने नागानंद नाटक मे जीमूतवाहन को दयावीर, वीरचरित मे राम को युद्धवीर एवं परशुराम, बलि आदि को दानवीर कहा है[6]।

नाट्यशास्त्र और दशरूपक मे व्यक्त उपर्युक्त मतत्रयो का तुलनात्मक अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि भरत मुनि और धनंजय युद्धवीर और दानवीर को तो समान रूप से स्वीकार करते है किंतु जहाँ भरतमुनि ने धर्मवीर का उल्लेख किया है, वहाँ धनंजय ने दयावीर को प्रतिष्ठित कर दिया है। संभव है, धनजय पर जैन धर्म की दया-भावना का विशेष प्रभाव पड़ा हो, जिसके फलस्वरूप उन्होंने जैन धर्म के प्रमुख और मूल

---

१. उत्तमानां प्रकृतिः स्वभावोयत् उत्साहात्मो वीर रसो अपि॥—वही, पृष्ठ ३२४। (पादटिप्पणी)।

२. गौरो वीरस्तु विज्ञेयः।—वही, पृष्ठ २९९।

३. वीरो महेंद्र देवः। —वही, पृष्ठ २९९।

४. नाट्यशास्त्र, अध्याय ६, पृष्ठ ३३१।

५. दशरूपक, धनंजय, चतुर्थप्रकाश, पृष्ठ २७३, श्लोक ७२. व्याख्याकार—डॉ० भोलाशंकर व्यास।

६. वही, पृष्ठ २७३।

तत्व अहिंसा या जीवदया के आधार पर धर्मवीर के स्थान पर दयावीर को वीर रस के एक प्रकार के रूप में प्रतिष्ठित किया हो।

स्पष्ट है कि दया धर्म का मूल है, अतः दयावीर धर्मवीर हो सकता है किंतु दया में उन सभी व्यापक एवं उदात्त कर्मों का अंतर्भाव नहीं होता जो धर्म में संनिहित है। जैसे दानवीरता दया और धर्म दोनो से समर्थित है किंतु धर्मवीर के अनेक कार्य, जैसे मंदिरादि की रचना या यज्ञादि कर्मों का अनुष्ठान दयाप्रसूत न होकर धर्म-भाव-निष्पन्न श्रद्धा-भक्ति-प्रेरित होते है, अतः धर्मवीर का भावजगत् और कार्यक्षेत्र दयावीर के भावजगत् और कार्य-क्षेत्र से निश्चित रूप से अधिक व्यापक है, इसलिये साहित्यदर्पणकार पंडित विश्वनाथ ने अपने समन्वयवादी प्रयास से ब्रह्मा और धनंजय के तथाकथित त्रिविध वीरों को मिलाकर चतुर्विध कर दिया—दानधर्म युद्धैर्दया च समन्वितश्चतुर्धास्यात्[1]।

वीरकाव्य का क्षेत्र

उपर्युक्त विवेचन के अनुसार समस्त वीर भावात्मक काव्य वीरकाव्य के अंतर्गत आना चाहिए, किंतु हिंदी साहित्य के प्रायः सभी विद्वानों ने दानवीर, धर्मवीर और दयावीर संबंधी संपूर्ण कथासाहित्य या चरितकाव्यों को धार्मिक साहित्य कहकर विशुद्ध साहित्य की श्रेणी से बाहर निकाल दिया है और केवल युद्धवीरों से संबंधित चरितकाव्य या घटना-प्रसंग-संबंधी वीरप्रशस्तियों को ही वीरकाव्य के अंतर्गत स्थान दिया है। फिर इन्हीं युद्धवीरों को दानवीर, धर्मवीर और दयावीर निरूपित करते समय तत्संबंधी छंदों या काव्यांशों को भी वीरकाव्य के अंतर्गत बिना किसी आपत्ति के स्वीकार कर लिया है। वीरकाव्य संबंधी यह धारणा अधिक न्यायसंगत नहीं है। रस का सैद्धांतिक विवेचन करते समय वीर रस को चतुर्विध मानते ही तत्संबंधी चतुर्विध काव्य को भी वीरकाव्य मानना चाहिए। और इस व्यापक दृष्टिकोण से वीरकाव्य का क्षेत्र निर्धारित किया जाना चाहिए। वस्तुतः दानवीर, धर्मवीर और दयावीर संबंधी समस्त चरितकाव्यों या स्फुट रचनाओं को धार्मिक साहित्य कह देने से उनमे विद्यमान तत्संबंधी रसानुभूति और प्रभाव का लोप नहीं होता और केवल लौकिक चरितकाव्य के नायकों को युद्धवीर, दान, दया, धर्मवीर कह देने से वीरता का समस्त भाव व्यक्तिविशेष में ही केंद्रित नहीं होता, अतः वीरकाव्य के अंतर्गत चतुर्विध वीररसात्मक संपूर्ण साहित्य का अंतर्भाव होना चाहिए।

रस और रसानुभूति की दृष्टि से दानवीर, धर्मवीर और दयावीर संबंधी काव्य से उपलब्ध होनेवाली काव्यानुभूति विशुद्ध, अविकारी एवं अपरिवर्तनीय होती है, किंतु युद्धवीर विषयक काव्य मे वीर रस की दशा मे परिष्कार और परिवर्तन होता है। युद्ध-वीर का हृद्गत भाव उत्साह क्रोधावेश मे प्रायः रौद्र रस मे बदल जाता है. इसीलिये युद्ध-भूमि मे वीरों का चेहरा तमतमा उठता है और उनकी आँखे रक्तवर्ण हो जाती हैं। वीर

---

१. साहित्यदर्पण, विश्वनाथ, ३।२३४।

और रौद्र रस के संयोजन से वीरों में जोश की मात्रा और भी बढ़ जाती है। उत्साह की इस उद्दीप्त दशा में वीर युद्धभूमि में बड़े साहस से भयंकर मार काट करते हैं, जिसकी अंतिम परिणति बीभत्स रस में होती है। युद्धभूमि में बिखरे हाथ, रुंड, मुंड, रक्त, मांस, मज्जा की कीच, आदि के वर्णन इसी बीभत्स रस के व्यंजक हैं, अतः वीर रस विकसनशील और परिवर्तनीय भावदशा का समर्थक है, इसलिये हमें वीरकाव्य के अंतर्गत तत्संबंधी रौद्र और बीभत्स रस की रचनाओं को भी आनुषंगिक रूप मे स्वीकार कर लेना चाहिए। युद्धवीर संबंधी सभी काव्यों में रौद्र और बीभत्स रस की व्यंजना प्रायः पाई जाती है, अतः रौद्र और बीभत्स रसो को वीर रस की विकासोन्मुख प्रक्रिया का सहायक कहा जा सकता है। वीरों के चरित्र में जब कभी भी युद्ध प्रेमप्रवृत्ति से उत्पन्न हुआ है, कवियो ने संयोग और वियोग-शृंगार-वर्णन के अंतर्गत नायिका का नख-शिख-वर्णन, षड्ऋतुवर्णन, प्रकृतिचित्रण आदि के लिये भी जगह निकाल ली है और ऐसी स्थिति मे वीरकाव्यों के अंतर्गत शृंगार, वीर, रौद्र और बीभत्स रसों का संमिलन पाया जाता है।

दानवीर, दयावीर और धर्मवीर विषयक काव्य मे प्रायः शांत रस की प्रचुरता पाई जाती है अतः ऐसे काव्यों मे रसों की वह विविधता नही परिलक्षित होती, जो युद्धवीर संबंधी काव्यग्रंथों में दिखाई देती है। रसानुभूति की एकता और वर्णन की विशिष्ट परिपाटी के कारण ही साहित्य मर्मज्ञो ने दानवीर, दयावीर और धर्मवीर संबंधी काव्यों को 'धार्मिक साहित्य' कहकर छोड़ दिया है। इस उपेक्षा का ही यह फल है कि धार्मिक साहित्य के नाम पर संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, डिंगल और पिंगल मे अनगिनती चरितकाव्य काल-कवलित होते रहे है और होते जा रहे हैं।

सामान्यतः वीरो का व्यक्तित्व, उनका दान-दया-धर्म-युद्ध विषयक उत्साह और उनके विविध कार्य ही वीरकाव्य के आलंबन है। इस दृष्टि से वीरो का चरित्र, उनका इतिहास, वीरगाथाएँ, प्रशस्तियाँ, युद्धवर्णन और वीरो के कार्यकलाप संबंधी विविध प्रसंगों का वर्णन वीरकाव्य के अंतर्गत आता है जिसमे शृंगार, रौद्र और बीभत्स रस वीर रस के सहयोगी के रूप में उपलब्ध होते है। प्रायः समस्त भारतीय वीरकाव्य मे ये विशेषताएँ समान रूप से पाई जाती है। निष्कर्षतः वीरकाव्य वीरो के चरित्र और वीरतापूर्ण घटनाओ से संबंधित काव्य स्वीकार किया जाना चाहिए।

द्वितीय अध्याय

वीरकाव्य के कवि और उनकी रचनाएँ

हिंदी के रीतिकालीन साहित्य में रीतिमुक्त काव्य के अंतर्गत वीरकाव्य का महत्व सर्वोपरि है। इसके प्रमाणस्वरूप हिंदी भाषाभाषी और हिंदीतर भाषाभाषी क्षेत्र के १८७ रीतिकालीन हिंदी कवियों की संक्षिप्ततम जीवनी और उनकी काव्यसाधना का कालक्रमागत अल्प परिचय इस अध्याय मे दिया गया है। इन १८६ कवियों में उन २५ कवियों का भी समावेश हुआ है, जिन्हें रीतिबद्ध काव्यसर्जक के नाते हिंदी साहित्य के बृहत् इतिहास (षष्ठ भाग) में स्थान दिया गया है। इन रीतिबद्ध और रीतिमुक्त वीरकाव्य प्रणेताओं के नाम इस प्रकार हैं:

१. केशवदास, २. चिंतामणि, ३. कुलपति मिश्र, ४. देव, ५. श्रीपति भट्ट, ६. सोमनाथ, ७. प्रतापसाहि, ८. ग्वाल, ९. सुखदेव, १०. कृष्णभट्ट, ११. शंभुनाथ मिश्र, १२. शिवनाथ, १३. पद्माकर, १४. चंद्रशेखर वाजपेयी, १५. मतिराम, १६. उदयनाथ कवींद्र, १७. कालिदास त्रिवेदी, १७. भूषण, १९. श्रीधर 'मुरलीधर', २०. गोविंद कवि, २१. दूलह, २२. दत्त कवि, २३. भान कवि, २४ बिहारीलाल और २५. निवाज तिवारी।

यहाँ इस तथ्य का स्पष्टीकरण अत्यंत आवश्यक है कि उक्त २५ कवियों के जीवन और काव्य के संबंध में जो विवरण इस अध्याय मे प्रस्तुत किया गया है, वह हिंदी साहित्य के बृहत् इतिहास के षष्ठ भाग मे उपलब्ध विवरण से सर्वथा भिन्न है, क्योंकि यहाँ हमारा दृष्टिकोण उक्त कवियों की रीतिबद्ध काव्यसाधना का पिष्टपेषण करना नही है, अपितु रीतिमुक्त वीरकाव्य-सृजन-परंपरा मे उनकी साधना और प्रदेय का संकेतमात्र करना है, अतएव उक्त कवियों के संबंध मे जो पुनरावृत्ति इस अध्याय में प्रतीत होती है, वह नाममात्र की है, वर्ण्य विषय की नहीं।

रीतिकालीन हिंदी वीरकाव्य की रचनाएँ काश्मीर से महाराष्ट्र तक और बंगाल से गुजरात, भुज, कच्छ काठियावाड़ तक सारे देश में बिखरी पड़ी है। इनका संकलन,

---

१. देखिए,—हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास, षष्ठभाग : सं० डॉ० नगेंद्र, क्रमशः पृष्ठसंख्या—३०१, ३१२, ३१९, ३२९ और ४२३, ३४८, ३५०, ३७४, ३७८, ३९१, ३९३, ४०२, ४०३, ४०८, ४१५, ४२१, ४२८, ४३२, ४५१, ४५४, ४६०, ४६१, ४६७, ४३२, ५०८ और ५३४।

अध्ययन, विश्लेषण, वर्गीकरण और मूल्यांकन अत्यंत श्रमसाध्य, व्ययसाध्य, क्लिष्ट कार्य है, अतः रीतिकालीन हिंदी वीरकाव्य का सर्वांगीण अध्ययन अद्यावधि नही हो पाया है। प्रस्तुत ग्रंथ की सीमा के अंतर्गत यह संभव भी नही है, फिर भी यथोपलब्ध निजी संग्रहों, राजकीय पुस्तकालयो, शोधसंस्थानो, धार्मिक प्रतिष्ठानो, खोज विवरणो, स्थानीय, क्षेत्रीय, प्रादेशिक हिंदी साहित्य के इतिहासग्रंथों, हस्तलिखित पुस्तकों, प्रकाशित ग्रंथों, शोधप्रबधों आदि के आधार पर रीतिकालीन हिंदी वीरकाव्य के कवियों का अध्ययन इस अध्याय में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। वस्तुतः इस संपूर्ण सामग्री पर समग्रतामूलक अध्ययन और स्वतंत्र शोध की आवश्यकता है।

अध्ययन की सुविधा के लिये इस अध्याय के प्रारंभ में हिंदी वीरकाव्य के कवियों की कालक्रमागत सूची दी गई है। सूची (क) के अंतर्गत महाकवि केशवदास से लेकर विक्रम संवत् १७०० तक के रीतिकालीन हिंदी वीरकाव्य के प्रारंभिक कवियो का नामोल्लेख किया गया है। सूची (ख) मे संवत् १७०० से १६०० तक के हिंदी वीरकाव्य का परिचय दिया गया है और सूची (ग) मे रीतिकाल के उन हिंदी वीरकवियो का उल्लेख किया गया है जो उक्त काल की अंतिम सीमा में अथवा रीतिकाल की सीमा के अंतर्गत स्थान पा सकते हैं।

अध्याय के अंत में प्रकाशित और अप्रकाशित ग्रंथों की कालक्रमागत सदर्भ सूची दी गई है, जिससे इस अध्याय में वर्णित कवियो की जीवनी और रचनाओं का विस्तृत अध्ययन करने में सुविधा हो सकती है।

रीतिकालीन हिंदी वीरकाव्य के कवियो और उनकी रचनाओं की ऐतिहासिक सूची इस प्रकार है--

सूची (क)

रीतिकालीन परंपरा में हिंदी वीरकाव्य के प्रारंभिक कवि (संवत् १७०० वि० से पूर्व)।

क्रमांक कवि का नाम	ग्रंथ	रचनाकाल
१—केशवदास	रत्नबावनी	सं० १६३६ वि०
	वीरसिंहदेवचरित	,, १६६५ ,,
	जहाँगीर-जस-चंद्रिका	,, १६६६ ,,
२—ऋषभदास जैन	कुमारपाल रासो	,, १६७० ,,
३—महाराजा मानसिंह	मानचरित्र	,, १६७५ ,,
४—जटमल	गोराबादल की कथा	,, १६८० ,,

सूची (ख)

रीतिकालीन हिंदी वीरकाव्य के कवि (संवत् १७०० वि० से सं० १६०० वि० तक)

५—बनवारी	स्फुट छंद	सं० १७०० वि०

६—दुरसा आढ़ा	झूलणा राव अमरसिंह गजसिंघौत रा	सं०	१७०१ वि०	
७—लालचंद जैन	गोराबादल रण जय	„	१७०२ „	
८—गंभीरराय	एक ग्रंथ (१)	„	१७०७ „	
९—रामकवि	जयसिंह चरित्र	„	१७१० „	
१०—डूँगरसी	शत्रुसाल रासो	„	१७१० „	के लगभग
११—न्यामतखाँ 'जानकवि'	कायमरासो	„	१७१० „	
१२—जयराम पिंडे	स्फुट छंद	„	१७१० „	के लगभग
१३—हिंदुस्तानी भाट	„ „	„	१७१० „	के लगभग
१४—जगतसिंह	जगद्विलास	„	१७११ „	
१५—रत्नाकर	स्फुट छंद	„	१७१२ „	
१६—पाला कवि	स्फुट छंद	„	१७१४ „	के लगभग
१७—काशीराम	कवित्त	„	१७१५ „	के लगभग
१८—जग्गा जी खिड़िया	वचनिका राठौर रतनसिंह जी री, महेस दासोतरी	„	१७१५ „	
१९—मतिराम	ललितललाम	„	१७१९ „	
२०—किशोरदास भाट	राजप्रकाश	„	१७१९ „	
२१—दत्त कवि	सूरजमल को कृपाण	„	१७२० „	
२२—महाकवि बिहारीलाल	स्फुट कवित्त	„	१७२२ „	के लगभग
२३—कुलपति मिश्र	रसरहस्य	„	१७२७ „	
	संग्रामसार	„	१७३३ „	
२४—तुलसीदास	स्फुट छंद	„	१७२७ „	के लगभग
२५—भूषण	शिवराजभूषण	„	१७३० „	
	शिवाबावनी	„	१७३० „	के लगभग
	छत्रसालदशक	„	१७३० „	के लगभग
२६—श्रीगोविंद	स्फुट छंद	„	१७३० „	के लगभग
२७—गंगेश	„ „	„	१७३० „	के लगभग
२८—सोन कवि	„ „	„	१७३० „	के लगभग
२९—शुकदेव मिश्र 'कविराज'	„ „	„	१७३० „	के लगभग
३०—नीलकंठ	„ „	„	१७३० „	के लगभग
३१—श्रीपति भट्ट	हिम्मतप्रकाश	„	१७३१ „	
३२—कुंभकर्ण	रतनरासो	„	१७३२ „	के लगभग
३३—सबलसिंह चौहान	महाभारत चक्रव्यूह	„	१७३३ „	
३४—अज्ञानदास	स्फुट छंद	„	१७३५ „	के लगभग

३५—रणछोड़	राजपट्टन	सं० १७३७ वि०
३६—निवाज तिवारी	छत्रसाल विरुदावली	,, १७३७ ,,
३७—चिंतामणि	लालमणि	,, १७४० ,, के लगभग
३८—सुखदेव मिश्र	छंदविचार	,, १७४० ,,
३९—कनककुशल	महाराव श्रीगोहड़ जी नो छंद	,, १७४१ ,, के लगभग
४०—महापात्र जैतसिंह	मुअज्जमशाह के कवित्त	,, १७४२ ,,
४१—कालिदास त्रिवेदी	स्फुट छंद	,, १७४५ ,,
४२—मान	राजविलास	,, १७४६ ,,
४३—बादर	वीरमाण	,, १७५० ,,
४४—हंसराम	स्फुट छंद	,, १७५२ ,,
४५—कुँवरेश	द्रोणपर्व (अनुवाद)	,, १७५२ ,,
४६—गुरुदत्त	कवित्त	,, १७५३ ,, के लगभग
४७—हरिनाभ	केसरीसिंह समर	,, १७५४ ,,
४८—दयालदास	राणा रासो	,, १७५५ ,,
४९—गिरिधर आस्या	सगतसिंघ रासो	,, १७५५ ,,
५०—महाराजा जयसिंह	जयदेव विलास	,, १७५७ ,,
५१—सेनापति	गुरुशोभा	,, १७५८ ,,
५२—अणीराय	जंगनामा	,, १७५९-६०के लगभग
५३—आलम	स्फुट छंद	,, १७६० ,, के लगभग
५४—रामकवि	स्फुट छंद	,, १७६१ ,,
५५—वृंद	वचनिका	,, १७६२ ,,
	सत्यस्वरूप	,, १७६४ ,, के बाद
५६—हरिनाथ महापात्र	स्फुट छंद	,, १७६२ ,,
५७—हरिदास	अजीतसिंह चरित्र	,, १७६३ ,,
५८—उदयनाथ कवींद्र	स्फुट छंद	,, १७६३-६४
५९—दूलह	स्फुट छंद	,, १७६४ ,,
६०—गुरु गोविंदसिंह	दशमग्रंथ, चंडीचरित्र	,, १७६५ ,,
६१—अमृतराई	चित्रविलास	,, १७६५ ,, के लगभग
६२—हीरकवि	स्फुट छंद	,, १७६५ ,, के लगभग
६३—सुंदर	स्फुट छंद	,, १७६५ ,, के लगभग
६४—श्रीधर (मुरलीधर)	जंगनामा	,, १७७० ,,
६५—गोरेलाल लालकवि	छत्रप्रकाश	,, १७७२ ,,
६६—मूकजी बंदीजन	खीची वंशावली	,, १७७५ ,,

६७—जगन्नाथ	मोहमदराज की कथा	सं०	१७७६ वि०
६८—गोविंदकवि	स्फुट छंद	,,	१७८० ,,
६९—हरिकेश द्विज	जगत् दिग्विजय	,,	१७८२ ,,
	स्फुट कवित्त	,,	१७८८ ,,
७०—केवलराम	बावी विलास	,,	१७८३ ,,
७१—गजन	कमरुद्दीन खाँ हुलास	,,	१७८५ ,,
७२—हमीरदान रतनू	देमल जी री वचनिका	,,	१७८५ ,,
७३—भावसिंह	स्फुट छंद	,,	१७८७ ,, के लगभग
७४—करणीदान	सूरजप्रकाश	,,	१७८७ ,,
	बिड़द सिणगार	,,	१७८७ ,,
७५—वीरभाण	राजरूपक	,,	१८७७ ,,
७६—दलपति विजय	खुमाण रासो	,,	१७९० ,,
७७—रसपुंज	कवित्त श्रीमाता जी रा	,,	१७९० ,,
७८—सुजानसिंह	सुजानविलास	,,	१७९० ,,
७९—नंदराम	शिकारभाव	,,	१७९० ,,
८०—देवर्षि श्रीकृष्णभट्ट 'कविकलानिधि'	सांभरयुद्ध	,,	१७९१ ,
८१—महाराणा राजसिंह	बाहुविलास	,,	१७९२ ,,
८२—नाथकवि	स्फुट छंद	,,	१७९३ ,,
८३—शाहजू पंडित	बुंदेल वंशावली	,,	१७९४ ,,
	लक्ष्मणसिंह प्रकाश	,,	१७९४ ,,
८४—कुँवरकुशल	लखपति-यश-सिंधु	,	१७९६ ,,
८५—सदानंद	भगवतराय रासा	,,	१७९७ ,,
८६—महताब	नखशिख (?)	,,	१८०० ,, के लगभग
८७—नरसिंहदास	बाबा-वंश-प्रशस्ति	,,	१८०० ,, के लगभग
८८—देवकर्ण	बाराहपुराण	,,	१८०२ ,,
८९—फटेराम	महाराजा गजसिंहरो रूपक	,,	१८०४ ,,
९०—बख्ता खड़िया	अभयसिंघ रा कबित्त	,,	१८०५ ,,
९१—आदितराम जी	स्फुट छंद	,,	१८०६ ,,
९२—तीर्थराज	समरसार समरविजय	,,	१८०७ ,,
९३—पृथ्वीराज सांदू	अभयविलास	,,	१८०७ ,,
९४—सोमनाथ	सुजान विलास	,,	१८०७ ,,
९५—पहाड़खाँ आढ़ा	गोगादे रूपक	,,	१८०५–१० वि०
९६—रंगलाल	स्फुट छंद	,,	१८०७ ,,

९७—सूदन	सुजानचरित्र	सं० १८१० वि० के लगभग
९८—गोपीनाथ	ग्रंथराज उर्फ गजसिंह रूपक	,, १८१० ,,
९९—लालकवि भरतपुरवाले	स्फुट छंद	,, १८१२ ,,
१००—पतिराम	स्फुट छंद	,, १८१२ ,,
१०१—महाकवि देव	स्फुट छंद	,, १८१५ ,,
१०२—केशव	स्फुट छंद	,, १८१५ ,,
१०३—जुलकरन	स्फुट छंद	,, १८१५ ,,
१०४—बिहारीलाल	हरदौल चरित्र	,, १८१५ ,,
१०५—भारतचंद्रराय गुणाकर	मानसिंह की यशोयात्रा	,, १८१८ ,,
१०६—चंद्रकवि	स्फुट छंद	,, १८१८ ,,
१०७—ईश कवि	नरेंद्रविजय	,, १८१८ ,,
१०८—देवदत्त 'दत्तकवि'	ब्रजराज पचाशिका	,, १८१८ ,,
	वीर विलास	,, १८१८ ,, के लगभग
१०९—हुक्मीचंद	स्फुट छंद और गीत	,, १८२० ,,
११०—गोपाल	भगवंतराय की विरुदावली	,, १८२० ,, के लगभग
१११—सुधाकर	स्फुट छंद	,, १८२० ,,
११२—रामकवि भरतपुरवाले	स्फुट छंद	,, १८२० ,,
११३—शोभनाथ	स्फुट छंद	,, १९२४ ,,
११४—ब्रजनंद	स्फुट छंद	,, १८२५ ,,
११५—छविनाथ अवस्थी	माधव-सुयश-प्रकाश	,, १८२५ ,,
११६—शंभुनाथ मिश्र	भगवंतराय-यश-वर्णन	,, १८२७ ,, के लगभग
११७—केशोदास	वार महाराज अमरसिंह की	,, १८३१ ,,
११८—लालकवि	स्फुट छंद	,, १८३३ ,,
११९—गुलाब चतुर्वेदी	करहिया को रायसो	,, १८३४ ,,
१२०—हरिकवि	स्फुट छंद	,, १८३४ ,,
१२१—राजेश	स्फुट छंद	,, १८३४ ,,
१२२—हुलासी	स्फुट छंद	,, १८३४ ,,
१२३—घनश्याम शुक्ल	स्फुट छंद	,, १८३४ ,,
१२४—लाल झा	कदर्पीघाट की लड़ाई	,, १८३७ ,,
१२५—मधुसूदनदास	रामाश्वमेध	,, १८३९ ,,
१२६—श्रीकृष्ण भट्ट	आलीजा प्रकाश	,, १८४० ,, के लगभग
१२७—भानकवि	नरेंद्रभूषन	,, १८४५ ,,
१२८—शिवराम भट्ट	विक्रमविलास	,, १८४७ ,,
	प्रतापपच्चीसी	,, १८४७ ,,

१२९—पद्माकर	हिम्मतबहादुर विरुदावली	सं० १८४९ वि०
	प्रतापसिंह विरुदावली	,, १८४९ ,, के लगभग
१३०—प्राणनाथ	चक्रव्यूह	,, १८५० ,,
	बभ्रुवाहन कथा	लिपिकाल सं० १८६८ वि०
१३१—पाताभाई	जसोविलास	सं० १८५० वि०
१३२—सूरतराम	स्फुट छंद	,, १८५० ,,
१३३—खुमान मानकवि	समरसार	,, १८५२ ,,
	लक्ष्मणशतक	,, १८५५ ,,
	रामरासा	,, १८६५ ,,
१३४—प्रतापसाहि	जयसिंह प्रकाश	,, १८५२ ,,
	काव्यविलास	,, १८८६ ,,
१३५—दुर्गाप्रसाद	नायकरासो। अजीतसिंह फतेग्रंथ	,, १८५३ ,,
१३६—शिवनाथ कवि बंदीजन	रासा भइया बहादुरसिंह का	,, १८५४ ,,
१३७—केवाट सरवरिया	अनंतराय साँखला रो वार्ता	,, १८५४ ,,
१३८—मुक्खासिंह	गुरुबिलास	,, १८५४ ,,
१३९—मनीराम शुक्ल	चंडीचरित्र	,, १८५५ ,,
१४०—अनंत फंदी	नाना फडणीस का पोवाडा	,, १८५७ ,,
१४१—गणेश बंदीजन	स्फुट छंद	,, १८५७ ,,
१४२—गणपति भारती	वीरहजारा	,, १८६० ,, के लगभग
१४३—लखधीर चारण	खेंगार चरित्र	,, १८६० ,, के लगभग
१४४—गोपाल जगदेव	शौर्य बावनी	,, १८६० ,, के लगभग
१४५—भागमल्ल	स्फुट छंद	,, १८६० ,,
१४६—जसराम	स्फुट छंद	,, १८६१ ,,
१४७—गंगाधर	स्फुट छंद	,, १८६१ ,,
१४८—प्रसिद्ध	स्फुट छंद	,, १८६१ ,,
१४९—महेश कवि	हम्मीररासो (प्रतिलिपि)	,, १८६१ ,,
१५०—संगमलाल	स्फुट कवित्त	,, १८६४ ,,
१५१—छत्रनाथ	स्फुट छंद	,, १८६४ ,, के लगभग
१५२—उत्तमचंद भंडारी	रतनाहमीर की बात	,, १८६४ ,,
१५३—रामदान लालस	भीमप्रकाश	,, १८६५ ,,
१५४—सागरदान चारण	गुणविलास	,, १८६७ ,,
१५५—मारकंडे मिश्र	चंडीचरित्र	,, १८६९ ,,
१५६—मंडन भट्ट	राठौड़चरित्र	,, १८७० ,, के लगभग

	रावलचरित्र	सं०	१८७० वि० के लगभग
	जयसाह-सुजस-प्रकाश	,,	१८७० ,, के लगभग
१५७—बल्देव मिश्र	अजमतिखाँ-यश-वर्णन	,,	१८७२ ,,
१५८—श्रीधर	पारीछत रायसा	,,	१८७३ ,,
१५९—गणेश कवि	फतहनामा श्री गुरु खालसा जी का	,,	१८७६ ,,
१६०—किशन आढ़ा	भीमविलास	,,	१८७९ ,,
१६१—रमेश	स्फुट छंद	,,	१८८० ,,
१६२—ग्वाल कवि	विजयविनोद	,,	१८७९ ,,
	हम्मीरहठ	,,	१८८१ ,,
१६३—लक्ष्मीनाथ	राजविलास	,,	१८८३ ,,
१६४—चंद्रशेखर वाजपेयी	स्फुट छंद	,,	१८८४ ,,
	हम्मीरहठ	,,	१९०२ ,,
१६५—जोधराज	हम्मीररासो	,,	१८८० ,,
१६६—दयाल	चंडीचरित्र	,,	१८८९ ,,
१६७—बाँकीदास	स्फुट छंद	सं०	१८९० वि०
	मान-जसो-मंडन	,,	१८७१ ,,
१६८—चंडीदान	विरुदप्रकाश	,,	१८९२ ,, के लगभग
	वंशाभरण	,,	१८९२ ,, के लगभग
१६९—शंकर बंदीजन	स्फुट छंद	,,	१८९२ ,,
१७०—गंगाराम	मानमंजरी (आंशिक)	,,	१८९३ ,,
१७१—नाथूराम शुक्ल	तरुनयशबावनी	,,	१८९४ ,,
१७२—चतुरराय	गढ़ पथेने रासो	,,	१८९५ ,,
१७३—बीठू भोमो	महाराजा रतनसिंह जी री कविता बीठू भोमो री कही	,,	१८९५ ,
१७४—शिवदयाल	स्फुट छंद	,,	१८९६ ,, के लगभग
१७५—सूर्यमल्ल	वंशभास्कर	,,	१८९७ ,,
१७६—सिंधु कवि 'आनंद'	दिनमणि-वंशावली-गुण-कथन	,,	१८९८ ,,
१७७—खजानसिंह	जंगनामा दिल्ली	,,	१९०० ,, के लगभग
१७८—संतोखसिंह	गुरुप्रतापसूर्य	,,	१९०० ,, के लगभग
१७९—अजवेश महापात्र	बघेला-वंश-वर्णन	,,	१९०० ,, के लगभग
१८०—उमादास उर्फ भवानीदास	स्फुट छंद	,,	१९०० ,, के लगभग
१८१—टिकैतराय	गाँजर की लड़ाई	,,	१९०० ,, के पूर्व

सूची (ग)

रीतिकालीन हिंदी वीरकाव्य के अंतिम कवि, जो संवत् १९०० वि० के पूर्व वर्तमान थे।

१८२—संतरेग	नानकविजय	सं० १८३६-१९१६ वि.तक
१८३—दित्तेराय	महेंद्रसिंह प्रकाश	सं० १८६३-१९१९ वि.तक
१८४—सेवकराम बदीजन	स्फुट छद	,, १८७२-१९३८ ,, ,,
१८५—भवनेश महापात्र	स्फुट छद	,, १८७६-१९३ ,, ,,
१८६—मदनेश महापात्र	सजनप्रकाश	,, १८८१ वि० के बाद
१८७—मतीप्रसाद	जयचंद वंशावली	अज्ञात (?)
१८८—वसंतसिंह ऋतुराज	स्फुट छद	अज्ञात (?)
१८९—टहलसिंह	स्फुट छद	अज्ञात (?)

१. केशवदास

आचार्य केशवदास काव्य के विविधाग निरूपक रीतिबद्ध काव्यग्रथों के प्रणेता थे। उन्होने रसिकप्रिया, कविप्रिया, रामचंद्रिका, वीरसिंहदेव चरित और विज्ञानगीता में अपना परिचय दिया है। तथ्यनिरूपण की दृष्टि से कविप्रिया मे उपलब्ध कवि का जीवन-वृत्त अन्य ग्रथो मे उपलब्ध इतिवृत्त की अपेक्षा अधिक विस्तृत एवम् अन्य सूचनाओ से पुष्ट और समर्थित है।[१]

कविप्रिया के अनुसार केशवदास सनाढ्य जाति मे उत्पन्न भारद्वाज गोत्रीय, मिश्र उपनामधारी पंडितराज कृष्णदत्त के पौत्र और पडित काशीनाथ के पुत्र थे। इनका जन्म टेहरी में हुआ था। इनके पूर्वज ब्रजमंडल के अतर्गत डीग कुम्हरे नामक गाँव के निवासी थे।

केशव के पितामह कृष्णदत्त जी राजा मधुकरशाह के राज्यत्वकाल मे ओरछा आए थे। पडित कृष्णदत्त तथा उनके पुत्र पडित काशीनाथ सस्कृत के धुरधर विद्वान् थे, अतः महाराज मधुकरशाह के दरबार मे उन्हे विशेष सम्मान प्राप्त हुआ। पडित काशीनाथ-जी के तीन पुत्र हुए—बलभद्र, केशवदास और कल्याणदास। ये तीनो भाई कवि थे। बलभद्र ने ब्रजभाषा मे 'नखशिख' नामक काव्य लिखा और कल्याणदास ने अनेक स्फुट पद रचे। केशवदास ने रीतिकाल के प्रस्तोता आचार्य कवि के रूप मे अक्षुण्ण कीर्ति अर्जित की।

केशव के जीवन के संबध में विद्वानो में मतैक्य नही है। केशव पंचरत्न में लाला भगवानदीन ने केशव का जन्म चैत्र. सवत् १६१८ वि० और मृत्यु सवत् १६८० लिखा है

---

१. कविप्रिया, प्रभाव द्वितीय, केशवदास, पृष्ठ ८–१०, छद १–२१, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, सन् १९२४ ई०।

किंतु सामान्यतः विद्वज्जन केशव का जीवनकाल संवत् १६१२ से संवत् १६७४ तक मानते हैं।[१]

रसिकप्रिया में प्राप्त अंतःसाक्ष्य के आधार पर बुंदेलखंड के ओरछा राज्य के अंतर्गत तुंगारण्य के निकट बेतवा नदी के तट पर ओरछा नगर में केशव का निवासस्थान था। यहाँ व्यासपुरा मुहल्ला में पुरानी इमली के पेड़ के नीचे विद्यमान भग्नावशेष को गणेशप्रसाद जी द्विवेदी ने 'केशव का घर' कहा है।[२]

केशव, ओरछानरेश महाराज इंद्रजीतसिंह के राजकवि, मंत्रगुरु और मंत्री थे, अतः इंद्रजीतसिंह ने इन्हें २१ ग्राम देकर संमानित किया था।[३] इंद्रजीतसिंह के शासनकाल में केशव राजसी ठाठबाट से रहते थे।[४]

केशव लोकनीति, लोकव्यवहार और दरबारी नियमों के अच्छे जानकार थे। एक बार अकबर ने इंद्रजीतसिंह के दरबार की नर्तकी रायप्रबीन को अपने यहाँ बुलाया, पर वह अकबर के प्रस्ताव से सहमत नहीं हुई, इसलिये इंद्रजीतसिंह ने रायप्रबीन को अकबर के पास नहीं भेजा। इस घटना से चिढ़कर अकबर ने इंद्रजीतसिंह पर १ करोड़ रुपए का जुर्माना कर दिया। केशव बीरबल के पास आगरा पहुँचे और उनकी प्रशंसा में निम्नलिखित छंद पढ़ा——

पावक पंछी पसू नर नाग नदी नद लोक रचे दस चारी।
'केशव' देव अदेव रचे, नरदेव रचे रचना न निवारी॥

---

१. हिंदी वीरकाव्य, डॉ० टीकमसिंह तोमर, पृष्ठ २१।
हिंदी साहित्य का उद्भव और विकास—श्री रामबहोरी शुक्ल और डॉ० भगीरथ मिश्र, पृष्ठ २४४।
हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, द्वादश संस्करण, पृष्ठ १६१।
हिंदी साहित्य, सं० डॉ० धीरेंद्र वर्मा, द्वितीय खंड, पृष्ठ १६३।
हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास, सं० डॉ० नगेंद्र, षष्टभाग, पृष्ठ ३०२।

२. हिंदी वीरकाव्य संग्रह, सं० श्री गणेशप्रसाद द्विवेदी, केशवदास, पृष्ठ ७३।

३. गुरु करि मान्यो इंद्रजित, तन, मन, कृपा विचारि।
ग्राम दये इकबीस तब, ताके पाँय पखारि॥
—कविप्रिया, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, सातवीं बार, सन् १९२४, पृष्ठ १०।

४. भूतल को इंद्र, इंद्रजीत जीवै जुग जुग,
केशोदास जाके राज, राज सो करत है।
—वही, पृष्ठ २३।

कै बरबीर बली बलबीर, भयो कृतकृत्य महाव्रत धारी।
दै करतापन आपन पाहि, दई करतार दुवौ कर तारी ॥[१]

उक्त छंद से बीरबल इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने केशव को छह लाख रुपए की हुंडियाँ पुरस्कारस्वरूप दे डाली और दरबार मे अकबर को युक्ति से समझा बुझाकर इंद्रजीतसिंह पर किया गया एक करोड़ रुपए का जुर्माना माफ करा दिया।[२]

प्रकांड पंडित होने के साथ साथ केशव स्वभावत. रसिक थे। और यह रसिकता उनमें इस सीमा तक थी कि बुढ़ापे मे भी केशव ने उसका पीछा नही छोड़ा।[३]

केशव में काव्यप्रतिभा थी या नही, यह विवाद का विषय हो सकता है किंतु तटस्थ रूप मे यह कहा जा सकता है कि स्वयस्फूत काव्यसर्जना की अपेक्षा विषयगत विदग्ध काव्य रचने का उनका अच्छा अभ्यास था, इसीलिये उनके काव्य मे कविहृदय की सहज संवेदनशील भावुकता की अपेक्षा बुद्धिवादी पांडित्य अधिक मिलता है। केशव के काव्यादर्श के सबध मे लाला सीताराम जी ने लिखा है कि उन्होंने साहित्य की मीमासा स्वानुभूति और मौलिक-उद्भावनाओं द्वारा नही की, अपितु शास्त्रीय पद्धति पर पांडित्यपूर्ण काव्य-सृष्टि का आदर्श अपने सामने रखा।[४]

अद्यतन शोध और सूचनाओं के अनुसार केशव के नाम से १७ ग्रंथ प्राप्त हुए है, जिनमें से ९ प्रामाणिक, १ सदिग्ध तथा ७ ग्रथ अप्रामाणिक है—।

(क) प्रामाणिक रचनाएँ

१. रत्नबावनी, २. रसिकप्रिया, ३. कविप्रिया, ४. रामचंद्रिका, ५. वीरसिंहदेवचरित, ६. विज्ञानगीता, ७. जहाँगीरजसचंद्रिका, ८. नखशिख और ९. छंदमाला।

(ख) संदिग्ध रचना

१. रामालंकृत मजरी।[५]

---

१. हिंदी वीरकाव्य संग्रह, सं० श्री गणेशप्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ ७८।
२. सर्वे फॉर हिंदी मेनुस्क्रिप्ट्स फार १९०६–८, श्री श्यामबिहारी मिश्र, एम० ए०, पृष्ठ ७।
३. केशव केसनि अस करी, बैरिहु जस न कराहिं।
चंद्रबदनि मृगलोचनी, बाबा कहि कहि जाहिं॥
—हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृष्ठ १९७।
४. सिलेक्शन फ्रॉम हिंदी लिटरेचर लाला सीताराम बी० ए०, जिल्द १, पृष्ठ ५०।
५. हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास, सं० डॉ० नगेंद्र, षष्ठ भाग, पृष्ठ ३०२।

(ग) अप्रामाणिक रचनाएँ

१. बालिचरित्र, २. हनुमान जन्मलीला, ३. आनंद लहरी, ४. रसललित, ५. कृष्णलीला, ६. अमीघूंट और ७. जैमुनि की कथा।[१]

केशव का वीरकाव्य

केशव की रचनाओ मे वीरकाव्य की दृष्टि से रत्नबावनी, कविप्रिया का इद्रजीतसिंह विषयक अश (प्रथम दो प्रभाव), वीरसिंहदेवचरित, एव जहाँगीरजसचंद्रिका विशेष महत्वपूर्ण है।

रत्नबावनी

संवत् १६३६ मे महाराज इद्रजीतसिंह के बड़े भाई महाराज रत्नसिंह अकबर की सेना के साथ बंगाल का विद्रोह शात करने के लिये गए थे और वहीं युद्धक्षेत्र मे लडते लड़ते उन्होने वीरगति पाई थी। इसी प्रसग को लेकर केशव ने रत्नबावनी की रचना की। इस सक्षिप्त ग्रथ मे ५२ छद है तथा वीर रस का अच्छा प्रवाह है।[२]

वीरसिंहदेवचरित

इस ग्रथ मे वीरसिंहदेव बुंदेला का जीवनचरित्र, शौर्य, युद्ध, राज्यप्राप्ति और ऐश्वर्य का वर्णन किया गया है। लोभ और दान के सवाद से ग्रथारभ हुआ है, फिर बुंदेल वंश की उत्पत्ति, वीरसिंहदेव की प्रारंभिक विजय, मुराद की मृत्यु, सलीम का मेवाड़ से लौटकर विद्रोह, वीरसिंह-सलीम-भेंट, अबुलफजल की हत्या, वीरसिंह और अकबर का युद्ध, मरियम मकानी की मृत्यु, जहाँगीर का राज्याभिषेक, वीरसिंहदेव का समान, खुसरो का विद्रोह, अब्दुल्लाह खाँ का ओरछा पर आक्रमण, वीरसिंहदेव का बुंदेलखंड लौटना, आदि संवत् १६६५ तक की घटनाएँ इस ग्रथ मे १४ प्रकाशो मे वर्णित है, जिनके आधार पर इसका रचनाकाल सवत् १६६५ के लगभग माना जा सकता है।

जहाँगीरजसचंद्रिका

यह रचना सवत् १६६९ विक्रमाब्द में लिखी गई है। इसमें केशव ने मुगल सम्राट् जहाँगीर की कीर्ति और शक्ति का गुणगान किया है।

---

१. मिश्रबंधु विनोद, प्रथम भाग, पृष्ठ ३४६–४७; हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डॉ० रामकुमार वर्मा, पृष्ठ ४६६; शिवसिंह सरोज, कवियों का जीवनचरित्र, पृष्ठ २०–२१।
केशव पचरत्न, लाला भगवानदीन, पृष्ठ २–३ और ७–८; वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ हिंदुस्तान, सर जॉर्ज ग्रियर्सन, पृष्ठ ५८; सिलेक्शन्स फ्रॉम हिंदी लिटरेचर, लाला सीताराम बी० ए०, जिल्द १, पृष्ठ ५०–५१।

२. मआसिरुल उमरा, भाग १, श्री ब्रजरत्नदास, पृष्ठ २७६, पादटिप्पणी।

केशव दरबारी कवि थे, अतः राजदरबार के ठाठ बाट, रीतिनीति, नियम, युद्ध की पृष्ठभूमि, उसके कारण, मंत्रणा, तैयारी, सेना की सजावट, वीरों की गर्वोक्तियाँ, सैनिकों की मारकाट, युद्धभूमि का कलरव, कोलाहल, भगदड़, लाशों का ढेर, घायलों की दशा, आदि का उन्होंने बड़ा सजीव वर्णन किया है। रतनबावनी में रतनसेन (कुमार) आक्रमण के पूर्व सभा का आयोजन करते है——

लै करबर तब वीर सभा मंडल सन बुल्लिय।
तुम साथी समरत्थ शत्रु कहं सत्त न डुल्लिय॥
लाज काज धरि लाहु लोह लरि लरि यश लिज्जहु।
विकट कटक में हटक पटक भट भुवि महँ दिज्जहु।
यह अनूप मेरो बचन, केशव चित धरि सुनहु सब।
मरहु तो मो सत्थहि चलहु, भज्जहु तो भजि जाव अब॥

उक्त छप्पय में बोलने के लिये बुल्लिय, समर्थ के लिये समरत्थ, डोलने के लिये डुल्लिय, लीजिए, दीजिए के लिये लिज्जहु, दिज्जहु, साथ के लिये सत्थहि, भागो के लिये भज्जहु, आदि द्वित्व वर्णवाले शब्दों का प्रयोग कर केशव ने डिंगल की रासा-काव्य-परंपरा के छप्पय छंदों में प्रयुक्त डिंगल शब्दावली का अनुकरण पिंगल में किया है। ऐसे छप्पयों में वर्णविन्यास के कारण अनुप्रास की छटा तथा भावों का आवेग पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है।

वीरसिंहदेवचरित में कवि ने दोहा, सोरठा, चौपाई, कुंडलिया आदि छंदों का नाम दिया है तथा संवादों में वीरसिंह उवाच, साह सलीम उवाच, पठान उवाच, सेख उवाच, आदि का उल्लेख कर संस्कृत की कथापरंपरा का अनुसरण किया है। चरितनायक के साथ साथ केशव ने अपने आश्रयदाता के प्रतिपक्षी के शौर्य, साहस, और समरकौशल को भी मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। वीरसिंहदेवचरित में शेख अबुलफजल की वीरता का वर्णन देखिए——

सेख रोहि जित ही जित जबै। भरभराइ भागे भट तबै॥
काढ़े तेग साह सों सेख। जनु तनु धरे धूमधुज देख॥
दंड धरे जनु आपनु काल। मृत्यु सहित जम मनहु कराल॥
मारे जाहि खंड द्वै होइ। ताके सन्मुख रहे न कोइ॥
गाजत गज हींसत हय ठारे। बिनु सुंडनि बिनु पायनि कारे॥
नारि कमान तीर असरार। चहूँ दिसि गोला चले अपार॥
परम भयानक यह रन भयो। सेखहि उर गोला लगि गयो॥
जूझि सेख भूतल पर परे। नेकु न पग पाछे को धरे॥

युद्धवर्णन के प्रसंगों में केशव ने सामान्यतः मौलिकता का परिचय नहीं दिया। घायल सैनिक, हाथी, घोड़े, आदि के कटे छंटे अवयव, सैनिकों के रक्तसिक्त रुंडमुंड,

युद्धभूमि में बिखरे हुए तीर कमान, ढाल तलवार, तरकस कटार आदि के वर्णन में उन्होंने पूर्ववर्ती डिंगल परंपरा का ही पालन किया है।

लोकनीति और लोकव्यवहार की धुन में केशव ने अपने ग्रंथों में यत्र तत्र दया, धर्म, दानी, चोर, लोभी, पापी, व्यापारी, सुकवि, साधु आदि का भी बखान कर डाला है। यथा—

दानी कहा न लेय, चोर पुनि कहा न हरई।
लोभी कहा न लेय, आग पुनि कहा न जरई॥
पापी कहा न करै, कहा न बेंचे व्यापारी।
सुकबि न बरनै कहा, कहा साधू न सँचारी॥

कहने की आवश्यकता नहीं है कि वीरकाव्य में ऐसे भाव और विचारों का आयोजन रसानुभूति मे साधक की अपेक्षा बाधक ही अधिक सिद्ध होता है। हाँ, वस्तु और व्यापारों के संतुलित स्वाभाविक वर्णन के कारण वीरसिहदेवचरित और रामचंद्रिका के युद्धप्रसंग सुंदर हैं।

मूलतः केशव चमत्कारवादी कवि थे। संस्कृत साहित्य से रस, रीति, अलंकार—यहाँ तक कि शब्द और उक्ति भी—यथातथ्य लेकर वे अपने पांडित्य और बुद्धिकौशल द्वारा पाठकों और श्रोताओं पर अपनी विद्वत्ता की धाक जमाना चाहते थे। 'भूषण बिनु न बिराजई, कविता, बनिता, मित्त।' के अनुसार वे अलंकारों को काव्य का अनिवार्य अंग मानते थे। फलतः अलंकारप्रियता, पांडित्यप्रदर्शन, और सहृदयता के अभाव से उनकी कविता क्लिष्ट और दुरूह हो गई है। केशव के श्लेष पांडितों के लिये बुद्धिक्लेश के कारण बन गए हैं, अतः कुछ विद्वान् केशव को 'कठिन काव्य का प्रेत' कहते हैं।[1] केशव के संबंध में लोकश्रुति है कि,

कवि कहँ दीन न चहै बिदाई। पूछै केशव की कविताई॥[2]

केशव के संबंध मे उक्त कटूक्तियों के विद्यमान रहने पर भी इस तथ्य मे संदेह नहीं है कि केशव उस रीतिकालीन काव्यपरंपरा के प्रस्तोता थे, जो उनके बाद लगभग दो शताब्दियों तक चली। रीतिबद्ध काव्य के साथ साथ रीतिमुक्त काव्य के रूप में अपने आश्रयदाताओं की प्रशस्तियाँ और चरितकाव्य लिखकर उन्होंने आदिकालीन वीर-काव्य-धारा को रीतिकाल की ओर उन्मुख किया। भूषण की शिवाबावनी, गोपाल जगदेव की शौर्यबावनी, नाथूराम शुक्ल की तख्त-यश-बावनी, आदि केशव की रत्नबावनी की परंपरा की रचनाएँ हैं। इसी प्रकार मानसिंह का मानचरित्र, राम कवि का जयसिंहचरित्र,

---

१. हिंदी साहित्य का उद्भव और विकास, श्री रामबहोरी शुक्ल और डॉ० भगीरथ मिश्र, पृष्ठ २४६।

२. हिंदी नवरत्न, मिश्रबंधु, महाकवि केशवदास, पृष्ठ ४६७।

हरिदासकृत अजीतसिंहचरित्र, लखधीर का खेंगारचरित्र, वीरसिंहदेवचरित की परंपरा के विकास के प्रमाण हैं। अस्तु, जिस प्रकार से केशव रीतिकाल के प्रस्तोता आचार्य कवि के रूप में चिरस्मरणीय हैं, उसी प्रकार रीतिमुक्त वीरकाव्य के प्रणेता के नाते उनका अपना एक विशेष ऐतिहासिक महत्व है।

२. ऋषभदास जैन

डॉ० टीकमसिंह तोमर की सूचना के अनुसार इन्होंने संवत् १६७० में 'कुमारपालरासो' नामक चरितकाव्य लिखा।[१]

३. महाराजा मानसिंह

ये जयपुर के महाराजा थे। इनका शासनकाल सवत् १६५६–७१ था।[२] इन्होंने संवत् १६७५ के लगभग 'मानचरित्र' नामक वीरकाव्य लिखा।[३]

४. जटमल

जटमल ने 'गोराबादल की कथा' नामक वीरकाव्य मे अपना परिचय इस प्रकार दिया है—

आणंद उछव होत घर घर देषता नहि सोक।
राजा तिह अलीषान नुं षानना सुर नंद।
सकल सरदार पठाण माहें अजु नषत्र मा चंद॥
धरमसीहुँ नंद नाहर जाट जटमल नाम।
कही कथा वण्य के विच सांवेला गाम॥
कहा यकों आणंद उपजत सुणत सब सुष होइ।
जटमल हों गुणी अणाँ विघन न लागे कोइ॥[४]

उक्त अवतरण से पता चलता है कि जटमल नाहर जाट थे। इनके पिता का नाम धरमसिंह था तथा साँवेला ग्राम में मोरछड़ो के शासक पठान सरदार नासिरनंद अली खाँ न्याजी खाँ के समय में इन्होने गोरा बादल की कथा लिखी थी।

इस कथा मे १५० छंद है तथा इसका रचनाकाल फाल्गुन पूर्णिमा, संवत् १६८० वि० है। महामहोपाध्याय प० गौरीशंकर हीराचंद जी ओझा ने जटमल को नाहर गोत्रीय ओसवाल वैश्य सिद्ध करने का प्रयास किया है।[५] किंतु हस्तलिखित प्रति में प्राप्त सूचना

---

१. हिंदी वीरकाव्य, डॉ० टीकमसिंह तोमर, पृष्ठ १८।

२. राजस्थानी भाषा और साहित्य, डॉ० मोतीलाल मेनारिया, पृष्ठ १६१।

३. हिंदी वीरकाव्य, डॉ० टीकमसिंह तोमर, पृष्ठ १८।

४. काशी नागरीप्रचारिणी सभा की हस्तलिखित ग्रंथों की खोज, सन् १९४०, ग्रंथ संख्या ७१।

५. नागरीप्रचारिणी पत्रिका, भाग १३, पृष्ठ ४०२, गोरा बादल की बात, गौरीशंकर हीराचंद ओझा।

के अनुसार जटमल जाट प्रतीत होते है । संभवतः नाहर खाँ इनकी उपाधि थी ।[१] जटमल के नाम के साथ नाहर खाँ शब्द देखकर कुछ लोग इनके मुसलमान हो जाने का भी अनुमान लगाते है ।[२] किंतु इस अनुमान का कोई ठोस आधार नही है ।

जटमल के निवासस्थान के संबंध में ओझा जी का मत है कि चित्तौड़ के गुहिलवंशी राजा रत्नसेन को जटमल ने चौहानवंशी लिखा है । यह एक ऐतिहासिक भूल है । यदि जटमल मेवाड या मारवाड़ का निवासी होता तो वह ऐसी भूल कदापि न करता । ऐसी स्थिति में जटमल का मेवाड निवासी होना संभव नही है ।[३]

सँवला, सुबुला या साँबिला ग्राम कहाँ है, इसका पता तक विद्वानो को नही मिला ।[४] खोज विवरण मे जटमल को लाहौर निवासी नाहर गोत्रीय ओशवाल श्रावक जैन लिखा गया है ।[५]

जटमल कृत 'गोरा बादल की कथा' की हस्तलिखित प्रतियो मे इस रचना के कई नाम मिलते हैं, जैसे गोरे बादल की कथा, गोरा बादल की कथा, गोरा बादल की बात इत्यादि ।[६] इसके अतिरिक्त जटमल ने संवत् १६६४ मे 'प्रेमविलास चौपाई' नामक एक अन्य ग्रंथ भी लिखा है,[७] जो 'प्रेमविलास कथा' के नाम से भी मिलता है ।[८]

गोरा बादल की कथा वीरकाव्य है । इसमें अलाउद्दीन के आक्रमण के समय चित्तौड़ के वीर सरदार गोरा और बादल के शौर्य तथा उनके द्वारा किए गए घमासान युद्ध का वर्णन किया गया है । कथानक की दृष्टि से जायसी के पद्मावत और जटमल की गोरा बादल की कथा मे अनेक अनैतिहासिक तथ्य पाए जाते है । जायसी ने रत्नसेन को चौहान लिखा है ।[९] जटमल ने भी उसे चहुँआण राजपूत लिखा है । किंतु वास्तव मे रत्नसेन गुहिलवंशीय सीसोदिया राजपूत था, न कि चौहान या चहुँआण ।[१०]

---

१. हिंदी साहित्य का उद्भव और विकास, श्री रामबहोरी शुक्ल तथा डॉ० भगीरथ मिश्र, पृष्ठ २५६ ।
२. गोराबादल की कथा, जटमल, छंद १५० ।
हिंदी वीरकाव्य, डॉ० टीकमसिंह तोमर, पृष्ठ २२ ।
३. नागरीप्रचारिणी पत्रिका, भाग १३, पृष्ठ ४०२ ।
४. हिंदी साहित्य, द्वितीय खंड, सं० डॉ० धीरेंद्र वर्मा, पृष्ठ १६५ ।
५. हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त खोज विवरण, भाग १, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, पृष्ठ ३२४ ।
६. हिंदी वीरकाव्य, डॉ० टीकमसिंह तोमर, पृष्ठ २३ ।
७. हिंदी साहित्य, द्वितीय खंड, सं० डॉ० धीरेंद्र वर्मा, पृष्ठ ४८४ ।
८. हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त खोज विवरण, भाग १, पृष्ठ ३२४ ।
९. जायसी ग्रंथावली, संपादक, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृष्ठ २७१ ।
१०. देखिए—नागरीप्रचारिणी पत्रिका, भाग १३, पृष्ठ ४०२ ।

पद्मावत की तरह गोरा बादल की कथा में कई अलौकिक चमत्कारी घटनाएँ मिलती हैं, जैसे रत्नसेन का योगी की सहायता से मृगचर्म पर बैठ वायुमार्ग से सिंहल पहुँचना, मृगया के समय तृषार्त रत्नसेन का कष्ट दूर करने के लिये राघव चेतन द्वारा पद्मिनी की प्रतिच्छवि का निर्माण किया जाना, रत्नसेन का राघव चेतन पर कुपित होना, राघव चेतन का योगी बनकर दिल्ली पहुँचना, पद्मिनी की प्राप्ति के लिये राघव चेतन से प्रेरणा पाकर अलाउद्दीन का पहले सिंहल पर और फिर चित्तौड़ पर चढ़ाई करना आदि।

सत्यानुसंधान की दिशा में ये बातें इतिहास से मेल नहीं खाती, अतः यह कहा जा सकता है कि ऐतिहासिक सत्य की रक्षा या पात्रों का स्वाभाविक चरित्रचित्रण करना जटमल का प्रयोजन नहीं था। व एक कथा लिखना चाहते थे, जिसमें वीर और शृंगार भावों को व्यक्त करना ही उनका अभिप्रेत अर्थ था अत. उन्होंने अर्ध ऐतिहासिक, अर्घ काल्पनिक प्रेमगाथात्मक वीर-चरित-प्रधान काव्य रच डाला।

जटमल ने अपनी बहुज्ञता का परिचय देने के लिये गोरा बादल की कथा में स्त्री-पुरुषों की जातियों तक का वर्णन किया है। यह वर्णन भरती का है क्योंकि इससे कथा के प्रवाह और काव्यानंद में व्याघात होता है तथा पाठक को ग्रंथ में अरुचि होने लगती है। इतना सब कुछ होने पर भी गोरा बादल की कथा मे वीररस का अच्छा निरूपण हुआ है और इस दृष्टि से कवि की सफलता असंदिग्ध है। यथा—

तजै तरवार गुरज्ज कूँ लेह, दडो बड़ साह दुरज्जन देड।
करै चकचूर गयद कपाल, सकै उमराव न आप सँभाल॥
कहे मुख मीर अयो जमकाल, असे न दे हथियार सुडाल।
तिणें तिण रतन मारहुँ वीर, न मारहि तो सिर गोरिल वीर॥

अथवा—

कंता रण में पेसताँ, मत तू कायर होइ।
तुम्हें लाज मुझ मेहणों, भलो न भाषै कोइ॥

जटमल के काव्य पर भाषा और छंदशैली की दृष्टि से डिंगल का तथा कथानक-सूत्रों के संयोजन की दृष्टि से सूफियों के प्रेमाख्यानक काव्य का प्रभाव स्पष्टतः दिखाई देता है।

५. बनवारी

ये बड़ी निर्भीक प्रकृति के कवि थे और संवत् १६६० तथा १७०० के बीच वर्तमान थे। एक बार शाहजहाँ के दरबार में सलावत खाँ ने महाराज जसवंतसिंह के बड़े भाई अमरसिंह का अपमान कर उन्हें गँवार कह दिया, जिसे सुनते ही अमरसिंह जी ने तलवार खींच ली और भरे दरबार में सलावत खाँ का सिर धड़ से अलग कर दिया। बनवारी ने उक्त घटना का बड़ा ओजपूर्ण वर्णन इस प्रकार किया है—

धन्य अमर छिति छत्रपति, अमर तिहारो मान ।
साहजहाँ की गोद में, हन्यो सलावत खान ।।
उत गकार मुख ते कढ़ी, इतै कढ़ी जमधार ।
बार कहन पायो नही, भई कटारी पार ।।[१]

६. दुरसा आढ़ा

ये आढा गोत्र के चारण थे। इनका जन्म संवत् १५९५ में जेतारण में हुआ था। इनके पिता मेहाजी मारवाड के साँचोर परगने के आढा गाँव के निवासी थे। दुरसा जी उच्च कोटि के कवि थे। दयालदास की ख्यात के अनुसार जोधपुर पर अधिकार पाने के बाद बीकानेर के राजा रायसिह जी ने इन्हें एक करोड़ पसाव, एक हाथी और चार गाँव पुरस्कार मे दिए थे।[२]

महामहोपाध्याय प० गौरीशंकर हीराचद जी ओझा के मत से सवत् १६२८ में गुजरात विजय के समय अकबर ने जोधपुर रायसिंह को दिया।[३] इस समय दुरसा जी लगभग ३४ वर्ष के थे। सवत् १६१५–१६ के लगभग ये अजमेर में बैरम खाँ से मिले। बैरम खाँ ने इनका परिचय अकबर से कराया। अकबर की प्रशंसा में इन्होने चार पदों का एक गीत कहा, जिसका प्रथम दोहला इस प्रकार है—

बाणावलि लखण के तूं अरजण बाणावलि, सरदस रोलण कंस संहार।
सारों भाज हमाउ समोभ्रम, अकबर साह कवण अवतार ।।

अकबर ने इन्हे १ करोड़ पसाव दिया। ये जोधपुर के महाराज चद्रसेन, उनके पुत्र रायसिंह, और अंत में राव सुरताण के आश्रय में रहे, जहाँ संवत् १७१२ मे इनका शरीरपात हुआ।

इनकी ८ रचनाएँ उपलब्ध हैं——१. विरुद छिहतरी, २. किरतार बावनी, ३. राउ श्री सुरताण रा कवित्त (११ कवित्त), ४. दूहा सोलकी वीरमदेव जी रा, ५. भूलणा राव मेघा रा, ६. गीत राजि श्री रोहितासजी रो, (१० गीत, १ कबित्त, २ दोहे), ७. भूलणा राव श्री अमरसिंघ जी गजसिघोतरा (६४ छद), ८. श्री कुमार अज्जा जी नी भूचर मोरी नी गजगता। इनमे से अंतिम रचना संदिग्ध है। इनके अतिरिक्त इनके लगभग ६० गीत भी मिले हैं।[४]

भूलणा राव श्री अमरसिंघ जी गजसिघोतरा मे ६४ भूलणा हैं, जिनमें शाहजहाँ

---

१. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृष्ठ ३०० ।
२. दयालदास री ख्यात, भाग २, पृ० ११८ ।
३. बीकानेर राज्य का इतिहास, गौरीशंकर हीराचंद ओझा ।
४. राजस्थानी भाषा और साहित्य, डॉ० हीरालाल माहेश्वरी, पृष्ठ १४५ ।

के दरबार में आगरा में सलावत खाँ आदि के मारने और अमरसिंह जी के वीरतापूर्वक काम आने का बड़ा सजीव वर्णन किया गया है। असोपा जी के मत से यह घटना श्रावण सुदी २, संवत् १७०१ को हुई थी,[1] अत उक्त झूलणा इसके बाद ही लिखे गए होंगे।

वीरपूजा की भावना दुरसा जी के काव्य का प्रमुख गुण है। विशेषकर हिंदू कुल-सूर्य महाराणा प्रतापसिंह की प्रशस्ति में लिखे गए इनके दोहों में यह गुण द्रष्टव्य है।

७. लालचंद जैन

इनका अन्य नाम लुब्धोदय था, जिसे खोज रिपोर्ट मे लब्धोदय या लक्षोदय लिखा गया है।[2] ये जैन थे और किसी ज्ञानराजमणि के शिष्य थे। उदयपुर के राणा जगतसिंह के राज्यत्वकाल मे संवत् १७०२ के लगभग इन्होंने 'गोरा बादल रणजय' नामक काव्य रचा, जिसका अन्य नाम पद्मिनीचरित्र भी है।

कथानक की दृष्टि से यह रचना जायसी के पद्मावत की छाया पर बनी है, किंतु कथासंगठन और प्रभाव की दृष्टि से यह अत्यंत सामान्य कोटि की कृति है। इसकी भाषा गुजराती मिश्रित राजस्थानी है। एक उदाहरण पर्याप्त होगा—

रावत गोरित वीर, जाणि मेगल मत। गोरिल गाजियो हो।
अरि गजा भंजण सीह। बादल वाचीयो हो॥
—गोरा बादल रणजय (पद्मिनीचरित्र), हस्तलिखित प्रति,पत्र ४८.

पहले यह रचना डॉ० भवानीशंकर याज्ञिक, ८ शाहनजफ रोड, लखनऊ के पास थी[3] और आजकल काशी नागरीप्रचारिणी सभा के याज्ञिक संग्रहालय मे है[4]। इसका लिपिकाल संवत् १७०७ है। कथासंगठन और प्रभाव की दृष्टि से यह रचना सामान्य कोटि की है।

८. गंभीरराय

डॉ० टीकमसिंह तोमर की सूचना के अनुसार इन्होंने संवत् १७०७ में मऊवाले जगतसिंह और शाहजहाँ के युद्ध का वर्णन एक ग्रंथ मे किया है।[5] तोमर जी की सूचना में ग्रंथ का नाम और उसकी उपलब्धि के स्रोत अज्ञात हैं।

९. रामकवि

ये मिर्जा राजा जयसिंह के दरबारी कवि थे। अपने आश्रयदाता की प्रशस्ति में

---

१. मारवाड़ का मूल इतिहास, श्री असोपा जी, पृष्ठ १७३।
२. हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण भाग २, पृष्ठ ३४६।
३. पुस्तक सूची, डॉ० भवानीशंकर याज्ञिक, पृष्ठ १०८, प्रतिसंख्या ३१५।३३।
४. याज्ञिक संग्रहालय, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, हस्तलिखित प्रति सं० ३१५।३३।
५. हिंदी साहित्य, भाग २, संपादक डॉ० धीरेंद्र वर्मा, पृष्ठ १७७।

संवत् १७१० में इन्होंने 'जयसिंहचरित्र' लिखा है, जिसमें मिर्जा राजा जयसिंह की जीवनी और वीरता वर्णित है[1]।

१०. डूँगरसी

ये बूँदी राज्य के निवासी थे और वहीं के रावराजा शत्रुसाल के आश्रय में रहते थे। इन्होंने संवत् १७१० के लगभग 'शत्रुसाल रासौ' नामक ग्रंथ लिखा, जिसमें शत्रुसाल के राज्यवैभव, शौर्य, पराक्रम आदि का लगभग ५०० छंदों मे वर्णन किया गया है। महाराज शत्रुसाल ने इन्हे नेनवा नामक एक ग्राम पुरस्कार स्वरूप दिया था।

शत्रुसाल रासो की भाषाशैली पृथ्वीराज रासो से स्पष्टत. प्रभावित है। महाराज शत्रुसाल के राज्य मे बारहमासी वसतवैभव देखिए—

बजै चग बाजिया, अनग सारंग भणंकै।
उड़ै गुलाल रँग अमर लाल लज्जा अवसंकै॥
भ्रम अबीर त्रीविध समीर जुध नीर सजै अति।
समय बाज सुर पचम रग अंबुज पराग अति॥
वन फूलि भूलि असले, ललित, कुरग रति आरति करै।
राजाधिराज सत्रुसाल रमै, बारै मध्य बसंत रै[2]॥

११. न्यामत खाँ 'जान' कवि

ये जयपुर राज्यातर्गत फतहपुर के कायमखानी नवाबों के वंशज अलफ खाँ के पुत्र थे। पहले ये चौहान थे, बाद में शिया मत के मुसलमान आजम इमाम के अनुयायी हो गए। हाँसीवाले शेख मुहम्मद चिश्ती इनके गुरु थे। हिंदी साहित्य के इतिहास मे पद्य-बद्ध कथा लिखने के लिये ये विशेष रूप से प्रसिद्ध है। संवत् १६७० से संवत् १७२१ तक ५१ वर्षों मे इन्होंने ५६ ग्रथ रचे—१. उत्तम सबदा, २. कंद्रपकलोल, ३. कथा अरदसेर पतिसाह, ४. कथा कनावती की, ५. कथा कलदर की, ६. कथा कनकावती की, ७ कथा कँवलावती की, ८. कथा कामरानी व पीतमदास, ९. कथा कामलता, १०. कथा कुलवंती की, ११. कथा कौतुहली की, १२. कथा खिजिरखाँ शाहजादे व देवलदे की, १३. कथा चंद्रसेन राजा सीलनिधान, १४. कथा छविसागर की, १५. कथा छीता की, १६. कथा नल दमयती की, १७. कथा निरमल की, १८. कथा पुहुप बरिषा, १९. कथा मोहिनी की, २०. २०. कथा रूपमजरी, २१. कथा सलवंती की, २३. कथा सुभटराइ की, २४. गूढ़ग्रथ, २५. घूँघटनावा, दरसनावा, अलफनावा, २६. चेतननामा, सिषग्रंथ, ग्रथ सुधासिष, २७. जफरनामा नौसेरवाँ का, २८. तमीम अंसारी की कथा, २९. दरसन नावा और बारहमासा,

---

१. वही, पृष्ठ १७७।

२. राजस्थानी भाषा और साहित्य, श्री मोतीलाल मेनारिया, पृष्ठ २१०–२११।

३०. देसावली, ३१. नाममाला अनेकार्थ, ३२. पदनामा लुकमान का, ३३. पाहन परीछ्या, ३४. पेमुनामा, ३५. प्रेमसागर, ३६. बलूकिया विरही की कथा, ३७. बाँदीनामा, ३८. बाजनामा और कबूतरनामा, ३९. बारहमासा, सवैया या झूलना, बरवा, षट्ऋतु, बरवा वर्णन और ग्रंथ पवंगम, ४०. बुद्धिदाहक बुद्धिदीप, ४१. बुद्धिसागर, ४२ बेद कसत पंदनावा, ४३. भावकलोल, ४४. मानविनोद, ४५. रतनमजरी, ४६. रत्नावली, ४७. रसकोष ग्रंथ, ४८. रसतरगिनी, ४९. लैला मजनूं, ५०. वियोगसागर, ५१. बिरही कौ मनोरथ, ५२. शृंगारसत, भावसत, विरहसत, ५३. सतनावा, वर्णनावा, ५४. सिगार-तिलक, ५५. सिषसागर पदनावा, ५६. कायमरासो।

कायमरासो की रचना संवत् १६९१ में हुई, किंतु इसके बाद भी संवत् १७१० तक की घटनाएँ इस ग्रंथ मे पाई जाती है। संभव है, स्वयं जान कवि ने ये अंश बाद मे जोड़ दिए हों अथवा यह प्रक्षिप्तांश बाद में और किसी ने लिखकर मूल ग्रंथ मे मिला दिया हो।

कायमरासो कायम खानदान का ऐतिहासिक इतिवृत्त प्रस्तुत करता है, अत. इस दृष्टि से यह रासो इतिहासप्रधान प्रशस्तिमूलक वंशावली माना जा सकता है। यथा—

अलिफखानु कै दीवान कौ, बहुत बड़ो है गोत।
चाहुवान की जोड़ कौ और न जग मे होत॥
अलिफखान के वंश मे, भए बड़े राजान।
कहत जान कछु मैं कहे, सबकों करौ बखान॥[1]

यों, जानकवि प्रेमगाथापरंपरा के कवि हैं पर उनका कायमरासो वीर-काव्य-परंपरा में उनके लिये एक स्थान कायम कर देता है। कायमरासो राजस्थान पुरातत्व मंदिर, जयपुर से प्रकाशित हो गया है।

१२. जयराम पिंडे

ये शिवाजी के पिता शहाजी भोसले[2] के दरबारी कवि थे। 'राधामाधव विलास चंपू उर्फ शहाजी महाराज चरित्र' नामक ग्रंथ इन्होने संस्कृत मे लिखा है, जिसके परिशिष्ट में इनकी तथा अन्य कवियों की हिंदी रचनाएँ भी छपी हैं। पिंडे जी सस्कृत, मराठी, हिंदी

---

१. राजस्थानी मे हिंदी के हस्तलिखित ग्रंथो की खोज, द्वितीय भाग, संपादक श्री अगरचंद नाहटा, पृष्ठ ९४।

२. मिश्रबंधु विनोद, भाग ४ मे पृष्ठ संख्या ३५ से ३८ तक 'केहरि, गयंद, सुधार, बलभद्र, विश्वभर भट्ट, रघुनंदन, शिवदास ठाकुर, श्यामगुमाई और सुखलाल नामक ९ कवियों को शहाजी के दरबारी कवि लिखा है और इन सबका कविताकाल संवत् १७१० बि० दिया गया है।—लेखक।

आदि १२ भाषाओं में काव्यरचना करने का सामर्थ्य रखते थे। संवत् १७१० के लगभग[1] हिंदी कवि रघुनाथ व्यास ने जयराम पिंडे को "बैरन की बधू फिरे बेरन के बन में" पंक्ति समस्यापूर्ति के लिये दी, जिसे इन्होंने इस प्रकार छद रच पूर्ण की—

माल मकरद सुव साहेब बलि बंड तुव,
दापहि सो काँपे तहाँ कोन रहे रन में।
राजान के गजा तुव बाजा उ न सह्यो जात,
धाकतु है साहि जहाँ तहाँ मन में॥
बाजन कर्णाटक भाजत कर्णाटक,
बाटन मे काँगड़े हाटक से तन मे।
बालम की बाट लखे बार बार बावरि सी,
बैरन की बधू फिरें बेरन के बन में॥[2]

शहाजी की प्रशंसा मे श्याम गुसाई ने जब जयराम पिंडे से अर्थचित्र खींचने को कहा, तब जयराम पिडे ने निम्नलिखित छंद रचा—

तै तरवार गहो कर वारिज च्यारि दिशा अरि राजु भागे।
वैरि वधू वे चढ़ी गढ कूँ सो खड़ि रह नेन तमो नहि जागे॥
चंद बच्यो उन चद मुखी बिच बंदहि चंद विधुंतुद आगे।
शाह बली तें बाहुन को जसु राहु ससी बस राहन लागे॥[3]

ठाकुर शिवदास द्वारा लिखित समस्या दी जाने पर जयराम पिडे ने अधोलिखित छंद कहा—

मालमकरंद मुव साहे तेरे बैरन की बंदर के बंद परी कंदरि मो सुंदरी।
कोमल कमलहृत कुमालिनी भाज भाज, सेज पर सोय गई रोय रोय के घरी॥
बनचर आय सुगे तालफल जानि कुच, बिवफल बिभ्रम सो ओठ मूठ मो धरी।
दारिन के बीज जानि दाँत गहे दाँतनि सो और भाँत भाँत की विपत्ति गात को करी[4]॥

---

१. राधामाधवविलास चंपू, संपादक वि० का० राजवाडे, प्रस्तावना, पृष्ठ ४। टिप्पणी—उक्त ग्रंथ के अंत में शहाजी के दरबारी हिंदी कवियों में रघुनाथ व्यास (पृष्ठ २४६), लछिराम (पृष्ठ २४७), गंग कवि (पृष्ठ २४९), द्वारकादास (पृष्ठ २५३), देवकवि काशीवाले (पृष्ठ २५४), मुखलाल (पृष्ठ २५६) आदि का उल्लेख किया गया है।—लेखक।

२. राधामाधवविलास चपू, स० वि० का० राजवाडे, पृष्ठ २४६, छंद १।

३. राधामाधवविलास चपू, कवि जयराम पिंडे, संपादक वि० का० राजवाडे, पृष्ठ २४८, छंद, ५।

४. वही, पृष्ठ २४८, छंद ६।

जयराम पिंडे की उक्त रचनाओं मे शहाजी के आतंक, शौर्य और अरिपत्नियों के भागने पर होनेवाले दुष्परिणामों का जो अंकन किया गया है. वह रीतिकालीन हिंदी वीरकाव्यों के वर्ण्य विषयो के अनुरूप है।

शहाजी के दरबार मे हिंदी कवियों का संमान महाराष्ट्र की तद्युगीन जनता और उसके शासको के हिंदीप्रेम का प्रत्यक्ष प्रमाण है। इस संदर्भ मे भूषण का शिवाजी के दरबार में जाना और उनके छंदो की मराठा सैनिकों मे लोकप्रियता कोई आकस्मिक घटना नहीं है।

१३. हिंदुस्तानी भाट

जयराम पिंडे ने कवि का असली नाम न देकर 'हिंदुस्तानी भाट' के नाम से ही राधामाधवविलास चंपू में निम्नलिखित छंद संकलित किया है—

॥चौबोला॥

हिंदुस्तानी भाट वखानी, सो यह बानी खल्क सुनें।
पूरब, पश्चिम, उत्तर, दछन, खान खवानहु सीस धुनें ॥
बर्गी, बक्सर, ठठ्ठा भक्कर, बागुल, कानन भूप बडे।
साहेब साहजि के दरबार मे, चौकी पहरा देत खडे[१] ॥

१४. जगतसिंह

डॉ० टीकमसिंह जी तोमर ने जगतसिंह के बदले जगद्विलास के लेखक का नाम न देकर 'एक चारण' लिखा है[२] और उसके बारे में यह सूचना दी है कि मेवाड़ के राणा जगतसिंह के दरबारी कवि ने संवत् १६८५ और संवत् १७११ के बीच जगद्विलास' नामक काव्य लिखा। खोज रिपोर्ट के प्रथम भाग मे इसे रसिकप्रिया तिलक (जगतसिंह कृत) लिखा गया है[३] और खोज रिपोर्ट के द्वितीय भाग मे इसे केशवदासकृत रसिकप्रिया की टीका बतलाया गया है।[४]

इस दृष्टि से यह रस और नायक-नायिका भेद का ग्रंथ है, वीरकाव्य नहीं।

१५. रत्नाकर

ये ब्रजभाषा के सुप्रसिद्ध कवि जगन्नाथदास रत्नाकर से भिन्न व्यक्ति थे। डॉ० टीकमसिंह तोमर की सूचना के अनुसार इन्होंने संवत् १७१८ वि० मे शाहशुजा की प्रशंसा में कविता की है।[५]

---

१. वही, पृष्ठ २७१, छंद ११७।
२. हिंदी वीरकाव्य, डॉ० टीकमसिंह तोमर, पृष्ठ १८।
३. हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, प्रथम खंड, पृष्ठ ३१६।
४. वही, द्वितीय खंड, पृष्ठ २४१।
५. हिंदी वीरकाव्य, डॉ० टीकमसिंह तोमर, पृष्ठ १८।

१६. पालाकवि

ये देवास दरबार के भाट घराने के मूल पुरुष थे और साबूसिंह के आश्रित थे। अक्टूबर, सन् १६५७ में शिवाजी ने कल्याण के सूबेदार पर आक्रमण कर उसे पराजित किया था। इस युद्ध में साबूसिंह शिवाजी की सेना के साथ थे। उन्होंने युद्ध में अपनी अद्भुत शक्ति और युद्धवीरता का परिचय दिया था, अतः पाला कवि ने उनकी प्रशस्ति लिखी थी। युद्ध की भयंकर मार काट का वर्णन करते हुए पाला कहते हैं—

कहूँ सीस फुट्टे, कहूँ टाँग टुट्टे,
कहूँ शस्त्र अस्त्रां, कहूँ केश जुट्टे।
साबूसिंह मुगलान की फौज मारी,
परे टुक्क टुक्का, भगे होय हारी॥
सुलेमान सूबो भग्यो जीव लैके,
हजारों मुगल्लान के प्रान दैके।
सिवाजी साबूसिंह की धन्न माता।
पाला कवी प्रेम शॅ जस सुणाता[१]॥

पाला कवि का रचनाकाल संवत् १७१४ विक्रमाब्द है।

१७. काशीराम

काशीराम सक्सेना का जन्म कायस्थ कुल में हुआ था। ये औरंगजेब के सूबेदार निजामत खाँ के आश्रित थे और संवत् १७१५ वि० के लगभग विद्यमान थे। इनके तीन ग्रंथ प्राप्त हुए है—१. कनकमंजरी, २. परशुरामसंवाद और ३. कवित्त कासीराम। तीसरा ग्रंथ स्फुट कवित्तो का संग्रह है। इन कवित्तों मे निजामतखाँ का शौर्य, प्रभाव, युद्धकौशल आदि का वर्णन मिलता है। यथा—

गाढ़े गढ़ ढाहत रहत नहि ठाढे नेकु,
दिग्गज दुरित मद डारत सुकाइ कै।
कराचोली कसि झुकि निकसि निजामति खाँ,
दाबत रकाब जब बराजोरी पाइ कै॥
धरनि के चहूँ कोन, कासिराम भौन भौन,
"भाजौ भाजौ" इहै होत राजा राना राइ कै।
लंक ते लकेस के, पताल हूँ ते सेस के,
सुमेर ते सुरेस के मिलें वकील आइ कै॥[२]

---

१. विश्वासराऊ प्रशस्ति, संपादक कृ० ग० कवचाले, पृष्ठ १४–१५।

२. दिग्विजयभूषण आचार्य गोकुलप्रसाद 'ब्रज', सं० डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह, पृष्ठ १५–१६।

१८. जग्गा जी खिड़िया

ये खिड़िया शाखा के रतना जी चारण के पुत्र थे। आजकल इनके वंशज सीतामऊ राज्यांतर्गत सामलखेडा गाँव में रहते है। जग्गा जी ने संवत् १७१५ के लगभग "वचनिका राठौड़ रतनसिंह जी री महेमदासोतरी" नामक ग्रंथ लिखा, जिसका अन्य नाम रतनरासो है। बंगाल की रायल एशियाटिक सोसायटी ने इसे प्रकाशित किया है। इसमें जोधपुर के महाराजा जसवंत सिंह और मुगल सम्राट् शाहजहाँ के बागी पुत्र औरंगजेब तथा मुराद के युद्ध का ब्यौरा दिया गया है। युद्ध संवत् १७१५ में उज्जैन के निकट हुआ था। रतलाम के राठौड़ राजा रतनसिंह जी इसी युद्ध मे काम आए थे। उनका शौर्यवर्णन ही रतनरासो का मुख्य विषय है।

रतनरासो की भाषा डिंगल है तथा इसमे गद्य पद्य दोनो का प्रयोग हुआ है। काव्य और इतिहास दोनो की दृष्टि से यह रचना महत्वपूर्ण है।

खोज में इनकी वचनिका तथा स्फुट छप्पय नामक अन्य दो रचनाएँ मिली हैं, जिनमें भक्ति तथा शांत रस का अच्छा परिपाक हुआ है।[1]

जग्गा खिड़िया की रचना का एक उदाहरण देखिए—

भडा धड़ भजि हुवै बि बि भग्ग।
खड़क्खड़ ढल्ल झड़ज्झड़ खग्ग॥
कड़क्कड़ वाजि पडन्त किरमाल।
बड़ब्बड़ भाजि पडन्त बगाल॥
दडब्बड मुंड रडब्बड दीस।
अडब्बड़ नेत चडच्चड हीस॥
अंत्रा खग भाट निराट अलग्ग।
पड़े बि बि जध पड़ै फड़ि पग्ग॥[2]

१९. मतिराम

मतिराम, चिंतामणि और भूषण भाई भाई थे। इनका जन्म तिकवाँपुर मे संवत् १६९६ वि० मे और निधन संवत् १७७३ वि० के लगभग हुआ था। ये कुमाऊँ नरेश उदोतसिंह, बूँदी नरेश भाउसिंह हाड़ा, और शंभुनाथ सोलकी के यहाँ रहे। ललितललाम, रसराज, फूलमंजरी, छदसार पिंगल, मतिराम सतसई, साहित्यसार, लक्षणशृंगार, अलकार पंचाशिका, बरवै नायिका भेद, इनकी रचनाएँ हैं।

ये प्रधानत सुकुमार कल्पना के भावप्रवण कवि और रीति ग्रंथो के प्रणेता आचार्य

---

१. राजस्थानी भाषा और साहित्य, डा० मोतीलाल मेनारिया, पृष्ठ २११।
२. राजस्थानी सबद कोस, सीताराम लालस, प्रथम खड, पृष्ट १५१।

थे। भाषा की सरलता, सरसता, स्वाभाविकता और प्रवाह मतिराम के काव्य की विशेषताएँ है।

ललित ललाम इनकी अलकार सबधी रीतिबद्ध रचना है, जो बूंदी के राव भाउसिह हाड़ा के लिये संवत् १७१८ और सवत् १७१६ वि० के बीच लिखी गई थी।[१] इसमें मतिराम ने अपने आश्रयदाता की वीरता, उदारता, आदि का जो परिचय दिया है, वही वीरकाव्य के अंतर्गत लिया जा सकता है। इनकी रचना के कुछ उदाहरण इस प्रकार है—

एक धर्म गृह खंभ जंभ रिपु रूप अवनि पर।
एक बुद्धि गभीर धीर बीराधि वीर वर॥
एक ओज अवतार सकल सरनागत रच्छक।
एक जासु करवाल निखिल खल कुल कहँ तच्छक॥
मतिराम एक दातानि मनि, जग जस अमल प्रगट्टियउ।
चहुवान बस अवतस इमि, एक राव सुरजन भयउ॥

पं० कृष्णबिहारी मिश्र द्वारा सपादित मतिराम ग्रंथावली मे पृष्ठ २५५–२५६ पर शिवाजी की प्रशसा मे लिखे गए मतिरामजी के दो छद प्रकाशित है। मिश्र जी के मतानुसार मतिराम जी को शिवाजी और छत्रमाल का भी आश्रय प्राप्त था। शिवाजी की समसेर के सबध मे मतिराम जी का छंद देखिए--

बान अरजुन को बषानै मतिराम कवि, गदा भीमसेन की सदा ही जस काज की।
वासव को बज्र, बासुदेव जू को चक्र, बलदेव को मुसल, सदा कीरति है लाज की॥
दड दंडधर को अदंडन के दंडिबे को, नखन की पाँति नरसिह सिरताज की।
संभु को त्रिसूल, सभु सिस्य को कुठार, संभुसुत की सकति समसेर सिवराज की॥

भूषण की ही भाँति मतिराम का शिवाजी के दरबार मे जाना सभव है।

२०. किशोरदास भाट

ये राव जाति के ब्राह्मण थे और मेवाड़ के महाराणा राजसिह के आश्रित थे। इन्होने संवत् १७१६ मे १३२ छंदो मे राजप्रकाश नामक वीरकाव्य डिगल भाषा मे लिखा, जिसमे मेवाड़ के इतिहासप्रसिद्ध महाराणा राजसिह (प्रथम) के युद्ध और पराक्रम का वर्णन किया गया है।[२] मिश्रबधुओ ने भूल से किशनगढ के महाराजा मानसिह के पुत्र महाराजा राजसिंह को राजप्रकाश का लेखक बतलाया है,[३] जो अशुद्ध है।

२१. दत्त कवि

ये भरतपुर नरेश सूरजमल (सुजानसिह, राज्यकाल संवत् १७१२–१७२० वि०

---

१. हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, भाग २, पृष्ठ २४।
२. राजस्थान का पिगल साहित्य, डॉ० मोतीलाल मेनारिया, पृष्ठ १२७–१२८।
३. मिश्रबधु विनोद, भाग २, पृष्ठ ५४१।

तक) के आश्रित थे। इन्होंने "सूरजमल की कृपाण" नामक काव्य लिखा, जिसमें सूरजमल के कृपाणसचालन और युद्धकौशल का वर्णन किया गया है। इस ग्रथ की एक हस्तलिखित प्रति काशी नागरीप्रचारिणी सभा के याज्ञिक सग्रहालय में है (हस्तलिखित ग्रंथ सख्या ८०६।४१) जिसमे उक्त रचना का नाम 'सूरजमल के कबित्त' दिया गया है।[1]

उक्त संग्रह में कवित्त क्रमाक ७४ से ८७ तक सूरजमल के कृपाण-सचालन-कौशल पर १६ छंद हैं, जिनमे से एक छंद यहाँ उद्धृत किया जाता है —

जहाँ कासमीरी काबली बलक्की और बदकमानी,
खुरसानी लोहानी ईरानी इलमान।
जहाँ सूर सूरवस सोमवंस जात वेद,
बसबीर बलवान रान मान के धडैरान॥
जहाँ दक्षिनी सुदल बल हाले छिति तल,
माँचे सिधु दलदल खाँचे साँचे घमसान।
जहाँ हिमत निधान भूमि भारि मघवान,
सिह बिक्रम सुजान वर बाहि किरवान॥

—याज्ञिकसंग्रहालय, हस्तलिखित ग्रथ क्रमाक ८०६।४१, छद संख्या ७४।

२२. सतसईकार बिहारीलाल

सतसईकार बिहारीलाल माथुर चौबे थे। इनका जन्म सवत् १६५३ मे ग्वालियर राज्य के बगुवा गोविंदपुर गाँव में और मृत्यु सवत् १७२२ में वृंदावन में हुई। सतसई इनकी प्रसिद्ध रचना है जिसकी दर्जनों टीकाएँ यत्र तत्र मिलती है। मिर्जा राजा जयसिंह (जन्म सवत् १६६८, मृत्यु संवत् १७२४) इनके आश्रयदाता थे, जिन्होने बिहारी को सतसई के प्रत्येक दोहे पर एक एक अशरफी दी थी।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने बिहारी के काव्य का परिचय देते हुए लिखा है— मिर्जा राजा जयसिंह ने शिवाजी को मुगलवाहिनी लेकर पराजित किया। यह हिंदू विद्रोह बिहारी को पसद नही आया। उन्होने इस वीरता की कुछ भी प्रशंसा नही की, उल्टे मिर्जा राजा को शिवाजी पर चढाई करने से रोकने की चेष्टा मे यह दोहा लिखा—

स्वारथ सुकृत न श्रम वृथा, देख बिहग विचारि।
बाज पराए पानि पर, तू पछीनु न मारि॥

इसी दोहे से प्रभावित होकर मिर्जा राजा जयसिंह ने शिवाजी से सधि की और उन्हें समझा बुझाकर मनसबदारी दिलवाने दिल्ली ले आए। ये महाराज मानसिंह को

---

१. इस रचना की एक और प्रतिलिपि काशी नागरीप्रचारिणी सभा के सग्रहालय में है। देखिए—हस्तलिखित ग्रथ क्रमाक २५६।४१।—लेखक।

हिंदू-हित-रक्षक समझते थे और उनका बडा संमान करते थे। एक बार उन्होंने एक कबित्त कहकर मानसिंह का आदर्श जयसिंह के सम्मुख इन शब्दों में रखा था—

महाराज मानसिंह पूरब पठान मारे,
सोनित की सरिता अजौ न सिमिटत है।
सुकवि बिहारी अजो उठत कबंध कूदि,
आजु लगि रन तैं नोहन मिटत है॥
आजु लौ पिसाचन की चलन तैं चौकि चौकि।
सची मघवा की छतियाँ सौ लिपटत है।
आजु लगि ओढै है कपाली आली आली खालैं,
आजु लगि काली मुख लाली न मिटत है[१]।

उक्त कवित्त में महाराज मानसिंह के युद्ध और शौर्यप्रभाव का सजीव चित्रण किया गया है। बिहारी की शृंगारिक प्रवृत्ति के लक्षण उक्त कवित्त की पाँचवी और छठी पंक्तियों मे स्पष्टतः दिखाई दे रहे है।

मिर्जा राजा जयसिंह औरंगजेब के राज्यारोहण संवत् १७१५ के ७ वर्ष बाद अर्थात् संवत् १७२२ मे शिवाजी का दमन करने के लिये दक्षिण मे भेजे गए थे, अतः उक्त कवित्त का रचनाकाल संवत् १७२२ के लगभग माना जा सकता है।

२३. कुलपति मिश्र

ये आगरे के रहनेवाले माथुर चौबे पंडित परशुराम मिश्र के पुत्र तथा जयपुर नरेश महाराज रामसिंह प्रथम के आश्रित कवि थे। तैलंग भट्ट पंडितराज जगन्नाथ इनके शिक्षागुरु थे, जिनसे इन्होंने संस्कृत और ब्रजभाषा का विशेष अध्ययन किया था। इनका रचनाकाल संवत् १७२४ से १७४६ तक माना गया है। कुलपति मिश्र प्रतिभासंपन्न कवि और रीतिकालीन आचार्य थे। अभी तक इनके निम्नलिखित १३ ग्रंथ उपलब्ध हुए है—

१. रसरहस्य, २. दुर्गाभक्तिचंद्रिका, ३. द्रोणपर्व, ४. गुण-रस-रहस्य, ५. संग्रामसार, ६. मुक्तितरंगिणी, ७. नखशिख, ८. दुर्गा सप्तशती (अनुवाद), ९. सरूप-करुपवाद, १०. आसाम की बाढ़, ११. विष अमृत का झगडा, १२ सेवा की बाढ़, १३. सतसई[२]।

रसरहस्य इनका कीर्तिस्तंभ है, जो कार्तिक कृष्णा ११, संवत् १७२७ को लिखा गया। वास्तव में यह मम्मट के काव्यप्रकाश का छायानुवाद है। इसमें आठ अध्याय हैं और ग्रंथारंभ मे आश्रयदाता की प्रशंसा की गई है। इसमे अनेक वीररस के छंद है तथा संग्रामसार भी इनका वीररस का काव्य है।

---

१. हिंदी भाषा और साहित्य का इतिहास, आचार्य चतुरसेन, पृष्ठ ३४५।
२. राजस्थानी भाषा और साहित्य, श्री मोतीलाल मेनारिया, पृष्ठ २१६।

२४. तुलसीदास

मिश्रबंधु विनोद, भाग ४ में पृष्ठ ४१ पर महाराष्ट्र प्रांत निवासी तुलसीदास का उल्लेख किया गया है। महाराष्ट्रसारस्वत[1] के अनुसार ये तुलसीदास के कोई संबंधी थे। सिंहगढ़ विजय के उपरांत शिवाजी की माता जीजाबाई ने तुलसीदास को पूना में बुलाकर तानाजी चा पोवाड़ा रचने के लिये आदेश दिया था। तानाजी मालसुरे ४ फरवरी, सन् १६७० को सिंहगढ़ के किलेदार उदयभानु को मारकर वीरगति को प्राप्त हुए, अतः तानाजी का पोवाडा संवत् १७२७ में रचा गया।

तानाजी चा पोवाड़ा मराठी में है, पर उसमें भी अज्ञानदास की तरह हिंदी की कड़ियाँ जुड़ी है, जैसे—सलाम सलाम मेरे भाई।

केलकर जी के मत से तुलसीदास अज्ञानदास से प्रभावित थे[3]।

२५. भूषण

पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा संपादित भूषण ग्रंथावली में संकलित शिवराज भूषण (छंदसंख्या २५ से २८ तक) के अनुसार भूषण कश्यप गोत्रीय कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम पं० रत्नाकर त्रिपाठी और जन्मस्थान त्रिविक्रमपुर (तिकवाँपुर) था। यह तिकवाँपुर राजा बीरबल की जन्मभूमि है, जहाँ विश्वेश्वरतुल्य देवविहारीश्वर महादेव का मंदिर है और यह कानपुर जिले की घाटमपुर तहसील में यमुना के बाएँ किनारे पर बसा है। इसके पास अकबरपुर बीरबल नाम का छोटा सा गाँव है, जहाँ सड़क के किनारे देवविहारीश्वर का पुराना मंदिर है।

भूषण के जन्मसंवत्, भ्रातृसंबंध, मृत्युतिथि आदि के बारे में विद्वानों में बड़ा मतभेद है। मिश्रबंधुओं ने अनुमान के आधार पर भूषण का समय संवत् १६७० से १७७२ तक माना है। शिवसिंह सरोज में भूषण की जन्मतिथि संवत् १७३८ और माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ हिंदुस्तान में संवत् १६९० दी गई है किंतु अंत.साक्ष्य के अभाव और ऐतिहासिक प्रमाण की अनुपलब्धि के कारण भूषण के जन्म और मृत्यु के संवतों के संबंध में अधिकृत रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

कहा जाता है, चिंतामणि, भूषण, मतिराम और नीलकंठ चार भाई थे। नीलकंठ का उपनाम जटाशंकर था, पर भूषण का मूल नाम क्या था, इसका किसी को पता नहीं है। कुछ विद्वानों ने भूषण के वास्तविक नाम को पतिराम अथवा मतिराम

---

१. महाराष्ट्रसारस्वत, मूल लेखक वि० ल० भावे, चतुर्थावृत्ति, पुरवणीकार शं० गो० तुलपुले, पृष्ठ ५५०–५५३।

२. न्यू हिस्ट्री ऑफ् दि मराठाज, भाग १—गोविंद सखाराम सरदेसाई, पृष्ठ १६१।

३. ऐतिहासिक पोवाडे, सं० य० न० केलकर, पृष्ठ २४।

माना है, पर इसका भी कोई प्रमाण नहीं है। शिवराजभूषण छंदसंख्या २५–२८ के आधार पर यह कहा जाता है कि चित्रकूट के राजा हृदयराम के पुत्र रुद्र सोलंकी ने उन्हें 'भूषण' उपाधि देकर विभूषित किया था।

भूषण के स्फुट छंदों में अनेक व्यक्तियों के नाम मिलते है, परंतु प्राप्त ग्रंथों के आधार पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि छत्रपति महाराज शिवाजी और छत्रसाल बुंदेला भूषण के आश्रयदाता थे।

भूषण द्वारा रचे गए ग्रथों की संख्या ६ बताई जाती है—१ शिवराजभूषण, २ भूषणहजारा, ३. भूषणउल्लास, ४. दूषणउल्लास, ५. शिवाबावनी और ६. छत्रसाल-दशक। इनमे से भूषणहजारा, भूषणउल्लास और दूषणउल्लास अप्राप्य हैं। शेष तीन ग्रंथ और अनेक स्फुट छंद भूषण के नाम से मिलते है।[१] काव्य की दृष्टि से भूषण ने रीतिबद्ध और रीतिमुक्त दोनो प्रकार की रचनाएँ लिखी हैं। उनकी प्राप्य रचनाओं का संक्षिप्ततम परिचय इस प्रकार है—

१. शिवराजभूषण

यह रीतिबद्ध ग्रंथ है, अतः इसका विस्तृत परिचय हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास भाग षष्ठ में दिया गया है। शिवराजभूषण के छंद क्रमांक ३८२ के अनुसार इस ग्रथ की रचना भानुवार (रविवार), ज्येष्ठ बदी १३, संवत १७३० को हुई। इसमे अलंकारों की परिभाषा दोहों में और उनके उदाहरण कवित्त और सवैयों मे दिए गए हैं। इन कवित्त और सवैयों का वर्ण्य विषय छत्रपति महाराज शिवाजी की प्रशस्ति है। इस ग्रंथ मे वर्णित

---

१. देखिए—भूषण ग्रंथावली, सं० प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, भूमिका, पृष्ठ १०६–११५।
भूषण ग्रंथावली, स० राजनारायण शर्मा, भूमिका, पृष्ठ १–१८।
भूषण ग्रंथावली, स० श्री ब्रजरत्नदास, भूमिका, पृष्ठ ४–६६।
भूषण ग्रंथावली, सं० मिश्रबंधु, भूमिका, पृष्ठ ७–३६।
मिश्रबंधु विनोद, भाग २, पृष्ठ ४६६–४६८।
हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृष्ठ २३७।
शिवसिंह सरोज, कवियों का जीवनचरित्र, पृष्ठ ६१–६३।
माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ हिंदुस्थान, ग्रियर्सन, पृष्ठ ६१।
वीरकाव्य, सकलनकर्ता डॉ० उदयनारायण तिवारी, पृष्ठ २५८–२६७।
हिंदी वीरकाव्य सग्रह, संकलनकर्ता श्री गणेशप्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ १५६–१७७।
सेलेक्शंस फ्रॉम हिंदी लिटरेचर, लाला सीताराम, भाग १, पृष्ठ ८१—८४।
भूषण विमर्श, श्री भगीरथप्रसाद दीक्षित, पृष्ठ १–३४।
हिंदी वीरकाव्य, डॉ० टीकमसिंह तोमर, पृष्ठ २४–२६ आदि।

घटनाएँ संवत् १७३० तक की हैं, जिनके आधार पर यह सिद्ध होता है कि भूषण और शिवाजी समकालीन थे।

(२) शिवाबावनी

इसमें बावन स्फुट छंदो मे शिवाजी महाराज की युद्धवीरता, दानवीरता आदि वर्णित है।

(३) छत्रसाल दशक

इसमें दस छंदो में महाराज छत्रसाल बुंदेला का गुणगान किया गया है।

(४) स्फुट संग्रह

भूषण के उपर्युक्त ग्रंथो में दिए गए छद तथा अन्य व्यक्तियो से संबंधित कई फुटकर छंद यदा कदा फुटकर संग्रह ग्रंथो में मिलते हैं। जैसे—

डाढ़ी के रखैयन की डाढ़ी सी रहति छाती,
बाढ़ी जग हद मरजाद हिंदवाने की।
कढि गई रैयत के दिल की कसक और,
मिटि गई षसक तमाम तुरकाने की॥
भूषण भनत दिली दल मे सकपकांति,
हाँक सुनि राव छत्रसाल मरदाने की॥
मोटी भई चंडी बिन् चोटिन के दलन षाय,
छोटी भई संपति चकत्ता के घराने की॥[1] —पत्र २, छंद १६।

२६. श्रीगोविंद

भूषण के अतिरिक्त शिवाजी के दरबार मे सम्मानित होनेवाले कवियो मे श्रीगोविद का उल्लेख[2] मिलता है। ये संवत् १७३० के लगभग वर्तमान थे। इन्होने शिवाजी की तेग की प्रशंसा की है---

भूप शिवराज साहि प्रबल प्रचड तेग,
तेरी दौर दड भूम भारत भड़ाका है।
कारे आसमान, भासमान को गरब गाड़े,
डारे मघवानहू के हिय मे हड़ाका है॥
कहे श्रीगोविंद सब शत्रुन के शीसन पै,
गाजते गिरत गास गाज से घड़ाका है।

---

१. काशी नागरीप्रचारिणी सभा, हस्तलिखित ग्रंथ संख्या ७०३।४४। याज्ञिक संग्रहालय के इस ५ पत्रो के अपूर्ण हस्तलिखित संग्रहग्रंथ मे वीर रस के २४ छद है।—लेखक।

२. हिंदी साहित्य को विदर्भ की देन, प्रयागदत्त शुक्ल, पादटिप्पणी, पृष्ठ १०।

हौदा काट, हाथी काट, भूतल, वराह काट,
काटी श्रीकमल गेठ काटती कड़ाका है[१] ॥

२७. **गंगेश**

मिश्रबंधुओं के अनुसार गंगेश भूषण जी का महाराजा शिवाजी के दरबार में संमानित होना सुनकर उनके दरबार में गए थे। इनकी बहुत थोड़ी कविता उपलब्ध है। एक उदाहरण देखिए—

राज मों राज सिवराज महराज सब,
साज से भूप मैं आज देखे।
सुरत से सार, दीदार भरि जान कै,
मदन के सर्व सौंदर्य रेखे ॥
बख्त के तख्त सारूढ़ खुशबख्त,
दिनबख्त के धर्म सत्कर्म साठे।
वीर गंभीर केयूर मणि मौर के,
हृदय मे बंदते सब मराठे[२] ॥

गंगेश जी संभवतः संवत् १७३० के आसपास ही शिवाजी के दरबार में आए होंगे।

२८. **सोनकवि**

शिवराजशतक में सोनकवि का निम्नलिखित छंद संकलित है—

करत पयान के सरजा घुमान तब,
जात अभिमान हबमान के बिलाय कें।
अरब खरब देत गरब शरम छोडी,
मुगल गरब सब जात है सभाय कें ॥
बिजापुर बिपति के 'सोन' भये भयमानि,
भागे भागे जात सब नारी भभराय कें।
दिल्ली के बहादुर दिलेर दल बादल सो,
जात भजे कानन में अहाट कों पाय कें[३] ॥

उक्त छद में दिलेर खाँ के पलायन का उल्लेख है। गोविंद सखाराम सरदेसाई (न्यू हिस्ट्री ऑफ् दि मराठाज़ (प्रथम खंड), पृष्ठ १९६–१९७ के अनुसार सल्हेरि के युद्ध में दिलेर खाँ सन् १६७२ की फरवरी के प्रथम सप्ताह मे शिवाजी की सेना से पराजित

---

१. शिवराजशतक, सपादक गोविंद गिल्लाभाई, पृष्ठ ११९–१२० ।
२. मिश्रबधु विनोद, भाग ४, पृष्ठ ४०–४१ ।
३. शिवराजशतक, संपादक गोविंद गिल्लाभाई, पृष्ठ १२०, छंद ३ ।

हो प्राण बचाने के लिये जंगलों में भाग गया था, अतः यह छंद संवत् १७२६ के उपरांत संवत् १७३० के लगभग लिखा गया होगा।

२६. शुकदेव मिश्र 'कविराज'

पं० रामचंद्र जी शुक्ल ने शुकदेव मिश्र का समय संवत् १७२० से १७६० के लगभग लिखा है। शिवराजशतक मे इनके दो छंद सकलित है, जिनमे शिवाजी और उनकी तलवार की प्रशसा की गई है। एक छंद इस प्रकार है—

श्री शिवराज धरापति की यह
 भाँति पराक्रम, काति निहारी,
दंड लियो भुव मंडल मे, नहि
 कोउ अदड बच्यो छत्रधारी॥
दक्षन बैठि कहे 'कविराज',
 गुमान सबै हिंदुवान उजारी।
दिल्ली तें गाजि कें गाजि व्है आये पैं,
 पाजी से पीटे है पंचहजारी॥[१]

कविराज भी संवत् १७३० के आसपास ही शिवाजी से मिले होंगे।

३०. नीलकंठ

ये तिकवाँपुर जिला कानपुर के निवासी रत्नाकर त्रिपाठी के पुत्र और कविवर भूषण के अनुज थे। इन्होने सवत् १६६८ मे सस्कृत के अमरुशतक का अनुवाद 'अमरेस-विलास' नाम से किया। इनका रचनाकाल सवत् १६६८ से संवत् १७३० तक था। ये कुछ समय तक औरंगजेब के रुहेला सेनापति दिलेर खाँ (अन्य नाम दलेल खाँ) के संपर्क में रहे जान पड़ते हैं क्योंकि इनके एक छंद में उक्त दलेल खाँ की धाक का जोरदार वर्णन मिलता है। छंद इस प्रकार है—

तन पर भारतीन, तन पर भार तीन,
 तन पर भार तीन, तन पर भार है।
पूजे देवदार तीन, पूजे देवदार तीन,
 पूजे देवदार तीन, पूजे देवदार हैं॥
'नीलकंठ' दारुन दलेल खाँ तिहारी धाक,
 नाँघती न द्वार ते वै नाँघती पहार है।

---

१. वही, पृष्ठ १२०–१२१, छंद ५।

आंधरन कर गहि बहिरन संग रहि,
बार छूटे बार छूटे बार छूटे बार हैं ।।[१]

उक्त छंद का भूषण के प्रसिद्ध छप्पय, "ऊँचे घोर मंदर के अंदर रहनवारी, ऊँचे घोर मंदर के अंदर रहाती है । कंद मूल भोग करें, कंद मूल भोग करें, तीन बेर खाती थी सो तीन बेर खाती है ।. . . ." से साम्य द्रष्टव्य है ।

३१. श्रीपति भट्ट

डॉ० टीकमसिंह तोमर ने लिखा है कि बाँदा ये के नवाब सैयद हिम्मत खाँ के दरबारी कवि थे । इन्होने संवत् १७३१ में 'हिम्मतप्रकाश' नामक काव्य लिखा, जिसके प्रारंभ में अपने आश्रयदाता का यश वर्णन किया है ।[२] हिम्मत खाँ औरंगजेब के मंत्री खाँजहाँ का पुत्र था और बलबीर तथा श्रीपति भट्ट का आश्रयदाता भी । खोज रिपोर्ट की सूचना के अनुसार हिम्मतप्रकाश वैद्यक विषयक काव्य है ।[३] इस ग्रंथ की हस्तलिखित प्रति (ग्रथ संख्या २६।३४) काशी नागरीप्रचारिणी सभा मे है । मूल ग्रथ का नाम माधवनिदान अथवा हिम्मतप्रकाश है, जिसे चैत्र शुक्ल एकादशी, गुरुवार, संवत् १८६८ को हाथरस में मन्नूलाल जी ने पठनार्थ लिखा था ।

३२. कुंभकर्ण

श्री मोतीलाल जी मेनारिया ने अपने दो ग्रंथों में कुंभकर्णकृत रतनरासो के संबंध में दो भिन्न भिन्न तिथियों की सूचनाएँ इस प्रकार दी हैं—

(क) ये सांदू शाखा के चारण थे । इन्होने संवत् १७३० वि० के लगभग रतनरासो लिखा । इसमें राठौर रतनसिंह और औरंगजेब के युद्ध का वर्णन है[४] ।

(ख) इन्होने रतनरासो (संवत् १७३२) नामक एक ग्रंथ बनाया, जिसमें मुगल बादशाह शाहजहाँ के विद्रोही पुत्रों की आपसी लड़ाई का वर्णन है[५] ।

श्री काशीराम शर्मा द्वारा लिखित रतनरासो के रचयिता के वंशपरिचय के आधार पर डॉ० माताप्रसादजी गुप्त ने कुंभकर्णकृत रतनरासो का रचनाकाल संवत् १६७५ विक्रमाब्द तथा संवत् १६८१ विक्रमाब्द के बीच लिखा है[६] ।

---

१. दिग्विजय भूषण, संपादक डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह, पृष्ठ ५५; मिश्रबंधु विनोद, भाग २, पृष्ठ ४६५ ।

२. हिंदी साहित्य, द्वितीय भाग, सं० डॉ० धीरेंद्र वर्मा, पृष्ठ १७८ ।

३. हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, भाग २, पृष्ठ ६८५ ।

४. राजस्थान का पिंगल साहित्य, श्री मोतीलाल मेनारिया, पृष्ठ १६६ ।

५. राजस्थानी भाषा और साहित्य, श्री मोतीलाल जी मेनारिया, पृष्ठ २७६ ।

६. हिंदी साहित्य, भाग २, सं० डॉ० धीरेंद्र वर्मा, पृष्ठ १३० तथा उसकी पादटिप्पणी ।

श्री सीताराम लालस के मतानुसार कुंभकर्ण (कुंभकरण) का जन्म नागौर के समीप भदौरा गाँव में हुआ था। इनके पिता का नाम ईसरदास था। ये रतलाम नरेश रतनसिंह के पुत्र रामसिंह और उनके पुत्र शिवसिंह के समय में वर्तमान थे। रतनरासो के अतिरिक्त इन्होंने जयचंदरासो नामक एक अन्य ग्रंथ भी लिखा है, जिसकी प्रति पाली जिले के मिरगेसर ग्राम के भोमदान जी साँदू के पास है[1]।

३३. सबलसिंह चौहान

सबलसिंह चौहान का पूर्ण विवरण उपलब्ध नहीं है। सर जॉर्ज ग्रियर्सन ने इनका जन्म १६७० ई० (संवत् १७२७ विक्रमाब्द) माना है,[2] जो अशुद्ध है क्योंकि इनके द्वारा अनुवादित महाभारत के भीष्म पर्व का लिपिकाल संवत् १७१८ है। प० रामनरेश जी त्रिपाठी ने इनका जन्म संवत् १७०० के लगभग और मृत्यु संवत् १७८२ के लगभग आँका है[3]। ये इटावा के समीप किसी गाँव के निवासी थे। कोई इन्हें चंदागढ़ का राजा बतलाते हैं और कोई सबलगढ़ का राजा, किंतु ये इटावा के निकट किसी गाँव के जमींदार प्रतीत होते हैं[4]। इन्होंने अपनी रचनाओं में औरंगजेब तथा उसके एक दरबारी राजा मित्रसेन का बार बार उल्लेख किया है।

सबलसिंह की पाँच पुस्तकें प्राप्त हैं--१. महाभारत चक्रव्यूह, २. रूपविलास पिंगल, ३. षटऋतु बरवै, ४. भाषा ऋतुसंहार, ५ भागवत दशम। इनके अतिरिक्त काशी नागरीप्रचारिणी सभा के संग्रहालय में सबलसिंह द्वारा अनुवादित महाभारत के निम्नलिखित पर्वों की प्रतियाँ विद्यमान है--

शल्य पर्व	--हस्तलिखित ग्रंथसंख्या	६२३।४४५।
द्रोण पर्व	-- ,, ,, ,,	३३२।२३२।
कर्ण पर्व	-- ,, ,, ,,	३३१।२३१।
शल्य पर्व	-- ,, ,, ,,	३३३।२३३।
गदा पर्व	-- ,, ,, ,,	३३४।२३४।
भीष्म पर्व	-- ,, ,, ,,	३३०।२३०।

हस्तलिखित ग्रंथ संख्या ८५२।६०८ में सबलसिंह के द्रोण, कर्ण, शल्य और गदा पर्व एक साथ संकलित हैं।

---

१. राजस्थानी सबद कोस, सीताराम लालस, प्रथम खंड, पृष्ठ १५४।

२. हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास, ग्रियर्सन, अनुवादक श्री किशोरीलाल गुप्त, पृष्ठ १८०।

३. कविताकौमुदी, प्रथम भाग, सं० पं० रामनरेश त्रिपाठी, पृष्ठ ४३३।

४. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृष्ठ ३०१।

महाभारत चक्रव्यूह संवत् १७१८ और संवत् १७३४ के बीच लिखा गया। महाभारत के समय द्रोणाचार्य द्वारा चक्रव्यूह की रचना और अभिमन्यु का चक्रव्यूह छेदन कर युद्धक्षेत्र में वीरगति पाना इस रचना का मुख्य विषय है। चक्रव्यूह का युद्धप्रसग इस प्रकार है--

अभिमनु धाइ खड़ग परहारे। समुख जेहि पायो तेहि मारे ।।
भूरिश्रवा बान दस छाँटे। कुँवर हाथ के खड़गहि काटे ।।
तीनि बान सारथि उर मारे। आठ बान तें अस्व सँहारे ।।
सारथि जूझि गिरे मैदाना। अभिमनु वीर चित्त अनुमाना ।।
यहि अंतर सेना सब धाई। मारु मारु कै मारन आई ।।
रथ को खैंचि कुँवर कर लीन्हे। ताते मार भयानक कीन्हें ।।
अभिमनु कोपि खभ परहारे। इक इक घाव वीर सब मारे ।।
अर्जुन सुत इमि मार किय, महावीर परचंड।
रूप भयानक देखियत, जिमि जम लीन्हे दड ।।

महाभारत चक्रव्यूह मे भीम की गर्वोक्तियाँ तथा अभिमन्यु द्वारा चक्रव्यूह के द्वार-भेदन-प्रसग मे वीररस का अच्छा परिपाक हुआ है किंतु कथात्मकता का अति आग्रह और कलात्मकता के अभाव के कारण सबलसिंह की वाणी मे जोश और प्रभाव की कमी आ गई है।

सबलसिंह द्वारा अनुवादित महाभारत के सर्गों मे दोहा, चौपाई छदों का प्रयोग हुआ है। उक्त पर्वो को पढ़ने से ऐसा प्रतीत होता है कि सबलसिंह तुलसी के रामचरित-मानस के अनुरूप महाभारत को भी सरल भाषा में जनसाधारण के लिये बोधगम्य तथा पठनीय बनाना चाहते थे, इसीलिये उन्होंने सरल भाषा में मानस की दोहा-चौपाई-छद-प्रणाली मे उक्त पर्वो का अनुवाद कर डाला है, किंतु इतिवृत्तात्मकता के कारण सबलसिंह के अधिकांश वर्णन सामान्य कोटि के है।

३४. अज्ञानदास--

मिश्रबधु विनोद, भाग ४ मे पृष्ठ ४२ पर महाराष्ट्र-प्रांत-निवासी अज्ञानदास गोंधली का विवरण दिया गया है। इन्होंने अफजल खाँ के वध का पँवाड़ा[1] महाराज शिवाजी और उनकी माता को सुनाया था। उदाहरण--

अफजल--तूँ तो कुणबी का छोकरा।
शिवाजी--तूँ तरी भटारनो का छोरा। शिवाजी सरज्या पर लाया तोरा ।।
× × ×
अब्दुल जात का भटारी। तुमने करना दुकानदारी ।।[2]

---

१. ऐतिहासिक पोवाडे, संपादक य० न० केलकर, पृष्ठ ७--२२।
२. वही, पृष्ठ १८-१६, चौक २८, २६, ३०।

वस्तुत: अक्षानदास मराठी के कवि थे। उनका 'अफजलखानवध' मराठी में लिखा गया है। उक्त अवतरण मात्र हिंदी के हैं, जिनमें उस युग में महाराष्ट्र में प्रचलित बोलचाल की हिंदी का रूप प्रकट होता है। अज्ञानदास का कविताकाल संवत् १७३५ है।

३५. रणछोड़

इन्होंने संवत् १७३७ में मेवाड़ के राजघराने का इतिहास 'राजपट्टन' नामक ग्रंथ में लिखा है।[1]

३६. निवाज तिवारी

ये अंतर्वेद के रहनेवाले ब्राह्मण थे और पन्नानरेश महाराज छत्रसाल के यहाँ किसी भागवत कवि के स्थान पर नियुक्त हुए थे। इन्होंने संवत् १७३७ के लगभग छत्रसाल विरुदावली नामक वीरकाव्य लिखा, जिसमें महाराज छत्रसाल के विरद का बखान किया गया है।[2]

इनका दूसरा ग्रंथ शकुंतला नाटक है, जो दोहा, चौपाई, सवैया आदि छंदों में लिखा गया है। इसके अतिरिक्त इनके अनेक स्फुट कवित्त कई स्थानों पर संगृहीत मिलते हैं, जिनसे इनकी सहृदयता टपकती है।[3]

३७. चिंतामणि

चिंतामणि रीतिकालीन काव्य के सर्वांग (विविधांगनिरूपक) आचार्यों में परिगणित किए गए हैं। इनका जन्म संवत् १६६०–६५ के लगभग हुआ था। इनके पिता का नाम रत्नाकर त्रिपाठी और जन्मस्थान तिकवाँपुर, जिला कानपुर था। भूषण, मतिराम और जटाशंकर इनके भाई थे।

डॉ० भवानीशंकर याज्ञिक, ८, शाहनजफ रोड, लखनऊ के पास चिंतामणिकृत लालमणि नामक ग्रंथ की एक खंडित प्रति है, जिसमें छत्रसाल की प्रशंसा में वीररस के २४ छंद दिए गए हैं। मूल प्रति में रचनाकाल नहीं दिया गया है, किंतु महाराज छत्रसाल का जन्म संवत् १७०६ और मृत्यु संवत् १७८८ में हुई। भूषण, केशवराय, हरिकेश द्विज, और गोरेलाल पुरोहित 'लालकवि' उनके आश्रित थे, अतः यह अनुमान लगाया जा सकता है कि महाराज छत्रसाल के राज्यत्वकाल में संवत् १७४० के लगभग ये स्फुट छंद रचे गए होंगे।

जनवरी, सन् १८७५ में नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से चिंतामणिकृत 'कविकुल कल्पतरु' प्रकाशित हुआ था, जिसकी एक हस्तलिखित प्रतिलिपि डा० भगीरथ जी मि

---

१. हिंदी साहित्य—भाग २ : सं०—डा० धीरेंद्र वर्मा, पृष्ठ १७८।

२. वही—पृष्ठ १७८।

३. हिंदी साहित्य का इतिहास—आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृष्ठ २४३।

अध्यक्ष, हिंदी विभाग, सागर विश्वविद्यालय, सागर के निजी संग्रह में है। यह काव्यदोष, अलंकार और नायिकाभेद का ग्रंथ है। इसमे अलंकारों के उदाहरण देते समय अन्यान्य रीतिबद्ध कवियों की तरह चिंतामणि ने भी वीररस के छंद लिखे है, यथा—

अत्र की आचनि असंख्य अरि जोधा जारे, प्रकटी ये विक्रम की रचना विशाल सी।
'चिंतामनि' कहै खंग परसु दंड वर व्योम, छिति भरी छतज आगार गन लाल सी।।
जरासिंधु नृप चमू अगनित निकरी रुधिर धारि तेज अग्नि ज्वाल सी।
कान्ह धनु मंडल ते कढी सर पाँति प्रलै चंड कर मंडल ते चंड कर माल सी।।
—कविकुलकल्पतरु (हस्तलिखित प्रतिलिपि), पृष्ठ ३६, छंदसंख्या २८।

३८. सुखदेव मिश्र

इनका जन्म कंपिला में तथा शिक्षण काशी मे हुआ था। काशी से लौटकर ये असोथर, जिला फतेहपुर के राजा भगवंतराय खीची, डौडियाखेरे के राव मर्दनसिंह, अमेठी के राजा हिम्मतसिंह व औरंगजेब के मंत्री फाजिल अली के आश्रय मे रहे। अंततः मुरारमऊ के राजा देवीसिंह के आग्रह से ये सकुटुंब दौलतपुर, जिला रायबरेली में आकर बस गए, जहाँ इनके वंशज आज भी पाए जाते है। राजा राजसिंह गौड़ ने इन्हें कविराज की उपाधि दी थी।

अधुनातन खोज के आधार पर इनकी ९ रचनाएँ[1] प्राप्य है—१. वृत्तविचार, २. छंदविचार, ३. फाजिल अली प्रकाश, ४. रसार्णव, ५. शृंगारलता, ६. अध्यात्मप्रकाश, ७. दशरथराय, ८. पिंगल और ९. पिंगल छंदविचार।

छंदविचार में इन्होंने अमेठी के राजा हिम्मतसिंह की विरुदावली गाई है।[2] यथा—

सरुप है सुधामय सुजनन हेरि हेरि निपट निहाल कियो सुकविन को समाज।
सेर सम झपटि दपटि समसेर गहि जेर करे बैरिन बटेर जैसे बन को बाज।।
मंजु मृग नैनिन को मधुर मनोज निज ओज पुंज सर सब सूरन को सिरताज।
महाबाहु नृपति पहर कौन देतु है पहार वहि मति को हिम्मतसिंह महाराज।।

डॉ० टीकमसिंह तोमर ने फाजिलअली प्रकाश को वीरकाव्य में स्थान दिया है[3], किंतु मूलतः यह अलंकार और नायिकाभेद का ग्रंथ है[4]। अधिक से अधिक इसका प्रशस्ति-वाला अंश ही वीरकाव्य माना जा सकता है।

---

१. हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, भाग २, पृष्ठ ५६१।

२. छंदविचार, सुखदेव मिश्र (पं० कृष्णबिहारी मिश्र, मॉडेल हाउस, लखनऊ की प्रति)।

३. हिंदी साहित्य, द्वितीय खंड, सं० डॉ० धीरेंद्र वर्मा, पृष्ठ १७७।

४. हस्तलिखित हिंदी ग्रंथों का त्रयोदश त्रैवार्षिक विवरण, सन् १९२६–२८, पृष्ठ ६७१–६७२।

३९. कनककुशल

ये भुज के महाराव लखपतसिंह के आश्रित थे तथा संवत् १७४१ के लगभग विद्यमान थे। खोज मे इनके तीन ग्रंथों का पता चला है—१. लखपतिमंजरी नाममाला, २. रसदीपिका और महाराव श्री गोहड़ जी नो छंद। लखपतिमंजरी नाममाला कोष-ग्रंथ है और रसदीपिका सुंदरशृंगार की टीका। महाराव गोहड़ जी नो छंद में इन्होंने अपने आश्रयदाता की कीर्ति का गुणगान किया है[१]।

४०. महापात्र जैतसिंह

ये असनी जिला फतहपुर के निवासी थे तथा औरंगजेब के पुत्र मुअज्जमशाह के आश्रय में रहते थे। संवत् १७४२ के लगभग इन्होंने 'मुअज्जमशाह के कवित्त' नामक काव्य रचा, जिसमें मुअज्जमशाह के युद्ध, आखेट, दान, वर्षगांठ, राजभोग आदि का अच्छा वर्णन किया है। भाव और भाषा की दृष्टि से इनके छंद भूषण के छंदों से पर्याप्त साम्य रखते हैं। एक उदाहरण[२] पर्याप्त होगा—

कढ्यो सेल गहि साहि आलम समथ्थ साहि,
पथ्थ से सुभट ठट्ट हरे भरी भर को।
धौंसा की धुकार धमकत धराधर धरै,
धीर धराधीस को धरकि तेज दरको॥
ब्रह्मंड मंडल में दड दै अदड बचे,
पंडनि के मंडरीक मिलें ताज वर को।
छीरनिधि छलकि उछलि छीटे छिति छाइ,
मानो तमहीन तारगन टूटे तरको॥

४१. कालिदास त्रिवेदी

ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इन्हें अन्तर्वेद निवासी[३] और डा० भगीरथ जी मिश्र ने इन्हें बनपुरा (कानपुर) का रहनेवाला लिखा है। इनका जन्म सं० १७१७ के लगभग हुआ था। इन्होने सवत् १७४९ मे बीना के राजा जोगाजीत सिंह के लिए वधूविनोद या राधामाधव बुध मिलन-विनोद नामक नायिकाभेद का ग्रंथ लिखा।

---

१. गुजरात की हिंदी काव्यपरंपरा तथा आचार्य कवि गोविंद गिल्लाभाई, डॉ० मा० गो० चतुर्वेदी, पृष्ठ ७० (बड़ौदा विश्वविद्यालय, अप्रकाशित प्रबंध)।
२. हस्तलिखित हिंदी ग्रंथों की खोज, सन् १९४१-४३, पृष्ठ ३२७-३२९, ग्रंथसंख्या ८५ ख।
३. हिंदी साहित्य का इतिहास आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृष्ठ २४१।
४. हिंदी साहित्य का उद्भव और विकास, खंड २, डॉ० भगीरथ मिश्र, पृष्ठ ६०।

इनका दूसरा ग्रंथ कालिदास हजारा है, जिसमें इन्होंने संवत् १४८१ से संवत् १७७६ तक के २१२ कवियों के १००० पद्य संग्रहीत किए हैं। इतिहास और संकलन दोनों की दृष्टि से यह रचना अत्यंत महत्वपूर्ण है। जजीरा नामक इनकी तीसरी रचना है जिसमे ३२ घनाक्षरी है। कालिदास त्रिवेदी के पुत्र उदयनाथ कवींद्र और पौत्र दूलह भी सुकवि हुए।

संवत् १७४५ मे जब औरंगजेब ने गोलकुंडा पर चढ़ाई की थी तब ये औरंगजेब की सेना मे किसी राजा के साथ गए थे और औरगजेब की प्रशंसा मे इन्होंने निम्नलिखित छंद कहा था--

> गढन गढी से गढि, महल मढी से मढ़ि,
> बीजापुर ओप्यो दलमलि सुघराई मे।
> कालिदास कोप्यो बीर औलिया अलमगीर,
> तीर तरवारि गही पुहमी पराई में॥
> बूंद तें निकसि महिमंडल घमंड मची,
> लोहू की लहरि हिमगिरि की तराई मे।
> गाड़ि के सुभंडा आड़ कीनी बादसाही तातें,
> डकरी चमुंडा गोलकुंडा की लराई मे॥

४२. मान

इनका पूरा नाम मानसिंह था।[१] कुछ लोग इन्हें भाट और कुछ जैन यति बतलाते है।[२] ये मेवाड के महाराणा राजसिंह (जन्म २४ सितबर, १६२९ ई०, राज्याभिषेक १० अक्टूबर, १६५२ ई० और निधन २२ अक्टूबर, १६८० ई०) के राजकवि थे। इन्होंने २६ जून, सन् १६७७ ई० (सवत् १७३४) मे राजविलास की रचना प्रारंभ की और उसे सन् १६८० ई० (सवत् १७३७) मे पूरा किया। इससे पता चलता है कि मान सवत् १७३४ और सवत् १७३७ के मध्य महाराणा राजसिह जी के समकालीन कवि थे। राजविलास की एक प्रति, जिसका लिपिकाल संवत् १७४६ है, उदयपुर के राजकीय पुस्तकालय मे सुरक्षित है। यह १८ विलासो का वीर रसात्मक बृहत् काव्य है, जिसके प्रारंभ मे सीसोदिया वंश का संक्षिप्त इतिवृत्त है। ग्रथ की मुख्य कथा महाराणा राजसिह के राज्यारोहण से प्रारभ हुई है। सामान्यत महाराणा राजसिह के जीवन की मुख्य मुख्य घटनाएँ इस ग्रथ में मिल जाती है, पर ग्रथ का अधिकाश भाग महाराणा राजसिह के युद्धवर्णनो से भरपूर है। इस ग्रंथ की भाषा पिंगल है, जिसमे ओज, प्रवाह और अलकारो का आयोजन सुंदर है। वर्णन की दृष्टि से राजविलास मे

---

१. राजस्थानी भाषा और साहित्य, डॉ० मोतीलाल मेनारिया, पृष्ठ २१६।
२. हिंदी वीर काव्य, डॉ० टीकमसिंह तोमर, पृष्ठ २६।

षड्ऋतु, नखशिख, दुर्भिक्ष, सैन्यप्रस्थान और युद्धवर्णन पठनीय हैं। यह ग्रंथ काशी नागरीप्रचारिणी सभा से प्रकाशित हो गया है।

मान की रचना के उदाहरण इस प्रकार है—

ऊचलि गयो अग्गरो दंद मच्यो अति ढिल्लिय।
हाजीपुर परि हक्क डहकि लाहौर सु डुल्लिय॥
थरस लयौ रिनथंभ धसकि अजमेर सु धुज्जिय।
सूनौ भयौ सिरौंज भगग भेलसा सुभज्जिय॥
अहमदाबाद उज्जैनि जन, थाल मूंग ज्यो थरहरिय।
राजेस राण सु पयान सुनि, पिशुन नगर खरभर मचिय॥

४३. बादर

ये जाति के ढाढ़ी थे। इन्होने संवत् १७५० के लगभग 'वीरमाण' नामक एक वीरकाव्य लिखा, जिसमे वीरम जी और जोइयो के बीच सवत् १४४७ में लखवेरा में हुई एक लड़ाई का वर्णन किया गया है। वीरमाण मे मंडोवर के राव मल्लिनाथ के पुत्र जगमाल और उनके भतीजे वीरम जी की युद्धवीरता का सविस्तार वर्णन पाया जाता है। इस युद्ध में वीरवर वीरम जी बड़े शौर्य से लड़ते लड़ते खेत रहे थे।

वीरमाण में २८५ पद्य है और मुख्य छंद नीसाणी है, इसलिये इसे 'नीसाणी वीरमाण री' भी कहा गया है। वीर रस की दृष्टि से यह बड़ी सशक्त रचना है। यथा—

सुत च्यारूँ मंलखेस रै, कुल में किरणाला।
राज बंका राठवड, वर वीर बड़ाला॥
साथ लियाँ दल सामठा, विरदाँ रखवाला।
भिडियाँ भारत भीमसा, दल पारथवाला॥
देस दमूं दिस दाबिया, कीधाँ धकचाला।
अरि औद्राहाँ, उड ग्या, कद ताल बिमाला॥
माल अगजी मुरधरा, तहके, नमाला[1]॥

नीसाणी वीरमाण री में राजस्थानी भाषा का शब्दसामर्थ्य और विशेषकर वयणसगाई का सौंदर्य द्रष्टव्य है।

४४. हंसराम

ये गुरु गोविंदसिंह के दरबारी कवि थे। इन्होंने सवत् १७५२ के लगभग 'करण-करण' नामक एक काव्य की रचना की थी। गुरु जी इनकी काव्यसाधना से अत्यधिक

---

१. राजस्थानी भाषा और साहित्य, डॉ० मोतीलाल मेनारिया, पृष्ठ २२७–२२८।

प्रभावित थे, अत. वे इन्हें प्रतिदिन दान और संमान के अतिरिक्त अतुल संपत्ति भी दिया करते थे। कविकथन है--

प्रथम क्रिपा करि राख कर, गुरु गोविंद उदार।
टका करे बख्शीश तब, मोको साठ हजार ॥

इससे ऐसा प्रतीत होता है कि गुरु गोविंदसिंह जी ने कृपा करके इन्हें सबसे पहले अपने पास रखा और इन्हें साठ हजार टके पुरस्कार स्वरूप दिए। हंसराम जी गुरु जी के प्रति अगाध प्रेम, श्रद्धा और भक्ति रखते थे। वे गुरु जी को क्लेशहर्ता, मुक्तिदाता और उद्धारक मानते थे--

अवध अनाए कहाँ, तिलक बनाए कहाँ,
द्वारका छपाए कहाँ, कहाँ तन ताईयति है।
कोविद कहाए कहाँ, बेनी के मुँडाए कहाँ,
काशी के बसाए कहाँ, लाहा लाखीयत है।
महिम मनाए कहाँ, भूपति रिझाए कहाँ,
कहाँ हसराम जो धरा मे धाइयति है।
चारिहू बरन ताके हरन कलेस गुर,
गोविद के चरन झुकति पाईयति है ॥

हंसराम ने गुरु गोविदसिंह जी की उदारता, विद्वत्ता, दानवीरता, शौर्य, युद्ध-कौशल, विजय तथा दरबारी ठाठबाट की भूरि भूरि प्रशंसा की है। गुरु जी के प्रति हंसराम ने यह कामना प्रकट की थी--

जौं लौं ध्रुव धरनि, तरनि तेज राजै जग,
तौ लौं गोविदसिंह तेरे शीश साहबी ॥

गुरु गोविंदसिंह की आज्ञा से हसराम ने महाभारत के एक अंश का ब्रजभाषा में 'करण मरण' नाम से अनुवाद भी किया था, जिसकी हस्तलिखित प्रति पटियाला पुस्तकालय में सुरक्षित है[1]।

४५. कुँवरेश

कहा जाता है, ये रीतिकाल के प्रसिद्ध आचार्य महाकवि केशवदास के पुत्र थे और गुरु गोविंदसिंह के दरबारी कवि थे। इसके अतिरिक्त इनका और इतिवृत्त नहीं मिलता। इन्होंने संवत् १७५२ में गुरु गोविंदसिंह की आज्ञा से महाभारत के द्रोणपर्व का अनुवाद किया जिसका संकेत अनूदित रचना में इस प्रकार है--

---

१. गुरु गोविंदसिंह के दरबारी हिंदी के कुछ पंजाबी कवि, डॉ० सुरेंद्र माथुर, सप्तसिंधु, अप्रैल, १९६५, पृष्ठ ३८।

संवत् सत्रह सौ अधिक बावन बीते और।
तामें कवि कुवरेश यह, कियो ग्रथ को डोर ॥

अनुवाद के अंत में कुँवरेश ने नानक, अगद, अमरदास, रामदास, अर्जुनदास, हरिगोविंद, हरिराम, हरिकृष्ण, तेगबहादुर, गुरु गोविंदसिंह आदि दसों गुरुओं की वंदना की है। अपने आश्रयदाता गुरु गोविंदसिंह के संबध में कवि ने लिखा है —

गुरु गोविंद नरिंद हैं, तेगबहादुर नंद।
जिनते जीवित हैं सकल, भूतल कवि बुध ब्रंद।
नदी सतद्रु तीर तहि, शुभ अनदपुर नाम।
गुरु गोविंद नरिंद के, राजत सुभग सुधाम ॥[१]

४६. गुरुदत्त

ये अमेठी के राजा गुरुदत्त से भिन्न कोई और व्यक्ति थे। इन्होने संवत् १७५४ के लगभग तीन स्फुट रचनाएँ लिखी—१. कवित्त, २ कबित्त हनोमान जी के और ३ कबित्त श्री विंध्याचलदेवी को। इनमें से प्रथम रचना कवित्त मे इन्होने सिक्खों के अकाली दल और गुरु गोविंदसिंह जी की वीरता का वर्णन किया है[२]।

४७. हरिनाभ

ये शांडिल्य गोत्रीय पारीख ब्राह्मण थे और जयपुर राज्य के अंतर्गत खडेला ग्राम के निवासी थे। वहाँ के राजा केसरीसिह इनके आश्रयदाता थे। इन्होने संवत् १७५४ में 'केसरीसिंह समर' नामक ५६१ पद्यो का एक सुदर काव्य रचा, जिसमे शेखावत वंश का परिचय, औरंगजेब के सेनापति अब्दुल्ला खाँ तथा केसरीसिह के बीच खडेला के पास हरीपुरा में हुए महान् युद्ध का वर्णन किया गया है। इस युद्ध मे केसरीसिह ने बड़ी वीरता से शत्रुओं का सामना करते हुए वीरगति पाई थी। केसरीसिह के स्वर्गारोहण के बाद उनकी चारो रानियाँ उनके साथ सती हो गई।[३]

हरिनाभ ने छप्पय, हनूफाल, मोतीदाम, भुजंगप्रयात, आदि अनेक छंदों का प्रयोग कर केसरीसिह समर के युद्धवर्णन, सतीचरित्र, सती-परी-प्रश्नोत्तरी आदि प्रसंगो पर अपनी प्रतिभा का अच्छा परिचय दिया है किंतु प्रभाव की दृष्टि से यह रचना बहुत उच्च कोटि की नही कही जा सकती। एक उदाहरण पर्याप्त होगा—

---

१. गुरु गोविंदसिंह के दरबारी हिंदी के कुछ पंजाबी कवि, डॉ० सुरेंद्र माथुर, सप्तसिंधु, अप्रैल, १९६५, पृष्ठ ४४।
२. हस्तलिखित हिंदी ग्रंथो का अठारहवाँ त्रैवार्षिक विवरण, सन् १९४१–४३, प्रथम भाग, पृष्ठ ५८।
३. राजस्थान का पिंगल साहित्य, डॉ० मोतीलाल मेनारिया, पृष्ठ ११६।

चढ़ि कै तब राज निसांन किये, हय ऊपर पाखर डारि दियै ।
तबही अँग सूरन कौच कसै, जमराज भयंकर रूप जिसै ।।
जरि कै गज पाखर साज बनै, मनु पाय चलै सुपहार घनै ।
सजि के सब तोपन अग्ग कियँ, उड़ि खूरन धूरिन छाय रियँ ।।[१]

४८. दयालदास

दयालदास का वास्तविक नाम दयाराम था। ये मेवाड़ निवासी राव थे। महाराणा जयसिह के राज्यत्वकाल (सवत् १७३७ से सवत् १७५५ के मध्य) मे, इन्होने 'राणारासौ' नामक ऐतिहासिक वीरकाव्य रचा, जिसमें सरस्वती और गणपति की वंदना के उपरांत ब्रह्म से लेकर महाराणा जयसिह तक के मेवाड़ाधिपति राणाओ का इतिवृत्त लिखा है। इनमे भी बाप्पा रावल, महाराणा कुभा, महाराणा उदयसिह, महाराणा प्रतापसिह और महाराणा अमरसिह आदि का वर्णन विस्तारपूर्वक किया गया है।

राणारासौ मे महाराणा कर्णसिह (स्वत् १६७६–८४), महाराणा जगतसिह (संवत् १६८४–१७०६), महाराणा राजसिह (सवत् १७०६–३७) के अतिरिक्त महाराणा जयसिह (संवत् १७३७ से सवत् १७५५) का भी उल्लेख किया गया है, अत: इसमे निश्चित रूप से सवत् १७५५ तक की घटनाओ का सनिवेश किया गया है। खोज रिपोर्ट मे राणारासौ का रचनाकाल सवत् १६७१ से १६७५ तक दिया गया है,[२] जिसे इतिहाससंमत नही माना जा सकता।

इतिहास की दृष्टि से राणारासौ निस्सदेह प्रामाणिक नही है। सभव है, इसमें कुछ प्रक्षिप्तांश बाद मे जोड़ दिए गए हों। भाषा की सरसता, प्रवाह और प्रभाव की सबलता के आधार पर राणारासौ को सरस रचना कहा जा सकता है। विशेषकर युद्ध-वर्णन और चित्रोपमता के क्षेत्र मे दयाल की काव्यशक्ति का निखार सुंदर है। यथा—

धमकि धसति धर धरति धसति धरनी धीरजु तजि।
फटति फुटति छबि छुटति टुटति खुर खुटति जुटति लजि।
चँपति कँपति तन लपति ढँपति जल छपति उच्छरति।
ठिलति खिलति बिलबिलति मिलति तल वितल तुच्छ भति।
पायाँन रान अमरेस दल, कबि दयाल कल किति कहि।
छिन छिन छिपत कच्छप छकहु., ज्वार हथ्थ जिमि मथ्थ अहि ।।[३]

—राणा रासौ दयालदास, हस्तलिखित, पत्र ८६।

---

१. केसरीसिंह समर, पहला प्रकरण, हरिनाभ, छंद क्रमांक २०६।
२. हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का सक्षिप्त विवरण, भाग २, पृष्ठ २५६।
३. राजस्थानी भाषा और साहित्य, डॉ० मोतीलाल मेनारिया, पृष्ठ २२६–२३०।

४९. गिरिधर आस्या—

ये आशिया शाखा के मेवाड़ निवासी चारण थे। इन्होंने संवत् १७५५ के लगभग महाराणा प्रतापसिंह के अनुज महाराणा शक्तिसिंह का चरित्रवर्णन करने के लिये 'सगत-सिंघ रासौ' नामक एक विशाल ग्रंथ लिखा, जिसमे दोहा, भुजंगी, कवित्तादि मिलाकर ९४३ छंद हैं। चारण होने के कारण गिरिधर के काव्य में वंशपरंपरागत काव्यप्रतिभा थी और अपनी साधना के बल पर उसने उसका अच्छा विकास किया था। इतिहास और वीरकाव्य दोनों की दृष्टि से सगतसिंघ रासौ एक प्रौढ़ व सशक्त रचना है।[१] जैसे—

ऊदल राणैं एक दिन, सभ पूछियो स कोइ।
अणी मिरै कर आहणी, हूँसारै हूँ सोइ॥
मैंगल मैंगल सारिखौ, सीह सारिखौ सीह।
सगतौ उदियासिंघ तणा, अग पित जिमौ अबीह॥
चख रतैं मुख रतड़ौ, वैस जिहि कुल वग्ग।
सगतै जमदड्ढां सिरै, आफालियौ करग्ग॥[२]
धर घुसैं धन ठुप्प ठै, सोनिगरो छलकार।
सारा देस दसोंरा, प्रजा आपिआ पुकार॥
बुंब सुणैं भी आंवले, भांजण खलां भटक्क।
सत्राहतहिं साजत करै, कि लवे बेखटक्क॥[३]

५०. महाराजा जयसिंह

डॉ० टीकमसिंह तोमर की सूचना के अनुसार ये उदयपुर के महाराणा थे। इन्होंने सवत् १७३८ और सवत् १७५७ के बीच जयदेवविलास नामक ग्रंथ लिखा, जिसमे इन्होंने अपने वंशजो का वीरतापूर्ण वर्णन किया है।[४]

५१. सेनापति

ये कवित्तरत्नाकर के रचयिता प्रसिद्ध हिंदी कवि सेनापति से भिन्न व्यक्ति थे और गुरु गोविंदसिंह के आनंदपुरीय दरबार के कवि थे। इन्होंने दो ग्रंथ रचे है—१. गुरु-शोभा और २. चाणक्यनीति का भाषानुवाद। इनमे से प्रथम ग्रंथ वीरकाव्य है, जिसके

---

१. राजस्थानी मे हिंदी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज, द्वितीय भाग, स० श्री अगरचंद नाहटा, पृष्ठ १०७।
२. राजस्थानी भाषा और साहित्य, श्री मोतीलाल मेनारिया, पृष्ठ २१३।
३. राजस्थानी मे हिंदी के हस्तलिखित ग्रंथो की खोज, द्वितीय भाग, स० श्री अगरचंद नाहटा, पृष्ठ १०७।
४. हिंदी साहित्य, द्वितीय खंड, स० डॉ० धीरेंद्र वर्मा, पृष्ठ १७८।

चरितनायक सिक्खों के दसवें गुरु गोविंदसिंह जी थे। सेनापति गुरु जी के समसामयिक कवि थे अतः उन्होंने गुरुशोभा में जिन ऐतिहासिक घटनाओं और तिथियो आदि का उल्लेख किया है, वे पूर्णतः प्रामाणिक है।

अतःसाक्ष्य के आधार पर गुरुशोभा की रचना भाद्रपद शुक्ला १५, संवत् १७५८ को हुई।[१] सपूर्ण ग्रथ २० अध्यायो में विभक्त है, जिनमे से ६ अध्याय केवल युद्धवर्णन से ही भरपूर है, शेष ११ अध्यायों मे भी युद्धवर्णन मिलते है, अतः निस्संदिग्ध रूप से यह कहा जा सकता है कि गुरुशोभा मे सेनापति का मुख्य प्रयोजन गुरु गोविंदसिंह जी के युद्धों का वर्णन कर उनके वीररूप की प्रशस्ति लिखना रहा है। युद्ध गुरुशोभा का प्रधान विषय है। यद्यपि सेनापति के अधिकांश युद्धवर्णन परपरित है, फिर भी वर्षा, फाग और रास-लीला के रूपक देकर सेनापति ने जो युद्धचित्रण किए है, उनमें कवि की मौलिकता और प्रतिभा का श्रेष्ठ परिचय मिलता है। यथा--

वर्षा के रूप मे युद्ध--

बाजत सार सो सार तहाँ, चमके चिनगी सम तारन जैसी।
ऐसो बनी छवि सावन की, पटबीजनि जोति अनूप रतैसो॥
इउ उपजै झुनकार तहाँ, मनु सैल पे बाजत है चमकै सी।
मानो महाघन मै चमकै, दमकै तरवार महा बिजलै सी॥[२]

फाग के रूप मे युद्ध--

खेलत सूर महारन में, बन मै मनु स्याम जी फाग मचायो।
दौरत सूर लिए कर मैं, पिचकारन जो सु बदूक चलायौ॥
स्रोनत धारि चली तिनके तन, मानहु लाल गुलाल लगायो।
बागे बने तिनके तन लाल, मनो रगरेज रग रँग ल्यायो॥[३]

अथवा

तन भारी कर सूरमा, स्रोन रंग भर लीन।
छिरक छिरक तन रंगयो, फागन की रुत कीन॥[४]

सक्षेप मे, गुरु गोविंदसिंह की शाश्वत कीर्ति सेनापति ने पूर्ण अव्यभिचारिणी निष्ठा के साथ अंकित की है और उनके शौर्य तथा युद्धप्रसगों को बड़े सजीव ढंग से तटस्थता

---

१ गुरुशोभा, सेनापति, पृष्ठ ३।
२. वही, पृष्ठ ५२।
३. वही, पृष्ठ ५०।
४. वही, पृष्ठ ६८।

से आँका है। प्रतिभा और काव्यकला, दोनों की दृष्टि से उनका गुरुशोभा निस्संदेह एक अत्यंत सफल, प्रभविष्णु और प्रामाणिक वीररसात्मक प्रबंध है।

५२. अणीराय

अणीराय सेनापति के समकालीन और गुरु गोविंदसिंह के दरबारी कवि थे। गुरु जी ने इन्हें नग, कंचन, भूषण और हुक्मनामा देकर संमानित किया था। इसके अतिरिक्त इनके जीवन के संबंध में और कोई विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है। अणीराय ने गुरु गोविंदसिंह के शौर्यवर्णन के लिये जंगनामा लिखा है। जैसा नाम से स्पष्ट है, जंगनामा का प्रधान विषय युद्धवर्णन है। इस जंगनामे में अजीम खाँ और गुरु गोविंदसिंह का युद्ध वर्णित है। कथा का संक्षिप्त सार इस प्रकार है कि औरंगजेब की अनीति और अत्याचारपूर्ण शासनव्यवस्था के विरोध में खालसा का जन्म हुआ। अपने कुछ सरदारों के कहने में आकर औरंगजेब ने अजीम खाँ सरदार के नेतृत्व में एक बड़ी सेना भेज गुरु गोविंदसिंह पर आक्रमण किया। आनंदपुर के समीप संवत् १७५८ में सतलज नदी के टत पर गुरु गोविंदसिंह और अजीम खाँ की सेना की मुठभेड़ हुई। घमासान युद्ध हुआ और भयंकर मारकाट हुई। अंत में अजीम खाँ और गुरु गोविंदसिंह में द्वंद्व युद्ध हुआ, जिसमें अजीम खाँ गुरु गोविसिंह के हाथों मारा गया और विजय खालसा की हुई।

जगनामा उक्त युद्ध के बाद की रचना है, अत इसका रचनाकाल संवत् १७५९–६० माना जा सकता है।

जंगनामा में अणीराय ने गुरु गोविंदसिंह को युद्धवीर के रूप में चित्रित किया है, अतः उसमें युद्धों के क्रमागत वर्णन पाए जाते है। ये वर्णन सर्वांगसंपूर्ण हैं क्योंकि इनमें युद्धरत उभयपक्षों की सेनाओं की साजसज्जा, हाथियों, घोड़ों, सैनिकों की सजावट, उनकी नस्ल, नाम, प्रमुख प्रमुख योद्धाओं के व्यक्तिगत वीरत्व का बखान, उनके तीर, तलवार, भाला, बर्छी, कटार, गुर्ज आदि शस्त्रों के नाम, ध्वजा पताकाओं की शोभा आदि विधिवत् वर्णित हैं। गुरु गोविंदसिंह का युद्ध कुरुक्षेत्र के युद्ध के समान हुआ। सैनिकों की भिड़त, मार काट, भगदड़, घायल, मृत सैनिकों और युद्धभूमि का एक दृश्य देखिए—

मची मार भारी दुहूँ ओर ऐसी। भई भीर कुरखेत के खेत जैसी ॥
छुटैं तोप बंदूक, सुरनाल गोला। परे ऊख के पूख मे बज्र ओला।
चलैं तान कम्मान सों तीर तिक्खे। मनो भूमि भारत्थ पारत्थ पिक्खे ॥
किते बान कुहकत भुवकंत आवैं। उड़ै आग ज्यौं नाग ज्यौं नाग धावैं ॥
कई बीर रन माँहि कर खग्ग भारैं। कटै सीस लै ईस माला सवारैं ॥
करैं घाउ पर घाउ खपुआ कटारैं। मिले अंक जिन संक ज्यो परें प्यारैं ॥

गिरैं लुत्थ पर लुत्थ बहु जुत्थ ऐसे। परे लाल के पाल बहु मग्न जैसे ॥
किते नीर बिन मीन ज्यों तरफरावैं। किते लोह के छोह पर मोह धावैं ॥[१]

उपमा, उत्प्रेक्षा और दृष्टांत की स्वाभाविकता से अणीराय का जंगनामा बहुत सशक्त, पुष्ट रचना है। अणीराय का दृष्टिकोण गुरु जी के विपक्षियों के प्रति उतना उदार नहीं है, जितना सेनापति का रहा है, फिर भी गुरु जी के प्रति उनकी श्रद्धा भक्ति अनुपमेय है, इसमें संदेह नहीं है। अणीराय ने गुरु जी के युद्ध को धर्मानुप्राणित सिद्ध कर औरंगजेब की अनीति के विरुद्ध सिक्खों के आक्रोश को उभारा है। इस दृष्टि से भूषण और अणीराय का भावसाम्य द्रष्टव्य है।

५३. आलम

आलमकेलि के रचयिता आलम और शेख प्रेम और शृंगार के कवि थे। ये संवत् १७६० वि० के बाद गुरु गोविंदसिंह के आश्रय में रहे[२] और इन्होंने गुरु गोविंदसिंह का प्रशस्तिगान लिख उनकी दानवीरता की सराहना की है। वीरभावापन्न उनकी प्रशस्ति-रचना का एक उदाहरण देखिए—

शोभा हू के सागर, नवल नेह नागर हैं, बल भीम सम, सील कहाँ लौ बखानिए।
भूमि के विभूषन, जु दूषन के दूषन, समूह सुखहू के सुख देखे ते अघाइए ॥
हिम्मत निधान आन दान को बखाने, जाने आलम तमाम नाम आठों गुन गाइए।
प्रबल प्रतापी पातशाह गुरु गोविंद जी भोग की सी मौज तेरे रोज रोज पाइए ॥

५४ रामकवि

ये मिथिलानिवासी थे और संभवत: मिथिला के राजा राघवसिंह (राज्यकाल संवत् १७६१ से १७६७) के दरबारी कवि थे।[३] इन्होंने बेतिया के राजा दिलीपसिंह के पुत्र ध्रुवसिंह को राजा राघवसिंह से युद्ध न करने की चेतावनी दी थी और राजा राघवसिंह की वीरता का बखान इस प्रकार किया था—

न गहु खग्ग ध्रुवसिंह तोहि ऊपर यमचढ्यौ।
मिथिलापति से बैर अवसि दिन दिन तोहि बढ्यौ ॥
ते कपूत कुल बधिक ये तो राघोवर राजा।
अरि दल दलन समर्थ भीम भारत जिमि गाजा ॥[४]

---

१. प्राचीन जंगनामे, शमशेरसिंह अशोक, पृष्ठ ५८।

२. गुरु गोविंदसिंह के दरबारी हिंदी के कुछ पंजाबी कवि, डॉ० सुरेंद्र माथुर, सप्तसिंधु, अप्रैल, १९६५, पृष्ठ ४२।

३. मिथिला-तत्व-विमर्श—प० परमेश्वर झा, प्रथम संस्करण, सन् १९४९ ई०, उत्तरार्ध, पृष्ठ ३६–३७।

४. वही, पृष्ठ ३८।

कवि कहत राम रे मूढ सुनु, जेहि दल प्रचंड भैरों रहत।
ठहरे न फौज जथा रिन जव, मरदारखाँ ओ तेगा गहन ॥

इतिहास की दृष्टि से यह रचना संवत् १७६१ के बाद रची गई होगी।

५५ वृंद

वृंद कवि की प्रसिद्धि सूक्तिकार के रूप में है। इनका जन्म संवत् १७०० में और निधन संवत् १७८० में हुआ था। इन्होंने समेत-सिखर-छद, भावपंचाशिका, शृंगार-शिक्षा, पवनपच्चीसी, अन्याक्षरी या अक्षरादि दोहे, नैनपच्चीसी, हितोपदेशसधि या भाषा हितोपदेश, पुष्कराष्टक, देवीस्तुति, पतिमिलन, प्रतापविलास, वृंदसतसई, वचनिका, सत्यस्वरूप, यमक सतसई, हितोपदेशाष्टक, हुक्मनामा, भारतकथा, बारह-मासा आदि अनेक रचनाएँ लिखी।

किशनगढ़ के महाराजा मानसिंह के पिता महाराजा रूपसिंह शाहजहाँ के पुत्रों में होनेवाले उत्तराधिकार के युद्ध में दारा की ओर से औरंगजेब के विरोध मे लड़े थे। युद्ध मे अनेक सैनिकों को मार वे औरंगजेब के लिये हाथी तक पहुँचे और अपनी तलवार से उसके हौदे की रस्सियाँ काटने लगे। इस अवसर पर औरंगजेब के सैनिकों ने उन्हें चारों ओर से घेर उनके टुकड़े टुकड़े कर दिए। इस घटना का विवरण वृंद ने संवत् १७६२ में 'वचनिका' में लिखा है।

औरंगजेब की मृत्यु (संवत् १७६४ वि०) के बाद उसके पुत्रों मुअज्जम उर्फ बहादुरशाह, आजम, कामबख्श आदि मे सिंहासन के लिये जो युद्ध हुआ, उसमें किशनगढ़ के महाराजा राजसिंह बहादुरशाह की ओर से लड़े थे। उत्तराधिकार युद्ध में बहादुरशाह की विजय का अधिकांश श्रेय राजसिंह को था। उसी संदर्भ मे वृंद ने 'सत्यस्वरूप' की रचना की थी। वृंद की वीररसात्मक रचना का वीरदर्पोक्ति संबंधी एक उदाहरण देखिए—

पाऊँ जो हुकुम तो न लाऊँ बार एक पल,
जहाँ जाऊँ तहाँ तैं ले आऊं हेरि हेरि कै।
गढ़ चूरि, गिरि चूरि, सुभटन लसकर तोरि,
सीधे करि डारौं गज बाजि पेरि पेरि कै ॥
सदन तें बन माँहि, बन तं छप्पन माँहि,
छप्पन तै घेरि औ घाटिन घेरि घेरि कै।
रूप कहै खग्ग तै गुमान सौं खिसानो करि,
फिरकी फिरत ज्यों फिराऊँ फेरि फेरि कै ॥

---

१. राजरसनामृत, देवीप्रसाद मुंसिफ, पृष्ठ ५३।

५६. हरिनाथ महापात्र

ये असनी निवासी नरहरि महापात्र के पुत्र थे और संवत् १७६२ में जहाँगीर के राज्यत्वकाल में विद्यमान थे। इनका एक कवित्तसंग्रह आर्यभाषा पुस्तकालय, काशी नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी में विद्यमान है, जिसके प्रारंभ में शिववंदना की गई है और उसके उपरांत बादशाह जहाँगीर और महावत खाँ आदि का यशवर्णन किया गया है।[१] रचना सामान्य कोटि की है। एक उदाहरण पर्याप्त होगा—

मेर महब्बतिषान तेरी समसेर कियो जेर जे तो चपरि चलैया वदराह को।
तेरी तरवारि जहाँगीर साहि सिर करे निरेको उरेष्यो न देवैया दुपदाह को॥
दिल्ली के मुकाम लरि आलम तमाम सों तू जीतो इतमाम करि आलम पनाह को।
सोहे पातसाही पर साया कि औ खोदाइ को त्यो तेरे पर क्यों न सोहे साया पातिसाह को।

५७. हरिदास

ये जाति के भाट थे और जोधपुर नरेश महाराज जसवंतसिंह के पुत्र महाराज अजीतसिंह के आश्रय में रहते थे। सवत् १७६३ के लगभग इन्होंने 'अजीतसिंहचरित्र' नामक एक ग्रंथ लिखा, जिसमे महाराज जसवंतसिंह और महाराज अजीतसिंह का यशवर्णन किया गया है।

महाराज जसवंतसिंह महाराज गजसिह के पुत्र और महाराजा सूरसिंह के पौत्र थे। इनका जन्म संवत् १६८३ में हुआ और संवत् १६६२ से संवत् १७३५ तक ये सिहासनासीन रहे। बादशाह शाहजहाँ जसवंतसिह पर विशेष कृपालु थे। उनके शासनकाल मे जसवंतसिंह जी दक्षिणमालवा और गुजरात के सूबेदार रहे। संवत् १७२६ से संवत् १७३५ तक इन्होंने काबुल में रहकर पठानो का दमन किया और वही संवत् १७३५ में जमुर्रद नदी के तट पर इन्होने वीरगति पाई। जसवंतसिंह जी स्वयं सुकवि और साहित्यशास्त्र के आचार्य थे। अजीतसिंह भी अपने पिता की भाँति सुकवि थे। उनका राज्यकाल संवत् १७८१ तक रहा। इसी बीच सवत् १७६३ के लगभग हरिदास ने अजीतसिंह-चरित्र नामक ग्रंथ लिखा। इस ग्रंथ में सबसे बड़ी विशेषता यह है कि कवि ने व्यक्ति और घटनाओं के साथ साथ तिथियों का भी सही सही उल्लेख किया है। जैसे—

सोलें सै छीहोतरै, महिनै आसू माह।
टीकायत बैठो तखत, सूर तणै गज साह॥

---

१. हस्तलिखित हिंदी ग्रंथों का अठारहवाँ त्रैवार्षिक विवरण, सन् १९४१–४३, भाग २, कविसंख्या ३१६, पृष्ठ ६४६।

जहाँगीर दिल्ली हूँता, पठयो जग सिरपाव ।
नौबत घोड़ों नव सहस, रिध्रू कमध्रा राव ॥[1]

अजीतसिंहचरित्र में इतिहास और वीरभाव का सम्यक् संतुलन पाया जाता है ।

५८. उदयनाथ कवींद्र

ये कालिदास हजारा के संकलनकर्ता सुकवि कालिदास त्रिवेदी के पुत्र थे और बानपुरा दोआब के निवासी थे । अमेठी नरेश गुरुदत्तसिंह इनके आश्रयदाता थे ।

खोज में इनकी दो रचनाओं का पता चला है[2]—१. छंदपच्चीसी और २. रसचंद्रोदय। इसके अतिरिक्त इनके अनेक स्फुट छंद भी कहे जाते हैं । दिग्विजयभूषण मे इनका एक छंद दिया गया है, जिसमें अवध के प्रथम नवाब वजीर सादत खाँ बुर्हानिउलमुल्क और गुरुदत्त के बीच होनेवाले युद्ध का वर्णन किया गया है—

समर अमेठी के सरोष गुरुदत्त सिंह,
सादत की सेना समसेरनि सों भानी है ।
भनत कबिद काली हुलसी असीसन को,
सीसन को ईस की जमाति सरसानी है ॥
तहाँ एक जोगिनी सुभट खोपड़ी लै उड़ी,
सोनित पियत ताकी उपमा बखानी है ।
प्यालो लै चिनी को नीको, जोबनतरंग मानो,
रंग हेत पीवत मँजीठ मुगलानी है ॥[3]

उदयनाथ कवींद्र और उनके पुत्र दूलह दोनों संवत् १७६३-६४ में विद्यमान थे ।

५९. दूलह

ये उदयनाथ कवींद्र के पुत्र और कालिदासहजाराकार कालिदास त्रिवेदी के पौत्र थे । अमेठी, जिला सुलतानपुर के अधिपति गुरुदत्तसिंह भूपति तथा बूंदी के रावराजा बुधसिंह इनके आश्रयदाता थे ।

औरंगजेब की मृत्यु के बाद उसके पुत्रों में उत्तराधिकार के लिये जो युद्ध हुआ था उसमें बुधसिंह बहादुरशाह के पक्ष में जाजव के युद्ध में लड़े थे । इस युद्ध में बहादुरशाह की विजय हुई थी । इसी संदर्भ में दूलह ने रावराजा बुधसिंह का शौर्य बखाना है—

---

१. राजस्थान का पिंगल साहित्य, डॉ० मोतीलाल मेनारिया, पृष्ठ १६८ ।
२. हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, प्रथम भाग, काशी नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, पृष्ठ ८५ ।
३. दिग्विजयभूषण, संपादक डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह, पृष्ठ २५-२६ ।

युद्ध माहिं जाजव के बुद्ध के सक्रुद्ध युद्ध,
आजम के महाबीर काटि डारे मूजा से।
कहै कवि दूलह समुद्र बढ़े सोणित के,
जोगिनि परेत फिरैं जंबुक अजूजा से॥
एक लीन्हे सीस खाय बैस ईस एकन को,
एकन को उपमा निहारी मन ऊजा से।
अधफटे फैलि फैलि कर में बिराजैं मानो,
माथे मुगलन के तरासे तरबूजा से॥

जाजव का युद्ध संवत् १७६४ मे हुआ, अतः दूलह का छप्पय इसके बाद ही लिखा गया होगा।

अद्यावधि दूलह की दो रचनाएँ मिली है--१. कविकुलकंठाभरण और २. दूलह-विनोद। प्रथम रचना अमेठीनरेश गुरुदत्तसिंह के आश्रय में और दूसरी दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह (शासनकाल सवत् १७७६ से संवत् १८०५) के आश्रय मे लिखी गई है। दूलह सफल और प्रभविष्णु कवि थे अतः इनके संबंध मे एक लोकोक्ति चल पड़ी है—

और बराती सकल कवि, दूलह दूलहराय।

इस उक्ति से दूलह की लोकप्रियता का अनुमान लगाया जा सकता है।[1]

६०. अमृतराई

ये गुरु गोविंदसिंह के समकालीन कवि थे। इनके पिता का नाम छैलराई था और ये पहले लाहौर के निवासी थे। बाद में ये लाहौर से आनंदपुर आकर गुरु गोविंदसिंह के दरबारी कवि हो गए। गुरु जी इनकी काव्यप्रतिभा पर बहुत प्रसन्न थे, अतः उन्होने इन्हें महाभारत के सभापर्व का भाषानुवाद करने का आदेश दिया। अमृतराई ने अत्यंत सतर्कता और मनोयोग से परिश्रम कर सभापर्व का अनुवाद किया, जिससे गुरु जी ने प्रसन्न होकर इन्हें साठ हजार रुपए और सिरोपाव देकर समानित किया। कवि का कथन है—

सभा परब तातें बनवायो,
स्रवण जोग कविता मन भायो॥
साठ सहस्र रुपीया दीना,
सिरोपाव पशंबर भीना॥

---

१. दिग्विजयभूषण, संपादक डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह, पृष्ठ ४६-४७।

किंतु गुरु गोविंदसिंह की गुणग्राहकता ने इन्हें आनंदपुर आने के लिये विवश कर दिया अतः ये गुरु जी की शरण आ गए। डॉ० सुरेंद्र माथुर[1] का मत है कि इन्होंने नवरसों पर भी कोई ग्रंथ रचा था। इनका एक अन्य ग्रंथ चित्रविलास है, जिसमे लाहौर इरावती आदि की प्रशसा की गई है। चित्रविलास में गुरु गोविंदसिंह की उदारता, कीर्ति, वीरता आदि का वर्णन अनेक कवित्त, सवैयो मे किया गया है।

६१. हीर कवि

हीर कवि गुरु गोबिंदसिंह के दरबारी कवियों में अग्रगण्य थे। अद्यावधि इनकी किसी भी पूर्ण रचना का पता नही चल पाया है। फिर भी इनके जो स्फुट छंद यत्रतत्र उपलब्ध होते है, उनसे यह पता चलता है कि हीर की कविता ओज, प्रवाह और वीरभावों के समरस सामंजस्य से संपन्न थी। उत्साह इनके स्फुट छदो का मूल भाव है, जिसमें भाषा की गठन, शैली, गुण, वृत्ति, आदि के योग से अभूतपूर्व शक्तिमत्ता और विलक्षण प्रभाव पाया जाता है।

हीर कवि गुरु जी की वीरता के बड़े प्रशंसक थे। उनकी सेना का प्रस्थान, हाथियों की मार आदि के वर्णन मे कवि ने अतिरंजना का सहारा लेकर भी मूल भाव के प्रभाव की रक्षा की है, जिसके आधार पर हीर को काव्य-प्रतिभा-संपन्न सुकवि कहा जा सकता है। वीररस के परिपाक मे इनकी सफलता प्रेक्षणीय है। दो उदाहरण लीजिए—

गुरु गोविंदसिंह की सेना के प्रस्थान का प्रभाव—

भभरयो भभीषन भवन तजि भटकत,
ढहे पौर लंक की निशानन के बाजे ते।
पापर से फूटत धराधर चुचूर होत,
सिधु अकुलात राज राजन के गाजे ते॥
बरनत हीर गुरु गोविंद तिहारे त्रास,
दबत फिरत अरि कंदरान भाजे ते।
चूर होत कमठ दरारे दाघ अरकत,
फटे फन सहस प्रबल दल साजे ते॥[2]

६२. सुंदर

ये सुदरश्रृंगार, सिहासनबत्तीसी, बारहमासा आदि ग्रंथों के प्रणेता सुंदर कवि से भिन्न व्यक्ति थे। वास्तव में ये गुरु गोविंदसिंह के दरबारी कवि थे और गुरु जी के बड़े

---

१. गुरु गोविंदसिंह के दरबारी हिंदी के कुछ पंजाबी कवि, डॉ० सुरेंद्र माथुर, सप्तसिंधु, अप्रैल, १९६५, पृष्ठ ३६–३७।

२. वही, पृष्ठ ४०–४१।

भक्त थे। इनका कोई स्वतंत्र ग्रंथ नहीं मिलता पर अनेक स्फुट छंद इनके नाम पर पाए जाते है, जिनमें इन्होंने गुरु गोविंदसिंह के गुणों और शौर्य का बखान किया है। जैसे—

बेदन माँहि साम सुनो सिंधु मरजादा मेरु,
मंडल मही मैं गुरिआई गुन गाए हो।
शरम के सागर, सपूतन के सिरमौर,
सुंदर सुधारस से सुंदर गनाए हो॥
रचन में दानवानि बानी हरिचंद की सी,
बिदत बिनय बड़े बंस चलि आए हो।
तेज को तरनि, तरवार को परसराम,
गुरु माँहि ऐसे गुरु गोविंद कहाए हो॥[1]

६३. श्रीधर (मुरलीधर)

श्रीधर या मुरलीधर प्रयागनिवासी ब्राह्मण थे। जनवरी, सन् १७१३ ई० (संवत् १७७०) में फर्रुखसियर और जहाँदार शाह के बीच जो युद्ध हुआ था, उसका वर्णन श्रीधर ने अपने बृहत् काव्य जंगनामा मे विस्तारपूर्वक लिखा है। सप्रति यह ग्रथ बाबू राधाकृष्णदास द्वारा सपादित होकर काशी नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी से प्रकाशित हो चुका है। इसके अतिरिक्त श्रीधर ने कविविनोद, दूतपरीक्षा, भाषाभूषण, श्रीकृष्णचरित्र, नायक-नायिका-भेद, जैन-मुनि-वर्णन से सबधित अनेक ग्रंथ और स्फुट छंद रचे हैं।

जंगनामा श्रीधर का सुप्रसिद्ध वीरकाव्य है जिसमें वर्णनात्मकता के साथ साथ ओज पर्याप्त मात्रा में मिलता है। इस रचना मे कुल मिलाकर १६३० पक्तियाँ है, जिनमें से पाँचवी पंक्ति मे कवि ने अपना परिचय दिया है।[2] जंगनामा की भाषा ब्रज है, पर उसमें अरबी और फारसी के शब्द भी यथासमय प्रयुक्त हुए हैं। नादात्मक शब्दावली, अमीरो के नाम, घोड़ों की जातियाँ, अस्त्र शस्त्र आदि की नामावली बड़े विस्तार से दी गई है। जंगनामा में अनुप्रास की छटा और वीरो के शौर्य का वर्णन सुंदर है—

भारी पातसाह दोउ अगारे अगारी करैं,
धौंसन की दुहुँ ओर श्रीधर धुकार है।
बाजै बीर बीर गोला बान तरवारि तीर,
बाजे सार मार होत सोर मार मार है॥
शेख खैरुल्लाह अम्बेख रन कीनी कैई दिनो,
जुगनि के भूखे मसहारिन अहार है।

---

१. वही, पृष्ठ ४३।

२. श्रीधर मुरलीधर उरुफ द्विजवर बसत प्रयाग ॥—जंगनामा, पंक्ति क्रमांक ५।

घाय खाये बेसुमार पैठि दल अरि कै सु
मारते गिराए बीर बाँके बेसुमार है ॥

६४. गोरेलाल उर्फ़ लालकवि

लालकवि के पूर्वज आंध्र प्रदेश मे राजमहेंद्री जिले के नृसिंहक्षेत्र धर्मपुरी के निवासी थे। इनके पूर्वज भट्ट काशीनाथ थे, जिनकी पूर्णा नाम की कन्या महाप्रभु वल्लभाचार्य जी को ब्याही थी। काशीनाथ के छह पुत्र थे, जिन्हें दिल्ली के बादशाह बहलोल लोदी ने गिट्टा, लंबुक, ओगिया, तिघरा, गिरधन, और भरस गाँव प्रदान किए थे, अत काशीनाथ जी के पुत्र इन्ही नामों से प्रसिद्ध हुए। गिट्टा के पुत्र नागनाथ हुए। उनकी दसवी पीढ़ी में गोरेलाल उपनाम लालकवि का जन्म हुआ। लालकवि का गोत्र मुद्गल था।

बुंदेलखंड की इतिहासप्रसिद्ध वीरांगना महारानी दुर्गावती ने लालकवि के पूर्वजों को संवत् १५३५ वि० में दमोह के पास सकेलि ग्राम प्रदान किया था, जहाँ संवत् १७१५ मे लालकवि का जन्म हुआ। महाराज छत्रसाल बुंदेला लालकवि के आश्रयदाता थे। उन्होंने लालकवि को बढई, पठारा, अमानगंज, सगेरा तथा दुग्धा नाम के पाँच गाँव पुरस्कार स्वरूप दिए थे।

लालकवि की दस रचनाएँ मिलती है—१. छत्रप्रशस्ति, २. छत्रछाया, ३. छत्रकीर्ति, ४. छत्रछंद, ५. छत्रमालशतक, ६. छत्रहजारा, ७. छत्रदंड, ८. छत्रप्रकाश, ९. राजविनोद और १०. बरवै। इनके अतिरिक्त बिहारी सतसई की टीका 'लालचंद्रिका', जयद्विनोद, छत्रविलास लालकवि की अन्य रचनाएँ है।[1] इनमे छत्रप्रकाश लालकवि का कीर्तिस्तंभ है, जिसे गोरेलाल ने महाराज छत्रसाल की आज्ञा से बनाया था। इस रचना में महाराज छत्रसाल द्वारा १६ दिसंबर, सन् १७१० ईस्वी को लोहागढ़ फतह करने की घटना वर्णित है। छत्रप्रकाश का रचनाकाल संवत् १७७२ है। इसमें बुंदेल वंश की उत्पत्ति, चंपतिराय के विजयवर्णन, उनके प्रयत्न और पराक्रम की गाथा भी सन्निहित है। चंपतिराय के अंतिम दिनों में उनके राज्य का मुगल राज्य मे विलीनीकरण, छत्रसाल का अपूर्व शौर्य और अपने भुजबल से अपने पिता के राज्य की पुन प्राप्ति, राज्य का विस्तार, और मुगलो के नाकों दम करने की कथा छत्रप्रकाश मे बड़ी ओजपूर्ण भाषा में लिखी गई है। इस तरह से इतिहास और वीरकाव्य—दोनो की दृष्टि से छत्रप्रकाश महत्वपूर्ण कृति है। इसमें ब्रज, अवधी, बुंदेली भाषाओं के शब्द मिलते है और विशुद्ध काव्यकला और कल्पना की अपेक्षा इतिवृत्तात्मकता अधिक पाई जाती है। कथा का निर्वाह साधारणत: अच्छा हुआ है। यथा—

दारा अरु औरंग उमडे। मनौ प्रलै घन घोर घमंडे ॥
बजे जुद्ध के निबिड़ नगारे। दुहु दिस बजै अराबे भारे ॥

---

१. महाकवि श्री गोरेलाल जी, श्री उत्तमलाल गोस्वामी, खंड १, पृष्ठ २०।

गुरु गंभीर घोर धुनि छाई। फटि ब्रह्मांड परै जनि भाई ॥
त्यौं बोले उमराबनि हल्ला। जम के भए कटीले कल्ला ॥
हय गय रथ पैदल रन जूटे। छाइन सहित कवच घर फूटे ॥

... ...

सूरन को सुरपुर मिल्यौ, चंद्रचूड़ कौ हारु।
तखत मिल्यौ औरंग को, चंपति को जस चारु ॥

गोरेलाल के शब्दों में महाराजा छत्रसाल के दान, दया, और युद्धवीरत्व का वर्णन लीजिए--

दान, दया, घमसान में, जाके हिये उछाह।
सोई वीर बखानिए, ज्यों छत्ता छितिनाह[1] ॥

यहाँ इस बात का उल्लेख कर देना अत्यंत आवश्यक है कि कोटा बूँदीवाले छत्रसाल हाडा के दरबार में भी लालकवि नाम के एक कवि हुए हैं। इन्होंने विष्णुविलास नामक नायिकाभेद का एक ग्रंथ लिखा था। सर जार्ज ग्रियर्सन[2], शिवसिंह ठाकुर[3], डॉ० श्यामसुंदरदास[4] और मिश्रबंधुओं[5] ने छत्रसाल हाड़ा के आश्रित लालकवि और छत्रसाल बुंदेला के आश्रित लालकवि का भेद न आँकते हुए छत्रसाल हाड़ा के दरबारी लालकवि के विष्णुविलास को गोरेलाल की रचना माना है, जो अशुद्ध है। छत्रसाल हाड़ा सन् १६५८ ई० (संवत् १७१५) में दारा और औरंगजेब के बीच में होनेवाले धौलपुर के युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुए थे। और लगभग उसी समय छत्रप्रकाशकार गोरेलाल उर्फ लालकवि पैदा हुए थे, अतः गोरेलाल याने लालकवि का छत्रसाल हाड़ा और विष्णु-विलास से कोई सबंध नही है।

६५ मूकजी बंदीजन

डॉ० टीकमसिंह तोमर की सूचना के अनुसार मूकजी बंदीजन ने संवत् १७७५ में 'खीचीवंशावली' लिखी, जिसमें खीची राजाओं की वंशपरंपरा शौर्य, दान, युद्ध आदि के वर्णन मिलते है। कहा जाता है, इन्होंने उक्त वंशावली के अतिरिक्त कुछ स्फुट छंद भी रचे थे।[6]

---

१. हिंदी भाषा और साहित्य का विकास, पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय, पृष्ठ ३८१।
२. माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ हिंदुस्तान, सर जॉर्ज ग्रियर्सन, कविसंख्या १९७, पृष्ठ ७६।
३. शिवसिंह सरोज, कवियों का जीवनचरित्र, पृष्ठ ११४।
४. छत्रप्रकाश, संपादक डॉ० श्यामसुंदरदास, भूमिका पृष्ठ १०।
५. मिश्रबंधु विनोद, द्वितीय भाग, पृष्ठ ५४३।
६. हिंदी साहित्य, द्वितीय खंड, संपादक डॉ० धीरेंद्र वर्मा, पृष्ठ १७८।

६६. जगन्नाथ

इनका विशेष विवरण उपलब्ध नहीं है। हिंदी वीरकाव्य की भूमिका में केवल इनके बारे में यह संकेत मिलता है कि इन्होंने सवत् १७७६ मे 'मोहमदराज की कथा' लिखी।[१]

६७. गोविंद कवि

इन्होंने कायम खाँ का यशवर्णन स्फुट कवित्तों मे लिखा है। कायम खाँ संभवत: मालवा के सूबेदार बगस (सवत् १७८०) के पुत्र थे, अत. गोविंद कवि का रचनाकाल संवत् १७८० के आसपास आँका जा सकता है।[२]

६८. हरिकेश द्विज

ये बुंदेलखंड राज्य के दतिया जिले मे जहाँगीराबाद परगना के अतर्गत मेहुँडा ग्राम के निवासी थे। इन्होंने संवत् १७८२ मे 'जगतदिग्विजय' नामक एक वीरकाव्य लिखा, जिसमें जयतपुर के राजा जगतराज की जीवनी और चंदेल आदि राजवशों का इतिवृत्त दिया गया है।

संवत् १७८८ में इन्होंने कृष्ण-राधा-मिलन के कथानक को लेकर ब्रजलीला रची। इस रचना में भी इन्होंने महाराज छत्रसाल की प्रशस्ति लिखी है। महाराज छत्रसाल बुंदेला इनके आश्रयदाता थे, अत. अनेक स्फुट छदो में इन्होंने उनकी वीरता, गुणग्राहकता, दानवीरता आदि का बखान किया है। नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी में एक स्फुट छदसग्रह में हरिकेश जी द्विज के कुछ छद दिए गए है जिनमे छत्रसाल की प्रशसा की गई है। कवि छत्रसाल के गजदान का वर्णन करते हुए कहता है—

> उमड़त ऐड़त अड़त उमडत फिरै,
> पाँव भार विहँसि पहारन मलत है।
> हरिकेस जिनके सहज फूफकार
> गजबन पुरहूतहू के महल हलत हैं॥
> ऐसे गज देत छत्रसाल छितिपाल,
> मेघमालन की छवि जे छिनौछिन छलत है।
> मुष चुगलन के अदेषन की आषि,
> सूम स्यारन की छटी छार डारन चलत है॥[३]

---

१. हिंदी वीरकाव्य, डॉ० टीकमसिह तोमर, पृष्ठ १६।

२. हस्तलिखित हिंदी ग्रंथो का विवरण, सवत् १९०४, कविसंख्या ८०।

३. नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, हस्तलिखित प्रतिसंख्या ८०६।४१, पत्र ३६, छदसख्या—५८।

हरिकेश के काव्य में भूषण के समान ओज, प्रवाह और स्वाभाविकता है। विशेषकर प्रभविष्णुता की दृष्टि से हरिकेश[1] निस्संदेह बहुत उच्च कोटि के कवि माने जा सकते हैं। उनकी रचनाओं में उत्साह, शौर्य और गतिशीलता के अच्छे चित्र मिलते हैं, अतः वीरकाव्य के श्रेष्ठ प्रणेताओं में हरिकेश की गणना सरलता से की जा सकती है।

६६. केवलराम

केवल गुजरात प्रदेश के विसनगरा नागर थे। इनके पिता का नाम केशवराम और जन्मसंवत् १७५६ था। संवत् १७८३ में इन्होंने जूनागढ के बाबी वंश के नवाब मोमिन खान की प्रशंसा में 'बाबीविलास' नामक काव्य रचा, जिसमे बाबी वश के नवाबों की वंशावली, वीरता, कीर्ति और वैभव का वर्णन किया गया है। यथा—

गाजवी गरूर गाज, दिल्ही तें दलन साज,
लूटवे के काज पंथ गुज्जर को लीनो है।
बूंदी को बिडारी मारी, हाड़ा गाढ़ा जोरन के,
औरे राव राना ताके बाँहबल छीनो है ॥

---

१. श्री हिंदी साहित्य समिति, भरतपुर के स्वर्णजयंती ग्रंथ में भरतपुर-कवि-कुसुमांजलि के अंतर्गत पृष्ठ ३० पर डॉ० कुंजबिहारीलाल गुप्त ने हरिकेस के छंद को भरतपुर के हरिवंश कवि के नाम पर प्रकाशित करवाया है। डॉ० गुप्त के मतानुसार हरिवंश ने भरतपुर के महाराजा सूरजमल व महारानी किशोरी की प्रशंसा में फुटकर छद लिखे तथा 'बरसाने की लीला' नामक पुस्तक लिखी है। भरतपुर-कवि-कुसुमांजलि में हरिवंश के नाम पर दिया गया छंद इस प्रकार है—

दौरे काल किंकर कराल करतारी देत,
दौरी काली किलकत छुधा की तरंग ते।
कहै 'हरिवंश' दाँत पीस लख ईस दौरे,
दौरे अवनीस गीध गीदर उमंग ते ॥
सिंह श्री सुजान जंग जालिम सु कौन पर,
फरकाई भुजा औ चढ़ाई भौंह भंग ते।
भंग डार मुख ते औ भुजंग डार कंठ ते,
हरष हर दौरे गौरी डार अरधंग ते ॥

डॉ० गुप्त ने उक्त उद्धरण का आधार नहीं दिया है, अत. यह कहना कठिन है कि हरिकेश और हरिवंश एक ही व्यक्ति थे अथवा किसी अन्य हरिवंश ने हरिकेश के छंद को अपने नाम से प्रचारित कर दिया है।

प्रबल पठान सों भिर्यो जंग जीतिबे को,
भारत सो कीनो जुद्ध वीर रस भीनो है।
नवल नवाब जवाँमर्द खाँ बहादुर ने,
फकरू नबाब को फकीर कर दीनो है ॥[1]

केवलराम जी के पुत्र आदितराम जी और शोभाराम जी हुए। शोभाराम जी के पुत्र नरोत्तमराम जी हुए। नरोत्तमराम जी के पुत्र उत्तमराम जी हुए। उत्तमराम जी ने केवलराम द्वारा लिखित बाबीविलास में केवलराम जी के उपरांत होनेवाले बाबी वंश के नवाबों का वर्णन और जोड़ दिया। इस तरह से बाबीविलास आश्रयदाताओं की वंश-परंपरा और कवि की वंशपरंपरा से पूरा किया गया ग्रंथ है।

७०. गंजन

ये काशीनिवासी गुर्जर गौड़ ब्राह्मण थे। इनके एक पूर्वज रायमुकुट थे, जिनके सिर पर शहंशाह अकबर ने कविराय का मुकुट बाँधा था। इन्हीं रायमुकुट के वंश में मानसिंह नामक एक प्रसिद्ध व्यक्ति हुए, जिनके पुत्र का नाम गिरिधर, पौत्र का नाम मुरलीधर और प्रपौत्र का नाम गंजन था।

दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह के मंत्री कमरुद्दीन खाँ (अन्य नाम मीर मुहम्मद फाजिल) गंजन के आश्रयदाता थे। इन्हीं कमरुद्दीन खाँ की आज्ञा से संवत् १७८५ में गंजन ने ३२७ छंदों का 'कमरुद्दीन खाँ हुलास' नामक ग्रंथ लिखा। इस ग्रंथ के एक चौथाई अंश में कविपरिचय और कमरुद्दीन खाँ का यश आदि वर्णित किया गया है। शेष तीन चतुर्थांश ग्रंथ भावभेद, रसभेद, षड्ऋतुवर्णन से परिपूर्ण है। काव्य की सरसता और भाषागत मधुरिमा की दृष्टि से कमरुद्दीन खाँ हुलास सफल कृति है।[2]

७१. हमीरदान रतनू

ये रतनू शाखा के चारण थे और जोधपुर राज्य के अंतर्गत घड़ोई ग्राम के निवासी थे। इनके लिखे हुए ग्रंथों की संख्या १७५ बताई जाती है, जिनमें से कुछ मुख्य मुख्य ग्रंथों के नाम इस प्रकार हैं—१ हमीर नाममाला : डिंगलकोश, २. लखपतपिंगल, ३. पिंगलप्रकास, ४. जदवंस वंसावलि, ५. देसल जी री वचनिका, ६. जोतिसजड़ाव, ७. ब्रह्मांडपुराण, ८. भागवतदर्पण, ९. चाणक्यनीति, १०. भरतरीसतक, ११. महाभारत रौ अनुवाद छोटो व बड़ो इत्यादि।

---

१. गुजरातीओ ए हिंदी साहित्यमाँ आपेलो फालो, श्री डाह्याभाई पीतांबरदास देरासरी, पृष्ठ १९–२०।

२. हिंदी साहित्य, द्वितीय खंड, संपादक डॉ० धीरेंद्र वर्मा, पृष्ठ १७१।

इनकी देसल जी री वचनिका केवल पद्य में ही है, उसमें अन्य वचनिकाओं की तरह गद्य पद्य का मिश्रण नहीं है। संवत् १७८५ मे होलिका के समय सरबुलद व कच्छ के महा- राव देसल के बीच जो महायुद्ध हुआ था, वही इस वचनिका का वर्ण्य विषय है। इस युद्ध मे देसल जी विजयी हुए थे।

हमीरदास की रचना का उदाहरण लीजिए--

भलाभल कूँत खिवे अदभूत, धौलै दिन वेढ करै अविधूत।
हुए असुरांण धणा खल हांण, सॉमी दसनाँम रचै घमसांण ॥
लथोबथ लोह झपेट लपेट, खसै दल मुँगल आखल खेट।
नागा करिवा वर खाग निनाग, कटै धड़ बेहड़ पग्ग करग्ग ॥
कड़ाकड़ जूट विछूट कटक्क, तड़ातड़ि तूट मियाँ मसतक्क।
धमंचक चोट अणी पड़ि भार, तडप्फड़ मीर फड़फ्फड़ तार ॥[1]

७२. भावसिंह

ये देवास संस्थान के भाट घराने के मूल पुरुष पाला जी के पुत्र ठाकुरसी के पुत्र थे। इनका असली नाम भगवान जी था, पर कवि के रूप में ये भावसिह के नाम से प्रसिद्ध थे। ये शिवाजी महाराज के पुत्र छत्रपति साहू महाराज के दरबारी कवि थे। इनका कविताकाल संवत् १७८७ से १७६७ तक माना जाता है। साहूजी की सेना का वर्णन करते हुए भावसिह कहते है कि---

पीलूजी जाधवराव, ऐसे सेनापती।
ओड दल उमराव, फौज साहूराज की ॥
साहू राजा छत्रपति, चकवे सतारापति।
कहे कवि भावसिग अचल रहो छत्रपाट ॥[2]

भावसिह की भाषाशक्ति और कवित्वशक्ति दोनो ही सामान्य स्तर की है फिर भी साहू महाराज के दरबार में उनकी रचनाओं का आदर होना तद्युगीन महाराष्ट्र में हिंदी के समादर का बड़ा भारी प्रमाण है।

७३. करणीदान—

डिंगल के उच्च श्रेणी के कवियों में करणीदान जी का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। ये कविया शाखा के चारण थे और मेवाड़ राज्य के शूलवाड़ा ग्राम में रहते थे। संवत् १७८७ में इन्होंने ७, ५०० छंदों का एक बृहत् डिंगलकाव्य 'सूरजप्रकाश' लिखा। वर्ण्य विषय की दृष्टि से करणीदान के सूरजप्रकाश और वीरभाण कृत राजरूपक में पर्याप्त साम्य है, किंतु भाषा और विषयविस्तार की दृष्टि से सूरजप्रकाश निस्संदेह श्रेष्ठतर है।

---

१. राजस्थानी सबद कोस, सीताराम लालस, प्रथम खंड, पृष्ठ १५७–१५८।
२. विश्वासराऊ प्रशस्ति, संपादक कृ० गं० कवचाले, पृष्ठ ४६।

जोधपुरनरेश अभयसिंह करणीदान जी के आश्रयदाता थे। सूरजप्रकाश की रचना से प्रसन्न हो उन्होंने कवि को लाख पसाव दिया और स्वयं घोडे पर बैठ कवि को हाथी पर बैठाकर उनको अपने घर तक पहुँचाया। एक कवि के राजसमान का यह ज्वलंत उदाहरण है। इससे राजस्थान मे कवियो की राजकीय स्थिति और सामाजिक प्रतिष्ठा का अनुमान लगाया जा सकता है। उक्त घटना के संबंध मे यह दोहा मिलता है——

अस चढियो राजा अभै, कवि चाढै गजराज।
पोहर एक जलेब मे, मोहर चलै महराज।।

सूरजप्रकाश चारण-काव्य-परपरा का प्रतिनिधित्व करनेवाला डिगल भाषा का अत्यंत उत्तम ग्रथ है। इसके विशाल आकार का सक्षिप्त रूप देने के लिये करणीदान जी ने पुनः इसका सारांश १२६ पद्धरी छद मे लिखा और उसे महाराजा अभयसिंह जी को सुनाया। यह सारग्रंथ भी रोचक बन पड़ा है। एक उदाहरण लीजिए——

पखरैज भिडज जरदैत पूर। सघार हुबै अगापार सूर।।
छुटै अम्होसम्ह कुहुक वाण। पमगां गज सुभडांउड़ै प्राण।।
पग हाथ उडै धड़ सीस पार। आहुड़ै क्रोध पौरिस उपाट।।
हाकलै भड़ा जैचद अथाह। सुरताण सात पर तेज साह।।
तन फूटि पड़त तड़फड़त ताय। लख हेक जागि लोटण लुटाय।।
पाड़ि सोक भयकर उडि पंखाल। कालि में जाणि घण प्रलय काल।।[1]

सूरजप्रकाश के सारग्रथ का नाम विरदसिणगार है। इसके अतिरिक्त जती-रासा और अभयभूषण इनके दो अन्य ग्रंथ है। अभयभूषण में महाराणा अभयसिंह की सवारी का वर्णन देखिए——

ऐ न घटा तन बॉन सजे भट, ऐ न छटा चमके छहरारी।
गाज न बाजत दुदुभि ऐ, बक पत नही गज दंत निहारी।।
ऐ न मयूर जू बोलत है, बिरदावत मंगन के गन भारी।
ऐ नहिं पावस काल अली, अभमाल सजावत की असवारी।।[2]

७४. वीरभाण

ये जोधपुर राज्यांतर्गत घड़ोई ग्राम के निवासी रतनू शाखा के चारण थे। इनका जन्मसंवत् १७४५ और मृत्युसवत् १७९२ है।

संवत् १७८७ मे जोधपुरनरेश महाराजा अभयसिह और गुजरात के सूबेदार शेर बिलंद खाँ के बीच अहमदाबाद का युद्ध हुआ, जिसमे वीरभाण जी महाराणा अभयसिंह

---

१. राजस्थानी भाषा और साहित्य, डॉ० मोतीलाल मेनारिया, पृष्ठ २३८–२३६।
२. राजस्थानी सबद कोस, सीताराम लालस, प्रथम खड, पृष्ठ १५६–१८०।

जी के साथ युद्ध में गए थे। युद्ध में विजय अभयसिंह जी के हाथों रही, अतः वीरभाण जी ने उक्त युद्ध का ऐतिहासिक और प्रामाणिक वर्णन राजरूपक में किया है। राजरूपक ४६ प्रकाशों (अध्यायो) का विशाल ग्रंथ है, और काशी नागरीप्रचारिणी सभा से प्रकाशित हो चुका है। इस ग्रंथ में दिए गए सरदारों, सामतों के नाम, घटना और तिथियाँ बिल्कुल प्रामाणिक हैं, अतः इतिहास और साहित्य की दृष्टि से राजरूपक अत्यंत महत्व-पूर्ण ग्रंथ है।[१]

७५. दलपतिविजय

इन्होने संवत् १७९० के लगभग 'खुम्माणरासो' नामक एक ग्रंथ रचा। मूलत: खुमाण का समय विक्रम सवत् ८७०–८९० है, किंतु दलपतविजय के खुम्माणरासो में राणा सग्रामसिंह द्वितीय (सवत् १७६७–१७९० तक) के राणाओं के उल्लेख मिलते हैं अत. दलपतिविजय का खुम्माणरासो संवत् १७९० के लगभग या उसके बाद लिखा गया होगा।[२] खुम्माणरासो मे केवल खुम्माण वंश का परिचय मिलता है, अत. यह वंशानुक्रमागत ऐतिहासिक इतिवृत्तद्योतक ग्रंथ है––

कवि दोजै कमला कला, जोडण कवित जुगत्ति।
सूरिजवंस तणौ सुजस, वरणन करूँ विगत्ति।।[३]

७६ रसपुंज

इनका पूरा नाम रसपुंजदास था और ये जोधपुर के महाराजा अभयसिंह जी के आश्रय मे रहते थे। इनके चार ग्रंथ खोज मे मिले हैं—१. प्रस्तारप्रभाकर, २. वृत्तविनोद, ३. चमत्कारचंद्रोदय और ४ कवित्त श्री माता जी रा।[४] इनमें से अंतिम रचना कवित्त श्री माता जी रा भक्तियुक्त वीररसात्मक काव्य है, जिसकी रचना संवत् १७९० में हुई थी।

कवित्त श्री माता जी रा में दुर्गा देवी द्वारा अनेकानेक राक्षसों से युद्ध और उनके हनन की कथाएँ पद्यबद्ध रूप में मिलती है, अतः वीरभाव के साथ इस रचना मे भक्ति का स्वर भी मिला है।

---

१ राजस्थानी भाषा और साहित्य, डॉ० मोतीलाल मेनारिया, पृष्ठ २३७–२३८।

२. रासो-साहित्य-विमर्श, डॉ० माताप्रसाद गुप्त, १७।
खुमाणरासो, श्री मोतीलाल जो मेनारिया, नागरीप्रचारिणी पत्रिका, सवत् २००९, पृष्ठ ३५४।

३. राजस्थानी मे हिंदी के हस्तलिखित हिंदी ग्रंथों की खोज, तृतीय भाग, संपादक उदयसिंह भटनागर, पृष्ठ ८२।

४. राजस्थानी भाषा और साहित्य, श्री मोतीलाल जी मेनारिया, पृष्ठ २८१।

५. राजस्थान का पिंगल साहित्य, श्री मोतीलाल मेनारिया, पृष्ठ १७१।

७७. सुजानसिंह

ये करौली के राजघराने के व्यक्ति थे और राजघराने से इनका संबंध था। इन्होंने संवत् १७९० में 'सुजानविलास' नामक एक वीरकाव्य लिखा, जिसमें करौली के राजघराने की प्रशस्ति लिखी है।[1]

७८. नंदराम

ये मेवाड़ के महाराणा जगतसिंह (द्वितीय) के आश्रित ब्राह्मण जाति के कवि थे। इन्होंने संवत् १७९० में ९८ छंदों का 'शिकारभाव' नामक एक ग्रंथ लिखा, जिसमें महाराणा जगतसिंह द्वितीय (शासनकाल स० १७९१–१८०८) के आखेट का वर्णन किया गया है।

संवत् १८०२ में इन्होंने जगतविलास लिखा, जिसमें ४०८ छंद है। यह काव्य चरित्रकाव्य के अंतर्गत आता है क्योंकि इसमें नंदराम ने जगतसिंह द्वितीय की दिनचर्या, उनका राज्यवैभव, शासनप्रबंध आदि का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है।

नंदराम के दोनों ग्रंथ इतिहास और काव्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। दोनों ग्रंथों की भाषा ब्रजभाषा है।[2]

७९. देवर्षि श्रीकृष्ण भट्ट 'कवि कलानिधि'

ये तैलंग ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम लक्ष्मण भट्ट और जन्मसंवत् १७२५ था। पहले ये बूँदी के रावराजा बुधसिंह (संवत् १७५२–१७९६) के आश्रित थे किंतु बाद मे जयपुर के महाराजा सवाई जयसिंह (संवत् १७५६–१८००) इन्हें अपने साथ आमेर ले गए। महाराजा ने इन्हे कवि कलानिधि की उपाधि और एक गाँव प्रदान किया।

भट्ट जी संस्कृत और ब्रजभाषा काव्य के मर्मज्ञ थे और स्वयं एक सुकवि थे। डॉ० मोतीलाल जी मेनारिया ने इनके ब्रजभाषा में रचित १३ ग्रंथों के नाम इस प्रकार गिनाए हैं—१ अलंकारकलानिधि, २. सांभरयुद्ध, ३. जाजवयुद्ध, ४. बहादुरविजय, ५. वृन्दचंद्रिका, ६ शृंगाररसमंजरी (माधुरी), ७ विदग्धरसमाधुरी, ८ जयसिंहगुणसरिता, ९. रामचंद्रोदय, १०. रामरासा, ११. दुर्गाभक्तितरंगिनी, १२. नखशिख, १३. तैत्तिरीय उपनिषद।[3]

---

१. वही, पृष्ठ १७१।

२. राजस्थान में हिंदी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज, भाग १, स० श्री मोतीलाल मेनारिया, पृष्ठ १७०।

३. राजस्थान का पिंगल साहित्य, श्री मोतीलाल मेनारिया, पृष्ठ १२६।

आधुनिक खोज में इनकी चार और रचनाएँ मिली हैं—१. नवसई, २. वाल्मीकि रामायण, ३. रामायणसूचनिका और ४. समस्यापूर्ति।[१]

हिंदी साहित्य के बृहत् इतिहास भाग ६ में इनका उल्लेख कृष्ण भट्ट देवऋषि के नाम से किया गया है।[२]

कलानिधि का साँभरयुद्ध वीरकाव्य है, जिसकी रचना संवत् १७६१ में हुई थी। इसमें जयपुर के महाराजा सवाई जयसिंह और दिल्ली के सेनापति सैयद हुसैन और सैयद अब्दुल्ला के बीच होनेवाले युद्ध का वर्णन किया गया है।[३] इतिहास और वीरकाव्य की दृष्टि से यह उपादेय कृति है।

डॉ० कुंजबिहारीलाल गुप्त के मतानुसार उपनिषद्सार इनकी स्वांतःसुखाय रचना है। दुर्गामाहात्म्य (दुर्गाभक्तितरंगिनी) भरतपुरांतर्गत वैर के राजा प्रतापसिंह के लिये संवत् १७६० में लिखी गई और रामायण बालकांड, युद्धकांड और उत्तर कांड भी उक्त प्रतापसिंह जी के ही लिये लिखे गए। प्रतापसिंह की प्रशंसा के संबंध मे कवि कलानिधि का एक छंद इस प्रकार है—

धनद प्रसाद में प्रताप में हुलास धर्म, मन में, भुजा में, बुद्धि बल को प्रसार है।
वाक में सरस्वती बदन में सुधाकर है, बल में पवन काम रूप में उदार है॥
सुरगुर बुद्धि मे दिनेस तन तेज माँहि, कोप माँझ काल कर गहें करवार है।
ब्रज-भुव-इंद तेज कुँवर प्रतापसिंह, विस्व रूप धारी सब देवन अधार है॥[४]

८०. महाराणा राजसिंह

ये किशनगढ़ के राजा थे। भक्तप्रवर नागरीदास (मूलनाम महाराज सावतसिंह) इनके पुत्र थे। महाकवि वृंद इनके आश्रित थे, जिनसे इन्होंने काव्य की शिक्षा ली थी। संवत् १७६३ से १८०५ तक इन्होंने राज्य किया और इसी बीच दो ग्रंथ रचे—१. बाहुविलास और २. रसपायनायक।

बाहुविलास इनका वीरकाव्य है, जिसका रचनाकाल संवत् १७९२ है और वर्ण्य विषय है श्रीकृष्ण और जरासंध का युद्ध। इस दृष्टि से यह धार्मिक वीरकाव्य के

---

१ हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, का० ना० प्र० सभा, प्रथम खंड, पृष्ठ १२२।

२. हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास, षष्ठ भाग, सं० डॉ० नगेंद्र, पृष्ठ ३६३।

३. हिंदी वीरकाव्य, डॉ० टीकमसिंह तोमर, पृष्ठ १९।

४. भरतपुर-कवि-कुसुमांजलि, डॉ० कुंजबिहारीलाल गुप्त, पृष्ठ १७–१८।

अंतर्गत परिगणित की जानेवाली रचना है। जोधपुर और कांकरौली में इस ग्रंथ की दो हस्तलिखित प्रतियाँ मिलती हैं।[1]

८१. नाथकवि

नाथकवि असोथर, जिला फतेहपुर के शासक महाराज भगवंतराय खीची के आश्रय में रहते थे। संवत् १७९३ में अवध के प्रथम नवाब वजीर सआदत खाँ बुर्हान-उलमुल्क और भगवंतराय खीची में जो युद्ध हुआ था, उसमें भगवंतराय ने बड़ी वीरता से शत्रु का सामना करते करते वीरगति पाई थी। नाथकवि ने अपने इस आश्रयदाता की प्रशस्ति में अनेक छंद रचे और उसके शौर्य, औदार्य तथा प्रभाव का गुणगान किया है। एक उदाहरण लीजिए—

दिल्ली के अमीर दिल्लीपति सों कहत बीर,
दक्खिन सो दंड लैं कै सिंहल दबाइ हैं।
जगती जलेसर की जोर ले सुमेरहू लौं,
संपति कुबेर के घराने की कढ़ाइ हैं॥
कहैं कवि नाथ लंकापति हू के भौन जाइ,
जमहू सों जंग जूरैं जौह को चबाइ हैं।
आगि में जरैंगे कूदि कूप में परैंगे,
एक भूप भगवंत की मुहीम को ना जाइ हैं॥[2]

८२. शाहजू पंडित

डॉ० टीकमसिंह जी तोमर ने अपने शोधप्रबंध में लिखा है कि शाहजू पंडित ओड़छा निवासी थे और टहरौली के जागीरदार लक्ष्मणसिंह के आश्रय में रहते थे। इन्होंने दो वीरकाव्य रचे—१. बुंदेलवंशावली और २. लक्ष्मणसिंहप्रकाश।[3] बुंदेलवंशावली में बुंदेलखंड के राजाओं की वंशावली दी गई है और उनके वीरतापूर्ण कार्यों का पद्यबद्ध परिचय दिया गया है किंतु खोज रिपोर्ट की नवीनतम सूचना के अनुसार लक्ष्मणसिंह-प्रकाश ज्योतिष का ग्रंथ है। इसके प्रारंभ में कवि ने अपने आश्रयदाता के शौर्य और दान आदि का बखान किया है अतएव लक्ष्मणसिंहप्रकाश का प्रारंभिक अंश ही वीरभाव का द्योतक है, और समस्त ग्रंथ ज्योतिष शास्त्र का है। खोज रिपोर्ट के अनुसार इसका रचनाकाल संवत् १७९४ है।[4]

---

१. हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, भाग २, का० ना० प्र० सभा, पृष्ठ २३।

२. दिग्विजय भूषण, सं० डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह, पृष्ठ ६९।

३. हिंदी वीरकाव्य, डॉ० टीकमसिंह तोमर, पृष्ठ १९।

४. हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, भाग २, पृष्ठ ३३६।

८३. कुँवरकुशल

कुँवरकुशल जोधपुर के रहनेवाले थे। संवत् १७६६ में जब कच्छ के राजा महाराव लखपतसिंह सिंहासनासीन हुए तब उन्होंने कुँवरकुशल को अपने दरबार में बुला लिया और राज्याश्रय प्रदान कर इन्हें अपना दरबारी कवि बना लिया। कुँवरकुशल ने अपनी राजभक्ति को प्रदर्शित करने के लिये 'लखपतजसंसिधु' नामक एक बृहत् ग्रंथ बनाया और उसमें महाराव लखपतसिंह जी की वीरता, उदारता और संपन्नता का बखान किया।

डॉ० टीकमसिंह जी तोमर ने लिखा है कि कुँवरकुशल और कनककुशल दो भाई थे,[१] पर आधुनिक खोज के अनुसार कुँवरकुशल कनककुशल के शिष्य थे। पारसतिनाममाला, लखपतपिंगल, गोहड़पिंगल, माता नो छंद, महारावल लखपत दुवानैत, लखपतजससिंधु, तथा लखपत-स्वर्गप्राप्ति-समय कुँवरकुशल की रचनाएँ हैं जिनसे कवि की दीर्घकालीन काव्य-साधना का पता चलता है।[२]

८४. सदानंद

काशी नागरीप्रचारिणी सभा के हस्तलिखित-ग्रंथ-संग्रहालय में सदानंदकृत भगवंतराय रासा की एक प्रति विद्यमान है[३] जिसमें मंगलवार, दिनांक २० अक्टूबर सन् १७३९ को असोथर के शासक भगवंतराय खीची और अवध के सूबेदार सआदत खाँ के युद्ध का वर्णन किया गया है।[४] इससे यह पता चलता है कि सदानंद भगवंतराय खीची के आश्रित थे और संवत् १७९६–९७ के लगभग उन्होंने उक्त रासा की रचना की थी।

रासा का कथानक इस प्रकार है—अवध के नवाब सआदत खाँ से इजारा वसूल कर जानेवाले मुहम्मदशाह के प्रतिनिधि नूर मुहम्मद को भगवंतराय ने रास्ते में लूट लिया। नूरमुहम्मद ने इस घटना की सूचना सआदत खाँ को दी। इस अपमान से सआदत खाँ आग बबूला हो गया और उसने भगवंतराय के पास दूत भेजा। भगवंतराय ने कहा—

तुरुकहीन अवनी करौं, कहो सआदतखान।

दूत से भगवंतराय का यह उत्तर सुनकर सआदत खाँ ने उसपर चढ़ाई कर दी। दोनों ओर से जमकर युद्ध हुआ और भयंकर मार काट हुई। अंत में भगवंतराय सआदत खाँ से लड़ते लड़ते बड़ी वीरता से युद्धभूमि में काम आए।

---

१. हिंदी साहित्य, द्वितीय खंड सं० डॉ० धीरेंद्र वर्मा, पृष्ठ १७१–१७२।

२. गुजरात की हिंदीकाव्य परंपरा और आचार्य कवि गोविंद गिल्लाभाई, बड़ौदा विश्वविद्यालय का अप्रकाशित प्रबंध, डॉ० मा० गो० चतुर्वेदी, पृष्ठ ७०।

३. नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, हस्तलिखित प्रति क्रमांक ३२६।२२९।

४. खोज विवरण, काशी नागरीप्रचारिणी सभा, सन् १९२३–२५, प्रथम परिशिष्ट संख्या ३६४।

भगवंतराय रासा १०४ छंदों की ऐतिहासिक कृति है। साहित्यिक दृष्टि से इसे घटनापरक खडकाव्य कहा जा सकता है। भाव, भाषा और प्रवाह की दृष्टि से यह रचना सुंदर है--

चमकै छटा सी ज्यौ घटा मो दल फारि देत,
केतिक कटाकै भट जुत्थन मुभाइ कै।
भूप भगवंत की कृपाण ज्यो करत खेंदु,
खडे खल सीम भुज समर बनाइ कै॥
जीति सी जगी है, अनुराग सों रँगी है,
बज्र ज्वाल सो पगी है, गति अद्भुत पाइ कै।
आल कौ छाड़ते बिचारि तन मानी मूढ,
भोगल सँघारत तुराब खान खाइ है॥[१]

८५. महताब

इन्होने संवत् १८०० वि० के लगभग हिंदूपति की प्रशसा मे 'नखशिख' नामक ग्रंथ रचा, जिसमे राजा शब्द के स्थान पर बादशाह शब्द का प्रयोग किया गया है।[२]

डॉ० ब्रजकिशोर जी मिश्र की सूचना के अनुसार हिंदूपति प्रतापगढ के राजा थे, जिनका परिचय भिखारीदासकृत काव्यनिर्णय मे इस प्रकार दिया गया है---

जगत विदित उदयादि सो अरवर देश अनूप।
रवि लौ पृथिवीपति उदित तहाँ सोमकुल भूप॥
सोदर ताके ज्ञाननिधि, हिंदूपति शुभ नाम।
जिनकी सेवा मे लह्यो, दास सकल शुभ धाम॥
अट्ठारह सै तीनि है, संवत् आश्विन मास।
ग्रंथ काव्य निरनै रच्यो, बिजै दसै दिन मास॥[3]

भिखारीदास जी की सूचना के अनुसार उनका काव्यनिर्णय हिंदूपति के संरक्षण में ही तैयार किया गया है। हिंदूपति कवियो के आश्रयदाता थे और नखशिख के प्रणेता महताब उनके आश्रित थे। इससे अधिक उनके बारे मे कोई सूचना नही मिलती।

८६. नरसिंहदास

ये अहमदाबाद के निवासी थे और संवत् १८०० के लगभग जूनागढ़ के नवाबों के

---

१. भगवंतरायरासा नागरीप्रचारिणी पत्रिका, भाग ५, सवत् २००६, पृष्ठ ११४–१३१ तक प्रकाशित है।---लेखक।

२. हिंदी वीरकाव्य, डॉ० टीकम सिंह तोमर, पृष्ठ १६।

३. अवध के प्रमुख कवि, डॉ० ब्रजकिशोर मिश्र, परिशिष्ट १, पृष्ठ ३०२–३०३।

आश्रित थे। इन्होंने केवलराम की भाँति 'बाबी-वंश-प्रशस्ति' नामक एक काव्य लिखा, जिसमें बाबी वंश के नवाबों की गुणगाथा गाई गई है।[१]

८७. देवकर्ण

ये जाति के कायस्थ थे। इनके पिता का नाम हरनाथ और पितामह का नाम महीदास था। ये मेवाड़ के महाराणा जगतसिंह द्वितीय के दीवान थे। संवत् १८०३ में इन्होने वाराहपुराण के काशीखंड के आधार पर तीस विलासों मे ४०५२ छंदों का एक बृहत् ग्रंथ लिखा, जिसके प्रारंभ में मेवाड़ का संक्षिप्त इतिहास, कविपरिचय, महाराणा जगतसिंह और उनके पूर्वजो का यशवर्णन किया गया है।[२]

८८. फटेराम

सिणढायच फटेराम ने संवत् १८०४ के लगभग बीकानेर के महाराजा गजसिंह जी की प्रशस्ति मे 'महाराजा गजसिंह जी रो रूपक' नामक एक काव्य लिखा। इसमें बीकानेर के राव सीहो से लेकर महाराज गजसिंह तक की वंशावली, महाराजा गजसिंह की अतिरंजनायुक्त प्रशस्ति और जोधपुर बीकानेर आदि के युद्धों के वर्णन मिलते हैं। काव्य की अपेक्षा महाराजा गजसिंह जी रो रूपक मे इतिहास को अधिक महत्ता प्रदान की गई है, अतः यह रूपक ऐतिहासिक घटनाप्रधान काव्य है।[३]

८९. बख्ता खड़िया

बख्ता खड़िया के बारे में अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं होती। खोज रिपोर्ट में केवल इतना ही पता चलता है कि बख्ता खड़िया ने 'अभयसिंघ रा कवित्त' नामक एक काव्य डिंगल भाषा में लिखा, जिसमें जोधपुर नरेश अभयसिंह जी के यश का वर्णन ५४० छंदों में किया गया है। महाराजा अभयसिंह का राज्यकाल संवत् १७८१ से १८०५ तक था, अतः अभयसिंघ रा कवित्त की रचना इसी समय मे हुई होगी।[४]

९०. आदितराम जी

ये बाबीविलास के प्रणेता कवि केवलराम जी के पुत्र थे और माना जी गायकवाड़ के आश्रय मे रहते थे। माना जी गायकवाड़ के भुजबल की प्रशस्ति मे इन्होंने अनेक स्फुट छंद लिखे हैं, किंतु यह पता नही चलता कि इन्होने कोई विशाल ग्रंथ या प्रबंधकाव्य भी

---

६. गुजरात की हिंदी काव्य परंपरा तथा आचार्य कवि गोविंद गिल्लाभाई, डॉ० भा० मा० चतुर्वेदी, पृष्ठ ७२।

१. हिंदी साहित्य, द्वितीय खंड, संपादक डॉ० धीरेंद्र वर्मा, पृष्ठ १७२।

२. हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डॉ० रामकुमार वर्मा, पृष्ठ १८४।

३. हस्तलिखित हिंदी ग्रंथों का विवरण, सन् १९४१–४३, प्रथम भाग, पृष्ठ २३२–२३३।

अपने आश्रयदाता के संबंध में लिखा है। इनके जो अनेक स्फुट छंद मिलते हैं, उनमें से एक छंद यहाँ दिया जा रहा है--

जाके भुजदंड देखि लाजत हैं सुँडा दंड,
पीचे बल देखी सिंह हथन बिदारे है।
दूर्जन के साल और सज्जन के प्रतिपाल,
राजत विशाल दृग विधि वे समारे है॥
हाथ की कृपान कारी नागनी समान जाकी,
बड़े खानखाना देखी हिम्मत को हारे है।
राजे चहुँओर और देखे बरजोर माना,
मूँछ के मरोर पर करोर वार डारे हैं॥[१]

आदितराम जी संवत् १८०६ के लगभग विद्यमान थे, अतः उन्होंने इसी समय के आसपास काव्यरचना की होगी।

९१. तीर्थराज

ये बैसवाड़ा के निवासी थे तथा संवत् १८०६ वि० के लगभग विद्यमान थे और डौडियाखेरे के राजा अचलसिंह के आश्रय में रहते थे। इन्होंने 'समरसार' नामक एक वीरकाव्य लिखा है।[२]

समरसार का अन्य नाम समरविजय है और इसी नाम से खोज रिपोर्ट में इस ग्रंथ का उल्लेख हुआ है। समरसार या समरविजय का रचनाकाल रविवार, जेठ सुदी तीज, संवत् १८०७ है।[३] आश्रयदाता की प्रशस्ति के अतिरिक्त युद्धपूर्व का शकुनविचार समरसार का मुख्य विषय है।[४]

९२. पृथ्वीराज सौंदू

ये सौंदू शाखा के चारण थे और जोधपुर के महाराजा अभयसिंह (सं० १७८१–१८०६) के आश्रय में रहते थे। इन्होंने 'अभयविलास' नामक एक ग्रंथ लिखा, जिसमें

---

१. गुजरातीओ ए हिंदीसाहित्यमां आपेलो फालो, श्री डाह्याभाई पीतांबरदास देरासरी, पृष्ठ २२।

२. हिंदी वीरकाव्य, डॉ० टीकमसिंह तोमर, पृष्ठ १९।

३. हस्तलिखित हिंदी ग्रंथों का विवरण, सन् १९२६–२८, ग्रंथक्रमांक ४८१९, पृष्ठ ७५१४–७१५।

४. हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, द्वितीय खंड, ना० प्र० सभा, काशी, पृष्ठ ५१८।

जोधपुर के महाराजा अभयसिंह जी का इतिहास वर्णित है ।[१] बहुत संभव है, अभयविलास की रचना संवत् १८०६–१८०७ के लगभग हुई हो । यह रचना पुस्तक प्रकाश, जोधपुर में उपलब्ध है ।

६३. सोमनाथ

इनका अन्य नाम शशिनाथ था । ये माथुर चतुर्वेदी ब्राह्मण थे और भरतपुर के जाट राजा बदनसिंह के दरबारी कवि थे । साधारणतः ये राजा बदनसिंह के कनिष्ठ पुत्र प्रतापसिंह के पास रहा करते थे । मिश्रबंधुओं ने इनके पिता का नाम नीलकंठ, पितामह का नाम देवकीनंदन और प्रपितामह का नाम नरोत्तम मिश्र लिखा है ।[२]

सोमनाथ ब्रज, संस्कृत और ज्योतिष के प्रकांड पंडित थे । अद्यावधि इनके १५ ग्रंथों का पता चला है--१. रसपीयूषनिधि, २. सुजानविलास, ४. माधवविनोद, ४. कृष्णलीलावली, ५ पंचाध्यायी, ६. दशमस्कंध भाषा, ७. ध्रुवविनोद, ८. रामकलाधर, ९. वाल्मीकिरामायण, १०. अध्यात्मरामायण, ११. अयोध्याकांड, १२. सुंदरकांड, १३. ब्रजेंदुविनोद, १४. रसविलास और १५. रामचरित्ररत्नाकर ।[३]

श्री हिंदी साहित्य समिति, भरतपुर के स्वर्ण-जयंती-अंक ग्रंथ में भरतपुर-कवि-कुसुमांजलि के अंतर्गत डॉ० कुंजविहारीलाल गुप्त ने सोमनाथकृत वाल्मीकिरामायण के अनुवाद का नाम रामचरितरत्नाकर तथा कृष्णलीलावली को रासपंचाध्यायी का ही अन्य नाम सूचित किया है । इसके अतिरिक्त उन्होंने सोमनाथकृत निम्नलिखित चार ग्रंथों का और उल्लेख किया है--

१. नवाबोल्लास (नवाब आजमखाँ के लिये लिखित)
२. शशिनाथविनोद (शिवविवाह)
३. संग्रामदर्पण (ज्योतिष पर विचार)
४. प्रेमपच्चीसी ।[४]

सुजानविलास संस्कृत के सिंहासन द्वात्रिंशिका का अनुवाद है, जिसकी रचना संवत् १८०७ में हुई थी ।[५] इस रचना के प्रारंभ में कवि ने अपने आश्रयदाता राजा बदन-सिंह और उनके पुत्र सूरजमल की वीरता का बखान किया है । इतिहास और वीरकाव्य

---

१. राजस्थानी भाषा और साहित्य, डॉ० मोतीलाल मेनारिया, पृष्ठ २८० ।
२. मिश्रबंधु विनोद, भाग २, पृष्ठ ६४७ ।
३. राजस्थान का पिंगल साहित्य श्री मोतीलाल मेनारिया, पृष्ठ १३१ ।
४. भरतपुर-कवि कुसुमांजलि, सं० डॉ० कुंजबिहारीलाल गुप्त, स्वर्ण-जयंती-ग्रंथ, श्री हिंदी साहित्य समिति, भरतपुर, सं० २०१८, पृष्ठ २ ।
५. हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, काशी नागरीप्रचारिणी सभा, भाग २, पृ० ५६७

की दृष्टि से सुजानविलास का यह अंश महत्वपूर्ण है। उक्त सुजानविलास में सूरजमल की वीरता का वर्णन देखिए—

प्रबल प्रताप दावानल सौ विराजे जोर,
अरनि के पारै रोरि धमक निसाने की।
ठट्ठ मरहट्ठा के निघट्टि डारे बानन सों,
पेसकस लेत है प्रचंड तिलगाने की॥
सोमनाथ कहैं सिंह सूरजकुमार जाकौ,
क्रुद्ध त्रिपुरारि कौ सौ लाज बर बाने की।
चढ़ि कै तुरंग जग रंग करि सेलनि सों,
तोरि डारी तीखी तरवारि तुरकाने की॥

रीतिकाव्य के प्रणेता और आचार्य के रूप में सोमनाथ की अच्छी कीर्ति है। नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी के संग्रहालय में एक छंद मिला है जो रीतिकालीन समाज में कवि के महत्व और स्थान को निरूपित करता है, अतः कवियों के युगीन महत्व को प्रतिपादित करनेवाले उक्त छंद को यहाँ उद्धृत करना आवश्यक है—

कविन के गायै जस चारिहु जुगनि छाये,
छंदनि में गाये सो कहा धौं राजाराम है।
मरे कौ अमर करै, आँगिन निरपि देगो,
भोज बलि विक्रम के जस अभिराम है॥
सोमनाथ कहै याते कवि की कृपा ते होतु,
सूरन कै सबै विधि जस बसुधाम है।
दै दै गज बाजी गाजी मरद करत राजी,
कविन सो दगाबाजी पाजीन कौ काम है॥[1]

६४. पहाड़ खाँ आढ़ा

ये जोधपुर नरेश विजयसिंह और बखतसिंह के समसामयिक कवि थे तथा जोधपुर राज्य के अंतर्गत पांचेटिया ग्राम में रहते थे। ये आढ़ा शाखा के चारण थे। इन्होंने बादर ढाढ़ी के वीरमायण के आधार पर गोगादे रूपक लिखा, जो राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर से प्रकाशित हो गया है। गोगादे रूपक का रचनाकाल सं० १८०५ से १८१० तक है। इसमें राव वीरमदे के पुत्र गोगादे और जोहियों के नेता दला के बीच होनेवाले युद्ध का वर्णन किया गया है। एक उदाहरण पर्याप्त होगा—

---

१. काशी नागरीप्रचारिणी सभा, हस्तलिखित प्रति क्रमांक ८०६।४१, पत्र २२ छंद ३.

उड़े रज डंभर अथाह, मिलै निस जांणक भाद्रव माह ।
दलै कद वीरम हूँ तायदाय, उगंतां सूर वित्त लियौय आय ।।
धुबै पड़ रोस अरारक धाक, हुबोहुब होय चहुंबल हाक ।
ढमंकय वाहर बाहर ढोल, खगां जड़ जीण दुबागाय खोल ।।

गोगादे रूपक के अतिरिक्त इन्होंने अनेक वीरगति भी लिखे हैं ।[1]

६५. रंगलाल

मिश्रबंधु विनोद में कविसंख्या ८२५ पर इनका कविताकाल संवत् १८०७ विक्रमाब्द माना गया है । संभवत: ये सूरजमल के निधन के पश्चात् जवाहरसिंह के आश्रय में रहते हों । इनकी कोई स्वतंत्र रचना तो नहीं मिलती, पर स्फुट छंद अवश्य मिलते हैं । एक उदाहरण पर्याप्त होगा––

जटित जवाहर मल्ल, रल्ल चहुँ दिसि अति हल्लिय ।
गहर नदिय खलभलत, फनपती थर थर सल्लिय ।।
तरवर धन गिर परत, होत कुल्लाहल भारिय ।
हय ही सों धर धसक, मसक नर मिलत न नारिय ।।
चढ़ि हूंक निसंक अभंग दल, प्रकट जंग दल जात तव ।
सुज्जाननंद 'रंगलाल' भनि, कुल बदनेस सुभाति इव ।।

६६. सूदन

सूदन मथुरानिवासी पंडित बसंतराम चौबे के पुत्र थे और भरतपुरनरेश महाराजा बदनसिंह के पुत्र महाराज सुजानसिंह (सूरजमल) के आश्रय में रहते थे । अपने आश्रयदाता की कीर्ति को अक्षय बनाए रखने के लिये इन्होंने 'सुजानचरित्र' नामक एक बृहत् काव्य लिखा, जिसमें विक्रम संवत् १८०२ से १८१० तक की घटनाओं का वर्णन मिलता है, अतः सुजानचरित्र का रचनाकाल संवत् १८१० के लगभग मानना चाहिए ।

सुजानचरित्र में कवि ने १७५ कवियों का नामोल्लेख, सूरजमल का वंशपरिचय, और उनके द्वारा लड़ी गई सात लड़ाइयों का वर्णन किया है––१. सूरजमल द्वारा फतेह अली खाँ की सहायता, २. ईश्वरीसिंह की सहायता, ३. सलावत खाँ की पराजय, ४. पठानों के विरुद्ध सफदरजंग की सहायता, ५. राजा बहादुरसिंह की पराजय, ६. दिल्ली की लूट और ७. बादशाही तथा मराठों की संमिलित सेना से सूरजमल का युद्ध ।

---

१. राजस्थानी सबद कोस, सीताराम लालस, प्रथम खंड, पृष्ठ १६१ ।

२. भरतपुर-कवि-कुसुमांजलि––सं० डॉ० कुंजबिहारीलाल गुप्त, पृष्ठ २६ ।
टिप्पणी––भरतपुर-कवि-कुसुमांजलि में रंगलाल का विवरण दो बार छप गया है । प्रथम बार कविक्रमांक ८, पृष्ठ २६ पर और दूसरी बार कविक्रमांक २२, पृष्ठ ३६ पर ।––लेखक ।

सुजानचरित्र को देखने से पता चलता है कि कवि काव्य की श्रेष्ठता के प्रति उतना सजग नहीं है, जितना वह अपनी बहुज्ञता और विविध नामावलियों को काव्य की तुकबंदी में जोड़ने का अभ्यस्त है। सुजानचरित्र में वस्तु, व्यक्ति, जाति आदि की लंबी सूचियाँ काव्य की रोचकता में बाधक सिद्ध होती है। कहीं कहीं तो यह नामावली इतनी लंबी और निकम्मी है कि पढ़ते पढ़ते जी ऊबने लगता है। उदाहरण के लिये लूट के सामान की यह नामावली देखिए—

पुनि बासन भरि लुटिय देग देगवा रकाबा,
चमचा चमची जाम तवा तंदूर गुलाबा।
चपनी लोटा चिलमपोस सरपोस जमावा,
हुक्का हुक्की कली सुराही अरु अपताबा॥
तँबिया कलसा कुंडि तनहरा बटली बटला,
दुकरा और परात डिबा पीतल के चकला॥....

संयुक्ताक्षरों, नादात्मक शब्दों, निरर्थक ध्वनियों, अवधी, भोजपुरी, मारवाड़ी, पंजाबी, फारसी के शब्दों का सुजानचरित्र में स्वच्छंदतापूर्वक प्रयोग हुआ है। सूदन की ध्वन्यात्मक शब्दप्रियता का एक प्रमाण लीजिए——

तहँ छुटत बान भयान सहसन रहकला हथनाल,
जज्जाल पुनि घुरनाल अयुनत जबर जंग कराल।
अगगगग अगग अगगगं मगग मग गगमन,
धगगग धगगगग धगगगं धंमाक धुंकर धन।
धधकार धधधधधधध धंधू धाइ धूमक धाइ,
भभकंत भक्क भड़ाइ भकत भडडडं भंभाइ।
भंनात भट्ट भड़ाक भड़ भड़ भभक भूरि भयान,
भडकंत भभ्भकत भभभभंभट भेष भासत भान॥

जहाँ कहीं सूदन इस शब्दचमत्कार से मुक्त हो गए हैं वहाँ उनका काव्य सुंदर बन पड़ा है। यथा——

तोम तम छाए सुलतान दल आए, सो तौ,
अमर भजाए उन्हे छाई है अचक सी।
काल कैसी रसना कराल करवाल तेरी,
ब्याल भाल कढ़ि कै करन लागी तक सी॥
सूदन सुजान मरदान हरिनाराइन,
देव हरिदेव जंग जैति तोहि बकसी।
जूझत हकीम खाँ अमीरनु कै धक सी,
औ बकसी के जिय में परी है धकपक सी॥

९७. गोपीनाथ

ये गाडण शाखा के चारण थे और बीकानेर के महाराजा गजसिंह जी के आश्रय में रहते थे। गजसिंह की प्रशस्ति लिखने के विचार से इन्होंने संवत् १८१० में 'ग्रंथराज' नाम का एक बृहत् ग्रंथ बनाया। इसमें मंगलाचरण के बाद कवि-स्त्री-संवाद है और उसके उपरांत महाराज गजसिंह की वंशावली, उनके पूर्वजों की प्रशस्ति, स्वयं महाराज गजसिंह का जन्म, शैशव, शिक्षा, राज्यारोहण, और जोधपुर के विरुद्ध उनके युद्धों का वर्णन किया गया है। इस वर्णन में सजीवता, प्रवाह और प्रभविष्णुता का सुंदर सामंजस्य है, अतः इस कृति पर प्रसन्न हो महाराज गजसिंह ने कवि को लाखपसाव दिया, जिसका हवाला दयालदास री ख्यात में इस प्रकार दिया गया है--

१. पीछे रिणी विराजतां गाडण गोपीनाथ ग्रंथ १ श्री जी रौ बणायौ नांम ग्रंथराज। पीछै मालम कीयौ। तिणपर इतरी निबाजस हुई॥ रुपीया २००० रोक। हाथी १। हथडी १। घोड़ा २। सिरपाव। मोतियारी कंठी। इंणरीत लाख पसाव दीयौ।

'ग्रंथराज' का दूसरा नाम 'गजसिंहरूपक' भी है। इसमें गाहा, पद्धड़ी, कवित्त, दूहा, आदि छंदो का विशेष रूप से प्रयोग हुआ है। ग्रथ की भाषा डिंगल है और उसके सौष्ठव को देखते हुए गोपीनाथ को डिंगल का श्रेष्ठ कवि कहा जा सकता है। ग्रंथराज की भाषा का एक उदाहरण लीजिए--

जेतसी भंजि कमरौ जड़ागि। धूधहर राइ लागे धियागि॥
मालदे तणो भंजीयो माण। कलियाण पाँण झेले केवाण॥[१]

९८. लाल कवि भरतपुरवाले

ये छत्रप्रकाशकार गोरेलाल उर्फ लाल कवि तथा विष्णुविलास के प्रणेता लालकवि से भिन्न व्यक्ति प्रतीत होते है। डॉ० कुंजबिहारीलाल गुप्त के मतानुसार ये भरतपुर के शासक बदनसिंह और सूरजमल के आश्रित थे। महाराज बदनसिंह की मृत्यु पर इन्होंने एक कवित्त लिखा था। महाराज बदनसिंह संवत् १८१२ मे स्वर्गवासी हुए, अतः इनका कविताकाल संवत् १८१२ के लगभग होगा। इनके बारे में अधिक जानकारी उपलब्ध नही है। इनकी स्फुट रचना का एक उदाहरण इस प्रकार है--

फिरत फिरंगी चहूँ ओर चकबाने भये,
मुगल पठान शेख सैयद समरतौ।
गोलन के मारे तोपखाने के दवान भये,
तुरक सवार कहौ कैसे धीर धरतौ॥

---

१. राजस्थानी भाषा और साहित्य, मोतीलाल मेनारिया, पृष्ठ २८१।

पिलते न सेंगर भदौरिया मिसिर और,
आसिफदौला को मनोरथ क्यौ सरतो।
कोपि करि करतौ समर मूलचंद जो न,
बाँकुरेन जीवन को बीमा कौन करतौ ॥[1]

९९. पतिराम

ये भरतपुरनरेश सूरजमल उर्फ सुजान के दरबारी कवि थे। इनका जन्म भरतपुर राज्य की कुम्हरे तहसील मे भटपुरा नामक ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम शंकर भट्ट था। पतिराम ने स्फुट छंदो मे सुजानसिंह के राज्यवैभव और सिंहासनासीन होने का वर्णन किया है। इतिहास के अनुसार संवत् १८१२ मे सुजानसिंह के पिता बदनसिंह का देहावसान हुआ, अत: पतिराम का रचनाकाल संवत् १८१२ के लगभग माना जा सकता है, क्योंकि १८१२ में ही सुजानसिंह भरतपुर की गद्दी पर बैठे थे। इनकी रचना का एक उदाहरण देखिए--

जहाँ कमठ की पीठ नीव तुम तहाँ जमाई।
धरी सेस के सीस भीत ऊपर जो उठाई॥
रच्यो दीग्र परकोट साहु मुलतान उबारन।
दलत दीह दल सकल, धुजा ऊँची धर धारन॥
चौर छत्र आदिक तिलक, जब सुजान बैठो तखत।
सिर छत्र सलामत साहिबी, मुख देखत खुल्लत बखत ॥[2]

१००. महाकवि देव

महाकवि देव गीतिबद्ध काव्य के प्रणेता थे।[3] इन्होंने १६ वर्ष की आयु मे संवत् १७४६ में भावविलास की रचना की।[4] इसी आधार पर आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इनका जन्मसंवत् १७३० माना है।[5] डॉ० कुजबिहारीलाल गुप्त के अनुसार देव ८५ वर्ष की अवस्था में, अर्थात् संवत् १८१५ वि० में, भ्रमण करते हुए भरतपुर आए और उन्होने तत्कालीन भरतपुरनरेश महाराज जवाहरसिंह जी को दो छद सुनाए, जिनपर प्रसन्न हो जवाहरसिंह जी ने उन्हें पाँच हजार रुपए पुरस्कार में दिए। उन दो छंदों मे से एक छद इस प्रकार है--

---

१. भरतपुर-कवि-कुसुमांजलि, डॉ० कुजबिहारीलाल गुप्त, पृष्ठ २८--२६।

२. वही, पृष्ठ ३२।

३. हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास, षष्ठ भाग, सपादक डॉ० नगेंद्र, पृष्ठ ३२६--३४०।

४. वही, पृष्ठ ३२६।

५. हिंदी साहित्य का इतिहास, रामचंद्र शुक्ल, छठा संस्करण, पृष्ठ २६४।

दक्खिन के दक्खिनी, पछाँह के पछाँही भूप
उत्तर उत सेनाहू पूरब को रलकी।
सुभट समाजन की गाजन गरज भूमि,
तरजत छाती देव दानव के दल की।।
यदुवंशी नृपति सुजान के सपूत वीर,
कहाँ लौ बखान करौ तेरे भुजबल को।
मोहिं भई जाहर जवाहर तिहारे हाथ,
आय लागी सायत विलायत कतल की।।[१]

१०१. केशव

ये रीतिकाल के प्रसिद्ध महाकवि केशव से भिन्न व्यक्ति थे। संवत् १८१४ के लगभग इन्होंने भरतपुरनरेश सूरजमल की वीरता का बखान करते हुए लिखा था—

जा दिन तें दल साज चढ्यौ नृप, आगे बढ्यौ पग पीछे धर्यौ ना।
मेरु है सेर चढ्यौ किरबान लै, एक ते दूसरो अंक बर्यौ ना।।
'केशव' श्री बदनेश के नंदन, तो सम और बरंग बर्यौ ना।
हाथी टरे, घने साथी टरे, परधान टरे पै सुजान टर्यौ ना।।[२]

१०२. जुलकरन

डॉ० कुंजबिहारीलाल गुप्त के मतानुसार ये डीग निवासी भट्ट थे तथा भरतपुर-नरेश सूरजमल व उनके पुत्र जवाहरसिंह के समकालीन थे। इनका कविताकाल सं० १८१५ विक्रमाब्द के आसपास था। इनकी रचना का एक उदाहरण इस प्रकार है—

रंग राच्यौ रणभूमि भूमि भूमि लड्यौ सूजा, संग के सगोती लोग पीछे को हटि गया।
कहै 'जुलकरन' अनल सौं तातो भयौ, गातौ भयौ रूप छबि छोभ में पटि गयौ।।
टारे ते टर्यौ न ऐसो धरती समान रुप्यो, तन टूक टूक तरबारन सो कटि गयौ।
बेधि रबि मंडल को छेदि गयौ दूरि लोक, सुर लोक बारेन को फाटक फटि गयौ।।[३]

१०३. बिहारीलाल

ये बिहारी सतसई के प्रणेता महाकवि बिहारीलाल से भिन्न व्यक्ति थे। डॉ० टीकमसिंह जी तोमर की सूचना के अनुसार इन्होंने सवत् १८१५ वि० के लगभग 'हरदौल-

१. भरतपुर-कवि-कुसुमांजलि, संपादक डॉ० कुंजबिहारीलाल गुप्त, पृष्ठ ४३।
२. वही, पृष्ठ ३४—३५।
३. वही, पृष्ठ ३५।

चरित्र' नाम का एक वीरकाव्य लिखा था।[१] खोज रिपोर्ट के अनुसार हरदौलचरित्र में वीरसिंहदेव के पुत्र कुँवर हरदौल की कथा वर्णित है।[२]

१०४. भारतचंद्रराय गुणाकर

श्री भारतचंद्रराय गुणाकर मूलतः बँगला के कवि थे, पर संस्कृत, ब्रज, फारसी और हिंदी भाषा का भी इनका ज्ञान बहुत अच्छा था। उक्त भाषाओं का इनका ज्ञान इतना अच्छा था कि ये उनमे रचनाएँ भी कर लेते थे। डॉ० ब्रह्मानद के मत मे भारतचंद्रराय गुणाकर का जीवनकाल सवत् १७७९ से १८१८ तक रहा।[३]

बंगीय साहित्य परिषद्, कलकत्ता से भारतचन्द्र ग्रंथावली का प्रकाशन हो चुका है, अतः उक्त ग्रथावली के आधार पर गुणाकर जी के हिदीकाव्य का अनुमान लगाया जा सकता है। इस ग्रंथावली में गुणाकर जी की जो रचनाएँ ब्रजभाषा या हिदी मे मिलती हैं, उनपर बँगला का प्रभाव स्पष्टत. परिलक्षित होता है, फिर भी अठारहवी उन्नीसवी शताब्दी मे एक बंगभाषी कवि की हिदी रचनाओं की सृष्टि अपना एक विशिष्ट महत्व और मूल्य रखती है। यहाँ हम गुणाकर जी द्वारा लिखित मानसिंह की यशोर यात्रा का एक दृश्य प्रस्तुत कर रहे है——

धाँ धाँ गुड़ गुड बाजे नगारा, बाजे रबाब मृदग दौतारा।
पयदल कलबल भूतल दलमल, साजल दलबल अटल सोभारा॥
दामिनी नक तक जाम को धक धक, झक झक झकमक खर तरवारा।
ब्राह्मण रजपुत क्षत्रिय राहुत माँगल माहुत रण अनिवारा॥
भाँड कलावत नाचत गायत भारत अभिमत गीत सुधारा॥[४]

१०५. चंद्र कवि

चद्र कवि मिथिलेश राजा नरेंद्रसिंह (सवत् १८०१—१८१८) के दरबारी कवि थे[५]। इन्होने अपने काव्य मे राजा नरेंद्रसिह और बिहार के नवाब के बीच हुए युद्ध का वर्णन किया है।

---

१. हिंदी वीरकाव्य, डॉ० टीकमसिंह तोमर, पृष्ठ १९।
२. हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त खोज विवरण, भाग २, पृष्ठ ६१६।
३. बँगला भाषा और साहित्य पर हिदी भाषा और साहित्य का प्रभाव, डॉ० ब्रह्मानंद, पृष्ठ २४३।
४. भारतचंद्र ग्रंथावली, भारतचंद्र, पृष्ठ ३२७।
५. मिथिला भाषामय इतिहास, बख्शी म० म० मुकुंद शर्मा, पृष्ठ १८३—८४।

१०६. ईश कवि

ईश कवि मिथिलानरेश महाराज नरेंद्रसिंह (राज्यकाल संवत् १८०१–१८१८) के दरबारी कवि थे। इन्होंने जगनिक के लोकप्रचलित आल्हा के ढंग पर 'नरेंद्रविजय' नामक एक काव्य लिखा, जिसमे महाराज नरेंद्रसिंह और बिहार के सूबेदार राजा रामनारायण के युद्ध का वर्णन किया गया है। यह रचना अत्यंत सामान्य कोटि की है और राज प्रेस दरभगा से प्रकाशित हो गई है। कवि ने नरेंद्रबहादुर की सभा का बड़ा विस्तृत वर्णन किया है, जिसमे नरेंद्रसिंह की सभा में उपस्थित पंडितों, आचार्यों, ज्योतिषियों, फारसी के विद्वानो आदि की लंबी चौड़ी सूची दी गई है। अपने पाडित्यप्रदर्शन की धुन में ईश ने नरेंद्रसिंह के दरबारी बुंदेलों, चंदेलो, बघेला, चौहान आदि राजपूतों की जातियाँ तक गिना डाली है। उर्दू के असर से सलाम, मुजरा आदि शब्द भी इनकी रचना मे आ गए है।[१]

१०७. देवदत्त

देवदत्त 'दत्त कवि' के नाम से प्रसिद्ध थे। इनका जन्म जाजमऊ में हुआ था किंतु टिकारी (गया) के कुँवरसिंह के आश्रित होने के कारण ये प्रायः टिकारी मे ही रहा करते थे। इनकी चार रचनाओं का पता चला है——१. सज्जनविलास, २. वीरविलास या द्रोणपर्व भाषा, ३. ब्रजराजपचाशिका और ४. लालित्यलता।[२] ब्रजराजपचाशिका की रचना संवत् १८१८ मे हुई, जिसमे राजा ब्रजराजदेव की चढाई और युद्धवीरता का वर्णन है।[३] वीरविलास महाभारत के द्रोणपर्व का अनुवाद है।[४]

१०८. हुक्मीचंद

ये खिड़िया गोत्र के चारण थे और जयपुरनरेश महाराजा प्रतापसिंह के दरबारी कवि थे। ये जयपुर राज्य के अंतर्गत भड़ेडिया ग्राम में रहते थे। इनका रचनाकाल संवत् १८२० के लगभग है। विशेषकर डिंगल मे वीर-रस-पूर्ण गीत और फुटकर छप्पयो के लिये ये प्रसिद्ध हैं। महाराज प्रतापसिंह जी की प्रशंसा मे लिखित इनका एक छप्पय देखिए——

अंबापुर गिर उदै क्रीत ऊजल किरणाल।
तप प्रताप तन तेज भाग झलहल दुत भालं॥

---

१. नरेंद्रविजय, संपादक प० महेंद्र झा, पृष्ट ३–४।

२. हिंदी साहित्य और बिहार, शिवपूजन सहाय, पृष्ठ १६७।

३. हिंदी वीरकाव्य, डॉ० टीकमसिंह तोमर, पृष्ठ २०।

४. हस्तलिखित हिंदी पुस्तको का संक्षिप्त विवरण, भाग २, पृष्ठ १४३।

अधक अलुक होय अंध, मित्र चकवा प्रमोदत ।
अबुध तिमिर घट ओज असह उड़गरण आक्रंदन ।।
जयसाह बीया जग जय जपत, बन कज कविद विकासिया ।
सुभीयाँण मुकुट हिंदुवाण सिर, पातल भाण प्रकासिया। ।[1]

उक्त प्रतापसिंह जी के लिये हुकमीचंद खिड़िया ने "जयपुर के महाराजा प्रतापसिंह-जी री भक्तमाल" लिखी ।

संवत् १८२५ के लगभग मेवाड़ की रक्षा के लिये शाहपुरा के राव उम्मेदसिंह जी और माधोजी सिंधिया में उज्जैन के निकट क्षिप्रा नदी के तट पर घनघोर युद्ध हुआ, जिसका आँखो देखा वर्णन कवि ने अनेक वीरगीतों मे लिखा है । यथा—

कोड़ी डढ़ा फुणी झाट, मोडतो कमट्टां कध,
पब्बैराट सिध्र बीछोड़तौ भोमपाट ।
थंभ जंगा बोम बाट, जोड़तो रातंगा थाट
तोड़तौ मातंगा घाट, रोड़तौ लांबाट ।।[2]

१०९. गोपाल

ये असोथर के राजा भगवंतराय खीची के आश्रित कवि थे । वास्तव मे भगवंत-राय खीची असोथर, जिला फतेहपुर के जागीरदार थे और कवियो को प्रश्रय देने में बड़े उदार थे । सुखदेव मिश्र और गोपाल इनके दरबार मे रहते थे ।[3] गोपाल ने संवत् १८२० के लगभग भगवंतराय की विरुदावली नामक एक काव्यग्रंथ रचा, जिसमें भगवतराय खीची और सआदत खाँ के युद्ध का वर्णन किया गया है ।[4]

११०. सुधाकर

ये भरतपुरनरेश सूरजमल के प्रशंसक कवि थे, पर इनके जीवनवृत्त के बारे में कोई विशेष विवरण उपलब्ध नही है । डॉ० कृजबिहारीलाल गुप्त के अनुमान के आधार पर इनका रचनाकाल संवत् १८२० के लगभग माना जा सकता है । वीर और शृंगाररस के निरूपण में ये कुशल कवि प्रतीत होते हैं । इनकी रचना का एक उदाहरण इस प्रकार है—

तेरो तो ताप मारतंड सो प्रचंड तपै,
बैरिन के तन जर ववैला भए जात हैं ।

---

१. डिंगल में वीररस, मोतीलाल मेनारिया, पृष्ठ ४२–४३ ।
२. राजस्थानी सबद कोस, सीताराम लालस, प्रथम खंड, पृष्ठ १६३ ।
३. हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का सक्षिप्त विवरण, भाग २, पृष्ठ ६३ ।
४. हिंदी वीरकाव्य, डॉ० टीकमसिंह तोमर, पृष्ठ २० ।

अरिन की वाहिनी तोरई सी सूखि जात,
धरे अपजस जासों कारे भए गात हैं ।।
सुकवि 'सुधाकर' ने वरन्यौ ब्रजेंद्र तेज,
सेजन ते भाजि बैरी बधू अकुलात हैं ।
जेई तब ताते ताते उदक सौ न्हात हुती,
तेई अश्रु पातन की धार सों अन्हात हैं ।।[१]

१११. रामकवि भरतपुरवाले

ये मिथिलानिवासी महाराज राघवसिंह के दरबारी कवि राम से भिन्न व्यक्ति थे। ये भरतपुराधीश सूरजमल के आश्रित और सूदन के समकालीन कवि थे। इनका रचना-काल संवत् १८२० के आसपास तक जाता है। सूरजमल की प्रशंसा में इन्होंने लिखा है—

वदनसिंह परसिद्ध जो, ब्रजमंडल को भूप।
ताके सूरज भल्लसुत, सूरज ही को रूप ।।

दौरे मल्ल सूरज के, भदावर हहरे औ, मारवाड़ी थहरे राठौर मदमत्ता की।
उड़ि जात ओरछौ, मटकि जात सरीला कौ, सकल जमात जैसे माखी मधुछत्ता की।।
झरना औ परना के हरना से भाजि जात, कंपत बसति कुल्लि चंपत के छत्ता की।
दिल्ली के मरद सब बिल्ली से दुबकि जात, चौकि चौकि परैं चमू चक्कवै चकत्ता की ।।[२]

११२. शोभनाथ

ये महाराज सूरजमल के समय से महाराज जवाहरसिंह के समय तक भरतपुर दरबार के कवि थे। संवत् १८२४ में इन्होंने 'माधवजयति' नामक एक ग्रंथ लिखा। अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा मे इन्होंने लिखा है—

सूरजमल सों जंग करत नेकहु नहि कंपौं,
कर उट्ठान पठान रुहेलन मद कौ चपौं।
लार मलार लगाय, राख लीनो कर चाकर,
और कितेक अमीर दिलीपुर के गुण आकर।

अति बली जवाहर जगत में, जाहिर जिहि गुन गन सही।
वीराधिवीर विक्रम अमित, ब्रज महीप राजै मही ।।[३]

---

१ भरतपुर-कवि-कुसुमांजलि, डॉ० कुंजबिहारीलाल गुप्त, पृष्ठ ३८।
२. वही, पृष्ठ ३८।
३. वही, पृष्ठ ४२।

११३. ब्रजचंद

ये भरतपुर के निवासी कवि थे। इनका रचनाकाल संवत् १८२० से १८२५ तक माना जा सकता है। इनके कुछ स्फुट छंद मिलते हैं, जिनमे सूरजमल के पुत्र जवाहरसिंह की प्रशंसा की गई है। यथा—

शंकर के आगे जैसे त्रिपुर के जुत्थ भजे, भासकर आगे जैसे तिमिर भगात है।
वारि आगे अगिनि, बयार आगे बादर ज्यों, धार आगे कायर ज्यों धीर न धरात है।
केहरि के आगे जैसे कुंजर समूह भजैं, सुरसरि के आगे पाप देखत बिलात हैं।
वैसे ही सुजाननंद कवि 'ब्रजचंद' कहै, सिंह नवलेस आगे अरि भागि जात हैं।।[१]

११४. छबिनाथ अवस्थी

ये उपमन्यु गोत्रीय कान्यकुब्ज अवस्थी ब्राह्मण थे और रायबरेली जिले में बैसवाड़े के निकट बगसर नामक गाँव मे रहते थे। इनके गुरु का नाम द्वारिकेश जी था।

छबिनाथ जयपुरनरेश महाराजा माधौसिंह जी (राज्यकाल संवत् १८२५ के लगभग) के आश्रित थे। अपने आश्रयदाता के शौर्य, दान, धर्म आदि की प्रशस्ति लिखने तथा उनकी कीर्ति को अक्षुण्ण बनाने के लिये छबिनाथ ने 'माधव-सुयश-प्रकाश' नामक ग्रंथ रचा।[२]

११५ शंभुनाथ मिश्र

आचार्य रामचंद्र जी शुक्ल के मत से शंभुनाथ मिश्र नाम के तीन कवि क्रमशः विक्रम संवत्, १८०६, १८०७ और १९०१ मे हुए।[३] इनमे से प्रथम शंभुनाथ मिश्र सुखदेव मिश्र के शिष्य थे और असोथर, जिला फतेहपुर के शासक राजा भगवंतराय खीची के आश्रय मे रहते थे। प्राप्य सूचनाओं के अनुसार इन्होंने सवत् १८०६ मे अलकारदीपक, सवत् १८०७ में रसकल्लोल और संवत् १८२० के लगभग रसतरंगिणी की रचना की। खोज रिपोर्ट के आधार पर इनकी एक अन्य रचना भगवतराय-यश-वर्णन का पता चला है।[४]

हिंदी साहित्य के बृहत् इतिहास के षष्ठ भाग में शंभुनाथ मिश्र का नामोल्लेख दो बार हुआ है—एक बार रसनिरूपक आचार्य के रूप में[५] और दूसरी बार अलंकार-

---

१. वही, पृष्ठ ४१।

२. हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, भाग १, पृष्ठ ३११–३१२।

३. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृष्ठ २६६।

४. हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, भाग २, पृष्ठ ६३।

५. हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास, षष्ठ भाग, सं० डॉ० नगेंद्र, पृष्ठ ४०२।

निरूपक आचार्य के रूप में[1] प्रायः सभी ग्रंथों में शंभुनाथ मिश्र जी ने अपने आश्रयदाता भगवंतराय खीची का यशवर्णन किया है। यथा—

आजु चतुरंग महाराज सेन साजत ही,
धौसा की धुकार धूरि परी मुंह माही के।
भय के अजीरन ते जीरन उजीर भए,
सूल उठी उर में अमीर जाही ताही के।।
बीर खेत बीच बरछी लै बिरुझानो इते,
धीर न रह्यो सभु कौन हू सिपाही के।
भूप भगवत बीर ग्वाही कै खलक सब,
स्याही लाई बदन तमाम पातसाही के।।

भगवंतराय खीची संवत् १८२७ के लगभग वर्तमान थे अतः भगवंतराय-यशवर्णन इसी समय के आसपास लिखा गया होगा।

११६. केशोदास

श्रुतिपरंपरा के अनुसार केशोदास कश्मीरी ब्राह्मण कहे जाते है।[2] इससे अधिक इनके बारे में और कोई सूचना नहीं मिलती। अद्यावधि इनकी निम्नलिखित पाँच रचनाएँ मिली है—१. वार महाराज अमरसिंह की, २. बारहमासा श्रीकृष्ण जी का, ३ बुद्धि-प्रकाश-दर्पण, ४. अष्टनायका और ५. प्रेमपचीसी।[3]

वार महाराज अमरसिंह की एक अत्यत सशक्त वीरकाव्य है। इसमे पटियाला के महाराज आलासिंह के पुत्र महाराज अमरसिंह (राज्यकाल संवत् १८२२ से १८३७ तक) तथा भटियार के मुसलमानो के बीच हुए युद्ध का वर्णन किया गया है। भटियाना युद्ध संवत् १८२३ मे लडा गया था।[4] इसकी घटना इस प्रकार है कि महाराज आलासिंह की मृत्यु के उपरांत पटियाला की सीमा के निकटवर्ती भट्टी मुसलमानो ने रियासत के सीमा-प्रदेश पर आक्रमण कर लूटपाट शुरू कर दी तथा हिंदुओं को सताना शुरू कर दिया। महाराज अमरसिंह जी की पत्नी महारानी हुकुम कौर बड़ी वीरांगना और राजनीति-निपुणा थी। उन्होने महाराज अमरसिंह को भटियारों पर आक्रमण करने की मंत्रणा दी, अतः महाराज अमरसिंह ने भटियारो पर आक्रमण कर दिया। महाभारत के समान घमासान युद्ध हुआ और शत्रुओ के छक्के छूट गए। भटियारो ने भागकर किले मे शरण

१. वही, पृष्ठ ४६४।
२. पंजाब प्रांतीय हिंदी साहित्य का इतिहास, भाग १, चंद्रकांत बाली, पृष्ठ ३६८।
३. पेप्सू में हिंदी की प्रगति, सं० सत्यपाल गुप्त, पृष्ठ ४।
४. पंजाब प्रांतीय हिंदी साहित्य का इतिहास, भाग, १, चद्रकांत बाली, पृष्ठ ३६९।

ली। महाराज अमरसिंह ने किला फतह किया और भटियारों की पराजय हुई। इस युद्ध में विजयी होने से फतिहाबाद, राणियाँ और सरसा का सारा इलाका (जिसकी हद बीकानेर राज्य मे मिली थी) महाराज अमरसिंह के हाथ लगा।[१]

वार में उक्त घटना का बहुत ओजपूर्ण वर्णन किया गया है। केशोदास की वर्णनशैली प्रखर और वीररस की उद्भावना बहुत स्वाभाविक है, किंतु उनके वार मे सबसे बड़ा दोष यह है कि केशोदास ने अगीराय के समान नायक के पक्ष और शत्रुपक्ष के बीच शौर्य का संतुलन नही दिखाया, अत उनका शौर्यवर्णन अपने काव्य के चरितनायक तक ही सीमित रहने के कारण पक्षपातपूर्ण और एकागी हो गया है। इसी तरह युद्धवर्णन के अवसर पर कवि ने पौराणिक उपमान और दृष्टात अधिक प्रस्तुत किए है, जिनसे कवि की मौलिकता का असर कम हो गया है। जैसे—

> जुद्ध को जोर भयो दुहूँ ओर सु सूरन के चित होत हुलासा।
> राम की सैन लगे जिम लक सु राक्षस होत अनेक बिनासा॥
> इद्र कों आय भयो उत्साह सु आय कै छाय लियो घनबासा।
> कस्यपपुत्र महा हर्ष्यो, रथ ठाटो कियो तहाँ देख तमासा॥[२]

वार मे हिंदी के साथ साथ पंजाबी और फारसी के शब्द भी बाकायदा प्रयुक्त हुए है—

> अमरसिंह दी तेगनूँ, कुल आलम जाणे।
> राजकाज भुजबल कर्यो, जग किर्ति बखाणे॥
> दो दल भयो मुकाबला, भट्टी औ बैराड़।
> लोह करेजा सूरमे, कायर भागे हार॥[३]

पंजाबी के वार काव्य मे केशोदास की उक्त रचना अपना अलग महत्व रखती है। खोज रिपोर्ट के अनुसार इसका रचनाकाल संवत् १८३१ था।[४]

११७. लालकवि

लालकवि का पूरा इतिवृत्त नही मिलता। डॉ॰ टीकमसिंह जी तोमर के मत से ये गुलाब कवि के पिता, गणेश कवि के पितामह और काशीनरेश महाराज चेतसिंह के आश्रित थे। इन्होंने महाराजा महीपनारायणसिंह और अन्य किसी राजा के बीच हुए

---

१. तारीखि पटिआला (उर्दू) खलीफा मुहम्मद हसन, पृष्ठ ६४–६५।
२. वार महाराज अमरसिंह की—केशोदास, मोतीमहल लाइब्रेरी पटियाला, पृष्ठ ५१, छंद ३५।
३. पेप्सू में हिंदी की प्रगति—श्री सत्यपाल गुप्त, पृष्ठ ५–६।
४. हस्तलिखित हिंदी पुस्तको का संक्षिप्त विवरण, भाग २, पृष्ठ ४००।

युद्ध का वर्णन संवत् १८३२ में स्फुट कवित्तो में लिखा है और काशीनरेश की प्रशंसा में अनेक कवित्त लिखे है ।[1] यथा—

काशीनरेश की तेग का वर्णन—

अरिन सँहारे गज घंटनि अहारै रक्त,
पियत अपारै ऐसी जालिम जवाल की ।
जग जीतिबे की जामे अमित कला है काल
की सी अबला है, ऐसी सोहत हवाल की ॥
कहै कवि लाल जंग मुकुति जुगुति वारी,
चेतसिह धारी है धौ कौन काल की ।
जम दडिका सी रन बीच चडिका सी है
सुरतन कन्यका सी तेग कासी महिपाल की ॥[2]

डॉ० टीकमसिह जी तोमर ने इन्हे लालकवि बनारसी लिखा है, पर ये मूलतः असनी निवासी थे ।[3] अत इन्हे लालकवि वनारसी कहने की अपेक्षा लालकवि असनीवाले कहना अधिक युक्तियुक्त होगा । काशीनरेश चेतसिह के अतिरिक्त इन्होने छत्रसाल बुदेला और पदमसिह की प्रशंसा मे भी कुछ छद लिखे है ।

११८. गुलाब

ये आँतरी निवासी माथुर चतुर्वेदी ब्राह्मण थे । अपने आश्रयदाता करहिया के परमारो और भरतपुर के नरेश जवाहरसिह के बीच १५ अगस्त, सन् १७७७ ई० तदनुसार संवत् १८३४ में हुए एक युद्ध का वर्णन इन्होने 'करहिया कौ रायसौ' नामक काव्य में किया है । इसकी मूल प्रति गुलाब कवि के वशज पडित चतुर्भुज जी वैद्य, आँतरी के पास सुरक्षित है ।[4] डॉ० माताप्रसाद जी गुप्त के मत से करहिया कौ रायसौ का रचनाकाल संवत् १८३४ है ।[5] इसमे प्रधान रस वीर है, अतः यह रासोपरपरा का वीरकाव्य है । करहिया के परमारो का गुणगान करते हुए कवि कहता है—

दान तेग सूरे बल विक्रम के रूरे पुण्य,
पूरे पुरुषारथ को सुकृति उधार है ।

---

१. हिंदी वीरकाव्य, डॉ० टीकमसिंह तोमर, पृष्ठ २० ।
हिंदी साहित्य : द्वितीय खंड, सं० डॉ० धीरेंद्र वर्मा, पृष्ठ १७६ ।
२. असनी के हिंदी कवि, डॉ० विपिनबिहारी त्रिवेदी, पृष्ठ १३० ।
३. वही, पृष्ठ १३२ ।
४. हिंदी साहित्य : द्वितीय खंड, सं० डॉ० धीरेंद्र वर्मा, पृष्ठ १७४ ।
५. रासो-साहित्य-विमर्श, डॉ० माताप्रसाद गुप्त, पृष्ठ १७ ।

गावे कविराज यश पावे मन भायो तहाँ.
वर्ण धर्म अर्थ चारु सुंदर सुढार हैं ॥
राजत करहिया में नीति के सदन सदा,
पोषक प्रजा के प्रभुताई दुसुमार है।
जहाँ अरबीले दल भंजन अरिदन के,
विदित जहान जग उदित पमार है ॥[१]

११९. हरिकवि

इनका मूल नाम हरिचरणदास त्रिपाठी था। ये शांडिल्य गोत्र के सरयूपारीण ब्राह्मण थे और संवत् १७६९ में गंगा सरयू के संगम के समीपस्थ सारन जिले के चैनपुर गाँव में पैदा हुए थे। संवत् १८३४ में इन्होंने बिहारी सतसई की हरिप्रकाश टीका लिखी थी।

कृष्णगढ़ (राजस्थान) के राजा बहादुरसिंह तथा किसी अब्दुल वाहिद के पुत्र नबी खाँ इनके आश्रयदाता थे, जिनकी प्रशंसा में इन्होंने अनेक स्फुट छंद रचे हैं। नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी के हस्तलिखित-ग्रंथ-संग्रहालय में एक स्फुट-छंद-संग्रह है, जिसमें इनके द्वारा नबी खान की तेग की प्रशंसा की गई है—

क्वैला काल कूट के तचाई तेज बाडब की,
सेस फूंक धमक प्रचंड ताव चढ़ी है।
आई आसमान तें कि भासमान सान पाय
कलह बुझाय पौन पैनी धार कढ़ी है ॥
हरि हर हरि के त्रिशूल चक्र पास बैठि,
बैरिन के बधवे को अच्छ सिच्छ पढ़ी है।
अबदुल वाहिद के नबीखान तेरी तेग,
बज्र के हथौरा काल कारीगर गढ़ी है ॥[२]

दिग्विजयभूषण में भी यही छंद उद्धृत है।[३]

१२०. राजेश

ये भरतपुर के राज्याश्रित कवि थे और संवत् १८३४ के लगभग विद्यमान थे। इन्होंने भरतपुरनरेश महाराज रणजीतसिंह की प्रशंसा में अनेक स्फुट छंद लिखे जिनमें से एक छंद यहाँ दिया जा रहा है—

---

१. नागरीप्रचारिणी पत्रिका, भाग १०, पृष्ठ २७८।
२. नागरीप्रचारिणी सभा, हस्त० ग्रंथ संख्या ८०६।४१, पत्र ३३, छंद ४५।
३. दिग्विजयभूषण, सं० डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह, पृष्ठ ११०।

परम राजेश तू द्विजेश वंश अंस हंस, कीरति तिहारी छीर सिंधु लों भरी रहै।
अतुल अगाध बोध बिमल बिधाता जैसो, सर्वगुण ज्ञाता ज्ञान आनंद करी रहै॥
चंड मार्तंड सो प्रचंड तेज लोचन में, ताही की ज्वाल अरि उर में अरी रहै।
ब्रज बलबीर रणजीतसिंह तेरी धाक, भूपन के भौन भौन भाजर परी रहै॥[१]

१२१. हुलासी

ये जाति के ब्राह्मण थे और वीररस के सुकवि माने जाते थे। इनका रचनाकाल संवत् १८३४ के लगभग माना गया है। भरतपुर के कवियों मे इनकी गणना की जाती है। भरतपुर की प्रशंसा मे इन्होंने लिखा है—

अलवर उदैपुर बीकानेर जोधपुर, कोटा औ करौली पीठ जयपुर के दै गये।
राजा रजपूत धुर दक्षिण औ पछाँह के, विभव बिहाय कै सु आपै बस ह्वै गये॥
कहत 'हुलासी' राव राजा सब पूरब के, हार कें नवाब, अँग्रेज टोपी नै गये।
जबू दीप खडन को मडन भरतपूर, बाके गढ़ टूटे ते अनेक सर है गये॥[२]

१२२. घनश्याम शुक्ल

डॉ० टीकमसिंह तोमर ने इनके बारे मे केवल यही लिखा है कि ये संवत् १७३७ से १८३५ तक विद्यमान थे। इन्होंने रीवाँनरेश की प्रशंसा में कविता की है तथा काशी-नरेश की प्रशंसा मे एक छद लिखा है।[३]

डा० विपिनबिहारी त्रिवेदी ने इन्हे बघेला नरेश महाराज अजीतसिंह तथा काशिराज चेतसिंह का दरबारी कवि बतलाकर इनका जीवनकाल १८वी शताब्दी का उत्तरार्ध और १९वी शताब्दी का पूर्वार्ध माना है।[४] इनकी उपलब्ध रचनाओं में वीररस के साथ साथ शृंगार रस का माधुर्य भी पाया जाता है। इनकी रचना का एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है—

रीवाँनरेश के हाथियों का वर्णन—

पग पग धरत महीधर डगत,
डगमगत पुहुमि चटकत फन सेस के।
हलत डुलत खलभलत उदधि जल,
भचत नगर हलकप अलकेश के॥

---

१. भरतपुर-कवि-कुसुमांजलि, स० डॉ० कुंजविहारीलाल गुप्त, पृष्ठ ४७।
२. वही, पृष्ठ ५०।
३. हिंदी साहित्य, द्वितीय खड, सं० डॉ० धीरेंद्र वर्मा, पृष्ठ १७८।
४. असनी के हिंदी कवि, डॉ० विपिनबिहारी त्रिवेदी, पृष्ठ १४९ से १५४ तक।

कहै घनश्याम मच्छ कच्छप कहल होत,
हहल हहल होत महल सुरेश कै।
मंदर मलत दिग दंतिन दलत,
मद भरत चलत गज बांधव नरेश के।।

घनश्याम शुक्ल केवल कलम के ही धनी नहीं, तलवार के भी धनी थे। इन्होंने संवत् १८३२ में काशीनरेश की रक्षा के लिये स्वयं भी तलवार के हाथ दिखलाए थे, अतः इनका रचनाकाल अठारहवीं शताब्दी का चतुर्थ चरण और उसके बाद सवत् १८३५ तक माना जा सकता है।

१२३. लाल झा

ये दरभंगा जिले के मँगरौनी गांव के निवासी थे तथा मिथिला के राजा नरेंद्रसिंह (राज्यकाल सवत् १८०१ से १८१८ तक) के आश्रित थे। इन्होंने मैथिली में गौरी स्वयंबर नाटक और सोहरगीत लिखे है। ब्रजभाषा मे इनकी कदर्पीघाट की लडाई प्रसिद्ध है, जिसमें इन्होंने अपने आश्रयदाता के युद्ध और वीरत्व का वर्णन किया है।[१] डॉ० टीकमसिंह तोमर ने इसे कनरपीघाट की लड़ाई लिखा है और इसका रचनाकाल संवत १८३७ आँका है।[२]

१२४ मधुसूदनदास

ये माथुर चौबे थे। इन्होंने किसी गोविंददास के अनुरोध मे संवत् १८३९ मे रामाश्वमेध नामक वीरभावापन्न धार्मिक प्रबंधकाव्य लिखा, जिसमें रामचंद्र जी द्वारा किए गए अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान, अश्व के साथ जानेवाली सेना, तथा उसके सुबाहु, दमन, विद्युन्माली, वीरमणि, शिव, सुरथ आदि से घनघोर युद्ध का वर्णन किया है। राम की सेना और उसका लव कुश से महायुद्ध भी इसी रचना मे बडी सरसता के साथ वर्णित है। भाव, भाषा, शैली और प्रभाव की दृष्टि से इस रचना पर तुलसी का अद्भुत प्रभाव पाया जाता है। तुलसी के अन्यतम प्रशसक आचार्य रामचद्र जी शुक्ल के मत से रामाश्वमेध की घटनाएँ पद्मपुराण पर आधारित है तथा पदधकौशल और काव्यशक्ति के आधार पर यह रचना रामचरितमानस का परिशिष्ट ग्रंथ होने योग्य है।[३]

१२५. श्रीकृष्ण भट्ट

ये अलवर निवासी थे और जाति के तैलग ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम

---

१. हिंदी साहित्य और बिहार, आचार्य शिवपूजन सहाय, पृष्ठ १६२।
२. हिंदी वीरकाव्य, डॉ० टीकमसिंह तोमर, पृष्ठ २०।
३. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचद्र शुक्ल, पृष्ठ ३४५।

मुरलीधर भट्ट था। कहा जाता है, श्रीकृष्ण भट्ट जन्मांध थे। इन्होंने संवत् १८४० में 'श्रालीजाप्रकाश' नामक एक वीरकाव्य रचा।[१]

१२६. भान कवि

भान कवि का विस्तृत परिचय ज्ञात नहीं है। हिंदी वीरकाव्य में डॉ० टीकमसिंह जी तोमर ने इनका नाम भान कवि लिखा है।[२] संवत् १८४५ में भान कवि द्वारा लिखित 'नरेंद्रभूषन' नामक एक अलंकारग्रंथ मिलता है, जिससे यह पता चलता है कि भान कवि के आश्रयदाता महाराज रनजोरसिंह बुंदेला थे। नरेंद्रभूषन में भान ने विविध अलंकारों के उदाहरण देते समय स्वयं शृंगार, वीर, भयानक, अद्‌भुतादि रसों के कवित्त लिखे हैं, जिनके आधार पर इनके सुकवि होने का अच्छा प्रमाण मिलता है। भाव और भाषा पर इनका अच्छा अधिकार था। एक उदाहरण लीजिए—

रन मतवारे ये जोरावर दुलारे तव,
बाजत नगारे भए गालिब दिलीस पर।
दल के चलत भर भर होत चारों ओर,
चालति धरनि भारी भार सों फनीस पर॥
देखि के समर सनमुख भयौ ताहि समै,
बरनत भान पैज कै कै बिसै बीस पर।
तेरी समसेर की सिफत सिंह रन जोर,
लखी एकै साथ हाथ अरिन के सीस पर॥[३]

१२७. शिवराम भट्ट

ये ओड़छा नरेश राजा विक्रमादित्य के दरबारी कवि थे। इन्होंने संवत् १८४७ में अपने आश्रयदाता के यशविस्तार के लिये 'विक्रमविलास' नामक एक ग्रंथ बनाया तथा लगभग इसी समय के आसपास प्रतापपच्चीसी लिखी, जो वीररस की अच्छी रचना है।[४]

१२८. पद्माकर

पद्माकर का मूल नाम प्यारेलाल भट्ट था। इनका जन्म मध्यप्रदेश के सागर नामक नगर में संवत् १८१० में हुआ था। सागर में जन्म होने के कारण इन्होंने अपना नाम पद्माकर रखा। इनके पिता श्री मोहनलाल जी भट्ट अत्रि गोत्रीय तैत्तिरीय शाखा के यजुर्वेदी तैलंग ब्राह्मण थे।

---

१. हिंदी साहित्य : द्वितीय खंड, सं० डॉ० धीरेंद्र वर्मा, पृष्ठ ६७१।
२. हिंदी वीरकाव्य, डॉ० टीकमसिंह तोमर, पृष्ठ २०।
३. हिंदी साहित्य, द्वितीय खंड, सं० डॉ० धीरेंद्र वर्मा, पृष्ठ १७६।
४. हिंदी वीरकाव्य, डॉ० टीकमसिंह तोमर, पृष्ठ २०।

पद्माकर ने अपने पिता से ही काव्य और मंत्रसिद्धि की शिक्षा पाई थी। कहा जाता है, तत्कालीन सागरनरेश रघुनाथराव अप्पा साहेब की प्रशंसा में इन्होंने एक कविता सुनाकर एक लाख मुद्राएँ पुरस्कार प्राप्त की थीं। फिर ये बाँदा चले गए जहाँ महाराजा जैतपुर तथा सुगरा निवासी नोने अर्जुनसिंह ने इन्हें अपना गुरु बनाया और इनकी खूब आवभगत की।

पद्माकर दतिया के महाराज पारीक्षत, रजधान के गोसाईं अनूपगिरि उपनाम हिम्मतबहादुर, सतारा के महाराज रघुनाथराव उर्फ राघोबा, जयपुर के सवाई महाराज प्रतापसिंह, जयपुर के राजा जगतसिंह, उदयपुर के महाराज भीमसिंह, बूँदीनरेश, ग्वालियरनरेश दौलतराव सिंधिया, और उनके मुसाहिब ऊदाजी के यहाँ रहे। जयपुरनरेश महाराज जगतसिंह ने इन्हें अपना राजकवि नियुक्त किया था।

प्रवृत्ति की दृष्टि से पद्माकर को रीतिबद्ध कवि ही मानना चाहिए पर इन्होंने जो वीर-चरित-काव्य या प्रशस्तियाँ लिखी हैं, उनके कारण ये रीतिमुक्त काव्यों में भी परिगणित किए जा सकते हैं। जीवन के अंतिम दिनों में इन्हें कुष्ठरोग हो गया था, अतः गंगासेवन के लिये ये कानपुर चले गए, और वहीं संवत् १८९० विक्रमाब्द में इनका स्वर्गवास हुआ।

पद्माकर रीतिकाल के प्रमुख कवियों में से एक थे। इनकी अब तक ९ रचनाएँ उपलब्ध हुई हैं--१ हिम्मतबहादुर विरुदावली, २ जगद्विनोद, ३. पद्माभरण, ४. रामरसायन, ५. प्रबोधपचासा, ६. गंगालहरी, ७ हितोपदेश, ८ आलीजाहप्रकाश और प्रतापसिंहविरुदावली। इनमें से वीरकाव्य की दृष्टि से इनकी निम्नलिखित रचनाएँ महत्वपूर्ण हैं--

१. हिम्मतबहादुर विरुदावली

यह पद्माकर की प्रारंभिक रचना है, जिसमें बुधवार दिनांक १८ अप्रैल, १७९२ ई० (संवत् १८४९) को नयागाँव (नौगाँव) और अजयगढ़ के बीच हिम्मतबहादुर और नोने अर्जुनसिंह के बीच हुए युद्ध का कवि ने २११ भिन्न भिन्न छंदों में वर्णन किया है। यह विरुदावली युद्ध के बाद ही निकट भविष्य में लिखी गई होगी, अतः इसका रचनाकाल संवत् १८४९ के लगभग मानना चाहिए।

२. जगद्विनोद

यह नायिकाभेद और रसनिरूपण का ग्रंथ है, जिसे पद्माकर ने जयपुरनरेश महाराज जगतसिंह की आज्ञा से बनाया था। इस ग्रंथ के प्रारंभ में कवि ने अपने आश्रयदाता की जो प्रशंसा की है, वही प्रशस्ति होने के कारण वीरकाव्य के अंतर्गत ली जा सकती है।

३. प्रतापसिंह विरुदावली

६८ पृष्ठों का यह ग्रंथ पद्माकर के वंशजों के पास जयपुर में सुरक्षित है। इसमें जयपुर के सवाई राजा प्रतापसिंह का यशवर्णन किया गया है।

पांडित्य और कवित्व दोनों की दृष्टि से पद्माकर उच्च श्रेणी के कवि थे। डॉ० सियाराम तिवारी ने ईश्वरपचीसी, जमुनालहरी, निनहारीलीला, इनकी अन्य रचनाएँ बतलाई है और हितोपदेश के स्थान पर राजनीति नामक एक अन्य ग्रंथ का उल्लेख किया है।

पद्माकर की कविता के कुछ उदाहरण लीजिए—

हिम्मतबहादुर विरुदावली का युद्धवर्णन

अवनि की मूकै घालि न चूकैं दै दै कूकैं कूदि परे।
गहि गरदन पटकै नेकु न भटकै भुकि भुकि भटकै उमँग भरे ॥
रन करत अड़ंगे सुभट उमंगे बैरिन अंगे करि झपटै।
सीसन की टक्कर लेत उटक्कर घालत छक्कर लरि लपटैं ॥
तहँ हथ्या हथ्थी, मथ्था मथ्थी लथ्था पथ्थी माचि रही।
काटैं कर कट कट बिकट सुभट भट कासो खटपट जात कही ॥
गहि कठिन कटारी पेलत न्यारी रुधिर पनारी बमकि कहैं।
खंजर खिन खनकै ठेलत ठनकै, तन सनि सनि कै हिलगि रहैं ॥
गहि गहि पिसकब्जैं मरम न गब्जै तकि तकि तब्जैं काटत है।
कंमर तें छूरे काटत पूरे रिपु तन रूरे छाँटत हैं ॥
करि धक्का धक्की हक्का हक्की टक्का टक्की मुदित मच्यो।
घन घोर घुमंडी रारि उमंडी किलकति चंडी निरखि नच्यो ॥

ध्वन्यात्मकता, द्वित्व-वर्ण-योग, अनुप्रास, प्रवाह, गति और बिंब की दृष्टि से पद्माकर के युद्धवर्णन बहुत सुंदर है। उनमें ओज और प्रभाव अच्छी मात्रा में पाया जाता है।

युद्धवीरों के साथ साथ पद्माकर ने दानवीरों का भी अन्युक्तिपूर्ण वर्णन किया है। जैसे—

संपति सुमेरु की कुबेर की जु पावै ताहि,
तुरत लुटावत बिलंब उर धारै ना।
कहै पद्माकर सुहेम हय हाथिन के,
हलके हजारन के बितर बिचारै ना ॥
गंज गज बकस महीप रघुनाथराव,
याही गज धोखे कहूँ काहू दै डारै ना।
याही डर गिरिजा गजानन को गोइ रही,
गिरि तें गरें तें निज गोद तें उतारै ना ॥

ये अत्युक्तिपूर्ण प्रशस्तियाँ युगीन दरबारी काव्य की अंग थीं। राजदरबार में संमान या पुरस्कार की कामना से राज्याश्रित कवि प्राय. अपने आश्रयदाताओं का ऐसा अतिरंजित औदार्य प्रदर्शित करते थे अत: पद्माकर भी इस प्रभाव से नहीं बचे। सम-सामयिक कविपरंपरा का अंश होने के कारण पद्माकर के ये वर्णन उनकी काव्यसाधना या काव्यप्रतिभा के लिये दोष रूप नही कहे जा सकते।

१२९. प्राणनाथ

ये बैसवाड़े के ब्राह्मण थे और कविता में अपने नाम के साथ 'जन' और 'कवि' शब्द का प्रयोग करते थे। इन्होंने कार्तिक शुक्ल ९, संवत् १८५० को 'चक्रव्यूह' या 'चक्राव्यूह' की रचना की। इनकी दूसरी रचना 'बभ्रुवाहन' है, जिसका रचनाकाल अज्ञात है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी में है।[१] इस प्रति मे ३८ पत्र है और लिपिकाल सवत् १८६८ है। इसकी पांडुलिपि पूर्ण किंतु लिखावट भ्रष्ट है। ग्रंथारंभ में शंभु, भवानी, गणेश और सूर्य आदि की बंदना है और अंत में ग्रंथमाहात्म्य दिया गया है। ग्रथ का मुख्य विषय अर्जुन और उसके पुत्र बभ्रुवाहन का युद्ध है, जिसमे दोनों वीर लडते लड़ते एक दूसरे के हाथ मारे जाते हैं और अंत में कृष्ण दोनों को अमृत पिलाकर जीवनदान देते है। बभ्रुवाहन के युद्धप्रसंग का उदाहरण लीजिए—

गहि तेग वीर सुवेग पर सरदार भट अगिनीत झुके।
नभ वीर विमल विमान पर सुर निकर पेषत कवतुके॥
मारे सवेत सुवेग के भारे भटा मेदनि परे।
सहमे रनन रन लरिवै नैत भट नहि टारे टरे॥[२]

१३०. पाताभाई

ये भावनगरनरेश श्री जसवंतसिंह के आश्रय में संवत् १८५० में विद्यमान थे। इन्होंने अपने आश्रयदाता को प्रशंसा में 'जसोविलास' नामक एक ग्रंथ लिखा।[३]

१३१. सूरतराम

ये भरतपुर के अंतर्गत ग्राम जहानपुर. तहसील वैर के महापात्र केवलराम ब्रह्म-भट्ट के पुत्र थे। महाराज ग्वालियर ने इन्हें जहानपुर और मुखैना ग्राम जागीर में दिए

---

१. काशी नागरीप्रचारिणी सभा, हस्तलिखित प्रतिसंख्या ३०८२।१९३९।
२. बाबुरवाहन, हस्तलिखित प्रति संख्या ३०८२।१९३९, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी।
३. गुजरात की हिंदी काव्यपरंपरा तथा आचार्य कवि गोविंद गिल्लाभाई, डॉ० मा० गो० चतुर्वेदी, अप्रकाशित प्रबंध, बड़ौदा विश्वविद्यालय, पृष्ठ ७२।

थे। इनका कविताकाल संवत् १८५० वि० के लगभग ठहरता है। इनके स्फुट छंद ही मिले है। यथा—

एक ही पाँव सो सैंधिया साहब, सागर लौं सब दाबी धरा है।
पूरब पच्छिम उत्तर दक्खिन, लोकपती मन माँहि डरा है।।
दूसरे पाँव को है वसुधा, कित दूरन टेकन डाँड़ पड़ा है।
'सूरत' सातहु दीपन में, तू ही लँगड़ा सो तुही लँगड़ा है।।[1]

१३२. खुमान 'मान' कवि

खुमान का उपनाम मान था। ये वंदीजन थे और बुंदेलखड राज्य के अंतर्गत चरखारी के महाराजा विक्रमसाहि के आश्रय में रहते थे। छतरपुर राज्य के अतर्गत खरगवा गाँव में इनका निवास था। अमरप्रकाश, अष्टजाम, लक्ष्मणशतक, हनुमान-नखशिख, हनुमानपंचक, हनुमानपचीसी, नीतिविधान, समरसार, नृसिहचरित्र, नृसिह-पचीसी इनकी रचनाएँ है।[2]

समरसार वीररसात्मक काव्य है, जो संवत् १८५२ मे लिखा गया था। इसमें राजकुमार धर्मपालसिह द्वारा किसी उच्च पदाधिकारी अँग्रेज को वश मे करने की घटना का वर्णन किया गया है।[3]

लक्ष्मणशतक सवत् १८५५ की रचना है। इसमें कवि ने लक्ष्मण और मेघनाद के युद्ध का वर्णन कर उनकी वीरता का बखान किया है—

महावाहु भूप दसरथ्थ को कुमार,
  मारहू तै सुकुमार जैतवार समरन कौ।
अमरन सरन अमंगल हरन,
  भार धरनी हरन मजबूत महा मन कौ।।
नंदन सुमित्रा को निकंदन अमित्रन को,
  मान जगबंद बड़ो बंधु सत्रुघन कौ।
कंता उरमिल को नियंता दुष्ट जीवन कौ,
  हंता इंद्रजीत कौ, निहता षलपन कौ।।

कवि का मुख्य उद्देश्य लक्ष्मण की कीर्ति का गशगान करना है, किंतु वीरता के वर्णन में मान के काव्य में सरसता, प्रवाह और प्रभाव पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है।

रामकाव्य में लक्ष्मण राम के सहायक के रूप में ही चित्रित किए गए हैं किंतु

---

१. भरतपुर-कवि-कुसुमांजलि, संपादक डॉ० कुंजविहारीलाल गुप्त, पृष्ठ ५४।
२. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृष्ठ ३५५।
३. हिंदी वीरकाव्य, डॉ० टीकमसिह तोमर, पृष्ठ २०।

मान ने अपने लक्ष्मणशतक में लक्ष्मण को काव्य का नायक बनाकर उनके वीर-भाव-पूर्ण चरित्र का अच्छा वर्णन किया है।

अभी खोज में इनके रामरासो का पता चला है, जिसका रचनाकाल संवत् १८६५ है। खोज विवरण के अनुसार इस ग्रंथ का मुख्य विषय रामचरितमानस के लंकाकांड की कथा है।[1]

१३३. प्रतापसाहि

ये रतनेस बंदीजन के पुत्र थे तथा बुंदेलखंड के अंतर्गत चरखारी के राजा विक्रमसाहि के आश्रय में रहते थे। इनका रचनाकाल संवत् १८५२ से १९०० तक माना जाता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इनकी ग्यारह रचनाओं की सूचना दी है—

१ जयसिंहप्रकाश (संवत् १८५२), २ व्यंग्यार्थकौमुदी (सं० १८८२), ३. काव्यविलास (सं० १८८६), ४. शृंगारमंजरी (सं० १८८९), ५. शृंगारशिरोमणि (सं० १८९४), ६. अलंकारचिंतामणि (सं० १८९४), ७ काव्यविनोद (संवत् १८९६), ८. रसराज की टीका (सं० १८९६), ९ रत्नचंद्रिका (संवत् १८९६), १० जुगलनख-शिख (सीताराम का नख-शिख-वर्णन), ११ नखशिख (बलभद्रकृत नखशिख की टीका)।[2]

डॉ० टीकमसिंह तोमर ने इनके जयसिंहप्रकाश[3] और काव्यविलास[4] को वीर-काव्य के अंतर्गत माना है। जयसिंहप्रकाश राजपूताना के किसी राजा जयसिंह की प्रशंसा मे लिखा गया है।

१३४. दुर्गाप्रसाद

इन्होंने संवत् १८३५ में रीवाँ के महाराज अजीतसिंह के सरदारों और पेशवा के सरदार जसवंतसिंह के बीच चारहट (गीवाँ) के मैदान मे होनेवाले युद्ध का वर्णन किया है। इस युद्ध में अजीतसिंह अजेय रहे। इसी प्रसंग को लेकर दुर्गाप्रसाद ने 'नायकरासो' अथवा 'अजीतसिंह-फत्ते-ग्रंथ' की रचना की थी। दुर्गाप्रसाद के आश्रयदाता कोई पंडित राजाराम थे।[5]

१३५. शिवनाथ कवि बंदीजन

शिवनाथ की प्रसिद्धि 'शिवनाथ कवि बंदीजन' के रूप में है। इनका जन्म संवत् १८१० में हुआ था। उदयपुर और रीवाँ दरबार की ओर से इन्हे क्रमश. एक एक गाँव

---

१. हिंदी की हस्तलिखित पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, भाग २, पृष्ठ २०१।

२. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृष्ठ २६०।

३. हिंदी वीरकाव्य, डॉ० टीकमसिंह तोमर, पृष्ठ १९।

४. वही, पृष्ठ २०।

५. हिंदी साहित्य, द्वितीय खंड, सं० डॉ० धीरेंद्र वर्मा, पृष्ठ १७६।

पुरस्कार में दिया गया था। कुछ समय तक ये पन्नानरेश महाराज छत्रसाल के पुत्र जगतराज या जगतसेन के आश्रय में भी रहे। जोधपुरनरेश महाराज मानसिंह जी ने इन्हें निम्नलिखित कवित्त पर ५ हजार टका पुरस्कार स्वरूप दिए थे—

हिलैंगे दिगेंद्र, दलमलैंगे गिरेंद्र,
खलभलैंगे समुद्र, बल चलैंगे जहान के।
दुरिहै दिनेस, धरधरिहै फनेस,
पुनि परिहै असेस सुर महित विमान के॥
कहे शिवनाथ नभ तोरि है तरजि गाज,
मानियै अरज मान नंदन गुमान के।
धूजैंगी धराह, धुकि जाहिंगे बराह,
जनि पैन्हियै सनाह बादशाह हिंदुवान के॥

बलरामपुर के शासक भइया बहादुरसिंह के यहाँ इन्होंने अमरकोष का भाषानुवाद किया।[१] खोजरिपोर्ट के अनुसार इन्होने बलरामपुर के उक्त शासक भइया बहादुरसिंह की वीरता का बखान करने के लिये 'रासा भइया बहादुरसिह का' ग्रंथ लिखा। इस रासा में संवत् १८५३ के एक युद्ध का वर्णन है, अतः इसका रचनाकाल सवत् १८५४ माना जा सकता है। भइया बहादुरसिह ने यह युद्ध किसी शरणागत की रक्षा के लिए लड़ा था।[२]

डॉ० टीकमसिंह तोमर की सूचना के अनुसार शिवनाथ ने संवत् १८८२ में वंशावली और उसके ही लगभग रायसा नामक वीरकाव्य लिखा।[३] डॉ० मानाप्रसाद जी गुप्त की मान्यता के अनुसार रायसा में धारा के महाराज जसवंतसिंह तथा रीवाँ के महाराजा अजीतसिह का युद्ध वर्णित है। इसका मुख्य रस वीर है और विविध छदो का प्रयोग हुआ है। रचना साधारण है।[४]

१३६. कैंवाट सरवरिया

ये सरवरिया ब्राह्मण थे। इन्होने संवत् १८५४ में कौलापुर (पाटन) के राजा अनंतराय का वृत्तात 'अनंतराय सांखला री वार्ता' नामक ग्रंथ में लिखा है। यह रचना एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल, कलकत्ता में सुरक्षित है। अचलदास खीची री बात की तरह यह रचना भी गद्य-पद्य-मय है।[५]

---

१. असनी के हिंदी कवि, डॉ० विपिनबिहारी त्रिवेदी, पृष्ठ ६६।
२. हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, भाग १, पृष्ठ ६३१:
३. हिंदी वीरकाव्य, पॉ० टीकमसिंह तोमर, पृष्ठ २०।
४. हिंदी साहित्य, द्वितीय खड, डॉ० धीरेंद्र वर्मा, पृष्ठ १३५।
५. हस्तलिखित हिंदी ग्रंथों का खोज विवरण, सन् १९०१, ग्रंथसंख्या २९।

१३७. सुक्खासिंह

कविवर सुक्खासिंह का जन्म संवत् १८२५ में हुआ था। इनके माता पिता इनके बचपन में ही स्वर्गवासी हो गए थे, अतः इनका लालन पालन इनके बड़े भाई द्वारा हुआ था। प्रारंभ से ही ये बड़े घुमक्कड़ थे, अतः इन्होंने नानकमता, पटना आदि स्थलों की यात्रा की और अनेक तीर्थों के दर्शन के निमित्त अच्छा तीर्थाटन किया था[१]। इसी यात्रा-क्रम के बीच इनके अग्रज का देहांत हो गया। अतः ये आनंदपुर के निकट गुरु गोविंदसिंह के लीलास्थल केशगढ़ में आकर बस गए और वहीं ग्रंथी का काम करने लगे[२]। गुरु गोविंदसिंह और उनके काव्य के प्रति इनके मन में बड़ी श्रद्धा थी, अतः इन्होंने गुरु जी के काव्य का आद्यंत अध्ययन किया और अंत मे 'गुरुविलास' नामक काव्य रचा, जिससे इनकी प्रबंधपटुता और काव्यप्रतिभा का परिचय मिलता है।[३] भाई कान्हसिंह के मत से सुक्खासिंह का देहांत संवत् १८९५ मे हुआ।[४]

सुक्खासिंह ने अपनी कथा और गुरुशोभा के आधार पर गुरुविलास मे गुरु गोविंदसिंह का विस्तृत जीवनचरित्र लिखा है। इस जीवनचरित्र में घटनाएँ ऐतिहासिक क्रम से हैं और प्रायः सभी तिथियाँ, स्थल और व्यक्तियों के नाम प्रामाणिक हैं।[५]

सुक्खासिंह की गुरु गोविंदसिंह पर अगाध श्रद्धा थी और इस श्रद्धा के साथ साथ धार्मिक दृष्टि भी थी अतः सुक्खासिंह ने गुरु गोविंदसिंह को अवतारी महापुरुष सिद्ध करने के लिये अनेक किंवदंतियाँ भी गुरुविलास मे जोड़ दी हैं। गुरु गोविंदसिंह द्वारा मृगया के समय मारे गए पक्षियो का गुरु गोविंदसिंह द्वारा पुनर्जीवित किया जाना इसका अच्छा प्रमाण है।[६]

सुक्खासिंह ने गुरुविलास में गुरु गोविंदसिंह को एक धीरोदात्त नायक के रूप में चित्रित कर उनके विनय, त्याग, दक्षता, शुचिता स्थिरता, सैन्यसंगठन, युद्धकौशल व धर्मप्रचार आदि कार्यों की भूरि भूरि प्रशंसा की है।

गुरुविलास के युद्धवर्णन बड़े सजीव और स्वाभाविक है। सुक्खासिंह ने प्रत्येक युद्ध की पृष्ठभूमि, कारण, सैन्यसज्जा, वीरों का उत्साह, सैन्यप्रस्थान आदि का तो विधि-वत् वर्णन किया ही है किंतु अपने चरितनायक के साथ साथ उसके शत्रु की शक्ति का अव-

---

१. गुरुविलास, श्री सुक्खासिंह, पृष्ठ ४।
२. वही, पृष्ठ ६०५।
३. वही, पृष्ठ ६०५।
४. गुरु-शब्द-रत्नाकर, भाई कान्हसिंह, पृष्ठ ६२७।
५. गुरुविलास, श्री सुक्खासिंह, पृष्ठ १०१, १६१, ४१६।
६. वही, पृष्ठ १८६।

मूल्यन नहीं किया है। उदाहरण के लिये मुगल सेना के प्रस्थान की प्रतिक्रिया का चित्रण करनेवाला गुरुविलास का एक छंद हम यहाँ दे रहे हैं—

> कोप मनेच्छ चढै अगनै इम दुंदभ ढोल सुबोल बजाई।
> मारग जौनन गौन करै, जल कूप नदी सर सूखत जाई॥
> काँपत सकल धरन भौ भारा, सूरज गगन न जात निहारा।
> निरख लोग उचरत नर नारी, कापर कुप्यो शहनशाह भारी[१]॥

युद्धकाल में सिक्खों द्वारा प्रयुक्त सांकेतिक गुप्त भाषा का प्रमाण भी गुरुविलास में मिलता है। औरंगजेब के हमले की सूचना देते हुए गुरु जी के हितैषी लिखते हैं कि एक सौदागर आपपर हर्षित होकर अपने गुलामों सहित आपके दर्शनार्थ आ रहा है।[२] पत्र की सांकेतिकता स्पष्ट है। सुक्खासिह कुशल कथाकार थे, अत. उन्होंने अपने काव्य में प्रबंधसूत्रों का बड़ी सतर्कता से निर्वाह किया है। उनके काव्य मे युद्ध के गतिशील चित्र, जय पराजय का द्वंद, सैनिक और सेनापतियों की मनोदशा, हाथी से विचित्रसिह का युद्ध, शत्रुसैन्य का घेरा, आनंदपुर मे रसद का अभाव, शूरों और कायरों की मन स्थिति, आदि के सूक्ष्म चित्रण मिलते है। शत्रुओं की शक्ति, वीरों की गर्जना, सिक्खो के युद्ध आदि सभी का वर्णन करते समय सुक्खासिह ने अपने चरितनायक की आनबान और सिक्ख जाति की मर्यादा सुरक्षित रखी है। आनंदपुर के युद्ध की प्रथम दिवस की स्थिति का दृश्य देखिए—

> परयो मार भारा। कथे कौन सारा॥
> भये रुंड मुडा। मनो जुद्ध चंडा॥
> जोगन भूत पिशाच परा कल नारद आन तही सु नच्यो।
> बीर बुग्रज सु कानन डाकन गीधन यो चित चाउ रच्यो॥
> रुड सु मुंड बिथार घने पिख्यो कवि नागर भाव खच्यो।
> मानहु काल प्रलै जनु स्याम त्रिया सु त्याग इतै सु नच्यो॥[३]

कवि ने छद दोष से बचने के लिये जु, सु आदि निरर्थक शब्दों का व्यर्थ प्रयोग किया है, फिर भी सुक्खासिह के युद्धवर्णन यत्रतत्र पर्याप्त सुंदर है। आनदपुर के युद्ध का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि इस युद्ध मे दिन मे प्रलयकाल का साक्षात् नृत्य हो रहा था। दिन में मुगल तोपों मे गोले बरसाते थे और गुरु गोविंदसिह अपने प्राणों की चिंता छोड़ हाथ मे तलवार ले स्वयं शत्रुओं का संहार करते और सैन्यसंचालन करते थे। रात में खालसा शत्रुसेना पर आक्रमण करते थे। उनके आकस्मिक हमले से भयभीत

---

१ वही, पृष्ठ २७०।

२. वही, पृष्ठ २७१।

३. गुरुविलास, सुक्खासिह, पृष्ट २७४–२७५।

तुर्क अल्लाह अल्लाह चिल्लाकर भागते थे और अपने प्राण बचाने के लिये तितर बितर हो जाते थे। खालसा की मार से वे हजारो की संख्या में नष्ट होते थे और विजयी खालसा उनके अस्त्र शस्त्र लूटकर रातो रात गढ़ मे घुस जाते थे।[१]

गुरुविलास मे सिक्खो की गुरु गोविंदसिंह के प्रति अगाध श्रद्धा और निष्ठा पाई जाती है। गुरु जी का शौर्य और सिक्ख जाति का साहस उसमें सर्वत्र पाया जाता है। इस दृष्टि से सुक्खासिह सिक्खो के आदर्श जातीय कवि कहे जा सकते हैं।

१३८. मनीराम शुक्ल

इन्होने संवत् १८५५ मे देवी दुर्गा और दैत्यों के युद्धप्रसग को लेकर 'चंडीचरित्र' नामक एक धार्मिक वीरकाव्य लिखा है।[२]

१३९. अनंत फंदी

अनंत फंदी महाराष्ट्र के कौडिन्य गोत्रीय यजुर्वेदी ब्राह्मण थे। इनकी माता का नाम राऊबाई, पत्नी का नाम म्हालसाबाई और उपनाम घोलप था। इनका जन्म संवत् १८०१ वि० मे संगमनेर, जिला अहमदनगर मे हुआ था। बचपन से ही पितृविहीन होने के कारण इनका लालन पालन इनकी माता ने किया।[३] बचपन में ये स्वभाव से बहुत उद्दंड और स्वतंत्र प्रकृति के थे। कहा जाता है, भवानी बुवा नामक एक सिद्ध पुरुष के शुभाशीष से अनंत फंदी के मन मे काव्यसृजन की प्रेरणा का स्फुरण हुआ और कालांतर मे इन्होंने स्फुट पद, लावण्या (लावनी), फटके (उपदेशपरक पद), पोवाड़े तथा ओवी-बद्ध रचनाएँ लिखीं। श्री कृ० गं० दिवाकर ने अनंत फंदी के एकमात्र ऐतिहासिक ग्रंथ का नाम 'श्री-माधव-ग्रंथ' लिखा है।[४] किंतु मराठी के सर्वाधिक प्रचलित और सर्वमान्य इतिहास ग्रंथ महाराष्ट्र सारस्वत मे फंदी की उक्त रचना का नाम 'श्री-माधवनिधन-ग्रंथ' दिया गया है।[५]

महाराष्ट्र सारस्वत की सूचना के अनुसार श्री-माधवनिधन-ग्रंथ के प्रथम पाँच अध्यायो की सामग्री रघुनाथराव पेशवा के पुत्र बाजीराव द्वितीय ने स्वयं लिखकर कवि को दी थी।[६] छठा अध्याय कवि की स्वानुभति का प्रदेय है, जिसमे बाजीराव द्वितीय के समय की दुरवस्था का वर्णन किया गया है।

---

१. वही, पृष्ठ २९६–२९७।

२. हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, भाग १, पृष्ठ २७७।

३. ऐतिहासिक पोवाड़े, श्री य० न० केलकर, पृष्ठ ३।

४. महाराष्ट्र में हिंदी लोककाव्य, श्री कृ० ग० दिवाकर, पृष्ठ ५२।

५. महाराष्ट्र सारस्वत, वि० ल० भावे, सं० श० गो० तु० पु०, पृष्ठ ५४६।

६. वही, पृष्ठ ५४६।
श्री-माधवनिधन-ग्रंथ, अनंत फंदी, चतुर्थ अध्याय, छंद ५४–५५।

अनंत फंदी अत्यधिक प्रभावशाली तमाशगीर, गायक और कीर्तनकार थे। लोग हजारों की संख्या मे एकत्रित हो इनका तमाशा देखते और कीर्तन सुनते थे। फंदी के समकालीन लावनीकार होनाजी बाला ने अनद फदी के वारे में एक लावनी लिखी है। इस लावनी में फंदी की काव्यकला, स्वभाव, रूप, गुण, संपत्ति, वैभव, और प्रभाव की भूरि भूरि प्रशंसा की है, जिससे फदी की लोकप्रियता का अनुमान लगाया जा सकता है।[१]

संवत् १८५७ से संवत् १८७५ तक फंदी चिंतामणि साँगलीकर, बालासाहेब मिरजकर, फत्तेसिह गायकवाड़ आदि के आश्रय मे रहे। एक बार महेश्वर में अनंत फंदी तमाशा कर रहे थे। उसी समय उनकी भेंट सुप्रसिद्ध अहिल्याबाई होल्कर से हुई। अहिल्याबाई होल्कर धार्मिक प्रवृत्ति की महिला थी। उन्होने फदी को तमाशा करना छोड़, धर्मभावापन्न काव्य रचने की प्रेरणा दी। फंदी पर अहिल्याबाई के कथन का इतना असर हुआ कि ये उसी क्षण अपना ढफ फोड़, तमाशे का पारिश्रमिक न ले सीधे संगमनेर आ गए। इसके बाद संगमनेर मे अनतस्वामी की पुण्यतिथि का उत्सव आयोजित किया गया और लोगो ने अनत फदी को तमाशा करने के लिये बाध्य किया, अतः इन्होने विवश होकर अपनी स्वीकृति दे दी। हजारो लोग इनके तमाशे के लिये व्यग्र बैठे थे। संयोगवश उसी समय अहिल्याबाई संगमनेर होते हुए पूना जा रही थी। जब उन्हे यह पता चला कि फंदी तमाशा कर रहे है तो वे वहाँ आई। उनके आने की सूचना पाते ही फंदी ने तमाशे की धारा को बदलकर कीर्तन शुरू कर दिया। अहिल्याबाई ने फंदी को कीर्तन करते देख कीमती वस्त्रो और अलंकारो से उनका संमान किया। यह घटना फंदी की चतुराई का प्रमाण देती है।

फंदी की मृत्युतिथि के सबंध में मराठी के विद्वान् एक मत नही है। महाराष्ट्र सारस्वतकार श्री वि० ल० भावे ने फदी की मृत्यु का समय ईस्वी सन् १८२१ तदनुसार विक्रम सवत् १८७८ दिया है किंतु श्री य० न० केलकर के तंत कवि तथा शाहीर नामक ग्रंथ मे फंदी की मृत्यु सन् १८१६ तदनुसार विक्रम संवत् १८७६ दिया गया है अतः फंदी की निश्चित मृत्युतिथि अभी तक अज्ञात है।

फंदी की सभी रचनाएँ मराठी मे है[४] किंतु उनका एक पोवाड़ा हिंदी में मिलता है।

---

१. होनाजी बालाकृत लावण्या स० श्री शं० तु० शालिग्राम, पृष्ठ १७–१८।
महाराष्ट्र सारस्वत, श्री वि० ल० भावे, शाहीर, पृष्ठ ४६८।
तंत कवि तथा शाहीर श्री य० न० केलकर, पृष्ठ ५४।
२. महाराष्ट्र सारस्वत, श्री वि० ल० भावे, पृष्ठ ४६८।
३. तंत कवि तथा शाहीर, श्री य० न० केलकर, पृष्ठ ५६।
४. अनत फंदी कृत कविता, सं० श्री शं० तु० शालिग्राम, चित्रशाला प्रेस, पूना से प्रकाशित, सं० १९०८।

यह पोवाड़ा नाना फडणीस का पोवाड़ा कहा गया है। इसमें १३ मार्च, सन् १७९५ (संवत् १८५२) की खड्या की लड़ाई का वर्णन किया गया है। इस लड़ाई में मराठों ने निजाम को हराया था।[1] अतः यह पोवाड़ा संवत् १८५२ और १८५६ के बीच लिखा गया होगा। नाना फडणीस के पोवाड़े का ऐतिहासिक वर्णन देनेवाला अंश इस प्रकार है—

किया मोगल पर हमला उस दिन कई उमराव संगा चले।
शिंदे होलकर और नागपुरवाले भोंसल आन मिले॥
दाभाड़े पाटणकर निंबालकर कट्टे लड़नेवाले।
पवार जाधव माधवराव के संगत नाना भी निकले॥
फड़के आपा बलवंत रास्ते आभये इसमें कोण रह्या।
चुका भुला हुवा देखने कहा अपना अखर गया॥
अर्जी किसे खबर, सवाई माधवराव सवाई, सवाई डंका बजाया॥
सब मिल हल्ला किया उड़ा दिया नबाब के धुडके धुडके।
मशरमुलुक पकड़ कैद मे डाल दिया बैठो चुपके।
पानी बिगर घोड़े ऊँट हती तमाम मर गये नबाब के।
रुपये का जल एक टोरा पानी इसी जगा रखे॥
किसे खबर भइ मेहेल मुलुख नबाब ने क्या दिया लिया।
फंदी अनंत कु तें क्या मालुम सुनते है कुच कबुल किया॥
सच होयगा, सवाई माधवराव सवाई, सवाई डंका बजाया॥

उक्त उद्धरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि पोवाड़ा लिखते समय फंदी ने सुनी सुनाई बातों को ही काव्यबद्ध किया है। फंदी के पोवाड़े में हिंदी, मराठी, दक्खिनी, उर्दू आदि भाषाओं के शब्द प्रयुक्त हुए हैं; फिर भी महाराष्ट्र के एक लोककवि की हिंदी रचना होने के कारण उनके उक्त पोवाड़े का ऐतिहासिक मूल्य है।

फंदी के अन्य पोवाड़े मे कहीं कहीं शृंगारिकता इतनी प्रबल है कि उसे शालीनता का दामन छोड़कर ही गृहीत किया जा सकता है, पर लोकरुचि के अनुरूप होने के कारण उनकी शृंगारिकता दोष नहीं मानी जा सकती। ऐसे पोवाड़े या लावनियाँ साहित्यिक वजन में हल्की समझी जाएँगी, पर लोकमानस पर फंदी के फटके (उपदेशपरक पद) आज भी अपना प्रभाव डालने में नहीं चूकते। इस दृष्टि से फंदी महाराष्ट्र के एक श्रेष्ठ लोककवि कहे जा सकते हैं।

१४०. गणेश बंदीजन

ये गुलाब कवि के पुत्र और लाल कवि के पौत्र थे। इनका जन्म असनी में हुआ

---

१. पेशव्यांची बखर—श्री कृष्णाजी विनायक सोहनी, पृष्ठ २२२।

था तथा ये काशीनरेश महाराज उदितनारायण सिंह जी के आश्रित थे। इन्होंने संवत् १८५७ के लगभग वाल्मीकि रामायण का 'वाल्मीकि रामायण श्लोकार्थप्रकाश' नाम से पद्यानुवाद किया। शिवसिंहसरोज में ये गणेश बंदीजन बनारसी कहे गए हैं[1] किंतु ये वास्तव में असनीवाले[2] थे। इन्होंने अपने आश्रयदाता की प्रशंसा में अनेक छंद लिखे हैं, जिनमें से दो छंद यहाँ उद्धृत किए जाते हैं--

चंद सम फैलो तेज प्रबल प्रचंड देखि,
दंड ह्वै अरिद वृंद खंड खंड धावते।
धाय उमराय देस देस के झराप आवैं,
ताप की तराप ड्यौढी नाँघन न पावते॥
भनत गनेस केते अदब दबे से ठाढ़े,
उदितनरायन की नजरि न पावते।
भूप औ उजीरन के कहू को इरादे ज्यादे,
जहाँ साहिजादे पाँय प्यादे चले आवते॥

१४१. गणपति 'भारती'

ये माथुर चतुर्वेदी ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम मथुरामल था। ये जयपुर के महाराजा सवाई प्रतापसिंह के दरबारी कवि और काव्यगुरु थे। 'भारती' इनका खिताब था, जो इन्हे महाराजा प्रतापसिंह ने दिया था--

कीन्ही है दीठि श्री प्रताप भूप जैपुर पति,
ता दिन तें गनपति अंग पर आब भो।
खाइबे को गाम जमा, रहिबे को घर नीके,
रतननि के भूषण सो भर भर छाब भो॥
'भारती' भनत हमें पालकी चँवर दिये,
जरी सिरपाव चाव सहित सिताब भो।
सारती सकल सुख गुरुवर उचारती,
जारती अरिन छाती भारती खिताब भो॥[3]

भारती के कुल मौलिक, अनूदित और संकलित ग्रंथों के नाम इस प्रकार हैं-- १. भीष्मपर्व भाषा, २. योग-वाशिष्ठ-सार भाषा, ३. नयपच्चीसी, ४. विरहपच्चीसी,

---

१. शिवसिंहसरोज, शिवसिंह सेंगर, सातवाँ संस्करण, पृष्ठ ४०६।
२. असनी के हिंदी कवि, डॉ० विपिनबिहारी त्रिवेदी, पृष्ठ १३६-१३७।
३. राजस्थान के हिंदी साहित्यकार, हिंदी साहित्य परिषद्, जयपुर, पृष्ठ १७६।

५. प्रीतिमंजरी, ६. अन्योक्तिकथा, ७. शृंगारहजारा, ८. वीरहजारा, ९. नवरस और १०. अलंकारसुधानिधि। इनमें से 'वीरहजारा' वीररस की दृष्टि से उल्लेखनीय है।

जयपुरनरेश सवाई प्रतापसिंह 'ब्रजनिधि' का राज्यकाल संवत् १८३५ से संवत् १८६० तक रहा[1] अतः इसी बीच मे गणपति भारती ने वीरहजारा का संकलन किया होगा।

१४२. लखधीर चारण

ये भुज के नरेश महाराज खेंगार के आश्रित थे तथा उनके दरबार मे रहते थे। संवत् १८६० के लगभग इन्होंने 'खेंगारचरित्र' नामक एक काव्य लिखा, जिसमे इन्होंने अपने आश्रयदाता की वीरता, दान, चरित्र आदि का वर्णन किया है।[2]

१४३. गोपाल जगदेव

ये भुजनरेश महाराज खेंगार के आश्रित थे तथा संवत् १८६० के लगभग विद्यमान थे। खोज में इनके ९ ग्रंथ मिले है—१. काव्यप्रभाकर, २. मित्रदशतक ३ रसालमंजरी ४ तत्वात्मबोध, ५. खेंगार-उद्वाहानंद-पीयूष, ६. शब्दविभूषित, ७. शौर्यबावनी, ८. अलंकारनिधि और ९ छंद-विधि-गति-चंद्रिका।

इनमे से 'शौर्यबावनी' शिवाबावनी की परंपरा की रचना है तथा काव्यप्रभाकर के कवि के आश्रयदाता की प्रशस्ति से संबंध रखनेवाले छंद वीरकाव्य के अंतर्गत लिए जा सकते हैं।[3]

१४४. भागमल्ल

ये भरतपुर नरेश महाराज रणजीतसिंह की सेना के वीर सैनिक और कवि थे। इन्होने स्वयं अनेक युद्धो मे भाग लिया था। ये संवत् १८६० के लगभग विद्यमान थे। इनके फुटकर कवित्तो में से एक छंद यहाँ उद्धृत किया जाता है —

दक्षिण से धायो सूर बीरन सजाय लायो,
आये सूर बीर मगरूरे महमत्ता के।
ब्रजहू में आये ब्रजबारे ने सहाय कीनी,
गौ मोर पारे दुख दीये अनरत्ता के॥
कहै 'भागमल्ल' हल्ला कियौ जसवंतराव,
खलन खदेर मद तोरे सदमत्ता के।

---

१. हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, प्रथम भाग, पृष्ठ ५८५।

२. गुजरात की हिंदी काव्य परंपरा तथा आचार्य कवि गोविंद गिल्ला भाई—डॉ० मा० गो० चतुर्वेदी, पृष्ठ ७३, अप्रकाशित प्रबंध।

३. वही, पृष्ठ ७१।

तेरे तेज तत्ता ते चकत्ता में न रही सत्ता,
लत्ता से उड़ाये सब गोरे कलकत्ता के ।।[१]

१४५. जसराम

ये जाति के जाट थे और भरतपुरनरेश रणजीतसिंह के दरबार में रहते थे। इनका कविताकाल संवत् १८६१ ठहरता है। वीररस के कवि होने के साथ साथ ये निर्भीक प्रवृत्ति के स्पष्टवक्ता भी थे। इनका एक छंद यहाँ दिया जा रहा है—

मच्यो धमसान कोस तीन लगि लोथ परीं,
मर गए सूर साँचे मोहरा अगाह ते।
बाई यों भुजा ते मार कीन्ही जसवंतराव,
परे रहै रुंड मुंड लोग वे सलाह ते।।
कहत 'जसराम' अँगरेज जंग हारि गए,
जीत जदुवंसी सूर लड़त उछाह ते।
दोऊ दीन जान्यों महाराज रनजीतसिंह,
हारि के फिरंगी फन पटक्यौ कराहते।।[२]

१४६. गंगाधर

ये भरतपुर के महाराजा रणजीतसिंह के दरबारी कवि थे और संवत् १८६१ के लगभग वर्तमान थे। इनकी रचना का नमूना इस प्रकार है--

पारथ मचायौ महाभारत भरतपुर, घिरे भूप भट भीम सैन से सजत हैं।
गंगाधर कहै, सनसेरन की जड़ाझड़ी, धड़ाधड़ी तोपन की गोला यौं भजत हैं।।
जहाँ करि रार गिरे गोरटा गरद्द भये, दोऊ लट्ट पट्ट रणखंभ न तजत है।
फिरका फिर गिन के फार के फतूह करें, जीत के नगारे रणजीत के बजत हैं।।[३]

१४७. प्रसिद्ध

ये ब्रह्म कवि थे और संवत् १८६१ के लगभग महाराज रणजीतसिंह की सेना में भरतपुर मे विद्यमान थे। 'प्रसिद्ध' तलवार और कलम दोनो के धनी थे और वीरता तथा काव्य दोनों के लिये प्रसिद्ध थे। इनके दो स्फुट छंद यहाँ दिए जा रहे हैं—

सुरपुर भवन भरतपुर देखन कों, काहे काज आए हो फिरंगी सूर छत्ता में।
धर कै नसैनी चढ़्यौ कुरली खड़ग लिए, किए मन भोरे गोरे सूरत चकत्ता में।

---

१. भरतपुर-कवि-कुसुमांजलि, सं० डॉ० कुंजबिहारीलाल गुप्त, पृष्ठ ५५।
२. वही, पृष्ठ ५८।
३. वही, पृष्ठ ५९–६०।

कहत 'प्रसिद्ध' महाराज रणजीतसिंह, धाय धाय धामें पग आगे ही धरत्ता में ।
भेजी फोर पटक पछार खात खंभन सों, लेडी अँगरेजन की रोवें कलकत्ता में ।।[1]

१४८. महेश कवि

इन्होंने हम्मीररासो नामक एक ऐतिहासिक वीरकाव्य लिखा है । उक्त रचना में न तो कविपरिचय ही उपलब्ध है और न रचनाकाल ही । केवल मूल रचना की प्रतिलिपि का समय संवत् १८६१ दिया गया है । यह प्रतिलिपि एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल, कलकत्ता और पूना में सुरक्षित है । इसमे कुल छंदसंख्या ६०० है । प्रधान रस वीर है और विषय वही है, जो जोधराज के हम्मीररासो का है ।[2]

१४६. संगमलाल

ये टेढ़ा बिहगपुर, जिला उन्नाव के निवासी सुवंश सुकुल के वंशज थे । इन्होंने स्फुट कवित्त और श्रीकृष्ण ग्वालिन को झगरा नामक दो स्फुट रचनाएँ लिखी हैं । डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह के मत से इनका कविताकाल संवत् १८६१ से १८६४ तक ठहरता है। इनके आश्रयदाता सीतामऊ के राजा राजसिंह थे, जिनकी तलवार की प्रशंसा में इन्होने लिखा है—

कढ़त भुलानी मुख बैरिन कँपानी जब,
जंग थहरानी है भुखानी अरि साज की ।
सोनित सो सानी भई अकह कहानी रन
मानो पगलानी ठकुरानी जमराज की ।।
सब जग जानी खाइ अरिन अघानी विष,
पानी सो बुझानी है जिठानी मानो गाज की ।
सभय बखानी शंभुरानी है रिसानी कैधों,
कैधों है कृपानी राजसिंह महाराज की ।।[3]

१५०. छत्रनाथ

ये नंदलाल झा के पुत्र थे और बड़े प्रतिभाशाली आशुकवि थे । इनके पूर्वज हाटी उभटी, दरभंगा छोड़कर सहरसा जिले के बनगाँव नामक स्थान मे आकर बस गए थे । ये मिथिलानरेश महाराज श्री माधवसिंह (संवत् १८४२—१८६४) के समकालीन थे और मैथिली तथा ब्रजभाषा में अच्छी रचना करते थे । द्रौपदीपुकार हनुमान-रावण-

---

१. वही, पृष्ठ ६०—६१ ।
२. हिंदी साहित्य, द्वितीय खंड, संपादक डॉ० धीरेंद्र वर्मा, पृष्ठ १३५ ।
३. [illegible]

संवाद, बनगाँववर्णन, सुदामाचरित नामक लघुकाव्यों के अतिरिक्त इन्होंने अनेक स्फुट पद, कवित्त, सवैए और समस्यापूर्तियाँ लिखी है, जिनमें इन्होंने अपने अनेक उपनाम, जैसे छत्रनाथ, छत्रपति, नाथ, कविदत्त, कवीश्वरदत्त आदि लिखे हैं।[१] इनके भक्तिपरक पदों में दुर्गाविंदना में वीर, रौद्र और बीभत्स रस की निष्पत्ति पाई जाती है। एक उदाहरण देखिए—

जय देवि दुर्गे दनुज गंजनि भक्त जन भव भार भंजनि,
अरुण गति अति नैन खंजनि, जय निरंजनि हे ।।
जय सिंह चढ़ि कत समर धँसि धँसि,
विकट मुख विकराल हँसि हँसि,
शुंभ कच गहि काल कर बसि, मासु गहि असि हे ।।
जय अमर अरि सिर काटु छट्‌छट्,
गगन गय महि परत भट् भट्,
खपर भरि भरि शोणित झट् झट्, घोटल घट्‌घट् हे ।।[२]

१५१. उत्तमचंद भंडारी

ये ओसवाल महाजन थे और जोधपुर के महाराजा मानसिंह के आश्रित थे।[३] इनका जन्मसंवत् १८३३ और मृत्युसंवत् १८६४ है। नाथचंद्रिका, अलंकारआशय, तारकतत्व, नीति की बात और रतना हमीर की बात इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ है। इनमें से रतना हमीर की बात मे वीररस की अच्छी निष्पत्ति हुई है।[४] इस ग्रंथ का रचनाकाल सवत् १८६३ -६४ के लगभग होगा।

१५२. रामदान

ये जोधपुर राज्य निवासी लालस गोत्र के चारण फतहदान के पुत्र थे। इनका जन्म संवत् १८१८ मे और निधन संवत् १८८२ में हुआ। जोधपुर के तत्कालीन नरेश महाराजा मानसिंह ने संवत् १८६५ में इन्हें तोलेसर नामक गाँव पुरस्कार में दिया था।

रामदान कुछ समय तक मेवाड़ाधिपति महाराणा भीमसिंह के दरबार में भी रहे। उनकी कीर्ति के विस्तार के लिये इन्होंने भीमप्रकाश नामक १७५ छंदों का एक नर-प्रशस्ति-काव्य लिखा, जिसके प्रारभ के ७० छंदों में मेवाड़ राज्य का इतिहास और शेष छंदों में

---

१. भोजपुरी के कवि और काव्य, श्री दुर्गाप्रसाद सिंह, पृष्ठ १२४।
२. हिंदी साहित्य और बिहार, प्रथम खंड, श्री शिवपूजन सहाय, पृष्ठ १२१।
३. जोधपुर राज्य का इतिहास, म० म० गौरीशकर हीराचद ओझा, पृष्ठ ८७४।
४. हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, प्रथम खंड, पृष्ठ ८१।

महाराजा भीमसिंह के राजमहल, राजवैभव, राजदरबार, गणगौर की सवारी के समय राणा भीम का ठाटबाट वर्णित है। रचना का कुछ अंश इस प्रकार है—

असंक सेन आरभ बोल नकीब बलोबल।
गहर थाट गैमराँ चपल हैमराँ चलोबल॥
भाल तेज भलहलै ढलै बिहूँवै पख चम्मर।
दिन दूलह दीवाण ए चढ़ियौ छक ऊपर॥
तिण वार आप दरियाव तट, विडग छडि जगपति बियौ।
दीवाण भीम गणगौर दिन, एम राँण आरंभियौ॥[१]

भीमप्रकाश के अतिरिक्त इन्होंने करणीरूपक (करणीदेवी का चरित्र) तथा खीचियों का इतिहास लिखा है। इनके सभी ग्रंथों की भाषा डिंगल है।[२]

१५३. सागरदान चारण

इन्होंने गुणविलास नामक एक ग्रंथ लिखा है, जिसका लिपिकाल संवत् १८६७ है। इस रचना मे असोप (जोधपुर) के ठाकुर केशरीसिंह कूपावत राठौर का जीवन-चरित्र और यशवर्णन किया गया है।[३]

१५४. मारकंडे मिश्र

इन्होंने संवत् १८६६ में 'चंडीचरित्र' नामक एक भक्तिपरक वीरभावयुक्त काव्य लिखा, जिसमें चंडी और मधुकैटभ के युद्ध का वर्णन किया गया है।[४]

१५५. मंडन भट्ट

इनका जन्म संवत् १८३० मे हुआ था। इनके पिता का नाम श्री ब्रजलाल तैलंग था, जो स्वयं ब्रजभाषा के अच्छे कवि थे। मंडन प्रतिभावान कवि थे। वे जयपुर के महाराजा जयसिंह (तृतीय) के दरबार मे रहते थे। बूंदी आदि अन्य राज्यों से इन्हें अच्छा समान प्राप्त था। इन्होंने संवत् १८७० के लगभग राठौड़चरित्र, रावतचरित्र, तथा जयसाह-सुजस-प्रकाश नामक तीन चरित्रप्रधान वीरकाव्य लिखे, जिनमें अपने आश्रय-दाताओं की विरुदावली और वीरता का बखान किया है।

हिंदी साहित्य परिषद्, जयपुर से प्रकाशित राजस्थान के हिंदी साहित्यकार मे इनके ११ ग्रंथों के नाम इस प्रकार दिए गए है—

---

१. राजस्थानी भाषा और साहित्य, डॉ० मोतीलाल मेनारिया, पृष्ठ २७४–२७५।
२. राजस्थानी सबद कोस, श्री सीताराम लालस, प्रथम खंड, पृष्ठ १६७।
३. हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, भाग १, पृष्ठ २३८।
४. वही, १, पृष्ठ २७७।

१. श्रीकृष्ण-ब्रज-विहार, २. नव-रस-रत्नाकर, ३. रससमुद्र, ४. रामजसचंद्रिका, ५. कृष्ण-सुजस-प्रकाश, ६. सुलोचनाचरित्र, ७. राठौड़चरित्र, ८. भारतचरित्र, ९. रावलचरित्र, १०. जयसाह-सुजस-प्रकाश, ११ बापूचरित्र ।[१]

१५६. बलदेव मिश्र

श्री बलदेव मिश्र, आजमगढ के निवासी थे। इन्होने संवत् १८७२ मे 'अजमतिखाँ यशवर्णन' नामक एक प्रशस्तिकाव्य लिखा, जिसमे अजमतिखाँ के शौर्य और प्रताप का वर्णन किया गया है। यथा—

दहसति नवखंडन, ककुभ प्रचंडन, तल ब्रह्मंडन सोर बढ्यो।
पर परम अदंडन, करि फर षंडन, धर सिर भुंडन अवनि मढ्यो॥
गहि पंग वितुंडन हनत भुमुंडन, भभकत मुंडन रुधिर कढ्यो।
अजमति महि मंडन, ज दिन उदडन, दुअर विहंडन कोपि चढ्यो॥[२]

१५७. श्रीधर

इन्होंने संवत् १८७३ मे दतिया के महाराजा पारीछत का चरित्र 'पारीछतरायसा' में वर्णित किया है। ३७६ छदों की यह रचना श्री हरिमोहनलाल श्रीवास्तव द्वारा संपादित होकर भारतीय साहित्य में प्रकाशित हुई है।[३]

पारीछत रायसा में बाघाइट के उस घेरे का सविस्तार वर्णन किया गया है, जिसमें दतिया के शासक महाराजा पारीछत को ओछड़ा राज्य से घोर संघर्ष करना पड़ा था। संपूर्ण रचना सामान्य कोटि की है।

१५८. गणेश कवि

गणेश कवि लाहौर-कुशपुर-मार्ग पर लाहौर से बारह कोस (२४ मील) दूर कान्हा ग्राम के निवासी थे। ये ब्राह्मण वैद्य के नाम से विख्यात थे। इनके पिता का नाम रामसहाय था। इन्होने 'फतहनामा श्री गुरु खालसा जी का' नामक एक वीरकाव्य लिखा, जिसमे महाराजा रणजीतसिंह की मुल्तानविजय और काश्मीरविजय का अलग अलग वर्णन किया गया है। इस दृष्टि से फतहनामा गुरु खालसा जी का दो रचनाओं का संग्रह है।[४]

श्री चंद्रकांत जी बाली का मत है कि 'मुल्तानसमर' तथा 'काश्मीरसमर' संवत्

---

१. राजस्थान के हिंदी साहित्यकार, पृष्ठ १९० ।

२. हस्तलिखित हिंदी ग्रथों का अठारहवाँ त्रैवार्षिक विवरण, सन् १९४१–४३, प्रथम भाग, पृष्ठ ४९२–४९४ ।

३. भारतीय साहित्य, वर्ष ४, अंक २, पृष्ठ ६१–१२२ ।

४. हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का सक्षिप्त विवरण, भाग १, पृष्ठ २४–२५ ।

१८७४-१८७५ में लड़े गए अतः अनुमानतः फतहनामा को संवत् १८७६ की रचना मानना निर्दोष हो सकता है।[१]

फतहनामा में ऐतिहासिक तत्वों की अधिकता है और काव्यकला का अभाव, अतः इतिहासप्रधान वीरकाव्य होने पर भी फतहनामा श्रेष्ठ काव्य नहीं बन पाया है।

१५९. किशन आढ़ा

ये आढ़ा गोत्र के चारण थे और संवत् १८३४ से संवत् १८८५ तक उदयपुर के महाराणा भीमसिंह के आश्रित थे। इनके दो ग्रंथ मिलते हैं--१. भीमविलास और २. रघुवर-जस-प्रकाश।

भीमविलास में महाराणा भीमसिंह का यश और इतिहास वर्णित है और रघुवर-जस-प्रकाश में डिंगल, हिंदी और संस्कृत के छंदों का विवेचन है। राजस्थान में हिंदी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज में भीमविलास का रचनाकाल संवत् १८७९ दिया गया है।[२]

१६०. रमेश

नायिकाभेद और वीररस के अनेक छंद रचनेवाले रमेश भरतपुर के कवि थे। इनका रचनाकाल संवत् १८६२ से १८८० तक माना गया है। महाराज रणधीरसिंह के आतंक का वर्णन देखिए--

तेरी धाक धरक धराधिप धग्धरात, घर छोड़ धावत धरा की लाज धारैं ना।
कोटिन के काटि सुनि उद्धत निसान धुनि, सूने करैं पल में पलायन में हारैं ना॥
झुकि झुकि झारन में, छिपत पहारन में, प्रान हानि जानि हार जीत को बिचारैं ना।
श्रीमत् ब्रजेंद्र महाराज तेज तत्ता देखि पत्ता से उड़त बैरी सत्ता को सम्हारे ना॥[३]

१६१. ग्वाल कवि

कविदर्पण में ग्वाल ने अपने बारे में लिखा है--

वंदी विप्र सु ग्वाल कवि, श्री मथुरा सुषधाम।
प्रगट कियो या ग्रंथ को, कविदरपन यह नाम॥[४]

---

१. पंजाब प्रांतीय हिंदी साहित्य का इतिहास, भाग १, श्री चंद्रकांत बाली, पृष्ठ ३२८--३२९।

२. राजस्थान में हिंदी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज भाग ३, सं० उदयसिंह भटनागर, पृष्ठ १०१।

३. भरतपुर-कवि-कुसुमांजलि, संपादक डॉ० कुंजविहारीलाल गुप्त, पृष्ठ ६१।

४. राजस्थान में हिंदी के हस्तलिखित ग्रंथो की खोज, भाग ३, संपादक उदयसिंह भटनागर, पृष्ठ ११२।

ग्वाल कवि मथुरानिवासी बंदीजन सेवाराम के पुत्र थे। श्री किशोरीलाल गुप्त ने इनका जन्मसंवत् १८४८ और मृत्युसंवत् १९२८ लिखा है।[१] शुक्ल जी ने इनका कविताकाल संवत् १८७९ से १९१८ तक माना है।[२] श्री चंद्रकांत बाली ने इन्हें महाराजा रणजीतसिंह और महाराजा शेरसिंह का दरबारी कवि भी लिखा है। उनके मत से लाहौर से चलकर ग्वाल पटियाला आए तथा जीवन के अंतिम दिनों में नाभा में रहे। पंजाब में इन्होंने 'विजयविनोद' नामक वीरकाव्य लिखा जो गुरुमुखी लिपि में लिखा हुआ मिलता है।[३] डॉ० सियाराम तिवारी ने विजयविनोद के अतिरिक्त ग्वाल कवि के निम्नलिखित २८ ग्रंथों की सूची दी है—१. अलंकार-भ्रम-भंजन, २. भक्तभावना, ३. कवि-दर्पण या दूषणदर्पण, ४. बंशीबीसा, ५. जमुनालहरी, ६. कृष्णचंद्र जू को नखशिख, ७. गोपीपचीसी, ८. रसरंग, ९. हम्मीरहठ, १० कवि-हृदय-विनोद, ११. रसिकानंद, १२. ग्रीष्मादि ऋतुओं के कवित्त, १३. ग्वाल कवि के कवित्त, १४. कवित्तसंग्रह, १५. फुटकर कवित्तों का संग्रह, १६. शांत रस के कवियों का संग्रह, १७ विस्तारप्रकाश, १८. कवित्त-बसंत, १९. होरी आदि के छंद, २०. प्रास्ताविक, २१. रसरूप, २२. षट्‌ऋतु वर्णन, २३. राधा-माधव-मिलन, २४ राधाअष्टक, २५ साहित्यदूषण, २६. साहित्यदर्पण, २७ शृंगार-दोहा, और शृंगारकवित्त।[४] खोज में इनकी एक और रचना मिली है, जिसका नाम लक्षनाव्यंजना है। इनमें[५] अधिकांश रचनाएँ संग्रहग्रंथ मात्र हैं।

हम्मीरहठ ग्वाल का प्रसिद्ध वीरकाव्य है, जिसकी रचना संवत् १८८१ में हुई थी। इसका वर्ण्य विषय इतिहासप्रसिद्ध हम्मीरहठ ही है। इस रचना की एक हस्तलिखित प्रति नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी में है।[६] हम्मीरहठ में अश्लील वर्णन भी पर्याप्त मात्रा में है[७] और इसके युद्ध वर्णनों में तड़ातड़, भड़ाभड़ आदि ध्वन्यात्मक शब्दों का प्रयोग हुआ है। जैसे—

छूटे तोपखाने नृपति के तड़ातड़।
छूटे हैं जँभूरे हजारों भड़ाभड़॥

---

१. हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास (ग्रियर्सन), अनुवादक श्री किशोरीलाल गुप्त, टिप्पणी, पृष्ठ २३४।
२. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृष्ठ २८८।
३. पंजाब प्रांतीय हिंदी साहित्य का इतिहास, भाग १. श्री चंद्रकांत बाली, पृष्ठ १९६।
४. हिंदी के मध्यकालीन खंडकाव्य, डॉ० सियाराम तिवारी, पृष्ठ २३२–२३३।
५. हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, भाग १, पृष्ठ २७३।
६. हमीरहठ, काशी नागरीप्रचारिणी सभा की हस्तलिखित प्रति संख्या १०३।४१।
७. देखिए उक्त प्रति के पृष्ठ ५, छंदसंख्या २५ से आगे ममोलबेगम संभोग प्रकरण।

करै जमघरी की सुधाते अनेकं ।
किते पेसकबजै चलामैं मनेक ।।[१]

हम्मीरहठ मे घोर शृगार और युद्धवर्णन दानो ही बडे सजीव है और इसी दृष्टि से कवि की विदग्धता और सफलता आँकी जा सकती है । ग्वाल कवि का भाषा पर अच्छा अधिकार था, अत ये भावानुरूप भाषा लिखने में सफल माने जा सकते है ।

१६२. लक्ष्मीनाथ

ये जोधपुर के पुष्करण ब्राह्मण थे । इनके पिता का नाम दीनानाथ था । जोधपुरनरेश महाराज मानसिह इनके प्राश्रयदाता थे, जिनके यश और राजवैभव का वर्णन करने के लिये इन्होंने सवत् १८८३ में 'राजविलास' नामक एक काव्य लिखा । खोज मे इनकी एक और रचना मिली है, जिसका नाम भजनविलास है ।[२]

१६३. चद्रशेखर वाजपेयी

श्री चद्रशेखर वाजपेयी का जन्म पौष शुक्ल १० सवत् १८५५ को असनी के निकट मुअज्जमाबाद, जिला फतहपुर मे हुआ ।[३] इनके पिता पडित मनीराम जी वाजपेयी अच्छे कवि थे । असनी के महापात्र (आलीजर्फ) करनेश कवि चद्रशेखर के काव्यगुरु थे । सवत् १८७७ मे देशाटन करते हुए चद्रशेखर जी दरभगा पहुँचे, जहाँ इनका बडा समान हुआ । सवत् १८८४ मे ये जोधपुरनरेश महाराजा मानसिह के दरबार मे गए और उनकी स्तुति मे निम्नलिखित कवित्त पढा—

द्वादश कला सों मारतंड यें उवैगे चड,
सेसधारी साँसनि समस्त नखु जलिहे ।
छूटि जैहै अचल अवास अमरेस वारो,
कूट जैहै कहलि कर्मा सो भूमि हलिहै ।।
शेखर कहत अलका में कलापात ह्वैहै,
पावक पिनाकी के त्रिशूल सो निकलिहे ।
तू न तानि भौहे भानुवंसी भूपमान ना तौ
जानि लैहे प्रलय पयोधि फूटि चलिहै ।।

उक्त कवित्त सुन महाराजा मानसिह ने इनकी १०० रुपए मासिक वृत्ति बाँध दी । छह वर्ष तक वाजपेयी जी जोधपुर दरबार मे रहे और इसके बाद महाराजा मानसिह के स्वर्गवास हो जाने के कारण ये जोधपुर से पटियाला चले गए । पटियाला मे महाराज कर्म-

---

१. वही, पृष्ठ ३२ ।
२. हस्तलिखित हिंदी ग्रथों की खोज, सन् १९०२, ग्रथ संख्या ७१ और २३ ।
३. हिंदीकाव्य शास्त्र का इतिहास—डॉ० भगीरथमिश्र, द्वितीय सस्करण, पृष्ठ १८० ।

सिंह जी ने इनका अच्छा आदर सत्कार किया और इनको अपने यहाँ रख लिया। जोधपुर मे महाराजा मानसिंह के बाद उनके राजकुमार तख्तसिंह जी सिंहासनासीन हुए तब उन्होंने अपने मुशी लाड़लीदास को पटियाला भेजकर चंद्रशेखर जी वाजपेयी को वापस बुलाया पर वे पटियाला से नही लौटे। संवत् १६३२ में पटियाला में ही चंद्रशेखर जी वाजपेयी का शरीरांत हुआ।

चंद्रशेखर जी ने नौ ग्रंथ रचे——१ हम्मीरहठ, २. नखशिख, ३. रसिकविनोद, ४. वृंदावनशतक, ५. गुरुपंचाशिका, ६. ज्योतिष का ताजक, ७. माधवीवसंत, ८. हरि-भक्ति-विलास, ६. राजनीति। इनमें से अंतिम तीन ग्रंथ बृहदाकार हैं।

हम्मीरहठ चंद्रशेखर जी की वीररस की सर्वश्रेष्ठ कृति है, जिसकी रचना संवत् १६०२ के पूर्व हुई थी। इसमें रणथंभगढ के चौहानवंशीय राजा हम्मीर और दिल्ली के सुल्तान अलाउद्दीन के बीच होनेवाले युद्ध का बड़ा सजीव वर्णन किया गया है। संवाद, मृगया, युद्ध और शृंगार आदि के वर्णन अत्यंत संयत रूप में उपलब्ध होने के कारण हम्मीरहठ को आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हिंदी साहित्य का एक रत्न कहा है।[1]

हम्मीरहठ का कथानक इस प्रकार है——अलाउद्दीन सुल्तान की एक बेगम से मीर मुहम्मद मगोल नामक एक सरदार अनुचित संबंध रखता था। अलाउद्दीन को इस तथ्य का बोध होने के कारण मगोल अपनी प्राणरक्षा के लिये महाराणा हम्मीर की शरण में आ गया। सुल्तान ने हम्मीर से उसे वापस माँगा, किंतु शरणागत की रक्षा के लिये हम्मीर ने मीर मुहम्मद को सुल्तान के पास वापस नही भेजा। इसी कारण अलाउद्दीन ने रण-थंभगढ़ पर आक्रमण कर दिया। उभय पक्षो मे घोर युद्ध हुआ और अंत मे अलाउद्दीन की हार हुई।

भाषा का प्रवाह, शब्दशक्ति का चमत्कार और रसनिरूपण की दृष्टि से हम्मीर-हठ सफल कृति है। इस रचना में एक उल्लेखनीय दोष यह है कि कवि की जितनी सहानुभूति हम्मीर के साथ रही, उतनी अलाउद्दीन के साथ नही। उसने अलाउद्दीन को एक चूहे से डरनेवाला बतलाकर अपने काव्य के चरितनायक के प्रतिपक्षी को अत्यंत हीन कोटि का कायर प्रदर्शित किया है, जो वास्तव में न्यायसंगत नही है।

हम्मीरहठ का एक छंद इस प्रकार है——

युद्धवर्णन

मार परी दुहूँ ओर बिषम बिहद्द घोर,
ठौर ठौर गोली बान गोला बरसत हैं।

---

१. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृष्ठ ३६०।

जैसें प्रलैकाल में फनी के फना मंडल तें
फैले फूतकारिन फुलिंगै सरसत हैं ।।
बरसै अँगारे कैंधों टूटे आसमान तारे,
कोटिनि कतारे केतुवारे दरसत हैं ।
तोपैं औनि अंबर कों कठिन कराल मानो,
रुद्र नैन ज्वालनि के जाल भरसत हैं ।।[1]

१६४. जोधराज

ये गौड़वंशोत्पन्न अत्रिगोत्रीय ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम बालकृष्ण और निवासस्थान बीजावर ग्राम था। अलवर राज्यातर्गत नीमराणा (नीवगढ़) के चौहानवंशीय राजा चंद्रभान इनके आश्रयदाता थे, जिनकी आज्ञा से इन्होंने गुरुवार, वैशाख शुक्ल तृतीया, संवत् १८८५ को हम्मीररासो की रचना की।[2]

इस ग्रंथ में रणथंभौर के राजा हम्मीरदेव और अलाउद्दीन के युद्ध का वर्णन किया गया है। युद्धवर्णन के प्रसग सशक्त हैं। यथा--

चढ़े बीर कोपे दुहूँ ओर धाए। मनो काल के दूत अद्भुत आए ।।
इते राव हम्मीर के बीर छुट्टे। उतै भीर धीरं गहीर सु जुट्टे ।।
उड़ी रैन सैनं न दीखंत भान। दुहूँ ओर घोरं सु बज्जे निमान ।।
छुटैं तोप बानं दुहूँ ओर जोरं। धरा अम्मरं बीच मच्चे सु शोर ।।

हम्मीररासो में जोधराज ने चंद्रशेखर वाजपेयी के समान अपने चरितनायक के प्रति जितनी उदारता दिखलाई है, उतनी अलाउद्दीन के प्रति नही। जोधराज ने अलाउद्दीन को मृगयाप्रिय, कामुक, भीरु, यहाँ तक कि चूहे से डरनेवाला बतलाकर उसके चरित्र को कमजोर कर दिया है। अलाउद्दीन की रानी रूपविचित्रा और सरदार महिमाशाह के प्रणयव्यापारो का वर्णन करते समय कवि शालीनता से बहुत दूर जा पड़ा है। ग्रंथात मे कवि ने एक अद्भुत और अनैतिहासिक घटना का उल्लेख करते हुए लिखा है कि हम्मीर ने अपनी आत्महत्या कर ली और उसके कटे हुए सिर से जल मे डूब मरने का आदेश सुनकर अलाउद्दीन डूब मरा। ये दोनों उल्लेख मात्र मनगढ़ंत और अनैतिहासिक घटनाएँ है।

दोहा, छप्पय, त्रिभंगी, रसाबल, भुजंगप्रयात, हनूफाल, त्रोटक, चौपाई, पद्धरी, आदि छदों के बीच बीच में कवि ने गद्य मे वचनिका भी दी है। इस तरह से यह ग्रंथ विशुद्ध काव्य न होकर चंपू काव्य बन गया है। वीररस की दृष्टि से अवश्य कवि की सफलता प्रशंसनीय है। एक उदाहरण पर्याप्त होगा---

---

१. हम्मीरहठ, सं० जगन्नाथदास रत्नाकर, पृष्ठ ३१, छंद १६३।
२. हिंदी वीरकाव्य, डॉ० टीकमसिंह तोमर, पृष्ठ ३५।

बहे सैल अंगं परै पार होई।
मनो रुंड में नाग लपटत सोई ॥
कटारी लगै अंग दीसंत पारं।
मनौ नारि मुग्धा कढ्यो पानिवारं ॥
छुरी बार सूर करैं जोर ऐसैं,
मनो सर्पनी पुच्छ दीखंत जैसैं ॥

जोधराज का हम्मीररासो नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी से छप गया है।

१६५. दयाल

इन्होंने संवत् १८८६ में ६६ छंदों में 'चंडीचरित्र' नामक काव्य रचा, जिसमें महाकाली चंडी के युद्धों का वीररसात्मक वर्णन किया गया है।[१]

१६६. बाँकीदास

आशिया शाखा के चारण बाँकीदास का जन्म जोधपुर राज्य के पंचभदरा परगने के भाड़ियावास नामक गाँव मे संवत् १८२८ में हुआ। इनके पिता का नाम फतहसिंह और पितृव्य का नाम शक्तिदान था। जसवंतजसोभूषण के प्रणेता मुरारिदान इनके पौत्र थे।

बाँकीदास संस्कृत, डिंगल, फारसी, ब्रजभाषा के महापंडित और आशुकवि थे। काव्यशास्त्र, इतिहास, व्याकरण आदि विषयों मे इनकी अद्भुत गति थी। जोधपुर के महाराजा मानसिंह ने इनकी प्रतिभा और योग्यता को देखकर इन्हे अपना काव्यगुरु बनाया और इन्हें कविराजा की उपाधि, पाँव मे सोना, लाख पसाव आदि देकर सम्मानित किया। महाराजा मानसिंह ने इन्हें राजमुहर रखने का मान भी दे रहा था, जिसपर लिखा था—

श्रीमन् मान धरणिपति, बहु गुन रास।
जिन भाषा गुरु कीनो, बाँकीदास ॥

बाँकीदास ने २७ ग्रंथ, अनेक फुटकर गीत और लगभग २८०० इतिहास संबंधी छोटी छोटी कहानियाँ लिखी है। इनके ग्रंथों के नाम इस प्रकार हैं—१. सूरछत्तीसी, २. सीहछत्तीसी, ३. वीरविनोद, ४. धवलपच्चीसी, ५. दातारबावनी, ६ नीतिमंजरी, ७ सुपहछत्तीसी, ८. वैसकवार्ता, ९. मावड़िया मिजाज, १०. कृपणदर्पण, ११, मोह-मर्दन, १२. चुगल-मुख-चपेटिका, १३. वैसवार्ता, १४. कुकविबत्तीसी, १५. विदुर-

---

१. हस्तलिखित हिंदी ग्रंथो का सत्रहवाँ त्रैवार्षिक विवरण, सन् १९३८–४१, पृष्ठ १५४, ग्रंथसख्या ३५।

बत्तीसी, १६ भुरजालभूषण, १७. गजलक्ष्मी, १८. झमाल नखशिख, १९. जेहल-जस-जडाव, २०. सिद्धराव छत्तीसी, २१. संतोषबावनी, २२. सुजसछत्तीसी, २३. वचन-विवेक-पच्चीसी, २४. कायरबावनी, २५ कृपणपच्चीसी, २६. हमरोटछत्तीसी, २७. स्फुट संग्रह ।

श्री सीताराम जी लालस ने बाँकीदास जी के उक्त ग्रंथों के अतिरिक्त निम्नलिखित १४ ग्रंथों की सूचना दी है--१. गंगालहरी, २. कृष्णचंद्रचद्रिका, ३. विरहचंद्रिका, ४. चमत्कारचंद्रिका, ५. मानजसोमंडन, ६ चद्र-दूषण-दर्पण, ७. वैसाख-वारता-संग्रह, ८ श्री दरबार कविता, ९. रस तथा अलंकार ग्रंथ १०. व्रतरत्नाकर-भाषा-व्याख्या, ११. महाभारत छंदोऽनुवाद, १२. गीत वा छदाँ रौ सग्रह, १२. ऐतिहासिक वारता संग्रह, १३. अंतरलापिका, १४. थलवटपच्चीसी ।[१]

भाव, भाषा और विषयवैविध्य की दृष्टि से बाँकीदास डिंगल के प्रथम श्रेणी के कवि थे । अप्रस्तुत प्रशसा और वीरोक्ति की सहज स्वाभाविकता के कारण इनके काव्य में प्रवाह और प्रभाव पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है । सिह की शक्ति और वीरोचित शौर्य का प्रभाव देखिए--

सूतो थाहर नींद सुख, सादूलो बलवंत ।
वन काठे मारग बहे, पग पग हौल पड़ंत ।।
घाल घणा घर पातला, आयो थह मे आप ।
सूतो नाहर नीद सुख पौहरो दिए प्रताप ।।
कै दती शृगी किता, किता नखी वन जत ।
समजाया दे दे सजा, सादूनै बलवत ।।[२]

श्रावण सुदी ३, सवत् १८९० को जोधपुर मे बाँकीदास का शरीरपात हुआ । खोज में 'मान जसोमडन' नामक इनका सं० १८७१ का एक और काव्य मिला है, जिसमे जोधपुर नरेश मानसिंह जी का यश वर्णित है ।[३]

१६७. चंडीदान

चडीदान मिश्रण शाखा के चारण बदन जो के पुत्र थे । इनका जन्म सवत् १८४८ मे हुआ था । ये सस्कृत, ब्रजभाषा और डिंगल के विद्वान् और आशुकवि थे । इनके

---

१ राजस्थानी भाषा और साहित्य, डॉ० मोतीलाल मेनारिया, पृष्ठ २६४-२६६ ।

२ राजस्थानी सबद कोस, श्री सीताराम लालस, प्रथम खड. पृष्ठ १६७ ।

३. हस्तलिखित हिंदी ग्रथो का अठारहवां त्रैवार्षिक विवरण, सन् १९४१-४३, पृष्ठ ४९९-५०० ।

रचे हुए पाँच ग्रंथ मिलते हैं—१. सारसागर, २. बलविग्रह, ३. वंशाभरण, ४. तीजतरंग और ५. विरुदप्रकाश।

वंशाभरण और विरुदप्रकाश इनकी वीररसात्मक रचनाएँ हैं। इनमें उक्ति-चमत्कार और सानुप्रास शब्दावली की छटा विशेष रूप से द्रष्टव्य है। राजा रामपालसिंह के हाथियों का वर्णन देखिए—

घूमत घटा से घनघोर से घूमड़ घोख,
　　उमड़त आए कमठान तैं अधीर से।
चपट चपेट चरखीन की चलाचल तैं,
　　धूरि धूम धूसत धकात बलिबीर से॥
मसत मतंग रामसिंह महिपाल जू के,
　　डाकिनि डराए मद छाकिनि छकीर से।
साजै साँटमारन अखारन के जैतवार,
　　मारन के अचल पहारन के पीर से॥[१]

बूंदी के रावराजा विष्णुसिंह चंडीदान पर विशेष कृपालु थे। उन्होंने इनकी फुटकर कविता और विरुदप्रकाश पर रीझकर इन्हें रोसूंदा नामक ग्राम लाख पसाव, लक्ष्मणगज हाथी, तथा रहने के लिये मकान आदि पुरस्कार में दिए थे।[२]

चंडीदान की मृत्यु संवत् १८६२ में काशी मे हुई। इनके पुत्र सूरजमल उर्फ कविराजा सूर्यमल्ल भी डिंगल के प्रसिद्ध कवि हुए।

१६८. शंकर बंदीजन

इनका जन्म संवत् १८६८ में असनी में हुआ था। इनके पिता का नाम धनीराम और छोटे भाई का नाम सेवकराम था। शंकर और सेवकराम दोनों ही सुकवि थे। इन्होंने अनेक स्फुट छंद रचे। मिश्रबंधुविनोद की सूचना के अनुसार शंकर काशी के रईस बाबू रामप्रसन्नसिंह के आश्रित थे, जिनकी प्रशसा मे इन्होंने लिखा है—

सोहत अकास मे अनिंद इंदु रूप साजि,
　　संकर बखानै दीह धुनि को धरत है।
सीतल विमल गंगजल ह्वै महीतल मैं,
　　परम पुनीत पाप पुंजनि दरत है॥
पैठि के पताल मैं रसाल सेस रूप राजै,
　　कहाँ लौ गनाऊँ यों समंत बिहरत है।

---

१. राजस्थानी भाषा और साहित्य, डॉ० मोतीलाल मेनारिया, पृष्ठ २७६।
२. कविरत्नमाला, मुंशी देवीप्रसाद, पृष्ठ १०८।

रावरो सुजस भूप रामपरसनसिंह,
अोक अोक तीनों लोक पावन करत है।

शंकर निडर प्रवृत्ति के बड़े स्वाभिमानी कवि थे। एक बार ये काशीनरेश महाराज ईश्वरीप्रसादनारायण सिंह के दरबार में निमंत्रित किए गए, किंतु दरबार मे पहुँचने पर काशीनरेश ने खड़े होकर इनका स्वागत नही किया, अतः इन्होने कहा--

बाजी कैसी पीठ पै चढ़ायो पीठ आपनी दै,
कवि हरिनाथ को कछौआ मान सादरे।
चक्कवै दिली को जो अथक्क अकबर सोज,
नरहरि पालकी को आपने कँधा धरे॥
संकर जू देनी औ अदेनी को न मोका सोचु,
नावैं नैन नीचे देखि वीरन ज्यों कादरे।
राजन को दीबो कविराजन को चोप, अब
राजन की लाज कविराजन के आदरे॥[1]

कहा जाता है, इसे सुनकर काशीनरेश ने उठकर इनकी आवभगत की थी। महाराज ईश्वरीप्रसादनारायण सिंह संवत् १८९२ मे सिंहासन पर बैठे थे,[2] अतः उक्त छंद इसी समय के लगभग लिखा गया होगा।

१९९. गंगाराम

ये पटियाला के राजा कर्मसिंह के दरबारी कवि थे। इन्होने मानमंजरी, शोभा-शृंगार-मंजरी, सुदरशृंगार, शांतिहोत्र, कथा धर्मेश्वर की तथा उद्धवसंवाद नामक ग्रंथ रचे हैं। कवि ने अपना परिचय कही नही दिया है। केवल मानमजरी मे अपने आश्रयदाता महाराज कर्मसिंह की प्रशस्ति और शौर्य का बखान किया है।[3] इनकी भाषा शुद्ध ब्रजभाषा है, और उसमें पद्माकर के समान प्रवाह और प्रभाव है। यथ--

सेना चतुरंग बाने बाने बहुरंग माने,
दूसरो अनंग बल देखत न आन मे।
होत असवार बाजि दुंदुभी अपार अरि
छपत उलूक महातेज देखि भान मे॥

---

१. असनी के हिंदी कवि, डॉ० विपिनबिहारी त्रिवेदी, पृष्ठ १२०-१२१।
२. हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, प्रथम भाग, पृष्ठ ७८।
३. पंजाब प्रांतीय हिंदी साहित्य का इतिहास, प्रथम भाग, डॉ० चंद्रकांत बाली, पृष्ठ ३७६।

सन्नन को कूर रन परे अति सूर गुर
संतन हजूर नित ध्यान दान मान में।
राज नृपराज महाराज राजै कर्मसिंह,
तेरे यश चद्रमा की चाँदनी जहान में।।

महाराज कर्मसिंह संवत् १८६३ के लगभग वर्तमान थे, अतः गंगाराम जी ने लगभग उसी समय उक्त रचना लिखी होगी।[१]

१७०. नाथूराम शुक्ल

इनके पिता का नाम सुंदर जी शुक्ल था। संवत् १८६४ के लगभग ये भावनगर के महाराजा तख्तसिंह के आश्रित थे, जिनके दरबार मे रहकर इन्होने तख्त-यश-त्रिवेणिका, संगीत-तख्त-विनोद और तख्त-यश-बावनी नाम की तीन रचनाएँ लिखी है, जिनमें अपने आश्रयदाता का यशगान किया है।[२]

१७१. चतुरराय

नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी के याज्ञिक संग्रहालय में चतुररायकृत गढ़ पथैने रासो की माघ सुदी चतुर्थी, शनिवार, संवत् १८६५ की ग्यारह पन्नों की एक हस्तलिखित प्रति विद्यमान है। इसमे ग्रंथकर्ता ने अपना परिचय नहीं दिया है।

पथैना भरतपुर राज्य में एक कस्बा है। आगरा के सफदरगग के पौत्र अली सहादत खाँ ने पथैना के राजा किसनसिह पर आक्रमण कर दिया किंतु किसनसिंह ने अपने साथी जाट वीरों की सहायता से उसे हरा दिया। इसी युद्ध का वर्णन गढ़ पथैने रासो में किया गया है।

भरतपुर-कवि-कुसुमांजलि में उसके संपादक कुंजबिहारीलाल गुप्त ने कविसंख्या ३१, पृष्ठ उसके ४५ पर चतुरराय का नाम चतुराराय ब्रह्मभट्ट लिखा है, और उनका कविताकाल सवत् १८३३ के आसपास माना है।

१७२. बीठूभौमौ

ये देसणोक (बीकानेर) के निवासी थे और जाति के चारण थे। इन्होंने संवत् १८८० और संवत् १८६५ के बीच बीकानेर के महाराजा रत्नसिंह और उनके पुत्र सरदार-सिंह की प्रशंसा में छोटे छोटे तीन ग्रंथ बनाए। ये सभी गंथ बीकानेर के राज्य पुस्तकालय में सुरक्षित हैं। संवत् १८६५ मे इन्होंने 'महाराजा रतनसिह जी री कविता बीठू भौमौ री

१. हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, प्रथमखंड, पृष्ठ १२२।
२. गुजरात की हिंदी काव्यपरंपरा तथा आचार्य कवि गोविद गिल्लाभाई, डॉ० मा० गो० चतुर्वेदी, बड़ौदा विश्वविद्यालय, अप्रकाशित प्रबंध, पृष्ठ ७२।

कही' नामक पुस्तक लिखी, जिसमें उक्त नरेश की वंशावली और उनके पूर्वजों की प्रशस्तियाँ लिखी गई है।

बीठू ने अपनी रचनाओ में प्रधानत: दूहा और छप्पय छंदों का प्रयोग किया है। इनकी रचना का एक उदाहरण इस प्रकार है—

सधर रतन इल सोहियो, कमँधा पत बीकाण।
तै पाट प्रतपै रतनसा, भूपनियाँ बँस भाण ॥[1]

१७३. शिवदयाल

शिवदयाल के जीवन के विषय में कुछ भी ज्ञात नही है। पंजाबी के इतिहासकार इन्हें महाराज रणजीतसिंह का दरबारी कवि बतलाते है।[2] इनकी रचनाओं से पता चलता है कि ये जाति के भाट थे। ब्रजभाषा पर इनका असाधारण अधिकार था अत. इनकी रचनाओं में भूषण के समान ओज और प्रवाह पाया जाता है। यथा—

गिलजा कौ माँस मुख गीध लै उड़ाने जात,
प्रेतहू पठानन के पेटे फारै पट पट।
खेत मे खवीस खुरासानिन मे खाइ धाइ,
हाड़ दत तारै परै नाद होत खट खट ॥
कहै शिवद्याल महाराज रणजीतसिंह,
कालिका असीसै देत जीजै विजै झट झट।
डाकनी औ शाकनी पिशाचिनी अघानी घनी,
लोहू पीवै जोगनी गरे मे होत गट गट ॥

वर्णन की धारावाहिकता, दृश्य की सजीवता, कार्यव्यापारो का पूर्वापर संबध-निर्वाह, अनुप्रास की छटा, नादसौदर्य और स्वाभाविक वर्णन के कारण शिवदयाल के काव्य में वीरकाव्य के अनुरूप रौद्र और वीभत्स रसो का भी संयोजन हो गया है। काव्यगत रसानुभूति के आधार पर शिवदयाल को रससिद्ध कवि मानना चाहिए।

खोज रिपोर्ट की सूचना के अनुसार महाराज रणजीतसिंह का जन्म सवत् १८३७ में और सत्यलोकवास सवत् १८९६ मे हुआ[3] अत शिवदयाल का रचनाकाल इसी समय में मानना उचित है।

---

१. डिंगल में वीररस, डॉ० मोतीलाल मेनारिया, पृष्ठ ४५-४६।
२. पंजाब प्रांतीय हिंदी साहित्य का इतिहास, प्रथम भाग. श्री चंद्रकांत बाली, पृष्ठ ३७३।
३. हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, खंड २, पृष्ठ २०६।

१७४. सूर्यमल्ल

डॉ० मोतीलाल मेनारिया ने इनके दो नाम लिखे हैं—१. सूरजमल[1] और २. सूर्य्यमल्ल[2]। ये मिश्रण शाखा के चारण थे। इनके पिता का नाम चंडीदान, पितामह का नाम बदनसिह, जन्मस्थान बूंदी और जन्मसंवत् १८७२ था। ये बूंदी दरबार के प्रधान कवि थे। इनकी पाँच पत्नियाँ थी, जिनके क्रमशः नाम इस प्रकार हैं—दोला, सुरजा, विजयका, जसा, पुष्पा और गोविदा।

सूर्य्यमल्ल संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रश, डिंगल और पिंगल के अच्छे जानकार थे। सहृदय भावप्रवण कवि और उच्च कोटि के विद्वान होने के साथ साथ ये अत्यत विलासी, मद्यप, तुनुकमिजाज, एवं स्वतत्र प्रकृति के निर्भीक व्यक्ति थे। सामान्य व्यवहार में ये अत्यंत रूक्ष स्वभाव के व्यक्ति थे। मद्यपान कर लेने पर इनकी कल्पनाशक्ति इतनी सजग हो जाती थी कि उस समय इनके काव्यप्रवाह को लिपिबद्ध करना दो दो व्यक्तियों के लिये भी कठिन होता था। संवत् १९२० में बूंदी मे इनका देहांत हुआ।[3]

फुटकर कवित्त और सवैयों के अतिरिक्त सूर्यमल्ल ने अनेक वीररसात्मक दोहे लिखे है। इनके उपलब्ध ग्रंथो के नाम इस प्रकार है—१. वंशभास्कर, २. बलवतविलास, ३. छंदोमयूख, ४. वीरसप्तशती।

वंशभास्कर इनकी सर्वश्रेष्ठ और अत्यत लोकप्रिय रचना है, जो बूंदीनरेश महाराव राजा रामसिह जी (संवत् १८७८–१९४५) की आज्ञा से सवत् १८९७ मे लिखी गई थी। इसमे प्रधानतः बूंदी राज्य का इतिहास और वीररस का भावपूर्ण वर्णन किया गया है। कवि कृष्णसिह जी बारहठ ने इसे ४३९८ पृष्ठों मे सटीक प्रकाशित करवाया है।

बलवतविलास में रतलाम के राजा बलवंतसिह का चरित्र वर्णित है।

छंदोमयूख छंदशास्त्र की सामान्य कोटि की रचना है।

वीरसप्तशती गोठड़ा के महाराज भीमसिह के लिये लिखी गई। इस रचना के पीछे एक कथा इस प्रकार है: गोठड़ा के राजा भीमसिंह जब बूंदीनरेश रामसिंह जी से युद्ध करने पर उतारू हुए तब सूर्यमल्ल ने उन्हें चेतावनी दी कि तुम बूंदी राज्य से लोहा मत लो। और यदि लोहा लेना ही है तो जमकर लड़ना, भागना मत। यदि तुम बहादुर की तरह लड़ते लड़ते युद्धभूमि मे काम आए तो मैं अपने काव्य द्वारा तुम्हारा नाम अमर

---

१. राजस्थानी भाषा और साहित्य, श्री मोतीलाल मेनारिया, पृष्ठ ३१६।

२. डिंगल में वीर रस, श्री मोतीलाल मेनारिया, पृष्ठ १३७।

३. श्री मोतीलाल जी मेनारिया ने डिंगल में वीर रस नामक ग्रंथ मे सूर्यमल्ल का निधन संवत्, १९२० दिया है तथा राजस्थानी भाषा और साहित्य में संवत् १९२५ लिखा है। देखिए—उक्त दोनों ग्रथों के पृष्ठक्रमांक क्रमशः ४६ और ३१६।

कर दूँगा। किंतु वीरसप्तशती के ३२० दोहे पूर्ण होते होते भीमसिंह युद्धभूमि से भाग खड़े हुए, अतः सूर्यमल्ल ने वीरसप्तशती की रचना पूरी नहीं की।

सूर्यमल्ल के प्रशंसक उन्हें वीर रस का सर्वोत्कृष्ट कवि मानते हैं और इसमें संदेह नहीं है कि वे वीर रस के अत्यंत उच्च कोटि के कवि थे। उनके काव्य में अनुभूति की सत्यता, भावों की सहजता, वीर वीरांगनाओं के हृदयस्थ भावों का मार्मिक चित्रण और शौर्य का प्रभविष्णु वर्णन मिलता है। वीर रस की प्रवाहपूर्ण व्यंजना करनेवालों में सूर्यमल्ल का स्थान अत्यंत ऊँचा है, इसमें दो मत नहीं हो सकते। सूर्यमल्ल की रचना के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं--

दुव सेन उदग्गन खग्ग समग्गन अग्ग तुरग्गन बग्ग लई।
मचि रंग उनगन दग्ग मतंगन सज्जि रनंगन जग्ग जई॥
लगि कंप लजाकन भीरु भजाकन वाक कजाकन हाक बढ़ी।
जिम मेह ससंबर यों लगि अंबर चंड अडंबर खेह चढ़ी॥

सूर्यमल्ल की वीरोक्तियाँ देखिए--

आज घरे सासू कहे, हरख अचानक काय।
बहू बलेवा हुलसै, पूत मरेवा जाय॥

--घर में सास कहती है कि आज इतना अचानक हर्ष क्यों हो रहा है? कदाचित् पुत्र-वधू सती होने के लिये उल्लसित हो रही है और पुत्र रणभूमि में प्राणोत्सर्ग करने जा रहा है।

गीध कलैजो चील्ह उर, कंका अंत बिलाय।
तौ भी सौ धक कंत री, मूँछा भौह मिलाय॥

--गृद्ध ने कलेजा, चील ने हृदय और कौओं ने आँतों को विलीन कर दिया है फिर भी कंत का यह साहस है कि उनकी मूँछे भौहों से मिल रही हैं।

राजस्थानी वीरों और वीरांगनाओं की अंतरात्मा के सच्चे दर्शन हमें सूर्यमल्ल के काव्य में होते हैं अतः उन्हें डिंगल का सर्वश्रेष्ठ कवि कहना अत्युक्ति नहीं है। वे निस्संदेह पौरुष और युद्ध के अद्वितीय कवि थे।

१७५. सिंधु कवि 'आनंद'

ये उदयपुर के राणा जगतसिंह (राज्यकाल संवत् १८९८ के लगभग) के समकालीन कवि थे। इन्होंने 'दिनमणि-वंशावली-गुणकथन' नामक एक काव्य लिखा, जिसमें उदयपुर के महाराणाओं की वंशावली और उनके शौर्य, यश, दान आदि गुणों का बखान किया है।[1]

---

१ हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, भाग १, पृष्ठ ४२२।

१७६. खजानसिंह

श्री चंद्रकांत बाली की सूचना के अनुसार ये पंजाब के कवि थे। इन्होने संवत् १८४० और १९०० के बीच 'जंगनामा दिल्ली' नामक एक ग्रंथ रचा। इस ग्रथ का वर्ण्य विषय युद्ध, लिपि गुरुमुखी और भाषा पंजाबी मिश्रित हिंदी है।[१]

१७७. संतोखसिंह

श्री संतोखसिंह का जन्म संवत् १८४५ विक्रमाब्द में तरनतारन के निकट किसी ग्राम में हुआ था। ये जाति के छीपी थे तथा इनके काव्यगुरु भाई सतसिंह जी ज्ञानी थे। इन्होने संवत् १८७८ विक्रमाब्द में अमरकोष का अनुवाद किया और संवत् १८८० में श्री-गुरुनानक-प्रकाश नामक महाकाव्य लिखा। इनकी काव्यकीर्ति सुनकर पटियालानरेश महाराजा कर्मसिह जी ने इन्हें अपने दरबार में बुलाया और अपने दरबारी कवियों में इन्हें संमानप्रद स्थान दिया। सवत् १८८२ मे कैथलराज्याधिपति भाई उदयसिंह जी इन्हें कर्मसिह जी के दरबार से अपने दरबार में ले गए, जहाँ इन्होने जपु जी की गर्वगंजनी टीका लिखी, तथा संवत् १९०० में गुरु-प्रताप-सूर्य अर्थात् सूरजप्रकाश नामक महाग्रंथ लिखा, जिसे श्री सत्यपाल जी गुप्त सिक्खो का मुकंमल इतिहास कहने का दावा करते हैं।[२] इसके अतिरिक्त भाई सतोखसिह ने आत्मपुराण और वाल्मीकि रामायण के अनुवाद भी किए।[३]

गुरु-प्रताप-सूर्य ग्रंथ संतोखसिह का एक महत्वपूर्ण वीरकाव्य है। इसमें कवि ने गुरु गोविंदसिह के आनंदपुरीय दरबार के अनेक हुजूरी कवियों के मुक्तछंदों को भी सकलित किया है। इस बृहदाकार ग्रंथ मे गुरु गोविंदसिह का योद्धारूप प्रधानतः चित्रित किया गया है। अनेकानेक छंदों में अनेक कवियो ने गुरु गोविंदसिह को कृपाण ग्रहण करते, सैन्यसंचालन कर युद्धभूमि मे शत्रुओ से जूझते एवं रणभूमि मे शत्रुओं को क्षत विक्षत, विशृंखल और सत्रस्त करते हुए दिखाया है। आनदपुर के पास होनेवाले महा भयानक युद्ध में रत गुरु गोविंदसिंह के शौर्य का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

श्री गुर गोंविद खग्ग गह्यो अरि फौजनि के इम सैन बिभैलहि।
साँग सँभारि दई गज सीस असीस दई हरि धमन गैलहि॥
घायन ते भभकै निज श्रौन, फुहारनि लौ उपमा छबि फैलहि।
दो भुज हेल मनो हनुमान हिलावति जानि सँजीवनि सैलहि॥[४]

उक्त छंद मे गुरु गोविंदसिह के युद्धकर्म की स्तुति करते समय कवि की सदाशयता

---

१ पंजाब प्रांतीय हिंदी साहित्य का इतिहास, प्रथम भाग, श्री चद्रकान्त बाली, परिशिष्ट, पृष्ठ ३९२।

२. पेप्सू मे हिंदी की प्रगति, सपादक श्री सत्यपाल गुप्त, पृष्ठ १९।

३. वही, पृष्ठ २०।

४. गुरु-प्रताप-सूर्य, पृष्ट ५७१७।

स्पष्ट है किंतु अरि कौन है, इसका पता नहीं चलता। गुरु प्रतापसूर्य में अरि, बैरिनि, दुजन (दुर्जन), रिपु आदि अनेक शब्दों का प्रयोग हुआ है किंतु ये शब्द किनके लिये प्रयुक्त हुए हैं, इनका स्पष्टीकरण नहीं है क्योंकि कवि ने एतद्विषयक व्यक्तियों का नामोल्लेख कहीं भी नही किया है।

गुरु गोविंदसिंह के युद्धोत्साह के पूरक रूप मे कवियों ने उनका मृगयाप्रेम भी चित्रित किया है। गुरु जी जब वीर वेश मे मृगया के लिये प्रस्थान करते हैं तब अरि समूह घरबार छोड़कर भाग जाता है[१], शैलशृंग दबते[२], शेषनाग के फन टूटते और दिग्गजो का धैर्य छूट जाता है।[३]

गुरु प्रतापसूर्य में कवियो ने गुरु गोविंदसिंह की दानवीरता का भी वर्णन किया है। महाभारत के कर्ण पर्व का अनुवाद करने पर गुरु गोविंदसिंह ने हंसराम को साठ हजार टका बख्शीस मे दिए थे।[४] अमृतराय को उन्होने हीर-चीर-मुक्ता से संमानित किया था,[५] इसके अतिरिक्त अन्य कवियों को गुरु जी वस्त्राभूषण, नग, स्वर्ण, अश्व, गज आदि दान में देते रहते थे।[६]

गुरु प्रतापसूर्य का युद्धवर्णन और दानवर्णन रीतिकालीन कवियों की अतिशयोक्तिपूर्ण युद्ध और दानवर्णन पद्धति से भिन्न नही है। गुरु गोविंदसिंह की वीरता का वर्णन भी परंपरागत है। यथा—

डुल्लति अपर नरेश पत्ति हत्थहि जिम हल्लै;
सूखति सायर मलल सक धुम्र धाम न चल्लै॥
खलक खैल खलभलति भैल भग्गहि त्रिलोक महि।
पलक पेल गढि लेति हेल हुर्कति सु जंग महि॥

---

१. परन पुकार अरि छोड़े घरबार भाजे, सो तो गुरु गोविंद की सहजि शिकार है।
—वही, पृ० ५७१३।

२. सैल दबति गेल परति अलंक परि,
खैल भैल खलक खलन घरबार है।—वही, पृष्ठ ५७१२।

३. टूटि फनी फन छूटिगे दिग्गज,
धीरज धौल की जाइ रही कित।—वही, पृष्ठ ५७१३।

४. टका करे बखशीश तब मोको साठ हजार।—गुरु प्रतापसूर्य, हंसराम, पृ० ५५६२।

५. गुरु प्रतापसूर्य, पृष्ठ ५५६१।

६. वही, पृष्ठ ५७१७, ५७२०।

कहि हंसराम सति मिमर कै, सकुच रहति दिगपाल तबि।
धसमसति धरन दल भार ते, सो बिरचराय गोबिंद जबि ॥[१]

हूरनि को नर सूर मिले बर चौमठि जोगनि सैन अघाई।
देति असीस सबै मिलि जंबुक, गीधनि ते रणभूमि सुहाई ॥
छाड़ि सुहाग लिये विधवा इक, बैरन की तिय को दुखदाई।
खग्ग गहे गुर गोबिंद के हरि नारद के घर होत बधाई ॥[२]

उक्त छदों की भावधारा भूषण की शिवा बावनी से साम्य रखती है। हसराम की 'खलक खैल खलभलति भैल भग्गहि तिलोक महि' भूषण के 'ऐल फैल खैल भैल खलक मे गैल गैल, गजन की ठेल पेल सैल उलसत है ॥'[३] अथवा 'चौमठि जोगनि सैन अघाई' भूषण के 'जुत्थ जुत्थ जोगिनी जमात जुरि आई है।'[४] से तुलनीय है। अंतर केवल इतना ही है कि गुरु प्रतापसूर्य ग्रंथ के कवियो की दृष्टि मे गुरु गोविंदसिह वीर योद्धा के साथ साथ धार्मिक नेता भी थे अत. उनके दरबारी कवियो की स्तुति मे श्रद्धा भक्ति का तत्व भी मिल गया है जबकि कविवर भूषण का दृष्टिकोण अपने आश्रयदाता के शौर्यवर्णन तक ही सीमित है। भूषण ने शिवाजी को विष्णु का अवतार अवश्य कहा है फिर भी उनका भाव शिवाजी के प्रति पूज्य बुद्धि का द्योतक न होकर एक आदर्श व्यक्ति के गुणगान तक सीमित रहा है। भूषण के लिये शिवाजी जितने राष्ट्रीय नेता थे, उतने धार्मिक नेता नहीं। इसलिये भूषण की उक्तियो में यवनो का जितना उग्र विरोध है, उतना गुरु प्रतापसूर्य के कवियो की वाणी मे नही है। संभव है, गुरु गोविदसिह की यवनो के प्रति नीति भी इसका एक महत्वपूर्ण कारण हो।[५]

१७८. अजवेश महापात्र

कवि अजवेश का जन्म स० १८४१ मे अमनी, जिला फतहपुर में हुआ था। इनके पिता शिवनाथ जी रीवाँ के महाराज श्री जयसिंह जू तथा उनके पुत्र महाराज विश्वनाथ सिह जू देव बहादुर के दरबारी कवि थे। शिवनाथ जी को रीवाँनरेश व उदयपुर के तत्कालीन महाराणा द्वारा एक एक ग्राम पुरस्कारस्वरुप प्राप्त हुए थे। शिवनाथ जी ने अजवेश जी को सस्कृत और फारसी की उच्च शिक्षा दिलाई थी। रीवाँनरेश श्री विश्वनाथ सिह जू देव ने अजवेश को पंचमुसाहिबी का स्थायी सदस्य बनाकर एक गाँव दिया था।

---

१. गुरु प्रतापसूर्य, पृष्ठ ५७१८।
२. वही. पृष्ठ ५७२२।
३. भूषण ग्रंथावली, स० पं० श्यामबिहारी मिश्र और प० शुकदेवबिहारी मिश्र, पृष्ठ १०८।
४. वही. पृष्ठ १०९।
५. दशम ग्रंथ, गुरु गोविदसिह, पृष्ठ ७१।

स्फुट कवित्त, बघेलावंश वर्णन, बिहारी सतसई की टीका, और स्वरूपविलास इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ है। रीवाँनरेश महाराजा विश्वनार्थसिह जू देव की वीरता का वर्णन देखिए--

संगर समस्त सज्यो बाँधौ धनी विश्वनाथ,
वीरता को रूप खूब आनन लखात है।
मारू बाजे बाजे गाजै दुरत दतारे भारे,
सुभट समूह सावधान दरसात है।
विक्रम विहद्द हिद्दुवान हद्द अजवेश,
जैसिह के नद के अनद अधिकात है।
तरकत जात बंद, करकत जात कवच,
थरकत बाजी बाँह फरकत जात है॥

विश्वनार्थसिह जू देव की मृत्यु के बाद महाराज रघुराजसिह जू देव रीवाँ की गद्दी पर बैठे। सन् १८५७ (संवत् १९१४) के गदर को दबाने में उन्होने अँग्रेजी राज्य की बड़ी मदद की थी, जिससे अँग्रेज सरकार ने रीवाँ राज्य का छूटा हुआ परगना सोहागपुर उन्हे लौटा दिया। इस समाचार को सुनकर अजवेश जी ने रघुराजसिह जू देव की प्रशंसा में निम्नलिखित कबित्त कहा था--

जंबू दीप जीत्यो जिन साँकरे परे ते डरे,
तिन अँगरेजन को राख्यो बरजोरी तै।
पाँयेन सो मर्दि गर्दि कीन्हो छत्रमाली,
सत्रुन की लाली कोप काली मे बोरी तै।
किम्मति कहे को तेरी वीरता को अजवेश,
थोरी ही उम्मरि कगी हिम्मति न थोरी तै।
वीर भानुवंश अवतंश धन्य रघुराज,
केतिकौ दिना की गई अवनि बहोरी तै॥

उक्त प्रशस्ति से अजवेश जी की राज्यनिष्ठा का प्रमाण मिलता है किंतु इसमे उनके राष्ट्रप्रेम का परिचय नही पाया जा सकता। दरबारी कवियो मे अपने आश्रयदाता को ही प्रसन्न करने की जो प्रवृत्ति सामान्यत पाई जाती है, उसका समर्थन उक्त कवित्त से हो जाता है।

शिवसिह सरोज,[1] हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास[2] और मिश्रबधु विनोद[3] मे

१. शिवसिह सरोज, शिवसिह ठाकुर, पृ० ३७८।
२. हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास, मूल लेखक सर जॉर्ज ग्रियर्सन, अनुवादक किशोरीलाल गुप्त, पृ० ६० और २५१।
३. मिश्रबंधु विनोद, भाग ३, पृ० ११००।

रीवाँ और जोधपुर निवासी अजवेश कवि को दो व्यक्ति माना गया है, जो वास्तव में अशुद्ध है। संवत् १६०१ में अजवेश जी रीवाँ दरबार की ओर से उदयपुर के महाराणा स्वरूपसिंह जी के दरबार में गए थे, जहाँ उनका खूब स्वागत हुआ था। यहाँ अजवेश जी ने महाराणा स्वरूपसिंह के लिए 'स्वरूपविलास' नामक ग्रथ लिखा था। तदुपरांत ये जोधपुर गए थे और वहाँ भी कुछ समय तक रहे। अंततः संवत् १६२६ में ८५ वर्ष की अवस्था में रीवाँ में इनका शरीरपात हुआ।

१७६. उमादास

उमादास का अपर नाम भवानीदास था। ये पटियाला दरबार के राजकवि थे। इन्होने महाभारत के स्वर्गारोहण पर्व, मौसल पर्व, प्रस्थान पर्व अश्वमेध पर्व और सौप्तिक पर्व का अनुवाद किया था। अश्वमेध पर्व को छोड़कर शेष पर्व संवत् १६०६ मे अनूदित किए गए, अतः इनका जन्मसवत् और रचनाकाल संवत् १६०० से पूर्व मानना चाहिए। नीतिरत्नाकर, नाममाला, कुरुक्षेत्रमाहात्म्य, पचरत्न, काव्यकुतूहल, सुदामाचरित्र, बारामाँह आदि इनकी रचनाएँ है। महाराज कर्मसिह की वीरता का बखान करते हुए इन्होंने लिखा है--

चलै रंग अंग है तुरंग जौ उतंग संग,
मत्त ह्वै मतंग धूर सोभा आसमान की।
उमादास नाले नाले धुरनाले चाले हाले,
मही को सँभाले धुन आगे हैं निसान की।
बिजैवत बिजै काज चढ़ै कर्मसिह राज,
सुन के समाज सत्रुहू कौ होत प्रान की।
पान की न पान की न खान की न गान की,
तान की न जान की न रही सुधि आन की ॥[१]

वीर और शृंगार रसो पर उमादास का अच्छा अधिकार था। उनके काव्य में भाषासौष्ठव, सालंकार शब्दविन्यास और अभिव्यक्ति का सामर्थ्य विशेष रूप से पाया जाता है।

१८०. टिकैतराय

इन्होंने जगनिक के लोकप्रसिद्ध आल्हखंड के ढंग पर गाँजर की लड़ाई लिखी, जिसमें कन्नौज के राजा जयचद और गाँजर के राजा का युद्ध वर्णन किया गया है। जयचंद की ओर से उसका पुत्र लाखन राना और आल्हा का छोटा भाई ऊदलि लड़े। पहले लाखन

---

१. पंजाब प्रांतीय हिंदी साहित्य का इतिहास, प्रथम भाग, चंद्रकांत बाली, पृ० ३४४–३४५।

राना की हार होने लगी, किंतु बाद में ऊदलि के प्रोत्साहन से पुन: कन्नौज की जीत हुई। गाँजर की लड़ाई के युद्धवर्णन अतिरंजनापूर्ण हैं--

> गोला ओला के सम छूटे गोली मघा बूंद अरराय।
> हाथी घोड़ा बहुतक जूझे लाखन छत्री गए उड़ाय॥
> तोपैं धैं धैं लाली पर गई ज्वानन हाथ धरे ना जाय।
> नदिया बहन खून की लागी, ढालैं कछुआ सी उतरायें॥

गाँजर की लड़ाई का लिपिकाल संवत् १६१२ है, किंतु खोज रिपोर्ट की टिप्पणी में लिखा है कि इस ग्रथ के रचयिता टिकैतराय थे, जो सवत् १६०० वि० के पहले हुए थे।[1]

डॉ० ब्रजकिशोर मिश्र की सूचना के अनुसार श्री ब्रजराज पुस्तकालय, गधौली, सीतापुर में बेनीकृत टिकयितराय प्रकाश नामक एक हस्तलिखित ग्रथ है, जिसमे लखनऊ के नवाब आसिफुद्दौला के मत्री टिकयितराय के राजवश का परिचय दिया गया है।[2]

१८१. संतरेण

इनका जन्म संवत् १७६८ मे श्रीनगर में हुआ था। ये जाति के गोड़ ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम हरिवल्लभ, माता का नाम मावित्रीदेवी और दीक्षागुरु का नाम साहिबदास उदासी था। उदासी संप्रदाय मे दीक्षित होने के बाद इन्होंने लाहौर, अमृतसर, बालापुर, सिंध, उत्तर प्रदेश, नैपाल, मद्रास और बलूचिस्तान तक की लबी लबी यात्राएँ कीं। अंत में मलेरकोटला रियासत के भूदन नामक स्थान पर अपना आश्रम खोला और यहीं संवत् १६२८ में इनका सत्यलोकवास हुआ।[3]

मनप्रबोध, अनभै अमृतसागर, पंचपरमेश्वर स्तोत्र, नानकविजय, नानकबोध और उदासीबोध इनकी रचनाएँ हैं। इनमें से प्रथम दो रचनाएँ श्री सतरेण ग्रथावली के प्रथम भाग में संकलित है। उदासीबोध, नानकविजय और पंचपरमेश्वर स्तोत्र पांडुलिपि के रूप में विद्यमान हैं तथा नानक बोध अप्राप्य है। पंच परमेश्वर स्तोत्र का रचनाकाल संवत् १८३६ और उदासीबोध का रचनाकाल संवत् १६१६ है। इसी बीच संवत् १८३६ से १६१६ तक नानकविजय नामक महाग्रथ रचा गया। यह विशालकाय ग्रंथ वास्तव मे नानकपुराण है। इसमें २० खड, ३२४ अध्याय और २४,३८२ छंद हैं।

नानकविजय धीर, प्रशांत नायक का चरितकाव्य है, पर इसमें भी कवि ने इब्राहीम

---

1. हस्तलिखित हिंदी ग्रंथों का चौदहवाँ त्रैवार्षिक विवरण, सन् १६२६–१६३१, पृ० ६०३।
2. अवध के प्रमुख कवि, डॉ० ब्रजकिशोर मिश्र, परिशिष्ट १, पृष्ठ ३०३–३०४।
3. श्री संतरेण ग्रंथावली, भाग १, संपादक महंत मुक्तराम, पृष्ठ १–३।

लोधी और बाबर के वीरतापूर्ण युद्ध का वर्णन किया है। युद्धवर्णन के प्रसंग में संतरेण ने वीरो का उत्साह, पराक्रम, मारकाट, तथा रणक्षेत्र का बहुत स्वाभाविक वर्णन किया है–

अंगन संजोइ सजै दोहू ओर मारू बजे, सिघन ज्यो बीर गजे, रजे नाहि लरते ।
दुंदभी बजै अपार, गनतो न बेसुमार. काहू की न भई हार, कट कट मरते ।।
आमिख की मची घान, चल न सकै जवान, लोथ पर लोथ परी, भगी ताहि धरते ।
लरै बीर ह्वै अगारी, लरने को चाउ भारी, बाँध बाँध कंगने सो आये बीर घरते ।।
——नानकविजय, ७।३।१७।७३२ ।

संतरेण के युद्धवर्णन की ध्वन्यात्मकता में अनावश्यक या भरती के शब्द नहीं है, अपितु नादसौदर्य की स्वाभाविकता है अत इस दृष्टि से संतरेण को कुशल कवि मानना चाहिए।

१८२. दित्तेराय

दित्तेराय वशपरंपरा से कवि थे। इनका जन्म सवत् १८६५ के लगभग हुआ था। इनका उपनाम सोहन था। इन्होंने समयबत्तीसी, व्यासाश्रम पर्व, स्त्रीपर्व (महाभारत), शुकप्रकाश और महेंद्रसिहप्रकाश नामक ग्रथों की रचना की। महेंद्रसिह पटियाला के राजा थे, जो विक्रम सवत् १९१९ मे सिहासनासीन हुए थे। दित्तेराय ने महेंद्रसिह की प्रशस्ति के गुणगान के लिये महेंद्रसिहप्रकाश की रचना की। इनकी भाषा परिमार्जित है। छदों की विविधता की दृष्टि मे इन्होंने दोहा, छप्पय, कवित्त, सवैया, भुजंगप्रयात आदि का प्रयोग किया है। पटियाला की गादी की प्रशसा करते हुए कवि कहता है—–

सेवन सुभट सूर कविगन भाय भरै,
चाय भरै चतुर चहूँधा बहै बैस की ।
सोहन बखाने मही मडल अखंडल लौं,
माने आनकान जाकी प्रभा है दिनेस की ।
धरम की रच्छ प्रतपच्छ करी भच्छक हे,
लच्छक नरेसन की पच्छ कहे देस की ।
सादी याचकन की अयादी न्यावजीतह की,
प्रमादी की हरनहार गादी पटलेस की ।।[1]

१८३. सेवकराम बंदीजन

ये असनीवाले ठाकुर कवि के पुत्र धनीराम के द्वितीय पुत्र थे। इनका जन्म संवत् १८७२ में असनी में और निधन सवत् १९३८ में काशी में हुआ था। वाग्विलास,

१. पंजाबप्रांतीय हिंदी साहित्य का इतिहास, भाग १, चद्रकात बाली, पृ० ३५४–३५५।

पीपाप्रकाश, बरवै नखशिख, स्फुट कवित्त इनकी रचनाएँ हैं। ये काशी के रईस बाबू देवकीनंदन सिंह के प्रपौत्र बाबू हरिशंकर सिंह के आश्रित थे, जिनकी प्रशंसा में इन्होंने निम्नलिखित छंद रचा था—

जहाँ जोम के अनीन कीन कठिन कनीन कन,
लोहे मे बिलीन जिन्हे घूमत बिमान।
जहाँ धोपकि धमकि घाव बोलत बमकि,
नदी लोहू की लमकि लेन लागी लहरान॥
जहाँ रुंडन पै रुंड मुड, भुंडन के भुड कटे,
कोटिन बितुड बिध्य बधु की समान।
तहाँ सेवक दिसान, भीम रुद्र के समान,
हरिशकर सुजान भुकि भारी किरवान॥[1]

१८४. भवनेश महापात्र

भवनेश जी का जन्म असनी मे हुआ था। इनके पितामह का नाम विश्वनाथ, पिता का नाम परमसुख और जन्म सवत् १८७६ था। ये रीवाँनरेश रघुराजसिह के दरबारी कवि थे। मुरारमऊ के राजा दिग्विजयसिह और अमेठी के राजा माधोसिह ने इन्हे काव्यपुरस्कार के रूप में एक एक हाथी दिया था। इन्होने मुरारमऊ के राजा को हाथी लौटा दिया, जिसके बदले मे इन्होंने दस बीघा जमीन पाई थी।

कालाकाँकर (धारूपुर) के राजा हनुमंतासिह के दरबार मे भी ये कुछ समय तक रहे थे। बाँधौनरेश से किसी कारणवश इनकी अनबन हो गई थी, तब से ये बैंसवारे के राजा के यहाँ चले गए थे। इस घटना के सबध मे इनकी निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य है—

बाँधौ नरेश दीन्हों जब ते जवाब अब,
तब ते जियावै हमें भूप बैंसवारे के।

भवनेश जी की कोई स्वतंत्र रचना नही मिलती, पर इनके आश्रयदाताओं से संबंधित स्फुट छंदों के अतिरिक्त इनके कुछ भक्तिपरक ऐसे भी छद मिलते है, जिनमे कालिका देवी की वीररसात्मक स्तुति की गई है। यथा—

आदि शक्ति ईसुरी अनादि ज्योति ब्रह्मतेज,
तपति प्रचड सब गुनन की मालिका।
दैत्य दल दानवन तिनकी दलनहारो,
देवन निहाल करै ऐसी है दयालिका॥
कहैं भवनेश पोषे जानि जन आपने को,
पूरी करि देत आस ऐसी पैज पालिका।

---

1. असनी के हिंदी के कवि, डॉ० विपिनबिहारी त्रिवेदी, पृष्ठ १२४।

दुष्टन की घालिका, श्ररीन उर सालिका,
सु मेरे उर रक्षक तुही है देवि कालिका ।।[१]

१८५. मदनेश महापात्र

श्रसनी के सुप्रसिद्ध महापात्र कवि घराने में मदनेश जी का जन्म हुआ था। इनका वास्तविक नाम गयाप्रसाद, जन्मसंवत् १८८१ श्रौर पिता का नाम दौलतराम महापात्र था। ये हिंदी, संस्कृत श्रौर फारसी के अच्छे ज्ञाता थे। इमके चार ग्रंथ प्राप्त होते हैं—१. सजनप्रकाश, २. फतेहभूषण, ३. नायिकाभेद श्रौर ४. रसराजतिलक। सजनप्रकाश उदयपुर के महाराणा सजनसिंह की प्रशंसा में लिखा गया है। इसमें सजनसिंह को सर्वश्रेष्ठ नृपति बतलाते हुए कवि कहता है—

ऊपर महीसै महि मंडल में दीसै,
बसै जामैं जगदीसै सुरतरु मै न फेरु है।
उर तैं प्रगट मुख श्रौर लगि छोर जहाँ,
देसन जहाँ लौं सब गुनन कौ घेरु है।।
राम नाम जपिबे को हद्द जाकी हिम्मति है,
मदनेस दान समे कंचन को ढेरु है।
श्रौर महिपाल जगमाल कैसे लाल, श्री
सजन महाराज तामें सोभत सुमेरु है।।

'फतेहभूषण' अलंकार का ग्रंथ है, जिसपर महाराणा फतेहसिंह जी ने कवि को ५०० रुपए नगद श्रौर एक हाथी की विदाई दी थी। नायिकाभेद, रसराजतिलक तथा उपर्युक्त दोनों ग्रंथ मदनेश जी के पुत्र असनीनिवासी लाल जी कवि के पास सुरक्षित हैं।

प्राप्त सूचनाओं के अनुसार ६६ वर्ष की अवस्था में मदनेश जी का निधन असनी में हुआ।[२]

१८६. सतीप्रसाद

डॉ० टीकमसिंह जी तोमर ने अपने शोधप्रबंध हिंदी वीरकाव्य (सन् १६०० से १८०० तक) में केवल इतना ही लिखा है कि इन्होंने 'जयचंदवंशावली' नामक एक वीरकाव्य लिखा है, जिसमे जयचंद की बंशावली श्रौर उसका परिचय दिया गया है।[३] हिंदी साहित्य के द्वितीय खंड मे भी उन्होने उक्त सूचना के अतिरिक्त कोई नई जानकारी नही दी।[४]

---

१. असनी के हिंदी कवि, डॉ० विपिनबिहारी त्रिवेदी, पृष्ठ ८६–६०।

२. वही, पृष्ठ ६१–६६।

३. हिंदी वीरकाव्य, डॉ० टीकमसिंह तोमर, पृष्ठ १६।

४. हिंदी साहित्य, सं० डॉ० धीरेंद्र वर्मा, खंड द्वितीय, पृ० १७८ श्रौर १८१।

खोज विवरण के अनुसार ये कमौली (वाराणसी) के जमींदार बटुकबहादुर सिंह के आश्रित थे। इन्हें जयचंद की मूल वंशावली कमौली ग्राम में ताम्रपत्र पर प्राप्त हुई थी।[1]

१८७. वसंतसिंह ऋतुराज

इनके जीवनवृत्त का विशेष परिचय नहीं मिलता। श्री चंद्रकांत बाली ने इन्हें पटियालानरेश का आश्रित कवि बतलाया है।[2] इन्होंने नलदमयंती, भीष्मपर्व, गुरुवंश-तरु-दर्पण, रूपबसंत, कथा जगदेव पँवार, सिखावन राजनीति, और बसंत सतसई की रचना की तथा फारसी के गुलिस्तां व बोस्तां का अनुवाद बसंतबहार और वसंतविनोद के नाम से किया। गुरु गोविंदसिंह के शौर्य का वर्णन करते हुए इन्होंने लिखा है—

मूल तें गवायौ गाइ बामन के बैरिन कौ,
भूल न लगायो मुख मानुख मलिन कौ।
लील्यौ गयौ हिंद कौ सु धरम उगल्यौ फेर,
धूर में मिलायौ मान मेट मुगलन कौ।
श्री गुर गोविंदसिंह साँचो पातसाही प्रभु,
खिन में खपायौ जिन मंडल खलन कौ।
खोटि भरे जान नख कोटि तें कुटिल बोटी—
बोटी कौ उडायौ बिना चोटी के दलन कौ॥

१८८. टहलसिंह

पंजाब प्रांतीय हिंदी रीतिसाहित्य मे सरदार टहलसिंह का उल्लेख अंतिम कड़ी के रूप में किया जाता है। इनके दो ग्रंथों का पता चला है——१ बारामाँह और २. अलंकार-सागर-सुधा। अलकार ग्रथ मे इन्होंने गुरु गोविंदसिंह की प्रशस्ति में अनेक छंद लिखे है, जिनमें गुरु गोविंदसिंह की वीरता, महिमा, यशगाथा, दानमहिमा आदि का सुंदर वर्णन मिलता है। अनुप्रास की छटा और उपमानो की झडी टहलसिंह के काव्य की विशेषताएँ हैं। भावधारा, भाषा और काव्यप्रवाह की दृष्टि से टहलसिंह भूषण की तरह रससिद्ध कवि प्रतीत होते हैं। इनकी रचना का एक उदाहरण देखिए——

कीरति तिहारी हौ निहारी श्री गुविंदसिंह,
पावक में, पंकज में, पतंग में, पारा मे।

---

१. हस्तलिखित हिंदी पुस्तको का संक्षिप्त विवरण, प्रथम भाग, पृष्ठ ३३१।

२. पंजाबी प्रांतीय हिंदी साहित्य का इतिहास, भाग १, श्री चंद्रकांत बाली, पृ० ३४६–३४७।

चित्त की कला में, चपला में है टहलसिंह,
चंदन में चाँदनी में चाँद में, उजारा में ।
हर में, हरा में, हर आसन में, हंसन में,
हीरा में, हलायुध में, हास में, हिमारा में ।
सीसा में, सुधा में, खीर सागर में, सविता में,
सारदा में, सरिता में, सर में, सितारा में ॥[१]

—:०:—

१. पंजाब प्रांतीय हिंदी साहित्य का इतिहास, श्री चंद्रकांत बाली, प्रथम भाग, पृ० ३८७ ।

उपसंहार

उपसंहार

हिंदी साहित्य के इतिहास में शृंगारकाल का अधिकांश काव्य नारीसौंदर्य और शौर्य की भावनाओं से ओतप्रोत है। शृंगारिक भावना के पोषक और समर्थक कवियों ने अपनी रचनाओं में नायक-नायिका-भेद, हावभाव, हेला, रतिक्रीड़ा, छंद, रस, अलंकार आदि का शास्त्रीय विवेचन कर अपने आश्रयदाताओं का मनोरंजन और यशविस्तार करने का प्रयास किया है तथा रीतिमुक्त काव्य के अधिकांश प्रणेताओं ने वीरकाव्य में आश्रयदाताओं की प्रशस्ति और युद्धवर्णन लिख उनकी कीर्ति को अमरता प्रदान करने की चेष्टा की है। यह वीरकाव्य सारे देश में रचा गया है, अतः वीरकाव्य के कवियों और उनकी कृतियों की संख्या विपुल है, जिसके आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि रीतिमुक्त काव्य की सर्वाधिक महत्वपूर्ण धारा वीरकाव्य धारा थी, जिसके परिष्कार, विकास और समृद्धि में रीतिबद्ध और रीतिमुक्त दोनों प्रकार के कवियों ने अपनी प्रतिभा, साधना और विद्वत्ता का समुचित प्रयोग किया है।

वीरकाव्य के प्रायः सभी कवि राजदरबारों में अधिकाधिक धन, पद, यश और मान पाने के अभिलाषी थे, अतः वे अपनी समस्त विद्वत्ता और प्रतिभा के बल पर अपने आश्रयदाता को अधिक से अधिक प्रभावित करना चाहते थे और आश्रयदाता भी कवि तथा काव्य के प्रभाव के अनुसार अपने प्रशंसक कवि को पुरस्कार और संमान दिया करते थे। इस तरह रीतिकालीन कवियों और शासकों का अन्योन्याश्रित संबंध था।

कतिपय कवि कलम और तलवार दोनों के धनी थे अतएव आश्रयदाताओं की दृष्टि में उनका विशेष महत्व था। कतिपय कवियों में, विशेषकर राजस्थानी चारणों में, राज्यनिष्ठा और स्वाभिमान की मात्रा इतनी अधिक थी कि वे 'अयाचक' बन जाने पर अपने आश्रयदाता के अतिरिक्त अन्य किसी भी व्यक्ति से पुरस्कार या दान नहीं लेते थे। कुछ कवि ऐसे थे, जो योग्य आश्रयदाता की खोज में दर दर भटका करते थे और द्रव्यलाभ की आशा से अत्यन्त सामान्य कोटि के रईस अथवा शासक को कुबेर, सुरेंद्र, कल्पतरु के उपमान देने में नहीं हिचकते थे। ऐसे कवियों की वाणी में कविकृत प्रशंसा सच्चे आंतरिक उल्लास की अपेक्षा चाटुकारिता से अधिक परिपूर्ण है। उक्त कवियों के अतिरिक्त कुछ ऐसे भी कवि थे, जिनका काव्य प्रतिभा, पांडित्य और साधना से संपन्न था। वे जहाँ जाते, वहीं संमान पाते थे और शासकगण उन्हें एक एक छंद पर सहस्रों रुपए पुरस्कार स्वरूप दिया करते थे, पर ऐसे भाग्यशाली कवि संख्या में बहुत कम थे। शेष कवियों की रचनाओं में हार्दिक उत्फुल्लता कम, बौद्धिकता अधिक, वास्तविक यशगान कम, ऊहात्मक प्रशंसोक्ति अधिक, सत्य की सीमा संकीर्ण और कल्पनाविलास अधिक पाया जाता है। विशाल जनमानस और लोकचेतना को उद्वेलित करने की शक्ति उनमें नहीं पाई जाती,

किंतु वीरकाव्य के इस व्यापक प्रभाव के लिये वीरकाव्य के कवियों को ही पूर्णतः दोषी ठहराना न्यायसंगत नहीं है। समय, समाज, परिस्थिति और शासकों की मनोवृत्ति भी इसके लिये बहुलांश में उत्तरदायी हैं।

युगीन परिस्थितियों के परिपार्श्व मे प्रत्येक शासक के समक्ष जीवन और मरण का प्रश्न था। राजनीतिक वातावरण की अस्थिरता के कारण यह सोचना भी कठिन था कि कब, कौन किसपर कैसे आक्रमण करेगा ? और ऐसे युद्ध का अंत क्या होगा ? पारस्परिक वैमनस्य, संघर्ष और स्वार्थलिप्सा के कारण सर्वत्र अनिश्चितता थी और युद्ध के बादल सदैव मँडराते रहते थे. अत. "खाओ, पियो, मौज करो, लड़ो और मरो" हर शासक का जीवनदर्शन था। प्रत्येक शासक जीते जी यश, वैभव और विलास का सुखोपभोग करना चाहता था और मरने पर अपनी कीर्ति छोड़ जाने का अभिलाषी था। शासकों की इस लालसा के फलस्वरूप रीतिकालीन शृंगारिक काव्य में उनकी भोगलिप्सा और वीरकाव्य मे उनकी कीर्तिरक्षा का भाव स्पष्टतः परिलक्षित होता है।

राजस्थान में, जहाँ आए दिन युद्ध की घोषणा करनेवाले धौंसा और नगाड़े बजा करते थे, एक कहावत प्रचलित थी कि "नाँव तो गीतड़ा के भीतडा सूं रेवे।" अर्थात् व्यक्ति का नाम (यश) या तो गीतों अर्थात् काव्य से सुरक्षित रहता है या भीतों अर्थात् किले, महल मंदिर आदि से। इनमें भी 'भीतड़े' युद्ध के समय ढह जाते थे, केवल 'गीतड़ा' मे ही इतनी शक्ति थी कि वह समय के अनंत सागर में अपने चरित-नायक की कीर्ति को दूर तक वहन करने का सामर्थ्य रखता था, अतः राजस्थान में कवियों और चारणों को सदैव आदर की दृष्टि से देखा जाता था। राजस्थानेतर क्षेत्रों मे भी वीर-काव्य के कवियों की प्रतिष्ठा थी। कहीं कहीं अपने दरबार मे अधिक से अधिक कवियों को स्थान देने मे शासकगण गर्व का अनुभव करते थे।

नायक-नायिका-भेद, छंदशास्त्र, रसशास्त्र और अलंकारशास्त्र के कवियों पर जिस प्रकार संस्कृत का प्रभाव था, उसी तरह वीरकाव्य के कवियों पर संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश की वीरकाव्य परंपरा का प्रभाव और उसके संरक्षण व विकास का उत्तरदायित्व था। उन्होंने शृंगारिक भावनाओं से ओतप्रोत, रति-रग-जंग के स्त्रैण इतिवृत्तों का परि-त्याग कर दरबारी काव्य को पौरुष का स्वर प्रदान किया। उनकी वाणी विलासिता के बीच शौर्य, शक्ति और सामर्थ्य की वाहिनी बनी, किंतु आश्रयदाता तक ही सीमित होने के कारण वीरकाव्य की रचनाएँ व्यक्तिप्रधान बनकर रह गईं। विलासिता, राज्यलिप्सा, और युद्ध की विभीषिका से आक्रांत समस्त देश को लोकजागरण की जिस विराट् चेतना की आवश्यकता थी. उसे ये दरबारी कवि न तो आत्मसात् कर सके और न उनके काव्य में जनजागृति का स्वर ही प्रबल रूप से मुखर हो पाया, अतः वीरकाव्य की अधिकांश रचनाएँ समाजोन्मुख न होकर व्यक्तिपरक हैं और आज भी वे राजकीय ग्रंथालयों अथवा हस्तलिखित-ग्रंथ-संग्रहालयों में अपने मूल रूप मे सुरक्षित हैं। वे न तो कवियों के लिये स्वांतःसुखाय

थीं और न जनसमाज में बहुजनहिताय, बहुजनसुखाय, अतः उनका प्रचार प्रसार कम हुआ है। जो स्फुट छंद, वीरगीत या पोवाडे लोक-रुचि-पोषक और लोक-मानस-रंजक थे, वे मौखिक परंपरा में आज भी 'पुराने आदमियों' की जबान पर थिरक उठते हैं।

रीतिकालीन वीरकाव्य वर्ण्य विषय, भावभेद, रसभेद, छंद, अलंकार, शैली-वैविध्य से पर्याप्त संपन्न है, उसमे इतिहास और काव्य का अंश मिला जुला है, फिर भी इस तथ्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि काव्यसाधना जब जीविकोपार्जन का साधन बन जाती है और कवि की विराट् सत्ता धन, पद, यश और मान की लालसा से आक्रांत हो जाती है, काव्य राजनीतिक स्वार्थ अथवा पूँजीवादी समाजव्यवस्था का क्रीत दास बन जाता है, तब वह अपने उदात्त संस्कार और उच्च स्तर से नीचे गिरकर सच्ची प्रशंसा की अपेक्षा चाटुकारिता का वाहक बन जाता है। लोकमानस, लोकरुचि, लोक-स्मृति और लोकजीवन के विविध कार्य व्यापारों में उसकी निरंतर उपेक्षा होती है और अंततः ऐसा काव्य काल के गाल में समा जाता है। वीरकाव्य की अनेक रचनाओं की यह दुर्गति हुई है। अतः रीतिकालीन वीरकाव्य से हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि जीवनी शक्ति के अभाव में काव्य दीर्घजीवी नही होता और जिस कविता का मूल्य धन, पद, मान या अन्य किसी स्वार्थपूर्ति से चुकाया जाता है, उसका स्थायी मूल्य नही होता। वीर-काव्य से प्राप्त होनेवाला यह निष्कर्ष सनातन माना जा सकता है। वीरकाव्य की वे रचनाएँ, जिनके चरितनायक लोकनायक थे, लोकादर्श थे, आज भी सुरक्षित हैं और उनके भविष्य के बारे में संदेह के लिये कोई गुंजाइश नहो है। अपने चरितनायक की यशवाहिनी होने के कारण वे रचनाएँ सदैव समाज में संमान पाती रहेंगी।

मुगलकाल और अँग्रेजी शासन की समाप्ति के बाद इस देश में गणराज्य की स्थापना हो गई है। शासनव्यवस्था जनतांत्रिक पद्धति पर चल रही है, अतः अब स्वतंत्र भारत में राजा महाराजा, महाराणा, नवाब और सम्राटों के होने की संभावना नही है और इसीलिए रीतिकालीन दरबारी काव्य के पुनःसृजन की कोई आशा नही की जा सकती, किंतु एक बात निश्चित है कि जब तक संसार मे मनुष्य में पुरुषार्थ है, और पुरुषार्थ अपने स्वत्व, संमान, स्वातंत्र्य और अधिकार के लिये कर मिटने या मर मिटने की भावना रखता है, तब तक संसार में वीरों की पूजा होगी, वीरभावों और वीरकाव्यों की प्रतिष्ठा रहेगी और वीरकाव्य अपने चरितनायकों के आदर्श द्वारा लोकचेतना जागृत कर दलित, पतित, शोषित, तिरस्कृत, उपेक्षित, पदमर्दित समाज को जीवन और मृत्यु का मूल्य सिखलाता रहेगा। संघर्षों से आक्रांत समाज उससे नई चेतना, नई स्फूर्ति और नई जीवनशक्ति पाता रहेगा। रीतिकालीन वीरकाव्य इस दृष्टि से स्थायी महत्व और मूल्य रखता है, जिसकी उपेक्षा नही की जा सकती।

पाँचवाँ खंड

नीतिकाव्य का स्वरूप

प्रथम अध्याय

नीतिकाव्य का स्वरूप और प्रकार

जब यह स्वीकृत कर लिया गया कि उचित व्यवहार का नाम ही नीति है, तब इसे मानने में भी कोई संकोच न होना चाहिए कि नीति के प्रतिपादक काव्य को नीतिकाव्य कहते है। परंतु कुछ लोग नीतिप्रतिपादक काव्य को दो कारणो से नीतिकाव्य कहना उचित नहीं समझते। प्रथम, काव्य का उद्देश्य आनंदप्रदान है जबकि नीतिकाव्य का व्यवहारशिक्षा; द्वितीय, काव्य सरस कृति को कहते है जबकि नीतिकाव्य नीरस पद्य वा सूक्ति मात्र होते है। गंभीर दृष्टि से देखने पर दोनो आक्षेप निराधार प्रतीत होते हैं। प्रथम आक्षेप का उत्तर यह है कि जब परमाणु से भानुपर्यंत प्रत्येक विषय पर काव्यरचना संभव है, तब व्यवहारशिक्षा को काव्य का विषय बनाने मे आपत्ति क्यो? आचार्य मम्मट ने काव्य प्रयोजन यो निर्दिष्ट किए है---

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परनिर्वृतये कांतासंमिततयोपदेशयुजे ।।

(काव्यप्रकाश १।२)

अर्थात् काव्यरचना यश, धन, व्यवहारज्ञान, अमंगलनाश, लोकोत्तर आनंद तथा कांतासंमित उपदेश के लिये की जाती है। इससे स्पष्ट है कि काव्यरचना का उद्देश्य आनंदप्रदान ही नही, व्यवहारज्ञान और कांतासंमित उपदेश भी है और ये दोनो नीतिकाव्य के प्रधान लक्ष्य हैं। द्वितीय आक्षेप भी निराधार है क्योंकि नीतिकाव्य पद्य वा सूक्ति मात्र ही नही होते, उत्तम, मध्यम वा अधम काव्य भी होते है। यह तो कवि की प्रतिभा व अभ्यास पर निर्भर है कि वह नीति की बात को पद्य मे अभिव्यक्त करने मे समर्थ है, सूक्ति में वा काव्य मे। अभी आगे हम इस विषय पर अधिक प्रकाश डालेंगे, इसलिये यहाँ इससे अधिक कहने की आवश्यकता नही।

नीति-काव्य-युक्त ग्रंथ

नीतिकाव्य दो प्रकार की कृतियो मे उपलब्ध होता है। प्रथम, उन कृतियों में जिनका मुख्य विषय तो कोई अन्य हो परतु नीति आनुषंगिक रूप से समाविष्ट हो गई हो। उदाहरणार्थ, रामायण, महाभारत, रघुवंश आदि संस्कृत काव्यो में और पृथ्वीराजरासो, रामचरितमानस, रामचंद्रिका आदि हिंदी काव्यो मे नीतिकाव्य सहज सुलभ है। दूसरे, उन रचनाओं में जिनका प्रणयन व्यवहार की शिक्षा देने के लिये ही किया जाता है, यथा संस्कृत में चाणक्यनीति, नीतिशतक आदि और हिंदी में वृंदसतसई, बाँकीदासकृत कृपण-

दर्पण आदि। इनमें से प्रथम प्रकार की कृतियों को मिश्रित काव्य और द्वितीय को नीति-काव्य कह सकते हैं।

नीतिकाव्य के प्रकार

नीतिविषयक काव्यकृतियों का वर्गीकरण चार दृष्टियों से किया जा सकता है :—

(क) सरसता की दृष्टि से,
(ख) वर्ण्य विषयों की दृष्टि से,
(ग) काव्यविधान की दृष्टि से,
(घ) नामकरण की दृष्टि से।

(क) सरसता की दृष्टि से

काव्य की आत्मा व्यंग्यार्थ है, इसलिये काव्य का उत्कर्ष वा अपकर्ष व्यंग्यार्थ की अधिकता वा न्यूनता पर निर्भर है। जिन काव्यों मे व्यंग्यार्थ वाच्यार्थ से अधिक चमत्कारक होता है उन्हें उत्तम वा ध्वनिकाव्य, जिनमे व्यंग्यार्थ वाच्यार्थ की अपेक्षा विशेष चमत्कारक नहीं होता उन्हें मध्यम वा गुणीभूत व्यंग्य, और जिनमें व्यंग्यार्थ का सर्वथा अभाव रहता है उन्हें अधम वा अवर काव्य कहते है। अधम काव्य के दो उपभेद—अर्थचित्र और शब्द-चित्र—है जिनमे क्रमशः अर्थालंकार और शब्दालंकार का ही विशेष चमत्कार दृष्टिगत होता है। जिस रचना मे व्यंग्यार्थ व अलंकारों का सर्वथा अभाव हो, बात छंदमात्र मे व्यक्त कर दी गई हो, उसे तो पद्य ही कहा जायगा, काव्य नही। नीतिकाव्यो पर दृष्टि-निक्षेप से विदित होता है कि उनमे पद्य और अवर काव्य की अपेक्षा उत्तम और मध्यम काव्य कम है। इसका कारण यह नहीं कि नीति की बात उत्तम काव्य में अभिव्यक्त नहीं की जा सकती, अपितु यह है कि हिंदी नीतिकाव्य के प्रणयन मे विशिष्ट प्रतिभाशाली कवि अधिक संख्या में प्रवृत्त नही हुए। परन्तु इस बात मे भी किंचित् संदेह नही कि रहीम, बाँकीदास, दीनदयाल गिरि आदि की कृतियो मे उत्तम वा मध्यम काव्य पर्याप्त मात्रा मे विद्यमान है। यहाँ प्रत्येक प्रकार का एक एक उदाहरण ही पर्याप्त होगा—

उत्तम नीतिकाव्य

जब विभीषण रावण को रथारूढ़ और राम को पैदल देखकर व्याकुल हो गया तब राम ने उसे इन शब्दों मे सांत्वना दी—

सुनहु सखा कह कृपानिधाना। जेहि जय होइ सो स्यंदन आना ॥
सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्यशील दृढ़ ध्वजा पताका ॥
बल विवेक दम परहित घोरे। छमा कृपा समता रजु जोरे ॥
सखा धर्ममय अस रथ जाके। जीत न कहँ न कतहुँ रिपु ताके[१] ॥

---

१. रामचरितमानस गुटका, पृष्ठ ५५५।

आशय यह कि धातुकाष्ठमय रथ पर आसीन योद्धा विजयी नहीं होता, अपितु धर्मरथ का रथी विजयलाभ करता है, क्योंकि धर्मरथ के अंग, सारथी आदि अधिक सुदृढ़ व चतुर होते हैं। परंतु इस अर्थ की अपेक्षा यह व्यंग्यार्थ कहीं अधिक चमत्कारक है कि विश्व-विजिगीषु मानव को शौर्य, धैर्य, विवेक, दम आदि गुणों से युक्त होना चाहिए। इसलिये इस संदर्भ को उत्तम नीतिकाव्य ही मानना समीचीन है।

मध्यम नीतिकाव्य

रहीम का प्रसिद्ध दोहा है—

धूर धरत नित सीस पै, कहु 'रहीम' केहि काज।
जहि रज मुनि पत्नी तरी सो ढूँढ़त गजराज।।[1]

पूर्वदल में प्रश्न है, उत्तरदल में उत्तर। इस दोहे की रचना सुस्पष्ट शब्दार्थ की अभिव्यक्ति के लिये नहीं, इस व्यंग्यार्थ के लिये की गई है कि हाथी, पशु होकर भी श्रीराम की चरण-धूलि की खोज में निरत है और तुम मनुष्य होकर भी प्रभुचरणों में चित नहीं लगाते। परंतु दोहे की रचना ऐसी है कि हृदय, अभीष्ट अर्थ की अपेक्षा, कल्पनाजनित आनंद में विभोर हो उठता है। सो व्यंग्यार्थ के गौण हो जाने के कारण इसे मध्यम काव्य माना जायगा।

अधम नीतिकाव्य

उदर भग्न के कारने, प्राणी करत इलाज।
नाँचै बाँचै रन भिरै, राँचै काज अकाज।।[2]

वृंद के इस दोहे का आशय इतना ही है कि मनुष्य को निज पेट भरने के लिये सब प्रकार के भले बुरे तथा संकटजनक कार्य करने पड़ते हैं। अर्थ में तो कोई रमणीयता नहीं, परंतु नाँचै, बाँचै, राँचै में अनुप्रास द्वारा दोहा चमत्कृत हो उठा है। इस प्रकार यह अवरकाव्य (सूक्ति) माना जायगा।

नीतिपद्य

कहूँ अनादर पाय के, गुनी न करै अंदेस।
विद्या है तो करहिंगे, सब कोऊ आदेस।।[3]—वृंद

इस सुस्पष्टार्थ दोहे में न कोई व्यंग्यार्थ है, न चमत्कार। अनुभव और उपदेश की बात सीधे सादे दोहा छंद में कह दी गई है। अत: यह दोहा काव्य व सूक्ति नहीं माना जायगा,

---

१. रहिमनविलास, पृष्ठ १२।

२. सतसईसप्तक, बृंदसतसई, पृष्ठ ३३०।

३. बृंदसतसई, प्र० मेहरचंद लक्ष्मणदास, लाहौर, सं० १९८७, पृष्ठ ८०।

नीतिपद्य ही कहा जायगा। सो उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि नीति की बात, कवि-प्रतिभा के कारण, काव्य, सूक्ति, पद्य सभी में कही जा सकती है और इसलिये नीतिकाव्य कई कोटियों का हो सकता है।

(ख) वर्ण्य विषयों की दृष्टि से

अधिकतर नीतिकाव्यों में तो उपर्युक्त सप्तविध नीति के पद्य विकीर्ण रूप से प्राप्त होते है परंतु कुछ लघुकाय नीतिकाव्य ऐसे भी है जिन्हें वैयक्तिक, पारिवारिक आदि नीतिकाव्य कहा जा सकता है। जैसे, 'कीर्तिशतक', 'रूप-गुण-सवाद' आदि को वैयक्तिक नीतिकाव्य, 'सतवती मत' और 'सास बहू का झगड़ा' को पारिवारिक नीतिकाव्य तथा 'कृपणपच्चीसी' और कृपणदर्पण' को आर्थिक नीतिकाव्य कहना समीचीन है।

(ग) काव्यविधान की दृष्टि से

काव्यविधान की दृष्टि से नीतिकाव्यों को तीन वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है--१. मुक्तक नीतिकाव्य, २. निबधात्मक नीतिकाव्य, और ३. प्रबधात्मक नीतिकाव्य।

१. **मुक्तक नीतिकाव्य**--इस प्रकार के नीतिकाव्यों मे प्रत्येक पद्य सर्वथा स्वतत्र होता है तथा निज आशय के स्पष्टीकरण के लिये पूर्व वा परवर्ती पद्यों की अपेक्षा नही रखता। रहीम, वृंद, बांकीदास, आदि के नीति दोहे इसी वर्ग मे गणनीय हैं। अधिकतर नीतिकाव्य मुक्तक रूप मे ही उपलब्ध होते है और प्राय मुक्तकों की सख्या के नाम पर उन काव्यों का नामकरण कर दिया गया है; जैसे--अक्षरबत्तीसी, कर्मछत्तीसी, अक्षरबावनी, उपदेशसतरी, कीर्तिशतक आदि।

मुक्तक नीतिकाव्य भी त्रिविध कृतियों में उपलब्ध होता है--(क) प्रत्यक्ष नीतिकाव्यों मे, (ख) अन्यापदेशिक नीतिकाव्यों मे, और (ग) मुक्तक सग्रहों मे।

(क) **प्रत्यक्ष नीतिकाव्य**--इस प्रकार के नीतिकाव्यों मे नीतिनिरूपण सीधे-सादे ढंग से कर दिया जाता है, किसी हेर फेर से काम नहीं लिया जाता। कबीर, तुलसी, वृंद आदि के अधिकतर नीति दोहे तथा अधिकतर नीतिकाव्य दूसरी कोटि के है।

(ख) **अन्यापदेशिक नीतिकाव्य**--इस प्रकार के काव्यों में नीति का प्रतिपादन अन्योक्ति के द्वारा किया जाता है, प्रत्यक्षत: नहीं। यह शैली पर्याप्त व्यवहृत हुई है और अन्योक्तिबावनी, अन्योक्तिवर्णन आदि कई नीतिकाव्य इस शैली मे लिखे गए है।

(ग) **मुक्तक संग्रहों का नीतिकाव्य**--कई लोग स्वयं कुछ लिखने में तो समर्थ नही होते परतु विभिन्न कवियों की सुदर और विविध रचनाएँ सगृहीत करने की रुचि रखते हैं। ऐसे लोगों के कई संग्रहग्रंथ हस्तलिखित ग्रथों के भंडारों में देखने को मिलते है। उनमें कई ऐसे सुदर नीतिमुक्तक यदाकदा उपलब्ध हो जाते है जो अन्यत्र अप्राप्य हैं।

२. **निबंधात्मक नीतिकाव्य**--नीति की कुछ कृतियाँ ऐसी हैं जिन्हें न मुक्तक कह सकते है, न प्रबंध। वे न मुक्तकों के समान पूर्वापर निरपेक्ष होती हैं और न प्रबंधों के

समान सुशृंखलित और विस्तीर्ण। पंचेंद्रियसंवाद और सास बहू का झगड़ा इसी प्रकार की नीति रचनाएँ हैं।

३. **प्रबंधात्मक नीतिकाव्य**–इस प्रकार के नीतिकाव्य प्राय कथारूप में दृष्टिगत होते हैं। किसी काव्य में एक कथा है तो किसी में एकाधिक, परंतु रचना सभी की शिक्षा देने के उद्देश्य से ही की गई है। दंपतिवाक्यविलास और सप्तव्यसनचरित्र इसी प्रकार के नीतिकाव्य हैं।

(घ) नामकरण की दृष्टि से नीतिकाव्यों को अनेक वर्गों में विभाजित किया जा सकता है; यथा—

(१) विषयानुसार, (२) पद्यसंख्यानुसार, (३) कवि और संख्या के अनुसार, (४) विषय और संख्या के अनुसार, (५) छंदानुसार, (६) छंद और संख्या के अनुसार, (७) अलंकारानुसार, (८) वर्णमालानुसार, (९) फुटकल।

१. **विषयानुसार**—यथा ठकरसी का 'कृपणचरित्र', सुखदेवकृत 'वाणिज्य-नीति' आदि।

२. **पद्यसंख्यानुसार**—जैसे क्षमाहंस की 'द्विपंचाशिका', वणारस सुंदरदास की 'बावनी' आदि।

३ **कवि और संख्यानुसार**—उदाहरणार्थ, जिनरंग सूरिरचित 'रंगबहत्तरी', किसनकृत 'किसनबावनी' आदि।

४. **विषय और संख्या के अनुसार**—यथा लालचंदरचित 'छिनालपच्चीसी', समयसुंदरकृत 'पुण्यछत्तीसी' आदि।

५. **छंदानुसार**—जैसे तुलसीदास जी की 'दोहावली', राजिया के 'सोरठे', गिरिधरप्रणीत 'कुंडलिया' आदि।

६. **छंद और संख्या के अनुसार**—उदाहरणार्थ, धर्मसिंहरचित 'छप्पय-बावनी', लक्ष्मीवल्लभप्रणीत 'दूहाबावनी' आदि।

७. **अलंकारानुसार**—यथा गणपति भारतीरचित 'अन्योक्तिवर्णन', विनय-भक्तिप्रणीत 'अन्योक्तिबावनी' आदि।

८. **वर्णमालानुसार**—ऐसी रचनाएँ प्राय वर्णमाला के वर्णक्रमानुसार की गई हैं, जैसे, महेशमुनिकृत 'अक्षरबत्तीसी', सूरतकृत 'बारहखड़ी' आदि।

९. **फुटकल**—कई नीतिकाव्यों के शीर्षकों में नीति, हित, उपदेश, शिक्षा आदि शब्द भी व्यवहृत हुए हैं; यथा—बाँकीदासरचित 'नीतिमंजरी', क्षमाकल्याणकृत 'हित-शिक्षा द्वात्रिंशिका', श्रीसारप्रणीत 'उपदेशसत्तरी', जानकविरचित 'सिख्यासागर' आदि।

कहना न होगा कि नीतिकाव्यों के इस प्रकार के शीर्षक प्राचीन साहित्यों में भी उपलब्ध होते हैं और हिंदी नीतिकवियों ने स्वकीय रचनाओं को ऐसे नाम देने की प्रेरणा प्रायः उन्हीं से प्राप्त की; उदाहरणार्थ—चाणक्यनीति, क्षेमेंद्रकृत सेव्यसेवकोपदेश, भर्तृहरिकृत नीतिशतक, हालसतसई वा गाहासतसई, वीरत्रिशतिका, सिंहासनद्वात्रिंशिका, चौरपंचाशिका, शुकसप्तति आदि।

द्वितीय अध्याय

रीतिकालीन नीतिकवि व उनके काव्य

नीतिकाव्य की दृष्टि से यदि हिंदी साहित्य का आदिकाल रात के समान है और भक्तिकाल प्रभात के, तो रीतिकाल मध्याह्न के। इस काल के नीतिकाव्यों की नैतिकता का स्वरूप सम्यक् रूप से समझने के लिये यह उचित प्रतीत होता है कि पहले उन कवियों व कृतियों का कुछ परिचय प्राप्त कर लिया जाय जिनके आधार पर उनका मूल्यांकन संभव है। इस दृष्टि से नीति काव्यकार चार वर्गों मे विभाज्य है—१. प्रमुख नीतिकवि, २. अनुवादक कवि, ३. संग्रहकार, ४ फुटकल नीतिकवि।

१. प्रमुख नीतिकवि

इस वर्ग में हम उन कवियों को परिगणित करते है जिन्होंने स्वतंत्र मौलिक नीतिकाव्यों का प्रणयन किया। इनकी संख्या तीन दर्जन से अधिक है। कालक्रमानुसार इनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :—

१. जसराज (जिनहर्ष)—ये जैन मुनि थे और शातिहर्ष के शिष्य। इन्होंने सं० १७०४–६३ वि० के मध्य में लगभग सौ पुस्तकों का प्रणयन किया जिनमे से तीन काव्यनीति विषयक हैं—उपदेशबत्तीसी, मातृकाबावनी और कवित्तबावनी। सं० १७१३ में प्रणीत 'उपदेशबत्तीसी' की हस्तलिखित प्रति बीकानेर के अभय जैन ग्रंथालय में सुरक्षित है। इस कृति मे कायास्वरूप, मायात्याग, क्रोधदूषण, मानदूषण, अदत्तादान आदि विषयों पर कवित्त छंद मे भावपूर्ण रचना की गई है। 'मातृकाबावनी' की रचना १७३८ में की गई। सत्तावन सवैयों की इस रचना मे भाग्य, उद्यम, दान, भूख आदि का वर्णन है। भाषा राजस्थानी मिश्रित ब्रजी है और पद्यरचना वर्णमाला के क्रमानुसार। 'कवित्तबावनी' की प्रति जयपुरीय पुरातत्वमंदिर मे सुरक्षित है। सं० १७४८ वि० में गुजराती मिश्रित राजस्थानी मे रचित यह कृति छप्पयबद्ध है। साहित्यिक सौष्ठव की दृष्टि से मातृकाबावनी का स्थान सर्वोत्कृष्ट है।

२. सुखदेव—व्यापारी कवि सुखदेव ने स्वबुद्धीचानुभव के आधार पर सं० १७१७ में 'वाणिज्यनीति' की रचना की। दोहा, सोरठा, चौपाई, कवित्त, सवैया आदि छंदों में निबद्ध इस रचना में ३८८ पद्य हैं जिनके शीर्षक 'मौन लैबे को बिचार', 'उधार दैबे को विचार' आदि है। पुस्तक व्यापारियों के लिये ही नहीं, सामान्य पाठकों के लिये भी उपयोगी है।

३. **हेमराज**--साँगानेर निवासी हेमराज ने सं० १७२५ में 'उपदेशशतक' लिखा। इसकी पांडुलिपि हमें वधीचंद्र जैन के मंदिर में देखने का अवसर मिला। इसके १०१ पदों में से अधिकतर दोहे हैं, कुछ सोरठे। इसमें मन मरकटर, ब्रह्मचर्य महत्व, अदान का कुपरिणाम, जन्म, विवाह, मरण में समानता, आदि विषयों पर लिखा गया है। अधिकतर दोहों में दृष्टांत तो पुराने है परतु कई दोहे काव्यत्वदृष्टया सुदर है।

४. **भैया भगवतीदास**--औरंगजेब के समकालीन, आगरानिवासी सुकवि भगवतीदास की ६७ रचनाएँ 'ब्रह्मविलास' मे सगृहीत है जिनमे से पचेंद्रियसंवाद, दृष्टांतपच्चीसी, मनबत्तीसी, बाईसपरीक्षा और फुटकल पद्यों मे नीतिकाव्य की प्रचुरता लक्षित होती है।

पंचेंद्रियसंवाद--सं० १७५१ में रचित १५२ पद्यो के इस सवादात्मक काव्य में प्रत्येक इंद्रिय सर्वश्रेष्ठ होने का दावा करती है। अत में मन को राजा व इंद्रियों को सेवक निर्णीत किया गया है। रचना दोहा, सोरठा, ढाल तथा रागों मे है और संवाद रोचक हैं।

दृष्टांतपच्चीसी--संवत् १७५२ वि० मे प्रणीत २६ दोहों की इस कृति मे अहिंसा, दान, शील, अपरिग्रह आदि के महत्व को सुंदर दृष्टांतो द्वारा हृदयंगम कराया गया है।

मनबत्तीसी--३४ पद्यो की इस पुस्तिका मे क्रमशः २७ दोहे, २ अरिल्ल, ४ चौपाइयाँ व एक चौपई है। मन की बलवत्ता, वेगवत्ता आदि के वर्णन के बाद आठ पंसेरी वाले (मन) को वश मे रखने की प्रेरणा की गई है। अधिकतर पद्य तो इतिवृत्तात्मक हैं, कुछ एक शब्द-चमत्कार-युक्त भी।

बाईस परीक्षा--इसमें उन्ही साधुओं को सच्चा कहा गया है जो धूप, शीत, क्षुधा, तृषा आदि सह लेते है तथा स्त्री के आकर्षण व मानापमान से दूर रहते हैं।

फुटकल पद्य--इनके फुटकल पद्यो मे भी मार्मिक नीति उपलब्ध होती है। एक पद्य में एक गीदड़ कुत्ते को उस मनुष्य के शव का मास खाने से मना करता है जिसने जीवन में सत्कर्म नही किए।

५. **लक्ष्मीवल्लभ**--विक्रम की अठारहवीं शती के जैन मुनियो मे इनका प्रमुख स्थान है। ये सस्कृत, हिंदी, सिंधी व राजस्थानी भाषाओं के अच्छे विद्वान् थे। इनकी ७८ कृतियों में से ८ हिंदी की है, जिनमे से 'दूहाबावनी', 'सवैयाबावनी' और 'कवित्तबावनी' नीतिविषयक है। 'दूहाबावनी' की प्रतिलिपि अभय जैन ग्रथालय, बीकानेर में सुरक्षित है। ५८ दोहों की इस रचना में अध्यात्म की अपेक्षा नीति का बाहुल्य है। वीरता, गुणमहत्व आदि विषयो पर रचित इस कृति के अधिकतर दोहे पद्यमात्र हैं, कुछ एक सूक्तियाँ हैं। 'सवैयाबावनी' की प्रति उपर्युक्त ग्रथालय मे भी है और पुरातत्वमंदिर मे भी। वर्ण्य विषयो के विचार से तो कोई विशषता नहीं, परतु भाव और भाषासौष्ठव के विचार से रचना की सुदरता मे सदेह नही। कई पद्यो के अंतिम चरण की

शब्दावली--'सोई बड़ो जाकी गाँठ रुपैया', 'आसन पायो पै आस न मारी' आदि से ऐसा अनुमान होता है जैसे वे समस्यापूर्ति के लिये लिखे गए हों। 'कवित्तबावनी' में ५८ छप्पय हैं जिन्हें संवत् १७४१ में मुनि हीरानंद ने लिपिबद्ध किया। राजस्थानी की इस कृति में भावमहिमा, लज्जामहत्व आदि पर सुंदर पद्य मिलते हैं। इनकी रचनाओं में संस्कृत के नीतिकाव्यों का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है।

६. **वृंद**--सुप्रसिद्ध नीतिकवि वृंद का जन्म मेड़ता (राजस्थान) में सं० १७०० वि० में हुआ और स्वर्गवास १७८० वि० में। अपनी असाधारण योग्यता के कारण इन्हें जोधपुर व किशनगढ़ राज्यों में ही सम्मान नहीं मिला, ये औरंगजेब के सभाकवि व उसके पुत्र तथा पौत्र के शिक्षक भी नियुक्त किए गए। इन्होंने छोटे बड़े ग्यारह ग्रंथ लिखे परंतु इनकी कीर्ति का मुख्याधार 'वृंदविनोद सतसई' (दृष्टांत सतसई) ही है। इस काव्य की रचना सं० १७६१ में ढाका नगर में औरंगजेब के पौत्र अजीमुश्शान की शिक्षा के लिये की गई थी। 'सतसई' के अध्ययन से वृंद की व्यापक व पैनी दृष्टि का सम्यक् परिचय मिलता है। इतर-प्राणि-विषयक नीति के सिवा वृंद ने सब नीतियों के संबंध में प्रचुर और सुंदर लिखा है। इस सतसई की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इन्होंने प्रायः उपेक्षित विषयों पर भी लिखा है और प्रत्येक प्रतिपाद्य को सुंदर दृष्टांत से समर्थित भी किया है। उदाहरणार्थ सत्यवचनादि पर तो सब लिखते हैं, इन्होंने थोड़ा झूठ भी बोलने की, झूठ को सत्यवत् कहने की, खत से गुप्त बात न कहने की भी प्रेरणा की है। सुबोध तथा स्वच्छ भाषा में रचित यह दोहानिबद्ध सतसई रसपरिपाक की दृष्टि से विशेष महत्व न रखती हुई भी हृदय में सुंदर भाव उपजाने में पूर्ण समर्थ है और हिंदी नीतिकाव्यों में एक रत्न है।

७. **धर्मसिंह**--अनुमान है कि ये राजस्थान निवासी थे और इनका जन्म सं० १७०० के लगभग किसी सुकुल में हुआ। १३ वर्ष की वय में भी जिनरत्न सूरि से दीक्षा ग्रहण कर ये धर्मसिंह से धर्मवर्धन हो गए। इन बहुभाषाविद् मुनि के छह नीतिकाव्य प्राप्त होते हैं--१. गुरु-शिष्य-दृष्टांत छत्तीसी, २. विशेषछत्तीसी, ३. धर्मबावनी, ४. ४. प्रास्ताविक कुंडलिया बावनी, ५. छप्पयबावनी ६. स्फुट पद्य। प्रथम दो हमें प्राप्त नहीं हो सके; शेष का विवरण निम्नलिखित है--'धर्मबावनी' में कुल ५७ पद्य हैं जिनमें कवित्त सवैया छंदों का प्रयोग किया गया है। सामान्य नीतिविषयों के अतिरिक्त उग्रनारी, कुलटा, रीस (स्पर्धा), मधुरवाक् से बहुदोष परिहार आदि पर सुपद्य रचना की गई है। प्रसादयुक्त अलंकृत ब्रजी पर राजस्थानी का प्रभाव भी लक्षित होता है। चुभती कहावतों का प्रयोग रचना की एक अन्य विशेषता है। 'कुंडलियाबावनी' में ५७ कुंडलिया छंद हैं। इसकी रचना जोधपुर में सं० १७३४ में की गई। इसमें सुप्रसिद्ध विषयों के अतिरिक्त पड़ोस, आठ अघ, सात मुखदुःख अन्नस्वभाव, सूंब (कृपन) की संपदा, आदि पर भी पद्य मिलते हैं। 'धर्मबावनी' के समान वर्णमाला क्रम से रचित इस कृति की भाषा राजस्थानी है पर इसमें 'धर्मबावनी' का सा साहित्यिक सौंदर्य नहीं। 'छप्पयबावनी'

के वर्ण्य विषय सामान्य हैं और इसमें काव्यसौष्ठव की भी कमी है। उक्त दो बावनियों की अपेक्षा मुनि जी के फुटकल पद्य अधिक सुंदर व व्यावहारिक हैं।

८. **जिनरंग सूरि**—जिनराज सूरि के शिष्य मुनि जिनरंग सूरि ने अठारहवीं शती के पूर्वार्ध मे 'रगबहुत्तरी' की रचना की। ७२ दोहों की इस कृति मे कपटी और स्त्री का मन, प्रेमहीन मनुष्य पशुतुल्य, यशस्वी जीवन की प्रशस्यता, काँटे से भी वैर करना बुरा, आदि विषयों पर राजस्थानी प्रभावित ब्रजी मे रचना की गई है। रचना साधारण है, परंतु कुछ दोहे मौलिक व सुंदर है।

९. **बालचंद**—उपाध्याय विनयप्रमोद पाठक के शिष्य का दीक्षानाम विनय-लाभ था और साहित्यिक उपनाम 'कविचंद'। इनकी 'सवैयाबावनी' (जिसमें कुछ कवित्त भी हैं) बीकानेर के अभय जैन ग्रंथालय मे सुरक्षित है। वर्ण्य विषय तो सामान्य ही हैं, परंतु शैली निराली ही है। भाषा मधुर, सानुप्रास तथा प्रवाहपूर्ण है। प्राय: जैन मुनियों की कृतियों में वह सरसता नही, जो इसमे है। अठारहवी शती के मध्य में रचित यह 'बावनी' नीतिकाव्य का एक रत्न है।

१०. **अक्षर अनन्य**—इनका जन्म दतिया राज्य के सेहेरे ग्राम में संभवत: सं० १७१० में हुआ। इनके 'निर्धारशतक' मे धर्म, ज्ञान, वेदांत के अतिरिक्त नीति भी पर्याप्त है। प्रत्येक दोहे का चतुर्थ चरण 'कहि अनन्य निर्धार' है। साहित्यिक सौष्टव न होने के समान ही है।

११. **देवीदास**—बुदेलखडनिवासी और करौली के राजकवि देवीदास का जन्म सं० १७१२ में हुआ। जयपुरीय, स्व० पुरोहित हरिनारायण के 'विद्याभूषण पुस्तकालय' में सुरक्षित 'प्रेमरत्नाकर' की प्रतिलिपि की पुष्पिका से विदित होता है कि इसकी रचना महाराज कुँवर रतनपाल की प्रेरणा से की गई थी। काव्य का विषय केवल प्रेम है और इसमे सांसारिक प्रेम को भी पारमार्थिक प्रेम के समान मोक्षप्रद कहा गया है। चातक, चकोर आदि प्रेमियों के अतिरिक्त इसमे 'मरकट को प्रेम मूटी सों', 'मकरी को प्रेम बचा सों' आदि का भी उल्लेख है। रीतिकालीन रचना होने पर भी यह काव्यवासना के कर्दम से सर्वथा अस्पृष्ट है। लक्षण दोहो में हैं और उदाहरण बड़े छंदों में। कल्पना की कमी के कारण रचना आशानुरूप सरस नही है।

१२. **केशवदास जैन**—ये मुनि लावण्यरत्न के शिष्य थे और इनका दीक्षानाम कुशलसागर था। इन्होंने सं० १७३६ में पच्छाख गाँव (राजस्थान) मे 'केशवबावनी' का प्रणयन किया। काव्य में सामान्य विषयो के अतिरिक्त भाग्यरेखा पर बहुत बल दिया गया है। सुंदर भावों तथा प्रवाहपूर्ण भाषा के कारण रचना अच्छी बन पड़ी है।

१३. **गोपाल चानक**—गोपालदास के पिता का नाम गंगाराम था और पुत्र का माखनलाल। गोपालदास और माखनलाल दोनों रतनपुर (बिलासपुर, मध्यप्रदेश) के राजा राजसिह के चारण थे। इनका रचनाकाल १८वी शती का उत्तरार्ध है। गोपाल-

दास के चार नीतिकाव्य उपलब्ध होते हैं—वीरशतक, कीर्तिशतक, कर्मशतक और पुण्यशतक। सभी शतको की पांडुलिपियाँ नागरीप्रचारिणी सभा, काशी मे सुरक्षित हैं। 'वीरशतक' मे केवल ३८ पद्य है। कवि ने त्रिविध वीरधर्मों का उल्लेख किया है—सात्विक, राजस और तामस। वीररस प्रधान इस काव्य की भाषा प्रसादपूर्ण और ओजस्विनी है। काव्य में कवित्त, छप्पय, दोहा और चौबोला छंद प्रयुक्त किए गए हैं। कीर्तिशतक' में केवल ८२ पद्य हैं तथा सवैया, कवित्त, दोहा और चौबोला छंद। आरंभ में अवतारों की कीर्ति का वर्णन है और तत्पश्चात् कीर्तिमान जीवन की सफलता, कीर्तिप्राप्ति के उपाय, कीर्तिकामी राजाओ के ३२ गुण आदि का। 'कर्मशतक' मे केवल ६१ पद्य हैं जो प्राय. छप्पय, चौबोला, कवित्त और दोहा छंदो मे निबद्ध है। आरंभ मे कर्मों का महत्व, मध्य में पापों की प्रबलता और अंत में सुकृतो की विजय दिखाई गई है। 'पुण्यशतक' की पद्यसंख्या केवल २७ है। आरंभ में पुण्याचरण के सुफल तथा पुण्यात्माओं के महत्ववर्णन के पश्चात् कवि तत्कालीन पुण्यक्षय पर खेद प्रकट करता है। प्राचीन पुण्यात्मा नरपालों की प्रशसा, तथा समसामयिक भूपालो की उच्छृंखलता के वर्णन के पश्चात् कवि निज आश्रयदाता की स्तुति से कृति को समाप्त करता है। 'कर्मशतक' के समान इसमे भी विभिन्न गुणों का पारस्परिक संवाद पाया जाता है। रचना तो अच्छी है, परंतु इसमें नीति की अपेक्षा उपदेशात्मकता अधिक है।

इन कृतियो में वीर तथा शातरस और दया, उदारता, क्षमा, धैर्य आदि भावों की व्यंजना सम्यक् हुई है। भाषा स्वच्छ तथा मधुर ब्रजी है और 'खूब तमासा', 'लेख खूब तमासा' आदि वाक्यांशों का पर्याप्त प्रयोग किया गया है। कृतियो के अध्ययन से ऐसा लगता है कि कवि जनसाधारण के लिये नही, राजाओ के लिये लिख रहा है। फिर भी मनुष्य को वीर, कीर्तिमान् और पुण्यशील बनने की पूत प्रेरणा तो प्राप्त होती ही है।

१६. **रघुराम**—ये अहमदाबाद के निवासी थे और इन्होंने सं० १७५७ में 'सभासार नाटिक' की रचना की जिसे आधुनिक दृष्टि से काव्य कहना अधिक उपयुक्त होगा। रचना के अंत में कवि ने इसका उद्देश्य स्वयं स्पष्ट कर दिया है—हृदयकपाट का उद्‌घाटन, बुद्धिबल का विकास तथा पूर्ण ज्ञान का संचार। ३२९ पद्यों की यह हस्तलिखित पुस्तक बीकानेर के मोतीचंद खजाची के संग्रह मे विद्यमान है। देववदना के पश्चात् कवि स्वपरिचय प्रस्तुत करता है और तदनंतर शिष्य गुरु के प्रश्नोत्तर रूप में मालिनी, छप्पय, चौपाई, दोहा, सोरठा और सवैया (कवित्त) छदो मे काव्यरचना। ३२९ पद्यों के इस काव्य में ३०० पद्य नीतिविषयक हैं और २९ आध्यात्मिक। कपटी, गाफिल, सभाचतुर, सभाबिगाड़ आदि जिस भी व्यक्ति के लक्षण शिष्य पूछता है, गुरु दोहे में उसका लक्षण बताकर तुरंत ही कवित्तादि मे उसका उदाहरण प्रस्तुत कर देता है। स्पष्टत. यह शैली रीतिकाव्यो से प्रभावित है। रचना जहाँ विषयो की व्यापकता की दृष्टि से महत्वपूर्ण है वहाँ सरसता व भावमयता की दृष्टि से भी। एक गुजराती कवि द्वारा ब्रजभाषा के ऐसे सुंदर नीतिकाव्य का प्रणयन वस्तुतः श्लाघ्य है।

१५. **किसन**—इस जैनकवि की 'किसनबावनी' की समाप्ति सं० १७६३ में की गई। ५२ कवित्तो की इस कृति से विदित होता है कि किसन साहित्यिक परंपराओं से ही सुपरिचित न थे, कुशल कवि भी थे। रचना मे जैनप्रिय विषयों का सुबोध, अलंकृत व मधुर भाषा में वर्णन है। भावों की दृष्टि से भी कृति रम्य है।

१६. **भूधरदास**—ये आगरा के खडेलवाल जैन थे और इन्होने विक्रमी अठारहवी शती के उत्तरार्ध में तीन काव्य लिखे—पार्श्वपुराण, जैनशतक और पदसग्रह। नीतिकाव्य की दृष्टि से 'जैनशतक' ही उल्लेख है। इस काव्य के आरंभिक १६ तथा अंतिम २० पद्य सांप्रदायिक है, परंतु मध्यवर्ती ६४ ऐसे सरस सुदर नीतिपद्य है जिन्हें प्रत्येक व्यक्ति निसंकोच ग्रहण कर सकता है। इस काव्य मे वैयक्तिक, पारिवारिक आदि सभी प्रकार की नीति का सुंदर किंतु संक्षिप्त वर्णन है तथा इसपर प्राचीन संस्कृत नीतिकाव्य का पर्याप्त प्रभाव लक्षित होता है। इसपर भी यह स्वीकारना ही होगा कि इनके अनूदितप्राय पद्य भी मौलिक रचना की सरसता से उपेत है। कुछ इने गिने दोहो को छोड़कर शेष रचना सरस व भावपूर्ण है और हिंदी नीतिकाव्यों मे विशेष स्थान रखती है।

१७. **घाघ**—कन्नौज निवासी दूबे ब्राह्मण घाघ का जन्मसंवत् १७५३ कहा जाता है। इनकी लोकोक्तियो से विदित होता है कि इन्हें कविता, ज्योतिष व नीति का अच्छा ज्ञान था। इनकी नीतिविषयक एक सौ के लगभग लोकोक्तियो से इनके गंभीर अनुभव का परिचय सहज प्राप्य है। साहित्यिक सौष्ठव के अभाव के कारण इनके पद्य भले ही विद्वद्ग्राह्य न हों, ग्रामीण जनता के कंठ व श्रोत्र का सदा ही शृंगार रहेंगे।

१८. **चाचा हित वृंदावनदास**—ये पुष्कर के गौड ब्राह्मण थे और इन्होने अपने नीतिकाव्य कलिचरित्रबेलि की रचना सं० १८१२ मे की। श्रीमद्भागवत तथा महाभारत के कलिवर्णन और समसामयिक परिस्थितियों के अवलोकन से इन्हे इस बेलि की रचना की प्रेरणा मिली। १०३ सोरठो की इस रचना मे वैसे तो सभी प्रकार की नीति का निरूपण है परंतु पारिवारिक व सामाजिक नीतियों पर बल अधिक है। विवाह-जनित अनेक पारिवारिक समस्याओं पर इस बेलि मे सम्यक् प्रकाश डाला गया है। सीधी सरल ब्रजी में रचित यह कृति सूक्ष्म पर्यवेक्षण के कारण सुंदर बन पड़ी है।

१९. **गिरिधर कविराय**—कहा जाता है, ये जाति के भाट थे, इनका जन्म सं० १७७० में हुआ था और किसी राजा द्वारा निर्वासित किए जाने पर इन्होंने स्वपत्नी के सहयोग से 'कुंडलिया' की रचना की थी। प्रकाशित 'कुंडलिया' मे साढ़े चार सौ के लगभग कुंडलिया छंद हैं, शेष दोहे, सोरठे, कवित्त और छप्पय। रचना तीन भागो में विभाजित हैं। प्रथम में नीति की तथा द्वितीय में अध्यात्म की प्रधानता है। अध्यात्ममय तृतीय भाग परिशिष्ट सा प्रतीत होता है जिसके कुल १८ पद्यों में दोहे, कवित्त और छप्पय तो हैं परंतु कुंडलिया एक भी नहीं। इनके वर्ण्य विषय संतों के नीतिकाव्य के समान हैं, हाँ, ऐहिकता उनसे कुछ अधिक है। कवि ने सुरा, अफीम, हुक्कों आदि के व्यसनियों की खूब

खबर ली है। इन्होंने प्राय प्रत्येक प्रकार की नीति पर लिखा है और मौला (भगवान्) को ही वास्तविक धर्म मानकर मतांधता का उग्र खंडन किया है। इनकी कुछ अन्योक्तियाँ पर्याप्त सरस हैं, शेष रचना तो पद्यमात्र ही है। इनकी भाषा ब्रजी है परतु उसमें अरबी, फारसी, संस्कृतादि के शब्दों का मिश्रण अत्यधिक है। इनके भावों व भाषा पर संस्कृत व फारसी के नीतिकाव्यों का प्रभाव भी लक्षित होता है। सार यह कि ये नीति के सुकवि तो नही माने जा सकते, तो भी अपने सरस स्पष्ट व्यवहारशिक्षक पद्यो के कारण चिरकाल तक लोकप्रिय बने रहेंगे।

२०. **विनयभक्ति**--इनका आरंभिक नाम वास्ता या वस्तपाल था परंतु मुनि भक्तिभद्र से दीक्षाग्रहण के पश्चात् विनयभक्ति हो गया। इनका नीतिकाव्य 'अन्योक्ति-बावनी' ही है जिसमें ६२ कवित्त सवैए हैं। मंगलाचरणात्मक छह पद्यो के पश्चात् साहित्य-प्रसिद्ध देव, पशु, पक्षी, नदी, मारवाड़ आदि पर सुदर अन्योक्तियाँ है। भावों की नवीनता के अभाव में भी भाषा व शैली की मनोरमता के कारण रचना अच्छी बन पड़ी है।

२१. **जसुराम चारण**--इन्होंने स० १८१४ में 'राजनीति' नामक काव्य की रचना की। वैसे तो नीतिकाव्यों में भी राजनीति का न्यूनाधिक उल्लेख मिल ही जाता है, परतु यह काव्य तो है ही राजनीति विषयक। इसका प्रकाशन भारत जीवन प्रेस, काशी, द्वारा १८९२ ई० में किया गया था। इसमें कुल १० छप्पय, ६६ कवित्त और ६० दोहे हैं। कवि ने पहले राजनीति को आठ अंगों--राजा, रानी, राजकुमार, मत्री आदि में विभाजित किया है और तत्पश्चात् उनके कर्तव्यों का उल्लेख। काव्यत्व की दृष्टि से कृति साधारण ही है।

२२. **योगिराज ज्ञानसार**--इनका जन्म जेगलेवास ग्राम (बीकानेर) में संवत् १८०१ में उदयचंद्र व जीवनदेवी के घर मे हुआ। इनका प्रारंभिक नाम नराण या नाराण (नारायण) था। सं० १८१२ के दुर्भिक्ष मे ये बीकानेर मे मुनि जिनलाभ सूरि के पास पहुँचे और उनके साथ विचरते हुए व्याकरण, काव्यादि विषयों का गभीर अध्ययन करते रहे। सं० १८२१ मे दीक्षाग्रहण के समय इनका नाम ज्ञानसार रखा गया। ये गुजराती, ब्रजी, सिंधी व ग्वालेरी भाषाओं के भी अच्छे ज्ञाता थे। नीति पर इनके दो ही काव्य प्राप्त हैं--'संबोध अष्टोतरी' और 'प्रास्ताविक अष्टोत्तरी'। 'सबोध अष्टोत्तरी' राजस्थानी मे है और इसमें १०८ सोरठे हैं जो नीच से लाड़, धनगाड़, कजूस, खानपान तथा मकान आदि उपयोगी विषयों पर रचित है। अधिकतर दोहे सूक्तिमात्र है। 'प्रास्ताविक अष्टोत्तरी' ब्रजी मे है और इसमे नि स्पृह नर की निडरता, इच्छा से फल की अप्राप्ति व अनिच्छा से प्राप्ति, गुण से गुणी की ख्याति, पराधीनता से आत्मा का हनन, आदि विषयों का प्रभावशाली ढंग से प्रतिपादन किया गया है। इस रचना की तीन बातों पर पाठक का ध्यान अनायास जा पड़ता है--स्थानीय प्रभाव, आत्मानुभूति तथा संस्कृत साहित्य का प्रभाव। उस युग मे जब अधिकतर नीतिकवि बत्तीसी, छत्तीसी, बावनी,

बहत्तरी व शतक लिखकर संतुष्ट हो जाते थे, योगिराज जी ने दो सुंदर अष्टोत्तरियाँ लिख कर नीतिकाव्य की श्रीवृद्धि की।

२३. **नाथूराम (नाथिया)**--राजस्थानी कवि नाथिया का स्फुरणकाल संभवतः उन्नीसवीं शती का पूर्वार्ध था। बीकानेर के मोतीचंद खजांची के ग्रंथसंग्रह में इनके दो नीतिकाव्य देखने को मिले--१. सिख्यासार, २. कुंडलिया। 'सिख्यासार' में १५४ सोरठे हैं जो धन के गुणदोष, गुणमहत्व, छूतहानि आदि विषयों पर लिखे गए हैं। डिंगल भाषा की यह कृति प्रसादपूर्ण है और कुछ पदों पर संस्कृत की छाया स्पष्ट लक्षित होती है। 'कुंडलिया' में ब्रजी की सात कुंडलिया है। भाषा प्रसाद और प्रवाह मे पूर्ण है।

२४. **महाकवि गणपति भारती**--मथुरामल के पुत्र गणपति माथुर चतुर्वेदी ब्राह्मण थे और जयपुराधीश महाराज सवाई प्रतापसिंह के सभाकवि। महाराज ने कुछ काल तक इनका शिष्यत्व स्वीकृत कर इन्हें धन, मान और भारती उपाधि से पुरस्कृत किया था। श्री मोतीलाल मेनारिया ने इनके दस ग्रंथों का उल्लेख किया है[1], जिनमें से नयपच्चीसी, प्रीतिमंजरी, अन्योक्तिकाव्य, बीरहजारा और अन्योक्तिकाव्य नीतिविषयक प्रतीत होते हैं। मेनारिया जी ने जिसे 'अन्योक्तिकाव्य' कहा है, संभवतः वह वही 'अन्योक्ति-वर्णन' हो जिसकी हस्तलिखित प्रतिलिपि हमे जयपुर के विद्याभूषण पुस्तकालय में मिली। इस खंडित प्रति में केवल साढ़े तीस अन्योक्तियाँ हैं जिनमें सूर्य, सोम, सिंह, आदि एक दर्जन अप्रस्तुतों द्वारा राजा तथा तत्संबंधियों के व्यवहार की सुंदर रीति से व्यंजना की गई है। प्रत्येक अन्योक्ति के पश्चात् एकाध गद्यपंक्ति में उसका आशय स्पष्ट कर दिया गया है। रचना अनुप्रासमयी ब्रजी मे हैं तथा कवित्त व सवैया छंदों मे निबद्ध है। उपलब्धांश आकार से लघु होता हुआ भी गुणदृष्ट्या अच्छा है।

२५ **स्यामदास**--बूंदी के पं० लज्जाराम मेहता के भानजे पं० रामजीवन नागर को निज पूर्वजों के ग्रंथसग्रह में स्यामदासकृत 'हित उपदेश' प्राप्त हुआ है। उसमें २६ पत्र है जिनमे से दो लुप्त है। ग्रंथ के अंतिम दोहों से विदित होता है कि हिंद के बादशाह आलिम आलमगीर ने ग्रंथलिखित बातें शंकर पंत को यामिनी (यावनी, फारसी ?) भाषा मे बताई और उनके आदेश से स्यामदास ने संवत् १८४४ में इस ग्रंथ को बक्सर गाँव मे पूर्ण किया। रचना सांप्रदायिक बातों से सर्वथा मुक्त है तथा राजनीति व लोकाचार की बातो मे युक्त।' विदुरनीति' के समान इसमें ' दो बाते', 'तीन बातें' आदि शीर्षकों से ग्राह्य व त्याज्य बातो का उल्लेख है।.रचना विषय के विचार से अच्छी परंतु काव्यत्व की दृष्टि से तुकबंदी मात्र है।

२६ **कृपाराम बारहठ**--चारण कृपाराम का जन्म जगराम के घर में विक्रमी उन्नीसवी शती के पूर्वार्ध मे जोधपुर राज्य के खराड़ी ग्राम में हुआ था। ये सीकर के राव-

---

१. राजस्थान का पिंगल साहित्य, पृ०० १५४--५५।

राजा लक्ष्मणसिंह के पास रहते थे। इनके १७५ फुटकल सोरठे प्राप्त होते हैं जो 'राजिया के सोरठे' नाम से प्रसिद्ध है। अ० भा० रावल राजपूत सभा के मतानुसार ये सोरठे राजाराम चौहान (राजिया) के है जिनका जन्म स० १८२५ मे मारवाड़ के जुसरी ग्राम में हुआ था। परंतु चारणो का मत यह है कि राजिया कृपाराम का नौकर था। एक बार जब रुग्ण कृपाराम राजिया की सेवा से स्वस्थ हो गए तब उन्होंने राजिया का नाम अमर करने के लिये लगभग ५०० सोरठों की रचना को जिनमें से पौने दो सौ के लगभग ही आज उपलब्ध है और प्रत्येक मे राजिया को सबोधित किया गया है। हमारे मत मे ये सोरठे इतने भावपूर्ण व सुदर है कि सामान्य सेवक द्वारा प्रणीत प्रतीत नही होते। इन सोरठो में नीति व उपदेश की बाते डिगल भाषा मे बडे मार्मिक ढग से कही गई है। गुजराती, सिधी अग्रेजी आदि के भी शब्द विद्यमान है। रचना प्रसादपूर्ण है।

२७. **बाँकीदास**—चारण फतहसिंह के पुत्र बाँकीदास का जन्म जोधपुर राज्य के भद्रा गाम मे स० १८२८ में हुआ। इन्होंने अपने पिता व अन्य अनेक गुरुओं से विविध विषयों का अध्ययन किया। ये निर्भीक, स्पष्टवादी, आत्मसमानी, दानी व अत्यंत प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। जोधपुरनरेश महाराज मानसिंह इनसे भाषासाहित्य का अध्ययन भी करते थे और उन्होंने इन्हें जागीर भी दी थी। इनकी २६ पुस्तकें तथा कुछ स्फुट रचनाएँ बाँकीदास ग्रंथावली के तीन भागो मे प्रकाशित हो चुकी है। उनमे १९ नीतिकाव्य है जिनका सक्षिप्त परिचय निम्नलिखित है—

१ **सूर छत्तीसी**—३८ दोहो की इस मुक्तक रचना मे वीरप्रशसा, वीरमोछ, अस्त्रशस्त्र, कवच, युद्ध, वीरगति, विमानारोहण, अप्सरालिगन, वीरपत्नी की गर्वोक्तियाँ आदि वर्णित है।

२. **सीह छत्तीसी**—३८ दोहो की इस मुक्तक कृति मे सिहके बाहुबल, निर्भीकता गजमर्दन आदि का अन्योक्ति शैली मे ओजस्वी वर्णन है।

३. **वीरविनोद**—७५ दोहो के इस मुक्तक काव्य की रचना वीरो के मन मे आनदवृद्धि के लिये की गई है। वर्ण्यविषय पूर्वोक्त छतीसियों के से ही है। अन्योक्तिशैली का प्राधान्य है।

४. **धवल पच्चीसी**—स० १८८३ मे प्रणीत ३४ दोहों की इस कृति में कवि ने श्वेत बैल के बहाने से उस सेवक का गुणगान किया है जो स्व-सुख-दुःख से विमुख होकर स्वामी को सुखी करने में सलग्न रहता है।

५. **दातार बावनी**—५३ दोहो की इस मुक्तक रचना में दानी मानव की महिमा का सुदर वर्णन किया गया है।

६. **नीतिमंजरी**—३९ पद्यो के इस काव्य मे शत्रु से सावधानता, उसपर अविश्वास तथा उसके सवंश सहार आदि विषयों का उल्लेख है।

७. **वैसक वार्ता**--इस मुक्तक काव्य मे ५८ दोहे व १ सोरठा है। इसमें वेश्या-गमन से जनित हानियो व सतीत्व की महिमा का बहुत चुभता हुआ वर्णन है।

८. **मावड़िया मिजाज**--८८ दोहा के इस मुक्तक काव्य में कवि ने स्त्री स्वभाव-वाले पुरुषो का उग्र उपहास किया है ताकि वे जनानापन छोड़ मर्दानगी ग्रहण करें।

९. **कृपणदर्पण**--कजूसो, मक्खीचूसो को उनका कलकित मुख दिखाने के लिये ही कवि ने इस काव्य के हास्य-व्यग्य-मय ४५ दोहो की रचना की है।

१०. **मोहमर्दन**--इस मुक्तक काव्य मे ३८ दोहे व एक सोरठा है। शरीर, संबंधियों व संसार से मोह रखनेवाले लोगो के हृदय मे विवेक जागरित करने के लिये इस काव्य का प्रणयन किया गया है।

११. **चुगल-मुख-चपेटिका**--पिशुन लोग राजाओ आदि के समीप रहकर अपने विरोधियों के विरुद्ध उनके कान भरा करते है। ५२ दोहो की इस मुक्तक रचना का एक एक दोहा समझदार पिशुनों के लिये चपत से कम नही।

१२. **वैसवार्ता**--इस निदाकाव्य में लोभी, कपटी, धरोहर पचा जानेवाले, कम तौलनेवाले बनियो की खूब खबर ली गई है। ७७ दोहो के इस काव्य मे मधुर व्यंग्य और उग्र कटूक्तियाँ दोनो ही विद्यमान हैं।

१३. **कुकविबत्तीसी**--३९ दोहों की इस मुक्तक रचना मे उन तुक्कड़ो की खिल्ली उड़ाई गई है जो काव्यांगो से अपरिचित होने पर भी महाकवियो से ईर्ष्या करते हैं। काव्य के कुपाठकों पर भी छीटे कसे गए है।

१४. **बिदुरबत्तीसी**--३६ दोहो की इस मुक्तक कृति में कवि ने दासोपुत्रो के स्वभाव, व्यवहारादि का हास्य-व्यग्य-मय चित्रण किया है।

१५. **कायरबावनी**--५४ दोहो के इस मुक्तक काव्य का प्रणयन संवत् १८७१ में किया गया। कई चाटुकार कायर राजा की सभा व सेना मे प्रविष्ट होकर उसका अनिष्ट किया करते है। इस कृति मे राजाओ को उनसे सावधान किया गया है और भगोड़े पति व उसकी पत्नी का संवाद बहुत ही रोचक है।

१६. **सुजसछत्तीसी**--३४ दोहों व ४ सोरठो की इस मुक्तक कृति मे यशप्राप्ति के साधनों का वर्णन किया है; जैसे, वीरता, दानशीलता, सुकृत्य आदि। स्ववर्ण्य विषय को अधिक प्रभविष्णु बनाने के लिये रोचक तथा भयानक बातों का भी उल्लेख विद्यमान है।

१७. **संतोष बावनी**--लोभ, निंदा व सतोपमहत्व इस रचना के मुख्य विषय हैं। ४६ दोहों और ६ सोरठो की इस कृति मे सतोष की उपयोगिता निवृत्तिमार्गियो के लिये ही नही, प्रवृत्तिमार्गियों के लिये भी दिखाई गई है।

१८. **वचनविवेक पच्चीसी**--इस रचना का उद्देश्य वाणी के सुप्रयोग की शिक्षा देना है। २६ दोहो और २ सोरठो की इस मुक्तक कृति मे अशुभ, असभ्य तथा कटुभाषण

से होनेवाली हानियों और मधुरवाणी के लाभों का सम्यक् निरूपण है। दोहों के अनेक खंड लोकोक्तियों के से चुभीलेपन से युक्त हैं।

१९. कृपण पच्चीसी—इसका विषय कृपणदर्पण के समान है परंतु दोहे नए और चुभीले हैं। २९ पद्यों में सोरठा एक ही है।

उपर्युक्त विवरण से विदित होता है कि बाँकीदास ने पारिवारिक तथा इतर-प्राणिविषयक नीति के सिवा, नीति के सभी भेदों पर स्वतंत्र काव्यरचना की है। इन काव्यों के अध्ययनकाल में यह भावना बराबर बनी रहती है कि इनमें से अधिकतर का संबंध राजदरबार से है, सामान्य जनों से नहीं। रहीम आदि दरबारी कवियों का काव्य मुख्यतः जनसाधारण के लिये था परन्तु बाँकीदास के ८० प्रतिशत नीतिकाव्य का संबंध राजा व दरबारी कवियों के हितार्थ है। ये काव्य नीरस पद्यों के संग्रहमात्र नहीं है, सरस व भावपूर्ण हैं। इनमें वीर और हास्यरसों की प्रधानता है। शेष रसभाव छिटपुट रूप से व्यंजित हैं। इन काव्यों की भाषा प्रौढ़, परिमार्जित व सरस डिंगल है जिसमें फारसी अरबी शब्दावली की विस्मयकारिणी अधिकता है। मुख्यतः तथ्यनिरूपक हास्य-व्यंग्य-मयी और अन्याप-देशात्मक शैलियाँ व्यवहृत हुई है। बाँकीदास के काव्यों में अलकारों का प्रयोग प्रचुर होना भी भाररूप नहीं है। प्रसादगुण प्रायः सर्वव्यापक है और माधुर्य की अपेक्षा ओज की मात्रा अधिक है। कवि ने कहीं कहीं प्राचीन कवियों से भाव तो ग्रहण किए हैं परंतु उनका विकास स्व-प्रतिभा-बल से स्वतंत्र रूप में किया है। अंत में इतना ही कथन पर्याप्त होगा कि नीतिकाव्यों की संख्या व सरसता की दृष्टि से कोई भी प्राचीन नीतिकवि बाँकीदास की बराबरी नहीं कर सकता।

२८. बैताल—बैताल का काल तो निश्चित नहीं परंतु यह निश्चित है कि वे मध्यकाल के एक प्रसिद्ध नीतिकवि थे और उनके पद्य बहुत लोकप्रिय हैं। उनके केवल स्फुट पद्य ही प्राप्त हुए हैं, स्वतंत्र नीतिकाव्य नहीं। वर्ण्य विषयों की साधारणता होते हुए भी भाषा व शैली की रोचकता के कारण उनके पद्य कर्ण व अंतःकरण को एक साथ प्रभावित करते है।

२९. मनरंगलाल—कन्नौज निवासी जैन कवि मनरंगलाल के पिता कनौजीलाल थे और माता देवकी। इनका रचनाकाल उन्नीसवीं शती का उत्तरार्ध है। इनके नीति-काव्य का नाम है 'सप्तव्यसन चरित'। यह कथासंग्रहात्मक काव्य है जिसकी अंतिम दो अर्थात् आखेट और परदारागमन कथाएँ लुप्त हो चुकी है। प्रारंभिक २९ पद्यों में से संबंधित जैन तीर्थंकरों का स्तवन है और तत्पश्चात् द्यूत, मांस, सुरा, वेश्या और चोरी नामक व्यसनों से संबंधित कथाएँ है। वर्णित कथाएँ प्राचीन साहित्य से ली गई हैं, परंतु उनका विकास कवि ने स्वप्रतिभा से किया है। कथाप्रसंग से अनेक रसभावों की सुंदर व्यंजना हुई है। भाषा स्वच्छ, मधुर, प्रवाहपूर्ण और अलंकृत ब्रजी है। सवैया, दोहा, सोरठा, चौपाई, छप्पय, कवित्त आदि छंद व्यवहृत किए गए है। सचमुच यह एक सुंदर नीतिकाव्य है।

३०. **रघुनाथ**—इनकी 'दुष्टगंजन पंचावनी' की हस्तलिखित खंडित प्रति नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी, के याज्ञिकसंग्रह में सुरक्षित है। इसकी रचना सं० १८८६ में की गई। प्रथम १८ पद्य लुप्त हो चुके हैं। इस काव्य में दुष्टों के स्वरूप का ही वर्णन नहीं है, स्थान स्थान पर उनका अमंगलचिंतन भी किया गया है। ऐसा लगता है कि दुष्ट-पीड़ित, विवश विप्रकवि दुष्टनाश के लिये हनुमान जी से श्रीराम की तथा अंजना के दूध की दुहाई देकर, दुष्टदलन के लिये अनुरोध करता है। सुंदर, प्रवाहपूर्ण ब्रजी में रचित इस निंदाकाव्य में कवित्त, सवैया, तथा छप्पय छंदों का प्रयोग किया गया है। बीभत्स, वीर और भयानक रसों की व्यंजना अच्छी हुई है। अपने विषय व प्रकार का यह एक ही नीति काव्य है।

३१ **बुधजन**—जयपुर के खंडेलवाल जैन निहालचंद के तृतीय पुत्र बुधजन का वास्तविक नाम भदीचंद्र या विरधीचंद था। ये पं० माँगीलाल के शिष्य थे और दीवान अमरचंद्र के मुख्य मुनीम। नीतिकाव्य की दृष्टि से इनकी 'बुधजन सतसई' ही उल्लेख्य है जिसकी रचना सं० १८७९ में की गई थी। सतसई के चार भाग हैं—१. देवानुराग शतक, २. सुभाषित नीति, ३. उपदेशाधिकार, ४. विरागभावना। नीतिकाव्य की दृष्टि से द्वितीय व तृतीय भाग ही महत्वपूर्ण हैं। इस काव्य में सब प्रकार की नीति का उल्लेख है अवश्य, परंतु खटकनेवाली बात है सरसता का अभाव। इसलिये इसे नीतिकाव्य कहने की अपेक्षा नीति पद्यावली कहना अधिक युक्तिसंगत है। सतसई की भाषा ब्रजी है परंतु कहीं कहीं राजस्थानीपन भी झलकता है। रचना प्रसादपूर्ण तथा विविध अलंकारों से युक्त है।

३२. **विश्वनाथसिंह**—रीवाँनरेश महाराज विश्वनाथसिंह का जन्मसंवत् १८४६ है और शासनकाल १८९१–१९११ वि०। ये स्वयं भी कवि थे और सुकवियों के सत्कारकर्ता भी। ध्रुवाष्टक, उत्तम नीतिचंद्रिका और अबाधनीति इनके तीन नीति-काव्य हैं। इन्होंने हिंदी व संस्कृत में कई ग्रंथों का प्रणयन किया। 'ध्रुवाष्टक' में राज-नीति के सुंदर आठ सवैये हैं जिनमें राजा की दरिद्रता, अशांति, राज्यनाश, अपयश, संपत्ति, सुख आदि के कारणों का स्वच्छ ब्रजी में उल्लेख किया गया है।

३३. **बाबा दीनदयाल गिरि**—नीति के सुप्रसिद्ध कवि गिरि जी का जन्म संवत् १८५९ में वाराणसी में हुआ और स्वर्गवास सं० १९१५ में। ये शैव संन्यासी थे परंतु सांप्रदायिक संकीर्णता से सर्वथा मुक्त। इनके पाँच ग्रंथों में से नीतिकाव्य दो हैं—दृष्टांत-तरंगिणी और अन्योक्तिकल्पद्रुम। 'दीनदयाल गिरि ग्रंथावली' में इनकी 'अन्योक्ति-माला' भी संकलित है, परंतु उसे 'अन्योक्तिकल्पद्रुम' का पूर्ववर्ती संक्षिप्त संस्करण ही मानना चाहिए। 'दृष्टांततरंगिणी' २०६ दोहों का मुक्तक काव्य है जिसकी रचना सं० १८७९ में की गई। प्राय. पूर्वदल में प्रतिपाद्य नीति का उल्लेख है और उत्तरदल में दृष्टांत द्वारा उसकी पुष्टि। इसमें कई असाधारण बातों का उल्लेख भी है; जैसे, दुर्जन को विपत्ति से मत बचाओ, सुरूप का भी सगुण के समान संमान होता है, इत्यादि।

इसकी भाषा प्रायः शुद्ध, अलंकृत और व्यवस्थित है। साररूप में कह सकते हैं कि यह सुंदर सूक्तिमयी रचना है, परंतु उत्तम काव्यकोटि में गण्य नहीं।

'अन्योक्तिकल्पद्रुम' की रचना सं० १६१२ में की गई। इसमे वैयक्तिक, सामाजिक, आर्थिक और मिश्रित नीति की बहुलता है। पारिवारिक तथा प्राणिविषयक नीति उपेक्षित सी है। सभवत. कारण यह है कि बाबा जी बचपन मे ही जनकविहीन व विरक्त हो गए थे, इसलिए उन्हे सबधियो के सबध मे अधिक लिखने की नही सूझी। 'अन्योक्तिकल्पद्रुम' अत्यन्त सरस व भावपूर्ण रचना है, कोमल, मधुर तथा स्वच्छ ब्रजी मे लिखित है। 'दृष्टांततरगिणी' की अपेक्षा इसमें मुहावरो व लोकोक्तियो का प्रयोग अधिक है। इसमे २७२ पद्य है जिनमें से २४७ कुडलिया, १३ दोहा, २ कवित्त, ५ मालिनी और ५ सवैया छद मे निबद्ध है। इस काव्य मे मुख्यत. अन्योपदेशात्मक शैली प्रयुक्त की गई है जिसका सस्कृत व हिंदी के अनेक कवि भी प्रयोग कर चुके थे। परंतु यह सदा स्मरण रखना चाहिए कि इसकी अन्योक्तियो का काव्यमाधुर्य हिंदी नीतिकाव्य मे अनुपम है। अत मे इतना ही कथन पर्याप्त होगा कि 'अन्योक्तिकल्पद्रुम' विषयो की व्यापकता, भावो की मार्मिकता, भाषा की व्यजकता आदि के कारण हिंदी नीतिकाव्य की एक श्रेष्ठ रचना है और इसी के कारण गिरि जी नीतिकवियो की प्रथम पक्ति मे गण्य है।

३४. **गुपाल कवि**—वृंदावनवासी कवि प्रवीनराय के पुत्र गुपाल कवि ने सं० १८८५ मे 'दपति-वाक्य-विलास' नामक नीतिकाव्य की रचना पाठकों के बुद्धिविकास तथा व्यवसायो मे हानि से बचने के लिये की। रचना पति पत्नी के सवादरूप मे है। धनोपार्जन के लिये पति विदेश जाना चाहता है और पत्नी के प्रश्न पर अभीष्ट व्यवसाय के गुणों का वर्णन करता है। इसपर पत्नी उसी व्यवसाय के दोष बता देती है। यही क्रम सैकड़ो व्यवसायो के सबध मे चलता है और दोनो वाक्यविलास के साथ दांपत्यविलास का सुख भी अनुभव करते जाते है। प्रस्तुत काव्य २१ प्रबधो मे विभक्त है और प्रत्येक प्रबध अनेक वर्गों मे। कविदृष्टि की व्यापकता विस्मयजनक है। जहाँ 'विप्र रोजगार प्रबंध' मे उसने वेदांती, व्याकरणी, ज्योतिषी आदि के गुणदोषों की चर्चा की है, वहाँ अधमाधम प्रबंध मे भड़ुआ, छिनरा, छिनारी, कुट्टनी आदि को भी विस्मृत नही किया। हिंदी मे गृहीत नीतिविषयो का जितना ब्यौरेवार वर्णन इस काव्य मे किया गया है, अन्य किसी मे भी नहीं। इसके अध्ययन से इस बात का भी प्रमाण मिल जाता है कि हिंदीकवियो ने उन विषयो को भी वर्ण्य बना लिया था, जिनपर पुराने कवि प्रायः मौन थे। यद्यपि इसमे प्राणिनीति के सिवा सब प्रकार की नीति विद्यमान है तथापि प्राधान्य आर्थिक नीति का है। यह काव्य सरल, मधुर, प्रवाहपूर्ण ब्रजी मे है तथा इसमे अर्थालंकारो की अपेक्षा शब्दालंकारों का चमत्कार अधिक है। दपती के सवादरूप मे होने के कारण यह कुछ प्रबंधात्मक है और प्रत्येक पद्य के अर्थस्वातत्र्य के कारण मुक्तक। इसलिये इसे कोई प्रबंधमुक्तक सा नाम देना उचित होगा। प्रायः कवित्त, सवैया व दोहा छंदों का प्रयोग

किया गया है। सार यह कि विषय, भाव, भाषा सभी दृष्टियों से यह एक सुंदर नीतिकाव्य है।

३५. **केसौदास**—'दीपकबत्तीसी' के रचयिता केसौदास का जीवनवृत्त अभी तक अंधकार मे है, तो भी ये सत्रहवी शती के गाडण चारण केशवदास तथा 'केशवबावनी' के प्रणेता जैन कवि केशव से भिन्न ही प्रतीत होते है। पुरातत्वमंदिर में सुरक्षित 'दीपकबत्तीसी' का रचनाकाल १६वी शती अनुमित किया गया है। इसमें राजस्थानी भाषा के ३२ दोहे है। इस अन्योक्तिप्रधान कृति मे दीपक के गुण दोषो का भी उल्लेख है और पतंग के अनन्य प्रेम का भी। व्यंग्यार्थ की प्रधानता व भाषासौष्ठव के कारण रचना मनोरम है।

३६. **भडुरी**—इनकी जीवनी अभी तक अविदित है। विदित इतना ही है कि ये एक राजस्थानी ज्योतिषी थे तथा वृष्टि और कृषि के विशेषज्ञ। जैसे उत्तरप्रदेश व बिहार में घाघ की कहावते प्रचलित है, वैसे ही राजस्थान व पंजाब मे इनकी। इनकी दो सौ के लगभग कहावते प्रकाशित है जिनके विषय वर्षा, सुकाल, अकाल आदि है। ये कहावतें दोहा, चौपई, चौपाई आदि छंदों मे है तथा उन्हे पद्यकोटि मे ही रखा जा सकता है।

३७ **मानिकदास**—ये अहमदाबाद के विद्वान् पाटीदार थे परंतु पीछे साधु बनकर उज्जैन मे जा बसे थे। मिश्रबंधुओं ने इनकी पांच पुस्तकों का उल्लेख किया है जिनमे से 'संतोष सुरतरु' की हस्तलिखित सटीक प्रति हमने नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, के याज्ञिक सग्रह में देखी थी। पुस्तक में १११ दोहे है और वर्ण्यविषय काव्यनाम से ही स्पष्ट है। दोहे साधारण कोटि के है और टीका पंडिताऊ गद्य मे है।

३८. **मनराम**—इनका जीवनचरित अभी तक अधकार मे है तो भी उपलब्ध तथ्यो से ये रीतिकालीन ही अनुमित होते है। हमने इनका 'मनरामविलास' जगपुर के ठोलियो के मदिर में देखा था जिसे किसी बिहारीदास ने 'मनरामप्रकाश' से लिया था। इसमे जैनप्रसिद्ध नीति विषयो का उल्लेख ६६ पद्यो मे और दोहा, सवैया, कुडलिया आदि छंदो में किया गया है। इसपर भर्तृहरि के नीति व वैराग्य शतकों का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है, फिर भी स्वप्रतिपाद्य को सुदर दृष्टातों से पुष्ट करने में कवि ने विशेष कौशल दिखाया है। भाषा ब्रजी है पर उसपर राजस्थानी प्रभाव भी स्पष्ट है। रचना सूक्तिकोटि में गणनीय है।

३९. **मूर्खभेद चौपई**—सस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश तथा हिंदी के साहित्यों में विद्वानो के अतिरिक्त मूर्खों की चर्चा भी बराबर होती रही है।[1] प्रस्तुत कृति उसी परपरा

---

१. 'हिंदी मे नीतिकाव्य का विकास' के प्रथम खड का द्वितीय अध्याय तथा 'मरुभारती', जनवरी, १९५५ में श्री अगरचद नाहटा का 'मूर्खभेद चौपई' शीर्षक निबंध देखें।

के अंतर्गत है और बीकानेर के अभयजैन ग्रंथालय के एक गुटके में संकलित है। कवि ने सुगुणप्रकाश तथा बुद्धिविस्तार के उद्देश्य से इसे लिखा है। इसमें उद्यम के बिना धन के इच्छुकों, वेश्यावचनो पर विश्वास करनेवालो आदि को मूर्ख बताया गया है। कहीं कहीं संस्कृत पद्यों को अक्षरश: अनूदित कर दिया गया है। कृति पद्यकोटि की ही है।

४०. **त्रीया-बिनोद-चरित्र**--सं० १९०० से पूर्व की इस रचना के लेखक के संबंध में अभी तक कुछ भी ज्ञात नही है। इस कथाकाव्य की शैली 'पंचतंत्र' के समान है; कथा-मध्य से अन्य कथाएँ उद्भूत होती जाती है। पातिव्रत की शिक्षा देना ही इस काव्य का लक्ष्य है। साहित्यिक दृष्टि से काव्य का कोई विशेष महत्व नही है तथापि इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि स्त्रियो को सच्चरित्र बनाने तथा पुरुषों को उनके मायावी चरित्र से सचेत रखने के लिये ऐसी काव्यरचना की प्रवृत्ति का अभाव न था। इसकी हस्तलिखित प्रति उदयपुरीय साहित्यसंस्थान मे विद्यमान है।

४१. **दातार सूर नो संवाद**--इस काव्य का रचयिता अभी तक अज्ञात है। इसकी हस्तलिखित प्रति का लिपिकाल सं० १८८८ है और वह पुरातत्वमंदिर मे सुरक्षित है। २५ पद्यो की इस रचना मे छप्पय, पद्धरि और दूहा छंद प्रस्तुत किए गए है। इसमे दाता और शूर अपने को दूसरे से श्रेष्ठ सिद्ध करना चाहते है। जब उनका झगड़ा समाप्त नही होता तो निर्णय कराने के लिये 'राया तिलक' रायसिंह के पास पहुँचते है, जो दाता को शूर से श्रेष्ठ बताता है। राजस्थानी भाषा की यह वीररसात्मक रचना अच्छी रोचक है और नरहरि के वादो की शैली मे है।[१]

२. अनुवादक कवि

उपर्युक्त मूल नीतिकाव्यो के अतिरिक्त रीतिकाल मे कुछ प्राचीन नीतिग्रथों के अनुवाद भी किए गए। उन अनुवादो में कुछ गद्य मे है, कुछ पद्य मे और कुछ गद्य-पद्य-मिश्रित। नीचे हम ऐसे ही अनुवादो का अति संक्षिप्त परिचय दे रहे है जो पद्यमय है वा पद्यप्रधान।

१ **जयसिंहदास**--इन्होंने १७८२ में सारंगढ़ कोट के मंत्री बाबू देवकीनंदन की आज्ञा से 'हितोपदेश' का अनुवाद 'हितोपदेश के कथा' नाम से किया। अनुवाद छप्पय, घनाक्षरी, चौपाई आदि छंदो मे है और साधारण है।

२. **नयनसिंह**--मुनि जी ने बीकानेर के महाराज अनूपसिंह के पुत्र आनंदसिंह के आदेश से भर्तृहरि की शतकत्रयी का सवैयाबद्ध अनुवाद सं० १७८६ में किया। अनुवाद की भाषा सुंदर है परंतु अनुवाद कहीं कहीं व्याख्या की झलक देता है।

---

१. चूँकि आगामी अध्याय में हमें इन प्रमुख कवियो के अनेक नीतिपद्य प्रसंगवश उद्धृत करने का अवसर मिलेगा इसलिये हमने यहाँ उन्हें उद्धृत न करना ही उचित समझा है।

३. **कृष्ण कवि**—बिहारी के पुत्ररूप मे प्रसिद्ध कृष्ण कवि ने राजा आयामल्ल के आदेश से विदुरनीति की टीका सं० १७९२ मे दोहा, सोरठा, पद्धरि, कवित्त, रोला आदि छंदो में की। टीका सुंदर है परंतु पद्यश. प्रस्तुत नही की गई, जिससे मूल की कई बातें छूट गई हैं।

४ **द्वारकानाथ सरस्वती (भट्ट)**—भट्ट जी ने 'हितोपदेश भाषा पृथ्वीमगल' की रचना राजा पृथ्वीसिह के आदेश से सवत् १८२८ मे की। अनुवाद पूर्णतया पद्य में है और उसमें दोहा, चौपाई, कवित्त तथा सवैया छंदों का प्रयोग किया गया है। साहित्यिक सौष्ठव के अभाव मे भी मूल भावो की रक्षा सावधानता से की गई है।

५. **देवीचंद**—इनके द्वारा अनूदित 'पंचाख्यान' में पाँच कथासंग्रह है—मित्रलाभ, सुहृदभेद, विग्रह, सधि तथा लब्धप्रकाश। ग्रंथ गद्य-पद्य-मिश्रित ग्वालेरी भाषा मे है तथा दूहा, सोरठा, छप्पय और कवित्त छद व्यवहृत हुए हैं। इसकी प्रतिलिपि सं० १८४४ में बीकानेर मे की गई थी।

६ **ब्रजनिधि**—जयपुरनरेश सवाई प्रतापसिह ने सं० १८५२ में भर्तृहरि के तीनों शतकों के अनुवाद नीतिमंजरी, शृंगारमंजरी और वैराग्यमंजरी नाम से प्रस्तुत किए। अनुवाद भावरक्षा तथा भाषासौष्ठव, दोनों दृष्टियों से सफल है।

७. **चंदनराम**—'चंदकवि' ने सं० १८६७ मे 'प्रश्नोत्तरी-विदग्ध-मुखमंडन' की रचना की। यह धर्मदास सूरिप्रणीत संस्कृत के 'विदग्धमुखमंडन' का अनुवाद नही, अपितु प्रश्नोत्तर-मणि-मालिका' का सार है। दोहा, सोरठा की अपेक्षा कुंडलिया व सवैया का प्रयोग अधिक है। दोहों की अपेक्षा सवैया रचना सुंदर है।

८ **उम्मेदराम**—कवि ने 'भाषाचाणिक्य' की रचना स० १८७२ मे अलवर-नरेश विनयसिह के आदेश से की। २४६ पद्यो के इस अनुवाद मे दोहे को 'युग्मम् छद.' तथा 'द्विपदम्' कहा गया हे। अनुवाद सुदर है।

९. **विष्णु गिरि**—अज्ञातकालीन गिरि जी ने लघु तथा वृद्ध चाणक्यनीति के अनुवाद दोहा सोरठा छदों मे किए जो ३३ पृष्ठो पर लिपिबद्ध है। अनुवाद अच्छे है।

१०. **भगवानदास निरंजनी**—ये निरंजनी सप्रदाय के कवि थे। इन्होंने भर्तृहरिशतक का कवित्तों मे सुदर अनुवाद किया।

११. **देवमणि**—इनका समय भी अज्ञात है। इन्होंने चाणक्यनीति का सोलहवें अध्याय तक अनुवाद किया।

अनुवादों की सरसता नीरसता मूल ग्रथों की सरसता नीरसता पर भी निर्भर है और अनुवादकों के काव्यकौशल पर भी। अनुवादकों ने प्राय· विदुरनीति, चाणक्य-नीति, हितोपदेश, पंचतंत्र, नीतिशतक आदि के अनुवाद किए जो उत्तमकाव्य नहीं है। दूसरे अधिकतर अनुवादक भी कुशल कवि न थे। यही कारण है कि उपलब्ध अनुवादों को

सुकाव्य कहने में संकोच होता है। तो भी अनुवादकों को जनता में नीति की उत्तम बातें थोड़े बहुत रोचक ढंग से प्रसारित करने का श्रेय देना उचित ही है।

३. संग्रहकार

रीतिकाल में नीति की मौलिक तथा अनूदित रचनाओं के साथ साथ संग्रहों में नीतिपद्यों के संकलन की प्रवृत्ति भी दृष्टिगोचर होती है। हस्तलिखित ग्रंथों के भंडारों में धर्म, शृंगार आदि विषयों के संग्रहों के साथ साथ नीतिकवियों के उत्तमोत्तम पद्यों के संग्रह भी पर्याप्त दिखाई देते हैं। कभी कभी तो ऐसे नीतिकवियों के पद्य भी प्राप्त हो जाते हैं जिनके नाम अश्रुतपूर्व होते हैं। ऐसे नीतिविषयक संग्रहों को प्रायः 'प्रास्ताविक संग्रह' कहा गया है। पं० जगन्नाथ के 'भामिनीविलास' के नीतिविषयक प्रथम विलास को 'प्रास्ताविक विलास' कहा गया है। संभव है, तभी से इस शब्द का प्रयोग नीतिविषयक कविता के लिये होने लगा हो। अस्तु, निदर्शनमात्र के लिये एक दो संग्रहों का उल्लेख पर्याप्त होगा।

बीकानेर के अनूप संस्कृत पुस्तकालय के एक संग्रह (सं० ७२।७२क) में अनेक कवियों के नीतिपद्य संगृहीत हैं जिनमें सेउ और संमन मुख्य हैं। यह संग्रह पौने तीन सौ वर्ष पुराना है। इसका एक दोहा द्रष्टव्य है—

आवत ही आदर नहीं, टेढ़ी भोह कराइ।
'सेऊ' तहाँ न जाइये, जो कंचन बरसाइ[1]॥

पं० लल्लूलाल ने सं० १८७० में 'सभाविलास' नामक नीतिपद्यों का संग्रह किया था जो नागरीप्रचारिणी सभा, काशी में सुरक्षित है। भक्तिविषयक प्रारंभिक १५ दोहों के पश्चात् क्रमश वृंद, रहीम, रसनिधि आदि के दोहे संगृहीत हैं। इस संग्रह मे दोहे, सोरठे, कुंडलिया, बरवै, अरिल्ल, छप्पय, सवैया, पहेली, मुकरी सभी कुछ विद्यमान है। पुरातत्व-मंदिर का एक संग्रह (क्रमाक ४६१२) भाषा की विचित्रता की दृष्टि से उल्लेख्य है। इसमें कई दोहे संमन के हैं और अनेक अज्ञातकर्तृक। कुछ दोहों की भाषा ऐसी है जिसे न हिंदी कह सकते हैं, न सस्कृत। जैसे—

रत्न पींजरे वसति काको, अमृत भोजन भछ्यति।
पठ्यते चतुर वेदांत, स्व स्वभाव न मुंचति[2]॥

इन संग्रहों द्वारा जहाँ हम जयदेव, प्राननाथ, बलदेव, प्रधान, बुद्धिसेन, अंबुज आदि अनेक कवियो के नामो से परिचित होते हैं, वहाँ इनके मधुर काव्यों का रसास्वादन भी कर

---

१. अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर, संग्रह संख्या, ७२।७२क, पत्र ११२।
२. पुरातत्वमंदिर, जोधपुर, संग्रह सं० ४६१२, पत्र १।

पाते हैं। यों तो नीति के सभी विषय इन संग्रहों में छिटपुट रूप से प्राप्त हो जाते हैं तथापि राजसभाओं में पिशुनता करनेवालों की निंदा, कृपण राजाओं व सरदारों को उपालंभ, कर्कशा नारी, राजाश्रय से वंचित कवियो की खीभ, घूसखोरों व कायस्थों की निंदा, राजाओं पर कवियों का सहज दावा, बूढों की कामुकता, निकम्मे सेवक, अच्छे पंचों की प्रशंसा व बुरों की निंदा, कविविहीन सभा का फीकापन आदि विषयों का उल्लेख अधिक है। ध्यान देने की बात है कि संग्रहों के नीतिपद्य अनूदित कृतियों के समान नीरस नहीं हैं क्योंकि इनमें तो सहृदय संग्रहकारों ने सरस रचनाओं को ही संगृहीत किया है। निःसंदेह संग्रहों का नीतिकाव्य भाव, भाषा, रस, अलंकार सभी दृष्टियो से स्तुत्य है।

४. फुटकल नीतिकवि

कवि	काव्य	समय	विशेष
१. अकमल (अकू)	शीलबत्तीसी	सं० १७२१ (लिपिकाल)	पातिव्रत, पत्नीव्रत
२. प्रवीण कविराय	स्फुट पद्य	सं० १६६२ (जन्म)	
३. महेश मुनि	अक्षरबत्तीसी	सं० १७२५ (रचना)	गर्व, पाप, छलादि
४. भरमी कवि	स्फुट पद्य	सं० १७०८ (जन्म)	रोचक कवित्त
५. जगन्नाथ	गुरुमहिमा	सं० १७६० (रचना)	पद्मपुराण के आधार पर
६. गडू	स्फुट पद्य	सं० १७७० (रचना)	
७. ?	प्रस्न पुण्यपाप	सं० १७७२ (लिपिकाल)	वैधव्यादि के कारण
८. प्रेमचंद	मृत्युमहोत्सव पच्चीसी	सं० १७७८ (लिपिकाल)	मृत्यु-सुख-कारण
९. अमरसी	गुरुचेला की चड़बड़	१८वी शती (लि०का०)	पहेलियाँ व सुभाषित
१०. भीम	सप्तव्यसन दूहा कुंडलिया	,, ,, (,,)	सप्त व्यसन
११. नागरीदास	इस्कचमन	सं० १७५६ (जन्म)	प्रेमविषयक नीति
१२. मुनि मान	मानबावनी	सं० १८१२ (लिपिकाल)	सामान्य
१३. ?	बारहखड़ी	सं० १८१४ (लिपिकाल)	अनुप्रासपूर्ण
१४. लालचंद (लाभवर्धन?)	१. छिनालपच्चीसी २. मूरख सोलही	१८वीं शती उत्तरार्ध	कुलटाविषयक मूर्खलक्षण

१५. उम्मेदराम	सत्योपदेश	सं० १८०० (जन्म)	सामान्य
१६. श्रीसार	उपदेशसत्तरी	सं० १८३८ (लिपिकाल)	बुढ़ापे में विवशता व स्वार्थी संतान
१७. क्षमाकल्याण	हितशिक्षा द्वात्रिंशिका	१९वीं शती का मध्य	इंद्रियसंयमादि
१८. रसिक गोविंद	कलिजुग रासो	सं० १८६५ (रचना)	कलिजनित दोष
१९. शिवलाल दूबे	स्फुट सुंदर पद्य	सं० १८३९ (जन्म)	
२०. देवा ब्रह्म वा देवा पांडे	१. ढाल मधुबूंद		प्रसिद्ध कथा
	२. गुरसीख		सामान्य नीति
	३. सास बहू का झगड़ा	स० १८७२ (लिपिकाल)	
२१. सूरत	बारह खड़ी	सं० १८८० (लिपिकाल)	सप्तव्यसनादि
२२. जीवो रीषी (ऋषि)	कक्काबत्तीसी	१९वी शती (लिपिकाल)	परनारी त्यागादि
२३. पारणीदास	बारहखड़ी	१९वी शती (लिपिकाल)	जैन नीति
२४. बणारस सुंदरदास	बावनी	?	गुणमहत्व, मातृगौरवादि
२५. मुरलीदास	ग्रिहसत सत सार	?	परधन त्यागादि
२६. गिद्ध या गीध कवि	स्फुट पद्य	?	अवसर महत्वादि

तृतीय अध्याय

रीतिकालीन नीतिकाव्य का साहित्यिक मूल्यांकन

नीति का प्रतिपादन नीतिशास्त्र भी करते हैं और नीतिकाव्य भी। दोनों में अंतर यह है कि प्रथम में दृष्टि नीतिप्रसारण मात्र पर रहती है और दूसरे में सरसतापूर्वक नीतिप्रसारण पर। इसलिये अब अंत में यह देखना समीचीन होगा कि विवेच्य काल के नीतिकाव्य का साहित्यिक दृष्टि से क्या महत्व है।

रस और भाव—वर्ण्य विषयो के विचार से ही नही, रसो और भावों की व्यंजना की दृष्टि से भी रीतिकालीन अधिकतर रचनाएँ उपेक्ष्य नही है। यद्यपि वात्सल्य रस को छोड़कर सभी रसो की व्यजना हुई है तथापि प्रमुख स्थान हास्य, वीर और शांत रस का है। बाँकीदास ने 'कृपणपच्चीसी' तथा 'कृपणदर्पण' में कृपणो को, 'मावड़िया मिजाज' में स्त्रीस्वभावी पुरुषो को, 'कुकविबत्तीसी' मे कुकवियो को, 'कायरबावनी' मे भीरुओ को और 'वैसवार्ता' में वैश्यो को हास्य का आलंबन बनाया है। गुपाल कवि ने 'दपति-वाक्य-विलास' में विविध अधम व्यवसायियो को, रघुराम ने 'सभासार नाटिक' में विभिन्न दुर्जनो तथा शहरी मित्र को, हितवृंदावनदास ने 'कलिचरित्रबेलि' मे और देवापाँडे ने 'सास बहू का झगड़ा' में घरफोड़ बहू को उपहासास्पद चित्रित किया है। वीर रस के भेदों मे से युद्धवीर तथा दानवीर की व्यंजना ही अधिक दिखाई देती है। बाँकीदास की 'सूरछत्तीसी', 'सीहछत्तीसी' और 'वीरविनोद' में तथा गोपाल चारनक के 'वीरशतक' में युद्धवीर सम्यक् व्यंजित हुआ है। बाँकीदासकृत 'दातारबावनी' तथा 'सुजसछत्तीसी' और अज्ञातकर्तृक 'दातार सूर नो संवाद' में दानवीर अच्छा प्रस्फुटित हुआ है। दीनदयाल गिरि, गिरिधर कविराय तथा जैन लेखकों की रचनाओं में शांत रस का आधिक्य है। रघुनाथ की 'दुष्ट गंजन पंचावनी' मे रौद्ररस तथा बाँकीदास की वीरतात्मक कृतियो मे रौद्र, बीभत्स, अद्भुत और भयानक रस की भी अभिव्यक्ति यत्र तत्र हुई है। भावों में से जसराज, भगवतीदास, गिरिधर कविराय आदि की रचनाओं मे निर्वेद, 'बाइस परीक्षा' में घृनि, 'दीपकबत्तीसी', 'शीलबत्तीसी', 'प्रेमरत्नकार' आदि में रति, 'संतोषबावनी', 'सतोषसुरतरु' आदि में संतोष, 'पंचेंद्रिय संवादादि' में ईर्ष्या, 'गुरुमहिमा' में गुरुभक्ति और 'धवलपच्चीसी' में स्वामिभक्ति आदि भाव सुष्ठु रूप से व्यंजित हुए। गत अध्याय में प्रसंगवश प्रस्तुत पद्यों में उपर्युक्त रसों व भावों के उद्धरण यद्यपि देखे जा सकते हैं, तथापि कुछ पद्य यहाँ भी प्रस्तुत करना अनुचित न होगा।

हास्यरस (शहरी मित्र का वर्णन)

आप जिहाँ जाय तिहाँ आसन अपार करै,
मिलै कहूँ राह मैं तौ दीठ न मिलावैं।

जइयै घर ता कै मानुं सोक पर्यो वाकै,
कहो आए इहाँ काकै कछू सौदा लै सिधावैगे ।।
मेरे पिए एक बड़ो काज है बाजार माँझ,
चालीयै अपुन जाय फिर घर आवैगे ।
कर मनुहार नाहि उलटो सँकोच पारि
प्यावत न बार ए दरस कब पावैगे ।।[१]

शांतरस

बारि बिलोवै डारि दधि, अरी बाँधरी ग्वारि ।
ह्वै है श्रम तेरी वृथा, नहि पैहै घृत हारि ।।
नहिं पैहै घृत हारि हँसैंगी सखी सयानी ।
तू अपने मन मान रही घर की ठकुरानी ।।
बरनै 'दीनदयाल' कहा दिन यो ही खोवै ।
पछतैहै री अंत कत ढिग बारि बिलोवै ।।[२]

संतोष

मन गज जग सर माँहि, लोभ ग्रास बस कर लियो ।
तुरत छुड़ावण ताहि, होय संतोष हरि हमें ।।[३]

गुणदोष—इस काल के नीतिकाव्य प्रसाद, ओज और माधुर्य तीनों ही गुणों से युक्त दिखाई देते है । प्रसाद प्राय: सब कही पाया जाता है । बाँकीदास, गोपाल चातक, रघुनाथ आदि की रचनाओं में ओज, तथा दीनदयाल गिरि, भैया भगवतीदास, भूधरदास, गुपाल कवि आदि की रचनाओ मे माधुर्य की मात्रा पर्याप्त है । नीति के फुटकल कवियों में प्रमुख कवियों की अपेक्षा इन गुणो की न्यूनता है । प्रमुख कवियो ने तो अपनी रचनाओ को यथासभव शास्त्रीय दोषों से मुक्त रखने का प्रयास किया है, परंतु फुटकल कवियो में हतवृत्तत्व, अधिकपदत्व, न्यूनपदत्व आदि दोष यत्र तत्र पाए ही जाते हैं । कुछ एक दोषों का कारण लिपिकारों का प्रमाद भी हो सकता है । कुछ उदाहरण लीजिए—

माधुर्य और प्रसाद (संसारस्वरूप व समय की अमूल्यता)

काहू घर पुत्र जायौ काहू के वियोग आयौ,
काहू राग रंग काहू रोआ रोई करी है ।
जहाँ भान अगत उछाह गीत गान देखे,
साँझ समैं ताही थान हाय हाय परी है ।।

---

१. रघुराम : सभासार नाटिक, पत्र ५ ।

२. दीनदयालगिरि ग्रंथावली, पृ० २३५ ।

३. बाँकीदास ग्रंथावली, ३, संतोषबावनी, पृ० ५३ ।

ऐसी जग रीत को न देखि भयभीत होय,
हा हा नर मूढ तेरी मति कौनें हरी है।
मानुष जनम पाय सोवत विहाय जाय,
खोवत करोरन की एक एक घरी है ॥[१]

ओज और प्रसाद (पत्नी द्वारा पति की स्वामिभक्ति की प्रशंसा)

सखी अमीनौ साहिबौ, निरभै काल्हो नाग।
सिर राखै मिण सांमध्रम, रीझै सिंधुरराग ॥[२]

अक्रम दोष

वैरी रा मीठा वचन, फल मीठा किंपाक।
वे खाधाँ वे मानियाँ, हुआ कृतांत खुराक ॥[३]

भाषा—रीतिकालीन नीतिकाव्य दो भाषाओं मे प्राप्त होते हैं—ब्रजी और राजस्थानी में। भगवतीदास, भूधरदास, रघुराम, दीनदयाल गिरि आदि राजस्थान से बाहर रहनेवाले कवियों की कृतियाँ ब्रजी मे है। राजस्थानवासी वृंद, देवीदास आदि कुछ कवियों ने अपनी रचनाएं ब्रजी मे की और बाँकीदास, नाथिया. कृपाराम आदि ने राजस्थानी में। लक्ष्मीवल्लभ, धर्मसिह आदि जैन मुनियो की कृतियाँ राजस्थानी व ब्रजी दोनो में प्राप्त होती है। उनकी पिंगल की रचनाओं मे भी राजस्थानी का पुट रहता है। राजस्थान के कवियों की, विशेषतः राजाश्रित कवियो की, रचनाओ में फारसी, अरबी आदि के नफो (नफा), खारच (खारिज), पोसाक आदि तद्भव शब्द अन्य प्रांतीय लेखकों की कृतियों की अपेक्षा कुछ अधिक ही लक्षित होते हैं। राजसभाओं में यवन संस्कृति का प्रभाव ही इसका कारण प्रतीत होता है। कुछ मुनियो की भाषा मे, देशाटन के कारण, पंजाबी आदि के भी शब्द दृष्टिगत होते है। रण, रुदन, दर्पण आदि के स्थान पर रण्ण, रुदन्न, द्रपन्न आदि में द्वित्व व्यजनो का प्रयोग भी राजस्थानी कवियो की रचनाओं मे, कवि चंद बरदायी आदि की परंपरा के अनुसार दिखाई देता है। अधिकतर कवियो ने अपनी भाषा को सुबोध ही रखने का यत्न किया है परंतु कई कवियों ने बीच बीच में हास्यास्पद टूटी फूटी संस्कृत के भी श्लोक रख दिए हैं। प्रमुख कवियों की भाषा स्वच्छ तथा सुगठित है परंतु अधिकतर फुटकल कवियों मे भरती के तथा विकृत शब्द भी अनेकत्र देखे जा सकते हैं। कुशल कवियों ने भाषा को प्रभविष्णु बनाने के लिये रूढियो और लोकोक्तियों का भी अवलंबन लिया है। विभिन्न भाषाओं के पद्य पिछले अध्याय में दिए जा चुके हैं, कुछ रूढ़ियों तथा लोकोक्तियों के उदाहरण लीजिए—

---

१. भूधरदास : जैनशतक, पृ० ६।
२. बाँकीदास ग्रंथावली, १, सूरछत्तीसी, पृ० ७।
३. बाँकीदास ग्रंथावली, १, नीतिमंजरी, पृ० ६६।

रूढ़ियाँ

(क) बहते वारि पखार कर, फेरि न लाभै वारि ।[१]
(ख) पछतैहै री अंत कंत ढिग वारि बिलोवै ।[२]

लोकोक्तियाँ

(क) ज्यों हाथी के पाँव में सबको पाँव समान ।[३]
(ख) देखरण काज जुरे सबही जन नाचन पैंठी तो घूंघट कैसो ।।[४]

काव्यविधान--यद्यपि रघुरामकृत 'सभासार नाटिक', नाम से दृश्यकाव्य का आभास देता है, तथापि आधुनिक दृष्टि से वह श्रव्यकाव्य ही है । प्रबोधचंद्रोदय नाटक के अनुवाद किए गए परंतु वह अध्यात्मप्रधान है । नीति की शेष रचनाएँ तीन वर्गों में विभाज्य हैं--१. मुक्तक, २ प्रबंध और ३. निबंध ।

१. **मुक्तक काव्य**---रीतिकालीन नीतिकाव्यों में संख्या व काव्यत्व की दृष्टि से मुक्तक का ही स्थान सर्वश्रेष्ठ है । जसराज, भगवतीदास, वृंद, धर्मसिंह, गोपाल चानक, भूधरदास, गिरिधर, गणपति भारती, कृपाराम बारहठ, बाँकीदास, बुधजन, दीनदयाल के नीतिमुक्तक हमारे साहित्य के श्रीवर्धक हैं । वस्तुत: नीति की बात जितनी मार्मिक रीति से मुक्तक में कही जा सकती है, उतनी प्रबंध काव्य में नहीं । नीति विषयक प्रबंधकाव्य की रचना असंभव तो नहीं परंतु वैसा प्रतिभाशाली नीतिकवि इस काल में कोई भी दृष्टिगत नहीं होता। अस्तु, मुक्तककारों ने अपनी रचनाओं को, पद्यसंख्या के अनुरूप, पच्चीसी, बत्तीसी, छत्तीसी आदि नाम दिए । पद्यसंख्यानुसार ग्रंथों का नामकरण परंपरागत है । ललिता पंचकम्, गंगाष्टकम्, वीरविंशतिका, सिंहासन द्वात्रिंशिका, शुकसप्तति, नीतिशतकम्, गाहासतसई आदि संस्कृत व प्राकृत की रचनाएँ इसी प्रकार की है । हाँ, इतना स्मर्तव्य है कि प्राय: पद्यसंख्या नाम के सर्वथा अनुरूप नहीं है । उदाहरणार्थ, गोपाल चानक के चार शतकों में से एक में भी पूरे १०० पद्य नहीं है ।

२. **प्रबंध काव्य**--इस वर्ग के अंतर्गत गुपाल कवि के 'दंपतिवाक्यविलास', रघुराम के 'सभासार नाटिक', मनरंगलाल के 'सप्तव्यसन चरित' और अज्ञातकर्तृक 'तोया विनोद चरित्र' को रखा जा सकता है । ये कृतियाँ आकार तथा प्रबंध की दृष्टि से निबंधकाव्यों से उत्तम हैं ।

३ **निबंध काव्य**---भगवतीदास का 'पंचेंद्रिय संवाद', देवाब्रह्म का 'ढाल मधुबूंद'

---

१. बुधजनसतसई, पृ० ५५ ।
२. दीनदयाल गिरि ग्रंथावली, पृ० २३५ ।
३. सतसई सप्तक, वृंद सतसई, दो० १५१ ।
४. धर्मबावनी, पद्य ४४ ।

और 'सास बहू का झगड़ा' आदि रचनाएँ इस वर्ग में रखी जा सकती हैं। सामान्य रूप से कह सकते हैं कि प्रबंधात्मक और निबंधात्मक रचनाओं की अपेक्षा मुक्तक रचनाएँ अधिक काव्यत्वपूर्ण व प्रभविष्णु हैं, परंतु 'दंपति-वाक्य-विलास' और 'सभासार नाटिक' अपवाद स्वरूप हैं।

शैली—रचनाओं की संख्या के समान ही, शैली की दृष्टि से भी रीतिकाल आदि-काल व भक्तिकाल की अपेक्षा अधिक सपन्न है। इसमें निम्नलिखित शैलियाँ व्यवहृत की गई हैं—१. तथ्यनिरूपक, २. उपदेशात्मक, ३. ऐतिहासिक, ४. शब्दावर्तक, ५. संख्यात्मक, ६. संवादात्मक, ७. कथात्मक, ८. रूपकाव्य शैली, ९. अन्यापदेशात्मक, १०. व्याख्यात्मक, ११. संबोधनात्मक, १२. व्यंग्यात्मक, १३. कक्का शैली।

इनमें से पहली चार शैलियों के निदर्शन तो वृंद, गोपाल चानक आदि की रचनाओं में सुलभ हैं। स्यामदास के 'हितोपदेश' मे सख्यात्मक शैली, गुपाल के 'दंपति-वाक्य-विलास' में संवादात्मक शैली, मनरंगलाल के 'सप्तव्यसन चरित' मे कथात्मक शैली, भगवतीदास के 'पंचेंद्रिय संवाद' मे रुपक शैली, बाँकीदास की 'सीहछत्तीसी' में अन्यापदेशात्मक शैली, दीनदयाल गिरि के 'अन्योक्तिकल्पद्रुम' में संबोधनात्मक शैली, बाँकीदास की 'कृपण-पच्चीसी' में व्यंग्यात्मक शैली, सूरत की 'बारह खड़ी' मे कक्का शैली आदि का प्रयोग सहज ही देखा जा सकता है। प्रायः इन सभी शैलियो का न्यूनाधिक प्रयोग प्राचीन भाषाओं के नीतिकाव्य में भी उपलब्ध होता है। आश्चर्य तो यह है कि इन कवियों का पद्रह तिथि, सप्तवार आदि शैलियों मे रचित कोई ग्रंथ अभी तक हमारे देखने में नहीं आया।

छंद—रीतिकालीन नीतिकवियों ने मुख्यत दोहा, सोरठा, कवित्त, सवैया, छप्पय, और कुंडलिया छंदो का प्रयोग किया है। चौपाई, चौबोला, त्रिभगी, मालिनी, ढाल, पद्धरि आदि छंदों का भी कही कही प्रयोग दिखाई देता है। अधिकतर प्रयोग मात्रिक छंदो का ही किया गया है, परंतु रघुराम ने मालिनी वर्णवृत्त भी प्रयुक्त किया है। कई कवियों ने एक एक कृति मे अनेक छंदो का व्यवहार किया है तो कई ने एक कृति में एक ही छद का। जैसे, धर्मसिह की छप्पय बावनी, मे केवल छप्पय छंद का प्रयोग मिलता है तो रघुरामकृत 'सभासार नाटिक' मे अनेक छंदो का। इसके अतिरिक्त कई कृतियो के नाम से छंदो मे भ्रम की भी संभावना है क्योकि देशकाल के भेद के कारण छंद नाम भी परिवर्तित हो चुके हैं। उदाहरणार्थ, लक्ष्मीवल्लभ उपाध्याय तथा जिनहर्ष (जसराज) की 'कवित्त बावनी' में छप्पय का प्रयोग दिखाई देता है। पृथ्वीराज रासो मे 'छप्पय' के अर्थ में 'कवित्त' का प्रयोग सर्वविदित ही है। इसी प्रकार जिनहर्ष की 'मातृकाबावनी' मे सवैए को कवित्त तथा अनेक कवियो की रचनाओं में कवित्त को इकतीसा सवैया कहा गया है। धर्मसिह की 'कुंडलिया बावनी' मे सातवे चरण के रूप मे प्रथम चरण के कुछ शब्दों

की आवृत्ति टेक के समान की गई है। गोपाल चानक के 'कीर्तिशतक' में तुक चौबोला के चारों चरणों में न होकर दो दो चरणों में है।

अलंकार--चूँकि नीतिकाव्यों का मुख्योद्देश्य पाठकों के मन पर नैतिक अर्थों को अंकित करना होता है, इसलिये इनकी रचनाओं में अर्थालंकारों का प्रयोग अधिक दिखाई देता है। तो भी अनुप्रास, लाटानुप्रास, वीप्सा तथा यमक का व्यवहार यत्र तत्र दिखाई देता ही है। अर्थालंकारों में से दृष्टव्य तथा अन्योक्ति का प्रयोग अन्यों की अपेक्षा बहुत अधिक हुआ है क्योंकि दृष्टांत समर्थित नीति अधिक हृदयग्राही हो जाती है और अन्योक्ति व्यंग्यार्थ के विशेष चमत्कार से हृदय को तुरंत आह्लादित कर देती है। वैसे तो अनेक कृतियों में दृष्टांत तथा अन्योक्तियाँ यत्र तत्र, दिखाई देती ही हैं, परंतु भगवतीदास की 'दृष्टांतपच्चीसी', 'वृंद सतसई' और दीनदयाल की 'दृष्टांत तरंगिणी' में दृष्टांतों की तथा गणपति भारती के 'अन्योक्तिवर्णन', बाँकीदास की 'सीहछत्तीसी' और 'धवल-पच्चीसी' तथा दीनदयाल के 'कल्पद्रुम' में अन्योक्तियों की छटा देखते ही बनती है। शेष अर्थालंकारों में से उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, आवृत्ति, दीपक, निदर्शना और अर्थांतरन्यास का प्रयोग अधिक दिखाई देता है। उदाहरणार्थ कुछ पद्य प्रस्तुत है--

शब्दालंकार

नाहक गाहक बिना बलाहक ह्याँ तू बरखै।[१] (छेकानुप्रास तथा वृत्यनुप्रास)
करत प्रगट दुर्जन सदा, दोष करत उपगार।
मधुर सचिक्कण पोष तैं, करत मार ज्यौं मार।[२] (यमक)

अर्थालंकार

दक्षन के हित दक्ष सो, शठ कै शठ सों प्रीत।
अलि अंबुज पै देखिये, दर्दुर कर्दम मीत।।[३] (दृष्टांत)
हाथल वल निरभै हियौ, सर भर न को समत्थ।
सीह अकेला संचरै, सीहाँ केहा सत्थ।।[४]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि रीतिकालीन नीतिकाव्य नीरस पद्यसंग्रह मात्र नहीं, साहित्यिकता की दृष्टि से भी अपना विशेष महत्व रखता है। जहाँ वह अपनी बहुविध उदात्त शिक्षाओं द्वारा अध्येताओं का पथप्रदर्शन करता है वहाँ अनेक रसों, भावों, गुणों, छंदों, अलंकारों, शैलियों आदि के वैविध्य से भी पाठकों के चित्त को आह्लादित भी कर देता है।

---

१. दीनदयाल गिरि ग्रंथावली, पृ० २०२।
२. हेमराज उपदेशशतक, दोहा ४३।
३. भगवतीदास, दृष्टांतपच्चीसी, पृ० २६१।
४. बाँकीदास ग्रंथावली, १, सीहछत्तीसी, पृ० ६।

अंत में उसकी प्रमुख विशेषताओं को संक्षेप में यों परिगणित कर सकते हैं—

१. नीति के जितने कवि इस काल में प्रस्फुटित हुए उतने न आदिकाल में और न भक्ति-काल में।

२. नीतिविषयक जितनी मौलिक, अनूदित, संग्रहात्मक तथा स्फुट कृतियाँ इस काल में प्रस्तुत की गईं, उतनी किसी अन्य काल में नहीं।

३. इतर-प्राणि-विषयक नीति को छोड़कर सब प्रकार की नीति पर स्वतंत्र काव्यों का प्रणयन किया गया।

४. शारीरिक स्वास्थ्य, रोगनिवारण आदि पर यथेष्ट बल दिया गया तथा वाग्विषयक नीति पर स्वतंत्र काव्यों की रचना की गई।

५. वीरता, कायरता, कीर्ति, प्रेम और संयम पर अनेक काव्यों का निर्माण किया गया।

६. पारिवारिक जीवन उपेक्ष्य नहीं रहा, काम्य बन गया।

७. स्वामी, सेवक, सुकवि, कुकवि पर अत्यधिक रचना हुई।

८. दुष्टजन उपेक्ष्य और क्षम्य नहीं रहे, ताड़न और अभिशापों के पात्र बने।

९. प्रायः सभी कवियों का जन्ममूलक वर्णव्यवस्था तथा जातपाँत में विश्वास पाया जाता है।

१०. वेश्यावृत्ति तथा कुलटात्व के विरोध में तो काव्य लिखे गए परंतु स्त्री के महत्व का परिचायक कोई स्वतंत्र काव्य दिखाई नहीं देता।

११. राजकीय नीति के विषय में मौलिक व अनूदित रचनाएँ प्रस्तुत की गईं।

१२. धन के महत्व को मुक्त कंठ से स्वीकृत किया गया परंतु अनैतिक उपायों से उसके उपार्जन का प्रायः निषेध किया गया।

१३. कृपणता की निंदा तथा वदान्यता की प्रशंसा पर कई काव्य प्रणीत हुए।

१४. मांस, सुरा, अफीम आदि मादक द्रव्यों का अराजाश्रित कवियों, विशेषतः जैन कवियों ने उग्र खंडन किया।

१५. आदर्श की अपेक्षा दृष्टि व्यावहारिकता पर अधिक केंद्रित रही। देश, काल, पात्रादि को देखकर यथायोग्य व्यवहार की शिक्षा दी गई।

१६. पुरुषार्थ के महत्व का तो पर्याप्त प्रतिपादन किया गया परंतु भाग्य को अभिभूत करने की क्षमता उसमें दिखाई नहीं देती।

१७. जैन कवियों की अपेक्षा जैनेतर कवियों ने सांसारिक सुखों को अधिक भोग्य कहा।

१८. शकुन, ज्योतिष, कलियुग आदि के प्रभाव में आस्था इस काल में भी क्षीण नहीं हुई।

१९. प्रमुख कवियों की रचनाएँ प्रायः सरस और भावपूर्ण हैं तथा उनमें हास्य, वीर और शांतरस प्रमुख है।

२०. अधिकतर रचनाएँ ब्रजी व राजस्थानी में की गईं। कुछ एक रचनाओं में गुजराती, पंजाबी, संस्कृत, फारसी आदि के भी शब्द विद्यमान हैं।

२१. यद्यपि प्रबंध और निबंध के रूप में भी काव्यरचना हुई तथापि प्राधान्य मुक्तक काव्य का ही रहा।

२२. अधिकतर रचनाएँ पच्चीसी, बत्तीसी आदि के रूप में की गईं परतु छंदसंख्या नामानुसारिणी नही है।

२३. अन्य छंदो की अपेक्षा दोहा, सोरठा, कवित्त, सवैया, छप्पय और कुंडलिया छंदों का प्रयोग बहुत अधिक किया गया।

२४. अन्य अलंकारो का प्रयोग तो हुआ ही, दृष्टांत और अन्योक्ति पर तो स्वतंत्र काव्यों की भी रचना हुई।

२५. सप्तवार तथा पंद्रह तिथि शैलियों के अतिरिक्त प्रायः पूर्ववर्ती सभी शैलियाँ व्यवहृत की गई। संबोधनात्मक शैली तो इसी काल में दिखाई दी।

२६. विषयों की व्यापकता और ऐहिकता की प्रधानता के कारण सामान्य जनो के लिये जितना उपयोगी रीतिकालीन नीतिकाव्य है, उतना किसी अन्य काल का नही।

परिशिष्ट

प्रमुख हस्तलिखित नीतिकाव्यों की सूची

अक्षरबत्तीसी : महेश मुनि, अभय जैन ग्रथालय, बीकानेर।
अक्षरबावनी : तेरह पंथियों का मदिर, जयपुर।
अन्योक्तिबावनी : विनय भक्ति, अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर।
अन्योक्तिवर्णन : महाकवि गणपति भारती, विद्याभूषण पुस्तकालय, जयपुर।
उपदेशबत्तीसी : जसराज (जिनहर्ष), अभय जैन ग्रथालय, बीकानेर।
उपदेशशतक : हेमराज, बधीचंद जैन का मंदिर , जयपुर।
उपदेश सत्तरी : श्रीसार, पुरातत्वमंदिर, जोधपुर।
कक्काबत्तीसी : जीवो ऋषि, पुरातत्वमदिर, जोधपुर।
कर्मशतक : गोपाल चानक, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी।
कलिचरित्र : बानकवि, अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर।
कवित्तबावनी : जसराज, पुरातत्वमंदिर, जोधपुर।
किसनबावनी : किसन, मोतीचंद खजानची का सग्रह, बीकानेर।
कीर्तिशतक : गोपाल चानक, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी।
कुंडलिया : नाथूराम, मोतीचंद खजानची का संग्रह, बीकानेर।
कुंडलिया बावनी : धर्मसिह, अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर।
केशवबावनी : अभय जैन ग्रथालय, बीकानेर।
क्षमाछत्तीसी : समय सुंदर, पुरातत्वमंदिर, जोधपुर।
गुरुसीख : देवा ब्रह्म, काले छाबड़ों का मंदिर, जयपुर।

गुरु चेला नी चड़बड़ : पुरातत्वमंदिर, जोधपुर ।
गुरुमहिमा : जगन्नाथ, अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर ।
ग्रिहसत सत सार : मुरलीदास, अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर ।
छप्पयबावनी : धर्मसिंह, अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर ।
छिनालपच्चीसी : लालचंद, अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर ।
छीहलबावनी : छीहल, लूणकरण पाडे का मंदिर, जयपुर ।
ढाल मधु बूंद : देवा ब्रह्म, काले छाबड़ों का मंदिर, जयपुर ।
दूहाबावनी : लक्ष्मीवल्लभ, अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर ।
द्विपंचासिका : क्षमाहंस, लूणकरण पांडे का मदिर, जयपुर ।
धर्मबावनी : धर्मसिंह, अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर ।
पंचेंद्री बेली : ठकरसी, वधीचंद्र का मदिर, जयपुर ।
पुण्यछत्तीसी : समय सुंदर, पुरातत्वमदिर, जोधपुर ।
पुण्यशतक : गोपाल चानक, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी ।
प्रस्नपुण्य : काले छाबड़ो का मदिर, जयपुर ।
प्रास्ताविक दोहरा : पुरातत्वमंदिर, जोधपुर ।
प्रेमरत्नाकर : देवीदास, विद्याभूषण पुस्तकालय, जयपुर ।
फुटकल पद्य : धर्मसिंह, अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर ।
बारहखड़ी : सूरत, पुरातत्वमंदिर, जोधपुर ।
बावनी . बणारस सुंदरदास, अभय जैन ग्रथालय, बीकानेर ।
मातृकाबावनी : जसराज, अभय जैन ग्रथालय, बीकानेर ।
मूरखसोलही : लालचद, अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर ।
मृत्यु-महोत्सव-पच्चीसी : प्रेमचंद, अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर ।
रंगबहत्तरी : जिनरग सूरि, अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर ।
राजनीति के कवित्त : देवीदास, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, संग्रह ।
राजनीति चंद्रक · तिलोकसिंह, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी ।
रूपगुण संवाद : लाल (?), अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर ।
वीरशतक : गोपाल चानक, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी ।
शीलबत्तीसी : अकमल, लूणकरण मदिर, जयपुर ।
संतोषछत्तीसी : समयसुंदर, पुरातत्वमंदिर, जोधपुर ।
सतबंशीसत : जानकवि, अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर ।
सत्योपदेश : उम्मेदराम विद्याभूषण पुस्तकालय, जयपुर ।
सभासार नाटिक : रघुराम, मोतीचंद खजानची संग्रह, बीकानेर ।

सवैयाबावनी : लालचंद, अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर।

सवैयाबावनी : लक्ष्मीवल्लभ, अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर।

सास बहू का झगड़ा : देवाब्रह्म, ठोलियों का मंदिर, जयपुर।

सिछ्यासार : माथूराम (नाथिया), मोतीचंद खजानची संग्रह, बीकानेर।

हितशिक्षा द्वात्रिंसिका : क्षमाकल्याण, अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर।

षष्ठ खंड

विनोद काव्य

प्रथम अध्याय

विनोदकाव्य का स्वरूप और उसके भेद

विनोदकाव्य के स्वरूप एवं उसके विविध भेदों को समझने के लिये यह आवश्यक है कि हम कुछ विस्तार के साथ उन 'माध्यमों' पर दृष्टि डालें जो विनोदकाव्य की सृष्टि के लिये अनिवार्य हैं।

विनोदकाव्य : स्वरूप एवं भेद

मानव स्वभावतः हास-परिहास-प्रिय होता है। प्रेम, क्रोध, शोक, उत्साह भय आदि के समान ही हास का भाव स्थायी रूप से मानवमन की संपत्ति है। सुखात्मक होने के कारण 'हास' का मानवजीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। इस सुखात्मक प्रतीति के लिये मानवमन, उन 'माध्यमों' या 'हेतुओं' की खोज करता है जो उसमें उस हासभाव को जागृत कर सके। विकृत वेशभूषा, असामान्य व्यवहार, चित्तविकार, अनूठी उक्तियाँ, वाणीविलास, अनोखा क्रियाकलाप, अज्ञता, व्यंग वचन, पर-दोष-दर्शन आदि कुछ ऐसे माध्यम हैं जो हास के हेतु बनते हैं और उनसे जनसाधारण प्रमुदित होता है। इन माध्यमों को आलंबन रूप से ग्रहण करते हुए और उनकी उद्दीपनमयी चेष्टाओं को सामने रखते हुए, विनोदकाव्य जिस रस की सृष्टि करता है, उसे हास्यरस कहा जाता है। हास्य के विभिन्न स्वरूप ही विविध भेदो को जन्म देते हैं। अतः विनोद-काव्य के स्वरूप एवं विविध भेदो को समझने के लिये हास्यरस विषयक विभिन्न दृष्टिकोणों पर विचार करना आवश्यक हो जाता है।

हास्यरस

हास्यरस का स्थान, नवरसों में सर्वाधिक सुखात्मक रस के रूप में है। इसका स्थायी भाव 'हास' है। साहित्यदर्पणकार के अनुसार वाणी, रूप आदि हास्यरस के विकारों को देखकर चित्त का विकसित होना 'हास' कहलाता है। भरतमुनि के कथनानुसार दूसरों की चेष्टा के अनुकरण से 'हास' उत्पन्न होता है और वे हास्यरस को शृंगार रस की अनुकृति मानते हैं। शृंगार से उत्पन्न होने के बाद भी वर्ण एवं देवता की दृष्टि से दोनों में भेद स्थापित किया गया है। शृंगार का वर्ण 'श्याम' एवं देवता 'विष्णु' हैं जबकि हास्य का वर्ण 'सित्' एवं देवता 'प्रमथ' अर्थात् शिवगण हैं।

हास्यरस के विभावांतर्गत आचार व्यवहार, केशविन्यास, नाम, अर्थादि की विकृति है जिसमें विकृत वेषालंकार, धाष्टर्य, लौल्य, कलह, असत्प्रलाप, व्यंगदर्शन, दोषोदाहरण इत्यादि की गणना की गई है। ओष्ठदशन, नासा-कपोल-स्पंदन, आँखों के सिकुड़ने,

स्वेद, पार्श्वग्रहण आदि अनुभावों के साथ ही आलस्य, अवहित्थ, तंद्रा, निद्रा, स्वप्न, प्रबोध, असूया जिसमें ईर्ष्या, निंदा मिश्रित हो, आदि हास्य के व्यभिचारी भाव माने गए हैं।

साहचर्यभाव से हास्य को शृंगार, वीर, अद्भुत एवं सीमाविशेष तक शांतरस का पोषक भी माना गया है। हास्य को वात्सल्य का भी पोषक रस माना जा सकता है।

हास्य की उत्पत्ति

हास्यरस की उत्पत्ति के मूल कारणों पर विचार करते समय, हमें उत्पत्ति विषयक मतभेद मिलते हैं। भारतीय आचार्य जहाँ हास्य को 'राग' से उत्पन्न मानते हैं वहीं आधुनिक मनोवैज्ञानिको ने उसे 'द्वेष' से उत्पन्न माना है। भरतमुनि ने जहाँ इसकी उत्पत्ति शृंगार से उसकी अनुकृति द्वारा मानी है वहीं शारदातनय ने, वासुकि के मत का प्रतिपादन करते हुए कहा है कि 'शृंगार संबंधी रति और प्रीति में से प्रीति द्वारा होनेवाला चित्तविकार ही हास का साधन है।' अभिनवगुप्त ने सभी रसो के रसाभास से हास्य की उत्पत्ति मानी है। विकृति के साथ ही अनौचित्य को भी हास्य का उत्पादक कारण बताया गया है। अनौचित्य की सीमा विकृत वेशभूषा तक ही सीमित नहीं रहती, उसका सामाजिक धरातल भी होता है। अतः अभिनवगुप्त के आभाससिद्धांत के अनुसार प्रतिपादित अनौचित्य हास्य को अनुकरण या विकृति से आगे बढ़ाकर सामाजिकता भी प्रदान करता है।

आलंकारिको ने सामान्यत. हास्य को अलंकार अथवा गुण के अंतर्गत समेट लिया है। केवल रुद्रट ने विकृतिसिद्धांत के साथ अधोगतिसिद्धांत को अपनाकर हास्य को सामाजिक परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयत्न किया है। राजशेखर ने हास्य को वक्रोक्ति के अंतर्गत रखकर, इसका संबंध काकु, श्लेष और व्यंजना से स्थापित किया।

पाश्चात्य दृष्टिकोण भी हास्य की उत्पत्ति के विषय में मतभेद रखता है। यूनानी विचारकों ने हास्य का संबंध निम्न अथवा हीन कोटि के लोगो से जोड़ा है और वे कुरूपता अथवा दोष से हास्य की उत्पत्ति मानते है। टॉमस हॉब्स ने हीनावस्था से हास्य की उद्भावना व्यक्त की है किंतु गर्वभावना के पोषण द्वारा। दूसरों की हीनावस्था से व्यक्ति में जो गर्वभावनातोष उत्पन्न होता है, वही हास्य को उत्पन्न करता है। दूसरी ओर अलेक्जैंडर बेन गर्वित व्यक्ति की अधोगति को हास्य की उत्पत्ति का कारण मानते हैं। कांट ने विफल आशा को हास्य की उत्पत्ति का कारण माना है। हेनरी बर्गसाँ चेतन की यंत्रचालित अथवा जड़वत् क्रियाओ के कारण हास्य की उत्पत्ति मानते है। बर्गसाँ ने हास्य की उत्पत्ति के विषय में तीन बातों पर विशेष बल दिया है—प्रथम यह कि हास्य का आलंबन समाजप्रिय न हो। द्वितीय यह कि आलंबन अपनी स्थिति से अपरिचित हो। तृतीय यह कि आलंबन मे यांत्रिकता हो।

हास्य के उत्पत्तिविषयक भारतीय या पाश्चात्य दृष्टिकोणविशेष अपने आपमें

ही पूर्ण नहीं है। दृष्टिकोणविशेष ही उत्पत्ति का एकमात्र कारण नही हो सकता। हास्य की उत्पत्ति में प्रसंग तथा परिस्थिति का बहुत बड़ा हाथ होता है। असंगति एवं अनौचित्य को वैसे मूलाधार माना जा सकता है। प्रसंगानुकूल एवं परिस्थितिजन्य असंगति अथवा अनौचित्य ही हास्य की उत्पत्ति मे सहायक होते हैं। किसी का असंगत आचरण प्रसंग या परिस्थितिविशेष में हास्य उत्पन्न कर सकता है पर किसी अन्य प्रसंग या परिस्थिति में क्रोध का कारण भी बन सकता है। अनौचित्य, प्रत्येक प्रसग या परिस्थिति में हास्य का उत्पादक नहीं होता। अतः वातावरण के साथ ही हमारी मनःस्थिति, सामाजिकता, व्यावहारिकता एव देशकाल का विचार भी हास्य की उत्पत्ति में विशेष महत्व रखता है।

भारतीय एवं पाश्चात्य मान्यताओ में हास्य के अनेक भेद किए गए हैं। भारतीय हास्यभेद के दो प्रकार है—प्रथम वह जो आश्रय को आधार मानकर किए गए हैं और द्वितीय वे जो आश्रय की शारीरिक विकृति से संबंध रखते हैं। दूसरे शब्दो मे, हम इन्हें व्यक्ति या आश्रयपरक और शारीरिक मान सकते है।

आश्रयपरक भेद—भरत के अनुसार ये दो प्रकार के होते है—आत्मस्थ एवं परस्थ। जब व्यक्ति स्वयं हँसता है तो आत्मस्थ हास्य और दूसरो को हँसाता है तो परस्थ हास्य होता है। रसगंगाधरकार के मतानुसार हास्य विषय को देखने से उत्पन्न हास्य आत्मस्थ और दूसरों को हँसता देखकर हँसने से परस्थ हास्य की सिद्धि होती है। अन्य भारतीय विद्वानों ने इन्हें ही 'स्वसमुत्थ' और 'परसमुत्थ' की संज्ञा प्रदान की है।

शारीरिक भेद—भाव के विकासक्रम को आधार मानकर भरत ने हास्य के छह भेद किए हैं और उन्हें प्रकृति के अनुसार उत्तम, मध्यम तथा अधम, तीन श्रेणियों में निम्न क्रम से रखा है—

उत्तम—इसके अंतर्गत स्मित और हसित आते है। स्मित हास्य मे कपोलों के निचले भाग पर हँसी की हलकी छाया रहती है, कटाक्षसौष्ठव समन्वित रहते है और दाँत झलक नही पाते। हसित में मुख नेत्र अधिक उत्फुल्ल हो जाते है, कपोलो पर हँसी झलकती है और दाँत भी कुछ कुछ दिखाई पड़ने लगते है।

मध्यम—इसके अंतर्गत विहसित एवं उपहसित का स्थान है। विहसित का लक्षण है आँखो और कपोलों का आकुंचित होना, मधुर स्वर के साथ समयानुसार मुख पर लालिमा का झलक जाना। उपहसित मे नाक फूल जाती है, दृष्टि मे कुटिलता आ जाती है और कंधे तथा सिर सकुचित हो जाते है।

अधम—अपहसित एवं अतिहसित इस कोटि में आते हैं। अपहसित की विशेषता है असमय पर हँसना, हँसते समय आँखो मे आँसुओ का आना और कंधे तथा सिर का हिलने लगना। अतिहसित का लक्षण है नेत्रो मे तीव्रता से आँसू आना, उद्धत चिल्लाहट का स्वर होना तथा हाथों को बगल से दबा लेना।

उक्त भेद अनुभावाश्रित होने के कारण शारीरिक अधिक हैं, मानसिक कम।

किंतु मनोभावों के अनुरूप व्यक्त होने के कारण इनमें आंतरिक मानसिक दशा झलक जाती है।

भरतमुनि द्वारा निरूपित इन छह भेदों को रुद्रट ने चार और भोज ने केवल तीन तक ही सीमित कर दिया। हिंदी आचार्यों में केशवदास ने चार भेदों की चर्चा की है जो लक्षणानुसार इस प्रकार है :—

मंदहास— बिकसहिं नयन कपोल कछु, दसन दसन के बास।
मंदहास तासो कहै कोबिद केशवदास॥

कलहास— जहँ सुनिये कल ध्वनि कछू कोमल विमल विलास।
केसव तन मन मोहिये, बरनहु कबि 'कलहास'॥

अतिहास— जहाँ हँसहि निरसंक ह्वै, प्रगटहि सुख मुख बास।
आधे आधे बरब पर उपजि परत 'अतिहास'॥

परिहास— जहँ परिजन सब हँसि उठें तजि दंपति की कानि।
केसव कौनहुँ बुद्धिबल सो 'परिहास' बखानि॥

केशवदास के प्रथम तीन भेद तो भरत के भेदों के अनुरूप हैं परंतु चतुर्थ भेद स्थिति-सापेक्ष अवस्था है।

पाश्चात्य भेद—प्रधानतः गुण एवं उद्देश्य को आधार मानकर पाश्चात्य देशों में हास्य के जो भेद प्रस्तुत किए गए है वे इस प्रकार हैं :—

विट—यह प्रायः बौद्धिक हास्य से संबंध रखता है। किसी परिचित शब्द के अर्थ को अनपेक्षित रूप में प्रयुक्त कर भिन्न अर्थ की व्यंजना 'विट' का कार्य है।

ह्यूमर—यह एक ऐसी कल्पनाशक्ति है जिसकी सहायता से विचार या कल्पना का रूप असंबद्ध, विकृत अथवा इतना अद्भुत हो कि वह हास्य की सृष्टि कर सके।

जोक—यह हास का हलका रूप है जिसे परिहास कह सकते हैं।

आइरॉनी—यह वक्रोक्ति या विद्रूपप्रधान होती है। इसमें वाग्भंगी या रचना-भंगी का विशेष महत्व है।

जेस्ट—इसमें उपहासभाव होता है।

सारकाज्म—इसमें व्यंग्योक्ति या निंदा की प्रधानता होती है।

सैटायर—इसमें व्यंग सोद्देश्य होता है।

कैरीकेचर—इसमें अतिरंजना द्वारा हास्य उत्पन्न किया जाता है।

पैरोडी—इसमें उदात्त मनोभावों को अनुदात्त संदर्भ से जोड़कर हास्य उत्पन्न किया जाता है।

उक्त भेदों के अतिरिक्त 'फन', 'सारडॉनिक स्माइल' आदि भी हास्य के अंतर्गत आते हैं।

हास्य के भारतीय एवं पाश्चात्य भेदों पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार करते समय यह भ्रम उपस्थित हो सकता है कि हास्य के भारतीय भेद बहुत ही सीमित हैं और पाश्चात्य भेदों के समान उनमें व्यापकता नही है। परंतु हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि भारतीय हास्यभेद नाटयशास्त्रीय दृष्टिकोण से प्रस्तुत किए गए हैं। अनुभाव विभाव पर आधारित इन भेदों के अतिरिक्त व्यवहार रूप में हमारे यहाँ हास्य के जो भेद प्रयुक्त होते रहे हैं, वे पाश्चात्य भेदों की अनेक विशिष्टताओं से परिपूरित हैं। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से हम उन्हें अभिव्यक्तिचातुर्य या शैलीप्रधान भेद मान सकते हैं। शैलीगत विशेषता या प्रभाव की दृष्टि से हम इनके निम्न भेद कर सकते हैं।

शुद्ध हास्य—जिसे सुनकर या पढ़कर केवल आनंद मिलता हो, चित्त में उल्लास की तरंग जगती हो या मन खिल जाता हो, वह शुद्ध हास्य होता है। शुद्ध हास्य में हास्यकर्ता और हास्य का लक्ष्य दोनों ही प्रसन्न रहते हैं। 'रामचरितमानस' का शिव की बरातवाला प्रसंग इसी प्रकार का है। जैसे—

"वर लायक बरात नहि भाई। हँसी करैहो पर पुर जाई।"

यहाँ 'हरि के व्यंग वचन' भी विनोदात्मक तरलता लिए हुए हैं और हास्य के लक्ष्य शिव भी इसे विनोदपूर्वक ही ग्रहण करते हैं।

व्यंग—इसमें लक्ष्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ की प्रधानता होती है। वचनविदग्धता, वक्रोक्ति या श्लेष के माध्यम मे हास्य की सृष्टि करना इसका कार्य है। भिन्न अर्थ की व्यंजना इसके मूल मे विद्यमान होती है। भ्रमरगीत वचनविदग्धता से परिपूर्ण हैं। इसी प्रकार वक्रोक्ति में व्यंग व्यंजना कभी तो छिपे छिपे होती है और कभी प्रकट रूप में। कभी व्यग अत्यंत घातक भी हो जाता है। ऐसी स्थिति में क्रमश: उदासीन हास्य, कठोर-हास्य और निर्दय हास्य की सृष्टि होती है। जैसे—

"बहु धनुहीं तोरेउँ लरिकाईं। कबहुँ न अस रिसि कीन्ह गुसाईं॥"

अथवा

"टूट चाप नहि जुरय रिसाने। बैठिय होइहैं पायँ पिराने।"

अथवा

जरहिं पतंग मोह बस भार बहहिं खर बृंद।
ते नहिं सूर कहावहिं समुझि देख मतिमंद॥ (रामचरितमानस)

इसी प्रकार श्लेष के माध्यम से भी व्यंग की सृष्टि होती है। श्लेषयुक्त व्यंग कहीं तो सौहार्दपूर्ण ढंग से व्यक्त किया जाता है और कहीं चुटीला होता है। जैसे—

चिरजीवौ जोरी जुरै क्यो न सनेह गँभीर।
को घटि ये वृषभानुजा वे हलधर के बीर॥

या

नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं बिकास इहि काल।
अली कली ही सों बँध्यो, आगे कौन हवाल॥ (बिहारीसतसई)

भँड़ौआ--इसका शाब्दिक अर्थ है भाँड़ों के वे गीत जो सामान्यतः सभ्य सम में संमान की दृष्टि से नही देखे जाते या इस प्रकार का हास्य जो निम्न कोटि का या अश्ल होता है। शैलीगत दृष्टि से भँड़ौआ व्यंगकाव्य का ही एक रूप है जिसमें व्यंग बहुत पैना या कटु हो उठता है। कही कही औचित्य की सीमा का भी उल्लंघन हुआ है प सभी भँडौआ निम्न कोटि के या अश्लील हों, ऐसा नही कहा जा सकता। अनेक छंदों तो सामाजिक प्रवृत्तियो पर बड़े ही सटीक व्यग हुए है। एक उदाहरण लीजिए--

उर्द के पचाइबे को हीग अरु सौंठ जैसे,
केरा के पचाइबे को घिव निरधार है।
गोरस पचाइबे को सरसो प्रबल दंड,
आम के पचाइबो को नीबू को अचार है।
'श्रीपति' कहत परधन के पचाइबे को,
कानन छुआय हाथ करिबो नकार है।
आजु के जमाने बीच राजा राव सबै जानें,
रीभ के पचाइबे को वाह वा डकार है॥

(विचित्रोपदेश, द्वितीय खंड, पृ० १५

संवादकाव्य--इसके अंतर्गत सवादों के माध्यम से हास्य की सृष्टि की जाती है संवादों मे नोक झोक या वचनचातुरी होती है जिसे सुनकर या पढ़कर मन 'खिल' जाता है और 'हास' जागृत होता है। यथा--

राम को काम कहा? रिपु जीतहि, कौन कबै रिपु जीत्यौ कहाँ?
बालि बली, छल सों, भृगुनंदन गर्व हर्यौ, द्विज दीन महा।
दीन सु क्यो, छिति छत्र हत्यौ, बिन प्रानन हैहय राज कियो।
हैहय कौन? वहै बिसर्यौ जिन खेलत ही तोहि बाँधि लियो॥

(रामचंद्रिका)

यहाँ संवादसजीवता एवं वचनवक्रता दर्शनीय है। इसी प्रकार अर्थभेद द्वारा भी संवादकाव्य में सजीवता दृष्टिगोचर होती है। जैसे--

हैं री लाल तेरे? सखी, ऐसी निधि पाई कहाँ?
हैं री खगयान? कह्यो, हौ तो नहीं पाले है।
हैं री गिरधारी? ह्वैहैं रामदल माँहि कहूँ,
हैं री घनश्याम? ह्वैहैं, सीत सरसाले हैं।
है री सखी कृष्णचंद्र? चंद्र कहूँ कृष्ण होत?
तब हँसि राधे कही, मोर पच्छ वारे हैं?
श्याम को दुराय चंद्रावलि बहराय बोली,
मेरे कैसे आय हैं जो तेरे पच्छवारे हैं?॥

(कवितावकौमुदी, पृ० ८८)

अन्योक्ति—सोद्देश्य व्यंग के कारण अन्योक्ति को 'मैटाफर' की कोटि में रखा जा सकता है। नीतिकथनों और उपदेशात्मकता की प्रधानता होने के कारण सभी अन्योक्तियाँ 'हास' उत्पन्न करने में असमर्थ होती हैं। परंतु कहीं कहीं अन्योक्ति के माध्यम से, व्यंग की प्रखरता के कारण, हास्य की सृष्टि हो सकती है। उदाहरणार्थ—

बायस ! तू पिक मध्य ह्वै कहा करै अभिमान।
ह्वैहै बंस सुभाव की बोलत ही पहिचान॥
बोलत ही पहिचान कान कटु तेरी बानी।
वे पंचम धुनि मंजु करै जिहि कबिन बखानी॥
बरनै दीनदयाल कोऊ जौ परसै पायस।
तऊ तजै न मलीन मलहि खाये बिन बायस॥
(दीनदयाल गिरि ग्रंथावली, पृ० २२७)

निष्कर्ष

यहाँ हमने कुछ शैलीप्रधान हास्यभेदों की चर्चा की है। विनोदकाव्य की सीमा इन्हीं भेदों तक सीमित नहीं है। शुद्ध हास्य हो या व्यंग, परिहास हो या उपालंभ, इन सभी की सफलता या असफलता कविकौशल पर निर्भर रहती है। मानवीय मनोभावों एवं मनोविकारों तक जिस कवि की जितनी गहरी पहुँच होती है, प्रसंगानुकूल भावाभिव्यक्ति के साथ ही विनोदात्मक प्रवृत्ति की जितनी पहचान होती है विनोदकाव्य उतना ही श्रेष्ठ एवं स्वाभाविक होता है। निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि विनोदकाव्य की सफलता शास्त्रीय ज्ञान से ही संभव नहीं है। माध्यम केवल ढाँचा खड़ा करते हैं, माध्यमों का सही उपयोग करने की शक्ति ही उनमें प्राणों का संचरण करती है। यह शक्ति प्राप्त होती है 'बहुज्ञता' से और यह 'बहुज्ञता' प्राप्त होती है अनुभव से, अभ्यास से, जीवन और जगत् को निकट से खुली आँखों से देखने से। विनोदकाव्य का स्वरूपनिर्धारण करते समय हमें इस सत्य को सामने रखकर चलना होगा। भेदों के आधार पर किसी काव्यधारा का निर्णय करना ठीक वैसा ही है, जैसे लहरें गिनकर सरोवर की गहराई का निर्णय करना। अस्तु।

—:०:—

द्वितीय अध्याय

विनोदकाव्य के कवि और उनकी रचनाएँ

सेनापति--ये अनूपशहर, जिला बुलंदशहर के रहनेवाले थे। इनके पिता का नाम गंगाधर, पितामह का परशुराम एवं गुरु का नाम हीरामणि था। इनका जन्मकाल संवत् १६४६ के आसपास माना जाता है। मृत्युतिथि का ठीक से पता नहीं चल पाया है। सेनापति द्वारा रचित दो ग्रंथों---काव्यकल्पद्रुम एवं कवित्तरत्नाकर--में से प्रथम का पता नहीं चलता। द्वितीय ग्रंथ का प्रणयन सं० १७०६ में हुआ। यह समय रीतिकाल का प्रारंभ ही है। कवित्तरत्नाकर में 'विनोदकाव्य' विषयक सामग्री नहीं के बराबर है। परंतु बँधी रुढ़ि के अंतर्गत हास के आलंबन 'सूम' की चर्चा अवश्य दो कवित्तों में हुई है। अतः 'कवित्तरत्नाकर' के ये दोनों ही कवित्त भाषासाहित्य के रूढ आलंबन--सूम की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं।

नाहीं नाहीं करै थोरे माँगे सब दैन कहै,
मंगन कौ देखि पट देत बार बार है।
जिनकौ मिलत भली प्रापति की घटी होति,
सदा सब जन मन भाये निरधार है।
भोगी ह्वै रहत बिलसत अवनी के मध्य,
कन कन जोरे दान पाठ परिवार है।
सेनापति वचन की रचना बिचारौ जामैं,
दाता अरु सूम दोऊ कीने इकसार है॥

सुंदरदास---(संवत् १६५३ से १७४६) यद्यपि सुंदरदास ने प्रधानतः निर्गुण-धारा की ज्ञानाश्रयी शाखा की विचारधारा के अनुरूप ही अपने काव्य का सृजन किया है, परंतु संत के साथ साथ कवि होने के नाते उनकी काव्यदृष्टि समाज की रीतिनीति और व्यवहारादि पर भी गई है। भिन्न भिन्न प्रदेशों के आचार पर इनकी बड़ी ही विनोद-पूर्ण उक्तियाँ हैं। व्यंगात्मकता भी यत्र तत्र मिलती है। विनोदकाव्य की दृष्टि से उनकी रचना के कुछ नमूने नीचे दिए जाते है--

किधौं पेट चूल्हो कीधौ भाठि किधौ भाड़ आहि,
जोइ कछु झोंकिये सु सब जारि जातु है।
किधौ पेट थल किधौ वापि किधौ सागर है,
जेतो जल परै तेतो सकल समातु है।

किधौं पेट दैत किधौं भूत प्रेत राछस है
खाउँ खाउँ करै कछु नेक न अघात है।
सुंदर कहत प्रभु कौन पाप लायो पेट
जब ही जनम भयो तब ही को खातु है।।

गेह तज्यो पुनि नेह तज्यो, पुनि खेह लगाइ के देह सँवारी।
मेघ सहै सिर सीत सहै तन धूप समै जु पँचागिनी बारी।।
भूख सहै रहि रूख तरे पर सुंदरदास सहै दुख भारी।
डासन छाँडि कै काँसन ऊपर आसन मारि पै आस न मारी।।

बिहारी—विनोदकाव्य के अंतर्गत बिहारी के वे दोहे आते हैं जो हमारे सामाजिक जीवन एवं व्यवहार पर करारा व्यंग करते है। बिहारी की ये व्यंगोक्तियाँ कही श्लेष के माध्यम से और कही अन्योक्ति के माध्यम से व्यक्त हुई हैं। कुछ दोहे लीजिए—

ह्वै छिगुनी पहुँचौ गिलत अति दीनता दिखाइ।
बलि बावन कौ ब्यौंतु सुनि को बलि तुम्है पत्याइ।।
परतिय दोषु पुरान सुनि, हँसि मुलकी सुख दानि।
कस करि राखी मिसर हू, मुँह आई मुसुकानि।।
बहु धन लै, अहसानु कै, पारौ देत सराहि।
बैद बधू हँसि भेद सौं, रही नाह मुँह चाहि।।
बहकि न इहि बहिना पुली जब तब बीर बिनास।
बचै न बड़ी सबील हूँ चील घोसुवा माँस।।
चले जाहु ह्याँ को करै, हाथिन को व्योपार।
नहिं जानत यहि पुर बसै, धोबी औंड़ कुम्हार।।
कर ले सूँघि सराहि कै, रहै सबै गहि मौन।
गंधी गंध गुलाब को, गँवई गाहक कौन।।

हरिनाथ—ये नरहरि के पुत्र थे। इनके जीवन के विषय में विशेष विवरण प्राप्त नहीं हुआ है। 'खोज रिपोर्ट' के अनुसार संभवत: ये जहाँगीर के समकालीन थे। 'कविताकौमुदी' के जीवनवृत्त के अनुसार यह ज्ञात होता है कि शाहजहाँ की इनपर बड़ी कृपा थी और शाहजहाँ के अतिरिक्त अन्य राजा महाराजाओं के यहाँ भी इनका अच्छा मान संमान था। ये स० १७६२ के पूर्व वर्तमान थे। 'विनोदकाव्य' की दृष्टि से इनका 'चिड़ीखाने' का वर्णन महत्वपूर्ण है—

बाजपेयी बाज सम पाँडे पच्छिराज सम,
हंस से त्रिवेदी और सोहैं बड़े गाथ के।
कुही सम सुकुल मयूर से तिवारी भारी,
जुर्रा सम मिसिर नवैया नहीं माथ के।

नीलकंठ दीक्षित अवस्थी हैं चकोर चारु
चक्रवाक दुबे गुरु सुख शुभ साथ के।
येते द्विज जाने रंग रंग के मैं आने,
देस देस में बखाने चिरीखाने हरिनाथ के ॥१॥

गोपालचंद्र मिश्र—इनका जन्म संवत् १६६० के आसपास माना जाता है। इनके पिता का नाम गंगाराम और पुत्र का माखनचंद्र था जो स्वयं एक अच्छे कवि हुए। छत्तीसगढ़ की पुरानी राजधानी रतनपुर के हैहयवंशी राजा राजसिंह के दरबार मे गोपालचंद्र का अच्छा मान था। कहा जाता है, राजा ने इन्हे अपना दीवान बनाया था। सं० १७४६ मे राजा के इच्छानुसार इन्होने 'खूब तमाशा' की रचना की थी। खूब तमाशा के अतिरिक्त इन्होंने जैमिनीअश्वमेध, सुदामाचरित, भक्तिचितामणि, रामप्रताप एवं छंदविलास नाभक ग्रथों की भी रचना की। मनोविनोद की दृष्टि से इनकी सुख-दु.ख-विषयक रचनाएँ महत्वपूर्ण हैं। इनकी कविता के कुछ नमूने इस प्रकार हैं :—

पानी लगि जात बहु फूलि जात गात पुनि
पेट चलि जात कछु खाइ जात जबहूँ।
जादू करि करिकै संभोग सुख काज पसु
पच्छी करि राखै नारि नरन को अबहूँ।
बाह्मन बनिक मीन मांस मधु खात तेल
हरद लगाय न्हात नागी नर सबहूँ।
फाँसि देकै हाल मारि डारै ठग जाल यातें
जैये न 'गुपाल' दिसि पूरब की कबहूँ ॥

घोंटूं लौं उघारी निरलज्ज रहैं नारी
माँस मदिरा अहारी द्विज होईं अनाचारी है।
सुकवि 'गुपाल' प्याज लहसुन खात
बहु लूटैं ठग चोर प्रजा रहै न सुखारी हैं।
लोग निरहेत भानिजे को ब्याहि बेटी देत
रीति बिपरीति सब देखन में न्यारी है।
बहुत अगारी होति बड़ी बड़ी क्वारी
दिसि दक्षिण मझारी जात होत दुख भारी है ॥

बेनी—इस नाम के तीन कवियों की चर्चा होती चली आई है। एक बेनी असनी के बंदीजन थे और दूसरे बेनी बैंती, जिला रायबरेली के। तीसरे 'बेनी प्रवीन' के नाम से प्रख्यात रहने के कारण अलग रहे; परंतु प्रथम दोनों बेनी कवियों की रचनाएँ इतनी घुल मिल गई हैं कि यह निर्णय करना प्राय: कठिन है कि कौन सी कविता असनीवाले बेनी की है और कौन सी बैंतीवाले बेनी की। पं० रामनरेश त्रिपाठी के मतानुसार हास्यविषयक

रचनाएँ असनीवाले बेनी की हैं जबकि आचार्य रामचंद्र शुक्ल इन्हें दूसरे बेनी की बताते हैं। बेनी के भँड़ौआ अत्यंत प्रसिद्ध हैं। यहाँ कुछ नमूने दिए जा रहे हैं :—

आध पाव तेल में तयारी भई रोशनी की,
आध पाव रूई में पोशाक भई बर की।
आध पाव छाले को गिनौराँ दियो भाइन को
माँगि माँगि लायो है पराई चीज घर की।
आधी आधी जोरि बेनी कवि की बिदाई कीनी,
ब्याहि आयो जबतें न बोले बात थिरकी।
देखि देखि कागद तबीअत सुभारी भई
सादी का भई बरबादी भई घर की॥

संभु नैन जाल औ फनी को फूतकार कहा
जागे आगे महाकाल दौरत हरौली तें।
सातों चिरजीवी पुनि मारकंडे लोमस लो
देख कंपमान होत खोले जब झोली तें।
गरल अनल औ प्रलै को दावानल मल
बेनी कवि छेदि लेत गिरत हथोली तें।
बचन न पावे धनवंतरि जो आवें
हरगोविद बचावै हरगोविद की गोली तें॥

अली मुहिब खाँ 'प्रीतम'—ये आगरा निवासी थे। संवत् १७८७ में इन्होंने 'खटमल बाईसी' की रचना की। शिष्ट हास्य एवं नवीन आलंबन की दृष्टि से इस रचना का बड़ा ही साहित्यिक महत्व है। उपहासकाव्य की दृष्टि से भी 'खटमल बाईसी' एक विशिष्ट रचना है। नमूने के कुछ कवित्त देखिए—

एते रगवारे सग जिनके अपार अरु
निसही के होत देस देसन को धाइये।
इनके सरन नित बसिबो परत अरु
इनकी कृपा बिन न सुख नींद पाइये॥
भजन कै कारन कै निकारन है चोरन के,
प्रीतम कहत इन्हैं नित चित लाइये।
राह की कुसल जो पथिक चाहै आपनो तो,
घर ते निकस खटमल को मनाइये॥

कोऊ कवि कहै भुवमंडल की झाँई यह
ताकी कालिमा है बात ग्रंथनि यौं चली है।
कोऊ कहत जंबू दीप जामुन को तरु एक
ताकी परछाहीं यह अबलौं न हली है॥

जैसी जैसी मति जाकी त्योंही त्यों कहत पर
प्रीतम के मन मानी यह बात भली है।
ऊँचो मुख करि दीनी खटमल फूंक कहूँ,
मेरे जान याते छाती निसिपती की जली है ।।

श्रीपति—यद्यपि श्रीपति 'विनोदकाव्य' के रचयिता की कोटि में नही आते तथापि इनकी कविता में हास्य के कुछ रूढ़ आलंबन यत्र तत्र दृष्टिगोचर हो जाते हैं। साथ ही व्यंग एवं अन्योक्ति के माध्यम द्वारा इनकी कविता में कुछ ऐसे तत्व विद्यमान हैं जिन्हें सीमाविशेष तक विनोदकाव्य के अतर्गत उदाहरणार्थ प्रस्तुत किया जा सकता है। एक उदाहरण देखिए—

उर्द के पचाइबे को हीग अरु सोठ जैसे,
केरा के पचाइबे को घिव निरधार है।
गोरस पचाइबे को सरसों प्रबल दंड
आम के पचाइबे को नीबू को अचार है।
श्रीपति कहत परधन के पचाइबे को
कानन छुआय हाथ कहिबो नकार है।
आज के जमाने बीच राजा राव जाने सबै
रीझि के पचाइबे को वाह वा डकार है ।।

पद्माकर—इनके काव्य में हास्य रस के कुछ स्वतंत्र लक्षण एवं शृंगार के अंतर्गत साहचर्य भाव से जागृत होनेवाले हास्य के उदाहरण प्राप्त होते हैं। युग की विलासिता का जो आनुप्रासिक एवं वस्तुपरक वर्णन पद्माकर ने किया है उससे भी किंचित् मात्रा मे 'विनोद-काव्य' की पुष्टि होती है। कुछ उदाहरण लीजिए—

हँसि हँसि भजैं देखि दूलह दिगंबर को
पाहुनी जे आवे हिमाचल के उछाह में।
कहै पद्माकर सु काहू सों कहै को कहा
जोई जहाँ देखै सो हँसेई तहाँ राह मे ।।
मगन भयेई हँसे नगन महेश ठाढ़े
और हँसे एऊ हँस हँस के उमाह मे।
सीस पर गंगा हँसे भुजनि भुजगा हँसे
हाँस ही को दंगा भयो नंगा के विवाह में ।।

लोचन असम अंग भसम चिता को लाइ
तीनों लोक नायक सौं कैसे कै ठहरतो।
कहै पद्माकर बिलोकि इमि ढंग जाके
बेदहु पुराण गान कैसे अनुसरतो ।।

बाँधे जटा जूट बैठे परबत कूट माँहि
महाकालकूट कहतु कैसे कै ठहरतो।
पीवै नित भंगै रहै प्रेतन के संगै ऐसे
पूंछ तो को नंगै जो न गंगै सीस धरतो॥

गिरिधर कविराय—इनका जन्म सं० १७७० के लगभग माना जाता है। इनकी कुंडलियाँ अत्यन्त लोकप्रिय है। नीति एवं व्यावहारिकता के साथ ही इनमें विनोद का भी पर्याप्त पुट मिलता है। कुछ नमूने लीजिए—

बेटा बिगरे बाप सों, करि तिरियन सों नेहु।
लटापटी होने लगी, मोहि जुदा करि देहु॥
मोहि जुदा करि देहु, घरी माँ माया मेरी।
लेहौ घर अरु द्वार, करौ मैं फजिहत तेरी॥
कह गिरिधर कविराय, सुनो गदहा के लेटा।
समय परयौ है आय, बाप से झगरत बेटा॥

काची रोटी कुचकुची, परती माछी बार।
फूहर वही सराहिये, परसत टपकै लार॥
परसत टपकै लार, झपट लरिका सौंचावै।
चूतर पोंछै हाथ, दोउ कर सिर खजुवावै॥
कह गिरिधर कविराय, फूहर के याही धैना।
कजरौटा बरु होइ, लुकाठन आँजै नैना॥

बैताल—'शिवसिंहसरोज' के अनुसार इनका जन्मकाल स० १७३४ ठहरता है। ये जाति के बंदीजन थे और राजा विक्रमसाहि की सभा में रहते थे। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के मतानुसार अगर इनके आश्रयदाता वही विक्रमसाहि है जिन्होंने खुमान, प्रताप आदि कवियो को आश्रय दिया तो बैताल का समय स० १८३९ और १८८६ के मध्य मानना पड़ेगा। इन्होंने भी गिरधरराय के समान नीति एवं लौकिक व्यवहार संबंधी कुंडलियाँ रची हैं। इनकी कुंडलियों मे भी विनोदकाव्य के पर्याप्त उपकरण विद्यमान हैं। कुछ उदाहरण लीजिए—

दबकर पढ़ै कवित्त, पास मोची तुक जोड़े।
मल्हा पढ़ै कवित्त, नाव गहरी मे बोरे॥
भुजवा पढ़ै कवित्त, जीव दश बीर जरावै।
धोबी पढ़ै कवित्त, छानकर कलप चढ़ावै॥
कुछ कुछ कवित्त नाऊ पढ़ै, सो बाल मूंडि आगे धरै।
बैताल कहै विक्रम सुनो, अब कवित्त सब नर पढ़ै॥

मरै बैल गरियार, मरै वह अड़ियल टट्टू ।
मरै करकसा नारि, मरै वह खसम निखट्टू ।।
बाह्मन सो मरि जाय, हाथ लै मदिरा प्यावै ।
पूत वही मरि जाय, जो कुल मे दाग लगावै ।।
अरु बेनियान राजा मरै, तबै नीद भर सोइए ।
बैताल कहै विक्रम सुनौ, एते मरे न रोइए ।।

वृंद—इनका काव्य भी प्रधानत नीतिप्रधान है । परन्तु दृष्टांत देते समय 'विनोद-काव्य' के कतिपय उपकरण इनकी रचनाओं मे भी दृष्टिगोचर होते हैं । कही कही व्यंग भी पर्याप्त तीखे है । यहाँ कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं —

निष्फल श्रोता मूढ पै, कविता वचन विलास ।
हाव भाव ज्यो तीय के, पति अंधे के पास ।।
हितहू की कहियै न तिहि, जो नर होय अबोध ।
ज्यो नकटे को आरसी, होत दिखाये क्रोध ।।
होत निवाह न आपनो, लीने फिरै ममाज ।
चूहा बिल न समात है, पूंछ बाँधिये छाज ।।
कछु कहि नीच न छेडिये, भलो न वाको संग ।
पाथर डारे कीच मे, उछरि बिगारे अग ।।

घाघ—ये कन्नौज के निवासी थे । इनका जन्म सं० १७५३ के लगभग बताया जाता है । इनके छंद इतने लोकप्रिय है कि प्राय. लोग बातचीत मे उनका उपयोग कहावतों की तरह करते हैं । यद्यपि इनको कविता नीति कृषि एवं लोकव्यवहार से संबधित है, तथापि उसमे मनोविनोद की भी पर्याप्त सामग्री है । यहाँ इनकी कविता के कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं .—

सुथना पहिरे हर जोतै, औ पौला पहिरि निरावै ।
घाघ कहे ये तीनो भकुआ सिर बोझा औ गावै ।।
उधार काढ़ि ब्यौहार चलावै, छप्पर डारै तारो ।
सारे के सग बहिनी पटवै, तीनिउ का मुख कारो ।।

लाल बुझक्कड़—ये घाघ के समकालीन तथा घाघ के सामने बसे गाँव के रहनेवाले बताए जाते है । घाघ की लोकप्रियता ने इनके मन में भी लोकप्रियता की पिपासा जागृत की । परंतु ये घाघ के समान प्रतिभासंपन्न नही थे । अपनी बे-सिर-पैर की बातों से इन्होने लोगों का मनोविनोद अवश्य किया, ऐसा कहा जाता है । प० रामनरेश त्रिपाठी ने "घाघ और भड्डरी" नामक पुस्तक मे हाथी के पाँव के निशान, टूटे कोल्हू एवं हाथी के प्रसंग में, गाँव वालों की जिज्ञासापूर्ति करनेवाले लाल बुझक्कड़ के काव्य के जो उदाहरण प्रस्तुत किए हैं, वे क्रमशः इस प्रकार हैं :—

लाल बुझक्कड़ बूझते और न बूझे कोय।
पैर में चक्की बाँध के हरिना कूदा होय॥
लाल बुझक्कड़ बूझते वे तो हैं गुरु ज्ञानी।
पुरानी होकर गिर पड़ी खुदा की सुरमादानी॥

घाघ पतोहू—घाघ के जीवन के साथ, लाल बुझक्कड़ की तरह ही उनकी पतोहू का नाम भी जुड़ा हुआ है। कहा जाता है कि घाघ की कहावतों का खंडन करने की प्रतिभा उनकी इन अज्ञात नामा पतोहू में भी थी और इसीलिये घाघ छपरे से कन्नौज चले आए थे। सत्य क्या है, यह तो ज्ञात नहीं, पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि ससुर पतोहू के इन काव्यकथनों में नोकझोंक का पर्याप्त मसाला है। पं० रामनरेश त्रिपाठी की "घाघ और भड्डरी" नामक पुस्तक से यहाँ ससुर पतोहू के मध्य चलनेवाली नोंकझोंक के कुछ उदाहरण प्रस्तुत किए जाते हैं :—

घाघ— नरन तिया होइ अँगना सोवै।
रन में चढ़ि के छत्री रोवै॥
साँझे सतुवा करै बियारी।
घाघ मरै उनकर महतारी॥

पतोहू— पतिव्रता होइ अँगने सोवे।
बिना अस्त्र के छत्री रोवे॥
भूख लागि जब करै बियारी।
मरै घाघ ही के महतारी॥

घाघ— बिन गौने ससुरारी जाय।
बिना माघ घिउ खीचरि खाय॥
बिन वर्षा के पहनै पौआ।
घाघ कहै ये तीनों कौआ॥

पतोहू— काम परे ससुरारी जाय।
मन चाहे घिउ खीचरि खाय॥
करै जोग तो पहनै पौआ।
कहै पतोहू घाघै कौआ॥

घाघ— पातर दुलहा मोटलि जोय। घाघ कहे रस कहाँ से होय।
पतोहू— घाघ दहिजरा अस कस कहै। पाती ऊख बहुत रस रहै॥

ठाकुर—बेनी के समान ही ठाकुर नाम के तीन कवि हो गए है। इनमें दो असनी के एवं एक बुंदेलखंड के रहनेवाले थे। परंतु इनमें 'विनोदकाव्य' की दृष्टि से असनीवाले द्वितीय ठाकुर ही अधिक प्रसिद्ध माने जाते हैं। इनका जन्म सं० १७९२ के लगभग माना जाता है। जहाँ एक ओर इनकी कविता में हास्य का पुट है वहीं दूसरी ओर हृदय की

सच्ची फक्कड़मस्ती है। अत: प्रेम की सहज अभिव्यक्ति के साथ ही इनके काव्य में हास्य भी पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है। जहाँ कविता उद्‌बोधनात्मक हो गई है, वहाँ भी अभिव्यक्ति के फक्कड़ी स्वरूप में हृदय की ललक के साथ ही मस्ती की मुस्कान छलक पड़ती है। कुछ उदाहरण लीजिए--

पौर के किवार देत, घरे सबै गारि देत.
साधुन को दोष देत, प्रीति ना चहत हैं।
माँगने को ज्वाब देत, बात कहे रोय देत,
लेत भाँज देत ऐसे निबहत हत हैं॥
बागे हू के बंद देत, बारन की गाँठ देत,
परदन की काँछ देत, काम मे रहत हैं।
एते पै सबेई कहैं लाला कछु देत नाही,
लाला जू तो आठो जाम देतई रहत हैं॥

दानी कोउ नाहिं न, गुलाब दानी पीकदानी,
गोंददानी घनी सोभा इनही मे लहे हैं।
मानत गुनी को गुन ही में प्रकटत देखो
याते गुनीजन मन सावधानी गहे हैं।
हयदान हेमदान गजदान भूमिदान,
सुकवि सुनायें औ पुरानन में कहे हैं।
अब तो कलमदान जुजदान जामदान
खानदान पानदान कहिबे को रहे है॥

बोधा--ये भी ठाकुर के समान ही प्रेमी और मनमौजी जीव थे। प्रेम की निष्कपट अभिव्यक्ति के साथ ही बात को दो टूक रूप मे कहने मे इन्हें कोई हिचक नहीं थी। यह खुला या खरापन ही इनके काव्य की सबसे बड़ी विशेषता है। इनकी रचनाओं को सुनकर या पढ़कर सहृभाव के रूप में स्मित हास्य को जागृत करने की विशेषता निहित है। एक उदाहरण लीजिए---

चाम के दाम गुनीन के आम, बिस्वा को प्रीति पलीत को मेवा।
सेनापति सपने में सति अरु भानुपति करै पाँख परेवा॥
बोधा जुबान जथा माठ की लखो फागु को वायु देवारी को देवा।
आखिरो चूमिकै कौन गयो करि धर्म की धाम औ सूम की सेवा॥

ग्वाल--ये मथुरा निवासी बंदीजन थे। इनके पिता का नाम सेवाराम था। इनका जन्म सं० १८४८ में एवं मृत्यु स० १९२८ में मानी जाती है। इनके बनाए ग्रंथों की संख्या ६० या ७० के लगभग बताई जाती है। 'ग्वाल' की कविता में व्रजवाणी का चमत्कार

ही नहीं, मन की स्वाभाविक ललक भी है। विनोदकाव्य की दृष्टि से जहाँ इनके काव्य में अनेक उदाहरण उपलब्ध होते हैं, वहीं तत्कालीन युग का एक चित्र भी सामने आता है। इनकी कविता का नमूना देखिए—

दिया है खुदा ने खूब खुसी करो ग्वाल कवि,
 खाव पियो देव लेव यही रह जाना है।
राजा राव उमराव केते बादशाह भए,
 कहाँ ते कहाँ को गए लाग्यो ना ठिकाना है।
ऐसी जिंदगानी के भरोसे पै गुमान ऐसे
 देस देस घूमि घूमि मन बहलाना है।
आए परवाना पर चले ना बहाना इहाँ
 नेकी करि जाना फेरि आना है न जाना है॥

दीनदयाल गिरि—बाबा जी की कुंडलियाँ नीतिप्रधान होते हुए भी अन्योक्ति के कारण विनोदकाव्य के अंतर्गत भी अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। यहाँ हम कुछ उदाहरण दे रहे हैं :—

तहाँ नहीं कछु भय जहाँ अपनी जाति न पास।
काठ बिना न कुठार कहुँ तरु को करत बिनास॥
नीच न सोहत मंच पर महि मैं मोहत धीर।
काक न सोह पताक पै सजै हंस सर तीर॥
केहरि को अभिषेक कब कीन्हो विप्र समाज।
निज भुजबल के तेज ते विपिन भयो मृगराज॥
तजि मुकता भूखन रचैं गुंजन के बसु जाम।
कहा करै गुन जौहरी बसि भीलन के ग्राम॥

——:०:——

सप्तम खंड

विविध साहित्य

प्रथम अध्याय

शास्त्रीय साहित्य

इसमें कोई संदेह नही कि रीतिकाल में प्रमुख रूप से रागात्मक साहित्य की रचना हुई, किंतु ज्ञानात्मक या शास्त्रीय साहित्य की रचना मे भी रीतिकालीन कवियो ने अपनी अभिरुचि प्रदर्शित की है। शास्त्रीयता की प्रवृत्ति तो इतनी अधिक प्रचलित हो गई थी कि शास्त्रनिर्माण और काव्यरचनाओं को लोगो ने एक मे मिला दिया। इस प्रवृत्ति की रचनाओं को रीतिबद्ध रूप में हमने पहले ही अलग कर दिया है किंतु अन्य प्रकार के जो शास्त्रीय ग्रंथ इस काल में लिखे गए उनका विवेचन इस खड मे अभीष्ट है। शास्त्र और सिद्धांत संबंधी ग्रंथ व्याकरण, ज्योतिष, आयुर्वेद, इतिहास, दर्शन, नीति आदि विषयों पर हैं। इनके अलावा नाममाला और कोश सबधी भी कई ग्रंथ लिखे गए। जीवनी और परिचयी भी लिखने की परंपरा इस काल मे थी। कुछ संतो की परिचइयाँ भी प्राप्त होती है। अनुवाद और टीका की परंपरा पहले से ही चली आ रही थी। इस काल मे भी इस प्रकार के अनुवाद किए गए और कुछ ग्रथो पर टीकाएँ लिखी गई। अनुवाद सस्कृत और फारसी ग्रथों के किए गए जिनमे कुछ पद्य मे है और कुछ गद्य मे। टीकाएँ सस्कृत तथा हिंदी ग्रंथों की लिखी गई। कविप्रिया और बिहारीसतसई की कई टीकाएँ इस अवधि में की गई थी।

रीतिकाल में कुछ नाटक भी लिखे गए। कुछ संस्कृत से अनूदित हुए। ये नाटक कुछ पद्य में हैं और कुछ गद्य में। इनके विविध रूप है, यथा लोला, रसिया, स्वाँग, नौटकी, तमाशा आदि। इसके अतिरिक्त कुछ कृतियाँ गद्य पद्य की मिश्रित शैली मे हैं जिन्हें चंपू कहा गया है। गद्य रचनाओ में वार्ता, वचनिका, कथा, टीकाएँ, अनुवाद आदि है। इस प्रकार हम देखते है कि रीतिमुक्त काव्य के अतिरिक्त भी विविध प्रकार के साहित्य का प्रणयन इस काल में हुआ है। आगे हम विस्तार से इनका विवेचन करेंगे।

किसी ज्ञानात्मक विषय का क्रमबद्ध विवेचन शास्त्र कहलाता है। शास्त्रीय साहित्य, काव्य से भिन्न प्रकार का होता है। इसमें मानवजीवन से सबंधित सिद्धांत या नियम होते हैं जो जीवन के किसी खंड की पूर्वधारणा को स्पष्ट करते है। इस प्रकार की शास्त्रीय रचना की परंपरा बड़ी पुरानी है। प्राय: किसी भाषा के कवि या साहित्यकार ही ऐसी रचनाएँ करते हैं। रीतिकाल में भी शास्त्रीय साहित्य की रचनाएँ प्रभूत मात्रा में हुई। ये रचनाएँ पद्यबद्ध होने पर भी काव्यात्मकता से रहित है। जितनी रचनाओं की जानकारी अब तक प्राप्त हो सकी है उनका विवरण विषयानुसार नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है।

(१) आयुर्वेद

आयुर्वेद के ग्रंथों में मनुष्य और पशु दोनों की चिकित्सा पर विचार हैं किंतु मनुष्य की चिकित्सा से संबद्ध ग्रंथ अलग हैं और पशुचिकित्सा संबंधी ग्रंथ अलग। मानव-चिकित्सा संबंधी वैद्यक ग्रंथ निम्नलिखित हैं—

१—कविप्रमोदग्रंथ—मान (द्वितीय) का रचित ग्रंथ है जो संवत् १७४६ में ब्रजभाषा पद्य में लिखा गया।

२—ग्रंथसंजीवन—इसके लेखक चाँदसुत आलम (प्रसिद्ध कवि आलम से भिन्न) हैं। यह सं० १७५० के आसपास ब्रजभाषा पद्य में लिखा गया।

३—नाड़ीप्रकरण के लेखक नवलसिंह प्रधान है। यह सं० १९१० के आसपास लिखा गया। भाषा पद्यमय ब्रज है।

४—बाल-विवेक-वैद्यरत्न—इसके लेखक जनार्दन भट्ट है। इस ग्रंथ में बालरोगों की चिकित्सा के बारे में लिखा है। यह स० १७४९ में ब्रजभाषा पद्य में लिखा गया।

५—बालतंत्र-भाषा-वचनिका—इसका लेखक अज्ञात है पर वह जैन लगता है। ग्रंथ की रचना स० १७९२ में ब्रजभाषा गद्य मे हुई।

६—वैद्यकमति—इसके लेखक प्रसिद्ध सूफी कवि जान हैं। इसकी रचना स० १७०० में ब्रजभाषा पद्य मे हुई।

७—वैद्यक-सिख-शतपद—इसके भी लेखक जान है और इसकी रचना संवत् १७०२ में ब्रजभाषा पद्य में हुई।

८—वैद्यविनोद—रामचंद्र द्वारा सं० १७५० में ब्रजभाषा पद्य मे लिखा गया।

९—वैद्यबोध—यह प्रसिद्ध कवि अखैराम की रचना है जो सं० १८५० में ब्रजभाषा पद्य में रची गई।

१०—वैद्यरत्न—लेखक अज्ञात है पर सं० १८९७ में ब्रजभाषा पद्य में रची गई।

११—दिल्लगन चिकित्सा—लेखक सीताराम हैं और सं० १८५३ में ब्रजभाषा पद्य में लिखी गई।

१२—रोगनिश्चय—लेखक अज्ञात है, रचना सं० १८८९ में ब्रजभाषा पद्य में लिखी गई।

पशुचिकित्सा संबंधी ग्रंथों को 'शालिहोत्र' कहते हैं। नीचे उनका विवरण प्रस्तुत है—

१—गजशास्त्र—इसके लेखक राजा अनूपसिंह हैं। ग्रंथ की रचना सं० १७५८ में में ब्रजभाषा गद्य में हुई।

२—शालिहोत्र—लेखक राधावल्लभ हैं। संवत् १८६० में ब्रजभाषा पद्य में रचित है।

३—शालिहोत्र भाषा—इसके लेखक जठमल हैं। ग्रंथ सं० १७१० में ब्रजभाषा गद्य में रचा गया।

४—हाथी का शालिहोत्र—इसके लेखक जनार्दन भट्ट हैं। ग्रंथ सं० १७४० के आसपास ब्रजभाषा पद्य में लिखा गया।

(२) ज्योतिष

ज्योतिष ग्रंथों की रचना कवि बौद्धिक मनोरंजन के लिये करते थे। किंतु कुछ शास्त्रीय विद्वान् अवश्य ही गंभीरता के साथ ऐसे ग्रंथों का प्रणयन किया करते थे। ज्योतिष संबंधी ग्रथ मुहूर्त, कुंडली, शकुनविचार, स्वप्नविचार, अनेक प्रकार के हैं। नीचे उनकी सूची दी जा रही है—

१—जोतिषजड़ाव (मुहूर्तग्रंथ) हम्मीर, सं० १७६६, डिंगल पद्य।
२—ताजकजोतिष (मुहूर्तग्रथ) चंद्रशेखर वाजपेयी, स० १८८०, ब्रज० पद्य।
३—सामुद्रिकशास्त्र (सामुद्रिक) सुखदेव, सं० १७५०, ब्रज० पद्य।
४—संग्रामदर्पण—(शकुनविचार) सोमनाथ, स० १७८६, ब्रज० पद्य।
५—सगनौती (शकुनविचार) नारायणदास, सं० १८४४, ब्रज० पद्य।
६—स्वरोदय (स्वरशास्त्र) अज्ञात, स० १८६७, ब्रज० पद्य।
७—शीघ्रबोध (कुंडलीफल) सेवाराम, सं० १८५६, ब्रज० पद्य।
८—शकुनविचार (शकुनविचार) व्यास, सं० १८३५, ब्रज० गद्य।
९—योगिनीदशा (दशा फल) अज्ञात, सं० १८६७, ब्रज० पद्य।
१०—नरलक्षण (सामुद्रिक) बिहारीवल्लभ, १९वी शताब्दी, ब्रज० पद्य।
११—बाला-लग्न ग्रह (कुंडलीफल) अज्ञात, सं० १८४५, ब्रज० पद्य।

इस तरह ज्योतिष में विचारणीय लगभग सभी प्रकार के विषयों का समावेश इन ग्रंथो में है। इसमें संदेह नही कि इन ग्रंथों के आधार संस्कृत के ज्योतिषग्रंथ हैं।

(३) व्याकरण

विशुद्ध रूप से व्याकरण पर लिखा हुआ रत्नजित का ब्रजभाषा व्याकरण, नामक एक ही ग्रंथ उपलब्ध है। इसकी रचना स० १७७० में ब्रजभाषा पद्य मे हुई थी।

(४) इतिहास

वर्तमान पद्धति पर लिखे जानेवाले इतिहास की परंपरा आधुनिक काल से प्रारंभ होती है। किंतु किसी राजवंश या संप्रदाय का विवरण क्रमबद्ध रूप से रीतिकाल में भी लिखा जाता रहा। ऐसी रचनाओं की सूची नीचे प्रस्तुत है—

१—इतिहास-सार-समुच्चय—लालदास, सं० १७६३, ब्रज० पद्य।
२—गुरुप्रणाली—पीतांबरदेव, १८वी शताब्दी, ब्रज० पद्य।
३—खीची जाति की वंशावली—मूकजी, स० १७७५, ब्रज० पद्य।
४—तजकिरए सर्व आजाल हिंद—सै० गुलाम अली आजाद, १८वीं शताब्दी, दक्खिनी हिंदी।

(५) दर्शन

साहित्य पर दर्शन का प्रभाव सर्वदा से रहा है। भक्तिकाल के साहित्य पर अद्वैत वेदांत तथा अन्य दर्शनों का प्रभाव स्पष्ट है। इन्हीं दर्शनों के कारण काव्य के अलग अलग संप्रदाय भी बन गए। कवि अपनी कृतियों मे इन दार्शनिक विचारों को यत्र तत्र व्यक्त भी करते रहे। परंतु रीतिकाल के कवियों ने इन दार्शनिक विचारों और सिद्धांतों का सार पद्यबद्ध भाषा में प्रस्तुत किया। इन कवियों ने कभी दर्शन की पुस्तकों की टीका की और कभी प्रमुख विचारों पर चिंतन करके उसे लिखा। कुछ लेखकों ने गुरु शिष्य के संवाद के रूप में दार्शनिक विचारों की अभिव्यक्ति की। इस प्रकार रीतिकाल में दर्शन संबंधी ग्रंथ काफी मात्रा मे लिखे गए। इन दार्शनिक ग्रंथों में वेद, उपनिषद्, गीता, वेदांत, योग, तत्व आदि अनेक विषयों की चर्चा है। कुछ ग्रंथों का विवरण नीचे दिया जा रहा है—

१—षडंग पाठ (वेद)—इसका रचयिता अज्ञात है, पर इसकी रचना सं० १८५० में ब्रजभाषा पद्य में हुई। इस ग्रंथ में वेदों के छहों अंग शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद तथा ज्योतिष का वर्णन किया गया है।

२—कालाग्निरूपोपनिषद्—लेखक अज्ञात है। रचना सं० १९२४ की ब्रजभाषा पद्य में है।

३—वैष्णवगीता और पांडवगीता—ये दोनों किन्हीं अज्ञात कवि की रचनाएँ हैं जो क्रमश. सं० १७५४, १८९८ मे ब्रजभाषा पद्य में लिखी गई।

४—अद्वैतप्रकाश (वेदांत)—सुखदेव, सं० १७५५, ब्रज० पद्य।

५—अद्वैतप्रकाश (वेदांत)—बलीराम, सं० १८००, ब्रज० पद्य।

६—अध्यात्मप्रकाश (तत्वज्ञान)—सुखदेव, सं० १७५०, ब्रज० पद्य।

७—अनुभवउल्लास (तत्वज्ञान)—गोपाल, स० १७६०, ब्रज० पद्य।

८—अनुभवप्रकाश (वेदांत)—जसवतसिंह, स० १७२५, ब्रज० पद्य।

९—अपरोक्षसिद्धांत (वेदांत)—जसवतसिंह, स० १७२५, ब्रज० पद्य।

१०—आत्मदर्शन पचीसी (तत्वज्ञान)—देव, स० १८२४, ब्रज० पद्य।

११—अष्टागयोग (योग)—चरणदास, स० १८००, ब्रज० पद्य।

१२—अष्टांगयोग (योग)—तुलसी, सं० १८५०, ब्रज० पद्य।

१३—आनंदविलास (तत्वज्ञान)—जसवतसिंह सं० १७३०, ब्रज० पद्य।

१४—आरामरोशनी (तत्वज्ञान)—मानसिंह महाराज, स० १८८५, डिंगल पद्य।

१५—इच्छाविवेक (वेदांत)—जसवंतसिंह, सं० १७२०, ब्रज० पद्य।

१६—कलि-वैराग्य-वल्लरी (तत्वज्ञान)—नागरीदास, सं० १७९५, ब्रज० पद्य।

१७—छूटकविधि (तत्वज्ञान)—नागरीदास, सं० १७९०, ब्रज० पद्य।

१८—जगतविनोद पचीसी (तत्वज्ञान)—हित वृंदावनदास, सं० १८१०, ब्रज० पद्य।

१९—तत्वदर्शन पचीसी (तत्वज्ञान)—देव, सं० १८२४, ब्रज० पद्य।

२०—तत्वसंग्रह (तत्वज्ञान)—चंदन, सं० १८४५, ब्रज० पद्य।

२१—पद-प्रबोध-माला (तत्वज्ञान)—नागरीदास, सं० १७००, ब्रज० पद्य।
२२—मन-चित-परबोध (तत्वज्ञान)—रूहल, सं० १७६०, ब्रज० पद्य।
२३—मनप्रबोध (तत्वज्ञान)—संतरेण, सं० १७४६, ब्रज० पद्य।
२४—वेदांतग्रंथ (दर्शन)—तुलसी, सं० १८५०, ब्रज० पद्य।
२५—वेदांतमहावाक्य (वेदांत)—मनोहरदास, सं० १७५०, ब्रज० पद्य।
२६—वेदांतसारशुभ (वेदांत)—रसिक अली, सं० १८८०, ब्रज० पद्य।
२७—ब्रह्मसमाधि-विलीन-योग (योग)—जगन्नाथ, सं० १८५५, ब्रज० पद्य।
२८—ज्ञानपूर्ण वचनिका (वेदांत)—मनोहरदास, सं० १७१७, ब्रज० गद्य।
२९—ज्ञानप्रकाश (तत्वज्ञान)—सुखदेव, सं० १७५०, ब्रज० पद्य।
३०—ज्ञानप्रबोध (तत्वज्ञान)—गुरु गोविंदसिंह, सं० १७५२, ब्रज० पद्य।

विधिविधान और धर्मशास्त्र

इस काल में भक्ति और पूजा संबंधी कर्मकांड का निर्देश करनेवाले कई सौ ग्रंथ भी लिखे गए जिनमें विधिविधानों और नियमों का वर्णन है। इनका विवरण आगे प्रस्तुत है—

१—व्रतलक्षण (व्रत)—बिहारीबल्लभ, सं० १८६०, ब्रज० पद्य।
२—व्रतबंध (संस्कारविधि)—अज्ञात, सं० १८८४, ब्रज० पद्य।
३—दसगात्र-पिंडदान-विधि (संस्कार)—अज्ञात, सं० १८८८, ब्रज० पद्य।
४—जागरणमाहात्म्य (संस्कार)—चरणदास, सं० १८१०, ब्रज० पद्य।
५—लक्ष्मीनारायण पूजासार (पूजा)—जनार्दन भट्ट, सं० १७३०, ब्रज० पद्य।
८—व्यवहारनिर्णय (सिद्धांतनिरूपण)—जनार्दन भट्ट, सं० १७३७, ब्रज० पद्य।
७—परधर्मनिर्णय (आध्यात्मिक)—विश्वनाथसिंह सं० १८४६, ब्रज० पद्य।

द्वितीय अध्याय

नाममाला और कोश

नाममाला और कोशों की परंपरा बड़ी प्राचीन है; यहाँ तक कि वैदिक काल से ही इस परंपरा के दर्शन होते हैं। निघंटु ग्रंथ प्राचीन वैदिक कोशों के उदाहरण हैं। संस्कृत में कोश की परंपरा बड़ी समृद्ध रही। 'अमरकोश' की लोकप्रियता और उपयोगिता आज भी वैसी ही है। प्राकृतकाल में भी कोशनिर्माण की प्रवृत्ति बराबर बनी रही। 'पाइअ सद् महाण्णव' इसका प्रमाण है। वीरगाथाकाल और भक्तिकाल मे नाममाला और कोश लिखे जाते रहे। बनारसीदासकृत 'नाममाला' और नंददासकृत 'अनेकार्थमंजरी' और 'नाममंजरी' ग्रंथ प्रसिद्ध ही है। ये कोश या नाममाला एक प्रकार के पर्यायवाची कोश हैं, क्योंकि इनमे एक शब्द के पर्याय को एक साथ एकत्र किया गया है। नाममाला में भी वही प्रवृत्ति है।

रीतिकाल में भी नाममाला या कोश लिखे गए, बल्कि इस काल में ऐसे कोशों की रचना बहुत अधिक हुई। इसका कारण यह है कि कवि लोग शब्दचमत्कार के लिये शब्दों की और उनके पर्यायो को खोज करते रहते थे। शब्दावली को समृद्ध बनाना कवि-शिक्षा का एक प्रमुख अंग था। रीतिकाल में जो नाममाला या कोश लिखे गए उनका वर्गीकृत विवरण नीचे दिया जा रहा है—

(क) अनेकार्थी कोश—

१—नाममाला अनेकार्थी—जानकवि, स० १७०३।
२—मानमंजरी नाममाला—बद्रीदास, सं० १७२५।
३—रतनदाम—टहकन, सं० १७४०।
४—अनेकार्थ नाममाला—महासिह, सं० १७६०।
५—हम्मीर नाममाला—हमीर, स० १७७४।
६—विरह-बुध-चंद्रिका—सारंगधर, सं० १७७४।
७—अमरकोष भाषा—हरिजू मिश्र, सं० १७६१।
८—लखपतिमंजरी नाममाला—कनक कुशल, सं० १७६४।
९—लखपतिमंजरी—कुंवर कुशल, सं० १७६६।
१०—अनेकार्थ नामावली—अज्ञात, १८वीं।
११—प्रदीपिका नाममाला—रघुनाथ, १८वीं शताब्दी।
१२—अनेकार्थ भाषा—नंददास, १८१२।

१३—नामप्रकाश—खंडन कवि, १८१५ ।

१४—नाममाला कोश—चंदन, १८२० ।

१५—लघुनामावली—रामहरि, १८३४ ।

१६—कर्णाभरण—हरचरणदास, १८३४ ।

१७—मानमजरी—नंददास, १८३५ ।

१८—आत्मबोध—चेतनविजय, १८४७ ।

१९—शब्दरत्नावली—प्रयागदास, १८६६ ।

२०—अमरकोष भाषा—गोकुलनाथ, १८७० ।

२१—अमरसार नाममाला—कृष्णदास, १८९५ ।

२२—नानार्थ-नव-संग्रहावली—मातादीन शुक्ल, १८९९ ।

२३—नामरत्नमाला—उदयचंद भंगारी, १८९९ ।

२४—नामरत्नाकर—केसरकीर्ति, १९वी शताब्दी ।

इनमे सबसे बड़ा कोश कर्णाभरण है जिसमें ४१६३ नाम शब्द और १३५६४ अनाम शब्द संकलित है । वैसे इन सभी कोशों का आधार प्रमुख रूप से संस्कृत का अमर कोश ही है ।

ख—कोशकाव्य—

१—ब्रजनाममाला—नागरीदास, १७५६ ।

२—राममाला—चरणदास, १७६० ।

३—हरिवंश सहस्रनाम—हितवृंदावनदास, १८१२ ।

४—गुरुपरंपरा नामावली—हितवृंदावनदास, १८१२ ।

५—रघूत्तम सहस्रनाम—रत्नहरि, १८६८ ।

६—जानकी सहस्रनाम—चैनराम, १८९० ।

७—जिन सहस्रनाम—अज्ञात, १८९२ ।

८—श्रीकृष्णाष्टोत्तर शतनाम—वृंदावनचंद्र, १७३० ।

९—श्रीलाडिली जू की नामावली—अनन्य अलि, १७४० ।

१०—श्रीलाल जू की नामावली—अनन्य अलि, १७४० ।

१२—नामकोश भक्त सुमिरनी—प्रियादास, १७५० ।

१३—भगवद्भक्तों की नामावली—बिहारी वल्लभ, १९वीं शताब्दी ।

इनके अलावा और भी कुछ कोश हैं जिनकी सूची इस प्रकार है—

१—एकाक्षरी नाममाला—रत्नवीर, १८५६ ।

२—शस्त्रनाममाला—गुरु गोविंदसिंह, १७२३ ।

३—नामचक्र (वैद्यक कोश)—लक्ष्मणप्रसाद, १९०० ।

४—चौरासी पदार्थ नामावली—मानसिंह, १८७० ।
५—पारसी—पारसात नाममाला—कुँवर कुशल, १७६४ ।
(फारसी ब्रजभाषा कोश)
६—लोकोक्ति रसकौमुदी-शिवसहाय दास, १८०६ ।

कोशो की इस सूची को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि रीतिकाल मे विभिन्न प्रकार के कोशों की रचना हुई है। एकाक्षर या पर्यायवाची कोशों के अलावा शस्त्रकोष और वैद्यक कोशो का भी निर्माण हुआ है । द्विभाषी कोश फारसी और ब्रजभाषा का भी रचा गया । लोकोक्तिकोश मात्र कोश नही बल्कि सुदर काव्य भी है । हर लोकोक्ति का पद्य मे प्रयोग भी है। एक ही व्यक्ति क अनेक नामो को सूचित करनेवाला कोश मात्र कोश नहीं बल्कि स्तोत्र भी है । नामावली कोश मे केवल परिगणना नही है बल्कि चरित्रों की विशेषताएँ भी बताई गई है । एक प्रकार से ये कोश विश्वकोश जैसे है । रीतिकालीन रचनाओं मे कोशो का बहुत बड़ा महत्व है । इस कोशनिर्माण की परपरा ने ब्रजभाषा को निश्चय ही समृद्ध बनाया है ।

तृतीय अध्याय

दृश्यकाव्य या नाटक

दृश्यकाव्य की संस्कृत परंपरा बड़ी समृद्ध है। आगे का सारा दृश्यकाव्य उसी आधार पर विकसित हुआ है। अपभ्रंश में गद्य का विकास न होने के कारण पद्यबद्ध दृश्यकाव्यों की ही रचना हुई। इसी काव्यरूप से आगे रास, चर्चरी और फाग काव्यरूपों का विकास हुआ। संस्कृत दृश्यकाव्य का परंपरागत रूप अपभ्रंश में नहीं मिलता। फलतः संवादप्रधान रूपकों का सृजन प्रारंभ हुआ। बुच्चराय के 'मयरण जुज्भ' से यह बात पूर्णतः प्रमाणित हो जाती है। अपभ्रंश के बाद की भाषाओं में भी परंपरागत दृश्यकाव्य न होने के कारण तद्धर्मी रासलीलाओं और गीतरूपकों की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित हुआ। नाटक जैसी विधा का इसीलिए प्रारंभिक हिंदी साहित्य में अभाव है।

रीतिकाल के कुछ पहले प्रबोधचंद्रोदय, हनुमन्नाटक, उषाहरण आदि नाटक प्राप्त होते हैं। उसी के साथ मैथिली के भी नाटक हर-गौरी-विवाह, मुदित कुवलयाश्व भी मिलते हैं जिनमें गद्य और पद्य का प्रयोग किया गया है। मैथिली के नाटकों में अभिनेयता और नाटकीय तत्व ब्रजभाषा नाटकों की अपेक्षा अधिक हैं। ब्रजभाषा नाटक एक तरह से संवादकाव्य है किंतु इन दोनों परंपराओं में यह स्पष्ट हो जाता है कि नाटकों का प्रारंभ रीतिकाल से पूर्व ही हो चुका था।

रीतिकाल के प्रारंभ से ही हिंदी नाटक तथा उसके अन्य रूप प्राप्त होते हैं। रूप-सनातन, जीव गोस्वामियों द्वारा रचित गोविंदहुलास संवत् १७०० में लिखा गया था। कुछ लोग इसे ही हिंदी का प्रथम नाटक मानते हैं। इनके अलावा महाराज जसवंतसिंह द्वारा अनूदित 'प्रबोधचंद्रोदय' नाटक की चर्चा की जाती है। नेवाजकृत 'शकुंतला नाटक' संवत् १७२७ में चौपाई छंद में अनूदित हुआ था। इसके बाद रघुराम नागर कृत 'सभासार' नाटक मिलता है जिसकी रचना संवत् १७५७ में हुई थी। इस प्रकार संपूर्ण रीतिकाल में नाटक अथवा उससे मिलते जुलते काव्यरूप की परंपरा प्राप्त होती है।

रीतिकाल में प्राप्त होनेवाले नाटक सामान्यतः तीन वर्गों में रखे जा सकते हैं। पहले वर्ग में वे नाटक हैं जिनमें प्रबंधत्व और पद्यात्मकता होती थी, जैसे 'विचित्र नाटक'। ऐसे नाटक रंगमंच पर खेले जाते थे। दूसरे वर्ग में वे नाटक है जो संवादप्रमुख हैं या संवाद शैली में लिखे गए प्रबंधकाव्य जैसे हैं। इनमें संवादों के अतिरिक्त और किसी भी प्रकार का नाटकीय तत्व नहीं मिलता। उदयकविकृत 'रामकरुणा' नाटक तथा विक्रमकृत 'हनुमान नाटक' इसी वर्ग के हैं। तीसरे वर्ग में वे नाटक है जो मूल नाटकों के आधार पर भाषा में रूपांतरित किए गए लेकिन नाटक नहीं रहे। ये मुख्य रूप से नाटककथा थे। शकुंतला

नाटक पर आधारित कई नाटककथाएँ इसी प्रकार की हैं। इन तीनों प्रकार के नाटक वस्तुतः नाटक नहीं हैं लेकिन इनका अभिनय रंगमंच पर किया जाता रहा है और इसी कारण इन्हें दृश्यकाव्य के अंतर्गत रखा गया है।

जिनमें नाटकीय तत्व हैं और जो नाटक कहे जा सकते हैं, उनके दो वर्ग हैं–मौलिक और अनूदित। मौलिक नाटकों के अंतर्गत गोविंदहुलास, आनंदरघुनंदन और मैथिली के वे नाटक आते हैं जिनमे गद्य पद्य दोनों शैलियों का प्रयोग किया गया है। ये नाटक विभिन्न अंकों में विभाजित हैं और इनमें कहीं कही रंगमंचीय संकेत भी दिए गए हैं।

अनूदित नाटकों के अंतर्गत वे नाटक हैं जिनमें मूल नाटक के अनुकरण में नाटकीय संकेतों का भी वैसा का वैसा अनुवाद कर लिया गया है। प्रबोधचंद्रोदय के कुछ अनुवाद इसी वर्ग के हैं।

शैली के आधार पर रीतिकालीन नाटकों को पद्यबद्ध और गद्य-पद्य-मिश्रित, इन दो वर्गों में रख सकते हैं। ब्रजभाषा के कुछ नाटको मे यह प्रवृत्ति रही है कि नाटकों में प्रतीकात्मकता लाई जाए। गोविंदहुलास और आनंदरघुनंदन में भी प्रतीकविधान का प्रयत्न दिखाई पड़ता है। मैथिली नाटकों में कुछ मात्र उपाख्यान हैं। 'कालीय मथनोपाख्यान' को उपाख्यान पर आधारित होने के कारण ही उपाख्यान कह दिया गया, जबकि वह मूलतः नाटक है।

रीतिकालीन शास्त्रीय नाटकों के अतिरिक्त जनसामान्य में प्रचलित नाट्य परंपरा पर भी कुछ नाटक लिखे गए जिन्हें लोकधर्मी नाटक कहते है। लोकधर्मी नाटक के अंतर्गत लीला, ख्याल, स्वाँग, करसिया, नौटंकी, यात्रा और तमाशा आदि हैं। लीलानाटकों में कथात्मकता हुआ करती है। रासनृत्य के बाद कथात्मक लीला शुरू होती है। लीलाओं का गीतिनाट्य की तरह प्रयोग किया जाता है। चाचा वृंदावनदास की छद्मलीलाएँ रासधारियों द्वारा अब भी अभिनीत होती है। लीलानाटकों में गद्य में वार्ता या संवाद होते हैं। 'कृष्णसुदामा' ब्रजभाषा का लीलानाट्य है। रसिया गीतिनाट्य के रूप मे प्रदर्शित किया जाता है। ख्याल फारसी प्रभाव से विकसित वह रूप है जिसमें दो दलों के बीच प्रतिद्वंद्विता होती है। गेयता के साथ इसमें कुछ अभिनय भी होता है। वृंदावनदास ने 'ख्यालविनोद' में यह संकेत किया है कि दो दलों या दो पात्रों के संवाद रूप में यह गाया जाता रहे। 'हीर राँझा' का ख्याल हिंदी की ऐसी ही एक रचना है।

स्वाँग खुले रंगमंच पर खेला जानेवाला हास्यपूर्ण नाट्य है। स्वाँग मे नगाड़ा बजता है और प्रत्येक पात्र गाता हुआ नाचता है। पात्रों के संवाद भी गाकर होते हैं लेकिन इसमें हास्य की प्रधानता रहती है। नौटंकी स्वाँग की तरह हुआ करती है लेकिन इसमें एक व्यवस्थित कथा भी होती है। गीतात्मक संवादों के अलावा गद्य में भी संवाद होते हैं। यात्रानाटकों का प्रचार विशेषकर बंगाल और मिथिला में है। विशेष उत्सवों और पर्वों पर खुले मैदान या मंदिर के चबूतरे पर यात्रानाटक खेला जाता है। ढोल इसका

मुख्य वाद्य है। अधिकतर कृष्णचरित्र के लोकप्रिय प्रसंग ही इसमें रखे जाते हैं। तमाशा मराठी रंगमंच का प्रसिद्ध लोकनाटक है। इसमें नर्तकी का महत्वपूर्ण स्थान होता है। नृत्य के साथ वह लावनी, पोआडा या दूसरे लोकगीत गाती है और मंच पर उपस्थित अन्य पात्र उसे दोहराते हैं, साथ ही कोई कथा भी चलती रहती है। माखनकृत 'खूब तमाशा' उन्नीसवीं सदी की रचना इसी प्रकार की है।

रीतिकाल में लिखे गए नाटक अधिकांश धार्मिक और पौराणिक हैं। शास्त्रीय अथवा लोकधर्मी दोनों प्रकार के नाटकों में अभिनेता और रंगमंच का स्थान गौण है उनमें क्रमशः काव्यत्व और नृत्य का स्थान प्रधान है। यह एक महत्वपूर्ण बात है कि रीतिमुक्त रचनाओं में नाटक विधा बहुत ही सपन्न और समृद्ध रही है। रीतिकाल में लिखे गए कुछ नाटकों की सूची नीचे प्रस्तुत की जा रही है।

क—नाटक

(१) अद्भुत नाटक बुधसिंह, संवत् १८६० ।
(२) आनंदरघुनंदन नाटक : विश्वनाथ सिंह, सं० १८४३ ।
(३) इंद्रजय नाटकम् : अज्ञात, सं० १७६४ (मैथिली) ।
(४) उषाहरण : अज्ञात, सं० १७५४ (मैथिली) ।
(५) उषाहरण : सुमीतजित मित्रभल्ल, सं० १७३८ (मैथिली) ।
(६) उषाहरण नाटक : महादेवनाथ, सं० १७६० (मैथिली) ।
(७) कृष्णचरित्र : अज्ञात, सं० १७६८ (मैथिली) ।
(८) कृष्णभक्तिचंद्रिका नाटक : गणेश सं० १८७५ (ब्रज) ।
(९) गोपीचंद : अज्ञात, सं० १७५२ (मैथिली) ।
(१०) गोपीचंद नाटकम् : सुमीतजित मित्रभल्ल सं० १७४० (मैथिली) ।
(११) गोविंदहुलास नाटक : सनातनजीवरूप गोस्वामी, सं० १७०० (ब्रज) ।
(१२) गंगा नाटक : इच्छाराम सं० १८०७ (ब्रज) ।
(१३) गंगोत्री : बालमुकुंद पांडेय, सं० १८९७ (ब्रज) ।
(१४) जानकी-राम-चरित नाटक : हरिराय, सं० १८५० (अवधी) ।
(१५) जैमिनीय भारत नाटक : सुमीत जितमित्र भल्ल, सं० १७३८ (मैथिली) ।
(१६) जोहरा बहिराम नाटक : हाफिज मुहम्मद अब्दुल्ला, सं० १८८१ (ब्रज) ।
(१७) ज्ञानानंद : लच्छीराय, सं० १८०६ (ब्रज) ।
(१८) नवदुर्गा नाटक : सुमीतजित मित्रभल्ल, सं० १७४० (मैथिली) ।
(१९) नहुष : गिरधरदास, सं० १९०० (ब्रज) ।
(२०) प्रद्युम्नविजय नाटक : गणेश, सं० १८८२ (ब्रज) ।
(२१) प्रह्लादचरित नाटक : केदारनाथ, सं० १८६० (ब्रज) ।

(२२) परमप्रबोध : रघुराजसिंह, सं० १८४७ (ब्रज)।
(२३) पशुपतिप्रादुर्भाव : अज्ञात, सं० १७११ (मैथिली)।
(२४) पूर्वश्री नाटक : अछैवर साही, सं० १८७० (ब्रज)।
(२५) बुद्धिरस : अज्ञात, सं० १७४५ (ब्रज)।
(२६) मदनचरित : अज्ञात, सं० १८५० (मैथिली)।
(२७) मदालसाहरण : सुमीतजित मिन्नमल्ल, सं० १७४० (मैथिली।)
(२८) महाभारत : अज्ञात, सं० १७०२ (मैथिली)।
(२९) माधवविलास : रघुराम, सं० १७५७ (ब्रज)।
(३०) माधवानल : अज्ञात, सं० १७०४ (मैथिली)।
(३१) माधवानल नाटक : कैस, सं० १७१७ (ब्रज)।
(३२) रामचरित्र : अज्ञात, सं० १८६० (मैथिली)।
(३३) विश्वविलास नाटक : गौरीशंकर सुधाकर, स० १८६० (ब्रज)।
(३४) श्रीकृष्णकेलिमाला नाटक : नंदीपति, सं० १७८० (मैथिली)।
(३५) सभासार नाटक : रघुराम नागर, सं० १७५७ (ब्रज)।
(३६) सुरतिसंताप नाटक : अज्ञात, सं० १८५० (ब्रज)।
(३७) सुलोचना सती नाटक : भवदेव, सं० १८६५। (ब्रज)

अनूदित नाटक

(१) करुणाभरण : भट्ट कृष्णसेन, सं० १७७२ (ब्रज)।
(२) करुणाभरण : लच्छीराम, सं० १७१० (ब्रज)।
(३) चंद्रप्रबोध नाटक : जसवंतसिंह, सं० १७१० (ब्रज)।
(४) प्रबोधचंद्रोदय : जसवंतसिंह, सं० १७१० (ब्रज)।

प्रबोधचंद्रोदय के अन्य अनुवादक हैं—

गुलाब सिंह १८४६, ब्रजवासीदास १८१७, हरिबल्लभ १७७०, आनंद १७२३, नानकदास १८४६, धोकल मिश्र १८५६, सूरति मिश्र १७७०)।

(५) सकुंतला : धोकलराम मिश्र, स० १७९९ (ब्रज)।

इसके अन्य अनुवादक नेवाज १७२७ और मिर्जा काजिम अली १८०० हैं।

लीला नाटक

१—कृष्ण सुदामा : अज्ञात, १८७० (ब्रज)।

२—रामलीलाविहार : लक्ष्मणशरण, १८५० (अवधी)।

स्वांग

हास्यार्णव : रसरूप, १७४३ (ब्रज)।

रसिया

कृष्ण का रसिया : प्रेमानंद स्वामी, १८०५ (ब्रज)।

यात्रा

कृष्ण-कैलाश-यात्रोपाख्यान : अज्ञात, १७४७ (मैथिली)।

तमाशा

खूब तमाशा—माखन कवि, १८५५ (ब्रज)।

ख्याल

१—ख्यालविनोद : हित वृंदावनदास, १८०० (ब्रज)।
२—माधवविनोद : सोमनाथ, १८०६ (ब्रज)।
३—शकीस्तान ख्याल : मीर अब्दुल वाहिद जैदी, १६वीं शताब्दी (ब्रज)।
४—सखीसमाज नाटक : कीर्तिकेशव, १६वी शताब्दी (ब्रज)।
५—सोरठा ख्याल : प्रतापसिंह, १८४० (ब्रज)।
६—हीर राँझा का ख्याल : अज्ञात, १८८६ (ब्रज)।

पद्यनाटक

१—देवमायाप्रपंच : देव, १८०० (ब्रज)।
२—रामकरुणा नाटक : उदय, १७६५ (ब्रज)।
३—हनुमान नाटक : उदय, १८३६ (ब्रज)।
४—हनुमान नाटक : राम, १७३० (ब्रज)।
५—हनू नाटक : विक्रम, १८३७ (ब्रज)।

चतुर्थ अध्याय

रीतिकाल का गद्य

भारतेंदु के पूर्व हिंदीपरिवार की भाषाओं में ललित अललित, मौलिक, अनूदित, शुद्ध, पद्यात्मक अनेक प्रकार का गद्य विशाल परिमाण में निर्मित हो चुका था। प्राधान्य अललित (धार्मिक, दार्शनिक तथा उपयोगी) और अमौलिक (टीकात्मक तथा अनूदित) गद्य का था परंतु ललित स्वतंत्र गद्य का भी पर्याप्त निर्माण हुआ था। ललित गद्य के प्रमुख रूप थे—वार्ता, वात, वचनिका, वर्णक, दवावैत, काहाणी, कहानी, कथा, नाटक और जीवनी। ख्यात, विगत, वंशावली, पट्टावली, पत्र, आदि मौलिक उपयोगी गद्यरूप और बालावबोध, टीका, टबा, अवचूरि, वृत्ति, टिप्पण, वचनिका, भाषा आदि विस्तृत और संक्षिप्त व्याख्यानुवाद भी उपलब्ध है। पुस्तकपरिचय और जीवनी शैली की रचनाएँ भी प्राप्त है। नाटकों, पत्रों, शिलालेखों, भित्तिप्रशस्तियों और अन्य कागजपत्रों के रूप में भी गद्य के नमूने प्राप्त हुए है। निबंध, कहानी तथा समाचारपत्रों का प्रारंभ उन्नीसवी शती के प्रथम चरण से हुआ। शुद्ध गद्य के साथ तुकमय पद्यात्मक गद्य भी निर्मित हुआ। वस्तुतः सानुप्रास गद्य प्राचीन काल की एक विशेष प्रवृत्ति है। ललित गद्य अधिकांश में सानुप्रास है। पद्यग्रंथों में भी चर्चा, वार्ता, टीका, वात, वचनिका या किसी अन्य शीर्षक से यत्र तत्र गद्य मिलता है। यह गद्य शुद्ध (अनुप्रासरहित) है और प्राय. व्याख्या के उद्देश्य से लिखा गया है। जहाँ तक विषय का प्रश्न है, हिंदी के प्राचीन और मध्यकालीन गद्य मे धर्म, दर्शन और सांप्रदायिक सिद्धांत ही नही, इतिहास, चिकित्सा, ज्योतिष, प्रश्न, शकुन, काव्यशास्त्र, गणित आदि कितने ही विषय व्यक्त हुए है।

रीतिकाल मे भी मौलिक ललित गद्य का निर्माण कम हुआ, अनुवादो, टीकाओं और धार्मिक तथा उपयोगी पुस्तकों का प्राधान्य रहा। शुद्ध गद्य के साथ तुकमय चपल गद्य के भी उदाहरण मिलते है। धार्मिक, दार्शनिक और कथात्मक गद्य के अतिरिक्त चिकित्सा, शकुन, ज्योतिष, गणित, इतिहास, भूगोल आदि उपयोगी विषयो पर भी गद्य लिखा गया। कथात्मक गद्य तो विशाल परिमाण मे निर्मित हुआ। वात, वार्ता, दवावैत और वचनिका संज्ञक कथारचनाओं के अतिरिक्त संस्कृत, ब्रजभाषा और फारसी के कथा-ग्रंथों के अनुवाद छायावाद भी प्राप्त है। अनेक पुस्तकों मे सुंदर संस्कृतपरक और सजीव गद्य प्रयुक्त हैं। निबंधशैली की भी कुछ रचनाएँ मिलती हैं। १८३० ई० के आसपास के कुछ नाटकों में भी पद्य के साथ गद्य प्रयुक्त हुआ है। पुस्तकभूमिकाओं के रूप मे भी मौलिक, अकृत्रिम गद्य के कुछ नमूने उपलब्ध होते है। वेदांत, योग, आदि दार्शनिक विषयों और वैष्णवधर्म, जैनधर्म, सूफीमत, इस्लाम तथा ईसाई मत की दर्जनों सांप्रदायिक पुस्तकें

मौलिक तथा अनूदित रूप में प्राप्त हैं। इनमें से कुछ पुस्तकों में पर्याप्त सुंदर और विकसित गद्य मिलता है। इस काल के उत्तरार्ध में हुए बाइबिल के अनुवादो में भाषा प्रायः शिथिल और अपरिपक्व है। गद्यविकास में उनका योगदान नगण्य है। फोर्ट विलियम कालेज के पश्चात् अनेक स्कूल बुक सोसाइटियों और शिक्षा संचालकों ने विविध विषयों की बहुत सी अनूदित और स्वतंत्र पाठ्य पुस्तकें पं० दयाशंकर, रतनलाल, जवाहरलाल, ओंकार भट्ट, जयशंकर, मिसेज़ रो, ऐडम आदि लेखकों से खड़ीबोली में लिखवाईं। लल्लूलाल जी के पश्चात् निरंतर गद्यनिर्माण होता रहा। उदंतमार्तंड, बंगदूत, बुद्धिप्रकाश, समाचार-सुधा-वर्षण आदि पत्रपत्रिकाओ ने भी गद्यविकास मे योग दिया।

ब्रजभाषा गद्य

रीतिकाल में निर्मित ब्रजभाषा गद्य अत्यंत प्रौढ़ तथा परिष्कृत है। इस काल में धार्मिक, आध्यात्मिक ग्रंथों और ललित कथात्मक रचनाओं के अतिरिक्त काव्यशास्त्र, वैद्यक, ज्योतिष, प्रश्न, शकुन, सामुद्रिक, इतिहास, भूगोल आदि विषयों की भी पुस्तकें ब्रजभाषा में गद्य तथा पद्य गद्य मे लिखी गई। रीतियुग के प्रमुख ब्रजभाषा गद्यकार गो० गोकुलनाथ जी के अग्रज गोविंदराय जी के पौत्र श्री हरिराय (सं० १६४७–१७७२) हैं। उन्होने परिष्कृत परिमार्जित गद्य में लगभग तीस वार्ताग्रंथ निर्मित किए जिनमें "चौरासी वार्ता" तथा 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' के भावनात्मक (टिप्पणीयुक्त) संस्करण 'नित्यकृत्य', 'पुष्टिदृढाव', 'उत्सवभावना', 'सेवाभावना', 'घरूवार्ता भावना', 'वनयात्रा भावना', 'निजवार्ता', 'महाप्रभु जी की प्राकट्य वार्ता','सात स्वरूपन की भावना', 'वसंत होरी की भावना', छप्पन भोग की भावना', 'नित्यलीला भावना', 'द्वादश निकुंज की भावना', 'रासप्रसंग', 'श्री गोकुलनाथ जी की बैठक चरित्र', 'षटऋतु वार्ता' और 'गोवर्धन नाथ जी के प्राकट्य की वार्ता' उल्लेखनीय हैं। ये सभी ग्रंथ वल्लभसंप्रदाय के आचार विचार तथा उसकी तत्कालीन स्थिति पर प्रकाश डालने की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। परंतु यह निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता कि ये सभी हरिराय जी द्वारा लिखे गए है। कुछ उनके अंतेवासियों द्वारा लिखे गए प्रतीत होते है।

हरिराय जी ने गो० गोकुलनाथ जी के बचनामृतों (प्रवचनों) का संकलन, संपादन तथा संवर्धन भी किया था। अपनी भाव-भावना-संज्ञक टिप्पणियों के लिये वे प्रसिद्ध हैं। हरिराय जी ने कथात्मक तथा तथ्यनिरूपक दोनों प्रकार का गद्य लिखा है। सांप्रदायिक तथा धार्मिक होने पर भी हरिराय जी का गद्य महत्वपूर्ण हैं। उसमें पर्याप्त माधुर्य तथा लालित्य है। उनकी भाषा संस्कृतपरक है परंतु साथ ही सरल, सजीव तथा स्वच्छ। ब्रजभाषा गद्य के वे अग्रणी निर्माता और महान् उन्नायक थे। हरिराय जी के अतिरिक्त कल्याण भट्ट ने भी गद्यनिर्माण में कुछ योग दिया था। ये गोकुलनाथ जी के भ्रातृज थे। इन्हें गोकुलनाथ जी के 'बचनामृतों' का लेखक कहा गया है। 'जलभेद टीका' भी इनकी बताई जाती है। हरिराय जी के बाद श्री द्वारिकेश जी (सं० १७५१ से १८०० के लगभग)

ने वार्तासाहित्य के निर्माण तथा विकास का कार्य किया। उनके भी 'उत्सव भावना', 'भावभावना', 'श्रीनाथ जी आदि सात स्वरूपन की भावना', 'धनुर्मास भावना', 'उत्सव भावना' आदि अनेक भावनाग्रंथ (टिप्पणीपरक ग्रंथ) प्रसिद्ध हैं।

गो० गोकुलनाथ जी के नाम से प्रसिद्ध 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता', 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' और अन्य ब्रजभाषा गद्य पुस्तकें वस्तुत: उनके प्रवचनों के विस्तार हैं जो उनके अनुयायियों द्वारा बाद मे (प्राय: सं० १७०० के बाद) किए गए हैं। वार्ताओं में अधिकांशत: साहित्यिक सौष्ठवरहित सरल शैली है। शब्दयोजना चमत्काररहित है। वैष्णवो की जीवनियों के साथ जो कथातत्व आया है उसी के कारण कुछ रोचकता है। वर्णित व्यक्ति जीवन के अनेक क्षेत्रों और अनेक प्रांतों के हैं। इन वार्ताओं मे इतिवृत्त कथन त्वरापूर्ण, वर्णन स्वाभाविक और वातावरण यथार्थ है। अन्त मे आकस्मिक सुधार और धर्म की अस्वाभाविक विजय दिखाने मे ये आख्यान पर्यवसान में अरुचिकर हो गए हैं।

वार्तासाहित्य प्राय: प्रचारपरक, शिक्षात्मक और सोद्देश्य है और उसका गद्य प्रचार के उपयुक्त व्यावहारिक व्यासशैली का गद्य है। कहीं कहीं दृष्टांत और रूपकादि अलंकारों की योजना भी है। साहित्यिक दृष्टि से यह वाङमय कथा और जीवनी के मध्य की वस्तु है। प्राय: प्रत्येक वार्ता किसी वैष्णव के जीवन की एक महत्वपूर्ण घटना का परिचय देती है। कौतूहल का तत्व न्यून और ढंग वर्णनात्मक होने पर भी इन वार्ताओं में कहानी के अनेक गुण है। मानवीय संवेदना, चरित्रचित्रण, कथानक का किसी एक घटना पर आधृत होना, लघुता, एकसूत्रता आदि कहानी की अनेक विशेषताएँ बहुत सी वार्ताओं में विद्यमान है।

वार्तागद्य की भाषा संबंधी कुछ विशेषताएँ है—तत्सम, अर्धतत्सम शब्दों की बहुलता; प्राय: लघुगत्वर वाक्य, वाक्यारंभ में 'सो', 'तब', 'और', शब्दो का बारंबार आना; संज्ञोपवाक्यो के पूर्व बहुधा 'कि' अर्थक 'जो' शब्द; कहीं कहीं टूटी हुई लयवाले असंबद्ध वाक्य, भूतकाल की क्रिया का यत्र तत्र कर्तरि प्रयोग (यथा—'सो तब श्रीमदाचार्य आप श्रीमुख तें सूरदास सौं आज्ञा किए . . . तब श्री आचार्य जी आप प्रसन्न होय के कहे'—सूरदास की वार्ता), कहीं कहीं उर्दू शैली का शब्दक्रम (यथा—'यह देह दिन चार पाँच मे छूटेगी'), टीका शैली के 'सो तैसे हीं जगत में निगम जो वेद पुरान सो पुकारि कैं कहत हैं' और 'भगवदर्पण करयौ है तन मन धन जिनमें . . ऐसे . . . ऐसे धर्मन के' इस प्रकार के पंडिताऊ रूप और प्रयोग; कहीं कहीं संज्ञा की आवृत्ति, अनेक स्थलों पर शैथिल्य; कहीं कहीं प्रांतीय भाषाओं और बोलियों के ठेठ शब्दों के कारण अर्थ का आच्छन्न हो जाना; कृदंत और संयुक्त क्रियापदो के साथ तिङन्त और नामधातु क्रियापद; 'दैन्यता' ऐसे अशुद्ध शब्द, जहाँ तहाँ खड़ीबोली के रूप और फारसी अरबी के प्रचलित शब्द।

वल्लभ संप्रदाय की इस युग की अन्य उल्लेखनीय गद्य रचनाएँ हैं—श्री काकावल्लभ के 'बावन वचनामृत', श्री ब्रजभूषण के 'नित्यविनोद', 'नीतिविनोद', 'श्री महाप्रभु

जी तथा गोसाईं जी का चरित्र' तथा 'श्री द्वारिकाधीश जी की प्राकट्य वार्ता' और गोपिकालंकार भट्टू जी कृत 'श्रीनाथ जी की सेवाविधि' (सं० १६०० के लगभग)। इस संप्रदाय के कुछ अन्य ग्रंथ हैं—'महाप्रभून को प्राकटन' (ब्रिटिश म्यूजियम मे सुरक्षित), वल्लभ सप्रदाय ग्रथावली' ('आचार्य जी का स्वरूप' आदि छह पुस्तकें) और 'चौरासी शिक्षा'। इन रचनाओ का प्रधानत सांप्रदायिक और धार्मिक मूल्य है। उनकी भाषा संबधी उपयोगिता भी मानी जा सकती है। साहित्यिक दृष्टि से इनका महत्व अधिक नहीं है।[१]

रीतिकाल मे राधावल्लभ संप्रदाय में भी अनेक गद्यग्रंथों की रचना हुई है। इस संप्रदाय के इस युग के कुछ उल्लेखनीय ग्रंथ हैं—दामोदर स्वामी का 'भक्तिविवेचन' (भक्ति-भेद-सिद्धात, सं० १७०० के लगभग), अनन्य अली का 'स्वप्नप्रसंग'[२] (अथवा

---

१. वल्लभसप्रदाय के गद्य से कुछ उद्धरण दिए जाते हैं—(क) वैस्नव को प्रात:काल होत ही भगवदसेवा को चितन करनो ॥ रात्र कौं वियोग विचारनी ॥ दर्सन की आस राखनी ॥ उठत ही अपने कंठ की माला कों दर्सन करनौं (हरिराय नित्यकृत, पत्र ६)......श्री गोवर्धन उठाए है ॥ जब प्रभु पधारें। तब दास कों यह धर्म है ॥ जो उठ ढाडो सो प्रभु की इछा जानि सगरे व्रज में छत्राकार होयगो ॥ (हरिराय—सात स्वरूप की भावनापत्र १५६)। (ख) 'तुलसीदास श्री गोकुल मे आए, तब श्री गुसाईं जी सौ कहे सीता जी सहित श्री रामचद्र जी के दर्शन होय यह कृपा करो। तब ही रघुनाथ जी को व्याह भयो हतो। सो जानकी बहू जी पास ठाड़े हते। तब आप आज्ञा दिए, जो तुलसीदास को दर्शन देऊ। तब श्री रघुनाथ जी जानकी बहू जी वैसो ही दर्शन दिए।' (द्वारिकेश)। (ग) 'या कीर्तन में दोय बात सिद्ध भई। एक तो श्री ठाकुर जी में तथा गुरुदेव में भिन्न भाव न करनो। और एक श्री गुरुदेव को अपराध न करनो। फेरि श्री गुसाईं ने इनको श्राद्ध ध्रुव घाट पै करवायो, और कुआँ अधूरो हुतो सो पूरो करवायो। सो कूंआ कृष्णदास जी को ई बाजे है और वे रूख हूँ कुआँ के ऊपर है तापें बैठे रहते। सो कृष्णदास की वार्ता मे प्रसिद्ध है। (गिरधरलाल)। (घ) भगवदी कौ या प्रकार रहनौ ॥ सदा प्रसन्न रहै ॥१॥ सेवा काहू के भरोसे न छोडै ॥२॥ विरोध काहू सौ न करै ॥३॥ विषयत्र स्नान करै ॥४॥ भय और स्नेह कर सेवा करै ॥५॥ (चौरासी शिक्षा—प्रारंभिकांश)।

२. अनन्य अली की भाषा का नमूना प्रस्तुत किया जाता है—'तब भाई ने कही तू भीतर क्यों आयौ। तब मैने कही कि श्री लड़ैती जू ने बुलायौ तब मैं आयौ। तब लड़ैती जू ने कही कि यह हमारो है। यों कहि हँमकै मेरे कंधा पर बैठि गई। ('स्वप्नप्रसंग') इस ग्रथ में अनन्य अली ने अपने शैशव से बृंदावन आने तक की कुछ घटनाओं का वर्णन १५ स्वप्नप्रसगो के रूप में किया है।

'स्वप्नविलास' सं० १७८० के लगभग निर्मित ललित गद्य की रचना), प्रियादास का 'सेवक जू को चरित्र' (सं० १८४१, ललित गद्य, जीवनी), प्राणनाथ कृत 'हस्तामलक' (सं० १८५४ के लगभग) और चतुरशिरोमणिलाल रचित 'भावनासागर' (सं० १८६१)। इनके अतिरिक्त हितवृंदावनदास प्रणीत 'स्वप्नविलास' और गो० हितरूपलाल कृत 'सर्वशास्त्रसिद्धांत' तथा 'सप्रदायनिर्णय' ग्रंथ भी बताए जाते है। परंतु इनकी प्रामाणिकता संदिग्ध है। इन ग्रंथो मे इस सप्रदाय के सिद्धातपक्ष तथा विचार व्यवहार के संबंध में महत्वपूर्ण प्रकाश प्राप्त होता है।

वल्लभ सप्रदाय और राधावल्लभ सप्रदाय के बाहर भी ब्रजभाषा गद्य विशाल परिमाण में निर्मित हुआ। अन्य क्षेत्रों की महत्वपूर्ण रीतिकालीन ब्रजभाषा रचनाएँ है—दादूपंथी साधु दामोदरदास का 'मार्कंडेयपुराण'—अनुवाद (सं० १७०५ के लगभग), ओरछावासी मेघराज प्रधान का 'अध्यात्म रामायण का भावानुवाद' (१८वीं शती, प्रथम चरण), अक्षर अनन्य का 'अष्टागयोग' (सं० १७५०), सुरति मिश्र कृत 'बैताल पच्चीसी' (सं० १७६७, छायानुवाद), टट्टी संप्रदाय के श्री ललितकिशोरी एव ललितमोहिनीकृत 'श्री स्वामी जी महाराज की वचनिका' (प्रति स० १८००), गौड़ीय संप्रदाय के रूप गोस्वामी के संस्कृत नाटक 'विदग्धमाधव' के आधार पर निर्मित रामहरि की इसी नाम की सं० १८२४ की रचना, देवीचंदकृत अथवा लिखित 'हितोपदेश ग्रथ महा प्रबोधिनी' (हितोपदेश अनुवाद, प्रति स० १८४४), गो० विट्ठलनाथ जी के सस्कृत ग्रथ 'शृंगाररस मंडन' का किसी अज्ञातनाम लेखक द्वारा किया गया अनुवाद, गुमानीराय कायस्थ कृत (लाला हीरालाल रचित नहीं) 'आईने अकबरी की भाषावचनिका' (स० १८५२), मीनराज प्रधानकृत 'हरतालिका कथा', लल्लूलाल कृत 'राजनीति' ('हितोपदेश' अनुवाद), अथवा माणिकलाल ओझा रचित 'सभासम्न की वमावलो' (स० १८८५), नवलसिंह प्रणीत 'महाभारतवार्तिक' (स० १८६७)[1] और अज्ञातनाम लेखकों द्वारा निर्मित 'कोककथा', 'कोकमजरी' (स० १८०० के लगभग), 'कृष्ण जी की लीला' (स० १७६० के लगभग), 'हरतालिका कथा' (१८वीं शती), 'कथाविलास' (स० १८०० के लगभग) 'हितोपदेश' तथा 'भोजप्रबंध' का अनुवाद,[2] 'नासिकेतोपाख्यान' (सं० १८०० के लगभग),

---

१. इस समय कुछ अन्य ब्रजभाषानुवाद हैं—गरुड़पुराणभाषा (प्रति सं० १८११, बल्देव सनाढ्य), गरुड़पुराण अनुवाद (प्रति सं० १८२६, बुलाकराम), नासिकेत-महापुराण (प्र० स० १८८८), 'कीमिया सआदत' का अनुवाद (प्रति स० १८७४) और 'महाभारत' के द्रोणपर्व का अनुवाद।

२. कुछ रचनाओं से उद्धरण दिए जाते है—सा लाला हीरालाल मुनसी हुकम ल्यायो तब हुकम को सीस चढायो अरु लिषवे को आरभ कियो परम सेवग आग्या कारी गुमानीराय कायसन. . . .अब शेख अबल फजल ग्रथ को करता प्रभु को निमस्कार

'ब्रह्मजिज्ञासा', 'वेदांतनिर्णय', सीताराम-रस-तरंगिणी' (रामदिनचर्या), 'दृष्टांत', 'राजा विक्रम की वार्ता', 'पूर्णमासी की कथा', 'महालक्ष्मी की कथा', 'कालयवन कथा' (१६वीं शती), सं० १८४० का एक मुगल इतिहास, पौराणिक भूगोल की 'भूगोल पुरान' शीर्षक रचना और शकुनशास्त्र विषयक 'वशंतराजशकुन' (१६वीं शती)।[१]

ब्रजभाषा में ऐसे पद्यप्रधान ग्रंथ भी प्राप्त है जिनमें रीतिग्रंथकारों, कवियों और

करिकैं अकबर बादस्याह की तारीफ लिखने को कसत करैं है। अरु कहै है याकी बडाई अरु चेष्टा अरु चिमत्कार कहाँ तक लिखूं। कही जात नाही। तातें याके पराक्रम अरु भाँति भाँति के दस्तूर वा मनसूबा दुनिया में प्रगट भए ताको संक्षेप लिखत है।" ('आईने अकबरी की भाषावचनिका'); तब मंत्री पानी पीवन गयो। आगे देखै तौ पाहुन के गार लागी है। यैं नई सी लागी है। तब पानी धोय अरु लिखत बाँच्यो। तब जान्यौ राजा मोसौ द्रोह आचर्यौ है। और राजा खेद कर एकांत सूतो है। तब मंत्री राजा को मार्यौ। (हितोपदेश ग्रंथ महाप्रबोधिनी)। 'इतेक माँहि पौरिया आय बोल्यौ कि धर्मावतार सिंहलदीप ते एक काग मेघबरन नाम आयौ है। सु आपके दरसन की अभिलाषा किए द्वार पै ठाढौ है। मोहि कहा आज्ञा होति है। राजा कही, काग दूरदर्शी होतु है। याते वाहि राखनौ उचित है।" (राजनीति). । "पातस्याह कौ अपने काबू मे काबिल (काबुल) लै गयौ। राह मे अटक तै आसफ षाँ कौ बेटा समेत कैद करयो। काबिल तैं हिंदुस्थान की वोर फिरे तब नूरजहाँ गुपत फौज की नीगैदास्ती कीनी जबै रुहतासगढ आयैं।" (सं० १८४० का मुगल इतिहास) बुध तौ गनेस को ॥५॥ विवेक तौ ब्रहस्पित कौ ॥६॥ विद्या तौ सुक्र को ॥७॥ तेज तौ सूर्ज कौ ॥८॥ .... राग तौ श्रीराग ॥६८॥ वेल तौ नागवेल ॥६६॥ फल तौ नारियर ॥१००॥ सुगंध तौ कस्तूरी ॥१०१॥ (भूगोल पुरान)

जो कोई शकुन न मानै ताको सुभ सकूल देवि ॥१॥ जो कोई पसु पछी याको। प्रयोजन करिकै मानै सौ मुर्ष है। क्यौ पसु पंछी है सो पूर्वकर्म सूचक है ॥२२॥ जो कोई आपके सुभासुभ प्रश्न करै॥ तामै सौ कोनज्ञ होइ सौ शकुन शास्त्र ज्ञान तै त्रकालज्ञ होई॥ (वशंतराजशकुन)।

१. ये रचनाएँ भी महत्वपूर्ण हैं—श्रीपतिकृत 'माधवनिदान' (हिम्मतप्रकाश, सं० १६३० की प्रसिद्ध वैद्यक पुस्तक) हकीम फरासीसी कृत 'अंजुलिपुराण' (प्रति सं० १६१४), वैद्यचंद्रिका (प्रति सं० १६०७), सिविलाल कृत 'कर्मविपाक' (१६१० वि०), दुर्गाप्रसाद द्विवेदी रचित 'विवाहपद्धति', डुमरावनरेश शिवप्रकाश सिंह निर्मित 'सत्संगविलास' (रामकथा संबंधिनी शकाओं का समाधानप्रयास), 'घोरानन की वैदगई' (प्रति सं० १८६६)।

दार्शनिक लेखकों ने चर्चा, वार्ता, बात या किसी अन्य शीर्षक मे पद्य के साथ गद्य का भी यत्र तत्र प्रयोग किया है। रीतिकाल के इस प्रकार के कुछ ग्रंथ हैं : (क) रीतिग्रंथ—चिंतामणि त्रिपाठी कृत 'शृंगारमंजरी' (सं० १७०५ के लगभग) तथा 'कविकुलकल्पतरु' (सं० १७०७), कुलपति मिश्र कृत 'रसरहस्य' (सं० १७२७), दलपति वंशीधर प्रणीत 'अलंकाररत्नाकर' (सं० १७९२) तथा 'छंदप्रकाश', सोमनाथ रचित 'रसपीयूषनिधि' (सं० १७९४), भिखारीदास का 'काव्यनिर्णय' (सं० १८०३) और उनके नाम से प्रसिद्ध 'छंदप्रकाश', कविराय का 'कविरंजन', जयगोविंद वाजपेयी का 'कविसर्वस्व', नारायण की 'नाटयदीपिका', बेनी कवि का 'अलंकारशिरोमणि', रसिकगोविंद रचित 'रसिक गोविंदानंदघन' (सं० १८५८), रामसहायदास रचित 'वृत्ततरंगिनि' (सं० १८७३), बख्शी समनसिंह निर्मित 'पिंगल-काव्य-विभूषण (सं० १८८०) करनेस निर्मित 'बलभद्र-प्रकाश' (सं० १८८०), प्रतापसाहि निर्मित 'व्यंग्यार्थकौमुदी' तथा 'काव्यकलाविलास' (१९वीं शती का अंत)'; (ख) काव्यग्रंथ—राजा रघुराज सिंह प्रणीत 'रामस्वयंबर'; जसवंतसिंह प्रणीत 'प्रबोधचंद्रोदय नाटक' (सं० १७०५ के लगभग), हरिनाथ गुजराती रचित 'संग्रहकवित्त' (सं० १८२१), लल्लूलाल का 'माधोविलास (सं० १८७८), विश्वनाथ सिंह का 'आनंदरघुनंदननाटक (सं० १८८७ के लगभग), श्री गोपालचंद्र कृत 'नहुष' नाटक, नागरीदास (सं० १७५६-१८१९) कृत 'पद-प्रसंग-माला', 'गोपी-प्रेम-प्रकास', 'भागवत-पारायन-विधि', 'भक्तिमगदीपिका' और जान कवि तथा कवि भूषण के ग्रंथ; (ग) धार्मिक दार्शनिक ग्रंथ—रामसनेही पंथ के रामचरणदास (रचनाकाल सं० १८४५-५५) के 'अणभौविलास' (अनुभवविलास), 'कित्त', 'जिज्ञासुबोध', 'विश्रामबोध', 'विसवासबोध' तथा 'रामरसाइण', मनोहर दास निरंजनी (१८वीं शती) रचित 'सत प्रश्नोत्तरी', महंत शीतलदास (१८वीं शती) प्रणीत 'विवेकसार' तथा 'विवेकमाल' और रामदास (वही समय) निर्मित 'सूक्ष्मवेदांत' तथा 'आश्चर्य अद्भुत ग्रंथ'।[१]

---

१. ज्योतिष, भूगोल, सामुद्रिक, कोकशास्त्र आदि विषयों की भी गद्य-पद्य-मय पुस्तकें प्राप्त होती हैं। कुछ ग्रंथों से गद्यस्थल उद्धृत किए जाते हैं : चर्चा—"इहां चंद्र पद-प्रदोपादिक के आल्हादक तेजस पदार्थ तिनके आगमन ते पहिले ही जैसे दीप्ति फैलति है तैसे उनके मुखादि अंगन की अरु रत्नन की दीप्ति फैलति है।" (चिंतामणि त्रिपाठी—'कविकुल कल्पतरु')। इहां अन्य संभोगदुःखिता विपरीति लक्षना करि सखी सो उराहनो देति है सो व्यंग ... इहां प्रस्तुत प्रशंसा ही को चमत्कार, इहां विपरीति लक्षना करि नायक चिन्हवत जानिये (कुलपति—'रसरहस्य')।

नायिका की उक्ति नायक सों कै मैं सरोवर नहान जैहौ यामे विरय है। मेरे मुख चंद देषे कमल सकुचत है। सो विकास मिटि जैहै। अरु कोकन के सोक है। ताते रूपगर्विता नायिका रूप कारन, कमल का सकुचिवो कारज ता संबंध ते सुद्ध सारोपा लक्षना है। नायका को रूप गुन सरोजन को दुष होय। ताते उल्लास अलंकार। (प्रतापसाहि—व्यंग्यार्थ कौमुदी)।

रीतिकाल में टीका साहित्य भी पर्याप्त परिमाण में निर्मित हुआ है। गद्य तथा पद्यगद्य की बहुत सी समीचीन व्याख्यावाली टीकाएँ प्राप्त है। संस्कृत-टीका-प्रणाली के अनुकरण पर खडान्वयी तथा पर्यायमयी होने पर भी शृंगारकाल की अनेक टीकाओं में समुचित व्याख्या तथा स्वच्छ, सुबोध एवं सजीव भाषा मिलती है। ब्रजभाषा का टीकागद्य निश्चय ही वैसा हीन नही जैसा आचार्य शुक्ल और अन्य विद्वान् उसे बताते है।[1] विशेषकर गोपेश्वर, ईसवी खाँ, सुरति मिश्र, हरिचरणदास, ठाकुर, प्रेमदास, प्रतापसाहि और सरदार कवि की टीकाएँ पर्याप्त उत्कृष्ट है। इस काल की उल्लेखनीय ब्रजभाषा गद्य टीकाएँ निम्नांकित है :

(क) श्री हरिराय कृत 'शिक्षापत्र' की उनके अनुज गोपेश्वर कृत टीका (सं० १७००) के लगभग।

(ख) श्री हितहरिवंशकृत 'चतुरासी' की गोस्वामी ब्रजभूषण (सं० १७०० के लगभग), लोकनाथ (१७८० के लगभग), प्रेमदास (१७९४), रतनदास (सं० १८५३), मनोहरवल्लभ और चंद्रलाल (१९वी शती उत्तरार्ध) द्वारा निर्मित टीकाएँ।

(ग) 'भागवत' की माथुर कृष्णदेव (१७४० के लगभग), प्रियादास और सेवाराम मिश्र कृत टीकाएँ।

(घ) गीता की नाजर आनंदराम कृत 'परमानंदप्रबोध टीका' (सं० १७६१ गद्य पद्य), रामानुजी भगवानदास कृत 'गीता भाषामृत', नवरंग रचित 'गीताप्रश्न', किशोरदास की छह अध्यायो की टीका और जनभुवाल, मनीराम, कृष्णराय चक्रवर्ती, मंजु मिश्र और मेघनाद की १९वी शती की टीकाएँ।

(ङ) 'कविप्रिया' पर सुरति मिश्र कृत 'जोरावरप्रकाश टीका' (सं० १७६५ के लगभग), हरिचरणदास कृत 'कविप्रियाभरण' (सं० १८३५), लछिमनराव रचित 'लछिमनचंद्रिका टीका' (सं० १८७३), सहजराम की 'सहजराम चंद्रिका' (गद्यपद्य) और धीर कवि की टीका (१९वी शती उत्तरार्ध)।

(च) 'रसिकप्रिया' पर सुरति मिश्र की 'रसगाहकचंद्रिका टीका' (सं० १७६५ के लगभग), हरिचरणदास की टीका (सं० १८३५ के लगभग) और ईसवी खाँ की टीका (सं० १८१० के लगभग)।

---

१. श्री रमाकांत त्रिपाठी 'हिंदी गद्य मीमांसा' (तृ० सं०, पृ० १८३), आचार्य शुक्ल—हिंदी साहित्य का इतिहास (नवां सं०, पृ० ४०६), पं० जगन्नाथप्रसाद शर्मा—हिंदी की गद्य शैली का विकास, पंचमावृत्ति, पृ० १४), प्रभुदयाल मीतल—सूरदास की वार्ता (परिशिष्ट)। इन विद्वानों के मत के विरुद्ध टीका साहित्य के मर्मज्ञ रत्नाकर जी ने अनेक टीकाओं की प्रशंसा की है। (देखिए 'कविवर बिहारी', प्र० सं०, पृ० २३१–२७१)।

(छ) 'रामचंद्रिका' पर जानकीप्रसाद की टिप्पणी (सं० १८७२) और अनीराम की टीका (१९वीं शती का अंत)।

(ज) 'बिहारी सतसई' पर मानसिंह रचित टीका (सं० १७६० के लगभग), शुभकरण तथा कमलनयन की 'अनवरचंद्रिका टीका' (सं० १७७१), हरजू कीवि की टीका (सं० १७८० के लगभग ?), सुरति मिश्र कृत 'अमरचंद्रिका टीका' (सं० १७९४), हरिचरणदास कृत 'हरिप्रकाश टीका' (सं० १८३४) और असनीवासी ठाकुर द्वितीय, अमरसिंह, कृष्णलाल तथा प्रतापसाहि द्वारा प्रणीत १९वीं शती उत्तरार्ध की टीकाएँ।[१]

(झ) 'भाषाभूषण' पर हरिचरणदास रचित सं० १८३४ की टीका, रणधीर सिंह रचित 'भूषणकौमुदी' (१९वीं शती) और दलपतिराय, वंशीधर तथा प्रतापसाहि की टीकाएँ।

(ञ) मतिराम के 'रसराज' पर वख्लेश की सं० १८७८ की टीका तथा प्रतापसाहि की सं० १८९६ की टीका।

(ट) 'शृंगारशतक' पर किशोरदास की रचित अथवा लिखित १८वीं शती पूर्वार्ध की डॉ० वेनिस को प्राप्त टीका।

इन टीकाओं के अतिरिक्त पांडे हेमराज, दीपचंद, टोडरमल, जयचंद, बिलासराय, नंदराम आदि जैन लेखकों की भी बहुत सी टीकाएँ जैनग्रंथों पर उपलब्ध हैं। राधावल्लभ-सम्प्रदाय की उल्लिखित टीकाओं के अतिरिक्त इस सम्प्रदाय के 'वृंदावनशतक', 'करुणामृत', 'राधासुधानिधि' आदि ग्रंथों पर भी टीकाएँ प्राप्त हैं। इस काल की अन्य उल्लेखयोग्य टीकाएँ हैं—'भक्तमाल' की 'भक्तरसबोधिनी टीका' तथा 'भक्तउर्वसी टीका', 'सेवकवाणी' की हरिलाल व्यास और रतनदास कृत टीकाएँ, 'अमृतसागर' की सवाई प्रतापसाहि कृत टीका, चंद्रसेन मिश्र कृत 'माधवनिदान' टीका, रामजन कृत 'सजुगतिवचनिका टीका', नागरीदास 'अष्टक' की रतनदास कृत टीका और पुरणदासीय 'विज्या टीका'।[२]

---

१. 'बिहारी सतसई' की ईसवी खाँ कृत टीका की भाषा ब्रजभाषा की अपेक्षा खड़ीबोली के अधिक निकट है। 'मानस' पर महंत रामचरणदास (सं० १८४१), काष्ठजिह्वा स्वामी (सं० १८९५) तथा संतसिंह पंजाबी (सं० १८८८) कृत टीकाएँ प्राय: खड़ीबोली अवधी मिश्रित हैं।

२. इनमें से कुछ टीकाओं की भाषा पर खड़ीबोली का प्रभाव है। कुछ टीकाओं से उद्धरण प्रस्तुत किए जाते हैं—'याके अर्थ ऊपर करै जैसे श्रीकृष्ण रसरूप तिनकों सदा हृदय में ध्यान करे जो मानसी सेवा सो सब सिद्धि होय। सो कहत है जो प्रथम तनुजा वित्तजा मन लगायके सेवा करे सो सिद्धांत मुक्तावली में श्री आचार्य जी कहे हैं ('इकतालीस शिक्षा पत्र भाषा')। 'जोइ जोइ प्यारो करै सोइ सोइ मोहि भावै—इति प्यारो उचित अनउचित करै, जो सो सब भावै उचित अनुचित यह क्यो

जैसा पीछे दिए गए उद्धरणों से स्पष्ट है, रीतिकाल के अनेक ब्रजभाषा लेखकों (हरिराय, गोपेश्वर, ब्रजभूषण, द्वारिकेश, अनन्य अली, प्रियादास आदि) की भाषा पर्याप्त पुष्ट और प्रौढ़ है। उसमे भावव्यंजना की शक्ति और प्रवाह है, प्राचीनतर गद्य की अपेक्षा अधिक स्थिरता और परिष्कृति है। संस्कृत की तत्सम पदावली का आग्रह इस काल के भी गद्य में है। परंतु यत्र तत्र फारसी शब्द भी मिलते है। धार्मिक कथात्मक रचनाओं में कही कही भावपूर्ण और अलंकृत गद्य के सरस स्थल भी प्राप्त होते है। उपयोगी विषयों की रचनाओं में प्राय. व्यावहारिक भाषा मिलती है। हम देख चुके है कि इस युग के ब्रजभाषा गद्य में रूप तथा शैलियाँ बहुत हैं। विषयवैविध्य भी पर्याप्त है।

लिखौ कोऊ संदेह करै ताकौ उत्तर करिवे मे दोउ इहै उचित के अनउचित उनित तो प्यार विना हू करै (प्रेमदास—हितचौरासी टीका)। 'दंपति कहियै नाइक नाइकानिका आपुस मै देषत ही जहां अनुराग उपजिय परै फेर विन देषे दुष होई सो पूर्वानुराग विरह कहावे।' (सुरति मिश्र—'रसिक प्रिया टीका')

नायिका है तो पिय की सुहागिनि पै इसकी जो सखी है, सो इसके सुहाग को नजर लगने के वास्ते छिपावै है। और कै यौ अर्थ कीजिए कि नायिका को सौति के सुहाग का धोखा हुआ है सो सखी नायिका को समझावै है कि तेरी सौति ने उनींदी आखे करि कै और अलसौही देह करि कै सुहाग कौ सोरु डार्यौ है पै सुहागिनि तू ही है। अलकार पर्य्यायोक्ति, तिसका लक्षण। मिस कै कारज साधियै ॥ सो यहा उनींदी आखिनु अलसोही देह मिस पिय के सुहाग कौ सौर पार्‌यौ। सो इहा नजर न लगै। यह इष्टसाधन सखी करै है। यह हेत मिस। नेह तोही सो है इस ही में पर्य्यायोक्ति है (ईसवी खाँ कृत 'रसचंद्रिका' शीर्षक 'बिहारी सतसई' —टीका)।

विधु बंधु अर्थ चद्रमा के समान कै हास्यरस को चुरावन हारो यह अर्थी उपमा है अर्थ तें उपमा जानी जाति है कुंदन सों वर्ण बाद करन हार मोती की मित्त इहा किधौ उत्प्रेक्षा वा संदेहवाचक है मीत उपमा वाची है याते शंकर अरु एक उपमेय श्रीराम के गीत की अनेक उपमान है.....। (सरदार कवि—'कविप्रिया टीका', प्र० सं०, पृ० २५९)।

प्रथम गंगा ही सबतें अधिक तीर्थ होत भई ॥ अब तो श्रीकृष्ण की कीरति रूप तीरथ हू तै श्रेष्ठ है ॥ इन तीर्थ नें गंगा रूप तीरथ अल्प कीयौ है ॥ कीरति रूपी तीरथ ही सब तीरथ भयो है। (हरिवल्लभकृत १७५० वि० का भागवतानुवाद, ब्रजरत्नदास जी के संग्रह मे सुरक्षित)।

तुम या चराचर लोक के पिता हौ पूज्य परम गुरु हौ हे अचिंत्य प्रभाव या त्रिलोकी में तुम समान कोऊ नांही तुम तै अधिक कौन होयगों ॥४३॥ (कृष्णराय सतोषी, भगवतगीताभाषा, पत्र १२०, नागरीप्रचारिणी सभा काशी की प्रति)।

जीवनीपरक वार्ताग्रंथों के अतिरिक्त जीवनीशैली की भी दो रचनाएँ ('स्वप्नप्रसंग', और 'सेवक जू की चरित्र') प्राप्त है। परंतु रीतिकाल के उत्तरार्ध में खड़ीबोली के गद्य-भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो जाने के कारण ब्रजभाषा गद्य ह्रास को प्राप्त हो गया। गद्य-भाषा के रूप में ब्रजभाषा का प्रयोग ब्रज प्रदेश तक और उसमें भी प्रायः राधाकृष्ण के उपासकों तक सीमित रह गया।

खड़ीबोली गद्य

रीतिकाल में निर्मित खड़ीबोली गद्य अधिकांशतः टीकानुवादों के रूप में प्राप्त है। मौलिक रचनाएँ अपेक्षाकृत कम हैं। प्राचीनतर खड़ीबोली गद्य के समान इस काल का भी खड़ीबोली गद्य ब्रजभाषा मे और पूर्वी हिंदी, पंजाबी, राजस्थानी, फारसी आदि भाषाओं में से किसी एक या अनेक से प्रभावित है। परन्तु यह प्रभाव अब अपेक्षाकृत कम है। इस काल के प्रमुख अनूदित खड़ीबोली गद्यग्रंथ है—'भाषाउपनिषद' (सं० १७७६), 'भाषायोगवासिष्ठ' (सं० १७९८), 'भाषापद्मपुराण' (सं० १८२३), 'आदिपुराण-वचनिका' (सं० १८६१), 'मल्लीनाथ-चरित्र-वचनिका' (सं० १८२८), सुदृष्टि-तरंगिणी-वचनिका (सं० १८३२) और 'हितोपदेश वचनिका' (सं० १८३५ के लगभग)।

'भाषाउपनिषद्' तैत्तिरीयोपनिषद् आदि बाईस उपनिषदों के फारसी अनुवाद का हिंदी रूपांतर है। कलकत्ता की एशियाटिक सोसाइटी के संग्रह में सुरक्षित इस उपनिषद अनुवाद की (१०७ बृहत् पत्रो की) प्रति मे भाषा ब्रजभाषा मिश्रित और प्रायः अपरिमार्जित है। संस्कृत तत्सम शब्दों का बाहुल्य है। वाक्यरचना पूर्णान्वियपद्धति पर प्रायः सीधी और सुष्ठु है परंतु कहीं कहीं उसपर फारसी अनुवाद का प्रभाव है।[१]

रामप्रसाद निरंजनी के नाम से प्रसिद्ध 'भाषायोगवासिष्ट' की भी भाषा 'बहुत साफ सुथरी' या 'परिमार्जित' नहीं है। जैसा इस ग्रंथ के नवलकिशोर प्रेस से प्रकाशित संस्करणों की भूमिका से, बंबई से सं० १९२० में प्रकाशित संस्करण से तथा इस ग्रंथ की उपलब्ध हस्तलिखित पोथियों से प्रकट है, यह ग्रंथ मूलतः पंजाबी-ब्रजभाषा-मिश्रित खड़ी-बोली में था। बाद में इसे भाषा सुधार कर प्रकाशित किया गया था। रामप्रसाद जी ने कथारूप में इसका प्रवचन किया था। पटियालानरेश द्वारा नियुक्त दो गुप्त लेखकों

---

१. इस रचना से दो उद्धरण प्रस्तुत किए जाते हैं—

अथ यह जो सर्वलोक अन्न ही है अरु अन्न ही अन्न को भक्षणकर्ता है जो कोउ या भेद का ज्ञाता हो वहि सर्वसंसार का भक्षणहू होत है अरु भक्षण का करणहारा हूता हो है जद्यपि संपूर्ण भक्षण अरु भक्षण का करणहारा एक इती का है तौ हूँ ज्ञाता या भेद का सर्व का धनी होत है अरु अपना धनी अवर नही राषतेब ननु उतप्रत्य मुक्त की संपूर्ण संसार का इंद्रिय के देवता है। (भाषाउपनिषद्, एशियाटिक सो० की प्रति, पत्र २–२७)।

द्वारा यह लिपिबद्ध किया गया था। इस ग्रंथ की भाषा की मुख्य विशेषताएँ हैं—तत्सम-अर्ध-तत्सम शब्दों की बहुलता, 'भासता है', 'फुरता है', ऐसे नामधातु क्रियापद; 'बोलते भये', 'होत भया', ऐसे आरंभिक पूर्णकाल (इन्सेप्टिव परफेक्ट) के क्रियारूप, ब्रजभाषा-रूपों का मिश्रण, यत्र तत्र पंजाबी उच्चारणवाले शब्द, 'कैसा है अभुक', 'सो कैसा है', 'ऐसा जो', 'सो तिस रूप' इत्यादि टीकाशैली के वाक्य; 'आ' प्रत्ययांत पु० बहुवचन संज्ञापद तथा 'इयां' प्रत्ययांत स्त्री बहुवचन संज्ञाएँ, विशेषण तथा विशेषण कृदंत, यथा—'किरणा आवैहै', 'पदमनीयाँ मूँदियाँ जानियाँ है', 'माता उठियाँ', धारणैहारियाँ, करत भइयाँ है', 'या' विभक्तिवाले एकवचन पु० पूर्ण कृदन, यथा—'कह्या', भोग्या है, गिर्या, जाण्या है, संस्कृत शैली के पंडिताऊ प्रयोग, यथा—आश्चर्य को प्राप्त भया, मन की गम नहीं, शोभायमान। ये प्रवृत्तियाँ शृंगारकाल की अन्य खड़ीबोली गद्य रचनाओं में भी न्यूनाधिक प्राप्त होती है।[१]

बसवावासी दौलतराम जैन कृत 'भाषापद्मपुराण' अथवा 'पद्मपुराणवचनिका' राजस्थानी ब्रजभाषा प्रभावित खड़ीबोली में प्राकृत की जैन रामकथा का अनुवाद है। इस वचनिका में यत्र तत्र टीकाशैली भी है। 'अर्थात्' तथा 'अर्थ' शब्द के साथ विस्तृत भावार्थ भी प्रस्तुत किए गए है। विशेषणों की व्याख्या के स्थलों पर वाक्य प्राय: लंबे है। शब्द अधिकतर तत्सम, अर्धतत्सम है। इस वचनिका की कुछ महत्वपूर्ण भाषाप्रवृत्तियाँ हैं—वर्तमान सामान्य काल में 'जीवै है' 'रहे है', 'होय है' ऐसे तिङन्त; करतभये, शोभना भया ऐसे पंडिताऊ प्रयोग, करि (से), विषय (में), बहुरि (फिर) आदि अव्यय और संज्ञा के पुंल्लिग विकारी बहुवचन के 'ओ' विभक्तिवाले रूप। दौलतराम जी की दूसरी प्रख्यात वचनिका 'आदिपुराणवचनिका' है जो भगवान ऋषभदेव तथा राजा श्रेयांस के जन्मों की कथा से संबद्ध जैन प्राकृत ग्रंथ 'आदिपुराण' का व्याख्यामय अनुवाद है। दौलतराम जी की अन्य गद्यरचनाएँ है—'पुण्याश्रव कथाकोष वचनिका','वसुनंदिश्रावका-चारवचनिका' 'परमात्म-प्रकाश-वचनिका', 'श्रीपाल-चरित्र-वचनिका' तथा 'हरिवंश-पुराण-वचनिका'। इनमें भाषाशैली की स्थिति लगभग वही है जो 'पद्मपुराण वचनिका' में।

'मल्लीनाथचरित्र वचनिका' के रचयिता इंदौरवासी दौलतराम जैन थे। भगवान् मल्लीनाथ के जन्म, वैराग्य, ज्ञान तथा निर्वाण का विवरण प्रस्तुत करनेवाली इस वचनिका में, जिसकी उपलब्ध प्रति तीस बृहत् पत्रों की है, भाषा ब्रजभाषा मिश्रित है और

---

१. इस ग्रंथ से दो उद्धरण प्रस्तुत किए जाते हैं: कैसा है सचचित आनंद रूप सो कँहते है। जिसते इह सर्व भासते है। अरु जिस विषै इह सर्व लीन होते है अरु जिस विषै इस सर्व इस्थित है। तिस सत आतमा को नमस्कार है। जो क्षीरा समुद्र ते निकस्या है। चद्रमा के मंडल विषे रहता है। औसा जो स्वत: सिद्ध अमृत है जिसको पाइ करी कदाचित् मृत न होते। तिस चेतन अमृत की हम उपासना करते है।

व्याख्या विस्तृत । 'सुदृष्टि तरंगिणी' के रचयिता टेकचद जैन हैं । ५०२ पत्रों की इस बृहदाकार वचनिका मे ४२ पर्वों में गेय, हेय, उपादेय का कथन है । इसमे भी विस्तृत व्याख्या है । प्रतिपाद्यमान विषय के सूचक उत्थानिकावाक्य अन्य वचनिकाओं की भाँति यहाँ भी विद्यमान है । टेकचद जी ने 'षटपाहुड' और 'श्रुतसागरी तत्वार्थ सूत्र' पर भी वचनिका का निर्माण किया था । भाषा मे व्रजभाषा तथा राजस्थानी का मिश्रण है । 'हितोपदेश वचनिका' किसी अभयचद की रचना है । इसकी भाषाशैली की कुछ प्रवृत्तियाँ हैं—कथंभूता टीकापद्धति, उसके साथ भावार्थ, दृष्टांत रूप में कहानियाँ, व्रजभाषा राजस्थानी मिश्रित खड़ीबोली, तत्सम अर्धतत्सम शब्दों का बाहुल्य, नामधातु क्रियापद, आरभिक पूर्णकाल के 'कर्ता भया' ऐसे प्रयोग और वर्तमान सामान्य काल मे 'रहे हैं', 'बुझै है' ऐसे क्रियापद ।

इस काल के अन्य उल्लेखनीय टीकानुवाद है—'गोरखनाथ के सत्ताईस पदों का तिलक', 'पारसभाग', 'भगवद्गीतासुपनिषद', 'अजीर्णमजरी टीका', 'दृष्टांतसागर टीका', 'मानस टीका', 'सूर्य सिद्धात', 'गोराबादल की वीरता' ।

'गोरखनाथ के सत्ताईस पदो का तिलक' डा० बडथ्वाल द्वारा 'गोरखबानी' परिशिष्ट ३ में प्रकाशित किया गया है । 'पारस भाग' अथवा 'महमदगजाली री वात' फारसी के 'कीमिया शहादत' का सेवापथी कृपाराम द्वारा किया गया अनुवाद है । इस रचना की भाषा मिश्रित, अपरिमार्जित तथा अशक्त है । 'भगवद्गीतासुपनिषद' गीता का किसी मशाराम द्वारा किया गया अनुवाद है । भाषा इस रचना की अशुद्ध, अशक्त और व्रजभाषा से प्रभावित है । 'अजीर्णमजरी टीका' किसी काशीनाथ की निर्मिति है । इस टीका की लंदन के इंडिया ऑफिस मे सुरक्षित स० १८०० की प्रति मे राजस्थानी व्रजभाषा मिश्रित अपरिमार्जित खड़ीबोली प्रयुक्त है । 'बिहारी सतसई' की स० १८०९ की ईसवी खाँ कृत टीका प्राप्त है । इस टीका की भाषा व्रजभाषा मिश्रित है । टीकाशैली सुदर और स्वच्छ है । लल्लूलाल जी ने भी 'लालचद्रिका' शीर्षक टीका 'बिहारी सतसई' पर लिखी थी । 'कबीर के १२१ पदों की टीका' (लिपि स० १८५५) मे अस्पष्ट खडान्वयी व्याख्या है । परतु गूढ स्थलों को समझाने के कारण यह पर्याप्त महत्वपूर्ण है । भाषा मिश्रित है । 'दृष्टातसागर टीका' रामसनेही पथ के सस्थापक श्रीरामचरणदास के ग्रथ 'दृष्टातसगार' की टीका है जो उनके अतेवासी रामजन द्वारा स० १८४० के लगभग निर्मित की गई थी । भाषा इस टीका की राजस्थानी व्रजभाषा मिश्रित, विकृत तथा तद्भवनिष्ठ है । 'मानस' की महंत रामचरणदास और गुलाबसिंह पजाबी कृत टीकाओं मे क्रमश. अवधी-पजाबी-मिश्रित खडीबोली प्रयुक्त है । 'सूर्यसिद्धात' (स० १८३९) पडित कमलानद मिश्र द्वारा सस्कृत से अनूदित ज्योतिषग्रथ है । भाषा पर पूर्वी प्रभाव है । 'गोराबादल की

वीरता[१] (सं० १८८० के लगभग) जटमल कृत गोराबादल की पद्यवीरता का अनुवाद है। भाषा अशक्त और अव्यवस्थित है।

इन टीकात्मक तथा अनूदित रचनाओं के अतिरिक्त रीतिकाल में मौलिक स्वतंत्र गद्य रचनाएँ भी पर्याप्त संख्या मे निर्मित हुई।

इस काल की ब्रजभाषा, फारसी, पंजाबी आदि से प्रभावित खड़ीबोली गद्य की कुछ उल्लेखनीय मौलिक रचनाएँ हैं --'एकादशी महिमा', 'सीधा रस्ता', 'फर्सनामा' (पोथी सलोत्री की), 'बाजनामा', 'सकुनावली', 'हकीकत', 'नरसिंहदास गौड़ की दवावैत', 'जिनसुखसूरि मजलस', 'लखपत दवावैत', 'रानी केतकी की कहानी' (इंशा कृत), 'मंडोवर का वर्णन', 'सुरासुर निर्णय', 'चकत्ता की पातस्याही की परंपरा', मोक्षमार्गप्रकाश', 'अनुभवप्रकाश', 'चिद्विलास' और 'परमात्मपुराण'।[२] इनमें प्रथम दो धार्मिक, तीसरी चौथी चिकित्सा विषयक, पंचम शकुन विषयक, छठी प्रणामीसंप्रदाय के 'मारफत सागर' ग्रंथ का परिचय, सातवी-आठवी-नवी और दसवी ललित सानुप्रास गद्य की कथात्मक वर्णनात्मक रचनाएँ, दसवी व्यावहारिक गद्य की वर्णनात्मक रचना, ग्यारहवी निबंधात्मक, बारहवी इतिहास विषयक और अंतिम चार जैनधर्म की दार्शनिक रचनाएँ हैं। यहाँ यह उल्लेख करना असंगत न होगा कि जटमल कृत 'गोराबादल की वीरता' पद्य रचना है, गद्य की नहीं। इसका गद्यरूपांतर किसी ने १८२४ ई० के लगभग किया था। उल्लिखित 'दवावैत' संज्ञक सानुप्रास गद्य की रचनाएँ प्राय: राजस्थानी मिश्रित खड़ीबोली में है। वर्णनात्मक, कथात्मक तथा निबंधात्मक रचनाएँ विरल है। कुछ नाटकों और पत्रों मे भी ललित गद्य के दर्शन होते है। जैसा हम कह चुके है, ललित गद्य की अपेक्षा उपयोगी गद्य का---दार्शनिक, धार्मिक और चिकित्सा, ज्योतिष, इतिहास, भूगोल, सामुद्रिक, शकुन आदि विषयों के शुष्क गद्य का प्राधान्य है। यह भी अनूदित रूप मे अधिक हैं।

---

१. कुछ उद्धरण द्रष्टव्य हैं---बड़े बड़े वैद्य आगे हुए हैं। आयुर्वेद के सपूर्ण के जाणण वाले। कौण कौण से पंडित। आत्रेय। सुश्रुत। चरक। हारीत। वाग्भट। माधव। इनहि आदि दै करि जे पंडित। तिनौ कै ताई मैं नमस्कार करि ग्रंथ का आरंभ करूँ हुं। इस लोक का सुष कै वासते। यह अजीर्णमंजरी ग्रंथ भाषा करूँ हुं। (अजीर्ण मंजरी टीका---प्रारंभिकांश)।

२. कुछ रचनाओं से गद्यांश अवतरित किए जाते हैं---

अम्माबाव पस जानो एक मुसलमान बेन (बहेन) अऊर बेटी सबका अल्लाताला एक हैं ऊनके तईं धड़ बदन हांथ अऊर पांव नाख कान पेट पीठ कुछ नहीं है धड़ बदन मैंटी से बनी हैं बै मैंटी पानी आग हवा सबके तईं तौ आपीं बनाइंन हैं आसमान जमीन पाहाड़ नद्दी दरिया सब ऊन्हीं बनाइन हैं। (सीधारस्ता)।

ईसा की १६वीं सदी के प्रारंभ में फोर्ट विलियम कॉलिज में भी खड़ीबोली गद्य में महत्वपूर्ण पुस्तकों का निर्माण हुआ। इस कॉलिज से संबद्ध व्यक्तियों द्वारा रचित कुछ ग्रंथ हैं—'नासिकेतोपाख्यान', 'रामचरित्र', 'प्रेमसागर', 'लालचंद्रिका टीका', 'सिंहासन बत्तीसी', 'बैताल पच्चीसी', 'भक्तमाल टीका' और 'हातिमताई' का अनुवाद। सदल मिश्र कृत 'नासिकेतोपाख्यान', 'यजुर्वेद' तथा 'कठोपनिषद्' की नचिकेता कथा पर आधृत है। इस पुस्तक में पूर्वी प्रयोगों, ब्रजभाषा रूपों, पंडिताऊपन तथा असंतुलित शिथिल वाक्यों के होने पर भी खड़ीबोली गद्य का पर्याप्त स्वच्छ सुष्ठु रूप है। 'रामचरित्र' भी सदल मिश्र की रचना है। यह ग्रंथ, जिसकी प्रति लंदन के इंडिया ऑफिस पुस्तकालय में सुरक्षित है और अब बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् द्वारा प्रकाशित कर दिया गया है, 'अध्यात्म रामायण' का रूपांतर है। भाषा 'नासिकेतोपाख्यान' के समान है। शैली में त्वरा, सरलता और स्पष्टता है। श्री लल्लूलाल कृत 'प्रेमसागर', जो 'भागवत दशम स्कंध' के चतुर्भुज मिश्र निर्मित ब्रजभाषा अनुवाद का रूपांतर है, सानुप्रास काव्याभास गद्य की रचना है। भाषा ब्रजभाषा से प्रभावित है। 'लालचंद्रिका टीका' 'बिहारी सतसई' की लल्लूलाल कृत टीका है। 'सिंहासन बत्तीसी', जिसकी रचना लल्लूलाल जी ने सं० १८५८ में काजिम अली की सहायता से की थी, सुंदरदास के ब्रजभाषा अनुवाद का हिंदुस्तानी रूपांतर है। 'बैताल पच्चीसी' शिवदास रचित संस्कृत रचना के सुरति मिश्र कृत ब्रजभाषानुवाद का लल्लूलाल तथा मजहर अली द्वारा किया गया खड़ीबोली रूपांतर है। 'भक्तमाल टीका' (श्री तारिणीचरण मित्र द्वारा सं० १८८४ में 'हिंदी ऐंड हिंदुस्तानी सेलेक्शंस' में अन्य रचनाओं के साथ प्रकाशित) 'भक्तमाल' की विस्तृत व्याख्या है। भाषा इसकी ब्रजभाषामिश्रित है। 'हातिमताई' का अनुवाद सं० १८६५ में पं० योगध्यान मिश्र ने किया था। इस ग्रंथ की भाषा पर्याप्त स्वच्छ, सुष्ठु और संस्कृतपरक है।

१६वीं शती पूर्वार्ध की दो तीन रचनाएँ गद्यरूपों के उद्भव की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। इनमें एक है फोर्ट विलियम कॉलिज के डब्ल्यू० चैपलिन का सतीप्रथा पर लिखित लेख, दूसरी है 'स्त्री-शिक्षा-विधायक' शीर्षक निबंधात्मक रचना और तृतीय 'श्रीकृष्ण चरितोपाख्यान' नामक १८३० के लगभग लिखित नाटक जिसमें पद्य ब्रजभाषा और पूर्वी में और गद्य खड़ीबोली में है। यहाँ यह निर्देश करना अप्रासंगिक न होगा कि मुंशी सदासुख राय निसार, जिनका नाम बहुत से विद्वानों ने भ्रमवश सदासुखलाल नियाज बताया है और जिनके 'सुखसागर' की चर्चा प्राय: सभी इतिहास पुस्तकों में मिलती है, 'सुखसागर' नामक किसी ग्रंथ के रचयिता नहीं हैं। 'सुखसागर' उनका उपनाम था। 'विष्णुपुराण' या भागवत' का मुंशी जी ने पद्यानुवाद किया था। उनकी दो अन्य गद्य रचनाएँ अवश्य प्राप्त हैं—'सुरासुरनिर्णय' और 'वार्तिक'। लाला भगवानदीन और रामदास गौड़ ने इन रचनाओं को हिंदी-भाषा-सार (गद्य भाग) में प्रकाशित किया था। इस ग्रंथ की भूमिका में वे लिखते हैं 'हिंदी में विष्णुपुराण आदि कई पद्यग्रंथ लिखे . . . उर्दू फारसी में निसार, हिंदी में सुखसागर उपनाम था।'

इस काल की अन्य उल्लेखनीय रचनाएँ हैं—'पुरुष-परीक्षा-संग्रह' (१८१३ ई०), 'दायभाग' (सन् १८३२ ई०, लल्लूलाल के अनुज दयाशंकर द्वारा अनूदित, भाषा संस्कृतनिष्ठ तथा ब्रजभाषा प्रभावित) और 'विद्याभ्यास का फल' (१८३६ ई०)।[१] इस समय के बाइबिल अनुवादों और गोसाईं लेखकों की पुस्तकों की भाषा अपरिमार्जित और अपरिपक्व है। प्रचारात्मक होने से साहित्यिक दृष्टि से ये महत्वहीन हैं। इनसे भाषा के प्रचार-प्रसार को अवश्य कुछ योग मिला। इस समय (सन् १८२५ के आसपास से) 'उदंत-मार्तंड', 'बंगदूत' आदि कुछ पत्र भी प्रकाशित हुए। खड़ीबोली गद्य के प्रसार में इन पत्रों का योग पर्याप्त महत्वपूर्ण है।

इस समय की अधिकतर रचनाओं की भाषा संस्कृतपरक है। इसके कारण कहीं कहीं भाषा निर्जीव हो गई है। पुराने ढंग के 'पदमिनियाँ', 'साथवालियाँ', 'गानियाँ' 'बिन ब्याहियाँ', ऐसे 'याँ' विभक्तिवाले स्त्री बहुवचन रूप, 'राजों', 'देवतों' 'अनगिनत गौ', 'करिनहारा' ऐसे सज्ञापद, 'तिसे', 'बुद्', 'तिन्होंने', 'दोनों के', 'तिन्ह को', 'हमो को', ऐसे सर्वनाम, 'पहचानूँ हूँ', 'आवे है', 'चीन्हते हैं', किई' (की) 'लिई' (ली) हुए, हुवा, भया, दीजे, ऐसे क्रियापद और इनके साथ ब्रजभाषा तथा पूर्वी शैली के बहुत से शब्दरूप इस काल के गद्य में उपलब्ध होते हैं। परंतु अधिकतर आधुनिक ढंग के ही शब्दरूप प्रयुक्त हुए हैं। आकारांत रूपों का बाहुल्य है। इनके एकवचन विकारी तथा बहुवचन अविकारी रूप एकारांत हैं। संज्ञा कृदंतों का प्रत्यय 'ना' है। कर्तृ संज्ञा में 'हार', 'हारा', 'हारे' की अपेक्षा 'वाला', 'वाले' रूप अधिक प्रयुक्त है।[२]

---

१. १६वीं शती की कुछ अन्य गद्य रचनाएँ हैं—**ललित**—'पोस्तीरासो' 'मिमला वार्ता' 'ससिपना वार्ता', 'दुरगादत्त की दवावैत', 'नक्लियात', 'मूल सूत्र', 'नीतिकथा', 'उपदेशकथा', 'मनोहर कहानियाँ', 'ज्ञानप्रकाश' आदि कथात्मक पाठ्यपुस्तकें, **उपयोगी**—'इंगलैंड का इतिहास', 'कथासार', 'भूगोलसार', 'बाइबिल' के केरे, चैंबरलेन, बाउले आदि के अनुवाद और 'पंचकोश निर्णय', 'व्रजसूची ग्रंथ का खंडन', 'भागवतसार', 'आत्मसिद्धांत' तथा 'गोरखशत पराक्रम'।

२. कुछ अन्य भाषाप्रवृत्तियाँ हैं—प्रायः ब्रजभाषा शैली के 'इ' प्रत्ययांत पूर्वकालिक, 'न' अंतवाले तादार्थ्यक कृदंत, यथा—ब्याहन आए, 'पुकारन लागे; भूतकाल में प्रायः भूतकालिक (पूर्ण) कृदंतों का व्यवहार; बहुत से शिथिल, अस्पष्ट तथा अव्यवस्थित वाक्य, लंबे वाक्यों मे प्रायः एक मुख्य क्रिया के साथ पूर्वकालिक कृदंतों, वर्तमान अपूर्ण कृदंतों अथवा विकारी भूत कृदंतों की लड़ी। वर्तमान अपूर्ण कृदंतो से बने विशेषणोपवाक्यों को प्राय. अंत में 'ऐसे जो', 'ऐसे जो सो' शब्दों से संयुक्त करना। इस प्रकार के वाक्यों के प्रारंभ में बहुधा टीकाशैली के 'अमुक, कैसा है जिसका ...' ये अथवा इस प्रकार के अन्य शब्दों का प्रयोग, मुख्य क्रियारहित और दूरान्वय-वाले वाक्य, कहीं कहीं विचित्र वक्र रचना और तुकमय पद्यात्मक तथा उर्दूशैली

इस समय के लेखकों ने प्रायः संस्कृतपरक भाषा का प्रयोग किया है। संस्कृत-निष्ठता के आग्रह के कारण इस समय की गद्यभाषा कहीं कहीं कृत्रिम और निर्जीव भी हो गई है। जैसा हम देख चुके हैं, रीतिकाल का खड़ीबोली गद्य प्रायः मिश्रित भाषा में है। समीपवर्तिनी भाषा और तत्कालीन प्रधान साहित्यभाषा ब्रज के संपर्क से मुक्त शुद्ध खड़ीबोली गद्य नहीं मिलता। साहित्य की मान्य परिनिष्ठित भाषा न बन पाने के कारण खड़ीबोली १९वीं शती के मध्य तक ब्रज, पूर्वी, राजस्थानी, पंजाबी या फारसी में से किसी एक या अनेक के सहारे ही चल सकी, स्वतंत्र और आत्मनिर्भर न हो सकी। खड़ीबोली ही नहीं, राजस्थानी, ब्रज और अवधी का भी अन्य भाषाओं के प्रभाव से मुक्त शुद्ध गद्य कम ही मिलता है। प्राचीन और मध्यकाल में खड़ी बोली गद्य का जो उचित विकास न हो सका, उसके और भी कारण हैं। कृष्णभक्ति के व्यापक प्रचार के कारण और काव्य-साहित्य में सुमान्य होने के कारण गद्य में भी ब्रजभाषा का प्राधान्य रहा। मुसलमान शासकों, सैनिकों और साहित्यिकों के बीच खड़ीबोली के फारसीमय रूप के स्वीकृत होने से अधिकतर हिंदू लेखक उसे मुसलमानी भाषा मानकर उससे प्रायः दूर दूर रहे। उसका अस्तित्व भी तब तक प्रायः एक बोली के रूप में था। शब्दभंडार सीमित था। साहित्यिक अभिव्यक्ति की समुचित सामर्थ्य न था।

दक्खिनी गद्य

रीतिकाल में दक्खिनी में पूर्वपरंपरा के अनुसार सूफी और इस्लामी धर्मग्रंथों का भाष्य तथा अनुवाद और धार्मिक दार्शनिक पुस्तकों का लेखन अधिक हुआ। कुछ अनूदित

जैसा वाक्यविन्यास, कुछ स्थलों पर सहायक क्रियारहित पंगु वाक्य, कारकचिह्न का कहीं कहीं अप्रयोग, 'अरु', 'और' 'सो', 'कि' तथा 'जो' संयोजकों का प्रयोग-बाहुल्य; 'यत्र तत्र होता चला आया है', 'उठ खड़ा हुआ', ऐसी लंबी संयुक्त क्रियाएँ, कहीं कहीं इस क्रिया के अपेक्षित होने पर भी इसका अभाव, यथा—'वह भी धरती पर गिरी', मेरी छाती फटती है, यत्र तत्र विचित्र अशुद्ध क्रियापद 'चल खड़े हुए' (नासिकेत०), 'चढ़ाया की', ('बैताल पच्चीसी'), नामधातु क्रियापदों का कम हो जाना, इनका अधिकतर वर्तमान सामान्य काल में प्रयोग, प्रारंभिक पूर्णकाल के 'करत भये' ऐसे प्रयोग, कहीं कहीं 'कंपायमान', 'शोभायमान' ऐसे 'मान' प्रत्ययांत वर्तमान अपूर्ण कृदंत, अनेक स्थलों पर विचित्र अशुद्ध प्रयोग, यथा—मुझे कहा, राजा को प्रणाम किया, तुझे क्या बस करूँ (प्रेमसागर), रंडियाँ बुलबुलियाँ जो अपने मद में उछलियाँ हैं (रानी केतकी की कहानी), जाया चाहती हूँ, ज्ञानविज्ञान को पहुँची, आपने निपट हमको सनाथ किया, विनती किए पर (नासिकेतोपाख्यान), इस लोग का जय होगा, विचार में ठहरेगा, सिव बार्ता में (रामचरित्र)।

कथापुस्तकें और इतिहास, चिकित्सा तथा अन्य विषयों की कुछ पुस्तकें भी प्राप्त हैं। पत्रो, हुक्मनामो और अर्जियों की एक सग्रहपुस्तक, बी० शुल्ज नामक डच लेखक का व्याकरण और इन्हो का बाइबिल का अनुवाद (१७४१ ई०) भी उपलब्ध है। पुराने दक्खिनी लेखकों की भाषा की भाँति इस काल के भी गद्यकारों की भाषा प्राय: उर्दू शैली की है। शब्दरूपो और वाक्यविन्यास की दृष्टि से इस काल के दक्खिनी गद्य की भाषा प्राचीनतर गद्यभाषा की अपेक्षा आधुनिक खड़ी बोली के निकट है।

इस काल की प्रमुख दक्खिनी रचनाएँ है—आबिदशाह् अलहसन उल हुसैनी कृत 'गुलजारुस्सालिकीन', तथा 'कजुल मोमिनीन', मीराँ याकूब कृत 'शमायलुल अतकिया' और 'दलायलुल अनकिया' नामक ग्रंथो का अनुवाद, शाह् बुरहानुद्दीन कादिरी कृत 'रिसाले वजूदिया', मोहम्मद शरीफ रचित 'गंजमखफी', मोहम्मद वलीउल्ला कादिरी का किया हुआ 'मारिफतुस्सुलूक' का अनुवाद, सैयद शाह मोहम्मद कादिरी का 'रिसाले वजूदिया', सैयद शाहमीर का 'असराहत्तनौहीद', अब्दुलहमीद का 'रिसाले तसव्वुफ'। इनमे से अधिकतर पुस्तकें सूफी मतविषयक हे। इनके अतिरिक्त अज्ञातनाम लेखकों की 'तुतीनामा', 'अनवारे सुहेली', 'किस्साइ गुलो हुरमुज' शीर्षक अनूदित कथात्मक पुस्तके, 'हैदरनामा', 'तारीख जापान', 'अम्दतुल तारीख', 'तारीख श्रीरंग पट्टम', 'गुलदस्तए हिंद' शीर्षक इतिहास विषयक ग्रथ और 'मुआलजात ख्वाजा बंदानवाज', तथा 'मजमूआ नुस्खेजात' शीर्षक चिकित्सा विषयक रचनाएँ और विज्ञान संबधी कुछ अनूदित पुस्तके ('सित्तए शम्सिया', 'रिसाला इल्मे केमिस्ट्री', 'रिसाला जर्रे सकीन') आदि भी मिलती है।[१]

---

१. इस काल के दक्खिनी गद्य के कुछ अवतरण प्रस्तुत किए जाते हैं--'सारा दिन रोजा रखना, सारी रात इबादत करना, अगर फाका पेश आया तो खुशहाल होना और किसी के आगे ना बोलना (गंजमखफी)। अव्वल सना सिफत करना अल्ला ताला का कि वो कादिर है तमाम चीज ऊपर कुदरत रखता है और हर शै मे हाजिर है और नाजिर है जैसा कि शकर मिठाई और फूल में वास उसी सब में ननअतगरी रखता है देख तूं आदन मे क्या सनअत दरिया, उसका साना है खुदा कबरिया होर तमाम शै पर उसका जात बालातर है (गुलजारुस्सालिकीन)। फसल दामे ईमान मुजमिल और ईमान मुजमिल वह है जैसा कि ... यानी ईमान लाया हूँ अल्ला ताला के यानी अपने इस्मां से है और उसके तमाम इस्मां बरहक है। और कबूल किया है तमाम उसके हुक्मां कूं। और बोलता हूँ मैं अपने सिदक दिल मूं (कंजुल मोमिनीन)। एक आम का काबा है एक खास का, आम का काबा सो जाहिर है होर उसका दरवाजा खुला है जियारत करने का जागा है होर खास का सो बातन है उसका दरवाजा बंद रहता है तागीर से सलामत रहे यानी बेगाना कोई ना आ सके और खुदा के नूर का जिआरतगाह है (शमायलुलअतकिया)। पस जो शख्श दर्दमंद दोस्तां के साथ दोस्ती करेगा और दगाबाज हरामजादा दुश्मनां

राजस्थानी गद्य

राजस्थानी (मारवाड़ी) में गद्य की परंपरा अत्यंत समृद्ध तथा विशाल है, यह हम लिख चुके हैं। रीतिकाल मे भी राजस्थानी में 'वात', 'वार्ता', 'वचनिका', 'वर्णक', 'दवावैत', 'सलोका', 'पत्र' आदि सानुप्रास एवं अनुप्रासरहित ललित गद्यरूपों, 'ख्यात', 'विगत', 'पीढी', 'वंशावली', 'पट्टावली' आदि उपयोगी गद्यविधाओं और 'बालावबोध', 'टवा' तथा 'टीका' शीर्षक व्याख्यात्मक रचनाओं का निर्माण हुआ। ललित, अललित, पद्यात्मक (सानुप्रास), शुद्ध, मौलिक, टीकात्मक सभी प्रकार का गद्य लिखा गया है। जैन-धर्म-विषयक गद्य के अतिरिक्त कथात्मक, ऐतिहासिक और कोकशास्त्र, शकुन, सामुद्रिक, ज्योतिष, वैद्यक, आदि उपयोगी और वैज्ञानिक विषयों पर लिखित उपयोगी गद्य भी प्रचुर परिमाण मे प्राप्त होता है। राजस्थानी अपने वात साहित्य के लिये प्रसिद्ध है। वातो के कई संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। 'वात' वस्तुत. प्राचीन शैली का कहानी प्रकार है। त्वरापूर्ण घटनाविन्यास और किसी व्यक्ति, जाति, घटना या प्रसंग का संक्षिप्त इतिवृत्त इनकी विशेषता है। सवाद वातो में कम है। वर्णन कही कही मंद है। भाषा प्रायः सरल तथा व्यावहारिक है। इस कथासाहित्य मे राजपूतो के जीवन और संस्कृति की सुदर झाँकी मिलती है। विषय की दृष्टि से वातो को पाँच वर्गों मे विभक्त किया जा सकता है--प्रेमपरक, वीरता विषयक, धार्मिक, हास्य-व्यंग-मय, और विस्मयपरक। काल्पनिक और पौराणिक के अतिरिक्त अर्ध ऐतिहासिक और ऐतिहासिक वाते भी प्राप्त हैं। कुछ प्रसिद्ध वातें हैं-- 'जोगराज चारण री वात', 'बीझै सोरठ री वात', 'ढोला मारू री वात', 'रतना हमीर', 'सयणी चारणी', 'अचलदास खीची री वात', 'राव अमरसिंह री वात', 'राजा मानधाता री वात'। 'वचनिका' शीर्षक इतिहासपरक तथा कथात्मक पद्य-गद्य-मय रचनाएँ भी उपलब्ध है जिनमें गद्याश स्वल्प होने पर भी महत्वपूर्ण है। इनमें खिड़िया जगा कृत 'राठौर रतनसिह जी री वचनिका' (स० १७१५), किसी अज्ञातनाम लेखक की 'वचनिका खीची गगेवनीबावत' और मेड़तेवासी वृंद की 'वचनिका राजा रूपसिह' रीतिकाल की उल्लेखनीय वचनिकाएँ है। इनके अतिरिक्त सानुप्रास और अनुप्रास-रहित गद्य की वर्णक रचनाएँ--मुत्कलानुप्रास, कुतूहलम्, सभाश्रृंगार आदि खड़ीबोली मिश्रित रचनाएँ और 'राजानराउत रो वात वणाव', 'रामदास वैरावत री आखड़ी री बात', 'रामदेव महाराजरो सिलौका', 'कुँवर जी श्री संग्रामसिह जी री दवावैत' आदि

सो परहेज सूँ रहेगा वो शख्श अपनी गरज को हासिल करेगा। भरी वफादार दोस्तों के साथ बैठकर खुशवक्त रह और बदजात दुश्मनों की सुहबत सो भाग। (असवारे सुहली)।'

शुद्ध राजस्थानी रचनाएँ भी प्राप्त हैं। वार्तो की अपेक्षा इन रचनाओं की भाषा अधिक अलंकृत तथा ललित है।[१]

राजस्थानी मे ऐतिहासिक गद्य भी पर्याप्त परिमाण मे निर्मित हुआ है। इस भाषा के इतिहास संबंधी गद्य की प्रमुख रचनाएँ ख्यात, विगत, पीढी, वशावली, पट्टावली, हकीकत, उतपत, वर्णन आदि शीर्षकों से प्राप्त होती हैं। 'ख्यात' व्यक्तिगत तथा राजकीय दो प्रकार के है। इनमें यत्र तत्र कथात्मक तथा वर्णनात्मक सरसता भी है। राजस्थानी के कुछ प्रसिद्ध ख्यात है, 'मुहणोत नैणसी री ख्यात' (१७वी शताब्दी), 'बीकानेर री ख्यात',

---

१. कुछ गद्यांश अवतरित किए जाते हैं--

'राजा री बेटी सेठाणी लीधा अपणा देस चाल्या। राजाजी नै कही सेठांणी नैलारा लोधा आपणा देस मै आया--(चंदकुँवर वारता)। भरथरी जी गोरखनाथ जी का दरसण नै चालता रहचा। प्रथी को भाव सारो देखी करि अअत चति हुवो। सारो जगत को सुख ॥ हेद ताको सुध। मीणी पराजामन भो देखता और सुनो मडल मै वित्त दीजो (भरथरी जी की वात)। आमावरी देव अंग अपछरा को ओतार हुई। तादि आसावरी वरस छह की हुई। तदि पठिवानौ बैठी--(आसावरी की वात)। तिणारा मुख री ओपमा तो पूरण चद्रमा ही न पावै। कहा कण ताई दीटा ही ज वण आवै। नैण जी के अमृतग हीज नैण। वैण जि को कोयल रो हीज वैण। धनप ज्यूँ ही मूहां रीखच। नासिका जिका सुवारी चुच। अधर प्रवाली जिसा वणिया। दात जाणे हीग रो कणिरा। बाह तो चपारी डाल। हाथ पग जिकै कमल सूँ ही सुकुमाल। जिका हालीती लजावै। हसरी गति नै। जिण रो रूप गुणा रो ओपमा रभा अर रत नै और ही इण नूँ था ओपमा किसडी (रतना हमीर री वात)। इण मात तमासौ करता पाछलो चोघडियो आय रह्यो छै। अमला रो वखत हुवौ छै। तद खिजमतगारा नै हुकुम हुवौ छै--सता वी सूं हर--सकरो तयार कीजै। सू हरसंकरैरी तयारी कीजै छै। सू हर सकरो किण मात रो छै। भांगे सुर घोटियारी पीडी घणी मसाला समेत रो आणजै छै। गलिया अमल मे भाग गालजै छै। फेर दारूसूं उलटाय काढ जै छै रूमाल सूँ तिवारा छाणजै छै। तयार कर पीतलरा कलस भरो जै छै। सिरदारा आगे आण मेल जै छै। ऊजला रूपोटा मे घाल मुनहारां सूं सारा साथ नै पायजै छै।--(खीची गंगेव नीवावत रो दोहपरो)। तिण वै लागे वरी आकास वाणी कहायी महाराजा रेणमा वधाइ वधाइ अगनि सनान करि सति पाणि आइ ब्रह्म विष्णु महेसर इंद्र सुरसथि सुर विमानें कही महासतीया सम्हो जाउ धवल मंगल पुहप वरषा करि वधाओ (वचनिका राठोड़ रतनसिह जी महेस दासोत री)।

'सीसौदिया री ख्यात', 'राठौड़ा री ख्यात', 'महाराजा मानसिंह जी री ख्यात', 'जोधपुर री ख्यात', 'राठौर अमरसिंह री ख्यात'। ख्यातों के अतिरिक्त शेष रचनाएँ प्रायः पूर्णतः नीरस तथा तथ्यकथनात्मक हैं। विगतों में व्यक्तियों और वस्तुओं का परिगणन तथा उनका विवरण, पीढ़ियों में राजपूत वंशों की परंपरा, वंशावलियों में राजपूत राजाओं अथवा जैन श्रावकों के नामपरिचय तथा वंशविवरण और जैन पट्टावलियों में गच्छों की उत्पत्ति, शाखाओं का परिचय तथा आचार्यों के विवरण हैं। इन इतिहासविषयक रचनाओं की भाषा प्रायः अनलंकृत और व्यावहारिक है।[1] राजस्थानी के ऐतिहासिक गद्य को जैन और जैनेतर की दृष्टि से दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है। जैन इतिहासविषयक गद्य के प्रकार हैं——वंशावली, पट्टावली, दफ्तरबही, टिप्पण और उत्पत्ति। जैनेतर के अंतर्गत ख्यात, ऐतिहासिक बात, वंशावली, पीढ़ियावली, हाल (अहवाल), हगीगत, याददाश्त, विगत, पट्टे परवाने, तहकीकात और जन्मपत्रियाँ हैं।

राजस्थानी के धार्मिक गद्य के भी जैन और अजैन के भेद से दो भाग किए जा सकते हैं। जैन-धर्म-विषयक गद्य वाङ्मय बालावबोध टीकाओं, टब्बाओं व्याख्यानों, प्रश्नोत्तरपरक और विधिविधान तथा तत्वज्ञानविषयक रचनाओं और धर्मसबंधी कथात्मक रचनाओं के रूप में उपलब्ध होता है। जैनेतर धार्मिक गद्यसाहित्य प्रायः पुराणविषयक है। 'भागवत दशम स्कंध', 'गरुड़ पुराण' आदि पौराणिक ग्रथो और वेदात तथा धर्मशास्त्र-विषयक और माहात्म्य स्तोत्रपरक रचनाओं के अनुवाद प्रचुर परिमाण मे मिलते हैं। वैद्यक, ज्योतिष, योग, नीति, यंत्र, मंत्र आदि विषयों की संस्कृत पुस्तको के अनुवाद और टीकाग्रंथ भी प्राप्त हैं। इस समय के पत्र तो प्रचुर परिमाण में जैन सग्रहालयो मे सुरक्षित हैं। कुछ शिलालेख भी उपलब्ध है।

पूर्वी हिंदी का गद्य

इस समय का मैथिली गद्य 'हरिश्चंद्र नाट्यम्', 'मलयगंधिनी', 'जन्मयात्रा' आदि नाटकों में पद्य के साथ और 'गौरीवचाटिका', 'बहीखाते', 'वृत्तिपत्र', 'परवाने'

---

1. बूंदी सहर भाषर भाषर लगती बसै छै। रावला घर भाषर रै आधो परै छै। पिण माहे पांणी मामूर नहीं। सहर रौ आयौ बीजै भाषर बलारो सहर लागतौ काउ घणा वला रै भाषर मैं पाणी घणो। सहर माहे पाखती पाणी घणो बड़ौ तलाब सूर सागर तिणरी मौरी छूटै छै। तिण मूं बागवाड़ी घणा पोवै बागैं आंबा फूलाद चपा घणा। सहर री वस्ती उनमान घर घर ५०० वांणीयारा घर १००० बामण बिणजारां घर १००० पांचभाई याही डागरारा। राव भाव सिंह नुं हमार जागीर मै इतना परगना छै तिणां रा गाव ३१६ (नैणसी री ख्यात)।

आदि कागजपत्रों के रूप में मिलता है।[१] भोजपुरी के कुछ कागजपत्र, आज्ञापत्र, दस्तावेज, बहीलेख, सनदें, पंचनामे, निमंत्रणपत्र, छत्तीसगढ़ के दो शिलालेख और अवधी के कुछ कागज तथा एक दो ग्रंथ प्राप्त हुए हैं। पंडों की बहियों में भी मध्यकालीन पूर्वी हिंदी के उदाहरण प्राप्त होते है। साहित्यिक दृष्टि से यह गद्य नगण्य है। भाषा अथवा प्राचीन लेखनप्रणाली की दृष्टि से इसका कुछ महत्व माना जा सकता है।[२] अवधी में स्फुट गद्य के नमूने तो १७वी शती से ही मिलने लगते है, परंतु पुस्तकरूप में गद्य १८वीं शती के उत्तरार्ध का उपलब्ध होता है, वह भी स्वल्प। यह गद्य प्राय: ब्रजभाषा और खड़ी बोली से प्रभावित है। इस प्रकार की भाषा की १८वी शती के उत्तरार्ध और १९वीं शती की कुछ गद्यमय और गद्य-पद्य-मय रचनाएँ हैं—भानु मिश्र कृत 'रसविनोद' (पद्यगद्य),

---

१. इस समय के मैथिली गद्य के कुछ नमूने प्रस्तुत किए जाते हैं—"ऋषिमा—हरि३, एहन सुकुमार बालक, एहन प्रानांत विषय (जै) जलपान न करै छथि हरि २॥ एमरथा सुन विधाता हमार के वद अकाजय देर छथि ई बालकक शरीर जैसे सुवर्ण अग्नि सओ दाहक पैर, तैसे तन्हिका शरीर दाह भेर तथापि सत्य भंग किंचित नहिभेरा, तक्रा एहन दुख देखि कद्दु ओकरा क वद दया है गेर, कतेक दुर्दैव (दुःदेव) सुरुज का किरण निवारण करब।—('हरिश्चंद्र नाट्यम्')। . . . . आहे सामाजिक वैचन पुकारे रामकृष्णक जात गणिति कयल, गर्ग आपोन गृहे चलि गैल ता देखह शुनह। निरंतरै हरि बोल हरि बोल।"—(जन्मयात्रा)। सन् १७७० का एक बहीखातालेख उद्धृत किया जाता है—

"महाराज श्री श्रीप्रताप सिंह बहादुर देवदेवानां सदासमर विजयिनां श्री धैरजीश्रा श्री भैरविश्रा . . . लीखतं आगां तोरा दुहू माइके श्री रुचिदत्त भाक सुपुर्द काएल अछ खातीर जमा सौ ओभा मजकुरक ओतए काम काज करिहह हुनका ओतए वेशुमहा कमाएल करिहह चैत शु ढि ५ रोज सन् ११७७ साल'।—(मैथिली लैं० एंडलिट० १९४९, पृ० ३८६)।

२. भोजपुरी गद्य के ये नमूने द्रष्टव्य हैं—

"स्वोम्ती श्री रीपुराज दैत्यनाराएनैत्यादि बिविध बिरदावली बिराजमान मानोनत श्री महाराजाधिराज राजा श्री जीवदेव देवाना (म् ?) सदासमर बिजैना। आगे सुबंश पाडे पराअाग के उपरोहीत पाछील राजन्ह कै उपरोहीत हो अहीसे हमहु आपन उपरोहीत कैल। जै केउ पराअाग माह आवै से सुबंस पाडे के मानै, उजैन नाव ··· ··· ११३६ शाल मोकाम दावा घुस शमत १७८५ समै नाम बैसाख सुदी तीरोदसी रोज बुध ··· ··· प्रगनै भोजपुर गोतर सवनक मूल उजेन जाति पावार"। —(दारागंज, प्रयाग के माधव पंडा की बही से पं० उदयनारायण तिवारी द्वारा उद्धृत, सं० १७८५ का लेख)।

नित्यनाथ रचित 'उड्डीश' (जंत्रमंत्र), महंत श्रीरामचरणदास जी की 'मानस टीका', प्रियादासकृत 'व्यवहार पाद', गौतम ऋषि रचित 'सगुनावतीं', युगलानन्यशरणरचित 'वचनावली' और रघुनाथदासप्रणीत 'विश्राम मानम' (प्रतीकात्मक नाटक)। बाइबिल के अनुवाद, पत्र और टीकाग्रंथ भी प्राप्त है।[१]

रीतिकाल के उल्लिखित गद्य में शृंगारिकता की भी प्रवृत्ति अंशत: दृष्टिगोचर होती है। इस युग की अनेक रचनाएँ शृंगाररसात्मक है, साथ ही भाषा शृंगार अर्थात् अलंकरण से युक्त। पद्यक्षेत्र मे तो शृंगारिक भावना और शृंगारमयी अभिव्यक्ति है ही, गद्य के भी अनुभूति और अभिव्यक्तिपक्ष में शृंगारिकता का दर्शन यत्र तत्र होता है। परंतु युगरुचि के प्राय: शृंगार, विलास, सांप्रदायिक प्रचार, धर्मभावना या वीरत्व की ओर होने से और दरबारी वातावरण के कारण सच्ची साहित्यचेतना का उन्मेष न होने से हिंदी के इस उत्तर मध्यकाल मे भी गद्य का समुचित विकास नही हुआ। अनेक शैलियाँ होने पर भी गद्य की कोई विशिष्ट पद्धति निर्धारित नही हुई थी। कथा और वर्णन के लिये प्राय: सानुप्रास अलंकृत शैली प्रचलित थी और उपयोगी विषयों के प्रतिपादन के लिये तथ्य कथनात्मक व्यावहारिक शैली। प्रवचनकार और कथावाचक एक विशेष प्रणाली पर लिखते थे। वार्तासाहित्य का अपना पृथक् ढग था। ढूँढाहड़ प्रदेश के जैनियों की भी एक शैली थी। टीकाएँ संस्कृत टीकाप्रणाली की अनुयायिनी थी। गद्य की और भी कई प्रणालियाँ थी। परंतु कोई ऐसी टकसाली या सामान्य शैली न थी जो लेखकों के सामने आदर्शरूप में रहती।

रीतिकालीन गद्य वाङमय के अनुशीलन के अनंतर जब हम आधुनिक गद्य पर दृष्टि डालते हैं तो देखते है कि हिंदी गद्य धार्मिक साप्रदायिक वातावरण की ओर, उपयोग-प्रधानता से कलाप्रधानता की ओर, सीमित विषयता से विषयवैविध्य की ओर, विरल रूपों की स्थिति से बहुरूपो तथा बहुल शैलियों की ओर और व्याख्यानुवाद के प्रामुख्य की दशा से मौलिक सर्जना के आग्रह की ओर विकसित हुआ है। विभाषाप्रभाव, रूपवैविध्य और अस्थिरिता की स्थिति से वह क्रमश. मुक्त होकर शुद्धता, स्थिरता और एकरूपता की ओर अग्रसर होता गया है।

———:०:———

१. कुछ गद्यांश द्रष्टव्य हैं--
"औ देसकाल मा जौन 'विरोध ना परै औ जौने काल मा औन मा होइ तौनेके संमत मिती जूना स्थान गांउ लिषाइ द्या औ जोने षातिर अरजी दीन्हा होइ रिनधन आदिक तौ सब लिषाइ द्या व्यकन व्यकन औ वो कर प्रवान लिषाय द्या की यतने भरे केर हुमारि अरजी है यतनी यतनी हुमार वस्तु।'—(प्रियादासकृत व्यवहारपाद)।

अष्टम खंड

भाषा का स्वरूप

भाषा की सामान्य स्थिति

भक्तिकाल में ब्रज और अवधी भाषाओं का विकास हुआ और दोनों में सुंदर काव्य लिखे गए। किंतु आगे चलकर अवधी की परंपरा का विकास नही हो पाया और ब्रजभाषा को प्रमुख स्थान प्राप्त हुआ। रीतिकाल में प्रधान रूप से ब्रजभाषा का ही प्रयोग हुआ है। यद्यपि सूरदास आदि भक्त कवियों ने ब्रजभाषा का प्रयोग करके उसे काव्योपयोगी और सरस बनाया तथापि न तो उसका कोई स्थिर रूप बन पाया और न उसमें पूर्ण निखार ही आया। ये दोनो कार्य रीतिकाल मे हुए। इस काल में ब्रजभाषा का एक सुष्ठु और स्थिर रूप सामने आया। उच्च कोटि के लगभग सभी कवियो ने उसी मानक रूप का प्रयोग किया है। दूसरी विशेषता है निखार की। इस काल में बहुप्रयोग से ब्रजभाषा का निखार हुआ और उसमें भावाभिव्यक्ति की अपार क्षमता आ गई। विभिन्न सूक्ष्म अर्थच्छायाओं-वाले शब्दों का प्रयोग इस काल की भाषा की एक विशेषता है। सूक्ष्म से सूक्ष्म अर्थों को व्यक्त करने में ब्रजभाषा समर्थ हो गई। वस्तुत: रीतकाल ब्रजभाषा का स्वर्णयुग है।

इसके अतिरिक्त इस काल मे लोकभाषा का भी बहुत महत्व रहा। संतो ने अपने उपदेश लोकभाषा में दिए जो बानियों के नाम से साहित्य में संग्रहीत हैं। इस प्रकार के साहित्य में लोकसामान्य की भाषा का ही प्रयोग हुआ है। यह बात अवश्य है कि उनके काव्य में पारिभाषिक क्लिष्ट शब्दावली का भी प्रयोग है, पर यह शब्दावली सप्रदाय में प्रचलित थी। वीरकाव्य मे युद्ध संबंधी शब्दावली का प्राचुर्य है जिसका मूल आधार राजस्थानी है। तेरहवीं चौदहवो शताब्दी से ही युद्धवर्णन या वीरकाव्य के लिये उसी एक (डिंगल) भाषा का प्रयोग होता आ रहा था। रीतिकाल में भी उस भाषा का परंपरागत प्रयोग हुआ है। रामकाव्य के लिये कहीं कहीं अवधी भाषा का भी प्रयोग हुआ है।

भाषा के विविध रूप

रीतिकाल में प्रमुख रूप से चार भाषाओं का प्रयोग हुआ है—१. ब्रज. २. अवधी, ३. राजस्थानी और ४. मैथिली। इन चारो भाषाओं का मूलाधार तत्कालीन प्रचलित बोलियाँ हैं। ब्रज, अवधी. मैथिली और राजस्थानी भाषा का विकास इनके बोलीरूप से हुआ। अत: यह कहा जा सकता है कि ब्रज, अवधी राजस्थानी, मैथिली और खड़ीबोली (के बोलीरूप) रीतिकालीन भाषा के मुख्य आधार हैं जिनसे रीतिकाल की साहित्यिक भाषाएँ विकसित हुई हैं।

इस काल की ब्रजभाषा के तीन स्तर हैं—(क) मानक (परिष्कृत) ब्रजभाषा, (ख) प्रचलित ब्रजभाषा और (ग) मिश्रित ब्रजभाषा। मानक या परिष्कृत ब्रजभाषा का प्रयोग घनानंद, ठाकुर, बोधा आदि कवियों ने किया है। इसका निर्देश पहले ही किया जा

चुका है कि इसी काल में ब्रजभाषा का एक मानक रूप विकसित हुआ। कई सौ वर्षों के प्रयोग से ब्रजभाषा के निर्बल शब्द हटते गए और समर्थ शब्दों का परिष्कार होता रहा। परिणामस्वरूप एक बहुत ही निखरी हुई, परिमार्जित, परिष्कृत और मानक भाषा रूपायित हुई जिसका अधिक प्रयोग रीतिस्वच्छंद कवियों ने किया है।

प्रचलित ब्रजभाषा का रूप वही है जिससे मानक भाषा विकसित हुई। इसका कोई स्थिर मानक रूप नही था। कवि अपने इच्छानुसार इसमे परिवर्तन कर लेते थे। शब्दावली की बात तो अलग रही, कुछ लोग क्रिया के रूपों और प्रत्ययों में भी परिवर्तन कर लिया करते थे। एक उदाहरण से बात स्पष्ट हो जायगी।

'कहति जसोदा कौन विधि, समझाऊँ अब कान्ह।
भूलि दिखायो चंद मैं, ताहि कहत हरि खान।" (ब्रजवासीदास)

इसमें 'समझाऊँ' और 'खान' पद ब्रजभाषा के मानक रूप नहीं हैं, किंतु सामान्य रूप से साहित्य में प्रचलित होते रहे हैं। शृंगारकाव्य, कृष्णकाव्य, नीतिकाव्य का बहुलांश इसी प्रकार की भाषा में लिखा गया है।

मिश्रित ब्रजभाषा का प्रयोग भी इस काल में बहुत अधिक हुआ है। भाषा की मूल चौखट तो ब्रजभाषा की है किंतु उसमें शब्दावली अन्य भाषाओं की है। यह शब्दावली कही कहीं बोलियों—बुंदेली, अवधी, छत्तीसगढी, भोजपुरी, खड़ीबोली—मे ली गई है और कहीं कहीं फारसी से। रीतिकाल के संत साहित्य में लगभग इसी प्रकार की मिश्रित भाषा का प्रयोग हुआ है। संतों के अलावा अन्य धारा के भी कुछ कवियो ने इसी प्रकार की भाषा का प्रयोग किया है।

अवधी भाषा का प्रयोग सूफी कवियो और रामकाव्य के रचयिताओ ने किया है। वस्तुतः अवधी का कोई मानक रूप (साहित्य के क्षेत्र में) नही बन पाया। जायसी ने ठेठ अवधी का प्रयोग किया था और तुलसी ने संस्कृत तत्सम शब्दावली से युक्त अवधी का। वैसे तुलसी की अवधी को साहित्य के क्षेत्र में मानक अवधी मान सकते हैं, किंतु उस भाषा का आगे कोई विकास नही हो पाया। किसी भाषा का मानक रूप उसके बहुप्रयोगों के बाद निश्चित होता है। चूंकि अवधी को बहुप्रयोग का अवसर नहीं प्राप्त हुआ। इसलिए उसका कोई मानक रूप भी स्थिर नहीं हो पाया। रीतिकाल में अवधी का जो रूप मिलता है वह शुद्ध और साहित्यिक अवधी का नहीं बल्कि एक प्रकार की मिश्रित अवधी का है। इसमें ब्रज, भोजपुरी और बुंदली के शब्दो का मिश्रण है। उस अवधी पर सबसे अधिक प्रभाव ब्रजभाषा का है। शब्दावली के अलावा कही कही ब्रजभाषा के रचनात्मक तत्व भी अवधी मे ले लिए गए है। इस काल की रचनाओं में सहजराम कृत 'रघुबंसदीपक' में अवधी भाषा के सबसे अच्छे उदाहरण मिलते है। शेख निसार की 'यूसुफ-जुलेखा-काव्य' में अवधी के बोलचाल रूप का ही प्रयोग हुआ है।

हिंदी साहित्य के आदिकाल से ही वीरकाव्य की भाषा अन्य काव्यरूपों से अलग

रही है। वीरगाथाकाल में डिंगल और पिंगल भाषा का प्रयोग होता रहा जो राजस्थानी का ही एक रूप था। भक्तिकाल में भी वही भाषा वीरगाथाओं में प्रयुक्त होती रही। रीतिकालीन वीरकाव्य भी उसी परंपरा के हैं। उनमें भी राजस्थानी भाषा प्रयुक्त हुई है। भाषा का यह रूप राजस्थानी बोलचाल का नहीं है बल्कि वीरकाव्य की भाषा का रूप है। हिंदी में वीरकाव्यों के लिये प्रारंभ से ही एक भाषा का विकास हुआ जिसका मूल आधार राजस्थानी बोली थी। लेकिन साहित्य में प्रयुक्त राजस्थानी भाषा बोलचाल की राजस्थानी से भिन्न हो गई। यह भाषा वीरकाव्य के लिये रूढ़ हो गई। यही कारण है कि इतनी शुद्ध और समर्थ ब्रजभाषा के लिखनेवाले पद्माकर जब वीरकाव्य लिखने लगते हैं तो उसी राजस्थानी का प्रयोग करते हैं जो वीरकाव्य के लिये रूढ़ थी। संयुक्ताक्षरों का आधिक्य, नादसाम्य शब्दावली और टवर्ग का अधिक प्रयोग इस भाषा की विशेषता है।

मैथिली भाषा में कई नाटक इस काल के लिखे हुए मिले हैं। कुछ मुक्तक काव्य भी मैथिली में लिखे गए थे मैथिली के रीतिकालीन नाटकों में इंद्रजय नाटकम्, उषाहरण, मदनचरित, श्रीकृष्ण-केलि-माला नाटक आदि हैं। यद्यपि ये नाटक पद्य और गद्य दोनों में हैं तथापि इनका मुख्य भाग गद्य में है।

इस प्रकार ब्रज, राजस्थानी, अवधी और मैथिली में रीतिकालीन रीतिमुक्त साहित्य लिखा गया। ये चारों आज भी हिंदी उपभाषाओं या बोलियों के रूप में हैं। हिंदी की इन साहित्यिक उपभाषाओं का क्षेत्र इतना विस्तृत है कि स्थानीय प्रभावों से बचना इनके लिये संभव नहीं है। गुरुमुखी लिपि में लिखित ब्रजभाषा की अनेक कृतियाँ प्राप्त हुई है जिनपर पंजाबी भाषा का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। कुछ ऐसी राजस्थानी रचनाएँ हैं जिनमें गुजराती की शब्दावली प्राप्त होती है, जैसे लीलावती रासो। रीतिकाल के अंत में उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में कुछ खड़ीबोली की रचनाएँ भी उपलब्ध होने लगती हैं। इंशाअल्ला खाँ तथा नजीर की रचनाएँ इसी कोटि की हैं।

यद्यपि राजस्थानी, अवधी, मैथिली और खड़ीबोली में रीतिकालीन रीतिमुक्त साहित्य प्रचुर मात्रा में लिखा गया तथापि पूरे हिंदी क्षेत्र में ब्रजभाषा का महत्व सर्वोपरि रहा। ब्रजभाषा साहित्यसृजन की मूल भाषा रही। यही कारण है कि अन्य भाषाओं के क्षेत्रों में भी ब्रजभाषा में साहित्यिक रचना हुई। गुजरात, पंजाब, महाराष्ट्र और आसाम तक में ब्रजभाषा में साहित्य रचे गए। एक प्रकार से ब्रजभाषा मध्यकाल में साहित्यरचना और सांस्कृतिक आदान प्रदान की भाषा थी और यही कारण है कि रीतिकाल में सबसे अधिक साहित्यरचना ब्रजभाषा में हुई।

भाषावैज्ञानिक विशेषताएँ

रीतिमुक्त रीतिकालीन भाषा भक्तिकाल की भाषा का विकसित रूप है। अपभ्रंश के पश्चात् चौदहवीं शताब्दी तक हिंदी का कोई मानक रूप नहीं बन पाया था।

पंद्रहवीं शताब्दी के प्रारंभ से ही हमें एक साहित्यिक भाषा मिलने लगती है। सत्रहवीं तक तक भाषा का एक रूप निश्चित सा हो गया था। पंद्रहवीं से सत्रहवीं शताब्दी तक की भाषा में जो प्रवृत्तियाँ थीं वही प्रवृत्तियाँ रीतिकालीन भाषा में भी पाई जाती हैं।

ध्वनि

'ऋ' ध्वनि का मूल उच्चारण हिंदी में प्रारंभ से ही नहीं था और उसके स्थान पर अ-इ-र-रि आदि ध्वनियाँ प्रयुक्त होने लगी थीं। यह प्रवृत्ति रीतिकालीन भाषा में भी है। जहाँ लेखन में 'ऋ' स्वर विद्यमान भी था वहाँ भी उसका मूल उच्चारण न होकर 'रि' होता था। 'श' और 'ष' के स्थान पर 'स' का प्रयोग पहले की तरह होता रहा। ब्रजभाषा आदि की विदेशी शब्दावली में क़ ख़ ग़ ज जैसी ध्वनियों की वृद्धि हुई। संयुक्त स्वरों के प्रयोग की प्रवृत्ति का अधिक विकास हुआ।. रीतिकालीन रीतिमुक्त ब्रजभाषा में संयुक्त स्वरों का प्रयोग अधिक है। इसके पूर्व इनके स्थान पर स्वरसंयोगों का प्रयोग होता था।

ध्वनिपरिवर्तन की प्रवृत्ति हिंदी में प्रारंभ से ही चली आ रही थी परंतु रीतिकालीन भाषा में यह प्रवृत्ति अधिक मात्रा में दिखाई देती है। साथ ही ध्वनिपरिवर्तन की नई दिशाएँ भी मिलती हैं। सोस>सोच, बिंदुली>बिंदु (आलम), उलाहू>उल्लास, बिस्वास>विश्वास (घनानंद), अयोगिया>अयोग्यं, भायक>भाव (बोधा), जूह>यूथ, बहियाँ>बाँह, किरवान>कृपाण (ठाकुर), मुरैली>मुरली, चुचात>चूना (द्विजदेव) आदि शब्दों के प्रयोग इसी प्रवृत्ति के परिणामस्वरूप हैं।

ध्वनि संबंधी एक और विशेषता जो इस काल मे दिखाई देती है वह है ध्वन्यात्मक शब्दों द्वारा श्रुतिचित्र का निर्माण। ये श्रुतिचित्र एक विशिष्ट वातावरण को प्रत्यक्ष करने के लिये बड़े ही प्रभावशाली होते हैं। वस्तुतः किसी वातावरण के नादात्मक परिवेश को उसी नादवाले शब्दों या शब्दसमूहों से फिर से प्रस्तुत किया गया है। उदाहरणार्थ—

झहरि झहरि झीनी बूँद हैं परति मानो,
घहरि घहरि घटा घेरी है गगन मैं॥
... ...

स न न न न न न छुट्टियं सर जुट्टियं नहिं हुट्टियं।
फ न न न न न न तन फुट्टियं उर हुट्टियं भुव लुट्टियं।" (सूदन)

व्याकरण

ब्रजभाषा का एक मानक रूप रीतिकाल में अवश्य ही निर्धारित हो गया था किंतु वह व्याकरणसंमत भाषा नहीं बन पाई। उसमें अनेक दोष बने रहे। रीति-स्वच्छंद-धारा के कवियों में भी भाषा की कई अशुद्धियाँ मिलती हैं, जैसे बिलपत (बिलपति हैं), लीजियतु (लीजिए), बबैंसे (बोएँगे) (आलम), लगियै रहै (लगी रहे), उघराई (उघरा-पन), रैंयो (लीन हो गया) (पद्माकर),। इनमें पदरचना अशुद्ध है, पर यही [illegible]

इन कवियों की विशेषता थी। ये स्वच्छंद ढंग से शब्दों का निर्माण भी करते थे। लिंग, वचन की अशुद्धियाँ भी प्रायः इस काल की भाषा में मिलेंगी। संतकाव्य में ऐसी अशुद्धियाँ प्रायः मिलती हैं। उसका कारण यह है कि संत प्रायः पढ़े लिखे और विद्वान् नहीं होते थे। सुन सुनकर वे ज्ञान प्राप्त करते थे और उसमें अपना अनुभव जोड़कर काव्यरूप में व्यक्त करते थे। जो कुछ भी हो, यह तथ्य है कि रीतिकालीन काव्य की भाषा व्याकरणसंमत नहीं है।

शब्दभंडार

शब्दावली की दृष्टि से रीतिकालीन रीतिमुक्त काव्य की भाषा मिली जुली भाषा है। अनेक भाषाओं के शब्दों का प्रयोग एक साथ दिखाई पड़ता है। जिन चार प्रमुख भाषाओं की चर्चा हम कर आए हैं उनमें भी अन्य भाषाओं की शब्दावली की भरमार है। उस समय लोकभाषा के प्रति काफी आग्रह था, इसलिये बोलियों के शब्दों का प्रयोग इन भाषाओं में प्रचुर मात्रा में हुआ है। दूसरी भाषाओं की शब्दावली का प्रयोग करना संभवतः एक विशेषता मानी जाती थी, क्योंकि इस प्रवृत्ति की उपेक्षा किसी भी कवि ने नहीं की है।

विश्लेषण

भाषा के जिन विभिन्न रूपो की चर्चा पहले की जा चुकी है उनका विश्लेषण आवश्यक है। इस काल के रीतिमुक्त काव्यभाषा की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि उसकी शब्दावली मिश्रित है। अतः यहाँ शब्दावली का विश्लेषण ही हमारा लक्ष्य है।

(१) ब्रजभाषा (मानक)

इसमें तद्भव शब्दों की प्रधानता है पर कहीं कहीं अन्य प्रकार के शब्द भी आए हैं। जैसे—

अरबी फारसी के शब्द—फिराक, महबूब, दिलदार, तकसीर (आलम)
गुमान (घनआनंद)
जुलुफ, तमासा, इश्क, बेपरद, मजा, आशिक, मरज (बोधा)
रूब, शौक, साहबी, होस, कैफ (ठाकुर)
मशाल, असवार, जवाब, कसूर, महताब, मजेज (द्विजदेव)

बोलियों के शब्द—उचाइबो, देखबी, बागन (बघेली)
कूं (राज०), गनंत, मंभार, लकुट्टनि (अप०) (रसखानि)
मरबी, जरबी, (बुंदेली)—बोधा; बिगरी, ऊमर नइयाँ (बुंदेली) (ठाकुर)
राखी, लायक, मोहिं, अंमुवान (अवधी) (द्विजदेव)

घनानंद जैसे भाषा के कुशल कवि ने भी ब्रजभाषा के ठेठ शब्दों का प्रयोग किया है। जैसे—

ग्रौंड़ी (गहरी), उदेग (उद्वेग), भभक (ज्वाला), ग्रावरो (व्याकुल), सौंज (सामग्री), सर्यौ (चुक गया), बघूरा (बवंडर) ग्रादि।

इस तरह मानक ब्रजभाषा मे भी कई ग्रन्य भाषाग्रों ग्रौर बोलियों की शब्दावली का प्रयोग हुग्रा है।

ब्रजभाषा (प्रचलित)

इसमें भी तत्सम तद्भव शब्दो के प्रयोग हुए है ग्रौर दूसरी भाषाग्रों के शब्द भी लिए गए है पर उसमें प्रौढ़ता ग्रौर गठन नहीं है। यथा—

सुचि सचित कुंचित ग्रसित ग्रलकै परम सुंदर स्याम है।
तुरतहिं चढ़ी निर्मोख तजि जनु फनिक की विव बाम हैं।
—कृष्णचंद्रचंद्रिका

संस्कृतनिष्ठ ब्रजभाषा होते हुए भी इसमें भंगिमा नहीं है। भंगिमा ही शब्द का बल है जो ग्रर्थ को सघन बना देती है। तुलना के लिये एक दूसरा उदाहरण प्रस्तुत है—

सुखी तुम कान्ह हौ जुग्रान की न चिता,
हम, देखेहु दुखित ग्रनदेखेहु दुखित हैं।—ग्रालम

ब्रजभाषा (मिश्रित)

संतों की रचनाएं, जिनमें ग्रनेक भाषाग्रों ग्रौर बोलियों के शब्द हैं, कही भी गँठी ग्रौर सघन ग्रर्थवाली नही है। बहुत कम ऐसे स्थान है जहाँ ग्रर्थ की गहनता भाषा के सौदर्य के साथ मिलती हो। विषय वर्णनात्मक होने के कारण शब्दो में कोई भंगिमा नहीं ग्रा पाई है। एकाध उदाहरण द्रष्टव्य है—

काहू को निकट राखै, काहूँ तौ दूरि भाखै,
काहूँ सूं नेरे न दूर जाकी ऐसी मति है।
रागहू न द्वेष कोऊ, सोक न उछाह दोऊ,
ऐसी बिधि रहै कहूँ रति न विरति है।—सुंदर

इस मिश्रित भाषा में एकरूपता नहीं है। कभी ग्रवधी का प्रयोग बाहुल्य है तो कभी राजस्थानी का। ग्ररबी फारसी के शब्दों का भी ग्राधिक्य कहीं कही है। यह प्रवृत्ति चरणदास, पलटूसाहब, सहजो बाई, सुंदरदास ग्रादि सभी संतों की भाषा में है।

राजस्थानी

वीरकाव्य के कवियों ने राजस्थानी के साथ साथ दूसरी भाषाग्रों के शब्दों का प्रयोग धड़ल्ले के साथ किया है, जैसे ग्ररबी, फारसी, तुर्की, पंजाबी, गुजराती, मराठी, बुंदेली, बैसवाड़ी, भोजपुरी ग्रादि भाषाग्रो के शब्द। संयुक्ताक्षर ग्रौर नादात्मक शैली का परंपरागत प्रयोग तो किया ही है, जैसे—किम्मिय, पब्बिय, ठिल्लिय, लक्खए ग्रादि।

हरम, दीदार, बेदिल, गैर मिसिल, सरजा, जहान, जालिम, मुलुक, मिजाज, दौलत, उमराव आदि फारसी के शब्द प्रयुक्त हुए हैं। देशज शब्दों के प्रयोग भी खूब हुए हैं, जैसे—नाड़ो (जलाशय), डाकी (वीर), जरद (कवच), छरा (पंजा), पंगी (कीर्ति), सांवठो (मजबूत) आदि।

मुहावरे और कहावतें

अर्थव्यंजकता के लिये मुहावरों और कहावतो के प्रयोग भी प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। उदाहरणार्थ—

ब्याह को बिहान, जी के लाले परे, रंक को धन (आलम)
बिष घोरना, पानी पड़ना, मन लेना, कल पाना (घनआनंद)
राई नमक उतारना, पाले पड़ना, हाथ पसारना, सपने की संपति (द्विजदेव)
नाक कट जाना, छाती दरकना (सूदन)
कूकर पूंछ सूधो होत नाहिं (सुंदर), ख्वाब की दुनिया (धरणीदास)
फूंक फूंक पग धरिये, दिन भरिए (सनेह सागर)
जल मैं बसि मगर सो बैर (हित वृंदावनदास)
काल के गाल मे (सहजराम)
लातनि मारि कै काढ़ि दियौ (लक्ष्मीनारायण पौहारी) आदि।

सामान्य विशेषताएँ

रीतिमुक्त काव्य की भाषा में इतनी विविधता है कि उनका अध्ययन और मूल्यांकन एक दो सिद्धांतों पर नही किया जा सकता। हर रूप की अपनी अलग विशेषताएँ हैं, किंतु कुछ ऐसे समान तत्व हैं जो सभी भाषाओं और रूपों में प्राप्त होते हैं। वे निम्नलिखित हैं—

१. **सहजता**—भक्ति और संतकाव्यों में तो यह सहजता स्पष्ट ही है किंतु रीतिस्वच्छंद शृंगारकाव्य में भी यह गुण वर्तमान है। यद्यपि रीतिकालीन रीतिबद्ध कवियों ने भाषा का चमत्कार दिखाने के लिये उसकी सहजता नष्ट कर दी है तथापि स्वच्छंद कवियों में वह सुरक्षित है क्योंकि ये चमत्कार के चक्कर में ज्यादा नही पड़े। घनानंद के निम्न सवैए की सहजता और उसके अर्थ की गंभीरता द्रष्टव्य है—

अति सूधो सनेह को मारग है जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं।
तहाँ साँचे चलैं तजि आपनपौ, झझकै कपटी जे निसाँक नहीं।
घनआनँद प्यारे सुजान सुनौ यहाँ एक ते दूसरो आँक नहीं।
तुम कौन धौं पाटी पढ़े हौ लला मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं।।

एक उदाहरण सुंदरदास का देखिए—

हमकूं तो रैन दिन, संक मन माँहि रहै,
सबकी तौ बातनि मैं, ठीकहु न पाइये।

कबहूँ सँदेशा सुनि अधिक उछाह होइ,
कबहूँक रोइ रोइ आँसुन बहाइये ॥

रामकाव्य और कृष्णकाव्य मे भी इसी प्रकार सहज भाषा का प्रयोग हुआ है। उसका कारण यह है कि रीतिमुक्त कवियों ने रीतिबद्ध कवियों की तरह भाषाचमत्कार और कृत्रिमता का सहारा नहीं लिया। रीतिस्वच्छंद कवियों ने तो एक प्रकार से उस चमत्कार-पूर्ण भाषा के प्रति विद्रोह किया था। वे सहज भाषा में सहज अभिव्यक्ति चाहते थे।

२. **लोच**—रीतिमुक्त कवियों की भाषा में विशेष रूप से यह गुण है कि उन्होंने शब्दों को घटा बढ़ाकर या लचीला बनाकर उसका प्रयोग किया है। इस प्रकार से इन कवियो ने उसमें एक नया अर्थ प्रतिष्ठित किया। उदाहरणार्थ—

मेरियै, तैसियै, अलिबेलियै, बड़रारे, अखियानि, नहीन (रसखानि)
सोहावनीयै, बादरऊ, तिरियाऊ, कान्हर, बिंदुली (आलम)
लगियै रहै, अनोखियै, हंसि बोलन, यौऽव, अबै (घनआनंद)
कबहुँक, रजनेरी, दिलंदर, अयोगिया (बोधा)
वापिकाऊ, करतारई, अपूरबई, तिहारेई, द्वैक (द्विजदेव)

ये शब्दआऊ, इयैं, अऊ, अहु, इयो, ही, अर, उली, वा, अहिं, आपौ, कुरी, आनु आदि देशी प्रत्यय लगाकर बनाए गए हैं। इस प्रकार की प्रवृत्ति अन्य काव्यधाराओं में भी है किंतु उतनी नहीं जितनी रीतिस्वच्छंद धारा में है। शब्दो के इस संकोच और वृद्धि से अनेक अर्थच्छायाएँ अभिव्यक्त की गई हैं।

इन विशेषताओं के साथ इस काल की त्रुटियों को भी देख लेना आवश्यक है। एक निश्चित व्याकरणसंमत प्रयोग न होने के कारण कवि प्रयोगों में प्राय. स्वच्छंद थे जिससे भाषा में अनेक दोष आ गए। लोगो ने अपने ढंग से शब्दो का निर्माण कर लिया और उसे अपनी रचना मे फिट कर दिया। इस प्रवृत्ति से अशुद्ध प्रयोग की प्रवृत्ति तो चल ही पड़ी, भाषा भी कुछ क्लिष्ट हो गई। कुछ अशुद्ध और अप्रचलित प्रयोगों के उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं—

रसखान—पैया (पाया हुआ), नवीनी (नवीन), पाम (पाँव), अछी (अच्छी); तुक और अनुप्रास के आग्रह से—पाँवरिया, ललचैयत, सावरौरी, लेख, पियरो हीं, चहुँचहीं आदि।

आलम—जाजर (जर्जर), पतौआ (पत्ता), रसमैं (रश्मियाँ), सोस (सोच), कंधैलो (कन्हैया), अक्सेरी (इंतजार), उदबस (उजड़ा हुआ)।

घनआनंद—अरेंठी (टेढ़ी), गहर (गहराई), सौनि (कुदन का रंग),

द्विजदेव—दिपै (चमकना), चीती (चित्रित किया), नजिकात है।

इसी तरह अन्य काव्यधाराओं मे भी कुछ अप्रचलित प्रयोग मिलते हैं।

रीतिस्वच्छंद काव्य की भाषा को छोड़कर अन्य काव्यधाराओं की भाषा में कोई नवीनता नहीं; उनकी भाषा घिसी हुई पूर्वपरंपरा की भाषा है। इसका कारण यह है कि रीतिकाल में काव्य के लिये नए विषय और नई शैली का उपयोग ही नहीं हुआ। हाँ, उनकी शैली और शब्दरचना का प्रयास अपना है। रीतिस्वच्छंद कवियों के पास कहने के लिये कुछ नया था, कम से कम उनका दृष्टिकोण नया था, इसीलिये उनकी कविता में नवीनता आ पाई है। इसी दृष्टिकोण की नवीनता, कल्पना के उन्मेष, भावना के उद्वेलन और अभिव्यक्ति की संवेद्यता के कारण इनकी भाषा में भी एक ताजगी और प्रयोगशीलता विद्यमान है।

———:o:———

नवम खंड

उपसहार

रीतिमुक्त काव्य का मूल्यांकन

प्रदेय

प्रस्तुत बृहत् इतिहास के सप्तम भाग पर दृष्टि डालने से यह बात स्पष्ट होती है कि संवत् १७०० और १९०० वि० के बीच का हिंदी काव्य विविध प्रवृत्तियों को लेकर विकासशील रहा है। इस इतिहास के षष्ठ भाग में रीतिकाव्य का विवरण और विवेचन दिया गया है। रीतिकाव्य काव्यशास्त्र की परपराओ से आबद्ध काव्य है। इस युग के साहित्य के अधिकांश अनुशीलक अपनी धारणाएँ रीतिकाव्य के आधार पर ही बनाते हैं, जो निश्चय ही भ्रांतिपूर्ण और भ्रामक हैं। रीतिकाव्य के अतिरिक्त इस युग का जो रीतिमुक्त काव्य है, वह विविध और विस्तृत काव्य है। उसके समस्त रूपों का अनुशीलन करने से यह प्रकट होता है कि इस युग का काव्य भी यथार्थ जीवन का काव्य है। एक ओर जहाँ रीतिमुक्त काव्यों में रणक्षेत्र के उत्साह और अस्त्रशस्त्रों के प्रयोग की कुशलता की उदात्त भावना और वीरता के भावो का चित्रण हुआ है, वही दूसरी ओर इस काव्य के अंतर्गत लोकनीति, हास्यविनोद, विभिन्न शास्त्रो से संबधित साहित्य और जीवन के यथार्थ स्वरूप का वर्णन प्राप्त होता है। इस युग का यथार्थ जीवन के सभी स्तरों को स्पर्श करता है। जहाँ इसमें 'खटमल बाईसी' जैसे ग्रथ मिलते हैं वहीं इसके अतर्गत हुक्के की प्रशसा, विभिन्न उद्योगधंधो के गुण दोष, यात्राओ के कष्ट और सुख, कृषक जीवन की झाँकियाँ, विभिन्न ऋतुओं और त्योहारो के वर्णन प्राप्त होते हैं। ये सब वर्णन इस बात के द्योतक हैं कि इस काल के कवि केवल आदर्श जीवन का चित्रण ही नही करते, जैसा भक्तिकाव्य में मिलता है, वरन् उनकी दृष्टि यथार्थोन्मुखी है।

इसका यह भी तात्पर्य नहीं कि इस युग का साहित्य उन उच्च आध्यात्मिक मूल्यों का आकलन और प्रचार नही करता, जिनकी प्रतिष्ठा भक्तिकाल मे हो चुकी थी, वरन् तथ्य तो यह है कि इस युग के साहित्य मे भक्ति की वे सभी प्रवृत्तियाँ विकसित होती हुई दिखलाई देती हैं, जिनका अंकुरण भक्तिकाल में हुआ था। निर्गुण और सगुण उपासना के विविध सांप्रदायिक एवं स्वच्छद साहित्य का सृजन, अनुशीलन और प्रचार इस युग मे बड़े व्यापक धरातल पर हुआ, अतः यह कहा जा सकता है कि रीतिकालीन साहित्य के मूल्यांकन की सम्यक् दृष्टि तभी बन सकती है जब केवल रीतिकाव्य को न देखा जाय वरन् व्यापक और विविध रीतिमुक्त काव्य का भी सम्यक् अनुशीलन किया जाय।

काव्यशिल्प

रीतिमुक्त साहित्य में काव्यशिल्प और शैलियो के विविध प्रयोग हुए हैं। जहाँ शास्त्रीय और सैद्धांतिक ज्ञानचर्या का साहित्य आता है, वहाँ सरल शैली का व्यवहार हुआ है और विचारसंप्रेषण ही मुख्य उद्देश्य है। नीतिकाव्य के अंतर्गत प्रबन्ध अनेक

स्थलों पर दृष्टांत, उदाहरण, निदर्शना, यमक, श्लेष, अन्योक्ति और प्रतीक का प्रयोग किया गया है, फिर भी इस काव्य में अभिव्यंजना की वह गूढ़ता और प्रभाव की वह मार्मिकता नही है जो रीतिमुक्त शृंगारकाव्य मे देखी जाती है ।

रीतिमुक्त आध्यात्मिक साहित्य के अतर्गत जो संतकाव्य है, वह भी प्रायः सरल शैली में लोकभाषा मे लिखा गया है और इसमे छंदो का भी वैविध्य कम ही प्राप्त होता है । दोहा, छप्पय, कुडलिया तथा पद इस काव्य के बहुप्रचलित छंद हैं परतु अभिव्यंजना पद्धति मे कुछ सत कवियो ने उत्कृष्ट काव्यशिल्पात्मक प्रयोग किए हैं । संतकाव्य के प्रवर्तक कबीर तथा अन्य महत्वपूर्ण संत कवि, जैसे नानक, दादू, पलटू, दरिया आदि ने अन्योक्ति, रूपक, उत्प्रेक्षा और प्रतीक का बड़ा ही प्रभावशाली प्रयोग किया है । रूपक, अन्योक्ति और प्रतीक संतकाव्य के काव्यशिल्प की प्रमुख उपलब्धियाँ हैं । कहा जा सकता है कि गूढ़ आध्यात्मिक अनुभूति की अभिव्यंजना में संत कवियों ने रूपकों और प्रतीकों का उत्कृष्ट प्रयोग किया है ।

इस युग के आख्यानकाव्यों के अंतर्गत प्रायः प्रबंध शैली अपनाई गई है, जिसके अंतर्गत स्वभावतः प्रबंधशिल्प देखा जा सकता है, परंतु प्रेमाख्यान काव्य महाकाव्य या खंडकाव्य के उस अनुशासन या सयम मे बँधकर नही चलता, जो संस्कृत और हिंदी की परंपरा मे प्राप्त होते है । इन प्रेमाख्यानो मे कथा का सहज प्रवाह, अत्युक्तिपूर्ण वर्णन, सौदर्य का काल्पनिक और आदर्श चित्रण, कल्पना का अत्युक्तिपूर्ण प्रयोग और यथार्थ की अपेक्षा स्वप्निल स्वच्छंद भावों का चित्रण इन प्रेमाख्यान काव्यो के शिल्प की विशेषताएँ हैं । एक प्रकार से कहा जा सकता है कि ये काव्य जहाँ स्वच्छंदतावादी जीवन का चित्रण करते हैं, वही इनकी शैली और शिल्पविधि मे भी स्वच्छंदतावादी शैली परिलक्षित होती है । अन्योक्ति और प्रतीकविधान का भी इन प्रेमाख्यान काव्यों में मार्मिक प्रयोग हुआ है । साथ ही साथ किन्हीं कवियों में रूपक, रूपकातिशयोक्ति, उत्प्रेक्षा, श्लेष,यमक, मुद्रा, समासोक्ति, अप्रस्तुत प्रशंसा जैसे जटिल और सूक्ष्म अलंकारों का बड़ा सफल प्रयोग प्राप्त होता है ।

इन प्रेमाख्यानों में बिंबसृष्टि भी बड़ी विशद और आकर्षक है ।

समग्रतया इनका काव्यशिल्प यथार्थवादी न होकर काल्पनिक और स्वच्छंदतावादी है ।

गीतिमुक्त साहित्य के भक्तिकाव्य के अंतर्गत काव्यशिल्प का अधिक निखरा स्वरूप प्राप्त होता है । भक्तिकाव्य के अंतर्गत कृष्णभक्ति काव्य और रामभक्ति काव्य दोनों ही धाराओं की रचनाएँ संमिलित हैं और शैली और शिल्प में भी इस युग के रामभक्ति काव्य और कृष्णभक्ति काव्य मे काफी साम्य है । यह कहा जा सकता है कि जहाँ इस युग का रामभक्ति काव्य कृष्णभक्ति काव्य की रसिक प्रवृत्ति से प्रभावित है, वही यह भी सत्य है कि रामभक्ति काव्यधारा के अतर्गत कृष्णभक्ति धारा की अपेक्षा प्रबंधकाव्यो का प्रणयन

अधिक संख्या में हुआ है। प्रबंधकाव्य प्राय: दोहा चौपाई शैली में है, परंतु मुक्तक काव्य-पद शैली में है। पद शैली का प्रभूत विस्तार इन दोनों धाराओं के भक्तिकाव्य में उपलब्ध होता है। भक्ति साहित्य के पद प्राय. संगीत के तत्वों से सपन्न है, जिसके परिणामस्वरूप भाषा में मार्दव और माधुर्य विशेष रूप से समाविष्ट हो गया है। प्राय: प्रबंधकाव्यों की भाषा अवधी और मुक्तक पदरचना की भाषा ब्रज है। काव्यशिल्प की दृष्टि से पदसाहित्य अधिक उत्कृष्ट है जिसके अतर्गत बहुसख्यक अलकारो का प्रयोग हुआ है। इनकी बिब-सृष्टि भी रसिकता और काल्पनिकता से ओतप्रोत है। इन रचनाओं में अर्थगूढ़त्व उतना नहीं, जितना सहज सवेदन। ब्रजभाषा विशेष रूप से अपने परिमार्जित स्वरूप को प्राप्त होती हुई दिखलाई देती है। इस युग के भक्तिकाव्य मे छद और तुक सबधी आग्रहपूर्ण रीति से विद्यमान है। इस काव्य की शब्दावली युगीन सास्कृतिक शब्दावली को अत्यधिक विस्तार के साथ आत्मसात् करती हुई दिखलाई देती है। रूपसौदर्य और भाव की विविध भंगिमाओं को चित्रित करने मे भक्तिकाव्य को सराहनीय सफलता मिली है। यद्यपि यह कहा जा सकता है कि शिल्पगत प्रयोग का वैविध्य अधिक नही मिलता।

हास्यविनोद काव्यधारा मे उस युग की विकृतियो और रूढ़ियों का चित्रण मिलता है, परतु इस काव्य की शैली व्यग्यशैली का पैनापन उतना नहीं ला सकी, जितना हास्य-शैली की विशदता। व्यग्यशैली की आधुनिक तीक्ष्णता इस युग के काव्य मे बहुत कम देखने को मिलती है, फिर भी यदाकदा आचार और व्यवहार पर कटाक्ष करनेवाले छद भड़ौओं के रूप में मिल जाते हैं जो कवि की जागरूक चेतना को प्रमाणित करते है। हास्य-व्यंग्य काव्य मे शिल्पगत चमत्कार की प्रवृत्ति भी विशेष नही मिलती। हां, कही कही शब्दो का श्लेष-यमक-गत सौदर्य और कही कहो पुरावृत्त (मिफथक) का प्रयोग इस युग के हास्य व्यंग्यकारों ने किया।

काव्यशिल्प और शैली की दृष्टि स रीतिमुक्त काव्य की वीरकाव्य धारा और शृंगारकाव्य धारा मे मिलती है। वीरकाव्य सबधी इस युग की रचनाएँ न केवल विशाल परिमाण में हैं, वरन् उनमें अभिव्यक्ति सबंधी प्रभावशीलता भी बड़ी गहरी हे जिसके नमूने इस युग के प्रसिद्ध कवियो की रचनाओं म कही भी देखे जा सकते हैं। वीरकाव्य के शिल्प मे आलंकारिक चमत्कार तो है ही, परंतु शब्दचयन, शब्दगठन और ओज गुण से युक्त संयुक्ताक्षरोंवाले छदो का निर्माण इस धारा के काव्यशिल्प की प्रमुख विशेषता है। जहाँ हमें वीरता को उकसानेवाले दोर्घमात्रिक छदो मे ओज और उत्साह को संचरित करने की विशेषता प्राप्त होती है, वही त्वरित या गति को त्वरा के द्योतक लघुमात्रिक छोटे छोटे छंदों के प्रयोग मे इस धारा के कवियो ने कमाल हासिल किया है। युद्ध आदि के वर्णनों में घोड़ो की गति और शस्त्रास्त्रों के प्रयोग से उत्पन्न ध्वनियो के अनुकरण पर इन वीर कवियो की जो शब्दरचना मिलती है, वह क्षण भर में पाठक को युद्धभूमि मे खड़ा करने की विशेषता रखती है। पद्धरी जैसे त्वरासूचक छंद का प्रयोग तो अत्यधिक

किया ही गया है, रोला, छप्पय, छंद भी खूब प्रयुक्त हुए हैं। सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि इनकी अमृतध्वनि छंदरचना मे देखी जा सकती है, जिसमें ओज और गति दोनों का संमिश्रण मिलता है। यह छंद आज की छंदहीन कविता के सामने अपना प्रबल व्यक्तित्व उपस्थित करते हुए जैसे यह व्यंजना करता है कि आज की कविता का अस्तित्व शरीरहीन व्यक्ति के समान है।

कई वीरकवियो ने न केवल अपनी ओजपूर्ण शब्दावली के द्वारा शैलीगत वैशिष्टय प्राप्त किया है, वरन् उनमे आलंकारिक चमत्कार भी अत्यंत प्रभावशाली है। अलंकार प्रायः सादृश्यमूलक अधिक है, परंतु विरोधमूलक अलंकारो का चमत्कार भी यदाकदा देखने को मिलता है। वीरकाव्य के प्रणेता होने के साथ साथ भूषण रीतिबद्ध कवि भी हैं, अतः अलकारो के उदाहरण लक्षण सहित उनके शिवराजभूषण में मिलते हैं पर उनकी रीतिमुक्त रचनाएँ भी है, जिनमे उनकी शिल्पगत उत्कृष्टता प्रकट होती है। उनकी रचनाओं मे अलकारो का सूक्ष्म चमत्कार दिखलाई देता है। इसका प्रभाव सूदन, लाल, हरिकेश, चद्रशेखर आदि पर भी विद्यमान है।

इन वीरकवियो की बिबसृष्टि महज और प्रेरक है। अपने बिंबात्मक वर्णनो के द्वारा ये कवि युद्ध और वीरता के प्रसगों को प्रबल सजीवता के साथ हमारे सामने उपस्थित करने में समर्थ है, अत भाषा, अलकार और बिब सभी की दृष्टि से रीतिमुक्त वीरकाव्य का अपना शिल्पगत प्रदेय महत्वपूर्ण है। यद्यपि इन कवियों में अर्थगूढता और चमत्कारिक व्यजना कम है, तथापि इनकी शब्दावली अत्यत विस्तृत है जो न केवल इनकी शब्द-निर्माण-क्षमता की द्योतक है, बल्कि इनके व्यापक ज्ञान को भी प्रकट करती है। काव्यशिल्प की दृष्टि से इस धारा के कवियों का अपना विशिष्ट महत्व है।

रीतिमुक्त काव्य अपने शिल्पगत उत्कर्ष को रीतिस्वच्छद शृंगारधारा के कवियों के काव्य मे प्राप्त होता है। इन कवियो में काव्यप्रतिभा प्रायः उसी प्रकार की है, जैसी अनेक ख्यातिलब्ध रीतिबद्ध कवियों में प्राप्त होती है। मतिराम, देव, बिहारी जैसी काव्यसवेदना रीतिस्वच्छंद शृंगारी कवियों--आलम, घनानद, बोधा, ठाकुर और द्विजदेव--की रचनाओं में महज ही दृष्टिगोचर होती है। यदि हम इनके छदों को उदाहरण के रूप में उपलब्ध उत्कृष्ट रीतिबद्ध कवियों के छदो के साथ रखकर देखें तो हमे लगेगा कि सवेदना का सहज रूप रीतिमुक्त कवियों के काव्य में विशेषत प्राप्त होता है। ये रीतिमुक्त शृगारी कवि काव्यशास्त्रीय परंपराओं से अनभिज्ञ नही थे, परंतु इनकी प्रवृत्ति शास्त्रीय अनुशासन में बँधकर रचना करने की नहीं थी। इसी कारण प्रायः इनका संबध राजदरबारों से नहीं रहा, क्योंकि ये वहाँ के अनुशासन को भी स्वीकार करने की प्रकृतिवाले नही थे। घनानंद, इसीलिये दरबार छोड़कर चले आए थे। इन कवियो की रचनाओं में छंदों का प्रयोग सीमित है। जिन छदों का प्रयोग इन कवियों ने किया है वे हैं---घनाक्षरी, सवैया, बरवै, सोरठा, दोहा, चौपाई आदि। इन छंदो की मर्यादा को इन्होंने प्रायः निभाया है।

रीतिमुक्त कवियों में छंदों के नए प्रयोग नहीं मिलते परंतु घनाक्षरी और सवैया छंद अपने विविध रूपों में इन कवियों द्वारा प्रयुक्त हुए हैं। इनके छंद अत्यंत परिमार्जित हैं।

भाषा की दृष्टि से इन कवियों का दृष्टिकोण शुद्धतावादी तो नहीं है क्योंकि इनकी ब्रजभाषा रचनाओं में भी अवधी, बुंदेली, फारसी, कन्नौजी आदि बोलियों और भाषाओं के छंद मिलते हैं, परंतु जिस प्रकार की भाषा का व्यवहार इन कवियों ने किया है, वह ब्रज का परिनिष्ठित साहित्यिक रूप है। भाषा के प्रयोग में आलम और बोधा अधिक स्वच्छंद हैं। यद्यपि इनकी रचनाओं में मुहावरेदानी और मार्मिक शब्दप्रयोग मिलते हैं, तथापि इनकी भाषा में फारसी तथा बुंदेली, पंजाबी आदि भाषाओं के छंद बड़ी स्वतंत्रतापूर्वक प्रयुक्त हुए हैं। ठाकुर की भाषा में भी यद्यपि शुद्धतावादी प्रवृत्ति नहीं है, तथापि वह अधिक सुगठित है और इनके छंद अधिक कसे हुए हैं। द्विजदेव की भाषा परिमार्जित भाषा है। इनकी भाषा में एक विशिष्ट लालित्य, प्रवाह और प्रांजलता मिलती है। ये सुकुमार रचना के कवि हैं और शब्द और वर्ण के प्रयोग में अत्यत सावधान और सुरुचिसपन्न हैं। इनकी भाषा में सानुप्रासिकता और नादसौंदर्य भी प्राप्त होता है।

परंतु रीतिस्वच्छंद शृंगारिक कवियों में सर्वाधिक उत्कृष्ट भाषा घनानंद की है। घनानंद की भाषा स्वच्छ, प्रांजल और परिनिष्ठित ब्रजभाषा है। इनके शब्द टकसाली और सुगढ़ हैं। भाषा मे मुहावरों का अत्यंत सुष्ठु और मार्मिक प्रयोग मिलता है। इनके क्रियापदों में अर्थदीप्ति की अद्भुत शक्ति विद्यमान है, अन्य शब्दों में चित्रात्मक व्यंजना है। शब्द जैसे कला के साँचे में ढलकर इनकी छंदरचना में इस प्रकार जड़े है कि उनको हटाना या इधर उधर खिसकाना सारे सौंदर्य को नष्ट करना है। सचमुच ही घनानंद भाषाप्रवीण हैं। इनके शब्दों में गहरी अर्थमत्ता और नई व्यंजनाओं की अद्भुत शक्ति देखने को मिलती है। इनकी भाषा की यह विशेषता है कि इनके छंदों की कोई एक पंक्ति या कुछ शब्दमात्र अपना वैशिष्ट्य नहीं रखते वरन प्रत्येक शब्द और प्रत्येक पंक्ति पढ़ते समय अपनी बिंबात्मक संवेद्यता से झंकृत होती है। ब्रजभाषा कवियों में इसीलिये भाषाशिल्प की दृष्टि से घनानद का स्थान शीर्षस्थ है। इनका शब्दभंडार भी बड़ा व्यापक है और इन्होंने ब्रजभाषा के अनेक ठेठ और कम प्रयुक्त शब्दों का भी प्रयोग किया है। छंदभेद और भावभेद के साथ भाषा पर अधिकार और उसके प्रयोग के क्षेत्र में घनानंद और बिहारी में काफी साम्य देखने को मिलता है।

रीतिस्वच्छंद शृंगारी कवियों का काव्य आलंकारिक छटा से संपन्न है। अधिकांश में बड़ी सुंदर अलंकारयोजना मिलती है। जिन अलंकारों का विशेष रूप से प्रयोग हुआ है वे हैं—अनुप्रास, यमक, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, प्रतीप, व्यतिरेक, सदेह, अपह्नुति, उदाहरण, अतिशयोक्ति, असंगति, विभावना, अर्थांतरन्यास, दीपक आदि। ये अलंकार अपने सहज रूप मे इन कवियों की रचनाओं में आए हैं। रीतिबद्ध या समस्यापूर्तिकार कवियों की भाँति किसी लक्षण या समस्या को स्पष्ट करने के लिये बँधे बँधाए अलंकारों

का प्रयोग इनमें नहीं है। हम कह सकते हैं कि इन कवियों का आलंकारिक सौंदर्य सहज दीप्ति से युक्त है। प्रसाधनचमत्कार की सजावटवाला सौंदर्य इनमें नहीं है। इसीलिये इनकी अलंकारयोजना पाठक को संवेदनात्मक गहराई में ले जाने की विशेषता रखती है। इनके काव्य में प्रयुक्त अप्रस्तुतविधान प्रकृति और जीवन के व्यापक क्षेत्र से लिया गया है। आलंकारिक प्रयोग में भी घनानंद का काव्य सर्वोत्कृष्ट है। इनकी रचनाओं में जो अलंकार आए हैं वे अनुभूति की सूक्ष्मतर परतों को उद्घाटित करने की क्षमता रखते हैं। ऐसा लगता है कि इनकी अलंकारयोजना संवेदना के विभिन्न आयामों को स्पष्ट करने के लिये है, केवल चमत्कार के लिये नहीं।

———:०:———

अनुक्रमणिका

अ

छ

य

र
